6.4

व्याकरण सिद्धान्त कौमुदी

IV

912

P15, C×1, 1, 6
152L9P.4

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

P15,Cx1,1,6 22844
1521.9P.4

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

P15,Cx1,1,6
152L9P.4
2284

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

3	20/4/22	

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१९१
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक ... १९२ ...

श्रीभट्टोजिदीक्षितविरचिता

वैयाकरण-सिद्धान्तकौमुदी

सविमर्श-'रत्नप्रभा'-हिन्दीव्याख्यासहिता

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

व्याकरणाचार्यः श्रीबालकृष्णपञ्चोली

दे० सू० खेतानमहाविद्यालय-काशिकराजकीय-संस्कृतमहाविद्यालय-वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालय-पूर्वप्राध्यापकः

(ण्यन्तादि-समाप्त्यन्तः चतुर्थो भागः)

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी
द्वारा प्रदत्त
लखनऊ

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता

पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० १३९

जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी (भारत)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक :—

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता

पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० १३९

जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

P15, Cc1.1.6
J52L9P.4

© चौखम्भा संस्कृत संस्थान

प्रथम संस्करण

मूल्य : रु० ~~१५.००~~ २५

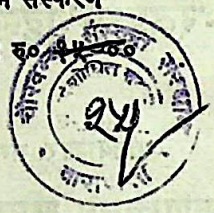

एकमात्र वितरक :—

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक तथा विक्रेता

पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० ३२

गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

टेलीफोन — ६२६९५, ६३०२२ टेलीग्राम — गोकुलोत्सव

❀ मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय ❀

आगत क्रमांक ..... 2266 .....

दिनांक .....

मुद्रक :—

विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

992

THE

KASHI SANSKRIT SERIES

191

VAIYĀKARAṆA-SIDDHĀNTA-KAUMUDĪ

BY

ŚRĪ BHAṬṬOJI DĪKṢITA

Edited with

'Ratnaprabhā' Hindī Commentary

BY

PT. ŚRĪ BĀLAKṚṢṆA PAÑCHOLĪ,

Ex-Professor, Khetan Sanskrit College, Varanasi and Sanskrit University, Varanasi.

1971

VOL. IV

ṆYANTĀDI TO SAMĀPTYANT

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN

Publishers and Book-Sellers

P. O. Chaukhambha, Post Box No. 139

Jadau Bhawan, K. 37/116, Gopal Mandir Lane

VARANASI (INDIA)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषयानुक्रमणिका

१. ण्यन्तप्रक्रिया	१	२५. वैदिक-प्रकीर्ण (प० अ०)	३९९
२. सन्नन्तप्रक्रिया	१५	२६. वैदिक-प्रकीर्ण (ष० अ०)	४०३
३. यङन्तप्रक्रिया	२९	२७. वैदिक-प्रकीर्ण (स० अ०)	४१५
४. यङ्लुगन्तप्रक्रिया	३६	२८. वैदिक-प्रकीर्ण (अ० अ०)	४२७
५. नामधातुप्रक्रिया	४९	२९. स्वरप्रक्रिया	
६. कण्ड्वादयः	६९	(साधारणस्वराः)	४३९
७. प्रत्ययमाला	७१	३०. धातुस्वराः	४५०
८. आत्मनेपदप्रक्रिया	७३	३१. प्रातिपदिकस्वराः	
९. परस्मैपदप्रक्रिया	९६	(शब्दस्वराः)	४५२
१०. भावकर्मप्रक्रिया	१००	३२. फिट्सूत्राणि (प्रथमपादः)	४५८
११. कर्मकर्तृप्रक्रिया	११०	३३. ,, (द्वि० पादः)	४६४
१२. लकारार्थप्रक्रिया	११६	३४. फिट्सूत्राणि (तृ० पादः)	४६८
१३. कृदन्तकृत्यप्रक्रिया	१२९	३५. ,, (च० पादः)	४७१
१४. पूर्वकृदन्तप्रक्रिया	१५०	३६. स्वरप्रकरण शेषः	४७४
१५. उणादिप्रकरणम्		३७. प्रत्ययस्वरप्रकरणम्	,,
(प्रथम पादः)	२१६	३८. समासस्वरप्रकरणम्	४८१
१६. उणादिप्रकरणम् (द्वि० पादः)	२४३	३९. तिङन्तस्वराः प्रकरणम्	५२६
१७. उणादिप्रकरणम् (तृ० पादः)	२६१	४०. स्वरसञ्चारप्रकारः	५३६
१८. उणादिप्रकरणम् (च० पादः)	२८२	४१. लिङ्गानुशासनप्रकरणम्	५३९
१९. उणादिप्रकरणम् (प० पादः)	३१२	४२. स्त्र्यधिकार	,,
२०. उत्तरकृदन्तप्रकरणम्	३२१	४३. पुंल्लिङ्गाधिकारः	५४४
२१. वैदिक-प्रकरणम् (प्र० अ०)	३७४	४४. नपुंसकाधिकारः	५५४
२२. वैदिक-प्रकरणम् (द्वि० अ०)	३७६	४५. स्त्रीपुंसाधिकारः	५६१
२३. वैदिक-प्रकरणम् (तृ० अ०)	३७९	४६. पुंनपुंसकाधिकारः	५६२
२४. वैदिक-प्रकरणम् (च० अ०)	३९१	४७. अवशिष्टलिङ्गाधिकारः	५६४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी

सविमर्श 'रत्नप्रभा' हिन्दीव्याख्योपेता

अथ ण्यन्तप्रक्रिया

२५७६ तत्प्रयोजको हेतुश्च १।४।५५।

कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात्।

कर्ता के प्रेरक की हेतुसंज्ञा एवं कर्तृसंज्ञा होती है।

विमर्श—धात्वर्थ व्यापाराश्रय की कर्तृसंज्ञा होती है। यहां पूर्वपदार्थ परामर्शक तत् शब्द से 'स्वतन्त्रः कर्ता' सूत्र में निर्दिष्ट 'कर्ता' का परामर्श हुआ। कर्ता के प्रेरक को यहां प्रयोजक कहते हैं। अर्थात् कर्तृवृत्ति व्यापारजनक व्यापारवान् = प्रयोजक है।

यहां चकार एक संज्ञाधिकार बाधनार्थ है, चकार बल से एक की संज्ञाद्वय की सिद्धि हुई। हेतुसंज्ञा का प्रयोजन 'भीस्म्यो हेतुभये' 'भियो हेतुभये षुक्' इत्यादि में प्रयोजक का हेतुत्व से व्यवहार हुआ। कर्तृसंज्ञा का प्रयोजन यह है कि 'लः कर्मणि' सूत्र से प्रयोजक वाच्य में लकारादि हुए। शुद्ध धात्वर्थ व्यापाराश्रय को प्रयोज्यकर्ता कहते हैं एवं ण्यन्त धात्वर्थ व्यापाराश्रय को प्रयोजक कर्ता कहते हैं। द्वितीयणिच् वाच्यव्यापार का शुद्ध धात्वर्थ व्यापार फल स्वरूप होता है। तदाश्रय की स्थल विशेष में कर्मसंज्ञा होती है। यथा "शत्रून् अगमयत् स्वर्गम्" आदि स्थलों में। यहां 'संयोगजनकजनक व्यापारानुकूल व्यापार' अर्थ ण्यन्त गमि का हुआ है।

प्रेरक व्यापार प्रधान = विशेष्य है। प्रेर्य व्यापार विशेषण = अप्रधान है।

२५७७ हेतुमति च ३।१।२६।

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात्। भवन्तं प्रेरयति भावयति। णिचश्चेति कर्तृगे फले आत्मनेपदम्। भावयते। भावयांबभूव।

प्रयोजक व्यापार में प्रेषणादि अर्थ वाच्य रहने पर धातु से णिच् होता है। यथा 'आत्मधारणानुकूल व्यापारार्थक भूधातु से लट् शतृप्रत्यय नुमादि से 'भवन्तम्' की सिद्धि कर प्रेरणा में भवन्तं प्रेरयति भावयति यहां 'भू+इ+अ+ति' यहां उकार की वृद्धि 'अचोञ्णिति' से हुई आवादेश से 'भावि' इस ण्यन्त की 'सनाद्यन्ता धातवः' से धातुसंज्ञाकर लट् तिप् शप् हुआ गुण एवं अयादेश से पूर्वोत्तरूप की सिद्धि हुई।

विमर्श— देवदत्त आत्मधारण जनक व्यापाराश्रय प्रयोज्यकर्ता उसका प्रयोजककर्ता चैत्र है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्मधारणानुकूल व्यापारानुकूल व्यापारो भावि धात्वर्थः। अनुकूल का अर्थ जनक है। देवदत्तं चैत्रो भावयति यह प्रयोग हुआ यहां गतिबुद्धिसूत्र से अकर्मक भूधातुण्यन्त के योग में पूर्व व्यापाराश्रय प्रयोज्य देवदत्त की कर्मसंज्ञा हुई। एवं कर्ता का प्रयोजक की कर्तृसंज्ञा एवं हेतुसंज्ञा हुई। प्रयोजककर्ता लकार से उक्त है अतः प्रथमा विभक्ति उससे उत्पन्न हुई।

प्रेषणादौ—भृत्यादि निकृष्ट की प्रवर्तना को प्रेषणा = (आज्ञा) कहते हैं। आदि पद से अध्येषण, अनुमति आदि का ग्रहण करना चाहिये। समान या अधिक वयस्क की प्रार्थना को अध्येषण कहते हैं। अनुमतिः = राजादि की सम्मतिः। उनकी आज्ञा विना यागादि क्रियाओं की निष्पत्ति नहीं होती अतः राजादि प्रयोजक है। उपदेश एवं अनुग्रह का आदि शब्द से ग्रहण होता है। यथा—ज्वर आनेपर काढ़ा पीना चाहिये यहां वैद्य प्रयोजक कर्ता है—ज्वरितः कषायं पिबेत्। प्रयोजक उपदेश कर्ता है। कोई हनन क्रिया कर्ता से अपने को बचाने के लिए भग रहा है, उस पलायमान पुरुष को जो रोकता है वहां रोकने वाला हनन क्रिया कर्ता का अनुग्राहक होने से वह प्रयोजक कर्ता है—यस्तु केनचिद् हन्तुम् इष्टं पलायमानं निरुणद्धि सोऽपि हन्तुरनुग्राहकत्वेन प्रयोजकः।

इन सभी अर्थ णिच् प्रत्यय गम्य कैसे होगे ?, एतदर्थं सर्वानुगत प्रवर्तना सामान्यणिजर्थ, है अर्थ विशेषज्ञान प्रकरणादि से होता है।

विमर्श—इस प्रकार स्वीकार करने पर लोट् लकार एवं णिच् की एकार्थ बोधकत्वरूप पर्यायता होगी जो इष्ट नहीं है। अन्यथा 'पृच्छतु भवान्' यह जहां कहना उचित है वहां 'प्रच्छयति भवान्' यह अनिष्ट प्रयोगापत्ति होगी अतः इस शङ्का निरासार्थ—प्रयोज्यप्रवृत्त्युपहितप्रवृत्त्याश्रयस्य प्रयुक्तिस्तु यदा स्यात् णिचो विषयः। अर्थात् प्रयोज्यकर्ता की प्रवृत्ति के अनुकूल हो प्रेरक की प्रवृत्ति रहे वहां णिच् होता है। अर्थात् प्रयोज्यकर्ता स्वयं तत् क्रिया करने में प्रवृत्त है विना उपदेशादि से वहां उसको उत्साह वर्धनार्थ के वल प्रयोजक प्रेरणा करता है वहां णिच् होता है।

कार्य न करने में प्रवृत्त को आज्ञादि द्वारा कार्य में प्रवृत्त करना वहां लोट् होता है 'पठतु भवान्' आदि। यहां आदेश द्वारा क्रिया में प्रवृत्त करना है। ण्यन्त से क्रियाजन्यफलकर्तृगामि रहने पर 'णिचश्च' से आत्मनेपद हुआ।

२५७८ ओः पुयण्ज्यपरे ७।४।८०।

सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्येत्त्वं स्यात् पवर्गयणजकारेष्ववर्णपरेषु परतः। अबीभवत्। अपीपबत्। मूङ् अमोमवत्। अयीयवत्। अरीरवत्। अलीलवत्। अजीजवत्।

सन् पर में रहते अङ्ग का अवयव अभ्यास उसका अवयव उकार को इकारादेश होता है अवर्ण परक पवर्ग, या यण् या जकार पर में रहते। सूत्र में 'पुयण्जि' में समाहारद्वन्द्व समासोत्तर सप्तमी विभक्ति है। 'अपर' में बहुव्रीहि समास है। 'अत्र लोपोऽभ्यासस्य' से अभ्यास की अनुवृत्ति है। 'भृञामित्' से इत् की अनुवृत्ति है, 'सन्यतः' से सनि की एवं अङ्गस्य अधिकार प्राप्त है। 'अपरे' कहने से 'बुभूषति' यहां अभ्यास उकार को इकारादेश न हुआ। पवर्गादि ग्रहण से 'ऊर्णुनविषति' यहां इकार न हुआ।

विमर्श—अः परो यस्मात् यहां पञ्चम्यर्थ में बहुव्रीहि है, षष्ठ्यर्थ में नहीं। पु एवं यणादि का अकार का अवयवत्व के अभाव से। सूत्र में उकार ग्रहण व्यर्थ है, अवर्ण पर पवर्गादि परक अभ्यास

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के अवयव अकार को इकारादेश इष्ट ही है। पूर्वोक्त विशेषण विशिष्ट अभ्यास का अवयव इकार नहीं है। उकार को इत्व इष्ट ही है। ऋकार एवं ऌकार अभ्यास में रहे ऐसा सम्भव नहीं है, 'वेञ्' 'रै' 'पै' 'वै' इन धातुओं से जहां सन् वहां भी प्रथमतः आत्व की प्रवृत्ति से अभ्यास में अकार ही है अतः उकार का 'पच्' व्यावृत्तिरूप फल भी नहीं है, अतः परिशेष से उकार को ही होगा पुनः उकार का ग्रहण क्यों किया ?,

यङन्त पापच्य एवं वावच्य से सन् कर यङ् निमित्तक द्वित्वनिमित्तक अभ्यास का अवयव अकार को अन्तरङ्गत्व के कारण दीर्घ कर अकार का अतो लोप एवं यकार का 'यस्य हलः' से लोप कर 'पापचिषते' 'वावचिषते' यहां आकार जो अभ्यासावयव है उसको इकारादेश की निवृत्ति के लिए सूत्र में उकार का ग्रहण है।

यदि प्रत्यासत्तिन्याय से सन् निमित्त कर द्वित्वनिमित्तक जो अभ्यास तदवयव को इत्व विधान होता है तब तो पूर्वोक्त उदाहरणद्वय में सन् निमित्तक द्वित्व न होने से दोष नहीं है। सूत्र में उकार ग्रहण व्यर्थ ही है। या प्रत्यासत्ति लभ्यार्थ में उकार ज्ञापक है। इस का फल यह हुआ—यङन्त जङ्गम्य से सन् इडागम से लट् में 'जङ्गमिषते' यहां 'सन्यतः' से इकारादेश का अभावरूप है।

सूत्र के उदाहरण जहां इकारादेश हुआ—सत्तार्थक भू, पवनार्थक पूङ्, बन्धनार्थक मूङ्, मिश्रणार्थक यु, शब्दार्थक रु, छेदनार्थक लूञ्, गत्यर्थक जु इनसे णिच् कर द्वित्वोत्तर वृद्धि आवादेश ह्रस्व वहां अभ्यास उकार को इत्व हुआ—

अबीभवत्। अपीपवत्। अमीमवत्। अयीयवत्। अरीरवत्। अलीलवत्। अजीजवत्। यहां इकार का दीर्घादेश 'दीर्घो लघोः' से हुआ। इस सूत्र के आरम्भसामर्थ्य से यहां 'णौ चङि' से विदित ह्रस्व का स्थानिवद्भाव न हुआ। अन्यथा लघुपरत्व के अभाव से सन्वद्भाव की अप्रवृत्ति होने से इसका वैयर्थ्य होगा।

२५७९ स्रवति-शृणोति-द्रवति-प्रवति-प्लवति-च्यवतीनां वा ७।४।८१।

एषामभ्यासोकारस्य इत्त्वं वा स्यात् सन्यवर्णे परे धात्वक्षरे परे। असिस्रुवत्। असुस्रुवत्। 'नाग्लोपि' इति ह्रस्वनिषेधः—अशशासत्। अडुढौकत्। अचीचकासत्। मतान्तरे अचचकासत्। अग्लोपीति सुब्धातुप्रकरणे उदाहरिष्यते। ण्यन्ताण्णिच्। पूर्वविप्रतिषेधादपवादत्वाद् वा वृद्धिं बाधित्वा णिलोपः। चोरयति। णौ चङीति ह्रस्वः। दीर्घो लघोः। न चाग्लोपित्वाद् द्वयोरप्यसम्भवः, ण्याकृतिनिर्देशात्। अचूचुरत्।

सन् एवं अवर्ण है परमें जिसको ऐसा धातु का अवयव वर्ण पर में रहते स्रु शृ द्रु प्रु प्लु च्यु धातु के अभ्यास का अवयव उकार के स्थान में विकल्प से इकार आदेश होता है। यथा असिस्रुवत्, असुस्रुवत्। 'अशशासत्' में 'णौ चङि' से प्राप्त ह्रस्वादेश का 'नाग्लोपि' से निषेध हुआ। अडुढौकत् यहां ऋकार की इत् संज्ञाप्रयुक्त ह्रस्व का निषेध हुआ। चकास् के ण्यन्त लुङ् में ह्रस्वनिषेध अचीचकासत्। अङ्ग कर्मक द्विर्वचन रूप पक्षान्तर = 'अङ्गं यत्र द्विरुच्यते' में चङ् परे णौ यत् लघु तत्पर जो अङ्गावयव अभ्यास इसमें अचचकासत् यहां सन्वद्भाव का अभाव है। 'अक्' प्रत्याहार के वर्णों का लोप युक्त धातुओं का उदाहरण नाम प्रकृतिक विभक्ति निमित्तक प्रत्यय निमित्तक रूप नाम धातु में उदाहरणों का प्रदर्शन करेंगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वार्थिक णिच् प्रत्ययान्त चोरी से पुनः 'हेतुमति च' से णिच् प्रत्यय हुआ। यहां पूर्वविप्रतिषेध बोधक वार्तिक है—'ण्यलोपौ' से अथवा 'णेरनिटि' वृद्धि का बाधक सूत्र से णिलोप हुआ वृद्धि न हुई चोरयति। लुङ् में 'अ चुर् इ इ अत्' यहां णिलोप कर लघूपधकगुण से ओकार कर उसका 'णौ चङि' से उपधा ह्रस्व हुआ। एवं 'दीर्घो लघोः' से दीर्घ आदेश से 'अचूचुरत्' रूप की सिद्धि हुई।

यहां शङ्का करते हैं कि णिच् के इकार का जो लोप प्रथम हुआ उसका स्थानिवद्भाव से चङ् पर णि परणिपरक है अतः उपधा ह्रस्व एवं अभ्यास को दीर्घ का सम्भव नहीं है इस शङ्का का समाधान करते हैं कि यहां णिव्यक्ति परक नहीं है किन्तु जाति परक है अर्थात् चङ् पर णित्वे ऐसा अर्थ 'णौ चङि' सूत्र का कर प्रत्येक णिवृत्ति णित्व जाति का दो णिच् में आरोप कर कार्यद्वय = अर्थात् उपधाह्रस्व एवं अभ्यास दीर्घ हुआ। 'अचूचुरत्'। 'वर्णग्रहणे जातिग्रहणम्' इत्यादि स्थलों में भी प्रत्येक वर्ण वृत्ति जाति वर्ण समूह में आरोपित होती है ऐसा ज्ञान करना चाहिये।

विमर्श—वस्तुतः चङ् से अव्यवहित पूर्व जो णि उसके अव्यवहित पूर्व जो अङ्गावयव उपधा में स्थित वर्ण का ह्रस्व होता है यहां अव्यवहित पूर्वत्व वर्ण में ही सम्भव है जाति में नहीं अतः 'ण्याकृतिनिर्देशात्' यह समाधान सर्वथा अनुचित सा प्रतीयमान होता है। प्रत्येक णि वृत्ति णित्व जाति का णिच् द्वय में आरोप में भी कोई प्रमाण नहीं है। अतः यहां 'णौ चङि' सूत्र पर स्थित वार्तिक है—'णेर्णिच्युपसंख्यानम्" इस वार्तिक से कार्य निर्वाह करना चाहिये। यह वार्तिक ह्रस्व विधायक ण्यन्त से णिच् लुङ् में है उससे ही यहां ह्रस्व हुआ। उपधा ह्रस्वत्वे 'णेर्णिच्युपसंख्यानम्' वदितवन्तं प्रयोजितवान् "अवीवदत् वीणां परिवादकेन"।

२५८० णौ च संश्चङोः ६।१।३१।

सन् परे चङ् परे च श्वयतेः सम्प्रसारणं वा स्यात्। सम्प्रसारणं तदाश्रयं कार्यञ्च बलवदिति वचनात् सम्प्रसारणं पूर्वरूपम्, अशूशवत्। अलघुत्वान्न दीर्घः। अशिश्वयत्।

सन् पर में रहे ऐसा णि पर में रहते या चङ् परक णि पर में रहते श्विधातु घटक यण् का सम्प्रसारण विकल्प से होता है। 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' में 'उभयेषाम्' ग्रहण सामर्थ्य से ज्ञापित वचन यह है कि सम्प्रसारण एवं सम्प्रसारण को आश्रय करके विधीयमान कार्य बलवत् है। अतः 'अशूशवत्' यहां सम्प्रसारण एवं पूर्वरूप हुआ। सम्प्रसारण के अभाव में अलघुत्व के कारण दीर्घ न हुआ। अशिश्वयत्।

२५८१ स्तम्भुसिवुसहां चङि ८।३।११६।

उपसर्गस्थान्निमित्तादेषां सस्य षो न स्याच्चङि। अवातस्तम्भत्। पर्यसीषियत्। न्यसीषहत्। आटिटत्। आशिशत्। बहिरङ्गोऽप्युपधाह्रस्वो द्वित्वात प्रागेव। ओणेर्ऋदित् करणाल्लिङ्गात्। मा भवान् इदिधत्। एजादावेधतौ विधानान्न वृद्धिः।

मा भवान् प्रेदिधत्। नन्द्रा इति नदराणां न द्वित्वम् = औन्दिदत्। आडिडत्। आर्चिचत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उब्ज आर्जवे। उपदेशे दकारोपधः। भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोरिति सूत्रे निपातनाद् दस्य वः। स चान्तरङ्गोपि द्वित्वविषये नन्द्रा इति निषेधाज्जिशब्दस्य द्वित्वे कृते प्रवर्तते, न तु ततः प्राक् दकारोच्चारणसामर्थ्यात्। औब्जिजत्। अजादेरित्येव, नेह—अदिद्रयत्।

उपसर्गस्थ निमित्त से पर स्तम्भु सिवु एवं सह इनका अवयव सकार को षकार नहीं होता है चङ् पर में रहते। स्तम्भु रोधनार्थक सौत्र धातु है। षिवु तन्तुसन्तान में है, षण मर्षण में है। स्तम्भ में 'स्तम्भेः' सूत्र से षकार प्राप्त हुआ। एवं अन्यों में 'परिनिविभ्यः' से षकारादेश प्राप्त था। लुङ् में अतस्तम्भत् रूप हुआ। सिव् का लुङ् में 'असीषिवत्' रूप हुआ। सह का असीषहत् रूप है। अट् का लुङ् में टि का द्वित्व से आटिटत् रूप इनण्यन्त धातुओं का हुआ। अश ण्यन्त का आशिशत् रूप हुआ।

एध धातु से णिच् लुङ् चङ् भा के योग में आट् आगम का अभाव 'एध् इ अत्' यहां 'णौ चङि' सूत्र से ह्रस्व प्राप्त है, एवं 'चङि' स 'धि' शब्द का द्वित्व प्राप्त है। द्वित्व अन्तरङ्ग है, उपधा ह्रस्व बहिरङ्ग है, अतः अन्तरङ्गत्व के कारण द्वित्व प्रथम होना चाहिये किन्तु यहां बहिरङ्ग उपधाह्रस्व एकार का इकार हुआ। तत्पश्चात् धिका द्वित्व हुआ 'इदिधत्' रूप बना।

यहां शङ्का होती है कि अन्तरङ्ग शास्त्र एवं बहिरङ्ग शास्त्र दोनों एक काल में प्राप्त हो वहां 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' परिभाषा 'ओमाङोश्च' के आङ्ग्रहण से ज्ञापित है उससे अन्तरङ्ग द्वित्व कर्तव्य होने पर बहिरङ्ग उपधाह्रस्व असिद्ध होना चाहिये। यहां परिभाषा से विरुद्ध कार्य क्यों हुआ? इस शङ्कानिरासार्थ ज्ञापन करते हैं कि "बहिरङ्ग भी उपधाह्रस्व अन्तरङ्ग द्वित्व से प्रथम होता है इस ज्ञाप्यार्थ में प्रमाण–अपनयनार्थक ओणृ धातु ण्यन्त का लुङ् में 'आ ओणृ इ अत्' यहां उपधाह्रस्व के वारणार्थ—अर्थात् 'णौ चङि' सूत्र की अप्रवृत्ति के लिए ऋकारानुबन्ध किया है, ऋदित् प्रयुक्त 'नाग्लोपि' सूत्र से उपधा ह्रस्व का प्रतिषेध हुआ। यदि अन्तरङ्ग द्वित्व उपधाह्रस्व जो बहिरङ्ग है उसके पूर्व होता तो 'चङि' में 'अजादेर्द्वितीयस्य' का सम्बन्ध करके 'णि' शब्द का द्वित्व करने के बाद उपधा में ओकार नहीं है ह्रस्व प्राप्त ही नहीं है। पुनः ओणृ में ऋकारानुबन्ध व्यर्थ होता है वह ज्ञापन करता है कि "बहिरङ्गोऽपि उपधाह्रस्वो द्वित्वात् प्रागेव" अतः इदिधत् रूप पूर्वोक्त उचित ही है।

विमर्श - "असति बाधके प्रमाणानां सामान्ये पक्षपातः" = प्रबल प्रमाण के अभाव में ज्ञापक सामान्यापेक्ष ही होता है यह न्याय लाघवमूलक है अतः इस विशेष वचन का बोधन कर ओणृ का ऋदित् करण—"उपधाकार्यं द्वित्वात् प्रबलम्" = उपधानिमित्तकार्य द्वित्व से प्रबल है यही ज्ञाप्य वचन स्वीकार करना चाहिये। भगवान् भाष्यकार ने भी कहा है कि "यदयम् ओणेर्ऋदित्करणं करोति तज्ज्ञापयति आचार्यः —"उपधाकार्यं द्वित्वात् प्रबलमिति"।

मा भवान् प्र+इदिधत् यहां 'एत्येधत्यूठ्सु' से इध् में एकदेशविकृतन्याय से या आनुमानिक स्थान्यादेश भाव से एधृत्व बुद्धिकर के वृद्धि न हुई, वहां 'वृद्धिरेचि' से एच् का सम्बन्ध करके 'एजादि एधति' पर रहते वृद्धि विधान है। अतः वृद्धि की अप्राप्ति से 'आद्गुणः' सूत्र से गुण हुआ 'प्रेदिधत्' माङ् योग से आट् आगम न हुआ। एकदेशविकृतन्याय से एधृत्व आ सकता है किन्तु एजादित्व समानाधिकरण एधृत्व नहीं आ सकता है। च्छित्रपुच्छत्वविशिष्ट में श्वत्व आ सकता है किन्तु पुच्छत्वविशिष्ट श्वत्व का आनयन नहीं हो सकता है। विकृतावयव निबन्धकार्य में उस न्याय का विषय नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'औन्दिदत्'—ण्यन्त उन्दि से लुङ् चङ् आट्—'आ उन्द् इ अत्' यहां 'चङि' सूत्र से द्वित्व द्वितीयैकाच् घटित का प्राप्त है वह वृक्ष प्रचलन न्याय से 'न्दि' का प्राप्त हुआ किन्तु अच् से पर संयोगादि नकार दकार रेफ का द्वित्व नहीं होता है एतदर्थक सूत्र है 'नन्द्राः संयोगादयः' इस से नकार रहित 'दि' का द्वित्व से 'औन्दिदत्' रूप हुआ णिका लोप है यहां। अद्ट् धातु से णिच् चङ् में 'आ अद्ट् इ अत्' यहां यह धातु दोषध है, ष्टुत्व से दकार को टकारादेश होता है। वह ष्टुत्व असिद्ध होने से संयोगादि दकार रहित केवल चङि से 'टि' का द्वित्व' से एवं आटश्च वृद्धि णिलोप से 'आट्टित्' रूप हुआ, दोषध न मानते तो 'ट्टि' का द्वित्व से 'आटिट्टत्' अनिष्टरूपापत्ति होती। पूजार्थक ण्यन्त अर्च का लुङ् में आ अर्च् इ अत् यहां रेफरहित केवल 'चि' मात्र का द्वित्व हुआ आचिचत्।

उब्ज धातु सरलता जनक व्यापारार्थक है, यह धातुपाठ में उपदेशावस्था में दकार उपधा विशिष्ट 'उद्ज्' है। 'भुजन्युब्जौ' सूत्र में 'उब्ज' निपातन के कारण दकार को वकारादेश होता है। वह वकारादेश अन्तरङ्ग होते हुए भी द्वित्व के विषय में पूर्व प्रवृत्त नहीं होता है, 'आ उद्ज् इ अत्' लुङ् में संयोग के आदि दकार का 'नन्द्राः' सूत्र से द्वित्वनिषेध होने से 'जि' का चङि से द्वित्व कर पश्चात् दकार को वकारादेश आटश्च वृद्धि णिलोप से 'ओब्जिजत्' रूप हुआ। अन्तरङ्ग दकार को वकार प्रथम द्वित्व के विषय में होता तो दकारोपध पाठ इसका करना व्यर्थ होता। वह अन्तरङ्ग परिभाषा की प्रथम अप्रवृत्ति बोधन करता है, अर्थात् अन्तरङ्ग परिभाषा अनित्यत्व के कारण यहां प्रवृत्त नहीं होती है। इसको दकारोपध न मानते तो 'औजिब्जत्' ऐसा अनिष्ट रूप होता।

विमर्श—'अभ्युद्गः' 'समुद्गः' उब्जिता आदि प्रयोग सिद्धि के लिए 'उब्ज' निर्देश से इस प्रकार क्रम का समाश्रयण होता है—'स्तोः श्ना' सूत्र के अग्रिम में श्चुना के योग में उद्ज् का दकार को वकारादेश होता है।

अदिद्रपत—यहां अच् से पर न होने से दकार का भी द्वित्व हुआ।

विमर्श- अट् आगमविधायक सूत्र में लकार के प्रश्लेष से लकारादि लुङ् लङ् लङ् में धातु से अडागम लावस्था में ही विधान होता है अतः अच् से पर है यहां 'नद्राः' निषेध की प्रवृत्ति क्यों नहीं हुई ?, 'नद्राः' में धातु का सम्बन्ध से धातुसंज्ञा समकालिक आदि अच् से पर संयोगादि नकार दकार रेफ का द्वित्व निषेध होता है। अतः यहां निषेध का अविषय ही है।

२५८२ रभेरशब्लिटोः ७।१।६३।

रभेर्नुम् स्यादपि न तु शब्लिटोः। अररम्भत्।

रभ् धातु को अच् पर रहते नुम् आगम होता है नुम् आगम होता है, किन्तु शप् एवं लिट् पर में रहते नुम् नहीं होता है। लुङ् में ण्यन्त रभ का अररम्भत् नकार का 'नश्चापदान्तस्य' से अनुस्वार एवं परसवर्ण हुआ। यहां 'रधिजभोः' सूत्र से अच् की, 'इदितः' सूत्र से नुम् की अनुवृत्ति है। अच् पर न होने से 'आरब्धम्' यहां नुम् न हुआ, 'रमते' 'रेभे' यहां शप् एवं लिट् परत्व के कारण नुम् न हुआ।

२५८३ लभेश्च ७।१।६४।

अललम्भत्। 'हेरचङि' इति सूत्रे 'अचङि' इत्युक्तेः कुत्वं न। अजीहयत्। अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तॄस्पशाम्। अससरत्। अददरत्। तपरत्वसामर्थ्यादत्र लघोर्न दीर्घः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लभ धातु को अच् पर रहते नुम् आगम होता है, किन्तु शप् या लिट् पर रहते नुम् नहीं होता है। यह योगविभाग 'आतो यि' सूत्र में 'लभ्' की केवल अनुवृत्ति के लिए किया है। ण्यन्त 'हि' धातु का लुङ् में 'अजीहयत्' रूप हुआ यहां अभ्यास से पर 'हि' के इकार का कुत्व 'हेः' सूत्र से न हुआ, क्योंकि उसमें 'अचङि' पर्युदास है 'चङि कुत्वं न'। ण्यन्त स्मृ एवं दृ का लुङ् में चङि से द्वित्व का अभ्यास जो अकारादेश 'अत स्मृ दृ' सूत्र से होकर असस्मरत। अददरत। अत् में तकारोच्चारण सामर्थ्य से यहां 'दीर्घो लघोः' सूत्र से दीर्घ न हुआ।

२५८४ विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः ७।४।९६।

अभ्यासस्यात्वं वा स्यात् चङ् परे णौ। अववेष्टत्। अविवेष्टत्। अचचेष्टत्। अचिचेष्टत। भ्राजभासेत्यादिना वोपधाह्रस्वः। अबिभ्रजत्। अबभ्राजत्। ॐकाण्यादीनां वेति वक्तव्यमॐ। ण्यन्ताः कण रण भण श्रण लुप हेठः काण्यादयः षट् भाष्ये उक्ताः। ह्रायिवाणिलोटिलोपयश्चत्वारोऽधिका न्यासे। चाणिलोटी अप्यन्यत्र। इत्थं द्वादश। अचीकणत्। अचकाणत्।

चङ् है पर में जिसको ऐसा जो णिच् उस पर में रहते वेष्ट एवं चेष्ट धातु की अभ्यास को अत्व विकल्प से होता है। अकार पक्ष में अववेष्टत। अकाराभाव में अविवेष्टत इसी तरह अचचेष्टत। अचिचेष्टत। ण्यन्त भ्राज का लुङ् में 'भ्राजभास' सूत्र से विकल्प करके उपधा ह्रस्व हुआ है। ह्रस्व पक्ष में सन्वद्भाव से 'सन्यतः' से अभ्यास को इकारादेश से अबिभ्रजत। पक्ष में ह्रस्वाभाव में लघु परक अभ्यासाभाव से सन्वद्भाव के अभाव से इकारादेश का अभाव हुआ—अबभ्राजत्।

काण्यादि धातुओं को उपधा ह्रस्व विकल्प करके होता है। ण्यन्त कण–रण–भण–श्रण–लुप–हेठ वे छः भाष्य में काण्यादि कहे गये है। न्यासकार ने ह्रायि–वाणि–लोटि–लोपि वे चार अधिक है। दो ओर है—चाणि एवं लोटि। इस प्रकार सब मतों के संग्रह करने से १२ काण्यादि धातु हुए। ह्रस्वपक्ष में ण्यन्त कण् का सन्वद्भाव इकारादेश दीर्घ से अचीकणत्। पक्ष में ह्रस्वाभाव से लघु परक अभ्यासाभाव से सन्वद्भाव के अभाव से अचकाणत्।

२५८५ स्वापेश्चङि ६।१।१८।

ण्यन्तस्य स्वापेश्चङि सम्प्रसारणं स्यात्। असूषुपत्।

चङ् पर रहते ण्यन्त स्वप् धातु के अवयव चण् स्थान में सम्प्रसारण होता है। सम्प्रसारण पूर्वरूप करके चङ् में द्वित्व कर असुषुपत यहां अभ्यासोत्तर आदेश रूप सकार को 'आदेशप्रत्यययोः' से षकारादेश हुआ।

२५८६ शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् ७।३।३७।

णौ युकोऽपवादः। शाययति। ह्वाययति।

णिच् पर रहते तनूकरणार्थक शो, छेदनार्थक छो, अन्त कर्मार्थक षो, स्पर्धार्थक ह्वेञ, संवरणार्थक व्येञ्, तन्तुसन्तानार्थक वेञ्, पानार्थ अलुक् विकरणक पा, इन धातुओं को युक् आगम होता है। यह सूत्र पुक् आगम 'अतिं' सूत्र से प्राप्त का बाधक है। शो से णिच्, 'आदेच' सूत्र से आकारादेश युक् शाययति। ह्वाययति।

२५८७ ह्वः सम्प्रसारणम् ६।१।३२।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्परे चङ्परे च णौ ह्वः सम्प्रसारणं स्यात्। अजूहवत्। अजुहावत्।

सन् परक एवं चङ् परक णिपर रहते ह्वेञ् धातुका सम्प्रसारण होता है। अजूहवत्। ह्रस्वाभाव पक्षमें अजुहावत्। यहां सम्प्रसारण इससे हुआ। न्यासकारमतमें पठित ह्वायि आदि चार धातुओं की उपधा का ह्रस्व विकल्प से होता है।

२५८८ लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य ७।४।४।

पिबतेरुपधाया लोपः स्यादभ्यासस्य ईदन्तादेशश्च चङ्परे णौ। अपीप्यत्। अर्तिह्री इति पुक्, अर्पयति। ह्वेपयति। क्लेपयति। रेपयति। यलोपः। क्नोपयति। क्ष्मापयति। स्थापयति।

पाधातुकी उपधाका लोप होता है एवं अभ्यास को इत् अन्तादेश होता है, चङ्परक णिपरमें रहते। अपीप्यत्। ऋ इ अति पुक् गुणादि से अर्पयति। व्लेपयति। क्ष्मापयति। स्थापयति। ह्री वरणार्थक है। क्षमार्थक रीङ्। शब्दार्थक क्नुयी। विधूननार्थक क्ष्मायी है। 'अनभ्यासविकारे' कथन से यहां अभ्यास अनर्थक है तो भी 'अलोऽन्त्यस्य' सूत्रकी प्रवृत्ति हुई अत इकार अन्त्य को होता है। 'अपीप्यत्' यहां 'द्विर्वचनेऽचि' निषेधसे लोप को बाधकर पाय् का द्वित्व हुआ। स्थानिवद्भावपक्ष में स्थानिद्वारा पाय्का द्वित्व हुआ। यहां अग्लोपित्वके कारण एवं लघुपरक अभ्यासत्वाभाव के कारण सन्वद्भावादि अप्राप्ति से इकारादेश विधान है।

२५८९ तिष्ठतेरित् ७।४।५।

उपधाया इदादेशः स्याच्चङ्परे णौ। अतिष्ठिपत्।

चङ्परक णिपर रहते स्था धातुकी उपधाको इत् आदेश होता है। अतिष्ठिपत् अ स्थाप इ अत्, इदादेश द्वित्वादि हुए।

२५९० जिघ्रतेर्वा ७।४।६।

अजिघ्रिपत्। अजिघ्रपत्। उर्ऋत्। अचीकृतत्। अचिकीर्तत्। अवीवृतत्। अववर्तत्। अमीमृजत्। अममार्जत्। ॐ पाते र्णौ लुग्वक्तव्यः। पुकोऽपवादः। पालयति॥

चङ्परक णिपर रहते घ्रा धातुकी उपधाको इत् आदेश विकल्पसे होता है। ग्रन्थग्रहणार्थक घ्रा धातु से णिच् पुगादि घ्रापयति। ण्यन्त पुगन्त से लुङ् में इत्व द्वित्वादि—अजिघ्रिपत्। इत्वाभावमें अभ्यास को सन्यतः इत्व यहां घ्राप् का द्वित्व। अजिघ्रपत्। 'अचीकृतत्' यहां 'उर्ऋत्' से ऋकार को ऋकारादेश हुआ विकल्प से पक्षमें अचिकीर्तत्। यहां 'उपधायाश्च' से इत्व, रपरत्व, उपधायां च से दीर्घ हुआ अवीवृतत्। ऋकारादेश। पक्षमें अववर्तत्। अमीमृजत्। मृजेर्वृद्धिः—अममार्जत्। णिच् परमें रहते पाधातुको लुक् का आगम होता है। पुक् का यह बाधक है। पालयति।

२५९१ वो विधूनने जुक् ७।३।३८।

वातेर्जुक् स्याण्णौ कम्पेऽर्थे। वाजयति। कम्पे किम्, केशान् वापयति। विभाषा लीयतेः।

कम्प अर्थ में वा धातु को णिच् पर में रहते जुक् आगम होता है। वाजयति। कम्प जहां नहीं वहां आदन्त लक्षण पुक् होता है। केशों का मुण्डनार्थ केशान् वापयति। यहां "लुग्विकरणाऽलुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्यैव ग्रहणम्" इस परिभाषा से अलुग् विकरण 'ओ वैं शोषणे'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का ही ग्रहण होता है, 'वा गतिगन्धनयोः' का नहीं। लक्षणप्रतिपदोक्त परिभाषा इस प्रकरण में अप्रवृत्त है। इस पक्ष में वामनाचार्य भी अनुकूल है। 'वज गतौ' से 'वाजयति' रूप की सिद्धि होती पुनः इस प्रयोगार्थ इस सूत्र का निर्माण पुक् की प्रवृत्ति से. 'धापयति' रूप की निवृत्ति फल है। अर्थात् युक् की निवृत्त्यर्थ सूत्रारम्भ किया है। यहां 'वायतेर्नुक्' ऐसा सूत्र उचित था।

आत्व विधायक पूर्व से वर्णित ता स्मरण कराते हैं 'विभाषा लीयतेः' यहां लीयते यकानिर्देश है श्यन् का नहीं यह सब प्रथम कह चुके हैं। अन्यथा 'लीङ्' ऐसा ही कहते। अतः ली एवं लीङ् उभय को आत्व होता है।

२५९२ लीलोर्नुक् लुकावन्यतरस्यां स्नेह-निपातने ७।३।३९।

लीयते लातेश्च क्रमान्नुग्लुकावागमौ वा स्तो णौ स्नेहद्रवे। विलीनयति। विलापयति। विलाययति। विलालयति विलापयति वा घृतम्। ली ई इति ईकार प्रश्लेषादात्वपक्षे नुक् न। स्नेहद्रवे किम्, लोहं विलापयति। विलाययति। ॐ प्रलम्भनाभिभवपूजासु लियो नित्यमात्त्वमशिति वाच्यम् ॐ।

स्नेहद्रव में ली एवं ला को क्रमशः नुक् आगम विकल्प से होते हैं। यहां लीङ् श्लेषणे दिवादिः, ली श्लेषणे क्र्यादिः। ली ग्रहण से ला आदाने अदादि कृत आत्व वाले ली लीङ् तीनों का ग्रहण होता है। निरनुबन्धक ग्रहण परिभाषा 'वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ' के डित् से ज्ञापित है वह ज्ञापक सजातीय की अपेक्षा करता है अतः प्रत्ययग्रहण विषया ही है—यहां अप्रवृत्त है वह। अतः लीङ् का भी ग्रहण हुआ। अर्थात् प्रत्ययनिष्ठविधेयतानिरूपिता उद्देश्यता युक्त स्थल में वह प्रवृत्त होती है। यह तो आगमविधायक होने से वह यहां न लगी। विली नयति = इकारान्त ली एवं लीङ् का नुक् आगम में यह रूप है। विलाययति = नुक् के अभाव में उनका ही रूप है। विलालयति = आत्व युक्त ली एवं लीङ् को लुक् में रूप है। विलापयति = लुक् में अभाव पक्ष में आकारान्त उनका ही रूप है। लोहं विलापयति—नुक् एवं लुक् के अभाव में आत्व पक्ष में युक् आत्व केअभाव में वृद्धि एवं आय् आदेश हुआ।

शित् भिन्न प्रत्यय पर में रहते प्रलम्भन, अभिभव, पूजा में ली धातु को नित्य आकार आदेश होता है।

२५९३ लियः संमाननशालिनीकरणयोश्च १।३।७०।

लीङ्लियोर्ण्यन्तयोरात्मनेपदं स्यादकर्तृगेऽपि फले पूजा-अभिभवयोः प्रलम्भने चार्थे। जटाभिर्लापयते। पूजामधिगच्छतीत्यर्थः। श्येनो वर्तिकामुल्लापयते = अभिभवतीत्यर्थः। बालमुल्लापयते = वञ्चयतीत्यर्थः।

पूजा अभिभव एवं प्रलम्भन अर्थ में क्रियाजन्य फल कर्तृगामि रहने पर ण्यन्त लीङ् एवं ली धातु से पर स्थित लकार के स्थान में आत्मनेपद होता है। अर्थात् तङादि प्रत्यय होते है। जटाओं से सत्कृति = सत्कार को वह प्राप्त करता है इस अर्थ में जटाभिर्लापयते। आत्व एवं आत्मनेपद यहां हुआ। बाज वर्तिका को अभिभूत करता है श्येनो वर्त्तिकामुल्लापयते। बालक को व्यञ्जित करता है—ठगता है बालमुल्लापयते = वञ्चयति। प्रलम्भनम् = वञ्चनम्। लीयते, लुनाति यहां शित्परत्व के कारण आत्व का अभाव हुआ।

२५९४ बिभेतेर्हेतुभये ६।१।५६।

बिभेतेरेच आत्वं वा स्यात्प्रयोजकाद् भयं चेत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयोजक से यदि भय प्रतीयमान रहे तो भी धातु के एच् (ओ) को आत्व होते है।

२५९५ भीस्म्योर्हेतुभये १।३।६८।

ण्यन्ताभ्यामाभ्यामात्मनेपदं स्याद्धेतोश्चेद्भयस्मयौ। सूत्रे भयग्रहणं धात्वर्थोपलक्षणम्। मुण्डो भापयते।

प्रयोजक से अर्थात् हेतु से भय एवं स्मय गम्यमान रहते ण्यन्त भी-धातु एवं ण्यन्तस्मि के उत्तर स्थित लकार के स्थान में आत्मनेपद संज्ञक तङादिका प्रयोग करना चाहिये। सूत्र में भयग्रहण स्मि धातु के स्मयरूपार्थ का भी उपलक्षण है। मुण्डो भापयते। यहां 'आदेच' सूत्र से एच् एवं आत् की अनुवृत्ति है। विभाषा लीयतेः से विभाषा की 'चिस्फुरोः' से णि की अनुवृत्ति है।

२५९६ भियो हेतुभये षुक् ७।३।४०।

भी ई इति ईकारः प्रश्लिष्यते। ईकारान्तस्य भियः षुक् स्यात् णौ हेतुभये। भीषयते।

णिच् पर रहते हेतु से भय होने पर ईकारान्त 'भी' धातु को षुक् आगम होता है। भी में ईकारान्त का प्रश्लेष से श्रूयमाण ईकारान्त से षुक् होता है। यथा भीषयते।

२५९७ नित्यं स्मयतेः ६।१।५७।

स्मयतेरेचो नित्यमात्वं स्याण्णौ हेतोः स्मये। जटिलो विस्मापयते। हेतोश्चेद् भयस्मयावित्युक्तेर्नेह—कुञ्चिकयैनं भाययति। विस्माययति। कथं तर्हि "विस्मापयन् विस्मितमात्मवृत्ताविति", मनुष्यवाचेति करणादेव हि तत्र स्मयः। अन्यथा शानजपि स्यात्। सत्यम्, विस्माययन्नित्येव पाठ इति साम्प्रदायिकाः। यद्वा, मनुष्यवाक् प्रयोज्यकर्त्री विस्मापयते तया सिंहो विस्मापयन्निति ण्यन्ताण्णौ शतेति व्याख्येयम्।

प्रयोजक से स्मय गम्यमान रहे तो स्मि धातु के एच् के स्थान में नित्य आकार होता है णिच् पर में रहते। जटिलो विस्मापयते। यहाँ आत्मनेपद, आत्व, षुक् हुआ, यहां जटिल प्रयोजक कर्ता है। हेतु सम्बन्धि भय तो अव्यावर्तक है अतः हेतोः इति पञ्चम्यन्त से भय का समास है प्रयोजकात् स्मय एवं भय की प्रतीतिरूप अर्थ की प्रतीति हुई है। प्रयोजक से भय एवं स्मय ऐसा कहने पर कुञ्चिकया एनं भाययति यहां आत्व आत्मनेपद इनका अभाव हुआ। एवं कुञ्चिकया एनं विस्माययति।

विमर्शः—हेतु से स्मय प्रतीयमान रहते ही आत्व एवं आत्मनेपद होता है, जहां करण से स्मय गम्यमान रहे वहां आकारादेश के अभाव से षुक् आगम दुर्लभ होने से 'विस्मापयन्' यह प्रयोग नहीं होना चाहिये। महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश में "विस्मापयन् विस्मितमात्मवृत्तौ" ऐसा प्रयोग किया है वह किस प्रकार सङ्गत होगा? यहां मनुष्यवाक् करण कारक ही है हेतु नहीं है। अन्यथा आत्मनेपद होकर शतृ आत्मनेपद में नहीं होता है अतः शानच् होने लगेगा।

इस शङ्का के निरासार्थ व्याकरण शास्त्र की मर्यादा के पालक आचार्यगण कहते हैं कि कवि वाक्य में 'विस्माययन्' यही पाठ है। यह एक समाधान हुआ। अथवा 'सिद्धस्य गतिश्चिन्तनीया' अधिकतर पाठ 'विस्मापयन्' ऐसा ही मिलता है एतदर्थ यत्न अपेक्षित है वह यह है—मनुष्यवाक्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयोज्यस्य = राज्ञः कर्त्री = अर्थात् प्रयोजककर्त्री तात्पर्य यह है कि राजा आश्चर्यान्वित होता है उसमें प्रेरिका मनुष्यवाक् वही प्रयोजिका है। अतः आत्व प्रवृत्त हुआ।

"राजा विस्मयते, तं राजानं मनुष्यवाक् विस्मापयते तया सिंहो विस्मापयन्" राजा आश्चर्य चकित होता है उस राजा को मनुष्यवाणी आश्चर्यान्वित करती है प्रथम णिच् में हेतु मनुष्यवाक् ही है, अतः आत्व पुक् हुआ। तया = वाण्या सिंह इति द्वितीय णिच्, इसमें प्रेरक = प्रयोजक कर्ता सिंह है। सिंह विस्मापित कराता है यहां णिजन्त से णिच् अनन्तर शतृप्रत्यय से 'विस्मापयन्' की सिद्धि हुई।

२५९८ स्फायो वः ७।३।४१।

णौ। स्फावयति।

णि पर में रहते स्फाय् को वकार अन्तादेश होता है। स्फावयति।

२५९९ शदेरगतौ तः ७।३।४२।

शदेर्णौ तोऽन्तादेशः स्यान्न तु गतौ। शातयति। गतौ तु गाः शादयति गोविन्दः। गमयतीत्यर्थः।

णि पर में रहते शद् धातु को तकारान्त आदेश होता है—गति में नहीं इसकी प्रवृत्ति होती है। शातयति। गतिमें शादयति = श्रीकृष्ण गौओं को चलाते हैं।

२६०० रुहः पोन्यतरस्याम् ७।३।४३।

णौ। रोपयति-रोहयति।

णि पर में रहते रुह् धातु को विकल्प से पकारागम होता है।

२६०१ क्रीङ्जीनां णौ ६।१।४८।

एषामेच आत्वं स्याण्णौ। क्रापयति। अध्यापयति। जापयति।

णि परमें रहते क्री, इङ एवं जि इन धातुओं का आकार अन्त्यादेश होता है। डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये, इङ् अध्ययने, जि जये, णिच् आत्व पुक् = क्रापयति। अध्यापयति। जापयति।

२६०२ णौ च संश्चङोः २।४।५१।

सन् परे चङ्परे च णौ इङो गाङ् वा स्यात्। अध्यजीगपत्। अध्यापिपत्।

सन् परक या चङ्परक णिपर रहते इङ् धातुको विकल्पसे गाङ् आदेश होता है। 'अधि अ गा प् इ अ त्' गाप् का द्वित्व अभ्यासादि कार्य उत्तरखण्डस्थ आकार का ह्रस्व सन्वद्भाव इकारादेश दीर्घ यण् अध्यजीगपत्। पक्ष में अध्यापिपत्।

२६०३ सिध्यतेरपारलौकिके ६।१।४९।

ऐहलौकिकेऽर्थे विद्यमानस्य सिध्यतेरेच आत्वं स्याण्णौ। अन्नं साधयति= निष्पादयतीत्यर्थः। अपारलौकिके किम्, तापसः सिध्यति = तत्त्वं निश्चिनोति। तं प्रेरयति सेधयति तापसं तपः।

ऐहलौकिक अर्थ में विद्यमान सिध् धातुके एच् के स्थानमें आकार आदेश होता है णि परमें रहते। अन्न को पाकक्रिया से निष्पन्न करता है = अन्नं साधयति। पारलौकिकमें तपस्वी तत्त्व को निश्चय करता है उसको तप प्रेरणा करता है वहां सेधयति तापसं तपः। तापस की कर्मत्व से द्वितीया हुई। आत्मविषय के तत्त्व निश्चय वह परलोक में उपयुक्त है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२६०४ प्रजने वीयतेः ६।१।५५।

अस्यैच आत्वं वा स्याण्णौ प्रजनेऽर्थे। वापयति वाययति वा गाः पुरोवातः। गर्भं ग्राहयतीत्यर्थः। ऊदुपधाया गोहः। गूहयति।

गर्भग्रहण में वी धातु के एच् को विकल्पसे आत्व होता है णिपरमें रहते। यहां 'वीतेः' कहते यक् से 'वीयतेः' निर्देश किया है अतः वी गतिआद्यर्थ क एवं 'वेञ्' उभयका ग्रहण है। गौ गर्भ ग्रहण करती है उसको गर्भ ग्रहण करवाता है वह यहां वापयति आत्वकर पुक् आकारन्तलक्षण हुआ। पक्षमें वाययति। 'गूहयति' यहां गुहधातु की उपधा में विद्यमान ऊकार को ऊकार हुआ।

२६०५ दोषो णौ ६।४।९०।

दुष इति सुवचम्। दुष्यतेरुपधाया ऊत् स्याण्णौ। दूषयति।

दुष धातुकी उपधा को ऊकारादेश होता है, णिपरमें रहते। दूषयति। दुष वैकृत्ये = विकारे। दोषः यहां णिच् नहीं अतः ऊकारादेश न हुआ।

२६०६ वा चित्तविकारे ६।४।९१।

विरागोऽप्रीतता। चित्तं दूषयति दोषयति वा कामः। मितां ह्रस्वः। भ्वादौ चुरादौ च मित उक्ताः। घटयति। जनीजृष्—जनयति। जरयति। जृणातेस्तु जारयति। ❀ रञ्जेर्णौ मृगरमणे नलोपो वक्तव्यः। मृगरमणम् = आखेटकम्। रजयति मृगान्। मृगेति किम्, रञ्जयति पक्षिणः। रमणादन्यत्र तु रञ्जयति मृगांस्तृणदानेन। चुरादिषु झषादिश्चिञ्। चिस्फुरोर्णौ चपयति चययतीत्युक्तम्। चिनोतेस्तु चापयति। चाययति स्फारयति। स्फोरयति। अपुस्फरत्। अपुस्फुरत्।

चित्त की विभक्ति अर्थ में दुष धातु की उपधा को णिच् पर में रहते अकार आदेश होता है। विराग का अर्थ प्रीति का अभाव है। अप्रीतता समझना उचित है। चिती संज्ञाने से क्तप्रत्यय से चित्त शब्द निष्पन्न है। काम चित्त को दूषित करता है अर्थात् सन्ध्यावन्दनादि पवित्र कार्यों से चित्त विरक्त होता है – दूषयति दोषयति वा कामः। ऊकारादेश, पक्षमें लघूपध गुण।

भ्वादि एवं चुरादि गण में मित् धातु बताये हैं उन मित्संज्ञकों का णिच् पर में रहते ह्रस्व 'मितां ह्रस्वः' से होता है। चेष्टार्थक ण्यन्त घट की उपधा वृद्धि से निष्पन्न आकार का ह्रस्व से 'घटयति'रूप सिद्ध हुआ। 'जनीजृष्' से मित्संज्ञा कर ह्रस्व से जनयति जरयति प्रयोग है। अमित् संज्ञक क्र्यादि जृका जारयति मृगरमण = मृगया = आखेटन अर्थ में रञ्ज के णि पर में रहते नकार का लोप होता है। मृगान् रजयति। मृगरमण से भिन्न अर्थ में रञ्जयति पक्षिणः। यहां ग्रहण स्मरण मारणादि जनक व्यापार विषय मृग होते हैं उन मृगों को पूर्वोक्त व्यापार विषय को करता है वह, यहां नलोपाभाव हुआ। रञ्जयति मृगान् तृणदानेन = यहाँ हरिणों को तृण के दानसे प्रसन्न वह करता है। यहां भी नलोप का अभाव आखेटन भिन्नार्थ होने से न हुआ।

चुरादि में झषादि के मध्य में चिञ् धातु है उसको 'चिस्फुरोर्णौ' से वै० आत्व युक् ह्रस्व चपयति। आत्वाभाव में वृद्धि ह्रस्व चपयति। स्वादिगण पठित चिञ् धातु ण्यन्त में विकल्प अकारादेश से चापयति। चापयति। यह मित् नहीं अतः ह्रस्वाभाव है। स्फारयति। स्फोरयति वै० आत्व है। ण्यन्त के लुङ् में इसका रूप विकल्प आत्व से—अपुस्फरत् अपुस्फुरत् दो रूप हुए। यहां स्फुर् का द्वित्व हुआ, उसके बाद आत्व वै० हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१६०७ उभौ साभ्यासस्य ८।४।२१।

साभ्यासस्यानितेरुभौ नकारौ णत्वं प्राप्नुतो निमित्ते सति। प्राणिणत्।

'रषाभ्याम्' सूत्र में षष्ठ्यन्त 'नः' यहां प्रथमाद्विवचनान्तत्व से विपरिणमन हुआ है।

विमर्श—उपसर्ग में स्थित रेफ से पर रहने पर अभ्यास में स्थित एवं अभ्यास के उत्तर खण्ड में स्थित दोनों अन धातु के नकार को णकार आदेश होता है। प्र अन् इ अत् लुङ् में चङि से अजादि धातु के द्वितीय एकाच् इकार तद् विशिष्ट वृक्षप्रचलन न्याय से 'नि' का द्वित्व कर पश्चात् नकार द्वय का एक ही काल में द्वित्व 'उभौ' ग्रहण से हुआ। 'प्राणिणत्'। यहां 'साभ्यासस्य' इतना ही सूत्र करते तो साहित्यमात्र विवक्षित होता। तुल्ययोग नहीं ऐसी परिस्थिति में पर्याय से णकार होता एक साथ एक समय में णकारद्वय घटित रूपार्थ यहां 'उभौ' ग्रहण है। यहां तुल्य योग की अविवक्षा में "तेन सहेति तुल्ययोगे" से समास ही न होता 'साभ्यासस्य' प्रयोग का अभाव होता अतः अवश्यमेव तुल्ययोग की विवक्षा है, पुनः 'उभौ' ग्रहण क्यों किया यह शङ्का तो न करनी चाहिये, वहां 'सकर्मकः' 'सलोमकः' आदि की सिद्धि के लिए तुल्ययोग वचन समास विधायक में प्रायिक है यह प्रथम कह चुके हैं। साभ्यासस्य यह अन् का विशेषण है, इससे सिद्ध यह हुआ कि द्वित्वनिष्पन्न समूह में उत्तर खण्ड में ही धातुत्व है, न पूर्व खण्ड में न समुदाय में। इस व्याख्यान में लक्ष्यानुसारि व्याख्यान ही शरण है।

यहां कैयट मत यह है—सूत्र में 'उभौ' ग्रहण न करने पर साभ्यास अन् के नकार को णत्व विधान सामर्थ्य से यहां 'पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने' का समाश्रयण नहीं होता है अतः अकृत-णत्व युक्त 'नि' शब्द का द्वित्व करने के पश्चात् प्र उपसर्ग से अनन्तर अन् का प्रथम नकार को ही णत्व 'अनितेः' कर देगा यह सूत्र व्यवहित अभ्यासोत्तर खण्ड घटक नकार को णकारार्थ होगा यह सूत्र जो व्यवहित नकार को णत्वार्थ है वह तक्रकौण्डिन्य न्याय से 'अनितेः' का बाधक होगा। अतः अभ्यास घटक नकार अव्यवहित को णत्व नहीं ही होगा उभय नकार को णत्वार्थ 'उभौ' ग्रहण है।

२६०८ णौ गमिरबोधने २।४।४६।

इणो गमिः स्याण्णौ। गमयति। बोधने तु प्रत्याययति। इण्वदिकः अधि-गमयति। हनस्तोऽचिण्णलोः। हो हन्तेरिति कुत्वम्। घातयति।

णिपर में रहते इण् को गम् आदेश होता है अबोधन अर्थ में, गमयति। बोधन में तो आययति प्रति+आययति यण् प्रत्याययति=बोधयति इत्यर्थः। इण् धातु के समान इक् को भी कार्य होता है। अधिगमयति। ण्यन्त हन् धातु के नकार को तकारादेश होता है सूत्र है 'हनस्त' इति एवं 'हो हन्तेः' से कुत्व कर घातयति प्रयोग हुआ—प्राणवियोगानुकूलव्यापारानुकूल व्यापार अर्थ हुआ। स तं घातयति।

❀ ईष्यतेस्तृतीयस्येति वक्तव्यम् ❀। तृतीयव्यञ्जनस्य तृतीयैकाच इति वाऽर्थः। आद्ये षकारस्य द्वित्वं वारयितुमिदम्। द्वितीये त्वजादेर्द्वितीयस्येत्य-स्यापवादतया सन्नन्ते प्रवर्तते। ऐष्ययत्। ऐषिष्यत्। द्वितीयव्याख्यायां णिजन्ताच्चङि षकार एवाभ्यासे श्रूयते, हलादिशेषात्। द्वित्वन्तु द्वितीयस्यैव, तृतीयाभावेन प्रकृतवार्तिकाप्रवृत्तेः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निवृत्तप्रेषणाद् धातोर्हेतुमण्णौ शुद्धेन तुल्योऽर्थः। तेन "प्रार्थयन्ति शयनोत्थितं प्रियाः" इत्यादि सिद्धम्। एवं सकर्मकेषु सर्वेषूह्यम्।

इति ण्यन्तप्रक्रिया

ईर्ष्य् धातु के तृतीय व्यञ्जन या तृतीय स्वरवर्ण का द्वित्व होता है। यहां प्रथम व्याख्यान का फल षकार का द्वित्व वारणरूप है। द्वितीय व्याख्यान का फल 'अजादेर्द्वितीयस्य' का अपवाद रूप है, सन्नन्त प्रक्रिया में—यथा-ऐर्ष्ययत्। ऐर्षिष्यत्। यहां प्रथम उदाहरण तृतीय व्यञ्जन के द्वित्व पक्ष में है। द्वितीय व्याख्या में ण्यन्त से चङ् कर द्वित्व करने पर हलादिशेष से अभ्यास में षकार ही शेष रहता है, यहां तृतीय एकाच् नहीं है अतः द्वितीय एकाच् घटित का ही द्वित्व हुआ—ऐर्षिष्यत् यह रूप हुआ। तृतीयैकाच् का उदाहरण सन्नन्त में ईर्ष्यिषिषति है। यहां केवल तृतीयव्यञ्जन का उदाहरण है।

प्रेरणा रूप अर्थ की निवृत्ति करके धातु से हेतुमति च से णिच् करने पर शुद्ध धात्वर्थ एवं ण्यन्त धात्वर्थ एक समा नहीं हुआ, शिष्टों ने कहा भी है—

"निवृत्तप्रेषणाद् धातोः प्राकृतेऽर्थे णिजुच्यते'। इति।

शयन क्रिया से उत्थित पति की स्त्रियाँ प्रार्थना करती हैं इस अर्थ में प्रार्थयन्ति प्रयोग हुआ। इसी प्रकार सर्व सकर्मक धातुओं में परस्मै पदार्थ ऊहा = कल्पना करनी चाहिये।

विमर्श—'आगर्वादात्मनेपदिनः' यह वचन प्रथम उक्त है उपयाच्ञा अर्थ में अर्थधातु आत्मनेपदी है अतः 'प्रार्थयन्ते' यह प्रयोग ही साधु है, न प्रार्थयन्ति इस शङ्का के समाधानार्थ ग्रन्थकार यत्न करते हैं कि णिजर्थ प्रेषण अर्थ की निवृत्ति कर हेतु में णिच् कर धात्वर्थ एवं ण्यर्थ समान यहां है प्रार्थनां कुर्वन्ति प्रार्थयन्ति यह परस्मैपद युक्त प्रयोग सिद्ध हुआ।

यहां परस्मैपदार्थ कोई अन्य समाधान करते हैं कि प्रार्थनं प्रार्थः भावे घञ्, तं कुर्वन्ति = प्रार्थयन्ति यह कहते हैं यह पक्ष उचित प्रतीत नहीं होता है क्योंकि धातुसंज्ञा का प्रयोजक = कारणभूत प्रत्यय-णिच्-आदि विवक्षित होने पर उपसर्गों का पृथक् करण होता है यह वक्ष्यमाण है। "उपसर्गसमानाकारं पूर्वपदं धातुसंज्ञाप्रयोजके प्रत्यये पृथक् क्रियते" इति यहां आमुक् आगम भी दुर्वार होगा यह भी दोष से यह मत उपेक्ष्य है। अथवा "निरङ्कुशाः कवयः" कविगण व्याकरण नियमरूपमर्यादा को उल्लंघन करने वाले कभी-कभी होते हैं। अतः प्रार्थयन्ते न कह कर प्रार्थयन्ति कहा है ऐसा भी कुछ लोक व्याख्यान का आश्रयण करते हैं।

पं० श्रीबालकृष्ण पञ्चोलि विरचित सविमर्श रत्नप्रभा में ण्यन्त प्रक्रिया समाप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ सन्नन्तप्रक्रिया

२६०९ धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३।१।७।

इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद् धातोः सन्प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम् ।

धातोर्विहितत्वादिह सन आर्धधातुकत्वम् । इट्, द्वित्वम् । सन्यतः । पठितुम् इच्छति पिपठिषति ।

कर्मणः किम्, गमनेनेच्छतीति करणान् मा भूत् । समानकर्तृकात् किम्, शिष्याः पठन्त्वितीच्छति गुरुः । वाग्रहणात् पक्षे वाक्यमपि ।

लुङ्सनोर्घस्लृ । 'एकाच उपदेशे' इति नेट् । सस्य तत्त्वम् । अत्तुमिच्छति जिघत्सति । 'ईड्यतेस्तृतीयस्य' इति यिसनोर्द्वित्वम् । इर्ड्यियिषति । ईर्ड्यिषिषति ।

इषधात्वर्थव्यापार से जन्य जो फल तदाश्रय जो कर्म तद्वाचक होते हुए इष् धात्वर्थव्यापारका जनक जो कर्ता वह है कर्ता जिसका ऐसे धातु से इच्छा में सन् प्रत्यय विकल्प से होता है । अथवा "इष धातु के साथ समानकर्तृक इषधातुके कर्मीभूत धातुके उत्तर इच्छार्थ में विकल्प से सन् होता है' ।

यहां 'इच्छायाम्' मे इष् धातु श्रुत है अतः कर्मत्व एवं कर्तृत्व तदपेक्ष ही गृहीत है । धातुसे विधीयमान इस सन् की 'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुक संज्ञा हुई, उसको वलादि लक्षण इडागम होता है । 'सन्यङोः' से द्वित्व करके पठितुम् इच्छति अर्थमें पठ सन् इट् द्वित्व कर सन्यतः से अभ्यास के अकारको इकारादेश पिपठिष की 'सनाद्यन्ताः' से धातुसंज्ञा लट् तिप् शव्विकरण अतो गुणे पररूप 'आदेशप्रत्यययोः' से षकार पिपठिषति पिपठिषतः पिपठिषन्ति रूप हुए । रमेशः पिपठिषति = "रमेशाभिन्नैकत्वविशिष्टकर्तृवृत्तिअध्ययनकर्मकेच्छाजनकवर्तमानकालनिष्ठो व्यापारः" यह शाब्दबोध हुआ । कर्मत्वसम्पादनार्थपठ् धातु से भाव = धात्वर्थमें तुमुन् प्रत्यय करके पठितुम् में पाठधातुको कर्मत्व वाचकत्वकी निष्पत्ति की । यहां इच्छाजनक व्यापारका जनक कर्ता है अतः सूत्रार्थसमन्वय से पठ् से सन् प्रत्यय हुआ ।

सूत्रमें कर्मग्रहण करने से कर्म न होने पर अर्थात् करणादि की प्रतीति होने पर सन् प्रत्यय नहीं होता है—यथा 'गमनेन इच्छति' यहां गमनक्रिया करण होने से सन् न हुआ । क्रियाद्वय का एक कर्ता रहने पर कर्मवाचक धातु से सन् होता है, अन्यथा नहीं । शिष्य पढें ऐसी इच्छा गुरु करते हैं, यहां अध्ययनक्रिया के कर्ता शिष्य है एवं इच्छाजनक व्यापार के कर्ता गुरु है एक कर्तृत्वाभावसे सन् न होकर वाक्य ही रहा । सूत्र में वा ग्रहण है अतः सन् घटित प्रयोग एवं सन् रहित वाक्य पक्षमें रहता है । 'पिपठिषति' से संक्षिप्तबोध—एकनिष्ठा पाठगोचरा वर्तमानेच्छा यह है ।

अत्तुम् इच्छति जिघत्सति—यहां अद् धातुसे सन् प्रत्ययकर 'लुङ्सनोः' से घस्लृ आदेश हुआ 'एकाच्' सूत्र से इडागम का अभाव, सकार तकार कर जिघत्सति । 'सः स्यार्धधातुके' से तकार विधान किया । जिघत्सति सः = वह भोजन करने की इच्छा करता है । ईर्ष्यार्थक ईर्ड्यधातु से सन् प्रत्यय इडागम ईड्यिस की धातु संज्ञा कर 'ईड्यतेस्तृतीयस्य' से तृतीयव्यञ्जन विशिष्ट का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वित्व होता है। इस व्याख्या में यहां 'यि'शब्द का द्वित्व हुआ। तृतीय अच् विशिष्ट का द्वित्व अर्थ में 'स'शब्दका द्वित्व हुआ—ईर्ण्यियिषति। ईर्ण्यिषिषति रूपद्वय हुए।

२६१० रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छसंश्च १।२।८।

एभ्यः संश्च क्त्वा च कितौ स्तः। रुरुदिषति। विविदिषति। मुमुषिषति।

रुद् विद् मुष् ग्रह्, स्वप्, प्रच्छ इन धातुओं से पर सन् या क्त्वा कित होता है। रोदितुम् इच्छति अर्थ में सन् इट्, द्वित्वादि कित्वसे गुणाभाव 'रुरुदिषति'। वेदितुम् इच्छति = विविदिषति। मोषितुम् इच्छति मुमुषिषति। १ वह रोनेकी इच्छा करता है। २ वह जानने की इच्छा करता है। वह चुराने की इच्छा करता है। रुद् धातु का अश्रुविमोचन अर्थ है। विद् का ज्ञानजनकव्यापार अर्थ है। मुष स्तेये चोरी के लिए व्यापार में है।

२६११ सनि ग्रहगुहोश्च ७।२।१२।

ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण्न स्यात्। ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्। सनः षत्वस्यासिद्धत्वाद् भष्भावः। जिघृक्षति। सुषुप्सति।

ग्रह् गुह् एवं उगित् इन धातुओं से पर सन् को इडागम नहीं होता है। ग्रह से पर सन् को नित्य इडागम प्राप्त था गुह् को 'स्वरति' से उगिल्लक्षण विकल्प प्राप्त था, निषेध इडागमका इसने किया। ग्रहीतुम् इच्छति = जिघृक्षति = उपादानार्थक ग्रह् से सन् इडागम का निषेध 'ग्रहिज्या' से सम्प्रसारण पूर्वरूप गृह् स द्वित्वादि 'गृह् गृह्' 'उरत्' से अत्व, रपरत्व, हलादिशेष, 'कुहोश्चुः' से कुत्व से जगृह् सन् के सकार को षत्व प्राप्त है, उसके असिद्ध स्वप्रयुक्त ढत्व भष्भाव षढोः से कत्व क्षत्व 'जिघृक्ष' धातु से लट् तिप् शप् पररूप जिघृक्षति। स्वप् का सुषुप्सति गुह से सन् लट् में 'जुघुक्षति'। सूत्र में चकार से 'श्नुकः किति' से उक् का अनुकर्षण है। उगन्त का उदाहरण बुभूषति। लुलूषति। श्नु की अनुवृत्ति नहीं है उसको 'सनीवन्तर्ध' से इडागम विकल्प से होता है।

विमर्श—कुत्व असिद्ध होने से भष् भाव होता है ऐसा आचार्य कहते है। कोई 'ढत्वे कृते भष्भावः' ऐसा अध्याहार करते हैं। 'जगृह् स' यहां इण् से पर होने के कारण 'आदेशप्रत्यययोः' से षकारादेश प्राप्त है, किन्तु 'पूर्वत्र' से वह असिद्ध है अतः ढकारादेश हकारको 'होढः' से करके भष्भाव हुआ, तब कत्व कर कवर्गसे ककार से पर सन् के सकार को षकारादेश यह उचित सूत्र प्रवृत्तिक्रम है।

शास्त्रासिद्धत्व पक्ष 'पूर्वत्रासिद्धम्' है। कार्यासिद्धत्व का शब्दरत्नादि व्याख्याओं में खण्डन है। अतः षत्व एवं ढत्व कर पश्चात् भष्भाव कार्य में षत्वरूपकार्य असिद्ध है अर्थात् जात भी षत्व असिद्ध से सकार बुद्धि से भष्भाव करना यह पक्ष उचित नहीं है।

२६१२ किरश्च पञ्चभ्यः ७।२।७५।

कृ गृ दृङ् धृङ् प्रच्छ एभ्यः सन इट् स्यात्।

पिपृच्छिषति। चिकरिषति। जिगरिषति। जिगलिषति। अत्रेटो दीर्घो नेष्टः। दिदरिषते। दिधरिषते। कथमुहिधीर्षुरिति। भौवादिकयोर्धृङ्धृञोरिति गृहाण।

कृ गृ दृङ् धृङ् एवं प्रच्छ इनसे पर सन् को इडागम होता है। पिपृच्छिषति—प्रच्छ धातु से सन् इडागम सम्प्रसारण पूर्वरूप द्वित्वादि कर 'सन्यतः' से इकारादेश पिपृच्छिष की 'सना-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धन्ताः' से धातु संज्ञा तथा लट् तिप् शप् पररूप से रूप सिद्धि हुई। कृ सनन्त से चिकरिषति। अचि विभाषा से लकारादेश विकल्प से गृ सनन्त का लट् में जिगालिषति। जिगरिषति। भाष्यकार की इष्टि है कि 'वृतो वा' से यहां दीर्घ नहीं होता है'। सनन्त वृङ् एवं धृङ् का लट् में विदरिषते, दिधरिषते। 'उद्दिधरिषु' यह प्रयोग सनन्त से उप्रत्ययान्त में होना चाहिये 'उद्दिधीर्षुः' कैसे प्रयोग हुआ ?, भ्वादिगण पठित धृङ् एवं धृञ् का यह प्रयोग है। वहां "अज्झन-गमांसनि" वक्ष्यमाण सूत्र से दीर्घ हुआ है।

२६१३ इको झल् १।२।९।

इगन्ताज्झलादिः सन् कित् स्यात्। बुभूषति। दीङ् दातुमिच्छति। दिदीषते। एज् विषयत्वाभावान्मीनातिमिनोतीत्यात्वं न। अत एव सनि मीमेति सूत्रे माधातोः पृथङ् मीग्रहणं कृतम्।

इगन्त धातु से पर झलादि सन् प्रत्यय कित् होता है। भवितुमिच्छति बुभूषति यहां सनिग्रहगुहोश्च' से इडागम का निषेध कर इससे कित् होने से गुणाभावत्व हुआ। दीङ् धातु का सन् में दिदीषते। कित्व के कारण गुणादि की अप्राप्ति से एज् विषयत्वाभाव से 'मीनाति मिनोति' से आकारादेश न हुआ। इसी लिए 'सनि मीमा' में मा धातु से पृथक् मी ग्रहण किया आत्वाभाव से 'मी' का मास्वरूप नहीं होता है वहां मी रूप रहता है। इक् के समीप हल् उससे पर जो झलादि सन् वह कित होता है। 'रुदविद' से सन् की अनुवृत्ति है। सन् से आक्षिप्त धातु है वह विशेष्य है इक विशेषण है तदन्त विधि होती है।

पिपासति, तिष्ठासति यहां इगन्त धातु नहीं अतः कित्व न हुआ शिशयिषते यहां झलादि सन् नहीं है।

२६१४ हलन्ताच्च १।२।१०।

इक् समीपाद्घलः परो झलादिः सन् कित् स्यात्। गुह्रू जुघुक्षति। बिभित्सति। इकः किम्, यियक्षते। झल् किम्, विवर्धिषते। हल् ग्रहणं जाति-परम्। तृंह्रू तितृक्षति। तितृंहिषति।

इक् समीप हल् से पर झलादि सन् कित होता है। इको झल् से इक् का सम्बन्ध है इह् का अवयव हल् सम्भव नहीं है अतः अन्त शब्द समीप वाचक यहां है। सौत्रत्व के कारण विशेषणीभूत अन्त हा पूर्व निपात न्यायतः प्राप्त था वह न हुआ। जुघुक्षति—'सनिग्रहगुहोश्च' से इडागम का अभाव इससे कित्व द्वित्वादि कार्य ढत्व भष्भाव षत्व कत्व क्षत्व हुआ। भेत्तुमिच्छति बिभित्सति = विदारण करने की इच्छा वाला वह।

यियक्षते यहां इक् समीप हल् न होने से कित्वाभाव है।

विवर्धिषते यहां झलादि सन् नहीं है अतः कित्वाभाव हुआ। यहां हल् शब्द जाति परक है अर्थात् प्रत्येक हल् में रहने वाली हलत्व जाति हलद्वय में आरोपित है अतः इक् समीप हल्-त्वावच्छिन्न से पर झलादि सन् कित हुआ, तितृक्षति—यहां तृंह् धातु का कित्व से 'अनिदिताम्' से नकार का लोप हुआ। मूल धातु तृन्ह है। यहां इक् ऋकार उससे पर 'न्ह्' वर्णद्वय उससे उत्तर झलादि सन् जातिपक्ष से कित्व हुआ। 'स्वरति' से विकल्प इडागम। इडागम पक्षमें 'तितृंहिषति'।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२६१५ अज्झनगमां सनि ६।४।१६।

अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घः स्याज्झलादौ सनि। सन् लिटोर्जेः। जिगीषति। विभाषा चेः। चिकीषति। चिचीषति। जिघांसति।

झलादि सन् प्रत्यय पर में रहते अजन्त धातुओं का, एवं हन् धातु का अजादेश गम का दीर्घ होता है। यहां गम् सामान्य का ग्रहण नहीं है 'संजिगंसते' यहां अतिप्रसङ्ग नहीं है यहां 'सनि च' 'इङश्च' इन सूत्रों से विहित 'इङ्' 'इण्' को आदेश, एवं 'इण्वादिकः' से इक को आदेश गम् का ग्रहण है। 'अजादेशगमेः' इसमें क्या प्रमाण है सूत्रस्थ 'अच्' ग्रहण ही विशिष्ट इस अर्थ में प्रमाण है। तथाहि—यहां १—'सनि' इतना ही सूत्र करना चाहिये, दीर्घ पद के श्रवण से 'अचश्च' परिभाषा सूत्र से अच् की उपस्थिति होगी वह अङ्गस्य अधिकार प्राप्त का विशेषण होगा—'अजन्ताङ्गस्य दीर्घः' यह अर्थ से चिचीषति आदि की सिद्धि होगी। २—'हनिगम्योः'। यह दूसरा सूत्र है। अच् ग्रहण जो यहां अधिक है वह प्रवृत्ति भेद से गम् का विशेषणार्थ होता है। अजन्तस्य दीर्घो भवति, अजादेशगमेश्च दीर्घो भवति यह अर्थ होता है। जिगमिषति में झलादिसन् न होने से दीर्घ न हुआ। यहां 'गमेरिट् परस्मैपदेषु' से इडागम हुआ है। सूत्रोदाहरण—सन्नन्तजि धातु का—जिगीषति। यहां 'सन् लिटोः' से अभ्यास के उत्तर जकार को कुत्व से गकारादेश हुआ है। चिचीषति, चिचीषति, चिकीषति यहां दीर्घ एवं 'विभाषाचेः' से वैकल्पिक कुत्व हुआ। सन्नन्त हन् का जिघांसति 'अभ्यासाच्च' से कुत्व इससे दीर्घ अनुस्वार हुआ नश्चापदान्तस्य से।

२६१६ सनि च २।४।४७।

इणो गमिः स्यात् सनि न तु बोधने। जिगमिषति। बोधने तु प्रतीषिषति। इण्वदिकः। अधिजिगमिषति। कर्मणि तङ्। परस्मैपदेष्वित्युक्तेर्नेह। झलादौ सनीति दीर्घः। जिगांस्यते। अधिजिगांस्यते। अजादेशस्येत्युक्तेर्गच्छतेर्न दीर्घः। जिगंस्यते। सञ्जिगंसते।

सन् पर में रहते इण् के स्थान में गम् आदेश होता है, किन्तु बोधन अर्थ में आदेश नहीं होता है। सनन्त गत्यर्थक इण् को आदेश द्वित्वादि जिगमिषति। बोधन में तो प्रति इस सकार का द्वित्व सन्यतः से इकारादेश षत्व दीर्घ प्रतीषिषति। माष्येष्टि से इण् की तरह इक् है। उसको भी गमादेश हुआ है। अधिजिगमिषति। जिगांस्यते। यहां गम् से सन् द्वित्वादि 'अज्झन्' से दीर्घ अनुस्वार जिघांस से कर्म में लट् तङ् यक् आत्मनेपद अकार लोप हुआ। 'गमेरिट्' से इडागमाभाव आत्मनेपद में हुआ, वहां 'परस्मैपदेषु' कहा है। जिगंस्यते यहां अजादेश गम् नहीं अतः अज्झन से दीर्घ न हुआ।

२६१७ इङश्च २।४।४८।

इङो गमि स्यात् सनि। अधिजिगांसते।

सन् पर में रहते इङ् धातु के स्थान में गम् आदेश होता है। अधिजिगांसते।

२६१८ रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च १।२।२६।

उश्च इश्च वी ते उपधे यस्य तस्माद्धलादेरलन्तात् परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः। द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्। दिद्युतिषते। दिद्योतिषते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रुरुचिषते। रुरोचिषते। लिलिखिषति। लिलेखिषति। रलः किम्, दिदेविषति। व्युपधात् किम्, विवर्तिषते। हलादेः किम्, एषिषिषति। इह नित्यमपि द्वित्वं गुणेन बाध्यते। उपधाकार्यं द्वित्वात् प्रबलम् ओणेर्ऋदित् करणस्य सामान्यापेक्षज्ञापकत्वात्।

उकार या इकार है उपधा में जिनको ऐसा रलन्त हलादि धातु उससे पर सेट् त्वा एवं सन् विकल्प से कित् होता है। दिद्युतिषते। यहां अभ्यास से द्युत् का यकार का 'द्युतिस्वाप्योः' सूत्र से सम्प्रसारण एवं पूर्वरूप हुआ सेट् सन् कित् हुआ वि० अतः लघूपध गुण न हुआ। पक्ष में कित्त्वाभाव से गुण हुआ—दिद्योतिषते। यही क्रम अन्योदाहरणों में है। दिदेविषते यहां वकार रल् में नहीं अतः कित्त्वाभाव है। विवर्तिषते यहां उपधा में ऋकार है अतः कित्त्वाभाव है। हलादि इष् धातु नहीं है 'इष् इस' षत्व यहां सन्यङोः से 'नटभार्यावद् व्यञ्जनानि भवन्ति' इस न्याय से। 'षि' स् का द्वित्व प्राप्त है एवं लघूपध गुण प्राप्त है, द्वित्व नित्य है गुण अनित्य है द्वित्व करने पर वह अप्राप्त है, अतः नित्यत्व के कारण गुण को बाधकर द्वित्व होना चाहिए किन्तु द्वित्व न हुआ किन्तु अनित्य लघूपध गुण ही हुआ यहां इसमें प्रमाण यह है कि "उपधाकार्यं द्वित्व से प्रबल है" इसमें प्रमाण है 'ओणृ' का ऋदित् करण, वह उपधा ह्रस्व के निषेधक 'नाग्लोपि' सूत्र की प्रवृत्ति के लिए है, यदि नित्य द्वित्व उपधा ह्रस्व के प्रथम होता तो ह्रस्व की 'णौ चङ्युपधायाः' से प्राप्ति ही नहीं है, अप्राप्त ह्रस्व का निषेध व्यर्थ पुनः ऋदित् सम्पादन द्वारा ह्रस्व निषेधार्थ ऋकारानुबन्ध व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि 'उपधाकार्यं द्वित्वात् प्रबलम्' यह सामान्य ज्ञापन करना ही उचित है प्रबल बाधक न हो वहां ज्ञापक सामान्य ही होता है लाघव से, विशेष ज्ञान सामान्य ज्ञान पूर्वक होता है वहां सामान्य विषयक ज्ञान एवं विशेष विषयक ज्ञान इस प्रकार ज्ञानद्वय प्रयुक्त गौरव से "असति बाधके प्रमाणानां सामान्ये पक्षपातः लाघवात्" यह न्याय लाघवानुगृहीत है अपूर्व नहीं। अतः पूर्व में वर्णित "बहिरङ्गोऽप्युपधाह्रस्वो द्वित्वात् प्रागेव" यह विशेष ज्ञापन करना ओणृ के ऋदित् करण से वह क्रम अनुचित है भाष्यकार की उक्ति विरुद्ध भी है।

भाष्यकार ने कण्ठरव से यह कहा है कि "यदयम् ओणेर्ऋदित् करणं करोति तज्ज्ञापयति आचार्यः 'उपधाकार्यं बलीय' इति।

२६१९ सनीवन्तर्ध भ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम् ७।२।४९।

इवन्तेभ्य ऋधादिभ्यश्च सन इड्वा स्यात्। इडभावे हलन्ताच्चेति कित्त्वम्। छ्वोरिति वस्य ऊठ्, यण्, द्वित्वम्, दुद्यूषति। दिदेविषति। स्तौतिण्योरेवेति वक्ष्यमाणनियमान्न षः। सुस्यूषति। सिसेविषति।

सन् पर में रहते इवन्त धातु, ऋध्, भ्रस्ज, दम्भु, श्रि, स्वृ, यू, ऊर्णु, भृ, ज्ञप्, सन् इन धातुओं से पर सन् को इडागम विकल्प से होता है। इड् के अभाव में हलन्ताच्च से कित्त्व होता है। 'छ्वोः' सूत्र से वकार को ऊठ् आगम करके यणादेश के बाद द्वित्व से 'दुद्यूषति' प्रयोग की सिद्धि हुई। इडागम पक्ष में 'दिदेविषति' रूप हुआ। सन्नन्त सिव् धातु का इडागम पक्ष में सिसेविषति। पक्ष में सिव् स कित्त्व ऊठ् यण् स्यू का द्वित्वादिकार्य सुस्यूषति।

२६२० आप्ज्ञप्यृधामीत् ७।४।५५।

एषामच ईत् स्यात् सादौ सनि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सकारादि सन् प्रत्यय पर में रहते आप् ज्ञप् ऋध् धातु के अच् के स्थान में ईत् होता है। यहां सनिमीमा से अच्, 'सः स्यार्धधातुके' से सि की अनुवृत्ति है। 'सि' सन् का विशेषण है, 'यस्मिन्' परिभाषा से सादि अर्थ का लाभ हुआ।

२६२१ अत्र लोपोऽभ्यासस्य ७।४।५८।

सनि मीमेत्यारभ्य यदुक्तं तत्राभ्यासस्य लोपः स्यात्। आप्तुम् इच्छति ईप्सति। अर्धितुम् इच्छति रपरत्वम्, चर्त्वम्, ईर्त्सति। अदिधिषति। बिभ्रज्जिषति। विभर्जिषति। बिभ्रक्षति। बिभर्क्षति।

सनि मीमा (२६२४) इस सूत्र से आरम्भ कर के जो कार्य कहे गये हैं वे होने पर अभ्यास का लोप होता है। यथा आप्तुम् इच्छति यहां 'आप् स' अजादेर्द्वितीयस्य से 'प्स' शब्द का द्वित्व कर 'प्स प्स स' यहां 'आप् ज्ञपि' से ईकार एवं 'अत्र लोपः' से अभ्यास का लोप से ईप्स धातुसंज्ञा लट् तिप् शप् पररूप ईप्सति। अर्धितुम् इच्छति 'ऋध् स' 'सनीवन्तर्ध' से इडागम धि शब्द का द्वित्वादि से अदिधिषति। पक्ष में ध्स का द्वित्व ईत् अभ्यास लोप चर्त्व से ईर्त्सति। 'विभ्रज्जिषति' इट्, इट् का अभाव, रमागम, रमागमाभाव, से चार रूप होते हैं। सकार को श्चुत्व से शकार उसको जश्त्व से जकार रमागम का अभाव इट्। विमर्जिषति यहां रेफ एवं उपधा की निवृत्ति से भर्ज् का द्वित्वादि। इडागम के अभाव एवं रमागम के अभाव में स्कोः से सकार लोप षत्व कत्व षत्वादि से बिभ्रक्षति रमागम पक्ष में विभर्क्षति।

२६२२ दम्भ इच्च ७।४।५६।

दम्भेश्च इन् स्यात् दीच्च सादौ सनि। अभ्यासलोपः। हलन्ताच्चेत्यत्र हल् ग्रहणं जातिपरमित्युक्तम्। तेन सनः कित्त्वान्नलोपः। धिप्सति। धीप्सति। दिदम्भिषति। शिश्रीषति। शिश्रयिषति। उदोष्ठ्यपूर्वस्य। सुस्वूर्षति। सिस्वरिषति। युयूषति। यियविषति।

ऊर्णुनूषति। ऊर्णुनुविषति। ऊर्णुनविषति। न च परत्वाद् गुणावादेशयोः सतोरभ्यासे उकारो न श्रूयेतेति वाच्यम्, 'द्विर्वचनेऽचि' इति सूत्रेण द्वित्वे कर्तव्ये स्थानिरूपातिदेशादादेशनिषेधाद्वा।

न च सन्नन्तस्य द्वित्वं प्रति कार्यित्वान्निमित्तता कथमिति वाच्यम्, 'कार्यमनुभवन् हि कार्यी निमित्ततया नाश्रीयते न त्वननुभवन्नपि'। न चेह सन् द्वित्वमनुभवति।

बुभूर्षति। बिभरिषति। ज्ञपिः पुगन्तो मित्संज्ञः पकारान्तश्चौरादिकश्च। इडभावे इको झलिति कित्त्वान्न गुणः। अभ्मनेति दीर्घः परत्वाण्णिलोपेन बाध्यते। आप् ज्ञपीति ईत्। ज्ञीप्सति। जिज्ञपयिषति। अमितस्तु जिज्ञापयिषति। जनसनेत्यात्त्वम्, सिषासति। सिसनिषति। ❀ तनिपतिदरिद्रातिभ्यः सनो वा इड् वाच्यः।

सकारादि सन् प्रत्यय पर में रहते दम्भ धातु के अच् के स्थान में इत् होता है, सूत्र में चकार निर्देश के कारण ईत् भी होता है। प्रथम कह चुके है कि 'हलन्ताच्च' सूत्र में हल् ग्रहण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाति परक है अर्थात् प्रत्येक हल् द्वय में आरोपित है, 'मूम्' दो वर्ण हल् पद से गृहीत हुए इक् समीप हल् द्वय हल् कहे जाने के कारण इडागम के अभाव में झलादि सन् है वह कित् होने से 'अनिदिताम्' सूत्र से नकार का लोप हुआ।

धिप्सति। धीप्सति। दिदम्भिषति। सन्नन्त श्रि को 'सनीवन्तर्ध' से सन् को विकल्प इडागम द्वित्वादि दीर्घ शिश्रीषति। शिश्रयिषति। सन्नन्त स्तृ को 'अज्झन' से दीर्घ कर 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से उकार दीर्घ द्वित्वादि इडागम विकल्प सुस्वूर्षति सिस्वरिषति। सन्नन्त युधातु को द्वित्वादि सन् को इडागम विकल्प दीर्घ युयूषति। इडागमपक्ष में यियविषते। 'द्विर्वचनेऽचि' से आदेश निषेध से द्वित्वकर के अभ्यास उवर्ण को 'ओः पुयण्ज्यि' से इकारादेश हुआ। ऊर्णुनूषति। सनीवन्तर्ध से इडागम विकल्प से तदभाव पक्ष में।' 'अज्झनगमाम्' से दीर्घ। इडागमपक्ष में 'विभाषोर्णोः' १।३।३। से विकल्प ङित्त्व हुआ, ङित्त्वपक्ष में उवङादेश। पक्ष में गुण से रूपद्वय। ऊर्णुनुविषति। ऊर्णुनविषति।

यहां शङ्का होती है कि द्वित्व के परत्व के कारण बाधकर गुण एवं अव् आदेश कर नुका द्वित्व न होकर 'नव्' का द्वित्व होना चाहिये, अभ्यास में इष्ट उकार का अश्रवण होगा अनिष्ट इकार का श्रवण से ऊर्णुनविषति रूप कैसे हुआ? 'ऊर्णिनविषति' रूप होना चाहिए जो अनिष्ट है। इस शङ्का निरासार्थ समाधान यह है कि यहां 'द्विर्वचनेऽचि' से गुण एवं अवादेश में स्थानिवृत्ति रूप (उकार) का अतिदेश करके पूर्वरूप की सिद्धि हुई। अथवा परत्व के कारण प्राप्त गुण का 'द्विर्वचनेऽचि' सूत्र निषेध करता है, अतः यहां 'नु' शब्द के द्वित्व से इष्टसिद्धि हुई 'द्विर्वचनेऽचि' में दो पक्ष है १—स्थानिरूपातिदेश, २—आदेशनिषेध, दोनों पक्ष भाष्यसम्मत है।

दूसरी शङ्का करते हैं—न च सन्नन्तस्य—द्वित्वविधायक शास्त्र है—'सन्यङोः' यहां सन् पद से 'सन्नन्ततदादेः' अर्थ होता है, तथाच 'सनः' इस षष्ठ्यन्तपदप्रयोज्य—सन्नन्ततदादिस्वावच्छिन्ना कार्यिता = स्थानिता सन्नन्त तदादि में है—(ऊर्णु इ स) में उसका घटक = अवयव इकार सकार है, उसमें 'द्विर्वचनेऽचि' इस शास्त्रीया निमित्तता नहीं रहेगी ऐसी अवस्था में यहां 'द्विर्वचनेऽचि' से गुण का निषेध या स्थानिरूप का अतिदेश सम्भव नहीं है अतः 'नव्' शब्द के द्वित्व से अभ्यास में उकारश्रवण जो इण् है वह नहीं होगा?, क्योंकि "कार्यीनिमित्ततया नाश्रीयते" यह परिभाषा 'स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते' में 'शयितरि' निर्देश से ज्ञापित है, अर्थात् स्थानिताघटक वर्ण में निमित्ताऽऽख्या विषयता नहीं रहती है।

इस शङ्का का समाधान यह है कि यह परिभाषा अंशद्वय विशिष्ट है एवं द्विर्वचनेऽचि सूत्र के भाष्य में ध्वनित भी है—परिभाषा का कलेवर यह है—"कार्यमनुभवन् हि कार्यी निमित्ततया नाश्रीयते" अर्थात् कार्यानुभव कर्तृत्व से विशिष्ट काय्यी (स्थानी) निमित्तता से अनाश्रीयमाण है। कार्य का अनुभव न करने वाले स्थानी में तो निमित्ताख्या विषयता रहती ही है। यहां 'सन्यङोः' से अजादिधातु के द्वितीय अच् तदवयवित 'नु' मात्र का 'वृक्षप्रचलन' न्याय से द्वित्व होता है, द्वित्वरूप कार्य को अनुभव सन् नहीं करता अतः इस में द्विर्वचनेऽचि इस शास्त्रीया निमित्तता रहेगी तन्निमित्त गुणादि निषेध से नुशब्द का द्वित्व होकर इष्ट रूप 'ऊर्णुनविषति' की सिद्धि हुई।

सन्नन्त भू को 'सनीवन्तर्ध' से इडागम विकल्प से इडागम के अभाव में 'अज्झन' से दीर्घ कर उकारादेश द्वित्वादि एवं पकार से बुभूर्षति। पक्ष में बिभरिषति।

'ञिप्श् ज्ञाने शापने च' धातु चुरादि गणपठित पकारान्त भित् संज्ञक है। इडागम के अभाव में 'इको झल्' से कित्त्व के कारण गुण नहीं होता है, 'अज्झन' सूत्र विहित दीर्घ को परत्व के कारण 'णिलोप' ने बाध किया 'आप् ञिप्' सूत्र से ईत् हुआ - ज्ञीप्सति। पक्ष में इडागम में जिज्ञपयिषति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यहां मितां ह्रस्व से ह्रस्व हुआ। मित् संज्ञा के अभाव मे—जिज्ञापयिषति रूप हुआ। सन्नन्त पत धातु के सन् को सनीवन्तर्ध से इडागम विकल्प पक्ष में 'जनसन' सूत्र से आकारादेश पक्ष में सिषासति। पक्ष में इट् सिसनिषति। तन पत दरिद्रा धातु के उत्तर सन् को विकल्प से इट् होता है।

२६२३ तनोतेर्विभाषा ६।४।१७।

अस्योपधाया दीर्घो वा स्याज्झलादौ सनि। तितांसति। तितंसति। तितनिषति। ॐ आशङ्कायां सन् वक्तव्यः ॐ। श्वा मुमूर्षति। कूलं पिपतिषति।

झलादि सन् प्रत्यय पर में रहते तन् धातु की उपधा को दीर्घ विकल्प से होता है। सनन्त तन में सन् को इडागम विकल्प पक्ष में उपधाका विकल्प से दीर्घ एवं नकार का नश्चापदान्तस्य से अनुस्वार हुआ। पक्ष में इडागम से दो विकल्प कार्य से तीनरूप तितांसति। तितंसति। तितनिषति। आशङ्का अर्थ में सन् प्रत्यय होता है। सन्नन्त मृङ् प्राणत्यागे से अज्झनेति दीर्घ उकारादेश दीर्घ मुमूर्षति। यहां 'पूर्ववत् सनः' से आत्मनेपद न हुआ, 'शदेः' इत्यादि सूत्रद्वय में 'सनो न' की अनुवृत्ति कर वाक्य भेद से व्याख्या करनी चाहिये। उदाहरणार्थ - एकश्वविषय मरणाशङ्का। अथवा मरणविषयिणी जो आशङ्का उसका विषय श्वा होता है। तट को गिरने की आशङ्का है पिपतिषति कूलम्।

२६२४ सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस् ७।४।५४।

एषामच इस् स्यात् सादौ सनि। अभ्यासलोपः। 'स्कोः' इति सलोपः। पित्सति। दिदरिद्रिषति। दिदरिद्रासति। 'डुमिञ्' 'मीञ्' आभ्यां सन्, कृतदीर्घस्य मिनोतेरपि मीरूपाविशेषादिस्, 'सः सि' इति तः, मित्सति, मित्सते। मा माने मित्सति। माङ्मेङोः—मित्सते।

दोदाणोः—दित्सति। देङ्—दित्सते। दाञ्—दित्सति, दित्सते। धेट्—धित्सति। धाञ्—धित्सति, धित्सते। रिप्सते। लिप्सते। शक्लृ शिक्षति। 'शक मर्षणे' इति दिवादिः, स्वरितेत्। शिक्षति, शिक्षते। पित्सते। ॐ राधो हिंसायां सनीस् वाच्यः ॐ। रित्सति। हिंसायां किम्, आरिरात्सति।

सकारादि सन् प्रत्यय पर में रहते मी, मा, घुसंज्ञक, रभ, लभ, शक, पत इन धातुओं के अच् के स्थान में इस आदेश होता है। पत धातु से सन् प्रत्यय द्वित्व इस आदेश सकार का 'स्कोः' से लोप अभ्यास पित्सति 'तनिपति' से इडागम विकल्प से होता है उसके अभाव में यह रूप है। दिदरिद्रिषति। इडागम के अभाव में दिदरिद्रासति। डुकार ञकार की इत्संज्ञक 'मि' धातु एवं मीञ् धातु इनसे सन् एवं कृतदीर्घ 'मि' का 'मी' रूप होने से इस् आदेश हुआ।

सकार को तकारादेश 'सः सि' सूत्र से हुआ मित्सति। मित्सते। उभयत्र अभ्यास का लोप है। मा माने का मित्सति रूप है। माङ् एवं मेङ् का मित्सते रूप है। दो एवं दाण् का दित्सति देङ् का दित्सते। दाञ् का दित्सति। दित्सते। धेट् का धित्सति। धाञ् का धित्सति। धित्सते। रभ् का रिप्सते। लभ का लिप्सते। शक्लृ का शिक्षति। शिक्षते। पद् को इसादेश से सन् में पित्सते। हिंसा अर्थ में सन् पर में रहते राध् धातु को इस् होता है। रित्सति। हिंसा अर्थ न होने पर इस् आदेश न हुआ, यथा आरिरात्सति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विमर्श—मिनोति के कृतदीर्घ भी रूप लक्षण=अज्झनेति सूत्राधीन होने से लाक्षणिक है, वह भी ग्रहण से लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषा से अगृहीत यहां होना चाहिये। प्रतिपदोक्त परिभाषा की प्रवृत्ति जहां लक्षण से सम्पन्न शब्द स्वरूप अपेक्षित हो वहां वह प्रवृत्त होती है, प्रयोगों को आश्रयण में उसकी प्रवृत्ति नहीं होती है यह बात इकोझल् सूत्र के भाष्य का व्याख्याता कैयट ने स्वव्याख्या में कहा है। उस कैयटाचार्य का यह आशय है—मीरूपमात्र का यहां प्रयोग आश्रित है, 'विभाषा दिक्समासे' में तो लक्षण=सूत्र से सम्पन्न समास शब्द का आश्रयण से 'दिङ्नामान्यन्तराले' यह प्रतिपदोक्त समास का ही ग्रहण है। अर्थात् प्रतिपदोक्त परिभाषा अनित्य है कहीं उसकी उपस्थिति होती है, कहीं नहीं यही सारांश यह लब्ध हुआ।

२६२५ मुचोऽकर्मस्य गुणो वा ७।४।५७।

सादौ सान। अभ्यासलोपः। मोक्षते मुमुक्षते वा वत्सः स्वयमेव। अकर्मकस्य किम्, मुमुक्षति वत्सं कृष्णः। न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः। विवृत्सति। तङि तु विवर्तिषते। सेऽसिचीति वेट् निनर्तिषति। निनृत्सति।

सकारादिसन् प्रत्यय पर में रहते अकर्मक मुच् धातु के इक् को विकल्प से गुण होता है। उत्तर खण्ड में गुण एवं अभ्यास का लोप हुआ मोक्षते। हलन्ताच्च से कित्व प्राप्त है। अतः गुणाभाव अप्राप्त यहां था, इसने गुण विधान किया।

यह अप्राप्तविभाषा है, अप्राप्तविभाषा में गुणमात्र ही विकल्प यह सूत्र बोधन करता है। गुणाभाव पक्ष में कित्त्व प्रयुक्त सिद्ध ही है। इस सूत्र का गुणाभाव विधेय न होने से 'मुमुक्षते' यहां 'अत्र लोपोऽभ्यासस्य' की अप्रवृत्ति ही है।

कर्मकर्ता में मुच् धातु अकर्मक हुआ—श्रीकृष्ण वत्स को छोड़ने की इच्छा करते हैं इसमें वत्स स्वयं ही छुट जाता है। अकर्मक न होने पर 'मुमु क्षति वत्सं कृष्णः'। 'विवृत्सति' यहां 'न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः' से इडागम का अभाव हुआ। वह इडागम निषेधक आत्मनेपद में अप्रवृत्त है अतः वहां इडागम हुआ - विवर्तिषते। निनर्तिषति, एवं निनृत्सति। यहां विकल्प इडागम हुआ, सूत्र 'सेऽसिचि' है।

२६२६ इट् सनि वा ७।२।४१।

वृङ् वृञ् भ्याम् ऋदन्ताच्च सन इड् वा स्यात्। तितरीषति। तितरिषति। तितीर्षति। विवरीषति। विवरिषति। वुवूर्षति। वृङ्-विवरिषते। वुवूर्षते। दुध्वूर्षति।

वृङ् वृञ् ऋदन्त धातु से पर सन् को इडागम विकल्प से होता है। वह तरण क्रिया करने की इच्छा जनक व्यापार करता है अर्थ में विकल्प में इडागम एवं 'वृतो वा' से दीर्घ विकल्प तीन हुए—१ तितरीषति। २—तितरिषति, इडागम के अभाव में 'ऋत इत्' से इत्व दीर्घ आदि से तितीर्षति। इसी प्रकार विवरीषति, विवरिषति पक्षमें उत्वादि से वुवूर्षति दुध्वूर्षति—धृङ् कौटिल्ये सन् 'अज्झन' से दीर्घ, 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से उत्व रपरत्व 'हलि च' सूत्र से दीर्घ द्वित्वादि कार्य।

२६२७ स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि ७।२।७४।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्मि पूङ् ऋ अञ्जू अश् एभ्यः सन इट् स्यात्। सिस्मयिषते। पिपविषते। अरिरिषति। इह 'रिस्' शब्दस्य द्वित्वम्। 'इस्' इति सनोऽवयवः कार्यभागिति कार्यिणो निमित्तत्वायोगाद् द्विर्वचनेऽचीति न प्रवर्तते।

अञ्जिजिषति। अशिशिषते। उभौ साभ्यासस्य। प्राणिणिषति।

स्मिङ् पुङ् ऋ अञ्ज अश इनसे पर सन् प्रत्यय को इडागम होता है। सिस्मयिषते। सन्नन्त पूङ् का पिपविषते।

अरिरिषति—ऋधातु से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय 'स्मिपूङ्' सूत्र से सन् को इट् आगम हुआ ऋकार का गुण अर् हुआ यहां 'सन्यङोः' में अजादेर्द्वितीयस्य के सम्बन्ध से नटभार्य्यावत् व्यञ्जनानि भवन्ति न्याय से व्यञ्जन क्वचित् पूर्वान्वयी होते हैं, क्वचित् उत्तरान्वयी होते हैं, अतः वृक्षप्रचलन न्याय से या 'नटभार्यावद् व्यञ्जनानि भवन्ति' इस न्याय से 'रिस्' शब्द का यहां द्वित्व होता है।

विमर्श—यहां 'द्विर्वचनेऽचि' सूत्र से गुणादेश को बाधकर द्वित्व होना चाहिए—यह शङ्का न करनी ही उचित है द्वित्व रिस् का होता है उसका घटक इस् अवयव द्वारा द्वित्वरूप कार्य को उपभोग करता है एवं अवयव द्वारा द्वित्वरूप कार्यभाक् है अतः कार्यानुभव कर्तृत्व विशिष्ट कार्यी होने से 'कार्यमनुभवन् हि कार्यी' निमित्तता से आश्रीयमाण नहीं है, अतः इस् में 'द्विर्वचनेऽचि' एतद् शास्त्रीया निमित्तता रूपा विषयता न रही अतः यहां 'द्विर्वचनेऽचि' सूत्र की अप्रवृत्ति है। 'कार्यमनुभवन्' परिभाषा मे कार्यानुभवन कर्तृत्व सांभावनिक का भी लिया जाता है, यथा प्रकृत में सम्भावना का आकार इस प्रकार का है "यदि यहां 'द्विर्वचनेऽचि' सूत्र की प्रथम अप्रवृत्ति होगी तो गुण से रिस् का द्वित्व से अवयव द्वारा यह 'इस्' द्वित्वरूप कार्यानुभवकर्ता हो सकता है एवं कार्यी = द्वित्व का स्थानी भी हो सकता है" ऐसी सम्भावना लेकर अरिरिषति प्रयोग की सिद्धि करनी चाहिए।

अञ्जू से सन् में इडागम 'जि' शब्द के द्वित्व से अञ्जिजिषति। अश् से सन् इडागम 'शि' के द्वित्व से अशिशिषते। प्रपूर्वक 'अन प्राणने जीवने च' से सन् इडागम 'नि' शब्द का द्वित्व कर उभौ साभ्यासस्य से नकार द्वय को णकारद्वय करके 'प्राणिणिषति' प्रयोग हुआ।

उच्छेस्तुक्, चर्त्वम्, 'पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे' इति चछाभ्यां सहितस्येटो द्वित्वम्। हलादिः शेषः उचिच्छिषति। 'निमित्तापाये नैमित्तिकापायः' इति त्वनित्यम् च्छ्वोरिति सतुग्ग्रहणाज् ज्ञापकात्। प्रकृतिप्रत्ययापत्तिवचनाद्वा।

'णौ च संश्चङो'रिति सूत्राभ्यामिङो गाङ्, श्वयतेः सम्प्रसारणञ्च वा। अधिजिगापयिषति। अध्यापिपयिषति। शिश्वाययिषति। शुशावयिषति। 'ह्वः सम्प्रसारणम्', जुहावयिषति। णौ द्वित्वात् प्रागच आदेशो नेत्युक्तत्वाद् उकारस्य द्वित्वम्। पुस्फारयिषति। चुक्षावयिषति।

ओः पुयण् ज्यपरे। पिपावयिषति। यियावयिषति। विभावयिषति। रिरावयिषति। लिलावयिषति। जिजावयिषति। पुयणजि किम्, नुनावयिषति। अपरे किम्, बभूषति। स्रवतीतीत्त्वं वा, सिस्रावयिषति। सुस्रावयिषति, इत्यादि। अपर इत्येव शुश्रूषते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उछ धातु को 'छे च' से तुक् आगम होता है, तकार को जश्त्व से दकार, दकार को श्चुत्व से जकार, जकार को चर्व से चकार होता है (त् द् ज् च्)। यहां 'पूर्वत्रासिद्धम्' की प्रवृत्ति द्वित्व करने में श्चुत्वादि के असिद्धत्व बोधनार्थ न हुई, क्योंकि 'पूर्वत्रासिद्धम्' का बाधक वचन यह है 'पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वे' अर्थात् त्रिपादी का कार्य द्वित्व करने में चकार असिद्ध न माना गया अतः 'उचिच्छिषति' में चकार छकार एवं इट् अर्थात् च्छि शब्द का द्वित्व सन् में हुआ, द्वित्व करके 'हलादिः शेषः' से अभ्यास खण्ड घटक छकार की निवृत्ति हुई।

विमर्शः—यहां शङ्का होती है कि छकार को निमित्त मानकर तुक् आगम होकर तकार को दकार, दकार को जकार, जकार को चकारादेश हुआ, मूलभूत तुक् की प्रवृत्ति में निमित्त छकार है उसकी हलादिशेष से निवृत्ति होने पर छकार निमित्तक तुक् की निवृत्ति होनी ही चाहिये —

परिभाषा है – निमित्त के नाश होने पर उस निमित्त को मानकर जायमान कार्य की निवृत्ति होती है = "निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः" इति। इस शङ्का की निवृत्ति के लिए वह परिभाषा अनित्य है, अतः यहां प्रवृत्ति उसकी न हुई, इस अनित्यत्व में प्रमाण यह है—'च्छ्वोः' सूत्र तुक् विशिष्ट छकार को शकारा देश करता है एवं वकार को ऊठ् वहां तुक् विशिष्ट छकार ग्रहण क्यों किया? केवल छकार मात्र को ही शकारादेश करने पर भी तुक् प्रवृत्ति में निमित्त छकार की आदेशभूत शकार से निवृत्ति होती, पुनः तुक् विशिष्ट का ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि 'निमित्तापाये' परिभाषा अनित्य है, अतः तुक् स्थानिक परम्परया चकार का श्रवण रह न जाय एतदर्थ वहां ससुक् ग्रहण किया है। वस्तुतः 'वाञ्छ' इत्यादि में शत्व व्यावृत्त्यर्थ 'च्छ्वोः' यहां तुक् ग्रहण सार्थक है। व्यर्थ नहीं, अतः पूर्व वर्णित परिभाषा के अनित्यत्व में क्या प्रमाण? इस शङ्का की निवृत्ति के लिए —

अथवा आख्यान वाचक कृदन्त तदादि से णिच् प्रत्यय, कृत प्रत्यय का लुक एवं प्रकृति प्रत्यापत्ति, एवं प्रकृतिवत् कारक एवं चकार से कार्य बोधन प्रथम कह चुके हैं। वहां कंसम् उपपद में रहे तो हन् धातु से अप् प्रत्यय एवं हन् को वधादेश 'हनश्च वधः' से विहित है, वहां कृत्प्रत्यय अप् के लुक् होने पर वधादेश की पूर्वपरिभाषा से स्वतः निवृत्ति होती पुनः प्रकृतिप्रत्यापत्ति बोधित वचन व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि 'निमित्तापाये' परिभाषा अनित्य है या लक्ष्यसंस्कारार्थ वह नहीं ही है। यह कहना तो असङ्गत है क्योंकि 'हनश्च वधः' से वधादेश एवं अप् निमित्त ही नहीं है, अतः अप् प्रत्यय का लुक् होने पर भी वधादेश का श्रवण प्रसङ्ग की व्यावृत्ति के लिए 'प्रकृति प्रत्यापत्ति' बोधन आवश्यक है, वहां 'निमित्तापाये' परिभाषा का विषय ही नहीं है, उससे अनित्यत्व या परिभाषा का असत्त्व बोधन नहीं कर सकते हैं? इस शङ्का का निरासार्थ कहा गया कि 'पूर्वोक्त प्रकृति प्रत्यापत्तिः' का यहां ग्रहण नहीं है, किन्तु "पुष्ययोगे ञि" पुष्ययोगं जानाति = पुष्येण योजयति इस प्रयोग साधनार्थ पुष्ययोग से जानाति अर्थ में णिच् प्रत्यय होता है, कृत प्रत्यय घञ् का लुक् होता है एवं युज् रूप मूल रूप बोधनार्थ 'प्रकृतिप्रत्यापत्ति' की वहां अनुवृत्ति है, जिससे 'चजोः' सूत्र से यमान कुत्व की निवृत्ति हुई पुष्यकारक से तृतीया विभक्ति हुई।

यहां 'पुष्ययोगे ञि' में प्रकृतिप्रत्यापत्ति का सम्बन्ध न करते तो भी घञ् प्रत्यय के लुक् होने पर 'निमित्तापाये' परिभाषा से 'चजोः' सूत्र से जायमान कुत्व की निवृत्ति परिभाषा से हो ही जाती पुनः क्रियमाण वहां प्रकृतिप्रत्यापत्ति वचन व्यर्थ हो कर ज्ञापन करता है कि 'निमित्तापाये'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिभाषा अनित्य है या नहीं है। परिभाषा नहीं है, यही पक्ष भाष्यादि सम्मत है। (विमर्श समाप्त)।

'अधिजिगापयिषति' यहां इङ् धातु से णिच् उससे सन् प्रत्यय करके 'णौ च संश्चङोः' २६०२ से इङ् को गाङ् आदेश करके आदन्त लक्षण युक् आगम हुआ 'अधि गाप् इ इ स अ ति' यहां सन् निमित्तक द्वित्व 'गाप्' का हुआ अभ्यासादि कार्य करके सन्यतः से इकारादेश हुआ इकार को गुण अयादेश पकारादेश पररूप से 'अधिजिगापयिषति' रूप की सिद्धि हुई। अर्थ = अध्ययन क्रिया कर्ता को प्रेरणा करने वाले को वह इच्छा करता है। गाङ् आदेश इङ् को न हुआ वहां 'अजादेर्द्वितीयस्य' से 'पि' शब्द का द्वित्व हुआ - अध्यापिपयिषति रूप हुआ—अर्थ पूर्ववर्णित ही है। गत्यर्थक श्वि से णिच् उससे सन्, सन् के इडागम यहां 'णौ च संश्चङोः' २५८० से श्वि के वकार को सम्प्रसारण हुआ, 'सम्प्रसारणाच्च' से पूर्वरूप से 'शु' रूप बनाकर उसका द्वित्वादिकार्य अभ्यासोत्तर खण्ड के शु के उकार की अचोञ्णिति से वृद्धि आवादेश, इकार का गुण अयादेश षकार शुश्रावयिषति। सम्प्रसारणाभाव में श्वि का द्वित्वादि से शिश्वाययिषति।

'जुहावयिषति' यहां ह्वेञ् धातु से ण्यन्त से सन् इडागम 'आदेश' से आत्व 'हः सम्प्रसारणम्' पूर्वरूप करके 'हु' का द्वित्वादिकार्य उत्तर खण्डस्थ हु के उकार की वृद्धि आव् आदेश गुण अयादेश पत्व पररूप से जुहावयिषति। स्फुर धातु से णिच् उससे सन् प्रत्यय सन् को इडागम यहां 'चिस्फुरोर्णौ' सूत्र से आत्वादेश एवं द्वित्व प्राप्त है, किन्तु प्रथम कह चुके हैं कि "णिच्चि अजादेशो न भवति द्वित्वे कर्तव्ये" द्वित्व कर्तव्य रहे वहां अच् स्थानिक प्रकृत में आत्व न कर स्फुर् का ही द्वित्व 'शर्पूर्वाः खयः' आदि से पुस्फारयिषति प्रयोग में अभ्यास में उकार का श्रवण जो इष्ट है वह हुआ।

'चुस्रावयिषति' यहां णिच् निमित्त प्रथम वृद्धि आदि कार्य पूर्वोक्त ज्ञापन से न हुआ 'स्रु' के द्वित्वादि कार्य से अभ्यासोत्तर खण्डस्थ उकार की 'अचोञ्णिति' से वृद्धि आव् आदेश इकार का गुण अय् आदेश षकारदेश शप् के अकार एवं सन् के अकार का अतो गुणे पररूप हुआ।

पूर्व वर्णित जो 'ओः पुयण्ज्यपरे' के उदाहरण ण्यन्त से सन् करके देते हैं मूल में—'पु णिच् इ स अति' यहां 'णिचि अजादेशो न स्यात्' उससे पु का द्वित्वादिकार्य से एवं अभ्यास के अवयव उकार को इकार से पिपावयिषति। यु धातु से णिच् सन् इट् आदि एवं 'यु' का द्वित्व उत्तर खण्डस्थ यु के उकार की औ वृद्धि आव् आदेश अभ्यास उकार को 'ओः' सूत्र से इकारादेश से यियावयिषति। भू से णिच् सन् इडागम 'भू' का द्वित्व उत्तरखण्ड से उकार की वृद्धि आवादेश अभ्यास उकार को इकारादेश बिभावि इस अति यहां गुण अयादेश पकारादेश पररूप से बिभावयिषति। रु धातु से णिच् ततः सन् इडागम द्वित्वादि उत्तरखण्डस्थ उकार की वृद्धि आवादेश अभ्यास के उकार को इकारादेशादि कार्यों से रिरावयिषति। इसी प्रकार लिलावयिषति। जु धातु से णिच् सनादि से जिजावयिषति। पवर्ग यण् एवं जकार पर में रहते अभ्यास के उकार को सन् के विषय में इकारादेश विधान से नुनावयिषति में इत्त्व न हुआ। बुभूषति में अकार परक भकार पवर्गीय नहीं है अतः अभ्यासावयव उकार को इकारादेश न हुआ। स्नु धातु से णिच् सन् इडागम द्वित्वादि अभ्यास को 'स्ववति' सूत्र से इकार विकल्प से हुआ—सिस्नावयिषति। पक्ष में सुस्नावयिषति। 'शुश्रूषते' यहां इत्त्व न हुआ अभ्यास के अनन्तर उत्तर खण्ड अवर्णपरक नहीं है।

२६२८ स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासस्य ८।३।६१।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभ्यासेणः परस्य स्तौतिण्यन्तयोरेव सस्य षः स्यात् षभूते सनि नान्यस्य। तुष्टूषति। द्युतिस्वाप्योरित्युक्तम्। सुस्वापयिषति। सिसाधयिषति।

स्तौतिण्योः किम्, सिसक्षति। उपसर्गात् स्थादिष्वभ्यासेन चेति षत्वम्। परिषिषक्षति। षणि किम्, तिष्ठासति। सुषुप्सति। अभ्यासादित्युक्तेर्नेह निषेधः। प्रतीषिषति। इक्, अधिषिषति।

षकारादेश से युक्त सन् पर रहते अभ्यास का अवयव इण् से पर स्थित स्तुधातु एवं ण्यन्तधातु के अवयव सकार को षकारादेश होता है अन्यत्र नहीं। स्तुति अर्थक स्तु धातु से सन् प्रत्यय द्वित्व शपूर्वाः खयः की प्रवृत्ति के बाद 'अज्झन' से दीर्घ सन् के सकार को 'आदेशप्रत्यययोः' से मूर्धन्यषकार करके इस सूत्र से अभ्यास के उकाररूप इण् से पर स्तु जो उत्तर खण्ड में स्थित है उसके सकार को मूर्धन्यकर ष्टुत्व से 'तुष्टूषति' प्रयोग की सिद्धि हुई।

सुस्वापयिषति—यहां स्वप् से णिच् सन् इडागम धातुसंज्ञा लट् ति शप्। यहां स्वप् का द्वित्वकार्य कर अभ्यास को 'द्युतिस्वाप्योः' से सम्प्रसारण से वकार को उकारादेश पूर्वरूप से 'स्तु' रूप अभ्यास हुआ, उत्तर खण्ड के अकार की 'अत उपधायाः' से वृद्धि हुई। इस से षत्व कर इकार का गुण अयादेश षत्व पररूप से पूर्व लिखित रूप की सिद्धि हुई।

ण्यन्त से सन्नन्त साध धातु का सिसाधयिषति रूप हुआ, यहां अभ्यास के अकार को 'सन्यतः' से इकारादेश है। 'स्तोति' सूत्र से षकारादेश हुआ। सिच् धातु का सन् में 'सिसक्षति' यहां स्तु या ण्यन्त धातु के अभाव से अभ्यास के उत्तर स्थित सकार को षकारादेश न हुआ इको झल् से सन् कित् होने से लघूपध गुण का अभाव हुआ।

'परिषिषक्षति' यहां उपसर्ग पूर्वक होने से यहां 'स्तौतिण्योः' सूत्र 'मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्' से आदेशप्रत्यययोः का ही नियमन वह नियम करता है, 'स्थादिषु' सूत्र प्राप्त षत्व का वह नियमन नहीं करता है अतः स्थादिषु से षत्व होता ही है। तिष्ठासति यहां सन् का सकार को षकारादेश न होने से आदेशप्रत्यययोः से षकारादेश हुआ। सुषुप्सति में भी आदेशप्रत्यययोः से षकारादेश अभ्यासोत्तर खण्डस्थ सकार को हुआ एवं ष्टुत्व भी हुआ। स्वप् से सन् सम्प्रसारण पूर्वरूपादि षत्व सुषुप्सति। प्रतिपूर्वक इण् गतौ से सन् द्वितीयाच् का द्वित्वादि कर यहां इण् का इकार अभ्यासावयव नहीं है अतः नियम की अप्रवृत्ति से षत्व हुआ है। स्मृत्यर्थक अधिपूर्वक इक् का सन् में लट् में अधीषिषति रूप हुआ।

२६२९ सः स्विदिस्वदिसहीनाञ्च ८।३।६२।

अभ्यासेणः परस्य ण्यन्तानामेषां सस्य स एव न षः षणि परे। सिस्वेदयिषति। सिस्वादयिषति। सिसाहयिषति। स्थादिष्वेवाभ्यासस्येति नियमान्नेह—अभिसुसूषति।

षकारादेश युक्त सन् पर में रहते अभ्यास के अवयव इण् से पर ण्यन्त स्विद्, स्वद्, सह, धातु के सकार का सकार ही रहता है, अर्थात् षकारादेश नहीं होता है। ण्यन्तस्विद् से सन् इडागम द्वित्वादि गुण अयादेश षकार यहां इस नियम से षत्वाभाव से सिस्वेदयिषति। ण्यन्त स्वद् से सन् कर द्वित्वादि अभ्यास के अकार को सन्यतः से इकारादेश उत्तर खण्डस्थ अकार की 'अत उपधायाः' से 'सिस्वादयिषति' यहां इससे षकारादेश का अभाव बोधन किया। ण्यन्त सह से सन् में सिसाहयिषति। अभिसुसूषति में भी षकार न हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थिकः ।
सरूपप्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते ॥ १ ॥

शैषिकाच्छैषिकः सरूपो न । तेन शालीये भव इति वाक्यमेव, न तु छान्ताच्छः ।

सरूपः किम्, अहिच्छत्रे भव आहिच्छत्रः, आहिच्छत्रे भव आहिच्छत्रीयः, अणन्ताच्छः ।

तथा मत्वर्थात् सरूपः स न, धनवान् अस्यास्ति, इह मतुबन्तान्मतुप् न, विरूपस्तु स्यादेव । दण्डिमती शाला । सरूप इत्यनुषज्यते । अर्थद्वारा सादृश्यं तस्यार्थः, तेन इच्छासन्नन्ताद् इच्छा सन्न, स्वार्थसन्नन्तात्तु स्यादेव । जुगुप्सिषते । मीमांसिषते ।

(इति सन्नन्त प्रक्रिया)

यह कारिका श्लोक वार्तिक है ऐसा कुछ आचार्य कहते हैं । अनेक आचार्य इस को भाष्यकार की उक्ति कहते हैं । वस्तुतः यह 'शेषे' सूत्र की आवृत्ति करके एक अण् विधायक एवं एक 'शेषे' अधिकारार्थ प्रथम वर्णन किये हैं वह अधिकारार्थशेषे अनावश्यक होकर इस कारिका को—स्थालीपुलाक न्याय से अथवा एकदेशानुमति से ज्ञापित है । विस्तृत 'शेषे' सूत्र पर इसको कह चुके है । उसे देखिए । सोदाहरण इस कारिका का व्याख्यान ज्ञान अत्यावश्यक है । कारिकार्थ इस प्रकार है—'शेषे' के अधिकार में पठित शास्त्र विहित प्रत्यय से अर्थात् प्रत्ययान्त तदादि से समानार्थक शैषिक प्रत्यय नहीं होता है । यथा शाला शब्द वृद्ध संज्ञक से छप्रत्यय कर 'शालीयः' रूप हुआ है, शालीय सन्नन्त से भव अर्थ में शैषिक प्रत्यय छ न हुआ, किन्तु तदर्थ बोधक वाक्य की ही स्थिति हुई । स्वरूपप्रत्यय का निषेध से अहिच्छत्रसन्नन्तसे 'तत्र भवः' से अण् प्रत्ययकर आहिच्छत्र सन्नन्तसे छप्रत्ययकर छकार को ईयादेश से 'आहिच्छत्रीयः' प्रयोग अणन्त से छप्रत्ययान्त का हुआ, अण् एवं छकार में सारूप्य नहीं है ।

इसी प्रकार मतुबर्थ में विधीयमान प्रत्यय से समानानुपूर्वीक मत्वर्थीय प्रत्यय नहीं होता है । प्रथमान्त वर्त्तमान कालिकसत्ता विशिष्टार्थक सन् से मतुप् प्रत्यय कर मकारको 'मादुपधायाः' से वकारादेश हुआ धनवान् उससे 'अस्य' या 'अस्मिन्' अर्थ में पुनः मतुप् न हुआ किन्तु तदर्थक वाक्य ही हुआ । यहां भी स्वरूप प्रत्यय नहीं यह योजना करना, विरूप प्रत्यय मत्वर्थीय से मत्वर्थीय होता ही है । यथा दण्ड शब्द से 'अस्ति' 'अस्य' में इन् प्रत्यय कर मत्व से अकारलोप दण्डिन् से मतुप् से दण्डिमती शाला यहां विरूप दो मत्वर्थीय प्रत्यय हुए । यहां स्वरूप का अर्थ यह है कि अर्थ द्वारा ही सादृश्य गृहीत है केवल समानानुपूर्वीकत्वेन नहीं है । अतः स्वार्थ में = प्रकृत्यर्थ में सन् प्रत्ययविधानोत्तर इच्छार्थक सन् प्रत्यय होता ही है । यथा—प्रकृत्यर्थगत कुत्सा में गुपूधातु से 'गुपतिज्' से सन् प्रत्यय तन्निमित्तक द्वित्वादि से जुगुप्स से इच्छा में सन् करके इडागम अकार का 'अतोलोपः' से लोपकर 'जुगुप्सिषते' एवं मीमांस से सन् इच्छा में करके मीमांसिषते प्रयोग की सिद्धि हुई ।

पं० श्रीबालकृष्णपञ्चोलीविरचित सन्निमर्श रत्नप्रभा में सन्नन्त प्रकरण समाप्त ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ यङन्तप्रक्रिया

२६३० धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ३।१।२२।

पौनःपुन्यं भृशार्थश्च क्रियासमभिव्याहारस्तस्मिन् द्योत्ये यङ् स्यात्।

पौनःपुन्य एवं भृशार्थरूप क्रियासमभिव्याहार अर्थ द्योत्य रहे वहां हलादि धातु से यङ् प्रत्यय होता है।

क्रियासमभिव्याहार का अर्थ निरूपण करते हैं—किसी क्रिया को वारवार करना, यथा पुनः पुनः पचति। अथवा धातु का वाच्य अर्थ जो व्यापार, उस व्यापार से जन्य जो फल तद्गत जो अतिशय उसको भी क्रियासमभिव्याहार कहते हैं यथा—पच् धात्वर्थ व्यापार जन्य विक्लित्ति में जितनी विक्लित्ति अपेक्षित है उससे भी अधिक रूपान्तर प्राप्ति रूप विक्लित्ति की गई उसको भृशार्थरूप क्रियासमभिव्याहार कहते हैं—"फलातिशयो भृशार्थः" इति।

यङ् क्रिया समभिव्याहार रूप अर्थ का वाचक नहीं है शक्ति से किन्तु केवल द्योतक है। इससे यह सिद्ध हुआ कि क्रियासमभिव्याहार रूप अर्थ का वाचक धातु ही है। समीपस्थ शब्द में रहने वाली शक्ति के उद्बोधक को द्योतक कहते हैं = उसका लक्षण यह है—"स्वसमभिव्याहृत-पदनिष्ठशक्त्युद्बोधकत्वम्" = द्योतकत्वम्। यहां पदपद से 'शक्तं पदम्' गृहीत है। यङ् में ङकार की इत्संज्ञा होती है "अवयवेऽचरितार्थोऽनुबन्धः समुदायस्योपकारकः" यङ् का ङकार से यकारको ङित्त्व बोधन व्यर्थ है अतः यङन्त तदादि शब्दस्वरूप ङित् होकर उससे पर लकार के स्थान में 'अनुदात्तङित्' से आत्मनेपद संज्ञक तङादि का प्रयोग होता है। उदाहरण में इसकी स्पष्टता होगी।

२६३१ गुणो यङ्लुकोः ७।४।८२।

अभ्यासस्य गुणः स्याद् यङि यङ्लुकि च। सनाद्यन्ता इति धातुत्वाल्ल-डादयः। ङिदन्तत्वादात्मनेपदम्। पुनः पुनरतिशयेन वा भवति बोभूयते। बोभूयाञ्चक्रे। अबोभूयिष्ट।

धातोः किम्, आर्धधातुकत्वं यथा स्यात्। तेन ब्रुवो वचिरित्यादि। एकाचः किम्, पुनः पुनर्जागर्ति। हलादेः किम्, भृशमीक्षते। भृशं शोभते, रोचते इत्यत्र यङ्नेति भाष्यम्। पौनःपुन्ये तु स्यादेव। रोरुच्यते। शोशुभ्यते।

❀ सूचिसूत्रिमूत्र्यट्यर्त्यशूर्णोतिभ्यो यङ् वाच्यः ❀। आद्यास्त्रय श्चुरादा-वदन्ताः। सोसूच्यते। सोसूत्र्यते। मोमूत्र्यते। अनेकाच्त्वेनाषोपदेशत्वात् षत्वं न।

यङ् एवं यङ्लुक् में धातु सम्बन्धी अभ्यास के अवयव इक् का गुण होता है। यङन्त तदादि शब्द स्वरूप की 'सनाद्यन्ता धातवः' से धातुसंज्ञा होती है। धातुसंज्ञा के कारण लडादि लकारों की उत्पत्ति होती है। यङ् ङित् होने से वह समुदाय का उपकारक है अतः ङिदन्त से आत्मनेपद हुआ।

यथा—पुनः पुनः अतिशयेन वा भवति अर्थ में संज्ञानुकूल व्यापारार्थकभू से यङ् कर 'सन्य-ङोः' से द्वित्वादिकार्य से एवं अभ्यास के उकार का गुण से 'बोभूय' की धातु संज्ञा उससे लट्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लकार के स्थान में 'त' शप् पररूप एत्व से 'बोभूयते' हुआ। लिट् में अनेकाच् लक्षण आम् उसकी 'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुक संज्ञा 'अतो लोपः' से अकार का लोप 'आमः' से लिट् का लोप लिट् परक कृञ् का अनुप्रयोग लकार के स्थान में 'त' उसके स्थान में एश् 'कृ' का द्वित्वादि, मकार का अनुस्वार कर परसवर्ण से ञकार 'बोभूयाञ्चक्रे'। लुङ् में 'अबोभूयिष्ट'।

यह यङ्धातु से विहित होने से यङ् की 'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुक संज्ञा हुई अतः भ्रुव् का आर्धधातुक पर में रहते विधीयमान वच् आदेश हुआ। 'भृशं जागर्ति' यहां निद्राक्षयार्थक 'जागृ' धातु अनेकाच् है यहां यङ् प्रत्यय न हुआ किन्तु वाक्य ही रहा। भृशम् ईक्षते' यहां दर्शनार्थक ईक्ष् धातु हलादि न होने से यङ् न हुआ किन्तु तदर्थ में वाक्य ही रहा। भृशं शोभते या रोचते यहां भाष्यप्रामाण्य से यङ् नहीं किन्तु वाक्य ही रहता है। भृशार्थ में ही भाष्यप्रामाण्य से यङ् न यहां हुआ। पौनःपुन्य में तो यङ् होता ही है। यथा—रोरुच्यते। शोशुभ्यते।

सूत्र, मूत्र, अट, ऋ, अश, ऊर्णु इन धातुओं से उत्तर यङ् होता है। इनमें प्रथम तीन सूच, सूत्र, मूत्र चुरादिगण पठित अकारान्त है। उनसे यङ् अकार धातुस्थ का अतो लोपः से लोप द्वित्वादि एवं अभ्यास के गुण से सोसूच्यते। सोसूत्र्यते। मोमूत्र्यते। यह तीन अनेकाच् होने से षोपदेश नहीं अतः षकारादेश न हुआ।

२६३२ यस्य हलः ६।४।४९।

यस्येति संघातग्रहणम्। हलः परस्य यशब्दस्य लोपः स्याद् आर्धधातुके। आदेः परस्य। अतो लोपः। सोसूचाञ्चक्रे। सोसूचिता। सोसूत्रिता। मोमूत्रिता।

'यस्य' यहां व्यञ्जन मात्र का प्रत्यायक नहीं है किन्तु यकार अकारविशिष्ट समुदाय का ही बोधक है। संघात ग्रहण होने से 'अर्थवत्' परिभाषा से अर्थवान् यकार का ग्रहण हुआ अतः पुत्र-काम्या के अनर्थक यकार का लोप न हुआ, यदि केवल यस्य पद व्यञ्जनमात्रार्थक होता तो वर्णमात्र ग्रहण में अर्थवत् परिभाषा की उपस्थिति नहीं होती तब अनर्थक भी यकार के लोपकी इससे प्रसक्ति होती।

सूत्रार्थ—हल से पर यकार का लोप होता है आर्धधातुक पर में रहते।

इस सूत्र से अन्त्यका लोप 'अलोऽन्त्यस्य' से प्राप्त हुआ, 'अलोऽन्त्यस्य' के बाधक 'आदेः परस्य' से आदि यमात्र का लोप कर अकार का अतोलोपः से लोप हुआ। उदाहरण सोसूच्य आम् यकार अकार लोप से सोसूचाम् से लिट् का लुक् अनुप्रयोगकृञ् कर सोसूचाञ्चक्रे आदि रूप सिद्ध हुए।

२६३३ दीर्घोऽकितः ७।४।८३।

अकितोऽभ्यासस्य दीर्घः स्याद् यङि यङ्लुकि च। अटाट्यते।

कित् रहित अभ्यास के अवयव अच् का दीर्घ होता है, यङ् में या यङ् लुक् में। पुनः पुनः अतिशयेन वा अटति अर्थ में गत्यर्थक अट् से वार्तिक से यङ् प्रत्यय कर अजादेर्द्वितीयस्य से 'ट्यु' का द्वित्वादि कार्योत्तर इससे अकार का आकार दीर्घ हुआ—अटाट्यते। यंयम्यते, 'रंरम्यते' यहां नुक् आगम घटित अभ्यास कित् है अतः दीर्घ न हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विमर्श--दीर्घ पद श्रवण से 'अचश्च' से अच् पद के साथ अनुवृत्त 'अत्र लोपोऽभ्यासस्य' से अनुवृत्त (अभ्यास) विशेष्य होगा अच् की 'येन विधिस्तदन्तस्य' से विशेषण संज्ञा होगी। संज्ञा को दिखकर तदन्त रूप संज्ञी की उपस्थिति से 'अजन्त अभ्यास' का दीर्घ होता है यह अर्थ से 'पापच्यते' इत्यादि में ही दीर्घ इस सूत्र से होगा, 'यंयम्यते' आदि में प्राप्त ही नहीं है। यंयम्यते यहां दीर्घ की बाधक परत्व के कारण प्रथम नुक आगम होगा। यहां अकित् ग्रहण व्यर्थ है क्यों वह किया ?

अभ्यास के अवयव अच् का दीर्घ इस अर्थ में यद्यपि अकित् पद की सार्थकता हो सकती है किन्तु "सम्भवति सामानाधिकरण्ये वैयधिकरण्यमन्याय्यम्" इस लाघवमूलक न्याय से अजन्त अभ्यास आदि अर्थ होगा न कि अभ्यासावयव अच्, किञ्च "येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधकः" इस परिभाषा से जहाँ जहाँ नुक् प्राप्त है वहां वहां 'दीर्घोऽकितः' की प्राप्ति अवश्य है, अतः तदप्राप्ति योग्य लक्ष्य में अचरितार्थ नुक् दीर्घ का अपवाद होता है, अतः यथा सुट् के विषय में नुट् यहीं होता है तथैव नुक् आगम के विषय में सर्वथा बाध्य दीर्घ की पूर्व में या नुक् के बाद प्रवृत्ति न होगी अकित् ग्रहण यहां क्यों किया ?, वह सर्वथा व्यर्थ है। इस युक्तियुक्त पूर्वपक्ष के समाधान पूर्वक अकित् की सार्थकतार्थ अब यत्न करते हैं। 'डोढौक्यते' यहाँ अभ्यास ह्रस्व को बाधकर परत्व के कारण 'दीर्घोऽकितः' के अभ्यास को दीर्घकर 'डौढौक्यते' यह होगा जो इष्ट नहीं है। अकित् ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि "अभ्यासविकारेषु ह्रस्वगंविधीन् बाधका न बाधन्ते" इस परिभाषा से यंयम्यसे वहां नुक् करने के बाद अकित् ग्रहण सार्थक्य के लिए अभ्यास का अवयव अच् का दीर्घ विधान द्वारा प्राप्त दीर्घ 'यंयम्य' आदि में हुआ तद्वारणार्थ अकित् ग्रहण सार्थक हुआ।

२६३४ यङि च ७।४।३०।

अर्त्तेः संयोगादेश्च ऋतो गुणः स्याद् यङि। यकारपररेफस्य न द्वित्वनिषेधः, 'अरार्यते' इति भाष्योदाहरणात्। अरारिता। अशासिता। ऊर्णोनूयसे वेभिद्यते। अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वान्नोपधागुणः। वेभिदिता। सासद्यते।

यङ् पर रहते ऋ धातु का तथा संयोगादि ऋकारान्त धातु का गुण होता है। यकार है पर में जिसको ऐसा रेफ का 'नन्द्राः संयोगादयः' से द्वित्व निषेध नहीं होता है, इस वचन में भाष्यकार से उक्त प्रयोग ही प्रमाण है तथापि ऋधातु से यङ् गुण अर्य यहां 'र्यं' का द्वित्व हुआ। हलादिशेष आदि कार्य द्वारा एवं दीर्घोऽकितः से दीर्घकर 'अरार्यते' यह भाष्य प्रयोग की सिद्धि हुई। अरारिता। अशासिता। ऊर्णोनूयते। वेभिद्यते। लुट् से वेभिदिता यहां 'अतो लोपः' से लुप्त अकार का स्थानिवद्भाव से लघूपध गुण न हुआ।

२६३५ नित्यं कौटिल्ये गतौ ३।१।२३।

गत्यर्थात् कौटिल्ये एव यङ् स्यान्न तु क्रियासमभिव्याहारे। कुटिलं व्रजति वाव्रज्यते।

गत्यर्थक धातु से कुटिलता अर्थ में ही यङ् प्रत्यय होता है, क्रिया समभिव्याहार अर्थ में नहीं। यङ् द्वित्वादि अभ्यास दीर्घ कुटिलतापूर्वक वह गमन करता है 'वाव्रज्यसे' प्रयोग की सिद्धि हुई।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विमर्श—सूत्र में नित्य ग्रहण अवधारणार्थक है—'कौटिल्य में ही यङ् होता है' यह निश्चय हुआ इस से अन्यार्थ में यङ् नहीं होता है, तक्रकौण्डिन्य न्याय से यह यङ् क्रिया समभिव्याहार में प्राप्त यङ् का बाधक हो जाता, पुनः नित्यग्रहण क्यों किया, वह व्यर्थ हो कर तक्रकौण्डिन्य न्याय अनित्य है ऐसा ज्ञापन करता है। इसका फल यह हुआ कि 'मति बुद्धि' सूत्र से वर्तमान में विधीयमान क्तप्रत्यय ने भूतार्थक क्तप्रत्यय को बाधन किया अतः भूत क्तान्ततदादि के योग में 'क्तस्य च वर्तमाने' से षष्ठी न हुई इस से 'पूजितो यः सुरासुरैः' इस प्रयोग मे तृतीया विभक्ति कर तृतीयान्त का साधुत्व हुआ। यहां नित्यार्थका कौटिल्यार्थ में ही अन्वय है, क्रिया में अन्वय नहीं है। भाष्यकार का यहां मत है कि विग्रह वाक्य से क्रियासमभिव्याहार अर्थ की प्रतीति नहीं अतः यङ् नहीं उस अर्थ में होगा नित्यग्रहण व्यर्थ ही है = "नैतेभ्यः क्रियासमभिव्याहारे यङा भवितव्यम्, विशेषासम्प्रत्ययात्।" कुटिलं व्रजति इस विग्रह से क्रियासम० अर्थ की अप्रतीति ही है।

एवं तक्रन्याय विधेय विषय में लगता है यहां उस का विषय ही नहीं है, अनित्यत्व बोधन व्यर्थ है, कारक विवक्षाधीन है अतः पूर्वोक्त उदाहरण में तृतीया की उपपत्ति होगी। 'विवक्षातः कारकाणि भवन्ति' यह शाब्दिक सिद्धान्त है। इसी प्रकार उत्तर सूत्र में भावगर्हारूप अर्थ की 'गर्हितं जपति' से है वहां भी क्रियासमभिव्याहाररूपार्थ की इस विग्रह से प्रतीति नहीं होती है। वहां भी 'तक्रन्याय' का विषय नहीं है, विधेयविषयाभाव से एवं अचरितार्थरूप अनवकाश के अभाव से न्याय की सर्वथा अप्रवृत्ति ही है। अत एव भाष्य में द्विवचनान्त प्रयोग किया है—'उत्तरयोर्विग्रहेण विशेषासम्प्रत्ययात्' में। यहां ग्रन्थकारोक्ति वृत्तिकारमत के अनुरोधसे है = 'कौटिल्ये एव' 'भावगर्हायामेव' इत्यादि कथनपरा।

२६३६ लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम् ३।१।२४।

एभ्यो धात्वर्थगर्हायामेव यङ् स्यात्। गर्हितं लुम्पति लोलुप्यते। सासद्यते।

धात्वर्थ निन्दा गम्यमान रहने पर ही लुप, सद, चर, जप, जभ, दह, दश, एवं गृ इन से यङ् प्रत्यय होता है, क्रियासमभिव्याहार रूप अर्थ में नहीं। गर्हितं लुम्पति लोलुप्यते। यहां भी विग्रह से क्रियासमभिव्याहार की अप्रतीति से अर्थतः निन्दा में यङ् होगा भावगर्हाग्रहण व्यर्थ है या स्पष्टार्थ है। तक्रन्याय का विषय नहीं है पूर्ववर्णित विमर्श में कहा गया है।

२६३७ चरफलोश्च ७।४।८७।

अनयोरभ्यासस्यातो नुक् स्याद् यङ्यङ्लुकोः। नुगित्यनेनानुस्वारो लक्ष्यते। ॐ स च पदान्तवद्वाच्यः ॐ। 'वा पदान्तस्य' यथा स्यात्।

यङ् या यङ् लुक् पर में रहते चर या फल धातु के अभ्यास के अवयव ह्रस्व अकार को नुक् आगम होता है। नुक् में उक् की इत् संज्ञा एवं लोप है, अवशिष्ट नकार अनुस्वार का उपलक्षण है अर्थात् नुक से अनुस्वार का ज्ञान करना चाहिये, वह नकार से उपलक्षित अनुस्वार विकल्प से पदान्तवद् होता है। अतः 'वा पदान्तस्य' से परसवर्ण विकल्प से होता है।

२६३८ उत्परस्यातः ७।४।८८।

चरफलोरभ्यासात्परस्यात उत् स्याद् यङ्यङ्लुकोः। हलि चेति दीर्घः। चञ्चूर्यते। चंचूर्यते। पम्फुल्यते। पंफुल्यते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यङ् या यङ् लुक् होने पर चर एवं फल धातु के अभ्यास से पर ह्रस्वाकार को उत् होता है। 'हलि च' सूत्र से दीर्घ होता है। नुक् के नकार का अनुस्वार पदान्तवद्भाव विकल्प से वा पदान्तस्य से परसवर्ण–चन्चूर्यते। पक्ष में अनुस्वारघटित रूप–चंचूर्यते। फल का–पम्फुल्यते। पक्ष में पंफुल्यते।

२६३९ जपजभदहदशभञ्जपशां च ७।४।८६।

एषामभ्यासस्य नुक् स्याद् यङ्यङ्लुकोः। गर्हितं जपति=जञ्जप्यते इत्यादि।

यङ् पर में रहे या यङ् लुक् में जप, जभ, दह, दश, भञ्ज, पश इनके अभ्यास को नुक् आगम होता है। गर्हितं जपति = जञ्जप्यते।

२६४० ग्रो यङि ८।२।२०।

गिरते रेफस्य लत्वं स्याद् यङि। गर्हितं गिलति जेगिल्यते। घुमास्थेतीत्वम् गुणः, देदीयते। पेपीयते। सेषीयते। विभाषा श्वेः, शोशूयते, शेश्वीयते। यङि च, सास्मर्यते। रीङ् ऋतः, चेक्रीयते। सञ्चेस्क्रीयते।

यङ् पर में रहते गृ धातु के अवयव रेफ के स्थान में लकार आदेश होता है।

यहां "तुदादिगणपठितगिरतेरेव ग्रहणम्, न तु क्रयादिगणपठितस्य" इसमें प्रमाण अचि विभाषा सूत्र में यङ् की अनुवृत्तिपक्ष में यङ् निमित्त गिरते का रेफ का लकारादेश विधानमूलक व्याख्यान से। देदीयते—यहां 'घुमास्था' से इत्व, एवं गुण हुआ। पेपीयते में भी इत्व एवं गुण। 'विभाषाश्वेः' से विकल्प से सम्प्रसारण कर पूर्वरूप से श्वि का शोशूयते। पक्ष में शेश्वीयते। यङि च से गुण करके सास्मर्यते। रीङादेश से चेक्रीयते 'सुट् कात् पूर्वः' से सुडागम सञ्चेस्क्रीयते। यहां परत्व के कारण द्वित्व को बाधकर पूर्व रीङादेश तदनन्तर द्वित्व करना। तदनन्तर सुडागम हुआ।

विमर्श—सञ्चेस्क्रीयते—सं कृ इस अवस्था में द्वित्व को बाधकर परत्व के कारण सुट् करने पर संयोगादि ऋकारान्त धातु होने से रीङ् की प्रवृत्ति के पूर्व गुण 'ऋतः' से होना चाहिये। यह शङ्का न करनी चाहिये, 'अडभ्यासव्यवायेऽपि' सूत्र के आरम्भ सामर्थ्य के कारण अट् एवं अभ्यास संज्ञा होने के अनन्तर ही सुट् होता है, पूर्व में नहीं। 'अडभ्यासव्यवायेऽपि' एवं 'सुट् कात् पूर्वः'इन दो वचनों के प्रत्याख्यान पक्षमें पूर्व धातु उपसर्ग के साथ योग होता है, पश्चात् साधन के साथ, उस पक्ष में द्वित्व के पूर्व सुट् कर सुट् विशिष्ट के द्वित्व से इष्टरूप की सिद्धि न होगी, यहां प्रथम सुट् ततः रीङ् को बाधकर 'यङि च' से गुण होने पर 'संचास्कर्यते' यह अनिष्ट रूपापत्ति होगी, यह सब कथन ठीक नहीं है. इष्टानुरोध से "पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते ततः उपसर्गेण" इस पक्ष के आश्रयण से रीङादेश करके द्वित्व कर पश्चात् सुट् से इष्ट रूप की सिद्धि हुई। सुट्कात् एवं 'अडभ्यासव्यवाये' वचनों का करना आवश्यक है। जहां वार्तिकादि के अनाश्रयण से निर्दुष्ट रूप सिद्धि हो वहां ही 'पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते' पक्ष का समाश्रयण से वार्तिक का अनाश्रयण करना। एवं उस पक्ष में इष्ट प्रयोग सिद्ध न हो सके तब 'पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते' यही पक्ष का आश्रयण करना एवं वार्तिकादि का स्वीकार यही सिद्धान्त है।

२६४१ सिचो यङि ८।३।१२।

सिचः सस्य षो न स्याद् यङि। निसेसिच्यते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यङ् परमें रहते सिच् धातु के अवयव सकार को षकारादेश नहीं होता है। अभ्यास सकार को 'उपसर्गात् सुनोति' से षकारादेश प्राप्त था, अभ्यास से पर सकार को 'स्थादिष्वभ्यासस्य' से षकार प्राप्त था, उसका यह निषेधक वचन है। यङ् नहीं वहां निषेध न हुआ—आंमषिषिक्षति।

२६४२ न कवतेर्यङि ७।४।६३।

कवतेरभ्यासस्य चुत्वं न स्याद् यङि। कोकूयते। कौतिकुवत्योस्तु चोकूयते।

यङ् परमें रहते कुधातुके अभ्यास को चुत्व नहीं होता है। अर्थात् ककार को चकारादेश का अभाव बोधन इसने किया। यहां सूत्र में 'कोः' ऐसा कहते शब्विकरणघटित 'कवतेः' ऐसा निर्देश करने से 'कूङ् शब्दे' भ्वादि ही यहां गृहीत है। 'कुशब्दे' अदादि 'कूङ् शब्दे' तुदादि इनका यहां ग्रहण नहीं है। उन दोनों को चुत्व अभ्यास ककार के स्थान में होता ही है। चोकूयते।

२६४३ नीग्वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम् ७।४।८४।

एषामभ्यासस्य नीगागमः स्याद् यङ् यङ्लुकोः। अकित इत्युक्तेर्न दीर्घः। नलोपः वनीवच्यते। सनीस्रस्यते। इत्यादि।

यङ् या यङ् लुक् परमें रहते वञ्चु, स्रंसु ध्वंसु, भ्रंसु, कस, पत, पद, स्कन्द इन धातुओं के अभ्यास को नीक् आगम होता है। वनीवच्यते। यहाँ कित् अभ्यास है अतः दीर्घ न हुआ। न धातु के नकार का 'अनिदिताम्' से लोप हुआ।

२६४४ नुगतोऽनुनासिकान्तस्य ७।४।८५।

अनुनासिकान्तस्याङ्गस्य योऽभ्यासोऽदन्तस्तस्य नुक् स्यात्। नुकाऽनुस्वारो लक्ष्यते इत्युक्तम्। यँयम्यते, यंयम्यते। तपरत्वसामर्थ्याद् भूतपूर्वदीर्घस्यापि न। भाम क्रोधे बाभाम्यते। ये विभाषा, जाजायते, जञ्जन्यते। ❀ हन्ते र्हिंसायां यङि घनीभावो वाच्यः। ❀ जेघ्नीयते। हिंसायां किम्, जंघन्यते।

यङ् परमें रहे या यङ् लुक् में अनुनासिकान्त अङ्ग का अदन्त जो अभ्यास उसको नुक् होता है। प्रथम कह चुके हैं नुक् का नकार अनुस्वार का उपलक्षण है। यह पदान्तवद् होता है 'वा पदान्तस्य' से विकल्प परसवर्ण होता है। अभ्यास में 'ह्रस्वः' सूत्र से अकार ह्रस्व ही सम्भव है पुनः व्यावर्त्याभाव से दीर्घ व्यावर्तक तपर करण सामर्थ्य से यहां भूतपूर्व दीर्घयुक्त का ह्रस्व होकर अकार हुआ है वहां इस की अप्रवृत्ति है। यथा बाभाम्यते यहां नुक् न हुआ 'दीर्घोऽकितः' से दीर्घ हुआ। यहां क्रोधार्थक भाम धातु है। 'जाजायते' यहां 'ये विभाषा' सूत्र से वैकल्पिक आत्व हुआ। पक्ष में नुक् से 'जञ्जन्यते' हुआ।

यङ् पर में रहते हिंसा अर्थ में हन्धातु को घ्नी आदेश होता है। जेघ्नीयते। हिंसा से भिन्न अर्थ में नुक् एवं हन्तेश्च से कुत्व कर 'जंघन्यते'।

२६४५ रीगृदुपधस्य च ७।४।९०।

ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमः स्याद् यङ्यङ्लुकोः। वरीवृत्यते। क्षुभ्नादित्त्वान्न णः। नरीनृत्यते। जरीगृह्यते। उभयत्र लत्वम्—चलीक्लृप्यते। ❀ रीगृत्वत इति वक्तव्यम् ❀। वरीवृश्च्यते। परीपृच्छ्यते।

यङ् या यङ् लुक् पर में रहते ऋकार है उपधा में जिस को ऐसे धातु के अभ्यास को रीक् आगम होता है। वरीवृत्यते। नरीनृत्यते। यहां 'क्षुभ्नादिषु च' से णत्वाभाव हुआ। चलीक्लृप्यते यहां दोनो रेफों को लत्व हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऋकारविशिष्ट धातु के अभ्यास को रीक् का आगम होता है *। वरीवृश्च्यते।

२६४६ स्वपिस्यमिव्येञां यङि ६।१।१९।

सम्प्रसारणं स्याद् यङि। सोषुप्यते। सेसिम्यते। वेवीयते।

यङ्प्रत्यय पर में रहते स्वप, स्यम, व्येञ् धातु को सम्प्रसारण होता है।

२६४७ न वशः ६।१।२०।

वावश्यते।

यङ् पर में रहते वश धातु को सम्प्रसारण नहीं होता है।

२६४८ चायः की ६।१।२१।

चेकीयते।

यङ् पर में रहते चाय धातुकों की आदेश होता है। चेकीयते। यहां ह्रस्वान्त आदेश करने पर भी 'अहन्' सूत्र से दीर्घादेश होता पुनः दीर्घान्त 'की' आदेश विधान का फल यङ् लुक् में है, आदेश में दीर्घविधान सामर्थ्य से यङ् लोप का प्रत्यय लक्षण में 'नलुमता' निषेध की अप्रवृत्ति है, अर्थात् दीर्घ विधान आदेश में करने से 'न लुमता' यहां अनित्य है। यथा चेकीतः।

२६४९ ईं घ्राध्मोः ७।४।३१।

जेघ्रीयते। देध्मीयते।

यङ् पर में रहते घ्रा एवं ध्मा धातु के आकार के स्थान में ईकार आदेश होता है। यहां भी आदेश ईकार में दीर्घोच्चारण यङ् लुक् में 'जेघ्नीतः' के लिए है।

२६५० अयङ् यि क्ङिति ७।४।२२।

शीङोऽयङादेशः स्याद् यादौ क्ङिति परे। शाशय्यते। अभ्यासस्य ह्रस्वः। ततो गुणः। डोढौक्यते। तोत्रौक्यते।

इति यङन्तप्रक्रिया

यकारादि कित् या ङित् प्रत्यय पर में रहते शीङ् धातु को अयङ् आदेश होता है। यथा—शाशय्यते। 'डोढौक्यते' अभ्यास को यहां प्रथम ह्रस्व विधान कर पश्चात् 'गुणो यङ्लुकोः' से गुण हुआ।

पं० श्री बालकृष्णपञ्चोली विरचित सविमर्श रत्नप्रभा में यङन्त प्रक्रिया समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ यङ्लुगन्तप्रक्रिया

२६५१ यङोऽचि च २।४।७४।

यङोऽच् प्रत्यये लुक् स्याच्चकारात्तं विनाऽपि बहुलं लुक् स्यात्। अनैमित्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति। ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वम्। अभ्यासकार्यम्। धातुत्वाल्लडादयः। 'शेषात् कर्तरि' इति परस्मैपदम्।

'अनुदात्तङित' इति तु न, ङित्त्वस्य प्रत्ययाप्रत्ययसाधारणत्वेन प्रत्ययलक्षणाप्रवृत्तेः। यत्र हि प्रत्ययस्यासाधारणरूपमाश्रीयते तत्रैव तत्। अत एव 'सुदृषत् प्रासादः' इत्यत्र 'अत्वसन्तस्य' इति दीर्घो न।

येऽपि स्पर्धशीङादयोऽनुदात्तङित्तस्तेभ्योऽपि न, 'अनुदात्तङितः' इत्यनुबन्धनिर्देशात्। तत्र च 'शितपा' शपा इति निषेधात्। अत एव श्यन्नादयोऽपि न, गणेन निर्देशात्। किन्तु शबेव। ❀ चर्करीतं च ❀ इत्यदादौ पाठाच्छपो लुक्।

यङ् प्रत्यय का अच् प्रत्यय पर में रहते लुक् होता है, सूत्र में चकार के ग्रहण से अच् प्रत्यय पर मे न रहें वहां भी लुक् होता है बहुल करके। सूत्र में यङ् साहचर्य से अच् प्रत्यय का ही ग्रहण करना चाहिये। यह लुक् परनिमित्त को अनपेक्ष्य करके प्रवृत्त अन्तरङ्ग है, 'अनैमित्तकं कार्यं अन्तरङ्गं भवति' अतः प्रथम यङ् का लुक् हुआ। लुक् के बाद 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' से यङन्तत्व बुद्धि से द्वित्व करना। एवं अभ्यासोद्देश्यक कार्य करना चाहिये। 'सनाद्यन्ताः' से धातुसंज्ञा करके लकारोत्पत्ति करनी। यहां 'शेषात् कर्तरि' सूत्र से परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय लकार के स्थान में होते हैं।

प्रत्यय लक्षण से यङ् वृत्ति ङित्त्व का समाश्रयण निमित्त 'अनुदात्तङितः' से आत्मनेपद यहां न हुआ। चित्रङ् में ङित्त्व है, एवं यङ् प्रत्यय में ङित्त्व है, अतः ङित्त्व प्रत्ययत्वव्याप्य नहीं है प्रत्ययत्व के अभावाधिकरण वृत्ति होने से 'स्वाभाववद्वृत्तित्वरूप' व्याप्यत्व ङित्त्व में नहीं है, अतः नियमार्थ 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' है उसकी यहां प्रवृत्ति नहीं है। प्रत्यय का असाधारणरूप = प्रत्ययत्व का व्याप्यत्वरूप जहां आश्रीयमाण रहे वहां ही प्रत्ययलक्षण होता है, अन्यत्र नहीं।

इस नियम का फल यह है की 'शोभनाः दृषदः यस्मिन् प्रासादे' 'सुदृषत्' रूप हुआ बहुव्रीहि समास करके। समासार्थ दृषत् शब्द को सुबन्तत्व सम्पादनार्थ जस् विभक्ति जो आयी थी जिसका समास संज्ञानिमित्तप्रातिपदिकसंज्ञा निमित्तक 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से लुक् हुआ है उसका प्रत्यय लक्षण कर असन्तत्व बुद्धि से 'अत्वसन्तस्य चाधातोः' से दीर्घ प्राप्त होना चाहिये, किन्तु वहां प्रत्ययलक्षण न हुआ, क्योंकि अस्त्वरूप धर्म प्रत्ययत्व का व्याप्य नहीं है अस्त्व प्रत्यय वृत्ति है एवं प्रत्यय से भिन्न 'अस् भुवि' धातु के अस् में भी वह रहता है, अतः प्रत्ययत्वाभावाधिकरण वृत्ति अस्त्व है प्रत्ययत्व का व्याप्य वह नहीं है प्रत्ययासाधारणरूप के अभाव से वहां प्रत्ययलक्षण न होने से दीर्घादेश न हुआ।

यङ् लुगन्त में स्पर्ध एवं शीङ् आदि धातु अनुदात्तेत एवं ङित् है उनसे भी परस्थित लकार के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थान में आत्मनेपद संज्ञक प्रत्ययों का विधान न हुआ क्योंकि 'अनुदात्तङित्' यह अनुबन्ध निर्दिष्ट कार्य है आत्मनेपद वह यङ् लुक् में नहीं होता है, कहा है आचार्यों ने—

ङितपा शपानुबन्धेन निर्दिष्टं यद्गणेन च।
यत्रैकाच्ग्रहणञ्चैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि॥ १॥

इससे निषेध हुआ। गणनिर्दिष्ट श्यन् आदि विकरण भी यङ् लुक् में नहीं होते हैं। किन्तु यङ् लुक् में कर्त्रर्थक सार्वधातुक पर में रहते बाधक विकरण के अविषय में शप् विकरणमात्र होता है। यङ् लुक् प्रकरणस्थ धातुओं से विहित शप् विकरण का अदादि मानकर 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' से लुक् हुआ, 'चर्करीतं च' से यङ् लुक् को अदादित्व मानना चर्करीतञ्च उपलक्षणविषया यङ् लुक् परक है।

२६५२ यङो वा ७।३।९४।

यङन्तात् परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्य ईड् वा स्यात्। भूसुवोरिति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न, 'बोभूतु तितिक्ते' इति छन्दसि निपातनात्।

अत एव यङ् लुक् भाषायामपि सिद्धः। नच यङ् लुक्यप्राप्त एव गुणाभावो निपात्यतामिति वाच्यम्, प्रकृतिग्रहणेन यङ्लुगन्तस्यापि ग्रहणात्। द्विः प्रयोगो द्विवचनं षाष्ठमिति सिद्धान्तात्।

बोभवीति, बोभोति। बोभूतः। बोभुवति।.....

बोभवाञ्चकार। बोभविता। अबोभवीत्। अबोभोत्। अबोभूताम् अबोभवुः। बोभूयात्। बोभूयाताम्। बोभूयास्ताम्। गातिस्थेति सिचो लुक्। यङो वेति ईट्पक्षे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद् वुक्। अबोभूवीत्। अबोभोत्। अबोभूताम्। अभ्यस्ताश्रयो जुस्। नित्यत्वाद् वुक्, अबोभूवुः। अबोभविष्यदित्यादि।

यङन्ततदादि शब्द स्वरूप से पर हलादि पित जो सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय उसको ईट् आगम विकल्प से होता है। 'भूसुवोः' सूत्र से गुण का जो निषेध होता है वह यङ् लुक् में भाषा में नहीं होता है, क्योंकि "बोभूतु तितिक्ते" से यङ् लुक् में वेद में ही गुणाभावनिपातन किया है वहां भी 'भूसुवोः' से गुणाभाव सिद्ध ही था अप्राप्तकार्य का निपातन करना चाहिये, प्राप्त का नहीं, वह निपातन व्यर्थ होकर ज्ञापन है भाषा में यङ् लुक् में गुणनिषेध वह नहीं करता अर्थात् गुण होता ही है। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि छान्दस यङ्लुक् भाषा में भी होता है। यङ् लुक् में शब्दान्तरत्व के कारण अप्राप्त गुणाभाव का ही निपातन है, यह कथन उचित नहीं है। यङ् प्रत्यय की प्रकृतिभूत धातु के ग्रहण से यङ् लुगन्त का भी ग्रहण होता है, क्योंकि षष्ठाध्याय के द्वित्व प्रकरण में पठित द्वित्वविधायक शास्त्र से विधीयमान द्वित्व वही प्रकृतिका केवल द्विर्वार उच्चारणमात्र ही है। यही सिद्धान्त है। यहां भेदबुद्धि या शब्दान्तरबुद्धि न करनी चाहिये।

'पुनः पुनः' 'अतिशयेन वा भवति' अर्थ में आत्मधारणानुकूल व्यापारार्थक भूधातु से 'धातोरेकाचः' सूत्र से यङ् प्रत्यय हुआ उसका 'यङोऽचि च' सूत्र से लुक्। प्रत्यय लक्षण से यङन्तत्व बुद्धि से द्वित्व अभ्यासादि कार्य अभ्यास का गुण 'बोभू' की धातुसंज्ञा लट् तिप् शप् लुक् 'यङो वा' से ईडागम गुण अवादेश बोभवीति। ईडागम के अभाव में बोभोति। लुङ् में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'अबोभूवीत्'—यहां 'गातिस्था' से सिच् का लोप करके 'यङो वा' से ईडागम पक्ष में गुण को बाधकर के नित्यत्व के कारण 'मुवोः' सूत्र से वुक् आगम हुआ। पक्ष में अबोभोत्। अबोभूवुः। यहां 'सिबन्यस्त' से झि को जुस् आदेश हुआ है। एवं नित्यत्व के कारण वुक् आगम भी हुआ है।

विमर्श—७।४।६५ पा० सू० 'बोभूतु' इति निपात्यते, किं निपात्यते? भवतेर्यङ्लुगन्तस्या-गुणत्वं निपात्यते। नैतदस्ति प्रयोजनम्। सिद्धमत्रागुणत्वं 'भूसुवोस्तिङि' इति। एवं तर्हि नियमार्थं भविष्यति, अत्रैव यङ् लुगन्तस्य गुणो न भवति नान्यत्र, क्व मा भूत् बोभवतीति। लिङर्थे लेट् 'लेटोऽडाटौ' इति अट्। यह भाष्यकार की उक्ति है।

यहां 'अत्रैव' के विभिन्न आचार्य भिन्न भिन्न व्याख्या करते हैं १—अत्रैव = छन्द में ही गुणाभाव से भाषा में यङ् लुक् एवं गुण होता है। २—अत्रैव = लेटि एव अर्थात् लेट् लकार में ही गुण का अभाव होता है, अन्य लकार में वेद में गुण होता है। इन दो व्याख्याओं में यहां ग्रन्थकार ने प्रथम व्याख्या का समाश्रयण किया है। द्वितीय व्याख्या में तो यङ्लुक् छान्दसमात्र विषय है भाषा में प्रयोग ही नहीं होता है यही लब्ध होता है।

श्रीनागेशभट्ट ने शेखर में 'परेतु लोट्येवेत्येवनियमः, 'बोभूतु' इत्यस्य छान्दसेपु पाठस्तु यङ्लुक्श्छान्दसत्वादेव, भाषायामस्य यङ्लुगन्तस्य प्रयोगसत्त्वे न मानम्। यह कहा है। लेट् लकार छान्दस है वहां ही भाष्यकार ने भी उदाहरण दिया है। इन सब मत पाठकों के विचारार्थ प्रस्तुत करके लेखक उपसंहार करता है कि प्रबल पक्ष प्रमाण एवं युक्ति युक्त द्वितीय पक्ष ही है। अतः यङ् लुक् भाषा में नहीं होता है यही सिद्धान्त है।

पास्पर्धीति, पास्पर्धि। पास्पर्धः। पास्पर्धति। पास्पर्त्सि। हुझल्भ्यो हेर्धिः। पास्पर्धि। लङ्—अपास्पर्त्, अपास्पर्द्। सिपि दश्चेति रुत्वपक्षे, 'रो रि' अपास्पाः।

जागार्द्धि। जाघात्सि। अजाघात्। सिपि रुत्वपक्षे अजाघाः। नाथृ—नानात्ति। नानात्तः। दध—दादर्द्धि। दादर्द्धः। दाधर्त्सि। अदाधत्। अदाद-र्द्धाम्। अदादधुः। अदाधः, अदाधत्। लुङि अदादार्धीत्, अदादर्धीत्। चो-स्कुदीति, चोस्कुन्ति। अचोस्कुन्। अचोस्कुन्ताम्। अचोस्कुन्दुः।

मोमुदीति, मोमोत्ति। मोमोदाञ्चकार। मोमोदिता। अमोमुदीत्। अमोमोत्। अमोमुत्ताम्। अमोमुदुः। अमोमुदीः, अमोमोः, अमोमोत्। लुङि गुणः—अमोमोदीत्। चोकूर्दीति। चोकूर्ति। लङ् तिप् अचोकूर्दीत्, अचो-कूर्त्। सिप् पक्षे अचोकूः। अचोखूः। अजोगूः। वनीवच्चीति, वनीवच्क्ति। वनीवक्तः। वनीवचति। अवनीवच्चीत्। अवनीवन्।

जङ्गमीति। जङ्गन्ति। अनुदात्तोपदेशेत्यनुनासिकलोपः। जङ्गतः। जङ्ग्-मति। 'म्वोश्च' जङ्गन्मि। जङ्गन्वः। एकाऽग्रहणेनोक्तत्वान्नेण्निषेधः। जङ्गमिता। अनुनासिकलोपस्याभीयत्वेनासिद्धत्वान्न हेर्लुक्—जङ्गहि। 'मो नो धातोः', अजङ्गन्। अनुबन्धनिर्देशान्न च्लेरङ्। ह्मन्यन्तेति न वृद्धिः—अजङ्गमीत्। अजङ्गमिष्टाम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पास्पर्धीति—स्पर्ध संघर्षे से यङ् उसका लुक् द्वित्वादि कार्य 'दीर्घोऽकितः' से अभ्यास का दीर्घ 'यङो वा' से ईट् विकल्प है, इट् के अभाव पक्ष में 'झषस्तथोः' से धकार 'झरो झरि सवर्णे' से विकल्प धलोप हुआ। लिट् में पास्पर्धाञ्चकार। लुट् में पास्पर्धिता। लृट् में पास्पर्धिष्यति। लोट् में पास्पर्धीतु। पास्पर्द्धु। पास्पर्धात्। पास्पर्धाम्। पास्पर्धतु। पास्पर्धि। हि को धिकर विकल्प से धकार का लोप हुआ। लङ्मे इडागमपक्ष में अपास्पर्धीत्।

रुत्वपक्षे—पक्षान्तर में तो अपास्पर्त्। अपास्पद्। लिङ् में पास्पर्ध्यात्। पास्पर्ध्यास्ताम्। पास्पर्ध्यास्ताम्। लुङ् में 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' से नित्य ईडागम, 'इट ईटि' से सकार का लोप अपास्पर्धीत्। अपास्पर्धिष्टाम्। अपास्पर्धिषुः। लृङ्मे अपास्पर्धिष्यत्।

जागाद्धि—गाधृ प्रतिष्ठादि अर्थ में है। ईट् पक्ष में जागाधीति। जागार्स्ति, 'एकाच' सूत्र से भष्भाव धकार को चर्त्व हुआ। लोट् में 'जागाधीतु' पक्षमें जागाद्धु। जागाद्धाम्। जागाधतु। लङ् में अजागाधीत्। अजाघात्। अजागाद्धाम्। अजागाधुः। लुङ् में अजागाधीत्। अजागाधिष्टाम्।

नाथृ नाधृ—याच्ञादि अर्थ में है। नानाक्ति ईडागमपक्ष में नानाथीति। दध धातु धारण अर्थ में है। ईट् पक्ष में दादधीति। लुङ् में 'अतो हलादेः' से विकल्प से वृद्धि होती है।

चोस्कुन्दीति—'स्कुंदि आप्रवणे', 'इदितो नुम् धातोः' से नुम्। ईडभाव में 'झरो झरि सवर्णे' से विकल्प से लोप। लङ् में ईट् पक्ष में अचोस्कुन्दीत्। लुङ् में 'अस्तिसिच' सूत्र से नित्य ईडागम अचोस्कुन्दीत। अचोस्कुन्दिष्टाम्।

मोमुदीति—मुद हर्षे 'नाभ्यस्तस्याचि' से अभ्यास गुण का निषेध हुआ। 'मोमोदिता' यहां 'न धातुलोप' सूत्र से गुणनिषेध होना चाहिये यह शङ्का न करनी, क्योंकि बहुल ग्रहण से प्राप्त यङ् लुक् अनैमित्तिक है। लुङ् में सिच् निमित्तक गुण है अतः 'नाभ्यस्तस्याचि' से निषेध की शङ्का न करनी चाहिये।

चोकूर्दीति—कुर्द खुर्द गुर्द गुद क्रीडायाम्। लङ् में तिप् ईट् पक्ष में अचोकूर्दीत्। अचोखुर्दीत्। अचोगुर्दीत्। 'दश्च' से रुत्व पक्ष में अचोकूः। वनीवच्चीति—वन्चु गतौ यहां 'नित्यं कौटिल्ये' सूत्र से यङ् 'नीग्वञ्चु' से अभ्यास को नीगागम यहां यङ् लुक् शब्द से लुप्त होने से तन्निमित्तक नलोप न हुआ। 'वनीवक्तः' यहां तस् ङित होने से 'अनिदिताम्' से नकार का लोप हुआ। लोट् में वनीवच्चीतु। वनीवक्तु। वनीवक्तात्। वनीवक्ताम्। वनीवचतु। वनीवचिच। वनीवच्चानि।

जङ्गमीति—यहां 'नुगतोऽनुनासिकान्तस्य' से नुक् हुआ जङ्गमीति—यहां गमहन सूत्र से उपधाभूत अकार का लोप हुआ। अजङ्गन्। ईडागम पक्ष में अजङ्गमीत्। अजङ्गताम्। अजङ्गमुः। अजङ्गमीः। अजङ्गतम्। अजङ्गत। अजङ्गमम्। अजङ्गन्व। अजङ्गन्म। 'अजङ्गमीत्' यहां 'हूमूयन्त' से वृद्धि का निषेध हुआ। जङ्गमिता में 'एकाच्' सूत्र में एकाच् ग्रहण किया है तो भी 'क्तिपा शपा' यह परिभाषा अनित्य के कारण न लगी इट् निषेध न होकर इडागम हुआ। लोट्मध्यम पुरुष एक वचन में नकार का जात लोप आभीयत्व के कारण असिद्ध है। अतः 'हि' का अतो हेः सूत्र से लुक् न हुआ। वस्तुतः 'प्रत्ययाप्रत्ययोः प्रत्ययस्यैव ग्रहणम्' परिभाषा से 'अतो हेः' में अकार प्रत्यय का गृहीत है लोप की प्राप्ति ही नहीं है, 'असिद्धवदत्राभात्' सूत्रभाष्य में प्रत्याख्यात है। अजङ्गन् में 'मोनो धातोः' से नत्व हुआ। लुङ् में लकारानुबन्ध होने से अनुबन्ध से निर्दिष्ट कार्य यङ् लुक् में न हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हन्तेर्यङ्लुक्, अभ्यासाच्चेति कुत्वं यद्यपि होहन्तेरित्यतो हन्तेरित्यनुवर्त्त्य विहितं तथापि यङ्लुकि भवत्येवेति न्यासकारः । श्तिपा शपेति निषेधस्त्वनित्यः, गुणो यङ्लुकोरिति सामान्यापेक्षज्ञापकादिति भावः । जङ्घनीति जङ्घन्ति । जङ्घतः । जङ्घ्नति । जङ्घनिता । श्तिपा निर्देशाज्जादेशो न जङ्घहि । अजङ्घनीत् । अजङ्घन् । जङ्घन्यात् ।

आशिषि तु वध्यात् । अवधीत् । अवधिष्टामित्यादि । वधादेशस्य द्वित्वं न भवति, स्थानिवत्त्वेनानभ्यासस्येति निषेधात् । तद्धि समानाधिकरणं धातोर्विशेषणं बहुव्रीहिबलात् । आङ्पूर्वात्तु 'आङो यमहन' इत्यात्मनेपदम् । आजङ्घते इत्यादि ।

उत्परस्येति तपरत्वान्न गुणः ।

हलि चेति दीर्घस्तु स्यादेव, तस्यासिद्धत्वेन तपरत्वनिवर्त्यत्वायोगात् । चञ्चुरीति । चञ्चूर्ति । चञ्चूर्तः । चञ्चुरति । अचञ्चुरीत् । अचञ्चूः । चङ्घनीति । चङ्घन्ति । जनसनेत्यात्त्वम् । चङ्घातः । गमहनेत्युपधालोपः, चङ्घन्ति । चङ्घाहि । चङ्घनानि । अचङ्घनीत् । अचङ्घन् । अचङ्घताम् । अचङ्घ्नुः । ये विभाषा, चङ्घायात् । चङ्घन्यात् । अचङ्घानीत् । अचङ्घनीत् ।

हिंसार्थक हन्धातु से यङ्लुक् हुआ । 'अभ्यासाच्च' सूत्र से कुत्व होकर हकार को घकारादेश हुआ । यद्यपि 'अभ्यासाच्च' सूत्र में 'हो हन्तेः' सूत्र से श्तिप् से निर्दिष्ट 'हन्तेः' की अनुवृत्ति है, कुत्व श्तिवन्त से निर्दिष्ट है, अतः 'श्तिपा शपा' परिभाषा से कुत्व न होना चाहिये किन्तु वह परिभाषा अनित्य है । अतः कुत्व हुआ अनित्य में प्रमाण 'गुणो यङ्लुकोः' सूत्र ही है, तथाहि 'सन्यङोः' में 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' से एकाच् का सम्बन्ध से द्वित्व विधायक शास्त्र एकाच् पद सम्बद्ध होने से 'श्तिपा शपा' परिभाषा से एकाच् पद निर्दिष्ट कार्य द्वित्वरूप यङ्लुक् में होगा ही नहीं द्वित्वाभाव से अभ्यास संज्ञा का सुतराम् अभाव से अभ्यास का गुणविधानार्थ 'गुणो यङ्लुकोः' व्यर्थ हो कर ज्ञापन करता है कि वह परिभाषा अनित्य है, यह सामान्य ज्ञापन हुआ "असति बाधके प्रमाणानां सामान्ये पक्षपातः' इस लाघवमूलक न्याय से । विशेष ज्ञापन—"एकाच् निर्दिष्टं कार्यं यङ् लुकि प्रवर्तते" यह ज्ञापन नहीं होता है । सब अंशों से विशिष्ट वह परिभाषा अनित्य होती है न एकांश युक्त ।

जङ्घनीति यह हन्धातु के अभ्यासोत्तर कुत्व नुक् आगम ईडागम अनुस्वार परसवर्ण हुआ । ईडागम के अभाव में जङ्घति । जङ्घतः । यहां 'अनुदात्तोपदेश' से नकार का लोप हुआ । जङ्घ्नति यहां 'गम हन्' से अकार का लोप कुत्वादि । जङ्घनिता जङ्घहि यहां 'हन्तेर्जः' से श्तिप् निर्देश के कारण जादेश न हुआ 'श्तिपा शपेति' परिभाषा से । लङ् में अजङ्घनीत् । विधि लिङ् में जङ्घन्यात् । आशीर्लिङ् में जंहन् में हन्त्व बुद्धि से वधादेश हुआ, अकार का 'अतो लोपः' से लोप होकर वध्यात् रूप हुआ । लुङ् में जंहन् को वधादेश से अवधीत् रूप हुआ । द्विरुक्त हन् के स्थान में जायमान वधादेश को द्वित्व नहीं होता है, कारण के स्थानिवद्भाव से 'अनभ्यासस्य' यह निषेध हो जाता है । अनभ्यासस्य पदार्थ धातु से अन्वित है अभ्यासघटितत्वाभावविशिष्ट जो धातु यह अर्थ है । नास्ति अभ्यासो यत्र = धातौ यह अनभ्यास में बहुव्रीहि समास है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विमर्श - आशीर्लिङ् में 'वध्यात्' एवं लुङ् में 'अवधीत्' यह रूप द्वय द्वित्व निष्पन्न को वधादेश से मूल में वर्णित है, वह पक्ष असङ्गत है। क्योंकि द्वित्वनिष्पन्न समुदाय में धातुत्व नहीं है, एवं द्वित्वनिष्पन्न पूर्व भाग में भी धातुत्व नहीं है किन्तु द्वित्वनिष्पन्न समुदाय घटक उत्तर खण्ड में ही धातुत्व है। इसमें प्रमाण भाष्य ही है। 'अस्तेर्भूः' सूत्र पर भाष्यकार ने कहा है कि 'आर्धधातुके' इसको परसप्तमी स्वीकार करेगें तब लिट् अवस्था में ही अस् का द्वित्व होकर अस् अस् लिट् = ल यहां लिडादेश प्रत्यय अब होकर 'लिट् च' से धातु संज्ञा होगी तब पर अस् को भू आदेश होकर पूर्व अस् का श्रवण प्रसङ्ग होगा, "परस्य भूभावे कृते पूर्वस्य श्रवणं प्राप्नोति" अर्थात् लिडादेश से परत्व के कारण द्वित्व होकर तदनन्तर लिडादेश होगें तब आर्धधातुकसंज्ञा। इससे स्पष्ट हुआ कि द्वित्वनिष्पन्न समुदाय में धातुत्व नहीं है। किन्तु पर भाग जो प्रत्यय से अव्यवहित पूर्व में है उसी में 'प्रकृत्यर्थान्वितस्वार्थबोधकत्वं प्रत्ययानाम्' नियम से धातुत्व एवं प्रत्ययार्थ का अन्वय होता है। अतः पूर्वोक्त सन्दर्भ से 'जंवध्यात्' यही रूप सिद्धान्त सिद्ध है। वध्यात् नहीं। एवं लुङ् में अजंवधीत् यही उचित रूप है यह श्रीपञ्चोलिमत भाष्यानुगृहीत है। मूलकार ने माधवादि मतानुरोध से कहा है। यङ् लुक् में वध्यात् प्रयोग ही प्रामाणिक है, यह कथन भी असङ्गत है, अतः एकाच् पदघटित 'सन्यङोः' से द्वित्वाभाव है आदि कथन सर्वथा उपेक्ष्य है। 'दियते दिगि लिटि' सूत्र भाष्य पूर्ववर्णितार्थ में प्रमाणभूत है। तथाहि—"दिग्यादेशे कृते द्विर्वचनं प्राप्नोति" अतः पूर्व द्वित्व करके 'साभ्यासस्य" इति वक्तव्यम्' से अभ्यास विशिष्ट उत्तर खण्ड द्वित्व निष्पन्न को दिग्यादेश होता है यह भाष्य सन्दर्भ एवं वार्तिकारम्भ से भी यह सिद्ध हुआ कि द्वित्वनिष्पन्न समुदाय में धातुत्वाभाव ही है। ६।४।९ इस सूत्र का भाष्य एवं उद्द्योत देखने योग्य है। इति श्री पञ्चोलिनः।

आङ् पूर्वक हन् धातु 'आङो यमहनः' से आत्मनेपद है—आजङ्घते। प्रकृति ग्रहण से यङ् लुगन्त का भी ग्रहण क्वचित् होता है, अतः आत्मनेपद हुआ।

चञ्चूरीति—चर गति में एवं भक्षण में है। चरफलोश्च से अभ्यास को नुक् 'उत्परस्यातः' इससे उकारादेश, उत् में तपरत्व के कारण गुणाभाव है। 'हलिच' से दीर्घ तो होता ही है। दीर्घ असिद्ध है, अतः तपरत्व की निवृत्ति का अयोग है। अर्थात् ह्रस्वत्व समानाधिकरण उत्व वहां अक्षुण्ण ही है। चन्चूर्ति। चङ्क्नीति—खनु अवदारणे से यङ् लुक् में यह रूप है। ईडागम के अभाव में 'चङ्क्नन्ति'। जनसन सूत्र से आत्व होकर चङ्घातः। गमहन् से उपधालोप करके चङ्घ्नुति। 'ये विभाषा' से विकल्प से आत्व करके चङ्घायात्। चङ्घ्यात्। अचङ्घानीत्। अचङ्घनीत्।

उतो वृद्धिरित्यत्र नाभ्यस्तस्येत्यनुवृत्तेरुतो वृद्धिर्न। योयवीति। योयोति। अयोयवीत्। अयोयोत्। योयुयाद्। आशिषि दीर्घः। योयूयात्। अयोयावीत्।

नोनवीति। नोनोति। जाहेति। जाहाति। ई हल्यघोः। जाहीतः। इह जहातेश्च, आ च हौ, लोपो यि धुमास्था, 'एलिङि' इत्येते पञ्चापि न भवन्ति, श्तिपा निर्देशात्।

जाहति। जाहेषि। जाहासि। जाहीथः। जाहिथ। जाहीहि। अजाहेत्। अजाहात। अजाहीताम्। अजाहुः। जाहीयात्। आशिषि जाहायात्। अजाहासीत्। अजाहासिष्टाम्। अजाहिष्यत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लुका लुप्ते प्रत्ययलक्षणाभावात् 'स्वपिस्यमि' इत्युत्त्वं न। रुदादिभ्य इति गणनिर्दिष्टत्वादिण्न। सास्वपीति। सास्वप्नि। सास्वप्नः। सास्वपति। असास्वपीत्। असास्वपत्। सास्वप्यात्। आशिषि तु वचिस्वपीत्युत्त्वम्। सासुप्यात्। असास्वापीत्। असास्वपीत्।

योयवीति, योयोति—'उतो वृद्धिः' सूत्र में 'नाभ्यस्तस्य' इस अंश की अनुवृत्ति है अतः उकार की वृद्धि यहां न हुई। आशिषि अकृत सूत्र से दीर्घ हुआ योयूयात्। लुङ् में अयोयावीत् रूप हुआ नोनवीति, नोनोति। ईडागम एवं तदभाव में रूप हुआ।

जाहेति—ओहाक् त्यागे से यङ् लुक् में ईडागम पक्ष में गुण से रूप है। ईडागम के अभाव में जाहाति। द्विवचन में 'ई हल्यघोः' से ईकार दीर्घ होकर जाहीतः। इस स्थल में 'जहातेश्च' सूत्र की अप्रवृत्ति है। एवं लोट् मध्यम पुरुष एक वचन में 'आ च हौ' सूत्र की अप्रवृत्ति है। विधिलिङ् में 'लोपो यि' की अप्रवृत्ति है। 'घुमास्था' की एवं एलिङि की भी अप्रवृत्ति यङ् लुक् हा-धातु में है। वे पांच सूत्र श्तिप् निर्देश के कारण यङ्लुक् में अप्रवृत्त होते हैं। ओहाक् एवं ओहाङ् दोनों के यङ् लुक् में समानरूप है। ङित् निमित्तक आत्मने पद की अनुबन्धनिर्दिष्ट के कारण यङ् लुक् में प्रवृत्ति नहीं है। 'भृञामित्' को भी यहां अप्रवृत्ति है वह इलुनिमित्त द्वित्वनिमित्तक अभ्यास को विधान करता है इकारादेश। दीर्घोऽकितः। में अकित् धातु का विशेषण से 'हाक्' में कित्त्व है उभय धातु के तुल्य रूप कैसे यह शङ्का भी न करनी चाहिये। वहां अकित् न विद्यते कित् यस्य अभ्यासस्य यह अर्थ से अन्यपदार्थ वहां अभ्यास है। धातु नहीं है। यदि अकित् में अन्य पदार्थ धातु मानेंगे तो वनीवच्चीति वहां दीर्घापत्ति होगी।

सास्वपीति—यहां यङ् का लोप होने से 'लुका लुप्ते प्रत्ययलक्षणं नास्तीति' से प्रत्यय लक्षण निषेध प्रयुक्त 'स्वपिस्यमि' से उकारादेश न हुआ। एवं 'रुदादिभ्यः' यह गणनिर्देश कार्य से इडागम न हुआ। सासुप्यात् यहां वचिस्वपि से उकारादेश हुआ। लुङ् में 'अतो हलादेः' से विकल्प वृद्धि कर असास्वपीत् एवं असास्वापीत् दो रूप हुए अभ्यासको दीर्घ दीर्घोऽकितः से हुआ।

२६५३ रुग्रिकौ च लुकि ७।४।९१।

ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रुक् रिक् रीक् एते आगमाः स्युर्यङ् लुकि।

यङ्लुक् होने पर ऋकारोपध धातु के अवयव अभ्यास को रुक, रिक्, रीक्, ये तीन आगम पर्याय से होते हैं। रुक् में उक् की इत्संज्ञा से केवल रेफ अवशिष्ट रहता है रिक् में ककार की इत्संज्ञा लोप एवं रीक् में भी ककारेत्संज्ञा लोप से 'रि' 'री' मात्र अवशिष्ट रहता है।

२६५४ ऋतश्च ७।४।९२।

ऋदन्तधातोरपि तथा। वर्वृतीति। वरिवृतीति। वरीवृतीति। वर्वर्ति। वरिवर्ति। वरीवर्ति। वर्वृतः ३। वर्वृततः ३। वर्वर्तामास ३। वर्वर्तिता ३। गणनिर्दिष्टत्वात् 'न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः' इति न, वर्वर्तिष्यति ३। अवर्वृतीत् ३। अवर्वर्त् ३। सिपि 'दश्च' इति रुत्वपक्षे 'रो रि' अवर्वोः ३। गणनिर्दिष्टत्वादङ् न, अवर्वर्तीत् ३। चर्करीति ३। चर्कर्ति। चरिकर्ति चरीकर्ति। चर्कृतः ३। चर्कृति ३। चर्कराञ्चकार ३। चर्करिता ३। अचर्करीत् ३। अचर्कः ३। चर्कर्यात् ३। आशिषि रिङ्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चक्रियात् ३। अचकर्करीत् ३। ऋतश्चेति तपरत्वान्नेह---कृ विक्षेपे चाकर्तिं। तातर्ति। तातीर्तः। तातिरति। तातीर्हि। तातराणि। अतातरीत्। अतातः। अतातीर्ताम्। अतातरुः। अतातारीत्। अतातारिष्टाम् इत्यादि।

यङ् लुक् में ऋकारान्त धातु के अभ्यास को रुक् रिक् रीक् आगम होते हैं। रुक्-वर्वर्तीति। रिक्—वरिवृतीति। रीक्—वरीवृतीति। वे तीन रूप ईडागम पक्ष में हैं। ईडागमाभाव में वर्वर्ति, वरिवर्ति, वरीवर्ति, रूप हुए। तस् में वर्वृतः, वरिवृतः, वरीवृतः, तीन रूप। झि में वर्वृतति, वरिवृतति वरीवृतति रूप हैं। लिट् में वर्वर्तांमास, वरिवर्तांमास, वरीवर्तांमास तीन रूप हुए। लुट् में वर्वर्तिता, वरिवर्तिता, वरीवर्तिता। लृट् में 'न वृद्भ्यः' सूत्र की गणनिर्दिष्टत्व के कारण प्रवृत्ति न हुई अतः ईडागम का निषेध न हुआ। वर्वर्तिष्यति। वरिवर्तिष्यति। वरीवर्तिष्यति। लोट् में छः रूप हुये प्रत्येक में। लङ् में छः रूप हैं यथा—अवर्वृतीत् ३। अवर्वर्त् ३। सिप् में 'अवर्वाः' ३ यहां 'दश्च' सूत्र से रु हुआ एवं 'रोरि' से रेफ का लोप है। लुङ् में गणनिर्दिष्टत्व के कारण अङ् न हुआ—अवर्तीत्।

डुकृञ् करणे का यङ् लुक् में रूपों का क्रम—चर्करीति ३ रूप। ईडागम के अभाव में चर्कर्ति ३। आशीर्लिङ् में रिङ् आदेश चर्क्रियात्। लुङ् में अचकर्करीत्।

ऋतश्च सूत्र में तपरत्व के कारण से यह सूत्र दीर्घ ऋकारान्त धातु के अभ्यास को रुक् आदि आगम विधान नहीं करता है। यथा 'कॄ विक्षेपे' में चाकर्ति। तॄ में तातर्ति। लुङ् में अतातरीत्। आदि रूप हैं।

अर्तेर्यङ्लुकि द्वित्वेऽभ्यासस्योरदत्त्वं रपरत्वम्, हलादिःशेषः, रुक्। रिग्रीकोस्तु 'अभ्यासस्यासवर्णे' इति इयङ्। अरर्ति, अरियर्ति। अररीति। अरियरीति। अर्क्तेः। अरियृतः। झि अत्। यण्, रुको 'रो रि' इति लोपः। न च तस्मिन् कर्तव्ये यणः स्थानिवत्त्वम्, पूर्वत्रासिद्धीये तन्निषेधात्। आरति। अरियृति। लिङि श्ितपा निर्देशाद् 'गुणोऽर्ती' ति गुणो न। रिङ्, रलोपः, दीर्घः। आरियात्। अरियृयात्।

गृहू ग्रहणे। जगृर्हीति ३। जगर्ढि ३। जगृर्ढः ३। जगृर्हति ३। अजगर्ट् ३। गृह्णातेस्तु जाग्रहीति। जाग्राढि। तसादौ ङिन्निमित्तं सम्प्रसारणम्। तस्य बहिरङ्गत्वेनासिद्धत्वान्न रुगादयः। जागृढः। जागृहति। जाग्रहीषि, जाग्रक्षि। लुटि जाग्रहिता। ग्रहोऽलिटीति दीर्घस्तु न, तत्रैकाच इत्यनुवृत्तेः। माधवस्तु दीर्घमाह, तद्भाष्यविरुद्धम्।

जगृर्धीति ३। जगर्द्धि ३। जगृर्द्धः ३। जगृर्धति ३। जगृर्धीषि। जगर्द्धि ३। अजगृर्धीत् ३। इडभावे गुणः, हलङ्यादिलोपः, भष्भावः, जश्त्वचर्त्वे। अजगर्धर्त् ३। अजगृर्द्धाम् ३। सिपि दश्चेति पक्षे रुत्वम्, अजगर्धाः ३। अजगर्धीत ३। अजगर्धिष्टाम् ३। पाप्रच्छीति, पाप्रष्टि। तसादौ ग्रहिज्येति सम्प्रसारणं न भवति, श्तिपा निर्देशात्। च्छ्वोः शूडिति शः। व्रश्चेति षः। पाप्रष्टः। पाप्रच्छति। पाप्रश्मि। पाप्रच्छ्वः। पाप्रश्मः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यकारवकारान्तानां तूट् भाविनां यङ् लुङ् नास्तीति च्छ्वोरिति सूत्रे भाष्ये ध्वनितम्। कैयटेन च स्पष्टीकृतम्। इदं च्छ्वोरिति यत्रोट् तद्विषयकम्। ज्वर-त्वरेत्वूट् भाविनोः स्त्रिविमव्योस्तु यङ् लुगस्त्येवेति न्याय्यम्। माधवादि-सम्मतं च।

मठ्य बन्धने। अयं यान्त ऊठ् भावी। 'तेवृ देवृ देवने' इत्यादयो वान्ताः। हय गतौ-जाहयीति। जाहति। जाहतः। जाहयति। जाहयीषि, जाहसि। वलि लोपे यस्यादौ दीर्घः। जाहामि, जाहावः, जाहामः। हयंगति कान्त्योः। जाह-र्यीति जाहर्ति। जाहर्तः। जाहर्यति। लोटि--जाहर्हि। अजाहः। अजाहर्ताम्। अजाहर्युः। मव बन्धने।

ऋ धातु से यङ् उस का लुक् कर द्वित्व पश्चात् अभ्यास को उरदत्व एवं रपरत्व होता है, 'हलादिःशेषः' से अभ्यास में आदि हल् का शेष अर्थात् अन्यहल् का लोप होता है। पश्चात् रुक् का आगम हुआ—अरर्ति। रिक् एवं रीक् के आगम में तो अभ्यासस्यासवर्णे सूत्र से इयङादेश में एक समान रूप दोनों का होता है—अरियर्ति। ईडागम पक्ष में अररीति, अरियरीति यहां रिक् रीक् पक्ष में इयङादेश से अरियृतः। बहुवचन में झि प्रत्ययको अत्, यण् रुक् पक्ष में 'रो रि' से लोप। लोप कर्तव्य समय में यणादेश का स्थानिवद्भाव 'अचः, परस्मिन्' से न हुआ, त्रिपादी में असिद्धत्व 'पूर्वत्रासिद्धम्' से होने से स्थानिवद्भाव की प्राप्ति ही नहीं है पूर्वत्रासिद्धम् से असिद्ध-त्वमूलक ही "पूर्वत्रासिद्धीये न स्थानिवत्" वचन है वह अपूर्व = नूतन नहीं है, आरति। रिक्, रीक् पक्ष में इयादेश ऋकार को यण् से रेफ अरियृति। लिङ् में 'गुणोऽर्ति' से गुण न हुआ, वह ङित्पा निर्दिष्ट होने से यङ् लुक् में उसकी अप्रवृत्ति होती है। रिङादेश, रलोप एवं दीर्घ होकर आरियात्। अरियृयात्।

गृहू ग्रहणे जगृंहीति, जरिगृहीति, जरीगृहीति। इडागम के अभावपक्ष में जगंढि, जरिगर्ढि। जरीगर्ढि। यहां गुणोत्तर 'हो ढः' से ढत्व 'झषः' से धत्व ष्टुत्व ढलोप हुआ। जगृंहति जरिगृहति जरीगृहति। लङ् में अजघर्ट् अजरिघर्ट् अजरीघर्ट्।

ग्रह उपादाने का यङ्लुक् में यङ्लुक् द्वित्वादिकार्य 'दीर्घोऽकितः' से दीर्घ अभ्यास के अकार का आकार हुआ 'यङो वा' से ईडागम हुआ—जाग्रहीति। इडागमाभावे जाग्राढि-ढत्व धत्व ष्टुत्व ढलोप दीर्घ। जागृढः यहां तस् प्रत्यय ङित् है तन्निमित्तक 'ग्रहिज्या' से सम्प्रसारण कर पूर्वरूप हुआ यहां ऋकारोपध होने से रुक् आदि तीनों आगम प्राप्त है, किन्तु अन्तरङ्ग परिभाषा से अन्तरङ्ग रुगादिकर्तव्य में जातबहिरङ्ग सम्प्रसारण असिद्ध हुआ, अतः वे आगम न हुए। बहुवचन में जागृहति। ईडागम में जाग्रहीषि, पक्ष में जाग्रक्षि मघ्भाव हुआ है। लुट् में जाग्रहिता। यहां एकाच् पद घटित ग्रहोऽलिटि की अप्रवृत्ति है, एकाच् निर्दिष्ट कार्य यङ्लुक् में प्रवृत्त नहीं होता है अतः दीर्घ न हुआ। माधवाचार्य यहां दीर्घ करते हैं वह कार्य भाष्यविरुद्ध है, हरदत्त एवं कैयट विरुद्ध भी है। मनोरमा में विशद रूप से विरोध की उपपत्ति की है। 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' सूत्र में "ग्रहेरङ्गात्" इस भाष्य के प्रतीक को लेकर कैयट ने कहा तृच् प्रत्यय निमित्तक अङ्गसंज्ञा यङन्त की है, क्योंकि वह तृच् यङन्त से विहित है, ग्रहरूप यङ् वहां नहीं है, अतः वहां दीर्घाभाव है जरिग्रहिता। एकाच् ग्रहरूप अङ्ग यङन्त एवं यङ्लुगन्त में नहीं उभयत्र दीर्घाभाव ही है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यहां दीर्घाभाव में युक्ति ग्रह्रूप अङ्गाभाव एवं एकाच् की अनुवृत्ति २ समाधान है। ण्यन्त ग्रह से दीर्घाभाव में १-ग्रहरूपाभाव, २-विहित विशेषण; १-णिलोप का स्थानिवद्भाव, तीन समाधान है, यङन्त से दीर्घाभाव में चार समाधान है, पूर्वोक्त तीन एवं एकाच् की अनुवृत्ति।

"यङ्लुगन्ताण्णिजन्ताच्च यङन्ताच्च ग्रहेरिटः।
द्विधा त्रिधा चतुर्धा च दीर्घप्राप्तिः समाहिता॥"

गृधु अभिकाङ्क्षायाम्—ईडागम एवं रुक् पक्ष में जगृंधीति, रिक् जरिगृधीति, रीक् जरीगृधीति। ईडागम के अभाव में रुगादि में जर्गर्द्धि, जरिगर्द्धि जरीगर्द्धि। तस् में जर्गृर्द्धः ३। 'एकाचो वश' से भष्भाव-जर्घर्त्सि। लङ् में अजर्गृधीत्। ईडागमाभाव में—'हल्ङ्याप्' से तकारलोप भष्भाव जश्त्व ५वं चर्त्व से अजर्घर्त्। अजरिर्घर्त्। अजरीर्घर्त्। अजर्गृधाम् ३। सिप् में अजर्घाः ३। लङ् म० पु० एक वचन में यङ् उसका लोप सिप् के इकार का लोप 'हल्ङ्याद्' से सकार का लोप गुण एवं रपरत्व भष्भाव जश्त्व दश्च से रुत्व रेफ रत्व ढ्लोप दीर्घ से रूप सिद्धि हुई।

"गृधेर्यलोपे लङि सेरिलोपे हल्ङ्यादिलोपे रपरे गुणे च।
भष्भावजश्त्वे च रुरेफरत्वे ढ्लोपदीर्घे च भवेदजर्घाः॥"

लुङ् में अजर्गर्धीत्। अजरिगर्धीत्। अजरीगर्धीत्।

प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्—

पाप्रच्छीति अभ्यास के अकार का 'दीर्घोऽकितः' से दीर्घ हुआ है। ईडागम के अभाव में पाप्रष्टि—'ग्रश्चभ्रस्ज' से षकारादेश ष्टुत्व हुआ। तसादि प्रत्यय ङित पर में रहते ङितपा निर्देश के कारण 'ग्रहिज्या' से सम्प्रसारण का अभाव हुआ, 'च्छ्वोः' सूत्र से तुक् विशिष्ट छकार को शकारादेश हुआ, उस तालव्यशकार को ग्रश्चभ्रस्ज से षकारादेश हुआ, ष्टुत्व से तस् के तकार को टकारादेश पाप्रष्टः।

पङ्क्ति—भविष्यत् काल में जिन यकारान्त एवं वकारान्त धातुओं का ऊठ् होने वाला है उसके उत्तर यङ्लुक् नहीं होता है। यह 'च्छ्वोः' सूत्र के भाष्य में कहा है, भाष्यकार का आशय जो इस विषय में है उसको श्रीकैयटोपाध्याय ने स्पष्ट वर्णन किया है 'च्छ्वोः' सूत्र से जहां ऊठ् भावी है उस विषयक यह भाष्य है, 'ज्वरत्वर' सूत्र से ऊठ्भावी जहां है वहां यङ्लुक् होता ही है। यथा स्निवि एवं मन्य का ऊठ् होनेपर भी यङ्लुक् हुआ। यह पक्ष उचित एवं माधव सम्मत है।

विमर्श—यकारान्त, वकारान्त ऊठ् भावी धातुओं का यङ् लुक् नहीं है इसमें 'च्छ्वोः', सूत्रस्थ भाष्यकार का ध्वनन = कथन का स्पष्ट निरूपण कीजिये? इस प्रश्न का उत्तर—यह आशय भाष्यकार का है—'च्छ्वोः शूट'—सूत्र में कित् की अनुवृत्ति आती है या नहीं?, इस प्रकार पक्षद्वय का निर्देशकर कुछ दोषों का अनुवृत्ति पक्ष में एवं अननुवृत्ति में प्रदर्शन करके एवं उन दोषों का भाष्य में भाष्यकारने उद्धार करके भगवान् भाष्यकार ने कहा कि "एतावानेव विशेषः = इतना ही विशेष है कि अनुवर्तमाने किद्ग्रहणे 'छः षत्वं वक्तव्यम्' इति = (ग्रश्नेतिसूत्रे इति शेषः) यहां कित् की अनुवृत्ति करने पर 'ग्रश्चभ्रस्ज' सूत्र में छकार को षत्वार्थ वहां छकार ग्रहण कहना चाहिए। कित् की अनुवृत्ति 'च्छ्वोः' में नहीं है तो इसी से छकार को शकार कर च्छ्वोः से विहित शकार को 'ग्रश्चभ्रस्ज' से शकारान्तत्व के कारण षकार विधान कर देगा 'प्रष्टा' 'प्रष्टुम्' इत्यादि प्रयोगों की सिद्धि हो जायेगी 'ग्रश्चभ्रस्ज' सूत्र में छकार ग्रहण नहीं करना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चाहिये। इस प्रकार भाष्यकथन से 'ऊठ्भाविधातुओं से यङ् लुक् नहीं होता है यह अनुक्त भी उक्तप्रायः ही है, 'अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः' इससे इस कथन को न मानेंगे, अर्थात् यकारान्त-वकारान्तधातुओं को ऊठ् भावी है उनका यङ् लुक् होता है, यह असत् पक्ष को स्वीकार करेंगे तो दिव् धातु से यङ् लुक् करने पर 'यङो वा' से ईडागम के अभाव पक्ष में 'देदेति' 'देदेषि' आदि प्रयोगों में ऊठ् की प्रवृत्ति से या अप्रवृत्ति से महान् विशेष होने की सम्भावना है, 'च्छ्वोः' सूत्र में क्ङिद् ग्रहण की अनुवृत्ति के अभाव में ऊठ् की प्रवृत्ति से 'देद्योति' 'देद्योषि' इत्यादि रूपों में विशेषता का लाभ से। तव 'एतावानेव विशेषः' इतना ही विशेष है तदर्थं घटक 'ही' अर्थ का प्रतिपादक एवकारसे विरोध होगा। अतः भाष्यमर्यादासंरक्षक आचार्य कहते हैं कि 'च्छ्वोः' सूत्र से भविष्यकाल में ऊठ् भावियकारान्त वकारान्त धातुओं से यङ् लुक् होता ही नहीं है। इति दिक् यह अतीव प्रसिद्ध विषय है। इसको सदा स्मृति पथ में रक्खें।

स्त्रिवु गतिशोषणयोः, मव बन्धने से यङ् लुक् एवं ज्वर-स्वर से ऊठ् होता ही है। मन्य बन्धनार्थक यान्त ऊठ् भावी है। वान्त देवनार्थक तेवृ, देवृ, धातु है। गत्यर्थक इय् धातु का यङ् लुक् में जाहयीति ईडागम पक्षमें। अभाव पक्ष में 'जाहति' यहां यकार का लोप हुआ 'लोपोव्योः' सूत्र से। जाहतः। यहां भी यकारलोप अभ्यास का दीर्घोऽकितः से दीर्घ। झि को अत जाहयति। जाहयीषि। ईडागमाभावे यकार लोप जाहसि। जाहामि जाहावः जाहामः यहां यकार का 'लोपोव्योः' से लोप 'अतो दीर्घो यधि' से दीर्घ हुआ।

कान्ति एवं गति में इर्य धातु का जाहर्यीति रूप ईडागम में। पक्ष में जाहर्ति। लङ् में अजाहः।

मव धातु बन्धनार्थक से यङ् उसका लुक् कर वक्ष्यमाण सूत्र से ऊठ् होता है।

२६५५ ज्वरत्वरस्त्रिव्यविमवामुपधायाश्च ६।४।२०।

ज्वरादीनामुपधावकारयोरूठ स्यात् क्ङौ झलादावनुनासिकादौ च प्रत्यये। अत्र क्ङितीति नानुवर्तते, अवतेस्तुनि ओतुरिति दर्शनात्। अनुनासिकग्रहणं चानुवर्तते, अवतेर्मन् प्रत्यये तस्य टिलोपे ओमिति दर्शनात्।

ईडभावे ऊठि पितिगुणः, मामोति, मामवीति। मामूतः। मामवति। मामोषि। मामोमि। मामावः। मामूमः। मामोतु। मामूतात्। मामूहि। मामवानि। अमामोत्। अमामोः। अमामवम्। अमामाव। अमामूव।

तुर्वी हिंसायाम्। तोतूर्वीति।

क्विप् प्रत्यय पर में रहे, या झलादि प्रत्यय परमें रहें, या अनुनासिकादि प्रत्यय पर में रहते, ज्वर, ज्वर, स्त्रिवि, अवि, मव, इन धातुओं की उपधा एवं वकार इन दोनों के स्थान में ऊठ् आदेश होता है। इस सूत्र में 'क्ङिति' की अनुवृत्ति नहीं है किसी ने अनुवृत्तिकर 'झलादि कित् एवं ङित्' परमें रहे ऐसा व्याख्यान किया है वह अत्यन्त असङ्गत है। रक्षणार्थक अव धातु से तुन् प्रत्यय कर अव् के स्थान में ऊठ् कर गुण से 'ओतु' ऐसा प्रयोग दर्शन से क्ङित् की यहां अननुवृत्ति ही है।

अनुनासिकस्य सूत्रसे ङित की अनुवृत्ति न होने पर भी स्वरितत्व प्रतिज्ञा बल से अनुनासिक की अनुवृत्ति आती है वह ऊठ् प्रवृत्ति में निमित्त होने से निमित्तताख्या विषयता उसमें है, अतः सप्तम्यन्तत्वेन उसका अर्थवशात् विपरिणाम हुआ। अव् धातु से मन् प्रत्यय ऊठ् धातु को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर गुण विधानोत्तर मन् की टिसंज्ञक अंश अन् उसका लोप से 'ओम्' शब्द की सिद्धि होती है यहां ऊठ् की प्रवृत्ति में निमित्त अनुनासिकादि मन् प्रत्यय है।

सूत्रार्थ वर्णन कर के प्रस्तुत रूपों का प्रदर्शनार्थ उदाहरण प्रस्तुत—मव् धातु से यङ् उसका लोप अव् को ऊठ् पित् प्रत्यय पर रहते गुण ईडागम का अभाव मामोति। ईडागम पक्ष में मामवीति। मामव् तस् ऊठ् मामूतः। बहुवचन में मामवति। तुवीं हिंसार्थक है, ईडागम पक्ष में उसका रूप-तोतूर्वीति। स्वरादि का क्विप् में उदाहरण—जूः जुरौ जुरः। झलादि में—जूर्तिः, जूर्णः। जूर्णवान्। उवर—तूः तुरौ तुरः। तूर्तिः। तूर्णः। तूर्णवान्। क्विवि—स्नूः, स्नुवौ, स्नुवः। स्नुतिः। अवि—ऊः, उवौ, उवः। ऊतिः। मव मूः मुवौ, मूवः। मूतः, मूतिः।

२५६ राल्लोपः ६।४।२१।

रेफात् परयोश्छोर्लोपः स्यात् कौ झलादावनुनासिकादौ च प्रत्यये। इति वलोपः। लघूपधगुणः।

क्विप् प्रत्यय पर में रहें या झलादि प्रत्यय पर में रहें, या अनुनासिकादि प्रत्यय पर रहें वहां रेफ से पर स्थिति छकार या वकार का लोप होता है। इस सूत्र से ईडागम के अभाव में तुवं धातु का वकार लोप करने पर 'पुगन्तलघूपधस्य' सूत्र से उपधा को गुण हुआ - तोतोर्ति यहां वक्ष्यमाण सूत्र जो गुण एवं वृद्धि का निषेधक है उसका विषय नहीं है वह स्पष्ट होगा।

२६५७ न धातुलोप आर्धधातुके १।१।४।

धात्वंशलोपनिमित्तके आर्धधातुके परे इको गुणवृद्धी न स्तः। इति नेह निषेधः, तिबादीनामनार्धधातुकत्वात्। तो तो र्ति। हलि चेति दीर्घः, तो तूर्तः। तोतूर्वति। तोथोर्ति। दोदोर्ति। दोर्धोति। मूर्च्छा—मोमूर्च्छीति। मोमोर्ति। मोमूर्तः। मोमूर्छति इत्यादि। आर्धधातुके इति विषय सप्तमी। तेन यङि विवक्षिते अजेर्वी। वेवीयते। अस्य यङ् वुग् नास्ति, लुका अपहारे विषयत्वासम्भवेन वीभावस्याप्रवृत्तेः।

❀ इति यङ्लुगन्तप्रक्रिया ❀

धातु के अवयव के लोप में निमित्तभूत आर्धधातुक प्रत्यय पर में रहते इक् का गुण नहीं होता है एवं वृद्धि भी नहीं होती है।

विमर्श—'धातुलोपे' इसका घटक धातुशब्द लक्षणा से धातु का अवयव (अंश) परक है। धातु लोप में बहुव्रीहि समास है—धातोर्लोपो यस्मिन् = आर्धधातुके यहां अन्यपदार्थ प्रधान बहुव्रीहि में आर्धधातुक विशेष्यत्व से भासमान अन्यपदार्थ है। तदनुसार सूत्र की वृत्ति लिखी गई है। यह क्ङित् लक्षण गुण एवं वृद्धि का निषेधक है।

यद्यपि शक्यार्थ बोध में लक्षणावृत्ति का आदर होता है, धातु पद का धातु अर्थ ही रख कर धातु का लोप यह अर्थ क्यों न हुआ, धातु का लोप प्रसिद्ध भी है 'दुरिणो लोपश्च' से उणादिरक् प्रत्यय एवं इण् का लोप में तो भी प्रयोजनवान् धातु लोप अप्रसिद्ध ही है। वहां इण् का लोप करने से गुण की स्वतः अप्रसक्ति है।

किञ्च रक् प्रत्यय सन्नियोगशिष्ट इण् का लोप होने से वहां लोप में आर्धधातुक प्रत्यय 'रक्' निमित्त ही नहीं है। इसीलिए 'दुर् रक्' रो रि लोप कर दूलोपे दीर्घ करने की अवस्था में इण्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के लोप का स्थानिवद्भाव न हुआ एवं दीर्घ होकर 'दूरम्' प्रयोग की सिद्धि हुई। परनिमित्तक इण् का लोप नहीं है अतः स्थानिवद्भाव की अप्रवृत्ति है।

तोतोर्ति में इस सूत्र से गुण निषेध न हुआ क्योंकि तिप् सार्वधातुक है। तोतूर्तः में 'हलि च' से दीर्घ हुआ।

धुर्वी, दुर्वी, धुर्वी हिंसा में है। क्रमेण रूप मूल में निर्दिष्ट है। मूर्च्छा मोहसमुच्छ्राययोः धातु है—राल्लोप का उदाहरण छकार लोप का मोमोर्ति। इडागम में मोमूर्छीति।

न धातुलोप आर्धधातुके सूत्र का भाष्यकार ने सूत्रसाध्ययावत् प्रयोजन का प्रकारान्तर से सिद्धि कर इस सूत्र का प्रत्याख्यान किया है अत एव इस भाष्य प्रत्याख्यान ज्ञाता आचार्य पाणिनि ने 'धिनोति' आदि प्रयोग सिद्धयर्थं वकार को अकार विधान कर उसका 'अतो लोपः' से लोपविधान किया एवं उनका स्थानिवद्भाव से गुणनिषेध किया यह सूत्र सिद्धान्त पक्ष में रहता तो वकार का लोप से इसके द्वारा धिनोति के इकार का गुण निषेध करते। अधिक ज्ञानार्थ इस सूत्र का भाष्य देखें।

गत्यार्थक अज धातु को आर्धधातुक प्रत्यय की उत्पत्ति के पूर्व में विषय सप्तम्या आर्धधातु के का समाश्रयण से प्रथम वी आदेश अज को ततः यङ् प्रत्यय से 'वेवीयते' रूप की सिद्धि होती है। अज् धातु से यङ् का लुक् नहीं होता है, लुक् होने पर आर्धधातुक विषय की सम्भावना वास्तविकी नहीं है, यङ्लुक् का प्रत्ययलक्षण नहीं होता 'न लुमता' से प्रत्यय लक्षण का निषेध है 'वेवीयते' यही रूप इस प्रक्रिया में अज का हुआ। यह प्रयोग विलक्षणरीति से सिद्ध हुआ। ऐसा प्रकार अन्य प्रयोग सिद्धि में दुर्लभ है।

पं० श्रीबालकृष्ण पञ्चोलिविरचित सविमर्शरत्नप्रभा में यङ्लुगन्त प्रक्रिया समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ नामधातुप्रक्रिया

इस प्रकरण का नाम धातु प्रकरण इस लिए हुआ कि नाम कहते हैं प्रातिपदिक को अर्थात् प्रातिपदिक संज्ञक जो प्रकृति उससे विधीयमान जो सुप् प्रत्यय तदन्त तदादि निमित्त को क्यजादि प्रत्यय निमित्तक जो 'सनाद्यन्ता धातवः' से विधीयमान धातु संज्ञा उसकी प्रक्रिया होने से यह नाम सार्थक है = यौगिक है।

२६५८ सुप आत्मनः क्यच् ३।१।८।

इषिकर्मण एषितृसम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यच् प्रत्ययो वा स्यात्। धात्ववयवत्वात् सुब्लुक्।

इच्छाजनक व्यापारार्थक जो इष धातु उसका जो व्यापार उससे जन्य जो फल उसका आश्रय जो तद्वाचक अर्थात् कर्मवाचक जो शब्द स्वरूप तदर्थ इच्छाजनकव्यापार कर्ता सम्बन्धी रहे तो उस सुबन्त तदादि शब्द स्वरूप से इच्छा अर्थ में क्यच् प्रत्यय विकल्प से होता है।

१—इष् धात्वर्थ जो प्रधानीभूत व्यापार उससे जन्य जो इच्छा रूप फल उस का जो आश्रय कर्मसंज्ञक, वह इच्छाजनक व्यापार जनक जो कर्ता तत् सम्बन्धी रहने पर इच्छा अर्थ में कर्मवाचक सुबन्त तदादि शब्द स्वरूप से विकल्प से क्यच् प्रत्यय होता है। यह निर्दुष्ट उचित अर्थ है। २—अथवा—इष धातु का कर्म हो एवं इच्छाकर्ता का सम्बन्धी हो ऐसे सुबन्त के उत्तर इच्छार्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय होता है यह सूत्रार्थ भी है। इस द्वितीयार्थ में अनेक त्रुटियाँ हैं यथा—१ धातु का कर्म नहीं होता है, किन्तु कर्मत्व क्रियानिरूपित है, वह क्रिया = व्यापार रूपा है, धात्वर्थ व्यापार जन्य फल होता है, फलतावच्छेदक सम्बन्ध से फलाश्रय की कर्मसंज्ञा होती है। कर्मादि संज्ञाएँ अर्थ की होती हैं, शब्द की नहीं, शब्द कर्मादि अर्थ का वाचक होता है कर्म रूप अर्थ से परत्व क्यच् आदि प्रत्यय में बाधित है, एवं कर्म रूप अर्थ का उच्चारण सर्वथा असम्भव है, अर्थ वाचक शब्द का उच्चारण सम्भव है, 'इच्छा कर्ता सम्बन्धी' यह भी कथन असंगत है इच्छा तो फलस्थानीया है, उसका जनक व्यापार होता है, उस व्यापार का जनक जो कर्ता तत्सम्बन्धी अर्थ अपेक्षित है, अतः प्रथमार्थ नं-१ में वर्णित अर्थ ठीक है।

क्यच् प्रत्ययान्त तदादि शब्द स्वरूप की 'सनाद्यन्ता धातवः' से धातु संज्ञा होती है। उस के अवयव कर्मार्थक प्रत्यय सुप् का 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से लुक् होता है—यथा आत्मनः पुत्रम् इच्छति अरुणकुमारः। यहां पुत्र अम् क्यच् = य की धातुसंज्ञा कर अम् का लुक् हुआ 'पुत्र य' से लट् तिप् शप् = अ अतो गुणे से पररूप 'पुत्र य ति' यहां पुत्र के अकार को ईकारादेश के लिए वक्ष्यमाण सूत्र—

२६५९ क्यचि च ७।४।३३।

अस्य ईत् स्यात्। आत्मनः पुत्रम् इच्छति पुत्रीयति। वान्तो यि प्रत्यये, गव्यति नाव्यति। लोपः शाकल्यस्येति तु न, अपदान्तत्वात्। तथा हि—

क्यच् प्रत्यय पर में रहते अकार को ईकार रूप आदेश होता है। स्वसम्बन्धी पुत्र कर्मक वह वर्तमान काल में इच्छा जनक व्यापार करता है। पुत्रीयति। द्वितीयान्त गोशब्द से इच्छा में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्यच् धातु संज्ञा विभक्तिका लुक् 'वान्त' सूत्र से अवादेश गव्यति। नावम् आत्मनः इच्छति नाव्यति। यहां अन्तर्वर्तिनी विभक्ति अम् लुप्त है, उसका प्रत्यय लक्षण से सुबन्तत्व प्रयुक्त 'सुप् तिङन्तं पदम्' से पदसंज्ञाकर पदान्त 'गो' 'नौ' है उसके ओकार एवं 'औ' का अव् आव् आदेश हुए है उस में स्थानिवद् भाव से पदान्तत्व है, अतः पदान्त वकारका लोप 'लोपः शाकल्यस्य' से होना चाहिये, अथवा आनुमानिक स्थान्यादेश भाव से गोवृत्ति, नौवृत्ति पदत्व 'गव् नाव्' में अतिदिष्ट से वकार में पदान्तत्व आर्थसमाजग्रस्त = अर्थात् स्वतः सिद्ध है। लोप उभयत्र क्यों न हुआ ?, इस शङ्का के निरासार्थ वक्ष्यमाण सूत्र पदसंज्ञा का नियमन करता है। अर्थात् पदसंज्ञा नियम्य है अमुक स्थल विशेष में ही होगी सर्वत्र नहीं।

२६६० न क्ये १।४।१५।

क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं नान्यत्। सन्निपातपरिभाषया क्यचो यस्य लोपो न। गव्याञ्चकार। गव्यिता। नाव्याञ्चकार। नाव्यिता। नलोपः—राजीयति। प्रत्ययोत्तरपदयोश्च, त्वद्यति। मद्यति। एकार्थयोरित्येव। युष्मद्यति। अस्मद्यति। हलि च, गीर्यति, पूर्यति। धातोरित्येव। नेह—दिवम् इच्छति दिव्यति। इह पुरमिच्छति पुर्यतीति माधवोक्तं प्रत्युदाहरणं चिन्त्यम्, पूर्गिरोः साम्यात्। दीव्यतीति दीर्घस्तु प्राचः प्रामादिक एव। अदस्यति। रीङ् ऋतः कर्त्रीयति। क्यच्च्व्योश्च गार्गीयति। वाच्यति। अकृत् सार्वेति दीर्घः—कवीयति। समिध्यति।

क्यच् एवं क्यङ् पर में रहते नान्त की ही पदसंज्ञा होती है। अन्य की नहीं। 'सुप्तिङन्तम्' सूत्र से लुप्त विभक्ति का प्रत्यय लक्षण से पदसंज्ञा सिद्ध ही थी, "प्राप्तौ सत्याम् आरभ्यमाणो विधिर्नियमाय कल्पते" पुनः 'न क्ये' क्रियमाण सूत्र नियमार्थ है, विपरीत नियम फलाभाव से नहीं होता है। इस नियम से गव्यति नाव्यति में नान्तत्वाभाव से पदत्वाभाव से वकार लोप न हुआ। अनेकाच् लक्षण आम् लिट् लुक् लिट्परक कृञ् अनुप्रयोग द्वित्वादि कार्य अकार लोप अनुस्वार परसवर्ण 'गव्याञ्चकार' गव्यिता आदि। राजनम् इच्छति आत्मनः = राजीयति यहां नान्त लक्षण पदसंज्ञा नलोप ईत्व। त्वां मां वा इच्छति यहां मपर्यन्त भाग को 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' से त्व म आदेश त्वद्यति, मद्यति। एत्वविशिष्टार्थ युष्मद् अस्मद् रहें वहां पूर्वोक्त सूत्र की प्रवृत्ति होती है, द्वित्वादि विशिष्टार्थक में युवाम् आवाम्, युष्मान् अस्मान् वा इच्छति युष्मद्यति अस्मद्यति। आत्मनः गिरमिच्छति गीर्यति। पुरम् इच्छति पूर्यति। क्विबन्त गृ पॄ से 'ऋतः' सूत्र से इत्व, उदोष्ठ्यपूर्वस्य से उत्व हुआ, एवं दीर्घ 'हलि च' से हुआ। रेफान्त एवं वान्त धातु की उपधा के इक् का 'हलि च' से दीर्घ विधान है। अतः दिवम् इच्छति यहां दीर्घ प्रातिपदिक की उपधा का न हुआ। 'पुर्यति' प्रत्युदाहरण दीर्घाभाव का देना माधव का अनुचित है पुर् एवं गिर् दोनों में समानता है, अतः 'पूर्यति' होता है दीर्घ घटित ही। 'दीव्यति' ऐसा प्राचोक्त प्रयोग अनवधानता लक्षण प्रमाद ही है। अमुम् इच्छति अदस्यति। कर्तारम् इच्छति कर्त्रीयति। यहां रीङ् ऋतः सूत्र से रीङादेश हुआ। गार्ग्यम् इच्छति यहां 'क्यच् च्व्योश्च' से अपत्य सम्बन्धी यकार का लोप हुआ—गार्गीयति। वाचम् इच्छति वाच्यति, यहां अनान्तत्व के कारण पदत्वाभाव प्रयुक्त कुत्वाभाव हुआ। आत्मनः कविम् इच्छति = कवीयति 'अकृत्' सूत्र से दीर्घ हुआ। 'समिध्यति' यहां पदत्वाभाव से जश्त्वाभाव हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

P15, C.C 1, 1, 6
152L9P.4

२६६१ क्यस्य विभाषा ६।४।५०।

हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वा स्यात् आर्धधातुके। आदेः परस्य, अतो तोपः, तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न, समिधिता। समिध्यिता। ❀ मान्तप्रकृतिकसुबन्तादव्ययाच्च क्यच् न ❀। किमिच्छति। इदमिच्छति। स्वरिच्छति।

हल् से पर स्थित जो क्यच् एवं क्यङ् उनका लोप विकल्प से आर्धधातुक पर में रहते होता है, अलोऽन्त्यस्य से अन्त्यलोप अकार का बाध कर इस सूत्र से आदि का लोप हुआ, अकार का 'अतो लोपः' से लोप हुआ —समिधिता, लोपाभाव में समिध्यिता। * मान्तशब्द है प्रकृति जिसका ऐसा जो सुप् तदन्त जो तदादि उससे, एवं अव्यय से क्यच् प्रत्यय नहीं होता है। वहां वाक्य ही रहता है—किमिच्छति स्वरिच्छति। यदि मान्त से क्यच् नहीं कहते तो पुत्रम् इच्छति यहां सुबन्त-तदादि पुत्रम् मान्त है। क्यच् न होता, पूर्वोक्त व्याख्या से पुत्र अदन्त है क्यच् हुआ।

२६६२ अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षापिपासागर्धेषु ७।४।३४।

क्यजन्ता निपात्यन्ते। अशनायति। उदन्यति। धनायति। बुभुक्षादौ किम्, अशनीयति। उदकीयति। धनीयति।

भोजन विषयिणी इच्छा = क्षुधा अर्थ में क्यच् प्रत्ययान्त अशनाय निपातन होता है, एवं क्यचि च से ईत्वाभाव पूर्वक दीर्घादेश भी निपातन से होता है, पानक्रिया विषयिणी इच्छा अर्थ में क्यच् प्रत्ययान्त उदन्य निपातन होता है, निपातन से ही उदक शब्द के स्थान में उदन् आदेश होता है, अभिकाङ्क्षा अर्थात् इच्छा अर्थ में धनाया क्यच् प्रत्ययान्त निपातन होता है एवं ईत्व बाध पूर्वक दीर्घादेश होता है। अशनायति। उदन्यति। धनायति। पूर्वोक्त अर्थत्रय से भिन्नार्थ में तो अशनीयति। उदकीयति। धनीयति।

२६६३ अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि ७।१।५१।

एषां क्यचि असुगागमः स्यात्। ❀ अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम् ❀ अश्वस्यति वडवा। ❀ वृषस्यति गौः। ❀ क्षीरलवणयोर्लालसायाम् ❀। क्षीरस्यति बालः। लवणस्यति उष्ट्रः। ❀ सर्वप्रातिपदिकानां क्यचि लालसायां सुगसुकौ ❀। दधिस्यति। दध्यस्यति। मधुस्यति मध्वस्यति।

आत्म प्रीति अर्थ में अश्व, क्षीर, वृष, लवण इन शब्दों को क्यच् प्रत्यय पर में रहते असुक् आगम होता है। मैथुनेच्छा = काम विषयक इच्छा में अश्व एवं वृष को असुक् आगम होता है—अश्वस्यति वडवा। वृषस्यति गौः। उत्कट इच्छा रूप लालसा में क्षीर एवं लवण को असुक् होता है। बालक दुग्ध प्राप्ति विषयिणी प्रबल इच्छा करता है—क्षीरस्यति बालः। नमक प्राप्ति की प्रबलेच्छायुक्त ऊंट = लवणस्यति। सर्वप्रातिपदिक को क्यच् पर में रहते सुक् एवं असुक् आगम पर्याय से होते हैं। असुक् पर में यण् होता है। मधुस्यति। मध्वस्यति। वह मधु प्राप्ति की इच्छा करता है आत्मप्रीति में।

२६६४ काम्यच्च ३।१।९।

उक्तविषये काम्यच् स्यात्। पुत्रमात्मन इच्छति पुत्रकाम्यति। इह यस्य

❀ मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय ❀
3366
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हल इति लोपो न, अनर्थकत्वात् । यस्येति संघातग्रहणमित्युक्तम् । यशस्काम्यति । सर्पिष्काम्यति । मान्ताव्ययभ्योऽप्ययं स्यादेव । किं काम्यति । स्वः काम्यति ।

'सुप आत्मनः' सूत्र के विषय में सुबन्ततदादि शब्द स्वरूप से इच्छा में काम्यच् प्रत्यय होता है, वह आत्म सम्बन्धी पुत्रकर्मक वर्तमान काल में इच्छा करता है = पुत्रकाम्यति यहां संघातार्थ यकार बोधक 'यस्य हलः' सूत्र से अनर्थकत्व के कारण यकार लोप काम्यच् घटक का न हुआ, प्रत्ययैकदेश अनर्थक है, प्रकृति अर्थवती प्रत्ययो अर्थवान् यही सिद्धान्त है । काम्यच् में ककारोच्चारण सामर्थ्य से ककार की इत् संज्ञा लोप न हुआ । वह यशः कामना की इच्छा करता है = यशस्काम्यति । पूर्ववर्णित वार्तिक का यहां सम्बन्ध नहीं, अतः मान्त प्रकृतिक सुबन्त एवं अव्यय से काम्यच् प्रत्यय होता ही है । किं काम्यति । स्वः काम्यति । स्वः = स्वर्गार्थक है ।

२६६५ उपमानादाचारे ३।१।१०॥

उपमानात् कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच् स्यात् । पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति छात्रम् विष्णूयति द्विजम् । ❀ अधिकरणाच्चेति वक्तव्यम् ❀ । प्रासादीयति कुट्यां भिक्षुः । कुटीयति प्रासादे ।

उपमान वाचक सुबन्त तदादि कर्मवाचक से आचार अर्थ में क्यच् प्रत्यय होता है । पुत्र की तरह अनुकूल आचारण करता वह है = पुत्रीयति छात्रम् । विष्णु की तरह आचरण द्विज करता है—विष्णूयति द्विजम् । उपमान वाचक अधिकरण सुबन्त तदादि से भी क्यच् प्रत्यय होता है । प्रासाद = महल में की तरह कुटिया में आचरण वह भिक्षुक करता है = प्रासादीयति भिक्षुः । अपनी कुटिया में की तरह वह महल में आचरण करता है—कुटीयति प्रासादे ।

२६६६ कर्तुः क्यङ् सलोपश्च ३।१।११।

उपमानात् कर्तुः सुबन्तादाचारे क्यङ् वा स्यात् । सान्तस्य तु कर्तृवाचकस्य लोपो वा स्यात् । क्यङ् वेत्युक्तेः पक्षे वाक्यम् । सान्तस्य लोपस्तु क्यङ्सन्नियोगशिष्टः । स च व्यवस्थितः ।

"ओजसोऽप्सरसो नित्यमितरेषां विभाषया ।"

कृष्ण इवाचरति कृष्णायते । ओजःशब्दो वृत्तिविषये तद्वति । ओजायते । अप्सरायते । यशायते, यशस्यते । विद्वायते, विद्वस्यते । त्वद्यते । मद्यते । अनेकार्थत्वे तु युष्मद्यते । अस्मद्यते । क्यङ्मानिनोश्च । कुमारीवाचरति कुमारायते । हरिणीवाचरति हरितायते । गुर्वीव गुरूयते । सपत्नीव सपत्नीयते । युवतिरिव युवायते । पट्वीमृदुव्याविव पट्वीमृदूयते । न कोपधायाः । पाचिकायते ।

उपमानवाचक कर्तृ सुबन्त से आचार अर्थ में क्यङ् विकल्प से होता है, एवं सकार है अन्त में जिसको ऐसा कर्तृवाचक का अन्त्य सकार का लोप होता है विकल्प से । क्यङ् के अभाव में वाक्य रहता है । सकार का लोप एवं क्यङ् प्रत्यय वे दोनों सन्नियोगशिष्ट है अर्थात् क्यङ् पक्ष में स लोप, क्यङ् के अभाव में सकार का लोपाभाव है, वह लोप भी व्यवस्थित है, ओजस् एवं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अप्सरस् में नित्य लोप, अन्य शब्दों में विकल्प से क्यङ् योग में सकारलोप होता है। सू० उ० कृष्णायते। बल वाचक ओजस् शब्द नामधातुरूपा वृत्ति में बलवान् अर्थ का बोधक है। ओजायते = वह बलवान् की तरह आचरण करता है। वह स्त्री अप्सरा की तरह आचरण करती है = अप्सरायते। यहां सकारक लोप क्यङ् हुआ। यशायते। यशस्यते। विद्वायते। विद्वस्यते। एकत्व विशिष्टार्थक प्रथमान्त युष्मद् एवं अस्मद् से आचार में क्यङ् एवं 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' से त्व, म, आदेश से त्वयते मयते। द्वित्वविशिष्टार्थक, बहुत्व विशिष्टार्थक युष्मद् अस्मद् के सपर्यन्त भाग को त्व एवं मादेश न हुआ—युष्मयते। अस्मयते। कुमारी की तरह वह स्त्री आचरण करती है यहां क्यङ् एवं पुंवद्भाव कुमारायते। हरितायते = यहां क्यङ् एवं पुंवद्भाव से ङीष् एवं नकारादेश की निवृत्ति हुई। मूल शब्द 'हरित' से स्त्रीलिङ्ग में 'वर्णात्' सूत्र से ङीष् एवं नकारादेश से 'हरिणी' हुआ था। गुणवाचक से ङीष् गुवीं से क्यङ् पुंवद्भाव—गुरूयते। त्रितय साधारण एक विग्रह वाक्य-सपत्नीव आचरति—**सपत्नायते**, शत्रुपर्य्याय सपत्न शब्द से शार्ङ्गरवादि ङीन् तदन्त से क्यङ् पुंवद्भाव 'अकृत्सार्वधातुक' से दीर्घ यह रूप है। **सपत्नीयते**—समान स्वामिवाचक भाषितपुंस्क का 'नित्यं सपत्न्यादिषु' से नादेशकर, नान्तलक्षण ङीष् के बाद क्यङ्, पुंवद्भाव एवं दीर्घ हुआ। **सपत्नीयते**—विवाह जन्य संस्कार विशेष निमित्तक पति शब्द से समास करके नित्यस्त्रीत्व के कारण यहां पुंवद्भाव न हुआ। **युवायते**—वयः अनित्य होने से जातित्वाभाव से यहां 'जातेश्च' से पुंवद्भाव का अभाव हुआ। अतः 'अचः परस्मिन्' सूत्र के 'युवजानिः' भाष्यप्रयोग पुंवद्भाव से उपपन्न हुआ। 'युवतितरा' में तसिलादिषु से प्राप्त पुंवद्भाव का अभाव भाष्य प्रयोग से ही हुआ। युवती से तरप् में 'घरूप' से ह्रस्व युवतितरा। पट्वीमृदूयते—यहां पूर्व शब्द क्यङ् परक नहीं अतः पुंवद्भावाभाव है। पाचिकायते—'न कोपधायाः' से पुंवद्भाव का निषेध है, पुंवद् भाव होता तो 'पाचकायते' अनिष्ट रूप होता इकार की निवृत्ति से।

॥ आचारेऽवगल्भक्लीबहोडेभ्यः क्विब् वा वक्तव्यः ॥। वाग्रहणात् क्यङ् अपि। अवगल्भादयः पचाद्यजन्ताः। किप्सन्नियोगेनानुदात्तत्वमनुनासिकत्वं चाच् प्रत्ययस्य प्रतिज्ञायते, तेन तङ्, अवगल्भते। क्लीबते। होडते। भूतपूर्वादप्यनेकाच आम्, एतद्वार्तिकारम्भसामर्थ्यात्। न च 'अवगल्भते' इत्यादिसिद्धिस्तत्फलम्, केवलानामेवाचारेऽपि वृत्तिसम्भवात्, धातूनामनेकार्थत्वात्। अवगल्भाञ्चक्रे। क्लीबाञ्चक्रे। होडाञ्चक्रे। वार्तिकेऽवेत्युपसर्गविशिष्टपाठात् केवलाद् उपसर्गान्तरविशिष्टाच्च क्यङ्वेति माधवादयः। तङ् नेति तूचितम्।

आचार अर्थ में अवगल्भ, क्लीब, होड इनसे विकल्प से क्विब् होता है। पक्ष में क्यङ् प्रत्यय की प्रवृत्ति है। अवगल्भादि शब्द पचादित्व प्रयुक्त 'नन्दिग्रहि' सूत्र से अच् प्रत्यय से अजन्त है। यहां किप् प्रत्यय के सन्नियोग से अच् प्रत्यय को अनुदात्तत्व एवं अनुनासिकत्व प्रतिज्ञात होता है, इससे तङ् = आत्मनेपद की प्रवृत्ति होगी, अवगल्भते। क्लीबते। होडते। क्रमशः—गल्भ धार्ष्ट्ये। क्लीब अधार्ष्ट्ये। होड़ अनादरे धातु है। पक्ष में क्यङ् होता है, क्यङ् के अभाव में वाक्य से तीन रूप हुए। क्यङ्सन्नियोगशिष्ट अनुदात्तत्व एवं अनुनासिकत्व के अभाव से इत् संज्ञा लोप नहीं, 'अकृत्' सूत्र से दीर्घ अवगल्भायते। क्लीबायते। 'अवगल्भते' रूप अच् प्रत्ययरहित केवल गल्भादि धातु आचार अर्थ में है ही अनेकार्थक धातु है इस सिद्धान्त से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुनः 'आचारेऽवगल्भ' यह वार्तिक व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि अच्प्रत्ययान्त सत्तादशा में वे भूतपूर्व अनेकाच् अव उपसर्गपूर्वक गल्भादि रहे अच् के अकारलोप करने पर भी 'साम्प्रतिकाभावे भूतपूर्वगतिराश्रीयते' न्याय से भूतकालिक अनेकाच्त्व का समाश्रयण करके अनेकाच् लक्षण आम् लिट् में अवश्य होता है। 'अवगल्भाञ्चक्रे'। यहां माधवाचार्य कहते हैं कि वा० में 'अव' उपसर्ग पठित है अतः केवल गल्भादि से या अवभिन्न उपसर्गपूर्वक गल्भादि से क्यङ् होता है विकल्प से, पक्ष में वाक्य, क्विप् नहीं होता है। आत्मनेपद नहीं होता है यह व्यवस्था न्यायतः उचित ही है। उत्तर वार्तिक से प्रातिपदिकमात्र से किप् इन तीनों से भी होता, यह 'आचारे' वा० केवल किप् सन्नियोग योग में अच् प्रत्यय को अनुदात्तत्व एवं अनुनासिकत्व-बोधनार्थ है।

अन्यत्र उत्तर वा० से क्विप् परस्मैपद ही होता है आत्मनेपद नहीं अतः लिखा कि 'तङ्नेति तूचितमेव'।

❀ सर्वप्रातिपादकेभ्यः क्विब् वा वक्तव्यः ❀। पूर्ववार्तिकन्तु अनुबन्धासञ्जनार्थं तत्र क्विबनूद्यते। प्रातिपदिकग्रहणादिह सुप् न सम्बध्यते। तेन पदकार्यं न। कृष्ण इवाचरति कृष्णति। अतोगुणे इति शपा सह पररूपम्। अ इवाचरति अति। अतः। अन्ति। प्रत्ययग्रहणमपनीय अनेकाच इत्युक्तेर्नाम्। औ, अतुः उः। द्वित्वम्, अतो गुणे, अत आदेरिति दीर्घः, णल्, औ, वृद्धिः। अतुसादिषु त्वातो लोप इटि चेत्यालोपः। मालेवाचरति मालाति। लिङ्गविशिष्टपरिभाषया, एकादेशस्य पूर्वान्तत्वाद् वा किप्। मालाञ्चकार। लङि अमालात्। अत्र हलङ्यादि लोपो न, ङीप्साहचर्यादापोऽपि सोरेव लोपविधानात्। इट्सकौ, अमालासीत्।

कविरिव कवयति। आशीर्लिङि कवीयात्। सिचि वृद्धिरित्यत्र धातोरित्यनुवर्त्य धातोरेव यो धातुरिति व्याख्यानान् नामधातोर्न वृद्धिरिति कैयटादयः। अकवयीत्। माधवस्तु नामधातोरपि वृद्धिमिच्छति। अकवायीत्। विरिव वयति। विवाय। विव्यतुः। अवयीत्, अवायीत्। श्रीरिव श्रयति। शिश्राय, शिश्रियतुः। पितेव पितरति। आशिषि रिङ् पित्रियात्। भूरिव भवति। अत्र गातिस्थेति भुवो वुगिति भवतेरिति च न भवति, अभिव्यक्तत्वेन धातुपाठस्थस्यैव तत्र ग्रहणात्। अभावीत्। बुभाव। द्रुरिव द्रवति। णिश्रीति चङ्, अद्रावीत्।

सम्पूर्ण प्रातिपदिक से विकल्प से क्विप् होता है। 'आचारेऽवगल्भ' वार्तिक तो केवल अनुबन्ध के आसञ्जनार्थ है। इससे प्राप्त क्विप् का उस वार्तिक में केवल अनुवाद है। वह क्विप् अपूर्व नहीं अतः विधेय नहीं है। इस वार्तिक में प्रातिपदिक-शब्द का उच्चारण करने से यहां सुप् की अनुवृत्ति नहीं है। अतः अन्तर्वर्तिनी विभक्ति नहीं, प्रत्यय लक्षण नहीं पदसंज्ञा नहीं है, अतः पदत्व-प्रयुक्त कार्य का यहां अभाव है। प्रातिपदिक कृष्ण से तुदयाचरण में किप् धातुसंज्ञा लट् तिप् शप् पररूप कृष्णति। तनोति इति तत् क्विप् न लोप तुक्। अ इवाचरति में 'अति' रूप है। लिट् में क्विप् प्रत्ययान्त अ से आम् होना चाहिये किन्तु कास्यप्रत्ययान्तात् में प्रत्यय ग्रहण को निकाल कर उसके स्थान में 'अनेकाच्' का ग्रहण है, अतः यहां आम् न हुआ, किन्तु 'औ'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूप में लिट् तिप् णल्, अ, द्वित्व, पररूप, 'अत आदेः' से दीर्घ णल् के अकार को 'आत औ' से औकारादेश 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि हुई। अतुः में 'आतो लोपः' से आकार का लोप केवल प्रत्यय मात्र अवशिष्ट रहा है। 'उः' में झि को उस् द्वित्वादि एवं लोप।

विमर्श—मूलकार ने आम्-विधायक शास्त्र में प्रत्ययग्रहण को निकाल कर उसके स्थान में अनेकाच् ग्रहण किया वह ग्रन्थकार का निजी मत नहीं है, किन्तु श्रीहरदत्ताचार्य का वह मत है। उनके अनुरोध से ही कहा है, वस्तुतः 'प्रत्ययान्तात् आम्' एवं 'अनेकाच् धातुतः आम्' दोनों स्वतन्त्र हैं, 'प्रत्ययग्रहणमपनीय' इसमें कोई प्रमाण नहीं है एवं वह हरदत्त-मत भाष्यादि-विरुद्ध है अतः उपेक्ष्य ही है 'आञ्चकार' आञ्चक्रतुः इत्यादि रूप ही सिद्धान्तसिद्ध है। २—हरदत्तमत यदि स्वीकार करेंगे तो प्रत्ययग्रहणवादी सूत्रकार एवं वार्तिककार जो प्रत्याख्यानवादित्वेन आपाततः उपस्थित हैं दोनों का फलभेद होगा। सूत्रकार-मत में यहां आम् एवं वार्तिककार मत में आम् का अभाव से 'फलभेदे प्रत्याख्यानमसङ्गतम्' से एकाच् से आचार क्विबन्त का अनभिधान का आश्रयण करना वार्तिककार को होगा, तब तो 'अति' 'औ' आदि रूपों की ही हरदत्तादि-मत में असिद्धि होगी।

मूल में औ आदि की माधवोक्तप्रक्रिया भी हरदत्तमत के अनुरोध से ही है। अतोलोप को एवं अत आदेः दीर्घ इन दोनों को बाधकर अन्तरङ्गत्व के कारण 'अतो गुणे' से पररूप हुआ, यह माधवाचार्य का अभिप्राय है। पररूपोत्तर 'अन्तादिवच्च' से पूर्वान्तवद्भाव से अभ्यासत्वनिमित्तक 'अत आदेः' में दीर्घ हुआ।

१—आञ्चकार यही रूप। २—एकाच् से आचार क्विप् का अनभिधान। ३—सूत्रमत, ४—वार्तिकमत आदि विषय यहां संक्षेपतः ज्ञानवृद्धयर्थ उपन्यस्त है वे एकाच् से क्विबन्त से सर्वत्र अनुगत करना उचित है—उन स्थलों में पुनः पिष्टपेषणन्याय से यह सर्व व्यवस्था नहीं कही जायगी।

स्त्रीलिङ्ग टाप् प्रत्ययान्त माला शब्द प्रातिपदिक नहीं अतः 'इव आचरति' अर्थ में क्विप्प्रत्यय का अभाव होगा, इस शङ्का के निरासार्थ मूलकार कहते हैं कि 'माल' वृत्ति-प्रातिपदिकत्व लिङ्गबोधकप्रत्यय टाप् विशिष्ट माला में 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' परि० से आरोपित है, अथवा एकादेश दीर्घ उसका पूर्वस्थानी 'माल' का अन्त्य अकार उससे घटित माल तद्वृत्ति धर्म-प्रातिपदिकत्व कर पूर्वान्तवद्भाव से 'अन्तादिवच्च' सू० से यहां अतिदेश है अतः क्विप् प्रत्यय 'माला' से हुआ। परिभाषार्थ एवं अन्तादिवच्च सूत्रार्थ क्रमशः इस प्रकार है—

"लिङ्गबोधकप्रत्ययरहिते दृष्टानां प्रातिपदिकत्व-तदव्याप्यान्यतरधर्माणां लिङ्गबोधकप्रत्ययविशिष्टे आरोपः।" इस परिभाषा में प्रमाण समानाधिकरणस्थ में पठित 'कुमारः श्रमणादिभिः' सूत्र ही है = पुंस्त्वविशिष्टकुमारार्थबोधक कुमार का स्त्रीलिङ्गार्थक बौद्धभिक्षुकी-वाचक श्रवण के साथ एकार्थबोधकत्वरूप सामानाधिकरण्य का अभाव से समाससंज्ञा की अप्राप्ति से सूत्र-वैयर्थ्य से प्रा० प्र० लि० वि० प्र० परिभाषा ज्ञापित हुई। तब कुमारी चासौ श्रमणा इति कुमारश्रमणा इति कुमारश्रमणा हुआ, पूर्वपद में पुंवद्भाव हुआ है। २—अन्तादिवच्च—'एकादेशशास्त्रप्रवृत्तेः प्राक् एकादेशपूर्वस्थानिघटकसमुदाये एवं एकादेशपरस्थानिघटकसमुदाये वर्तमाने ये ये धर्मास्ते एकादेशविशिष्टे अतिदिश्यन्ते" इति यह अर्थ है।

'अमालात्' यहां 'हल्ङ्याब्' सूत्र से ति के तकार का लोपाभाव है। क्योंकि ङीप् साहचर्य से आप् से पर भी सु के सकार का ही लोप होता है। अर्थनियामक में साहचर्यशब्द-समवेत शक्ति का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नियामक है, "संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता" इस शिष्टोक्ति से। "सहचरितासहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम्" यह परिभाषा भी है। लुङ् में "अमाला स् इ स् ई त्" यहां आदन्त लक्षण 'सक्' आगम एवं सिच् आगमी को इडागम हुआ है अमालासीत्।

कवि-सदृश वह आचरण करता है—कवयति। 'अकृत्' दीर्घ से आ० लिङ् में कवीयात्। 'ऋत इद्धातोः' सूत्र से धातु की अनुवृत्ति है, एवं सिच् से अर्थापत्ति दर्शन-सम्मत प्रमाण से धातु का आक्षेप भी होगा। अतः 'धातु का ही धातु' इस अर्थ से नामधातु में 'सिचिवृद्धिः' सूत्र की अप्रवृत्ति है यह महावैयाकरण श्रीकैयटाचार्य कहते हैं। उनके मत में लुङ् में अकवयीत्। माधवाचार्य के मत में नामधातु में भी 'सिचिवृद्धिः' से वृद्धि करके अकवायीत् रूप हुआ। पक्षी के समान आचरण कर्ता वह है वयति। लिट् में विवाय। अतुस् में 'एरनेकाच्' सूत्र से यण् विव्यतुः। लुङ् में कैयट एवं माधव के मतभेदप्रयुक्त वृद्धि का अभाव, एवं वृद्धि से दो रूप है—१. अवयीत् २. अवायीत्। किप् वचि से सेवार्थक श्रिधातु से किप् दीर्घ से निष्पन्न श्री से इवाचरति में किप् आदि से श्रयति। संयोगपूर्वक इकार होने से यण् का अभाव से इयङ् शिश्रियतुः। पिता इवाचरति पितरति। रिङादेश से पित्रियात् आ० लि० का यह रूप है। भूरिव भवति। यहां पृथ्वी वाचक भू यह अन्यार्थक भू है सत्तार्थक नहीं है अतः 'भुवो वुक्' 'गातिस्था', सू०, 'भवतेरः', की यहाँ प्रवृत्ति नहीं है। पूर्वोक्त वर्णित सूत्रों की धातुपाठ में पठित प्रसिद्ध आत्मधारणानुकूल व्यापाररूप सत्तार्थ में प्रवृत्ति होती है अर्थात् वहां भू धातु का ही ग्रहण है।

"अभिव्यक्तपदार्था ये स्वतन्त्रा लोकविश्रुताः।
शास्त्रार्थस्तेषु कर्तव्यो न शब्देषु तदुक्तिषु॥ १॥

यह शिष्टोक्ति है। शास्त्रार्थः = शास्त्र की प्रवृत्ति। लुङ् में अभावीत्। लिट् में बुभाव। द्रुरिव द्रवति। अप्रसिद्धत्व के कारण एवं धातुत्व का 'द्रुः' प्रातिपदिक में अभाव से लुङ् में च्लिको चङादेश न हुआ अद्रावीत्।

२६६७ अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ६।४।१५।

अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात् क्वौ झलादौ च क्ङिति। इदमिवाचरति इदामति। राजेव राजानति। पन्था इव पथीनति। ऋभुक्षीणति। द्यौरिव देवतीति माधवः। अत्र ऊठि द्यवतीत्युचितम्। क इव कति। चकौ इति हरदत्तः। माधवस्तु ण्यल्लोपाविति वचनात् णलि वृद्धिं बाधित्वाऽतो लोपाच्चक इति रूपमाह। स्व इव स्वति। सस्त्रौ, सस्त्र। यत्तु स्वामास। स्वाञ्चकारेति तदनाकरमेव।

किप् प्रत्यय पर में रहते या झलादि कित् या ङित् प्रत्यय परमें रहते अनुनासिकान्त प्रातिपदिक की उपधा का दीर्घ होता है। सन्निकृष्ट वस्तु में 'इदम्' शब्द का प्रयोग होता है—सन्निकृष्ट की तरह वह आचरण करता है अर्थ में = 'इदामति' यहां दकारोत्तर अकार को दीर्घ किप् प्रत्यय परमें रहता हुआ। राजा इव राजानति। पथीनति आदि रूप किप् कर दीर्घ से हुए। आकाश की तरह वह आचरण करता है। यहां देवति रूप माधवोक्त ठीक नहीं है यहाँ 'द्योः' से ऊठ् से 'द्यवति' रूप ही उचित है। क इव आचरति में 'कति' रूप हुआ, लिट् में हरदत्त प्रत्ययान्त से आम् का खण्डनवादी कहते हैं कि 'चकौ' रूप है। माधवाचार्य कहते हैं कि 'ण्यल्लोपौ' वार्तिक से णल् में वृद्धि को बाधकर 'अतो लोपः' से 'चक' रूप है।

वस्तुतः हरदत्त-मत असङ्गत है वह पूर्व विमर्श में विस्तृत वर्णित है अतः 'काञ्चकार' यही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूप सिद्धान्त से सिद्ध है। यदि एकाच् से आचार क्विप् होता है तो मतभेद प्रयुक्त आचार क्विन्त स्व से लिट् में हरदत्तमत से 'सस्वौ', माधवमतमे 'सस्व' रूप है, कोई 'स्वञ्चकार' आदि रूप कहते हैं वह मत भाष्यविरुद्ध है। वस्तुतः भाष्य विरुद्धकथन कहने वालों का ही कथन भाष्यविरुद्ध है अर्थात् 'स्वाञ्चकार' रूप उचित ही है।

विमर्श—इदामति—हलन्तशब्दों से आचार में क्विप् प्रत्यय नहीं होता है यह 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' ७।१।५४ सूत्र के भाष्य में कहा गया है—तथाहि, 'कास् प्रत्ययात्' ३।१।३५। सूत्र से विहित आम् के मकार की इत्संज्ञा क्यों नहीं होती है ऐसी शङ्का में भगवान् भाष्यकार कहते हैं कि इस कार्य के अभाव से यकार की इत्संज्ञा नहीं होती है = 'इत्कार्याभावान्न भविष्यति', यह आम् प्रत्ययान्त से विहित है वहां विशेष नहीं है—प्रत्यय पर आम् हो या अन्य अच् से पर आम् हो = 'तत्र नास्ति विशेषः प्रत्ययपरत्वे, अन्त्यादचः परत्वे वा' यह कहा है भाष्य में, हलन्त से यदि आचार क्विप् होता तो 'नास्ति विशेषः' यह भाष्योक्ति सर्वथा असङ्गत होती, अतः हलन्त से आचार क्विप् का अनभिधान ही है यह—'भाष्यतत्त्वविदुषां मतम्' है। अतः इदामति आदि प्रयोगों का अभाव ही है।

माधवमत के अनुरोध से मूल में 'पथीनति' कहा है, यहां 'इन्हन्' नियम से दीर्घकी अप्रवृत्ति ही है अतः यदि क्विप् होता है तो 'पथेनति' ही रूप है। वृत्रघ्नः स्त्री 'वृत्रघ्नी' की असिद्धि रूप आपत्ति होती वहां क्विन् प्रत्ययान्त वृत्रहन् की उपधा का 'अनुनासिकस्य' से अनिष्ट दीर्घ हो जाता अतः 'इन् हन्' सूत्र में सुप्निरूपित आनन्तर्य एवं नियम का सजातीयापेक्षत्व का समाश्रयण नहीं है। वृत्रघ्नी में यदि दीर्घ होता इस से तो पुंयोग से स्त्रियां वृत्ति होने से नान्तलक्षण ङीप् करने पर अलोप न होगा।

२६६८ भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः ३।१।१२।

अभूततद्भावविषयेभ्यो भृशादिभ्यो भवत्यर्थे क्यङ् स्यात्, हलन्तानामेषां लोपश्च। अभृशो भृशो भवति भृशायते। अच्वेरिति पर्युदासबलादभूततद्भाव इति लब्धम्। तेनेह न, क दिवा भृशा भवन्ति=ये रात्रौ भृशाः=नक्षत्रादयस्ते दिवा क भवन्तीत्यर्थः। सुमनस्, अस्य स लोपः, सुमनायते।

अभूततद्भावविषयक भृशादिगण पठित भृश, शीघ्र, मन्द, पण्डित, दुर्मनस्, सुमनस् प्रभृति शब्दों से 'भवति' अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है, एवं भृशादिगण-पठित शब्दो में जो हलन्त शब्द है उनके अन्त्यवर्ण का लोप होता है। यहां वार्तिक-कारने 'अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्' वार्तिक किया था वह 'अच्वेः' कथन से अन्यथासिद्ध हुआ। भृश = नक्षत्रार्थक शब्द है। जो नक्षत्र नहीं है वह नक्षत्र होता है अर्थात् अनक्षत्र पदार्थ में आरोपित नक्षत्रत्व की प्रतीति हुई, अतः अभूत का तद्रूप से भवन यहां हुआ = अभृशो भृशो भवति भृशायते क्यङ् एवं 'अकृत्' सूत्र से दीर्घ ङित्त्वात् आत्मनेपद हुआ। अवयव में अचरितार्थ ककारानुबन्ध क्यङ् प्रत्ययान्त को ङित्त्व बोधन करता है। संयोगवत् विप्रयोगः = वियोग भी विशेषार्थ का प्रत्यायक होता है, यथा 'अवत्सा आनीयताम्' से माला, रमा आदि का आनयन न होकर धेनु का ही आनयन होता है तथैव इस सूत्र में 'अच्वेः' कहा है, क्विप्रत्यय अभूत तद्भाव में होता है अतः तद्भिन्न भी अभूत तद्भाव रूप अर्थ यहां गृहीत है, एतावता इस अर्थ-लाभार्थ कृत वार्तिक का अनाश्रय हुआ। जहां वास्तविक कथन है एवं अभूत तद्भाव की प्रतीति नहीं है वहां क्यङ् प्रत्यय का अभाव ही है—यथा—वे नक्षत्र एवं तारादि जो रात्रि में गन्धर्व नगर (आकाश) में प्रतीत होते हैं वे दिवस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में कहां रहते हैं यहां वाक्य एतदर्थ ही है। 'क दिवा भृशा भवन्ति' इति। भृश शब्द लोक में भी है। भृशादिगण में हलन्त एवं पुँल्लिङ्ग पुष्पवाचक सुमनस् से अभूत तद्भाव में क्यङ् एवं सकार का लोप दीर्घ सुमनायते। यहां विशेष कथनार्थ अग्रिम ग्रन्थ है—

चुरादौ संग्राम युद्ध इति पठ्यते, तत्र संग्रामेति प्रातिपदिकम्। तस्मात् तत्करोतीति णिच् सिद्धः, तत्सन्नियोगेनानुबन्ध आसज्यते। युद्धे योऽयं ग्रामशब्द इत्युक्तेऽपि सामर्थ्यात् संग्रामशब्दे लब्धे विशिष्टपाठो ज्ञापयति—"उपसर्गसमानाकारं पूर्वपदं धातुसंज्ञाप्रयोजके प्रत्यये चिकीर्षिते पृथक् क्रियते" इति। तेन मनश्शब्दात्प्राग् अट्। स्वमनायत। उन्मनायते। उदमनायत। एवञ्चावागल्भत अवागल्भिष्टेत्यादावप्येवेत्यस्य पृथक् करणं बोध्यम। ज्ञापकञ्च सजातीयविषयकम्। तेन यत्रोपसर्गरूपं सकलं श्रूयते न त्वादेशेनापहृतं तत्रैव पृथक्कृतिः।

एवञ्च आ ऊढ ओढः स इवाचार्य ओढायित्वा, अत्र 'उन्मनाय्य' अवगल्भ्येतिवन्न ल्यप्। ज्ञापकस्य विशेषविषयत्वे षाष्ठं वार्तिकं तद्भाष्यञ्च प्रमाणम। तथाहि—॥ उस्योमाङ्च्वाटः प्रतिषेधः ॥ उसि ओमाङोश्च परयोराटः पररूपं नेत्यर्थः। उन्नामैच्छत् औन्नीयत्। औङ्कारीयत्। औढीयत्। आटश्चेति च शब्देन पुनर्वृद्धिविधानादिदं सिद्धमिति षाष्ठे स्थितम्।

चुरादिगण में संग्राम युद्धे ऐसा पठित है, उस स्थल में 'संग्राम' यह प्रातिपदिक है, उस प्रातिपदिक से 'तत्करोति' अर्थ में णिच् सिद्ध ही है वहां णिच् प्रत्यय सन्नियोग से अनुबन्ध का संयोजन है, युद्ध अर्थ में जो ग्रामशब्द ऐसा कहने पर भी ग्रामशब्द युद्ध में अप्रसिद्ध है, अतः विधान-सामर्थ्य से अर्थतः संग्राम का ही लाभ होता अर्थात् संग्रामशब्द लब्ध होता फिर 'सम्' विशिष्ट पाठ करने का क्या प्रयोजन है, तो वहीं सम् विशिष्ट पाठ यह जनाता है कि 'उपसर्ग के समान वर्णमाला युक्त पूर्वपद धातुसंज्ञानिष्ठप्रयोज्यतानिरूपितप्रयोजकतावान् प्रत्यय कर्तव्य रहें वहां उपसर्गसमानाकार शब्द का पृथक् करण करना चाहिये। 'संग्राम' प्रातिपदिक है इस कथन से वह धातु नहीं है। धातु यदि वह होता तो भाष्योक्त ज्ञापकानुसरण असङ्गत होता। उपसर्गसमानाकार इस लिए कहा कि सम् के अर्थ का क्रिया के साथ योग न होने से उसकी उपसर्गसंज्ञा नहीं है, "यद्यर्थक्रियायुक्ताः प्रादयस्तम्प्रत्येव गत्युपसर्गसंज्ञका भवन्ति" यह वैयाकरणों का सिद्धान्त है, उपसर्गसंज्ञक जो सम् भवति का सम् उसमें वृत्ति वर्णमाला सदृश वर्णमाला युक्त 'संग्राम' घटक 'सम्' है, उपसर्ग का भी प्रयोग-भेद से उपसर्गसमानाकारत्व है। पृथक् करण से ज्ञात जो सम् एवं ग्राम का समास उस समास के अभाव की कल्पना करनी चाहिये। सुबन्त तदादि से क्यङ् में तदादि अधिक का व्यावर्तक है न्यून का नहीं प्रकृत में सुबन्त तदादि संग्राम समस्त है किन्तु सम् रहित केवल ग्राम से भी क्यङ् सुबन्त तदादि का अवयव भी सुबन्त है इस बुद्धि से क्यङ् होता है। ज्ञाप्य वचन में प्रविष्ट पदों का विवरण स्पष्ट-ज्ञानार्थ किया है एवं 'प्रत्यये' पद का प्रयोजन भी इस विवरण से सुगम हुआ, अब प्रधान ज्ञापितवचन पर विचार का पुनः प्रारम्भ हो रहा है—

धातुसंज्ञा कार्य अर्थात् प्रयोज्य है क्यङादि प्रत्यय कारण अर्थात् प्रयोजक है, धातु संज्ञा का जो अप्रयोजक प्रत्यय है वहां पृथक् करण उपसर्गसमानाकार का नहीं होता है यथा—आन्दोल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यित्वा, प्रेङ्खोलयित्वा, यहां 'आ' एवं 'प्र' कर क्त्वा प्रत्यय करने में पृथक्करण अर्थात् समासाभाव की कल्पना न हुई गतिसमास प्रयुक्त क्त्वा को ल्यप् हुआ। क्योंकि क्त्वाप्रत्यय धातुसंज्ञा में कारण नहीं है। 'सुमिमनिषति' यहां पृथक्करण से मन् का द्वित्व होकर सन्यतः से इकारादेश से यह रूप बना।

स्वमनायत यहां मनस् शब्द के पूर्व में लङ् में अडागम हुआ, एवं यण्‌देश। से पूर्वोक्तरूप की सिद्धि हुई। एवं उदमनायत। इस प्रकार 'अवागल्मत, अवागल्मिष्ट' यहां भी 'अव' का पृथक् करण पूर्वोक्त ज्ञापन से हुआ।

सदा ज्ञापक सजातीय की अपेक्षा करता है, अतः संग्राम में उपसर्ग समानाकार रूप सकल अविकृतश्रूयमाण जिस प्रकार है तथैव जहां रहें वहां ही पृथक् करण उसका होता है, अन्यथा नहीं। उसको मूलग्रन्थ में कहा है कि "यत्र उपसर्गरूपं सकलं श्रूयते न तु आदेशेन अपहृतं तत्रैव पृथक्कृतिः"। सजातीय-विषयक पूर्वोक्त ज्ञापन का फल यह है कि आ + ऊढः गुण ओढः स इवाचर्य, इस विग्रह में 'ओढायित्वा' यहां उपसर्ग समानाकार 'आ' का गुण से विकृत रूप होगा अतः 'उन्मनाय्य' 'अवगल्म्य' इत्यादि के समान पृथक् करण द्वारा समास-प्रयुक्त ल्यप् ओढायित्वा में न हुआ। यह ज्ञापकविशेष-विषयत्व मे षष्ठाध्याय का वार्तिक एवं उसका भाष्य प्रमाण है, उसको यहां कहते हैं 'तथाहि' शब्द-निर्देश से। * वार्तिक का अर्थ—* उस्, ओम्, आङ् पर रहते आट् का पररूप नहीं होता है—उस्राम् ऐच्छत् औस्रीयत्। यहां 'आ उकार' का 'ओमाङोश्च' से पररूप न होकर वृद्धि हुई। औङ्कारीयत्। औढीयत्। इस वार्तिक का खण्डन भाष्य में इस प्रकार है कि—'आटश्च' यहां १-'आटः' सूत्र है, २-'च' सूत्र है, 'आटः' का अर्थ—आट् से अच् पर में रहते पूर्वपर के स्थान में वृद्धि होती है, तदनन्तर 'च' में पूर्वोक्त सभी की अनुवृत्ति कर पूर्वार्थ-समानाकार 'च' सूत्र का अर्थ वृद्धि के लिए हुआ, पूर्व से वृद्धि सिद्ध थी 'च' सूत्र क्यों योगविभाग द्वारा किया वह बाधक-बाधनार्थ है, 'आटः' का बाधक पररूप-विधायक 'उस्यपदान्तात्' एवं 'ओमाङोश्च' उसको 'च' सूत्र बाधकरता है अतः पररूप-बाधनार्थ 'उस्योमाङ्' वार्तिक का अपूर्व आश्रयण न करना अर्थात् भाष्यकारने वार्तिक का खण्डन किया। इस वार्तिकारम्भ एवं उसके प्रत्याख्यान पर भाष्यप्रामाण्य से यह सिद्ध हुआ कि पूर्वोक्त ज्ञापक सजातीयापेक्षत्वेन विशेषविषयक ही है, अन्यथा आङ्परत्व के अभाव से पररूप की प्राप्ति ही नहीं फिर निषेध करना व्यर्थ हो जाता। उस्रा शब्दार्थ कोष में इस प्रकार वर्णित है—

"माहेयी सौरभेयी गौरुस्रा माता च शृङ्गिणी"।

औस्रीयत्—क्यजन्त उस्रा से लङ् अडागम करने के उत्तर 'उस्यपदान्तात्' से पररूप प्राप्त है, 'भिन्धुः' आदि में आगमविशिष्ट उस् अर्थवान् है केवल नहीं, आगम-समभिव्याहारे आगमविशिष्टस्यैवार्थवत्त्वम्' अतः 'उस्यपदान्तात्' में अर्थवत् परिभाषा अनित्यत्व के कारण न लगने से अनर्थक उस् में भी पररूप यहां उससे प्राप्त था उसका निषेध वार्तिक से या 'च' विभक्त से हुआ। अडागम का उस पर रहते प्रतिषेध पररूप का ही अर्थवत् परिभाषा अनित्य में प्रमाण है। 'ययुः' 'पपुः'में उस् अर्थवान् है अर्थवान् तथा अनर्थक उभय का वहां ग्रहण हुआ। अत एव अपदान्तात् किम्? का उस्रा 'वोस्रा' यह कथन अनर्थक भी उस् के ग्रहण से सङ्गत हुआ। औङ्कारीयत्—'ओमाङोश्च' से पररूप प्राप्त था उसका निषेध हुआ। आडागम का आङ्पर में रहते उदाहरण—औढीयत्—जहां आदेश से अपहृत रूप रहें वहां भी पृथक्-करण यदि होता तो आङ् से पर आट् आगम होता, आडागम को आङ्पर रहते पररूप निषेध व्यर्थ होता, ज्ञापकविशेषविषयत्व में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यही निषेधविषय प्रमाण है। 'च' शब्द आटश्च में प्रयोगकर्ता सूत्रकार भी प्रमाण है, भाष्यकार भी विशेषविषयत्वज्ञापन में प्रमाण है।

विमर्श—पूर्वोक्त ज्ञापन से पृथक्करण उपसर्ग-समानाकार का जब होता है तो 'अवधीरयति' इत्यादि में अव का पृथक्करण है ? या नहीं ?, १—आदि पक्ष स्वीकार करने पर तो श्रीबोपदेव ने अव के पूर्व में अडागम करके एवं वकारइित्व करके ण्यन्त से चङ् में 'आववधीरत्' यह उदाहरण जो दिया है वह सङ्गत न होगा। २-द्वितीय पक्षमें में श्रीहर्ष का उक्त प्रयोग संगत न होगा—

"इतीव धारामवधीर्य मण्डलीक्रियाश्रियाऽमण्डि तुरङ्गमैर्महीं"।

इस शङ्का का समाधान यह है कि यह चुरादि गणपठित धातु नहीं है, किन्तु "बहुलमेतन्नि-दर्शनम्" इस बाहुलक से ऊहित है। कल्पना = ऊह यह है कि 'धीर' भी धातु है। 'अवधीर' भी। प्रयोगद्वय-प्रमाण से एवं मुनित्रय का इसमें अविरोध होने से है। जब अवधीर-विशिष्ट में धातुत्व है तब 'अवधारयित्वा' प्रयोग का साधुत्व है। धीर के धातुत्व में 'अवधीर्य' का साधुत्व है।

२६६९ लोहितादिडाज्भ्यः क्यच् ३।१।१३।

लोहितादिभ्यो डाजन्ताच्च भवत्यर्थे क्यप् स्यात्।

लोहितादिगणपठित शब्दों से एवं डाच्-प्रत्ययान्त शब्दों से 'भवति' अर्थ में क्यप् प्रत्यय होता है।

२६७० वा क्यषः १।३।९०।

क्यषन्तात् परस्मैपदं वा स्यात्। लोहितायति, लोहितायते। अत्राच्वेरित्य-नुवृत्त्याऽभूततद्भावविषयत्वं लब्धं तच्च लोहितशब्दस्यैव विशेषणम्, न तु डाचोऽसम्भवात्। नाप्यादिशब्दग्राह्याणाम्, यस्य प्रत्याख्यानात्। तथा च वार्तिकम्—क्लोहितडाज्भ्यः क्यष्वचनं भृशादिष्विति राणीति। न चैवं काम्य-च इव क्यषोऽपि ककारः श्रूयेत, उच्चारणसामर्थ्यादिति वाच्यम्, तस्यापि भाष्ये प्रत्याख्यानात्। पटपटायति। पटपटायते। कृञ्वस्तियोगं विनापीह डाच्, डाजन्तात्क्यषो विधानसामर्थ्यात्। यत्तु—

"लोहितश्यामदुःखानि हर्षगर्वसुखानि च।
मूर्च्छानिद्राकृपाधूमाः करुणा नित्यचर्मणी॥ १॥'

इति पठित्वा श्यामादिभ्योऽपि क्यषि पदद्वयमुदाहरन्ति, तद्भाष्यवार्तिक-विरुद्धम्। तस्मात् तेभ्यः क्यङ्येव, श्यामायते। दुःखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते। लिङ्गविशिष्टपरिभाषया लोहिनीशब्दादपि क्यच्, लोहिनीयति लोहिनीयते।

क्यष् प्रत्ययान्त धातु से लकार के स्थान में परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय विकल्प से होते हैं। इस सूत्र में 'भृशादिभ्यः' से 'अच्वि' की अनुवृत्ति से च्वि = अभूततद्भाव में होता है तद्भिन्न भी अभूततद्भाव ही 'संयोगो विप्रयोगश्च' से होगा, वह अभूततद्भाव विशेषण लोहितार्थ का ही है। डाच्प्रत्ययान्तार्थ का नहीं है, असम्भव के कारण से। एवं लोहितादि में आदि पद से ग्राह्य जो शब्द तद्वाच्य जो अर्थ उनमें वह विशेषण नहीं है, क्योंकि 'आदि' शब्द का प्रत्याख्यान है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्याख्यान-बोधक वार्तिकार्थ—लोहित एवं डाच्-प्रत्ययान्त तदादि से क्यच् होता है, इतर शब्द जो आदि से गृहीत होते थे उनका भूशादिगण में पाठ करना यही पक्ष सर्वथा उचित है। पूर्व में यह कहा गया है कि काम्यच् प्रत्यय में उच्चारण-सामर्थ्य से ककार की इत्संज्ञा एवं लोप नहीं होता है, उसी प्रकार क्यष् में भी ककार की इत्संज्ञा एवं लोप न होना चाहिए? इस शङ्का के निवारणार्थ क्यष् में भाष्यकार ने ककार का प्रत्याख्यान ही किया है—'यष्' ही प्रत्यय विधीयमान है।

डाच् प्रत्ययान्त का उदाहरण—'अव्यक्तानुकरणात्' सूत्र से डाच् प्रत्यय की उत्पत्ति के पूर्व 'डाचि विवक्षिते द्वे' से बहुल करके द्वित्व होता है। क्यप् आ० एवं प० पटपटायति। पटपटायते। कृ भू अस् इन धातुओं के योग में यद्यपि डाच् प्रत्यय विधीयमान है तो भी यहाँ डाजन्त तदादि शब्दस्वरूप से क्यष् विधानसामर्थ्य से उन धातुओं के योग के विना भी डाच् होता है। यह कल्पना अर्थापत्तिप्रमाण से हुई "उपपाद्यज्ञानेन उपपादकज्ञानम् = अर्थापत्तिः" पीनत्व का भोजनाभाव से उपपत्ति नहीं हो सकती है, अतः रात्रिभोजन की यथा कल्पना है तथैव प्रकृत में क्यच् विधान से डाच् प्रत्यय की यहां भी कल्पना है।

किसी आचार्य ने मूल में लिखित कारिका के अनुसार—लोहित, श्याम, दुःख, हर्ष, गर्व, सुख, मूर्च्छा, निद्रा, कृपा, धूम, करुणा, नित्य, धर्म इनका पाठ करके श्यामादि शब्दों के उत्तर क्यष् प्रत्यय करके परस्मैपद एवं आत्मनेपद कर के द्विविध प्रयोगों का उदाहरण दिया है वह 'यत्तु' पक्ष भाष्य एवं वार्तिकविरुद्ध है अतः उपेक्ष्य है। इसलिए कारिका में वर्णित श्यामादि शब्दों से क्यङ् ही होता है। श्यामायते। दुःखादि शब्द नामधातु के घटक जो हैं वे दुःख आदि को केवल न बोध करके दुःखयुक्त = दुःखवान् आदि अर्थ की प्रतीति करते हैं। वर्णवाचक 'लोहित' शब्द के स्त्रीलिङ्ग में ङीष् नकार कर निष्पन्न लोहिनी शब्द से भी 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्ग-विशिष्टस्यापि ग्रहणम्' परिभाषा से उसका भी यहां ग्रहण होने से क्यष् प्रत्यय होता ही है, क्यङ् में पुंवद्भाव होता है यहां नहीं, लोहिनीयति, लोहिनीयते।

२६७१ कष्टाय क्रमणे ३।१।१४।

चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दाद् उत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात्। कष्टाय क्रमते कष्टायते। पापं कर्तुम् उत्सहत इत्यर्थः। ❀ सत्रकक्षकष्टकृच्छ्रगहनेभ्यः कण्वचिकीर्षायामिति वक्तव्यम् ❀। कण्वम् = पापम्। सत्रादयो वृत्तिविषये पापार्थाः। तेभ्यो द्वितीयान्तेभ्यश्चिकीर्षायां क्यङ्। पापं चिकीर्षतीत्यस्वपदविग्रहः। सत्रायते। कक्षायते इत्यादि।

चतुर्थ्यन्ततदादि कष्ट शब्द से उत्साह रूप अर्थ गम्यमान रहते क्यङ् होता है। वह कष्ट के लिए उत्साहयुक्त है—कष्टायते। यहां कष्ट का अर्थ पाप है। पाप करने की इच्छा अर्थ में सत्र, कक्ष, कष्ट, कृच्छ्र, गहन, से क्यङ् होता है, सत्रादि शब्द वृत्ति में पापरूप अर्थ के बोधक हैं। द्वितीयान्त इन शब्दों से कार्य करने की इच्छा अर्थ में क्यङ् होता है। यहां अस्वपदविग्रह है। अर्थात् जिस द्वितीयान्त से क्यङ् प्रत्यय करना है उससे विग्रह न कर उसका जो समानार्थ = पर्यायवाचक शब्द से विग्रह हो उसे अस्वपद विग्रह कहते हैं। यथा पापं चिकीर्षति सत्रायते इत्यादि।

२६७२ कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः ३।१।१५।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोमन्थतपोभ्यां कर्मभ्यां क्रमेण वर्तनायां चरणे चार्थे क्यङ् स्यात्। रोमन्थं वर्तयति रोमन्थायते। ॐ हनुचलन इति वक्तव्यम् ॐ। चर्वितस्याकृष्य पुनश्चर्वणमित्यर्थः। नेह—कीटो रोमन्थं वर्तयति। अपानप्रदेशान्निःसृतं द्रव्यमिह रोमन्थस्तदश्नातीत्यर्थः—इति कैयटः। वर्तुलं करोतीत्यर्थ इति न्यासकारहरदत्तौ। ॐ तपसः परस्मैपदञ्च ॐ। तपश्चरति तपस्यति।

रोमन्थ एवं तपस् कर्मसंज्ञक इनसे क्रमसे वर्तना एवं चरणार्थ में क्यङ् होता है। चबाया हुआ घास आदि को उदर से आकर्षण करके पुनः चबाना इस क्रिया को रोमन्थ कहते हैं, पशुओं में प्रायः ऐसा देखा जाता है। अर्थात् तालुचलन से चबाई हुई वस्तु को आकर्षणपूर्वक पुनश्चर्वण अर्थ में उक्त प्रत्यय होता है, इस कारण कीटो रोमन्थं वर्तयति = सम्पादयति इस स्थल में क्यङ् प्रत्यय नहीं हुआ। यहां मलरूपद्रव्य जो अपान देश से निःसृत है वह रोमन्थ पद से गृहीत है तत्कर्मक अशन क्रिया को कीट करता है यह अर्थ है। गोलाकार उस मल को वह कीट करता है यह न्यासकार एवं हरदत्त का मत है।

द्वितीयान्त कर्मवाचक तपस् से क्यङ् प्रत्यय होने पर तदन्त से लकार के स्थान में परस्मैपदसंज्ञक प्रत्ययों का प्रयोग करना चाहिये—यथा, तपस्यति।

२६७३ बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने ३।१।१६।

आभ्यां कर्मभ्यां क्यङ् स्यात्। बाष्पमुद्वमति बाष्पायते, ऊष्मायते। ॐ फेनाच्चेति वक्तव्यम् ॐ फेनायते।

द्वितीयान्त कर्मवाचक बाष्प ऊष्म इनसे उद्वमन अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है। द्वितीयान्त तथा फेन से भी क्यङ् होता है।

२६७४ शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ३।१।१७।

एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात्। शब्दं करोति शब्दायते। पक्षे तत्करोतीति णिजपीष्यत इति न्यासः, शब्दयति। ॐ सुदिनदुर्दिननीहारेभ्यश्च ॐ। सुदिनायते।

कर्मसंज्ञक शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व, मेघ इनसे 'करोति' अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है। शब्दायते। पक्ष में द्वितीयान्त से 'करोति' अर्थ में णिच् प्रत्यय भी हुआ—शब्दयति। कर्मसंज्ञक सुदिन, दुर्दिन एवं नीहार से भी क्यङ् होता है।

२६७५ सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् ३।१।१८।

सुखादिभ्यः कर्मभ्यो वेदनायामर्थे क्यङ् स्याद् वेदनाकर्तुरेव चेत् सुखादीनि स्युः। सुखं वेदयते सुखायते। कर्तृग्रहणं किम्, परस्य सुखं वेदयते।

यदि सुखादि वेदनाकर्ता का ही हो तो कर्म संज्ञक सुखादि से वेदना में क्यङ् प्रत्यय होता है। सुखायते। वह स्वयं स्वकीय सुख को जानता है। परकीय दुःख विषयक ज्ञानकर्ता में णिच् एवं वाक्य की स्थिति रहती है।

२६७६ नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् ३।१।१९।

'करणे' इत्यनुवृत्तेः क्रियाविशेषे पूजायां परिचर्यायाम् आश्चर्ये च। नमस्यति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवान्=पूजयतीत्यर्थः। वरिवस्यति गुरून्=शुश्रूषते इत्यर्थः। चित्रीयते=विस्मयते इत्यर्थः। विस्मापयत इत्यन्ये।

नमस्, वरिवस्, चित्रङ् इनसे क्रियाविशेष अर्थात् पूजा अर्थ में, परिचर्या अर्थ में एवं आश्चर्य अर्थ में क्यच् प्रत्यय होता है, उदाहरण क्रमशः है। आश्चर्यान्वित स्वयं होना या आश्चर्यान्वित कराता है दो अर्थ चित्रीयते के आचार्यमतभेदप्रयुक्त है। देवताओं का पूजन वह करता है। वह गुरु की सेवा करता है, आदि अर्थ है। नमस्यति, वरिवस्यति।

२६७७ पुच्छभाण्डचीवराणिङ् ३।१।२०।

❀ पुच्छादुदसने व्यसने पर्यसने च ❀। विविधं विरुद्धं वोत्क्षेपणं व्यसनम्। उत्पुच्छयते। विपुच्छयते। परिपुच्छयते। ❀ भाण्डात्समाचयने ❀। सम्भाण्डयते = भाण्डानि समाचिनोति राशीकरोतीत्यर्थः। समबभाण्डत। ❀ चीवरादर्जने परिधाने च ❀ सञ्चीवरयते भिक्षुः। चीवराण्यर्जयति परिधत्ते वेत्यर्थः।

पुच्छ, भाण्ड, चीवर से क्रियाविशेष अर्थ में णिङ् प्रत्यय होता है। उदसन, व्यसन, एवं पर्यवसानार्थ में पुच्छ शब्द के उत्तर णिङ् करना चाहिये। व्यसन में असु क्षेपणे धातु है—विविध विरुद्ध उत्क्षेपण को व्यसन कहते हैं। उत्पुच्छयते। विपुच्छयते, परिपुच्छयते। राशीकरणरूप समाचयन में भाण्ड के उत्तर णिङ् होता है। इस सूत्र में भी कर्म का सन्बन्ध से द्वितीयान्त सूत्र-पठित से णिङ् होता है। समाचयन = इकट्ठा करना अर्थ है। अर्जन या धारण करना अर्थ में कर्मसंज्ञक चीवर से णिङ् होता है। प्राप्त करना या सधारण करना अर्थ में सञ्चीवरयते। चीवर को भाषा में 'चीथड़े' कहते हैं। उसको एकत्र करता है या पहिरता है।

२६७८ मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच् ३।१।२१।

कृत्वर्थे। मुण्डं करोति मुण्डयति। ❀ व्रताद् भोजनतन्निवृत्त्योः ❀। पयः शूद्रान्नं वा व्रतयति ❀ वस्त्रात् समाच्छादने ❀। संवस्त्रयति। ❀ हल्यादिभ्यो ग्रहणे ❀। हलिकल्योरदन्तत्वञ्च निपात्यते हलिं कलिं वा गृह्णाति हलयति कलयति। महद् हलं हलिः। परत्वाद् वृद्धौ सत्यामपीष्ठवद्भावेन अगेव लुप्यते, अतः सन्वद्भावदीर्घौ न, अजहलत्, अचकलत्। कृतं गृह्णाति कृतयति। तूस्तानि विहन्ति वितूस्तयति। तूस्तम् = केशा इत्येके।

मुण्डादयः सत्यापपाशेत्यत्रैव पठितुं युक्ताः। प्रातिपदिकाद् धात्वर्थ इत्येव सिद्धे केषाञ्चिद् ग्रहणं सापेक्षेभ्योऽपि णिजर्थम्। मुण्डयति माणवकम्। मिश्रयत्यन्तम्। श्लक्ष्णयति वस्त्रम्। लवणयति व्यञ्जनम् इति हलिकल्योरदन्तत्वार्थम्। सत्यस्य आपुगर्थम्। केषाञ्चित्तु प्रपञ्चार्थम्। सत्यं करोत्याचष्टे वा सत्यापयति।

'करोति' अर्थ में द्वितीयान्त मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत, तूस्त इनसे क्रियासामान्य में कचित् क्रियाविशेष में प्राचुर्य से णिच् होता है। व्रत शब्द से भोजन या भोजन की निवृत्ति अर्थ में णिच् होता है—व्रतयति = पयः का पान अर्थात् भोजन करता है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या शुद्ध के अन्न का परित्याग वह करता है। समाच्छादन अर्थ में वस्त्र शब्द से णिच् होता है। ग्रहणार्थ में हलि आदि शब्दों से णिच् होता है, एवं हलि कलि इनके इकार को अकारादेश होता है। बड़े हल को हलि कहते हैं। अजहलत्, अचकलत्, यहां हलि कलि को अदन्तत्व-निपातन 'अक्' लोपित्व सम्पादनार्थ है, यदि वृद्धि के पूर्व इष्टवद्भाव से इकार का लोप होता तो स्वतः 'अक्' लोपित्व है, वह अदन्तत्व-निपातन व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि वृद्धि करके ही टिलोप होता है = "वृद्धौ सत्यां टिलोपः" यह पक्ष स्वीकार करने पर इकार की वृद्धि ऐकार होगी तब टिलोप ऐकार का प्राप्त है ऐकार अक् प्रत्याहार-बोध्य नहीं है, ऐकार का लोप इष्टवद् भाव से णिच् निमित्त होने पर अनग्-लोपित्व से सन्वद्भाव, अभ्यास को 'सन्यतः' इकारादेशः, 'दीर्घो लघोः' से दीर्घ होकर 'अजीहलत्' अचीकलत् वे दो रूप अनिष्ट होंगे। अतः यहां वृद्धि के बाद ऐकार को अकारादेशकर उस अकार का णिज्निमित्तक इष्टवद्भाव-प्रयुक्त टिलोप होने पर भी वे दोनों अग्लोपी ही हैं अतः सन्वद्भावादि की अप्रवृत्ति से अजहलत्, अचकलत् इष्टप्रयोगों की सिद्धि हुई—'वृद्धौ सत्यां टिलोपः' में अदन्तत्वनिपातन ही प्रमाण है। कूतं गृह्णाति कुतयति। तूस्त का अर्थ केश है, या जटीभूतकेश, या पाप अर्थ है।

मुण्डादि शब्दों को 'सत्यापपाश' सूत्र में ही पढ़ना उचित था। अथवा 'प्रातिपदिकात् धात्वर्थे' से णिच् सिद्ध था पुनः इस सूत्र में कई शब्द ऐसे हैं जिनको सापेक्षत्व के कारण सामर्थ्याभाव-प्रयुक्त णिच् का अभाव प्राप्त था, सूत्र में इनके ग्रहण-प्रयुक्त यहां "सापेक्षमसमर्थवत्" हो तो हुए भी णिच् विधान हुआ। एतदर्थ सूत्र में इनका पाठ है। इकारान्त हलि एवं कलि को अदन्तत्व-निपातनार्थ पाठ सूत्र में है। सत्य शब्द को आपुक् के लिए पाठ है। अन्य शब्दों में जहां प्रयोजनविशेष नहीं है उनका पाठ सूत्र में स्पष्टार्थक है। सत्यापयति।

॥ अर्थवेदयोरप्यापुग् वक्तव्यः ॥। अर्थापयति। वेदापयति। पाशं विमुञ्चति विपाशयति। रूपं पश्यति रूपयति। वीणयोपगायत्युपवीणयति। तूलेनानुकृष्णात्यनुतूलयति। तृणाग्रं तूलेनानुघट्टयतीत्यर्थः। श्लोकैरुपस्तौति उपश्लोकयति। सेनया अभियाति अभिषेणयति। उपसर्गात् सुनोतीति षः। अभ्यषेणयत्। प्राक्सितादिति षः। लोमान्यनुमार्ष्टि अनुलोमयति। त्वचं संवरणे। घः, त्वचं गृह्णाति त्वचयति। वर्मणा संनह्यति संवर्मयति। वर्णं गृह्णाति वर्णयति। चूर्णैरवध्वंसते अवचूर्णयति। इष्टवदित्यतिदेशात् पुंवद्भावादयः। एनीमाचष्टे एतयति। दरदमाचष्टे दारदयति। पृथुं प्रथयति। वृद्धौ सत्यां पूर्वं वा टिलोपः। अपिप्रथत्। अपप्रथत्। मृदु म्रदयति। अभिम्रदत्। भृशं, कृशं, दृढम्, भ्रशयति, कृशयति, द्रढयति, अबभ्रशत्, अचक्रशत्, अदद्रढत्। परिव्रढयति। पर्यवव्रढत्।

अर्थ एवं वेद को भी आपुक् होता है। अर्थापयति। वेदापयति। 'सत्यापपाश' से णिच् के उदाहरण विपाशयति। अनुतूलयति = तृण से तृणाग्र को युक्त करता है। अभिषेणयति 'उपसर्गात् सुनोति' सूत्र से षत्व हुआ। अभ्यषेणयत् यहां 'प्राक्सितात्' से षकारादेश हुआ। अभिषिषेणयति यहां 'स्थादिष्वभ्यासेन' से षकारादेश हुआ। त्वचयति—संवरण अर्थ में त्वच् धातु है 'पुंसि संज्ञायाम्' से घप्रत्यय हुआ द्वि० से गृ० अर्थ में णिच् इष्टवद्भाव टिलोपादि। कवच से वह बांधता है = संनह्यति। 'प्रातिपदिकात्' से णिच् होता है वह इष्टन्-वत् होने से इष्टन् प्रत्यय पर में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में रहते प्रातिपदिक का पुंवद्भाव, रभाव टिलोपादि कार्य होते हैं वे सभी णिच् प्रत्यय पर में रहते होते हैं, कार्यातिदेश में इन कार्य को स्वयं अतिदेश बोधक वचन नहीं करता है। शास्त्रातिदेश पक्ष में उन शास्त्रों से वे कार्य को यह सम्पादन करवाता है। मुख्य पक्ष कार्यातिदेश ही है। श्वेतवर्णविशिष्टा शाटी आदि स्त्रीत्वबोधक वस्तु में 'आचष्टे' अर्थ में द्वितीयान्त एनी से णिच् पुंवद्भाव से ङीष् एवं नकारादेश की निवृत्ति-एतयति। यहां टिलोप करने से ङीष् की निवृत्ति से तत्सन्नियोग नकार की निवृत्ति स्वतः होगी, अतः पुंवद्भाव का उदाहरण यह नहीं। अतः अन्य उदाहरण देते हैं—दारदयति—दरदोऽपत्यम्=दारदः, यहां 'द्व्यष्मगधे'से अण् प्रत्यय उसका स्त्री लिङ्ग में 'अतश्च' से लुक् 'दरद्' ताम् आचष्टे दारदयति। यहां पुंवद्भाव का अभाव यदि होता तो टिलोप कर 'दरयति' रूप अनिष्ट होता। प्रथयति—'र ऋतो हलादेः' से रभाव टिलोपादि। 'अपिप्रथम्' अपृथु इ अत् यहां रभाव, वृद्धि उकार की औकार करके टिलोप करने से अनग् लोपी होने से सन्वद्भाव इकारादेश से रूपसिद्धि हुई। हलिकलि को अदन्तत्व निपात से ज्ञापित वचन है—"वृद्धौ सत्यां टिलोप इति"। २—'वृद्धेः पूर्वं टिलोपः'। अर्थात् "वृद्धेः लोपो बलीयान्" इस पक्ष में उकार लोप से यहां णिच् निमित्तक इष्टवद्भावप्रयुक्त टिलोप से अग्लोपी है, अतः सन्वद्भावादिके अभावसे अपप्रथत्। पूर्वोक्त दोनों पक्ष भाष्यादिसम्मत है अतः रूपद्वय हुए। भृश, कृश, दृढ इन शब्दों से णिच् प्रत्यय होता है। र ऋतो से रभाव भ्रशयति आदि।

ऊढिमाख्यत् औजिढत्। ढत्वादीनामसिद्धत्वात् 'हति' शब्दस्य द्वित्वम्। 'पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे' इति त्वनित्यमित्युक्तम्। 'ढि' इत्यस्य द्वित्वमित्यन्ये औडिढत्। ऊढमाख्यत् औजढत्-औडढत्।

ओः पुयण् इति वर्गप्रत्यहारजग्रहो लिङ्गम्—'द्वित्वे कार्ये णावच आदेशो न' इति ऊनयतावुक्तम्। प्रकृत्यैकाच्। वृद्धिपुकौ। स्वापयति।

त्वां मां वाऽऽचष्टे त्वापयति, मापयति, मपर्यन्तस्य त्वमौ, पररूपात् पूर्वं नित्यत्वाट्टिलोपः। वृद्धिः, पुक्। 'त्वादयति', 'मादयति' इति तु न्याय्यम्। अन्तरङ्गत्वात् पररूपे कृते प्रकृत्यैकाजिति प्रकृतिभावात्। न च प्रकृतिभावो भाष्ये प्रत्याख्यात इति भ्रमितव्यम्, भाष्यस्य प्रेष्ठाद्यदाहरणविशेषेऽन्यथासिद्धिपरत्वात्।

युवाम् आवां वा युष्मयति, अस्मयति। श्वानमाचष्टे शावयति। 'नस्तद्धिते' इति टिलोपः प्रकृतिभावस्तु न, 'येन नाप्राप्ति' न्यायेन टेरित्यस्यैव बाधको हि सः। भत्त्वात् संप्रसारणम्। अन्ये तु 'नस्तद्धिते' इति नेहातिदिश्यते, इष्ठनि तस्यादृष्टत्वात्। 'बह्विष्ठ' इत्यादौ परत्वाट्टेरित्यस्यैव प्रवृत्तेः, तेन शुनयतीति रूपमाहुः।

प्रापणार्थक वह् धातु से क्तिन् प्रत्यय से निष्पन्न ऊढि शब्द है, सम्प्रसारण पूर्वरूप ढत्व, धत्व ष्टुत्व ढलोप दीर्घ है ऊढिमाख्यत्। यहां ढत्वादि कार्य असिद्ध 'पूर्वत्रासिद्धम्' से है अतः 'हति' शब्दका द्वित्वादिसे 'औजिढत्' रूप हुआ। 'उभौ साभ्यासस्य' सूत्रारम्भ सामर्थ्य से 'पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे' यह वचन अनित्य है, अतः यहां उसकी प्रवृत्ति न हुई। उभौ साभ्यासस्य से णत्वमात्र करने में ही 'पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे' अनित्य है, सर्वत्र नहीं। अतः ढत्वादि असिद्ध न होने से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'ढि' शब्द का ही द्वित्व हुआ इस पक्षमें औडिढत्। क्तप्रत्ययान्त ऊढ से ऊढिमाख्यत् यहां ढत्वादि असिद्ध है इस पक्ष में औऊढत्। असिद्ध नहीं इस पक्ष में ढशब्द के द्वित्व से औडढत् रूप हुआ। यहां ढ का र का चर्कि से द्वित्व प्राप्त है एवं इष्ठवद्भाव से अकारका लोप प्राप्त है किन्तु 'ओः पययोः' इति वक्तव्ये वर्गप्रत्याहार जग्रह प्रमाण है कि णिचि अजादेशो न स्यात् 'द्वित्वे कर्तव्ये' यह सर्व 'औननत्' यहां कह चुके है।

अतः ढ शब्द का द्वित्व कथन उचित है। स्वापयति यहां इष्ठवद्भाव से प्राप्त टिलोप का बाधक 'प्रकृत्यैकाच्' से प्रकृतिभाव हुआ अतः टिलोप नहीं हुआ, वृद्धि कर आकारान्त लक्षण पुक् हुआ।

त्वां मां वा आचष्टे यहां णिच् यपर्यन्त भाग को त्व एवं म आदेश प्रत्ययोत्तरपदयोश्च से हुआ पररूप जो 'अतो गुणे' से प्राप्त था उसको नित्यत्व के कारण बाधकर टिलोप हुआ 'अचो ञ्णिति' से अकार की आकार वृद्धिकर पुक् से त्वापयति मापयति रूप हुए। नित्य से भी अन्तरङ्ग 'अतो गुणे' पररूप है। अतः पररूप की प्रथम प्रवृत्ति कर प्रकृतिभाव से 'स्वादयति' 'मादयति' यही रूप उचित है। प्रकृतिभाव विधायक 'प्रकृत्यैकाच्' शास्त्र का भगवान् भाष्यकारने प्रत्याख्यान किया है अतः प्रकृतिभाव यहां नहीं होगा, यह कथन उचित नहीं है 'प्रेष्ठ' आदि में अकारान्त आदेश विधान सामर्थ्य से टिलोप नहीं होगा 'प्रकृत्यैकाच्' सूत्र उन प्रयोगोंके लिए अनावश्यक है। सर्वथा अनावश्यक नहीं है।

वस्तुतः 'प्रकृत्यैकाच्' के जितने प्रयोजन दिखाये गये सबका उपायान्तर से भाष्यकार ने खण्डन किया, एवं अप्रत्याख्येय उदाहरण द्वारा उसकी सार्थकता निर्देश नहीं दिया। एतावता प्रकृत्यैकाच् सूत्र है ही नहीं यही भाष्यकारीय सिद्धान्त है। कौमुदीकार सूत्र स्वीकार करके प्रवृत्त है। भाष्यमतमें त्वादयति आदि न्याय्यम् नहीं अन्याय्यम् ही है। 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' सूत्र युष्मद् अस्मद् एकत्व विशिष्टार्थक रहें वहां ही प्रवृत्त है।

अतः द्वित्वादिविशिष्टार्थक युष्मद् अस्मद् यहां त्व म आदेशाभाव ही है। युष्मयति, अस्मयति। श्वानमाचष्टे यहां णिच् सम्प्रसारण नस्तद्धिते से टिलोप हुआ शावयति यहां 'प्रकृत्यैकाच्' सूत्र की अप्रवृत्ति से टिलोप है। प्रकृतिभाव विधायक सूत्र की जहां जहां प्राप्ति है वहां वहां 'टेः' की प्राप्ति है, अतः 'येन नाप्राप्ते यो विधिः' परिभाषा से वह 'टेः' का बाधक है, 'नस्तद्धिते' का नहीं। यहां मत्व के अतिदेश से सम्प्रसारण हुआ। अन्य आचार्य कहते है कि 'नस्तद्धिते' का णौ इष्ठवत् से अतिदेश नहीं है। इष्ठन् प्रत्यय में पर में रहते 'नस्तद्धिते' कहीं भी दिखा गया नहीं है। ब्रह्मिष्ठः में भी नस्तद्धिते से पर 'टेः' की ही प्रवृत्ति है। वस्तुतस्तु टिलोपत्वावच्छिन्न यावत् टिलोप का प्रकृतिभाव विधायक प्रकृत्यैकाच् है, वह नस्तद्धिते का भी बाधक है यह सिद्धान्त पक्ष का आदर करना उचित है। सूत्रकारमते शुनयति रूप हुआ। इष्ठवद्भाव से मत्व के कारण सम्प्रसारण एवं प्रकृत्यैकाच् से प्रकृतिभाव हुआ।

विद्वांसमाचष्टे विद्वयति। अङ्गवृत्तपरिभाषया सम्प्रसारणं नेत्येके। सम्प्रसारणे वृद्धाववादेशे च 'विदावयती'त्यन्ये। नित्यत्वाट्टिलोपात् प्राक् सम्प्रसारणम्, अन्तरङ्गत्वात्पूर्वरूपं टिलोपः, 'विदयति' इत्यपरे। उदञ्चमाचष्टे उदीचयति, उदैचिचत्। प्रत्यञ्चम्, प्रतीचयति, प्रत्यचिचत्। इकोऽसवर्णे इति प्रकृतिभावपक्षे प्रतिअचिचत्। सम्यञ्चमाचष्टे समीचयति। सम्यचिचत्, समि अचिचत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिर्यञ्चमाचष्टे तिरायति। अञ्चेष्टिलोपेनापहारेऽपि बहिरङ्गत्वेनासिद्धत्वात् तिरसस्तिरिः। असिद्धवदत्रेति 'चिणो लुक्' न्यायेन प्रथमटिलोपोऽसिद्धः, अतः पुनष्टिलोपो न, अङ्गवृत्तपरिभाषया वा। चङ्यग्लोपित्वादुपधाह्रस्वो न, अतितिरायत्। सध्र्यञ्चमाचष्टे सध्रायति। असस्रधायत्। विष्वद्र्यञ्चम् अविविष्वद्रायत्।

देवद्र्यञ्चम्, देवद्रायति, अदिदेवद्रायत्। अदद्र्यञ्चम्, अददद्रायत्। अदमुयञ्चम् अदमुआयति। आदमुआयत्। अमुमुयञ्चम्, अमुमुआयति। चङ् आमुमुआयत्। भुवं भावयति अबीभवत्, भ्रुवम् अबुभ्रवत्।

विद्वयति—यहां णिच् टिलोप होने से 'अङ्गकार्यं पुनर्नाङ्गकार्यम्' परिभाषा से सम्प्रसारण न हुआ। अङ्गवृत्त परिभाषा भाष्यमत में नहीं है अतः 'वसोः' से सम्प्रसारण, पूर्वरूप, वृद्धि, आवादेश से विद्वावयति ऐसा रूप होता है, कोई कहते हैं कि नित्यत्व के कारण टिलोप के पूर्व ही सम्प्रसारण अन्तरङ्ग, पूर्वरूप कर बाद में टिका लोप विद्वयति रूप हुआ। उदीचयति, उदैचिचत्। प्रतीचयति लङ् में 'इकोऽसवर्णे' से वै० ह० स० प्रकृति भाव से रूप द्वय हैं। उसी प्रकार समिअचिचत्, सम्याचिचत्। तिरायति अञ्चुधातु की टिका लोप प्रथम हुआ वह बहिरङ्गत्व के कारण असिद्ध होने से तिरस् के स्थान में तिरि आदेश हुआ, असिद्धवदत्राभाव से या 'चिणो लुक्' न्याय से प्रथम टिलोप जो हुआ था वह पुनः उसी से टिलोप में स्वयं भी स्वदृष्टि में असिद्ध होता है अतः पुनः टिलोप न हुआ। अपाचितराम् यहां 'त' का लोप के बाद पुनः तराम् का लुक् प्राप्त को अवरोध के लिए भगवान् भाष्यकार ने स्वयम् स्वदृष्टि असिद्ध के कारण पुनः लुक् न हुआ। इसको 'चिणो लुक्' न्याय कहते हैं।

अर्थात् एक स्वविषयक लक्ष्य को संस्कृत करके अर्थात् संस्कारक शास्त्र संस्कार करके कृतकृत्य है लक्ष्यान्तर में प्रवृत्त न होगा शास्त्र अतः 'लक्षणोपप्लव' माना गया है। अर्थात् यावन्ति लक्ष्याणि तावन्ति लक्षणानि। अतः तकार का लोपविधायक चिणो लुक् भिन्न है एवं 'तराम्' का लुक् विधानार्थं चिणो लुक् का उपप्लव प्राप्त है। वह असिद्धत्व सम्भावना से उपप्लव न हुआ। इसी प्रकार बाधक के विषय में बाध्य शास्त्र का उपप्लवाभाव होता है। अथवा 'अङ्गवृत्त' परिभाषा से टिका पुनः टिलोप न हुआ। चङ् पर रहते अक् का लोप होने के कारण उपधाका ह्रस्व न होकर 'अतितिरायत्' रूप हुआ। प्रथम कह चुके हैं अदद्रयङ् अदमुयङ् अमुमुयङ् तीन रूप अमुम् अञ्चति के हलन्त पु० है। अदद्र्यञ्चम्—अदद्रायत्। अदमुयञ्चम्—अदमु आययति, आददमु आयत्। अमुमु यञ्चम् अमुमु आययति। चङ् मे आमुमु आयत्। भुवम् भावयति लुङ् में अभ्यास उकार के इत्व से अबीभवत्। भ्रुवम् अबुभ्रवत्।

श्रियम्, अशिश्रयत्। गाम्, अजूगवत्। रायम्, अरीरयत्। नावम्, अनूनवत्। स्वश्वम्, स्वाशश्वत्। स्वः, अव्ययानां भमात्रे टिलोपः स्वयति। असस्वत्। असिस्वत्। बहून् भावयति। बहयतीत्यन्ये। विन्मतोरिति लुक् स्रग्विणम् स्रजयति। संज्ञापूर्वकत्वान्न वृद्धिः। श्रीमतीं श्रीमन्तं वा श्रययति। अशिश्रयत्। पयस्विनीम् पयसयति। इह टिलोपो न, तदपवादस्य लुकः प्रवृत्तत्वात्।

स्थूलम्, स्थवयति, दूरम् दवयति। कथं ताह दूरयत्यवनते विवस्वतीति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूरमतति अयते वा दूरात्, दूरातं कुर्वतीत्यर्थः। युवानं यवयति। कनयति। युवाल्पयोरिति वा कन्। अन्तिकं नेदयति। बाढं साधयति। प्रशस्यं प्रशस्ययति। इह अज्यौ न, उपसर्गस्य पृथक् कृतेः। वृद्धं ज्यापयति। वर्षयति। प्रियं प्रापयति। स्थिरं स्थापयति। स्फिरं स्फापयति। उरुं वरयति। वारयति। बहुलं बंहयति। गुरुं गरयति। तृप्रं त्रपयति। दीर्घं द्राघयति। वृन्दारकं वृन्दयति।

❀ इति नामधातु प्रक्रिया ❀

स्वर् आचष्टे विग्रह में णिच् अव्ययानां भमात्रे से टिका लोप स्वरयति। असस्वत्। असिस्वत्। बहून् भावयति यहां 'बहोर्लोपो भू च बहोः' से भूभाव हुआ, इष्ठवत् में सप्तम्यन्त से वतिप्रत्यय है अर्थात् इष्ठन् प्रत्यय पर में रहते जो कार्य विधीयमान है वे ही णिच् में होते हैं। अतः यि यहां 'इष्ठस्य यिट् च' की अप्रवृत्ति है। अर्थात् यिट् न हुआ णिको। कोई कहते हैं कि यिड् के अभाव से तत्सन्नियोगशिष्ट भूभाव भी न हुआ। अतः 'बहयति' यह रूप होता है। इष्ठन् में 'विन्मतोर्लुक्' की प्रवृत्ति होती है वह णिच् में भी इष्ठवद्भाव से प्रवृत्त होगा। विन् प्रत्ययान्त स्रग्विन् का णि में स्रजयति। 'संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः' से 'अत उपधायाः' से वृद्धि न हुई। संज्ञापूर्वक विधि अनित्य है वह भाष्यसम्मत सिद्धान्त नहीं है।

श्रीमती या श्रीमान् से द्वितीयान्त से णिच् पुंवद्भाव मतुप् का लुक् श्रययति। पयसयति यहां भी विन् का लुक्। यहां टिलोप का बाधक विन् लुक् प्रवृत्त है। अतः अपवाद के विषय में पूर्व या पश्चात् टिलोप नहीं होता है, अपवादशब्द तक्रकौण्डिन्य न्यायपरक होकर बाधकार्थ है। स्थवयति यहां स्थूल के लकार का लोप है। दवयति यहां दूर का 'र' का लोप है। 'दवयति' ही होता है 'दूरयति' प्रयोग इसका नहीं है, किन्तु दूरकर्मोपपद अत् या अय् का वह रूप है। युवन् को णि में इष्ठवत् पक्ष में विकल्प से युव एवं अल्प को कनादेश होता है। अन्तिक को नेद नेदयति, बाढ को साध् साधयति। प्रशस्य यहां श्र एवं ज्य उपसर्ग का पृथक् करण से न हुआ। वृद्ध को ज्य ज्यापयति। प्रिय को प्र प्रापयति। स्थिर् को स्थ स्थापयति। स्फिर को स्फ स्फापयति। उर् को वर वारयति। बहुल को बंह बंहयति। गुरु को गर् गरयति। तृप् त्रपयति। दीर्घम् द्राघयति। वृन्दारक को वृन्द वृन्दयति।

इं० श्रीबालकृष्णपञ्चोलिविरचित सविमर्श रत्नप्रभा में नामधातु प्रकरण समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ कण्ड्वादयः

२६७९ कण्ड्वादिभ्यो यक् ३।१।२७।

एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात् स्वार्थे। धातुभ्यः किम् ?, प्रातिपदिकेभ्यो मा भूत्। द्विधा हि कण्ड्वादयः। धातवः प्रातिपदिकानि च।

कण्डूञ् गात्रविघर्षणे। कण्डूयति। कण्डूयते।

'धातोरेकाच' सूत्र से यहां धातुकी अनुवृत्ति है, एवं 'वा' की निवृत्ति है।

कण्ड्वादिगण पठित धातुओं से स्वार्थ में अर्थात प्रकृत्यर्थ में नित्य यक् प्रत्यय होता है। यहां वा की निवृत्ति से अर्थतः नित्य का लाभ हुआ, नित्य की अनुवृत्ति नहीं है, अतः नित्य की अनुवृत्ति से व्याख्यान करने वाले प्राचीनों का मत उचित नहीं प्रत्युत दोषग्रस्त भी है। "अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति" से जहां प्रत्यय का अर्थ विशेष का कथन नहीं वे प्रत्यय प्रकृत्यर्थ के अर्थ से ही अर्थवान् है।

कण्ड्वादि शब्द दो प्रकार के हैं १ धातु २ एवं प्रातिपादिक। यक् में ककार करने से यह ज्ञापन करता कि कण्ड्वादि धातु है, एवं 'धातोः' के अधिकार में पठित होने से भी वे धातुसंज्ञक है। कण्डूञ् में दीर्घ ऊकार के उच्चारण से यह प्रातिपदिक भी है, यदि केवल धातु वे होते तो 'अहत' सूत्र से दीर्घ हो जाता ह्रस्व उकार घटित निर्देश करते।

"धातुप्रकरणाद् धातुः, कस्य चासञ्जनादपि।
आह चायमिमं दीर्घं मन्ये धातुर्विभाषितः" ॥ १ ॥

यह भाष्यकार से उक्त कारिका है। कण्डूञ् धातु शरीर के विघर्षण में है। यह उभयपदी है, क्रिया-जन्य फल कर्तृगामि रहे वहां 'स्वरितञितः' से आत्मनेपद होता है, अन्यथा परस्मैपद होता है। कण्ड्वादि से क्विप् करके 'सर्वप्रातिपदिकेभ्यः' पुनः कर्तरि क्विप् में 'कण्डूः' की सिद्धि के लिए दीर्घोच्चारण चरितार्थ है व्यर्थ नहीं। ज्ञापक वह कैसे हुआ ? भाष्यकार ने कहा है कि "नैतेभ्यो क्विप् दृश्यते" से भाष्यकार ने स्वयं पूर्वोक्त शङ्का का निरसन किया है। कण्ड्वादि आकृतिगण गणरत्नमहोदधि में है। रैयति। धवल्यति। भी यक् प्रत्ययान्तरूप इससे हुए।

मन्तु अपराधे। रोष इत्येके। मन्तूयति। चन्द्रस्तु ञितमाह। मन्तूयते। २। वल्गु पूजामाधुर्य्ययोः। वल्गूयति। ३। असु उपतापे। असु असूञ् इत्येके। अस्यति असूयति असूयते। ५। लेट् लोट् धौर्त्ये पूर्वभावे स्वप्ने च। दीप्तावित्येके। लेट्यति लेटिता। लोट्यति लोटिता। ७। लेला दीप्तौ। ८। इरस् इरज् इरञ् ईर्ष्यायाम्। इरस्यति। इरज्यति। हलि चेति दीर्घः-ईर्यति। ईर्यते। उषस् प्रभातीभावे। १२। वेद धौर्त्ये स्वप्ने च। १३। मेधा आशुग्रहणे। मेधायति। १४। कुषुभ क्षेपे। कुषुभ्यति। १५। मगध परिवेष्टने। नीचदास्य इत्यन्ये। १६। तन्तस पम्पस् दुःखे। १८। सुखदुःख ततक्रियायाम्। सुख्यति। दुःख्यति। सुखं दुःखं चानुभवति इत्यर्थः। २०। सपर पूजायाम्। अरर आराकर्मणि। २२। भिषज् चिकित्सायाम्। २३। भिष्णज् उपसेवायाम्। २४।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इषुध शरधारणे। २५। चरण वरण गतौ। २६। चुरण चौर्ये। २७। तुरण त्वरायाम्। २८। भुरण धारणपोषणयोः। २९। गद्गद वाक्स्खलने। ३०। एला केला खेला विलासे। इलेत्यन्ये। लेखा स्खलने च। अदन्तोऽयमित्यन्ये। लेख्यति। ३६। लिट अल्पकुत्सनयोः। लिट्यति। ३७। लाट जीवने। ३८। हृणीङ् रोषणे लज्जायाञ्च। ३९। महीङ् पूजायाम्। महीयते। पूजां लभत इत्यर्थः। ४०। रेखा श्लाघासादनयोः। ४१। द्रवस् परितापपरिचरणयोः।४२। तिरस् अन्तर्धौ। ४३। अगद नीरोगत्वे। ४४। उरस् बलार्थः। उरस्यति। बलवान् भवतीत्यर्थः। ४५। तरण गतौ। ४६। पयस् प्रसूतौ। सम्भूयस् प्रभूतभावे। ४८। अम्बर संवर सम्भरणे। ५०। आकृतिगणोऽयम्।

मन्तु धातु का अपराध एवं अन्यमत में रोष भी अर्थ है, मन्तूयति, 'अकृत्सार्व' से दीर्घ हुआ मन्तूयाञ्चकार आदि। चन्द्र मत में यह ञित् है अतः उभयपदी मन्तूयते। वल्गु पूजा एवं मधुरता में है। मूलग्रन्थ में धात्वर्थ फलमात्र का निर्देश है। फलजनक व्यापारार्थ सर्व धातु हैं।

उपताप जनक व्यापार में असु धातु है, किसी मत से असु असूञ् ऐसा पाठ भी है। लेट् एवं लोट् धूर्ततताजनक व्यापारार्थक है। पूर्वभाव ज० व्या० है। एवं स्वप्नजनक व्यापारार्थक है। यह दीप्ति में भी। लेखा दीप्ति में है। इरस् इरज् इरञ् ईर्ष्याजनक व्यापारार्थक है। ईर्ष्यति यहां हलिच से दीर्घ हुआ है। ईषद् असमाप्त रात्रि अर्थात् अरुणोदय काल में उषस् धातु है। स्वप्न एवं धूर्तता में वेद है। शीघ्र विषय ज्ञानजनक व्या० में मेधा है। निन्दा में कुषुभ है। परिवेष्टन या कुत्सित के दास्य कर्म में कुषुभ है। दुःखजनक व्यापार में तन्तस् एवं पम्पस् है। सुखजनक व्या० या दुःखजनक व्यापार में सुख एवं दुःख धातु है—वह सुख या दुःख को अनुभव करता है-सुख्यति, दुःख्यति। पूजा अर्थ में सपर धातु है। आरा कर्मजनक व्यापार में अरर धातु है। चिकित्साजनक व्यापार में भिषज् धातु है। उपसेवा ज०व्या० में भिण्डज् है। बाणधारण जनक व्यापार में इषुध धातु है। गति में चरण एवं वरण है। तस्करजनक व्यापार रूप कर्म में चुरण है। त्वरा = शीघ्रताजनक व्या० में तुरण है। धारण एवं पोषण में भुरण है। वाक्स्खलन में गद्गद है। विलासजनक व्यापार में एला, केला, खेला धातु है। इला भी धातु उसी अर्थ में है। अदन्त लेख धातु भी है। एवं लेखा धातु स्खलनार्थक भी है। अल्प एवं कुत्सन में लिट् है। जीवनधारण जनक व्यापार में लाट है। लज्जा एवं रोषण में हृणीङ् धातु है। पूजाजनक व्या० में महीङ् धातु है। महीयते = वह पूजा = सत्कार को प्राप्त करता है। रेखा श्लाघा एवं सादन अर्थ में है। परिताप एवं परिचरण अर्थ में द्रवस् है। अन्तर्धान में तिरस् है। अगद रोगविमुक्ति जनक व्यापार में है। 'नीरोगत्व' में रेफ का लोपकर 'हलोपे' से दीर्घ है। गद = रोग को कहते हैं यौगिक अर्थ में रोग को नाश करने वाले को 'गदहा' कहते हैं, यह शुद्ध यौगिकार्थ शब्द है, किन्तु चिकित्सक अर्थ में भाषा में प्रयुक्त नहीं होता है, किन्तु लम्बकर्ण में ही प्रयुक्त है लोक में 'योगात् रूढिर्बलीयसी' न्याय से। वह बलवान् होता है अर्थ में उरस्यति है 'उरस्' धातु का बलयुक्त व्यापारार्थक है। संयोगजनक व्यापार में 'तरण' धातु है। प्रसूत में पयस् है। अधिक भवन में सम्भूयस् धातु है। सम्यग् धारण एवं पोषण अर्थ में अम्बर एवं संवर धातु है। यह आकृतिगण है ऐसा गणरत्न महोदधि में उक्त है।

* पं० श्रीबालकृष्णशर्मपञ्चोलि विरचित राजप्रभा में कण्ड्वादिप्रकरण समाप्त *

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ प्रत्ययमाला

एक मूल प्रकृति से अनेक प्रत्यय विभिन्न सूत्रों से विभिन्न अर्थ में होते हैं, उनसे निष्पन्न शब्द स्वरूप लाघव पूर्वक विलक्षण अर्थ का वाचक होता है। माला = शब्द पंक्ति अर्थ का बोधक है, प्रत्ययानां माला इति प्रत्ययमाला। अर्थबोधकत्व विशिष्ट आचार्य संकेतसम्बन्ध से प्रत्ययपदवत्त्व को प्रत्यय कहते हैं।

कण्डूयतेः सन्। सन्यङोरिति प्रथमस्यैकाचो द्वित्वे प्राप्ते, ॐ कण्ड्वादेस्तृतीयस्येति वाच्यम् ॐ। कण्डूयियिषति। क्यजन्तात्सन्। ॐ यथेष्टं नामधातुषु ॐ। आद्यानां त्रयाणामन्यतमस्य द्वित्वमित्यर्थः। अजादेस्त्वाद्येतरस्य। पुपुत्रीयिषति। पुतित्रीयिषति। पुत्रीयियिषति। अशिश्वीयिषति। अश्वीयियिषति। नदराणां संयुक्तानामचः परस्यैव द्वित्वनिषेधः। इन्द्रीयतेः सन्। द्रीशब्दयिशब्दयोरन्यतरस्य द्वित्वम्।

इन्दिद्रीयिषति। इन्द्रीयियिषति। चिचन्द्रीयिषति। चन्दिद्रीयिषति। चन्द्रीयियिषति। प्रियमाख्यातुमाचक्षाणं प्रेरयितुं वेच्छति पिप्रापयिषति। प्रापिपयिषति। प्रापयियिषति। उरुं विवारयिषति। वारिरयिषति। वारयियिषति। बाढं सिसाधयिषतीत्यादि रूपत्रयम्। षत्वन्तु नास्ति, आदेशो यः सकार इत्युक्तेः। यङ्, सन्, ण्यन्तात्सन्, बोभूयिषयिषति। यङ्, णिच्, सन्नन्ताण्णिच्—बोभूयियिषयतीत्यादि।

ॐ इति प्रत्ययमाला ॐ

गात्रविघर्षणार्थक यक् प्रत्ययान्त कण्डूय धातुसे 'धातोः कर्मणः' से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय करके 'सन्यङोः' सूत्र से प्रथम एकाच् का द्वित्व प्राप्त है किन्तु उसको बाधनार्थ वार्तिक यह है। वह वार्तिक कण्ड्वादि के तृतीय एकाच् का द्वित्व बोधन करता है। इससे सन् को जो बलादि लक्षण इडागम हुआ है उस इट् एवं अतो लोप से अवशिष्ट यक् का व्यञ्जन य् दोनों का अर्थात् 'यि' शब्द का वृक्षप्रचलन न्याय से द्वित्व हुआ। व्यञ्जन नटभार्या समान होते हैं वे कचित् पूर्व अच् से अन्वयी होते हैं कचित् उत्तरान्वयी होते हैं। सन् के सकार को 'आदेश प्रत्यययोः' षकारादेश से कण्डूयियिष की 'सनाद्यन्ताः' से धातुसंज्ञा लट् तिप् शप् अनुबन्ध लोप 'अतो गुणे' पररूप से कण्डूयियिषति रूप क्यजन्त से सन्नन्त का हुआ।

नामधातु में इष्टेष्ट द्वित्व होता है, अर्थात् आद्य तीन अचों के मध्य में किसी एक का द्वित्व होता है क्रमशः किन्तु अजादि धातु के आदि अच् को छोड़कर अर्थात् वहां कभी द्वितीय स्वर या तृतीय स्वर का द्वित्व होता है, प्रथम का नहीं यह फलितार्थ कथन है। पुत्र को इच्छा करने वाले की इच्छा वह करता है इस अर्थ में क्यच् प्रत्ययान्त पुत्रीय से सन् इडागम अकारलोप कर पुत्रीयिष धातुसंज्ञा लट् तिप् शप् पररूप होता है, यहाँ 'पु' का द्वित्व, त्री का द्वित्व, 'यि' का द्वित्व होकर तीन रूप हुए—१-पुपुत्रीयिषति २-पुतित्रीयिषति। पुत्रीयियिषति। वह अपने के लिए अश्व को इच्छा करने वाले को इच्छा करने वाला अर्थ में क्यजन्त से सन् प्रत्ययान्त में श्वि का द्वित्व या यिका द्वित्व से दो रूप हुए, अजादि होने से अश्व के प्रथम अकार का द्वित्व न हुआ—१-अशिश्वीयिषति। २-अश्वीयियिषति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अच् से पर संयुक्त नकार दकार एवं रेफ का द्वित्व निषेधक सूत्र 'नन्द्राः संयोगादयः' है, अतः इन्दीय धातु को सन् प्रत्यय करने पर 'द्री' या 'यि' का द्वित्व होता है। १–इन्दिद्रीयिषति। २–इन्द्रीयियिषति। इन्द्र की इच्छा करने वाले की इच्छा वह करता है। इस प्रकार १–चिचन्द्रीयिषति। २–चन्द्रीयियिषति। प्रिय को कहने की या प्रेरणा करने की वह इच्छा करता है अर्थ में णिच् में इष्ठवद् भाव से प्रियको 'प्रियस्थिर'से प्रादेश कर द्वित्वादि कार्य करने से १–पिप्रापयिषति। २–प्रापिपयिषति। ३–प्रापयियिषति। उरु को वर् आदेश होता है, इष्ठवद्भाव से—१–विवारयिषति। वारिरयिषति – वारयियिषति। वाढको 'साध् आदेश—१–सिसाधयिषति। २–सा.दिधिषति। साधयियिषति। यहाँ आदेशावयव सकार के कारण 'आदेशप्रत्यययोः' से षकार न हुआ वहां आदेशपदार्थ एवं सकार का तादात्म्य = अभेद सम्बन्ध से अन्वय है—'आदेशाभिन्न सकार' यहां तो आदेश का अवयव सकार है। आदेश एवं अवयव में समवाय सम्बन्ध है अन्वयप्रयोजक। भू धातु से यङ्, सन्, णिच् सन् प्रत्यय करने से बोभूयिषयिषतिभूधात्वर्थ सत्ताजनक व्यापार अर्थ है—सत्ता = आत्मधारणानुकूलो व्यापारः, पौनःपुन्य या फलगत अतिशय अर्थ में यङ् होता है। इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होता है प्रेरणा अर्थ से णिच् है ण्यन्त से विहित सन् का भी अर्थ इच्छा है। इन सब को मिलाकर सामूहिक अर्थ यह हुआ—"बार-बार आत्मधारणानुकूल व्यापार के कर्ता की इच्छा करने वाले को प्रेरणा करने वाले की वह इच्छा करता है" यह शाब्द बोध है। भू से यङ् णिच्, सन् तदन्त से णिच् करने पर बोभूयिषति। पूर्वत्र द्वित्वादि वारणार्थ अनभ्यास ग्रहण आवश्यक है यङ् निमित्तकद्वित्व करने के बाद सन्निमित्तक प्राप्त द्वित्ववारणार्थ। लक्ष्ये लक्षण न्याय का विषय नहीं है, विभिन्न सूत्र से यहां द्वित्व प्राप्त होने से। अनभ्यास ग्रहण का भाष्योक्त-प्रकार स्वमहत्व प्रयुक्त है अर्थात् असङ्गत है, अनभिधान कल्पना में ही वह भाष्य सङ्गत हो सकता है, यहां अनभिधान ऐसे प्रयोगों के होते हैं यह समाधान भी अपना न्यूनत्व का ही प्रत्यायक है, सूत्रकार का दूरदर्शित्व यहां सिद्ध हुआ—महान् तत्वचिन्तक सूत्रकार आचार्य है।

* श्री वा० कु० पञ्चोलिविरचित रत्नप्रभा में प्रत्ययमालाप्रकरण समाप्त *

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथात्मनेपदप्रक्रिया

अनुदात्तङित आत्मनेपदम्। आस्ते। शेते।

यह सूत्र पूर्व में प्रसङ्ग से वर्णित है, अपने प्रकरण में वह प्रधान है, अतः पुनः इसका उपन्यास क्रिया है। अनुदात्तवर्ण की इत्संज्ञायुक्त धातु एवं ङकार की इत्संज्ञायुक्त धातु से लकार के स्थान में आत्मनेपद संज्ञक प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है। आस्ते। शेते सूत्रोदाहरण है। वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्यां सूत्र से समास वटक विभक्ति का भी यहां लुक् न हुआ—आत्मनेपदम्। आत्मने भाषा में।

२६८० भावकर्मणोः १।३।१३।

बभूवे अनुबभूवे।

अकर्मक धातुओं से लकार भाव में होता है, एवं सकर्मक धातु से लकार कर्मरूप अर्थ में होता है यह प्रथम कह चुके हैं। भाव में या कर्म में विधीयमान लकार के स्थान में आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय होते हैं। यथा—आत्मधारणरूपफल एवं उसका जनक व्यापार वे दोनों एकनिष्ठ होने से फलसमानाधिकरण व्यापारवाचक भू-धातु अकर्मक है। भाव में लडादि आत्मनेपद तङ् लिट् में वुक् द्वित्वादि से बभूवे। अकर्मक धातु भी अनुभवरूप अर्थ में सकर्मक होता है, 'अनुबभूवे' यहां सकर्मक भू धातु है। कर्म में लकार एवं आत्मनेपद हुआ। स भवति तेन भूयते, स आनन्दम् अनुभवति, तेन आनन्दोऽनुभूयते। इस प्रकार कर्तरि कर्मणि प्रयोग है।

२६८१ कर्तरि कर्मव्यतिहारे १।३।१४।

क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मनेपदं स्यात्। व्यतिलुनीते। अन्यस्य योग्यं लवनं अन्यः करोतीत्यर्थः। श्नसोरल्लोपः। व्यतिस्ते। व्यतिषाते। व्यतिषते। तासस्त्योरिति सलोपः—व्यतिसे। 'धिच', व्यतिध्वे। 'ह एति' व्यतिहे। व्यत्यसै। व्यत्यास्त, व्यतिषीत। व्यतिरातेे ३। व्यतिभाते। व्यतिबभे।

सूत्र में कर्मशब्द क्रियार्थक है—यौगिकव्युत्पत्ति से यह अर्थलब्ध है, करोति कर्तृकर्मादि व्यपदेशात् यत् तत्कर्म = धात्वर्थ क्रियाएँ कर्ता कर्म आदि संज्ञाएँ की प्रवृत्ति में निमित्त है, कर्मशब्द यहां कर्मकारक परक नहीं है। व्यतिहार = अर्थ विनिमय है।

क्रिया का विनिमय अर्थ जहाँ द्योत्य रहे वहां कर्ता में आत्मनेपद होता है। यथा—व्यतिलुनीते = चैत्र को काटने योग्य वस्तुविशेष को मैत्र काटता है। लुञ् का अर्थ लवनक्रियाजनक व्यापार। क्रियाधातुजन्य फल में भी क्वचित् व्यवहृत है, एवं व्यापार में क्रिया का प्रचुर प्रयोग है। वि एवं अति उभयपूर्वक अस् धातु का प्रयोग क्रियाविनिमयार्थ प्रयोग कर मूलोक्त रूपों में आत्मनेपद हुआ—व्यतिस्ते यहां अकार का लोप 'श्नसोः' सूत्र से हुआ। व्यतिसे में अकार एवं सकार उभय का लोप से केवल 'से' प्रत्ययमात्र ही अवशिष्ट रहा है। व्यतिध्वे में भी अकार एवं सकार का लोप से 'ध्वे' मात्र अवशिष्ट है। सकार को हकार से व्यति हे। व्यतिराते रूप एक वचन द्विवचन एवं बहुवचन में एक प्रकार के हैं। व्यतिराते ३। व्यतिभाते ३ इस प्रकार रूप है। लिट् में व्यतिबभे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२६८२ न गतिहिंसार्थेभ्यः १।३।१५।

व्यतिगच्छन्ति। व्यतिघ्नन्ति। ❀ प्रतिषेधे हसादीनामुपसंख्यानम् ❀। हसादयो हसप्रकाराः शब्दक्रियाः। व्यतिहसन्ति। व्यतिजल्पन्ति। ❀ हरतेरप्रतिषेधः। सम्प्रहरन्ते राजानः।

क्रिया के विनिमय में गत्यर्थक एवं हिंसार्थक धातु से पूर्व सूत्र से प्राप्त आत्मनेपद नहीं होता है। यथा व्यतिगच्छन्ति, व्यतिघ्नन्ति। अन्य योग्य गमन को अन्य करते हैं। अन्य योग्य हनन-क्रिया को अन्य करते हैं। संयोगजनक व्यापारार्थक गम्, एवं प्राणवियोग जनक व्यापारार्थक हन् है। व्यतिघ्नन्ति में 'गमहन्' से अकार का लोप एवं 'हो हन्तेः' से कुत्व हुआ।

आत्मनेपद के प्रतिषेध के विषयमें हस् आदि धातुओं का समीप बोधन करना चाहिये अर्थात् इनसे भी आत्मनेपद नहीं होता है। उप = समीपे ख्यानम् = बोधनम्। यहां वार्तिक में आदि शब्द सदृशार्थक = प्रकारार्थक है, शब्दकर्मक उच्चारणत्वेन सादृश्य गृहीत करके वे भी शब्दार्थक गृहीत है। व्यतिजल्पन्ति व्यतिहसन्ति यहां आत्मेनपदाभाव है। यथा—घटाभावाभाव घटस्वरूप होता है, अभाव का अभाव प्रतियोगिस्वरूप है तथैव यह वार्तिक 'हरतेरप्रतिषेधः' आत्मनेपद के अभाव का अभावार्थक है अर्थात् आत्मनेपदार्थ है। वह कहता है कि हृ धातु में प्रतिषेध जो आत्मनेपद का करता है उसकी अप्रवृत्ति ही है। राजगण परस्पर युद्ध में प्रहार करते हैं वहां आत्मनेपद से 'सम्प्रहरन्ते राजानः' सिद्ध हुआ है।

२६८३ इतरेतरान्योन्योपपदाच्च १।३।१६।

❀ परस्परोपपदाच्चेति वक्तव्यम् ❀। इतरेतरस्यान्योन्यस्य परस्परस्य वा व्यतिलुनन्ति।

इतरेतर, अन्योन्य शब्द उपपद में रहते कर्मव्यतिहार अर्थ में धातु में आत्मनेपद नहीं होता है। एवं वार्तिक मत में परस्पर शब्द उपपद में रहते भी आत्मनेपद धातु से नहीं होता है।

२६८४ नेर्विशः १।३।१७।

निविशते।

अर्थवान् नि उपसर्ग उससे पर विशधातु उससे पर लकार के स्थान में आत्मनेपद संज्ञक प्रत्ययों का प्रयोग होता है। यहां अर्थवान् एवं प्रतिपदोक्त 'नि' उपसर्ग ही गृहीत है, निविशते। 'मधूनि विशन्ति भ्रमराः' यहां आत्मनेपद न हुआ।

"इत्युक्त्वा मैथिली भर्तुरङ्के निविशती भयात्"।

वहां 'अङ्कानि विशती' यही पढ़ना चाहिये। "नवाम्बुदश्यामतनुर्न्यविक्षत" यहां 'नि' से विश के मध्य में अडागम व्यवधान कर्ता है यहां आत्मनेपद किस प्रकार हुआ? विकरणविशिष्ट धातु-रूप का अवयव यह अट् धातु का अवयव नहीं है, समाधान यह है कि लावस्था में अडागम होता है इस भाष्यसिद्ध मत में स्वाङ्ग से धातु अव्यवहित है दोष नहीं है। अथवा मतान्तर में "उपसर्ग-नियमे अड्व्यवाये उपसंख्यानम्" इस प्रकार का वार्तिक है।

२६८५ परिव्यवेभ्यः क्रियः १।३।१८।

अकर्त्रभिप्रायार्थमिदम्। परिक्रीणीते। विक्रीणीते। अवक्रीणीते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परि, वि, अव इनके पूर्व में रहते क्री धातु से आत्मनेपद होता है। क्रियाजन्य धात्वर्थ फल जहां कर्तृगामि नहीं है वहां भी आत्मनेपदार्थ यह सूत्र है। परिक्रीणीते आदि।

२६८६ विपराभ्यां जेः १।३।१९।

विजयते। पराजयते।

वि एवं परा पूर्वक जि धातु से आत्मनेपद होता है। अर्थवान् प्रतिपदोक्त वि एवं परा उपसर्ग ही यहां गृहीत हैं।

२६८७ आङो दोऽनास्यविहरणे १।३।२०।

आङ्पूर्वाद् ददातेर्मुखविकसनादन्यत्रार्थे वर्तमानादात्मनेपदं स्यात्। विद्यामादत्ते। अनास्येति किम्, मुखं व्याददाति। आस्यग्रहणमविवक्षितम्। विपादिकां व्याददाति। पादस्फोटो विपादिका। नदी कूलं व्याददाति। ॐ पराङ्कर्मकान्न निषेधः ॐ। व्याददते पिपीलिकाः पतङ्गस्य मुखम्।

आङ्पूर्वक दा धातु से मुख का विकास से भिन्न अर्थ में आत्मनेपद होता है। वह विद्या को ग्रहण करता है—विद्यामादत्ते। मुख का विकसन अर्थ में परस्मैपद, यथा मुखं व्याददाति विपादिकां व्याददाति। पैर की विवाई फटने से पीडा का वह अनुभव करता है। नदी कूल=तट को विदीर्ण करती है यहां भी व्याददाति। पराङ्कर्मक दा धातु से निषेध नहीं होता है, चींटियाँ पतङ्ग के मुख को विकसित करती हैं यहां व्याददते, आत्मनेपद हुआ 'आस्यविकसने न' यह निषेध की यहां प्रवृत्ति न हुई। क्रियाजन्यफल कर्तृगामि न रहते भी आत्मनेपदार्थ यह सूत्र है। अतः "व्यादत्ते विहगपतिर्मुखं स्वकीयम्" यहां क्रियाजन्यफल कर्तृगामि होने से मुखविकसन अर्थ में भी आत्मनेपद हुआ।

२६८८ क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च १।३।२१।

चादाङः। अनुक्रीडते। संक्रीडते। परिक्रीडते। आक्रीडते। अनोः कर्मप्रवचनीयान्न, उपसर्गेण समा साहचर्यात्। माणवकमनुक्रीडति, तेन सहेत्यर्थः। 'तृतीयार्थे' इत्यनोः कर्मप्रवचनीयत्वम्। ॐ समोऽकूजने ॐ। संक्रीडते। कूजने तु संक्रीडति चक्रम्।

ॐ आगमेः क्षमायाम् ॐ। ण्यन्तस्येदं ग्रहणम्। आगमयस्व तावत्, मा त्वरिष्ठा इत्यर्थः। ॐ शिक्षेर्जिज्ञासायाम् ॐ। धनुषि शिक्षते=धनुर्विषये ज्ञाने शक्तो भवितुमिच्छतीत्यर्थः। ॐ आशिषि नाथः ॐ। आशिष्येवेति नियमार्थं वार्तिकमित्युक्तम्। सर्पिषो नाथते=सर्पिर्मे स्यादित्याशास्त इत्यर्थः। कथं "नाथसे किमु पतिं न भूभृताम्" इति, 'नाधसे' इति पाठ्यम्। ॐ हरतेर्गतताच्छील्ये ॐ। गतम्=प्रकारः। पैतृकमश्वा अनुहरन्ते, मातृकं गावः। पितुर्मातुश्चागतं प्रकारं सततं परिशीलयन्तीत्यर्थः। ताच्छील्ये किम्, मातुरनुहरति। ॐ किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेष्विति वाच्यम्। हर्षादयो विषयाः, तत्र हर्षो विक्षेपस्य कारणम्। इतरे फले।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनु, सम्, परि एवं चकार से गृहीत आङ् इन से पर जो क्रीडधातु उससे परस्थित लकार के स्थान में आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय होते हैं। यहां सम् के साहचर्य से अकर्म प्रवचनीय अनुगृहीत है। कर्मप्रवचनीय अनु के योग में इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं है। तृतीयार्थ साहित्य में अनुकी 'तृतीयार्थे' सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा–माणवकमनुक्रीडति। अकूजन अर्थ में सम्पूर्वक क्रीड धातु से आत्मनेपद होता है। संक्रीडते। कूजन में तो संक्रीडति चक्रम्। आङ्-पूर्वक ण्यन्तधातु से आत्मनेपद होता है। आगमयस्व = तुम उसको आने दो जल्दी मत करो। जिज्ञासा अर्थ में शिक्ष धातु से आत्मनेपद होता है। धनुषि शिक्षते = धनुष् विद्या विषयक ज्ञान में समर्थ होने की वह इच्छा करता है।

शुभाशंसनरूप आशीर्वाद रूप अर्थ में ही नाथधातु से आत्मनेपद होता है, अन्य अर्थ में नहीं, यह नियमार्थ वार्तिक है, घृत मुझे प्राप्त हो एतदर्थ इच्छा वह करता है = सर्पिषो नाथते। श्रीसदाशिव हिमालय से पार्वती की प्राप्ति के लिए प्रार्थना क्यों नहीं करते इस अर्थ में 'नाथसे स्वन्' यहां आशीर्वाद अर्थ नहीं है आत्मनेपद कैसे हुआ ?, 'नाधसे' यही पाठ है।

गत शब्दार्थ प्रकार है, प्रकार का अर्थ सादृश्य है, ताच्छील्य का अर्थ वैसा करने का स्वभाव है। गत ताच्छील्य अर्थ में हृधातु से आत्मनेपद होता है। माता एवं पिता के प्रकार को निरन्तर परिशीलन करते हैं। ताच्छील्यभिन्नार्थ में परस्मैपद होता है।

कृधातु से हर्ष, जीविका, कुलायकरण अर्थ में आत्मनेपद होता है, हर्ष आदि अर्थ कृधातु के विषय तया भासमान है, हर्ष विक्षेपक्रिया में कारण है, अन्य अर्थ धात्वर्थ फलत्वेन प्रतीति विषय है।

२६८९ अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने ६।१।४२।

अपात् किरतेः सुट् स्यात्। ❀ सुडपि हर्षादिष्वेव वक्तव्यः ❀। अपस्किरते वृषो हृष्टः। कुक्कुटो भक्षार्थी, श्वा आश्रयार्थी च। हर्षादिष्विति किम्, अपकिरति कुसुमम्। इह तङ्सुटौ न। हर्षादिमात्रविवक्षायां यद्यपि तङ् प्राप्तस्तथापि सुडभावे नेष्यते इत्याहुः। गजोऽपकिरति। ❀ आङि नुपृच्छ्योः ❀। आनुते। आपृच्छते। ❀ शप उपालम्भे ❀ आक्रोशार्थात् स्वरितेतोऽकर्तृगेऽपि फले शपथरूपेऽर्थे आत्मनेपदं वक्तव्यमित्यर्थः। कृष्णाय शपते।

अप उपसर्ग से पर स्थित जो कृधातु को सुट् आगम खनन अर्थ में होता है चौपाया एवं पक्षिविशेष गम्यमान रहते। जिन हर्ष आदि अर्थ में आत्मनेपद वार्तिक से हुआ उन्हीं हर्ष आदि अर्थों में सुडागम भी होता है ऐसा कहना चाहिये। वृषभ प्रसन्न होकर मिट्टी आदि को फेंकता है। यहां फेंकने में हर्ष कारण है उसी का कार्य विक्षेप है = अपस्किरते वृषो हृष्टः। मुर्गा पृथ्वी को खाने की वस्तु के खोज में खनन करता है, एवं कुत्ता बैठने के लिए जमीन खोदता है इन अर्थ में अपस्किरते। पुष्प को फेंकना यहां हर्षादि अर्थ नहीं अतः आत्मनेपद एवं सुट् न हुआ—अपकिरति। यद्यपि केवल हर्ष विवक्षा करने पर आत्मनेपद प्राप्त हुआ किन्तु सन्नियोगशिष्ट न्यायसे सुट् के अभावमें आत्मनेपद भी न हुआ। 'गजोऽपकिरति' यहां हर्ष की प्रतीति है, किन्तु 'खनन' अर्थ की अप्रतीति से सुट् की अप्राप्ति है।

आङ्पूर्वक नु धातु से एवं आङ् पूर्वक प्रच्छ से आत्मने पद होता है। आनुते, आपृच्छते। आक्रोशार्थक स्वर की इत्संज्ञक शप् धातु से आत्मनेपद होता है क्रियाजन्य फलकर्तृगामि न रहने पर भी। कृष्णाय शपते। 'श्लाघह्नुङ्' से सम्प्रदान संज्ञा है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण सख्यः शपामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि।" यहां वह स्त्री अपनी सखियों से कह रही है स्वाशय को प्रकाशित करती है यह अर्थ है शपथ अर्थ नहीं, अतः आत्मनेपद न हुआ।

२६९० समवप्रविभ्यः स्थः १।३।२२।

सन्तिष्ठते। स्थाघ्वोरिच्च। समस्थित। समस्थिषाताम्। समस्थिषत। अवतिष्ठते। प्रतिष्ठते। वितिष्ठते। ❀ आङः प्रतिज्ञायामुपसंख्यानम् ❀। शब्दं नित्यमातिष्ठते। नित्यत्वेन प्रतिजानीते इत्यर्थः।

सम्, अव, प्र, वि इनसे पर स्था धातु से आत्मनेपद होता है। लुङ् में सम् 'अ स्था स् त' त' 'स्थाघ्वोः' आकार को इकारादेश हुआ 'हस्वादङ्गात्' से सकार का लोप हुआ।

आङ् पूर्वकस्थासे आत्मनेपद होता है, प्रतिज्ञा अर्थ में, नित्यत्वरूप से वह शब्दविषयक प्रतिज्ञा करता है आतिष्ठते। स्था धातु को 'पाघ्रा' सूत्र से तिष्ठ आदेश हुआ।

२६९१ प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च १।३।२३।

गोपी कृष्णाय तिष्ठते। आशयं प्रकाशयतीत्यर्थः। "संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः" कर्णादीन् निर्णेतृत्वेनाश्रयतीत्यर्थः।

प्रकाशन का अर्थ ज्ञापन = बोधन है। स्थेय का अर्थ विवादग्रस्त विषय का निर्णय करने वाला। तिष्ठन्तेऽस्मिन् विवादपदनिर्णयार्थम् इस व्युत्पत्ति में स्थाधातुसे अधिकरणमें यत्, इकार गुण स्थेयः। मेदिनीकोषकार ने कहा है कि—

"स्थेयो विवादस्थानस्य निर्णेतरि पुरोहिते।"

ज्ञापन एवं विवादपद निर्णेता अर्थमें वर्तमान तथा धातु से आत्मनेपद होता है। कृष्ण विषय स्वाशयको गोपी प्रकाशित करती है = कृष्णाय तिष्ठते गोपी। दुर्योधन संशयग्रस्त विषय को प्राप्तकर कर्णादि जो दुष्ट मन्त्रिगण उनको निर्णेतृत्वेन समाश्रयण करता है 'कर्णादिषु तिष्ठते यः'।

२६९२ उदोऽनूर्ध्वकर्मणि १।३।२४।

मुक्तावुत्तिष्ठते। अनूर्ध्वेति किम्, पीठादुत्तिष्ठति। ❀ ईहायामेव ❀। नेह-ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति।

ऊर्ध्वकर्म = संयोगजनक व्यापार, तद्भिन्न अर्थात् ऊर्ध्वदेशसंयोगानुकूलव्यापाररूप अर्थ वृत्ति न रहे ऐसा उत्पूर्वक स्था-धातु से आत्मनेपद होता है। मुक्तौ उत्तिष्ठते। पीठ से उठता है यहां ऊर्ध्व देश संयोजनक व्यापार अर्थ की प्रतीति से परस्मैपद पीठादुत्तिष्ठति। चेष्टा में ही आत्मनेपदस्था से होता है। इच्छापूर्वक चेष्टा को ईहा कहते हैं। अन्यत्र नहीं। 'शतमुत तिष्ठति' यहां आ० प० न हुआ।

२६९३ उपान्मन्त्रकरणे १।३।२५।

आग्नेय्याऽऽग्नीध्रमुपतिष्ठते। मन्त्रकरणे किम्, भर्तारमुपतिष्ठति यौवनेन। ❀ उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणपथिष्विति वाच्यम् ❀। आदित्यमुपतिष्ठते। कथं तर्हि—

"स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती"। इति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवतात्वारोपात्। नृपस्य देवतांशत्वाद् वा। गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते। उपश्लिष्यतीत्यर्थः। ॐ वा लिप्सायामिति वक्तव्यम् ॐ भिक्षुकः प्रभुम् उपतिष्ठते उपतिष्ठति वा। लिप्सया उपगच्छतीत्यर्थः।

मन्त्र करण में बहुव्रीहि समास है = मन्त्र है करण जिसमें = मन्त्रः करणं यत्र, यहां अन्य पदार्थ स्तुति है, स्तुति अर्थ में विद्यमान उत्पूर्वक जो स्थाधातु उससे आत्मनेपद होता है। अग्नि है देवता जिसका ऐसी ऋचा से आग्नीध्रम् = अग्निविशेष की वह स्तुति करता है। वहां आत्मनेपद से उपतिष्ठते। मन्त्रकरण नहीं वहां परस्मैपद—युवावस्था के कारण पत्नी अपने पति के पास उपस्थित रहती है। उपतिष्ठति। उससे पर स्था से आत्मनेपद होता है, देवपूजा, सङ्गतिकरण, मित्रकरण, एवं मार्ग अर्थ इनमें।

देवपूजा आदि अर्थ न रहने पर परस्मैपद होता है—रघुवंश में स्तुति करने योग्य राजा को सार्थक स्तुति द्वारा सरस्वती प्राप्त हुई वहां 'उपतस्थे' की सिद्धि के लिए राजा में देवतात्व का आरोप किया। यदा—

१. "महती देवता एषा नररूपेण तिष्ठति"। २. अष्टानां लोकपालानां मात्राभिर्निर्मितो नृपः। ३. "यद्यद् विभूतिमत् सत्त्वं मम तेजोऽशसम्भवम्" इत्यादि वचनकदम्ब से राजा देवता का ही अंश स्वरूप है। अतः देवपूजा अर्थ में 'उपतस्थे' में आत्मनेपद उचित ही है। संगतिकरण में गङ्गा यमुनाम् उपतिष्ठते। इस उदाहरण से यह सिद्ध हुआ कि यमुना प्राचीना नदी है, पश्चाद्भव गङ्गा उससे मिली है। यही प्रतीत हुआ।

रथ करण गमनकर्ता को रथिक कहते हैं 'रथेन चरति रथिकः' उससे मित्रता करण की प्रतीति अर्थ में स्था से आत्मनेपद हुआ। मैत्री का फल कादाचित्क उसके वाहनोपयो हैं। यह मार्ग सुघ्न देश को प्राप्त करता है उपतिष्ठते = प्राप्नोति अर्थ में आत्मनेपद हुआ।

वस्तु प्राप्तिविषयक उत्कट इच्छा को लिप्सा कहते हैं, इस अर्थ में विकल्प से स्था से आत्मनेपद होता है—भिक्षुक अपने स्वामी के समक्ष उपस्थित वस्तु प्राप्त्यर्थ होता है उपतिष्ठते, उपतिष्ठति।

२६९४ अकर्मकाच्च १।३।२६।

उपात् तिष्ठतेरकर्मकादात्मनेपदं स्यात्। भोजनकाले उपतिष्ठते, सन्निहितो भवतीत्यर्थः।

उपपूर्वक अकर्मकस्था धातुसे आत्मनेपद होता है। भोजन समय में वह समीपवर्ती होता है = उपतिष्ठते।

२६९५ उद्विभ्यां तपः १।३।२७।

अकर्मकादित्येव। उत्तपते। वितपते। दीप्यत इत्यर्थः। ॐस्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम्ॐ। स्वम् अङ्गं स्वाङ्गं न तु अद्रव्यमिति पारिभाषिकम्। उत्तपते वितपते वा पाणिम्। नेह, सुवर्णमुत्तपति। संतापयति वेत्यर्थः। चैत्रो मैत्रस्य पाणिमुत्तपति, सन्तापयतीत्यर्थः।

उत् एवं विपूर्वक अकर्मक तप् धातु से आत्मनेपद होता है। स्वाङ्गकर्मक होने पर ही तप से आत्मनेपद होता है। यहां अपना शरीर का अवयव यही स्वाङ्ग का अर्थ है। पारिभाषिक पूर्व में वर्णित 'अद्रव्यं भूतिमत् स्वाङ्गम्' अर्थ नहीं है। हाथ को वह तपाता है उत्तपते पाणिम्। सौ भर स्वर्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को वह तपाता है या गलाता है यहाँ आत्मनेपद स्वाङ्गकर्मकत्व के अभाव से न हुआ उत्तपति सुवर्णम्। चैत्र मैत्रके कर को तपाता है यहाँ स्वाङ्गकर्मकत्व नहीं अतः परस्मैपद ही हुआ उत्तपति।

२६९६ आङो यमहनः १।३।२८।

आयच्छते। आहते। अकर्मकात् स्वाङ्गकर्मकादित्येव। नेह-परस्य शिर आहन्ति। कथं "आजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्षः" इति भारविः। 'आहध्वं मा रघूत्तमम्' इति भट्टिश्च। प्रमाद एवायमिति भागवृत्तिः। प्राप्येत्यध्याहारो वा। ल्यब्लोपे पञ्चमीति तु ल्यबन्तं विनैव तदर्थावगतिर्यत्र तद्विषयम्। भेत्तुमित्यादि तुमुन्नन्ताध्याहारो वाऽस्तु। समीपमेत्येति वा।

अकर्मक एवं स्वाङ्गकर्मक जो आङ् पूर्वक यम एवं हन् उससे आत्मने पद होता है। वह दूसरे के मस्तक पर ताडन करता है यहां आत्मने पद न हुआ—परस्य शिर आहन्ति। भारवि के प्रयोग से मध्यम पाण्डुपुत्र अर्जुन ने त्रिनेत्र युक्त किरातवेशधारी श्रीशङ्कर के वक्षःस्थल में वाण से ताडन किया एतदर्थक वाक्य में 'आजघ्ने' यहां पराङ्गकर्मक ताडन है आत्मनेपद किस प्रकार हुआ ? यह शङ्का हुई। इसी प्रकार 'रघुकुल में उत्तम श्रीरामचन्द्र को तुम लोग ताडन मत करो अर्थ में यहां भी पराङ्गकर्मक हनन है आत्मनेपद कैसे हुआ यह भी शङ्का हुई, इन दो शङ्काओं का भागवृत्ति आचार्य समाधान यह करते हैं कि पूर्वोक्त आत्मने पद घटित भारवि एवं भट्टि के असङ्गत हैं या अनवधानता लक्षण प्रमाद की है। व्याकरणमर्यादाविरुद्ध वे प्रयोग हुए हैं। अथवा "सिद्धस्य गतिश्चिन्तनीया" सिद्धान्त से समाधानार्थ यत्न यह है कि—'विषमविलोचनस्य वक्षः प्राप्य' अर्थात् श्रीशङ्कर के समीप जाकर वह अर्जुन 'स्वकीयं वक्षः आजघ्ने।' अतः स्वाङ्गकर्मक ताडन रूपार्थ में आत्मनेपद हुआ। यहां प्राप्य के अध्याहार करने पर "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे" से पञ्चमी न हुई, क्योंकि ल्यवन्त शब्द का अप्रयोग रहते ल्यप्स्थानीभूत प्रत्यय की प्रकृतिभूत धातु वाच्य क्रिया का जो कर्म या अधिकरण तद्वाचक से पञ्चमी होती है यहां 'प्राप्य' पद का अध्याहार द्वारा उच्चारित करने पर ल्यब्लोप है ही नहीं। मल्ल की तरह अत्यधिक सन्तोष प्रयुक्त स्वकीय वक्षःस्थल का अर्जुन प्रयुक्त स्वकीय वक्षःस्थल का अर्जुनकर्तृक ताडन में आत्मनेपद हुआ। अथवा 'भेत्तुम्' का अध्याहारपक्ष में पञ्चमी की शङ्का ही नहीं है, अर्जुन की परीक्षार्थ यह युद्ध का वर्णन भारवि ने स्वकाव्य में किया है उस काव्य नाम किरातार्जुनीय है। किरातश्च अर्जुनश्च तौ अधिकृत्य कृतं कविकर्म = काव्यम्।

२६९७ आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् २।४।४४।

हनो वधादेशो वा लुङि आत्मनेपदेषु परेषु। आवधिष्ट। आवधिषाताम्।

आत्मनेपद पर में रहते रहते आङ्पूर्वक हन् को वध आदेश विकल्प से होता है। लुङ् में आवधिष्ट।

२६९८ हनः सिच् १।२।१४।

कित् स्यात्। अनुनासिकलोपः। आहत, आहसाताम्, आहसत।

हन् धातुसे पर सिच् कित होता है। हन् के नकार का कित्त्वपरक होने से अनुदात्तोपदेश से लोप, हस्वादङ्गात् से सकारलोप आहत।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२६९९ यमो गन्धने १।२।१५।

सिच् कित् स्यात्। गन्धनं सूचनम्=परदोषाविष्करणम्। उदायत। गन्धने किम्, उदायंस्त पादम्, आकृष्टवानित्यर्थः।

परदोषों को प्रकट करने में विद्यमान यमधातु से उत्तर सिच् कित् होता है। सिच् को कित्त्व से मकार का लोप उदायत। पराया दोष प्रकट न करने पर कित्त्वाभाव से उदायंस्त हुआ, यहां वह 'पैर को आकर्षण किये' अर्थ है।

२७०० समो गम्यृच्छिभ्याम् १।३।२९।

अकर्मकाभ्यामित्येव। संगच्छते।

अकर्मक संपूर्वक गम् धातु एवं ऋच्छ धातुसे आत्मनेपद होता है। संगच्छते।

२७०१ वा गमः १।२।१३।

गमः परौ झलादी लिङ्सिचौ वा कितौ स्तः। संगसीष्ट, संगंसीष्ट। समगत, समगंस्त, समृच्छिष्यते। अकर्मकाभ्यां किम्, ग्रामं संगच्छति। ❀ विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम् ❀। वेत्तेरेव ग्रहणम्, संवित्ते संविदाते।

गम् धातुके उत्तर झलादि लिङ् और सिच् विकल्प से कित् होता है। कित्पक्ष में मकार लोप। कित्त्वाभाव में मकार का अनुस्वार हुआ। सकर्मक गम् एवं ऋच्छ से परस्मैपद ग्रामं संगच्छति संपूर्वक विद् प्रच्छ, स्वृ इनसे आत्मनेपद होता है।

यहां अदादिगणस्थ विद् का ग्रहण है। विन्दति स्वरितेत् है। सत्ता, विचारणार्थक अनुदात्तेत् है वहां आत्मनेपद सिद्ध ही है 'लुग्विकरणालुग्विकरणयोः' परिभाषा से विन्दति का ग्रहण प्राप्त था, किन्तु वह स्वरितेत् होने से आत्मनेपद उससे प्राप्त था, अतः परिशेषात् अदादिगणीय विद् का यहां ग्रहण हुआ।

२७०१ वेत्तेर्विभाषा ७।१।७।

वेत्तेः परस्य झादेशस्यातो रुडागमो वा स्यात्। संविद्रते। संविद्रताम्-संविदताम्। समविद्रत-समविदत्त। संपृच्छते। संस्वरते। ❀ अर्तिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम् ❀। अर्तीति द्वयोर्ग्रहणम्। अङ्विधौ त्विय्तेरेवेत्युक्तम्। मा समृत। मा समृषाताम्। मा समृषतेति। समार्त समार्षाताम्। समार्षत इति च भ्वादेः। इर्यतेस्तु मा समरत, मा समरेताम्, मा समरन्त। समारत। समारेताम्। समारन्तेति च। संशृणुते। संपश्यते। अकर्मकादित्येव। अत एव "रक्षांसीति पुरापि संशृणुमहे" इति मुरारिप्रयोगः प्रामादिक इत्याहुः। अध्याहारो वा 'इति कथयद्भ्यः' इति। अथास्मिन्नकर्मकाधिकारे हनिगम्यादीनां कथमकर्मकतेति चेत्, शृणु—

"धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात्।
प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया॥ १॥"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहति भारम्। नदी वहति—स्यन्दत इत्यर्थः। जीवति। नृत्यति। प्रसिद्धेर्यथा—मेघो वर्षति। कर्मणोऽविवक्षातो यथा—"हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः"।

❀ उपसर्गादस्यत्यूह्योर्वेति वाच्यम् ❀। अकर्मकादिति निवृत्तम्। बन्धं निरस्यति निरस्यते। समूहति। समूहते।

सम् पूर्वक विद से पर जो झादेश अत उसको विकल्प रुडागम होता है।

सम् पूर्वक अर्ति अर्थात् ऋ धातु से श्नु से एवं दृश् से आत्मनेपद होता है यहां अर्ति से दोनों ऋधातुओं का ग्रहण है। 'सर्तिशास्' सूत्र में लुप्तविकरण शास् के साहचर्य से लुप्तविकरणक ऋ का ही केवल ग्रहण है। मा 'सम्र ऋसत' यहां उश्च से कित्त्व सकारलोप गुणाभाव माङ् योग से आडागमाभाव 'समृत'।

माङ् योगाभाव में समार्त यहां सिच् लोप का असिद्धत्व प्रयुक्त 'आटश्च' से वृद्धि करने पर 'ह्स्वादङ्गात्' सूत्र की अप्रवृत्ति से 'समार्ष्ट' रूप होना चाहिये। 'ह्स्वात्' सूत्र में वह दिग्योग लक्षण पञ्चम्यन्त पद है। अतः 'तस्मात्' परिभाषा के विधेयार्थ अव्यवहितोत्तरत्व एवं परत्व की उपस्थिति से ह्स्वान्ताङ्गाव्यवहितोत्तरत्वविशिष्ट सिच् का लोप होता है। अतः ह्स्वात् विहित जो सिच् यह अर्थ सम्भव नहीं है, विहितविशेषण में यहां प्रमाण का अभाव है। प्रमाणाभाव में भी यदि 'ह्स्वादङ्गात्' सूत्र में विहितविशेषणत्व का आश्रयण करेंगे तो 'उदायत' 'आहत' इनकी असिद्धि होगी। यहां 'समार्त' रूपपक्षपाती यह कहते हैं कि "सिज्लोपे एकादेशः सिद्धो वाच्यः" इस वार्तिक विरचन से सिच् लोप विषय में पूर्व एकादेश नहीं होता है किन्तु सिच् लोप एकादेश से पूर्व होता है।

वहां 'एकादेशे' विषयसप्तमी का आश्रयण है, प्रकृत रूप में वृद्धि के पूर्व में सिच् लोप तदनन्तर 'आटश्च' से वृद्धि से समार्त रूप की सिद्धि हुई। यह पक्ष स्वीकार करने पर 'अध्यैष्ट' नहीं होगा। वहां भी पूर्वसिच्लोप तदनन्तर वृद्धि से 'अध्यैत' रूप अनिष्ट होगा। यह कथन तो ठीक नहीं है, अध्यैष्ट यहां तो 'वार्णादाङ्गं बलीयः' परिभाषा से सिच्लोप के पूर्व में इकार का गुण से एकार करने से ह्स्वान्त नहीं अतः सिच्लोप न हुआ, वहां 'आ ए' की वृद्धि से अध्यैष्ट हुआ। समार्त यहां तो उश्च से कित्त्व होने से गुण की प्रवृत्ति नहीं सिच् कित् पर में है। अतः सिच् लोप कर वृद्धि से समार्त हुआ।

विमर्श—वस्तुतः 'समार्ष्ट' इत्येव। सिज्लोप वार्तिक की यहां प्रवृत्ति नहीं है, वह वहां प्रवृत्त होता है जहां सिच्लोप के बाद एकादेशशास्त्र की प्रवृत्ति हो, यहां तो वृद्धि की सिच्लोप से पूर्व प्रवृत्ति है। वार्तिकोदाहरण—'अग्रहीत' है। 'अध्यैष्ट' में वार्ण परिभाषा से गुण यह पूर्व कथन भी अनुचित है, उस परिभाषा की प्रवृत्ति समानाश्रय में ही है। अन्यथा ववति में यण् न होकर पुगन्त से गुण होगा। अतः समार्त लेखक प्रमाद से ही है समार्ष्ट साधु रूप है।

संशृणुते यहां आत्मनेपद हुआ। अकर्मकश्नु से ही आत्मनेपद विधान है। मुरारि प्रयोग में सकर्मकश्नु है अतः आत्मनेपद अनुचित है, अथवा 'रक्षांसि अत्र पुरा आसन् इति कथयद्भ्यः जनेभ्यः संशृणुमहे' रक्षांसि कथनक्रिया के कर्म है। श्रुधात्वर्थ क्रिया कर्म नहीं है।

इस अकर्मक के अधिकार में हन् एवं गम् को अकर्मकत्व कैसे हुआ? इस शङ्का के निरासार्थ यह कारिका है।

धातु स्वकीय प्रसिद्ध अर्थ से भिन्न अर्थ का बोधक होने पर सकर्मिका क्रिया भी अकर्मिका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होती हैं, कर्मरूप अर्थ धात्वर्थ कुक्षिप्रविष्ट होने पर सकर्मक भी अकर्मक धातु होता है। प्रसिद्ध द्रव्यादि कर्म की अविवक्षा से भी अकर्मकत्व होता है।

सारांश यह है कि सकर्मिका भी हेतुत्रय पूर्व वर्णितसे अकर्मिका होती है।

उदाहरण—वह धातु सकर्मक है यथा वहति भारम्। किन्तु स्यन्दन अर्थ में अकर्मक है नदी वहति। प्राणधारण रूप फल धात्वर्थ के भीतर अन्तर्भूत होने से जीव धातु अकर्मक है एवं गात्र-विक्षेपण रूप फल धात्वर्थान्तर्गत से नृत धातु अकर्मक है। मेघो वर्षति यहां 'जलम्' रूप कर्म प्रसिद्धि के कारण अविवक्षित होने से वर्ष धातु अकर्मक है। कर्म की अविवक्षा से—यथा हितान्न यः संशृणुते स किम्प्रभुः 'वचनम्' रूप कर्म की अविवक्षा से शृ धातु से आत्मनेपद हुआ। आप्तजन वचन जो हितकर है उसे जो राजा नहीं सुनता वह कुनृप है।

उपसर्ग से पर अस् धातु एवं ऊह धातु से आत्मनेपद होता है विकल्प से। निरस्यते निरस्यति बन्धम्।

२७०३ उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः ७।४।२३।

यादौ क्ङिति। ब्रह्म समुह्यात्। अग्निं समुह्य।

यकारादि कित् या ङित् प्रत्यय पर में रहते उपसर्ग से पर ऊह धातु के अच् का ह्रस्व होता है। समुह्यात्। ल्यबन्त समुह्य।

२७०४ निसमुपविभ्यो ह्वः १।३।३०।

निह्वयते।

नि, सम्, उप, वि पूर्वक ह्वेञ् से आत्मनेपद होता है। निह्वयते।

२७०५ स्पर्धायामाङः १।३।३९।

कृष्णश्चाणूरमाह्वयते। स्पर्धायां किम्, पुत्रमाह्वयति।

आङ् पूर्वक ह्वेञ् धातु से स्पर्धा अर्थ में आत्मनेपद होता है। कृष्ण पराभव करने की इच्छा से चाणूर का आह्वान करते हैं। आह्वयते। स्पर्धाभिन्नार्थ में पुत्र को पिता पुकारते हैं यहां आह्वयति।

२७०६ गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः १।३।२२।

गन्धनं हिंसा। उत्कुरुते। सूचयतीत्यर्थः। सूचनं हि प्राणवियोगानुकूलत्वाद् हिंसैव अवक्षेपणं भर्त्सनम्। श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते। भर्त्सयतीत्यर्थः। हरिमुपकुरुते=सेवते। परदारान् प्रकुरुते, तेषु सहसा प्रवर्तते। एधो दकस्योपस्कुरुते, गुणमाधत्ते। गाथाः प्रकुरुते, प्रकथयति। शतं प्रकुरुते, धर्मार्थं विनियुङ्क्ते। एषु किम्, कटं करोति।

हिंसा, भर्त्सन, सेवन, सहसा प्रवर्तन, गुणाधान, प्रकथन, उपयोग इन अर्थों में विद्यमान कृ धातु से आत्मनेपद होता है।

गन्धन का अर्थ हिंसा है। प्राणवियोगजनक व्यापार को हिंसा कहते हैं। चुगली किसी की करना वह भी हिंसा है, क्योंकि निन्दा के श्रवण से जिसकी निन्दा की गई उसके हृदय में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुःख उत्पन्न हुआ अतः पिशुनवृत्ति भी हिंसा ही है कष्टजनकत्व के कारण। उत्कुरुते = वह पिशुन वृत्ति का आश्रयण करता है, पिशुनताजनक व्यापार को सूचन कहते हैं। गंध अर्दने धातु से गन्धन अवक्षेपण का अर्थ है भर्त्सन। श्येन = बाज का नाम है। वह वर्तिका = बटेर को भर्त्सन करता है = श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते। सेवन में-भक्त हरि की सेवा करता है, हरिम् उत्कुरुते। साहस प्रयुक्त कर्म—परदारान् प्रकुरुते। प्राणनिरपेक्ष कर्म को साहस कहते हैं। दारशब्द नित्य बहुवचनान्त एवं पुंल्लिङ्ग है। लिङ्ग शब्दनिष्ठ है अर्थनिष्ठ नहीं दार का अर्थ है स्त्रीरूप। दाराः, दारान्, दारैः दारेभ्यः २ दाराणाम्, दारेषु। उदकार्थक 'दक' शब्द है, एधशब्द अकारान्त भी है। एधाश्च उदकञ्च एधोदकम्। सान्न भी है—एधांसि च दकञ्च एधोदकम्। दक शब्द का अर्थ उदक = जल। अतः अर्थभेद नहीं है। हलायुध कोश में लिखा है कि दकशब्द जलार्थक है। 'प्रोक्तं प्राग्भैर्भुवनममृतं जीवनीयं दकं च।' अन्यगत गुण का आधान अन्य करता है अर्थ में उदाहरण एधोदकस्योपस्कुरुते। प्रकथन में—गाथाः प्रकुरुते। उपयोग = धर्मार्थं व्यय—शतं प्रकुरुते। कटं करोति यहां सूत्र की अप्रवृत्ति है पूर्वोक्त अर्थ के अभाव से।

२७०७ अधेः प्रहसने १।३।३३।

प्रहसनम् = क्षमाऽभिभवश्च, षह मर्षणेऽभिभवे चेति पाठात्। शत्रुमधिकुरुते। क्षमत इत्यर्थः। अभिभवतीति वा।

प्रहसन अर्थ में अधिपूर्वक कृधातु से आत्मनेपद होता है। प्रहसन शब्द से क्षमा एवं अभिभव अर्थ इसलिए है की षह धातु निष्पन्न वह है। षह धातु का अर्थ सहन करना अथवा दूसरे को परास्त करने का व्यापार करना है। शत्रु को सहन करता है वह, या परास्त करता है। शत्रुमधिकुरुते।

२७०८ वेः शब्दकर्मणः १।३।३४।

स्वरान् विकुरुते = उच्चारयतीत्यर्थः। शब्दकर्मणः किम्, चित्तं विकरोति कामः।

शब्द यदि कर्म हो तो विपूर्वक कृधातु से आत्मनेपद होता है। स्वरान् विकुरुते = वह शब्दोच्चारण करता है। जहां शब्द कर्म न रहे वहां परस्मैपद—यथा कामदेव चित्त को विकृत करता है।

२७०९ अकर्मकाच्च १।३।३५।

वेः कृञ इत्येव। छात्त्रा विकुर्वते। विकारं लभन्त इत्यर्थः।

अकर्मक विपूर्वक कृञ् से आत्मनेपद होता है। छात्रगण विकार को प्राप्त होते हैं छात्त्रा विकुर्वते। छात्त्र शब्द में छद् के दकार को तकार एवं त्र इस प्रकार 'त्त्र' ऐसा लिखना चाहिये। त्र लेखना असङ्गत है। इसी प्रकार पततीति 'पत्त्रम्' यही शुद्ध है।

२७१० सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः १।३।३६।

अत्रोत्सञ्जनज्ञानविगणनव्यया नयतेर्वाच्याः। इतरे प्रयोगोपायः। तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हि—शास्त्रे नयते। शास्त्रस्थं सिद्धान्तं शिष्येभ्यः प्रापयतीत्यर्थः। तेन च शिष्य-सम्माननं फलितम्।

उत्सञ्जने—दण्डमुन्नयते, उत्क्षिपतीत्यर्थः। माणवकमुपनयते—विधिना आत्मसमीपं प्रापयतीत्यर्थः। उपनयनपूर्वकेणाध्यापनेन हि उपनेतरि आचार्यत्वं क्रियते।

ज्ञाने—तत्त्वं नयते। निश्चिनोतीत्यर्थः। कर्मकरानुपनयते, भृतिदानेन स्वसमीपं प्रापयतीत्यर्थः। विगणनम्=ऋणादेर्निर्यातनम्। करं विनयते, राज्ञे देयं भागं परिशोधयतीत्यर्थः। शतं विनयते=धर्मार्थं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः।

सम्मानन, उत्सञ्जन, आचार्यकरण, ज्ञान, भृति, विगणन, व्यय इन अर्थोंमें विद्यमान नीधातु से आत्मनेपद होता है। पूर्वोक्त अर्थोंमें सम्मानन, आचार्यकरण, भृति, वे तीन अर्थ प्रयोग के अनुसार जाने जाते हैं। इनसे भिन्न चार अर्थ नीधातुके वाच्य हैं। क्रम से उदाहरण—शास्त्रे नयते=शास्त्रीय सिद्धान्तों को गुरु शिष्यों को प्राप्त करवाते हैं। उन सिद्धान्तों के ज्ञान करने से शिष्यों का सम्मान समाज में होता है। शिष्य के सम्मान रूप अर्थ फलितार्थ कथन है। २-उत्सञ्जन में-दण्डमुन्नयते=दण्ड को उपरि फेंकता है। ३-आचार्यकरण में-माणवकम् उपनयते=शास्त्रीय विधिसे आत्मसमीप को प्राप्त करवाते हैं। यहां उपनयन=यज्ञोपवीत प्रदानपूर्वक अध्यापन क्रिया से उपनयन कराने वाले में आचार्यत्व का करण है। ४-ज्ञाने—तत्त्वं नयते=तत्त्व का निश्चय करकता है। ५-कर्मकरान् उपनयते=जीविका दानपूर्वक स्वसमीप रखता है। ६-ऋणादिका परिशोधन को विगणन कहते हैं। करं विनयते=राज को देय जो कर=टेक्स है उसे वह देता है। ७ शतं विनयते=शतमुद्रा धर्मार्थ व्यय करता वह है।

२७११ कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि १।३।३७।

नियः कर्तृस्थे कर्मणि यदात्मनेपदं प्राप्तं तच्छरीरावयवभिन्ने एव स्यात्। सूत्रे शरीरशब्देन तदवयवो लभ्यते। क्रोधं विनयते=अपनयति। तत्फलस्य चित्तप्रसादस्य कर्तृगत्वात् 'स्वरितञितः' इत्येव सिद्धे नियमार्थमिदम्। तेनेह न-गडुं विनयति। कथं तर्हि 'विगणय्य नयन्ति पौरुषम्' इति, कर्तृगामित्वा-विवक्षायां भविष्यति।

क्रिया से जन्य जो फल वह कर्तृस्थ रहने पर नीधातु से आत्मनेपद होता है वह कर्म शरीर के अवयव यदि रहे तब। सूत्र में शरीर शब्द से लक्षणया शरीर के अवयव का ज्ञान करना चाहिये। वह क्रोध को दूर करता है, क्रोध को न करने पर चित्त को प्रसन्नता रूप फल कर्तृनिष्ठ होने से 'स्वरितञित' से आत्मनेपद सिद्ध था। यह नियमार्थ है, अतः 'गडुं विनयति' यहां आत्मनेपद न हुआ। 'नयन्ति पौरुषम्' में फल कर्तृगामि नहीं है। ऐसी अविवक्षा में हुआ परस्मैपद।

२७१२ वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः १।३।३८।

वृत्तिरप्रतिबन्धः। ऋचि क्रमते बुद्धिः। न प्रतिहन्यत इत्यर्थः। सर्गः=उत्साहः। अध्ययनाय क्रमते=उत्सहते इत्यर्थः। क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि=स्फीतानि भवन्ति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृत्ति, सर्ग एवं तायन में क्रम धातु से आत्मनेपद होता है। वृत्ति शब्द से अप्रतिबन्ध अर्थ का ज्ञान करना चाहिये। ऋग् मात्राध्ययन में इसकी बुद्धि कुण्ठित नहीं होती है। सर्ग का अर्थ उत्साह समझना चाहिये। अध्ययन के लिए वह प्रोत्साहित होता है = अध्ययनाय क्रमते। तायन शब्द से स्फीतता का ज्ञान करना चाहिये—शास्त्र स्फीत होते हैं = क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि।

२७१३ उपपराभ्याम् १।३।३९।

वृत्त्यादिष्वाभ्यामेव क्रमेर्न तूपसर्गान्तरपूर्वात्। उपक्रमते। पराक्रमते। नेह संक्रमति।

वृत्त्यादि अर्थोंमें उप एवं परा उपसर्ग पूर्वक ही क्रम से आत्मनेपद होता है, अन्य उपसर्ग पूर्वक क्रम से आत्मनेपद नहीं होता।

२७१४ आङ उद्गमने १।३।४०।

आक्रमते सूर्यः। उदयत इत्यर्थः। ❀ ज्योतिरुद्गमन इति वाच्यम् ❀। नेह आक्रामति धूमो हर्म्यतलात्।

उद्गमनार्थ में आङ्पूर्वक क्रमधातु से आत्मनेपद होता है। सूर्य उदय को प्राप्त करता है अर्थात् उदित होता है। ज्योतिः = तेज का उद्गमन में ही यह प्रवृत्त होता है अन्यत्र नहीं धुआं महल से उदित होता है = 'आक्रमति धूमो हर्म्यतलात्' यहां आत्मनेपद न हुआ।

२७१५ वेः पादविहरणे १।३।४१।

साधु विक्रमते वाजी। पादविहरणे किम्, विक्रामति सन्धिः = द्विधा भवति = स्फुटतीत्यर्थः।

पादविहरणार्थ में विपूर्वक क्रमधातु से आत्मनेपद होता है। घोड़ा अच्छी तरह = भली भाँति चलता है = साधु विक्रमते वाजी। पादविहरणार्थ न होने पर परस्मैपद होता है। यथा विक्रामति सन्धिः = सन्धि = मेल परस्पर का टूट जाता है।

२७१६ प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् १।३।४२।

समर्थौ = तुल्यार्थौ। शकन्ध्वादित्वात्पररूपम्। प्रारम्भेऽनयोस्तुल्यार्थता। प्रक्रमते। उपक्रमते। समर्थाभ्यां किम्, प्रक्रामति = गच्छतीत्यर्थः। उपक्रामति = आगच्छतीत्यर्थः।

तुल्यार्थक प्र एवं उप पूर्वक क्रम धातु से आत्मनेपद होता है। समर्थ में सवर्ण दीर्घ को बाधकर पररूप हुआ है। इससे सिद्ध यह हुआ कि सूत्रनिर्माण में समय वार्तिककार का वार्तिक न था, तो भी भविष्यत् वार्तिक का ज्ञान सूत्रकार को था। अतः स्वकृति दीर्घविधान को नकर पररूप यहां किया। प्रारम्भ अर्थ में इनका तुल्यार्थ बोधकत्व है। तुल्यार्थ न होने पर परस्मैपद होता है। प्रक्रामति। उपक्रामति। वह गमन करता है। वह आगमन करता है।

२७१७ अनुपसर्गाद् वा १।३।४३।

क्रामति। क्रमते। अप्राप्तविभाषेयम्। वृत्त्यादौ तु नित्यमेव।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपसर्ग पूर्वमें न रहते क्रमु धातु से विकल्प से आत्मनेपद होता है। यह अप्राप्तविभाषा है। वृत्ति आदि में नित्य ही आत्मनेपद होता है।

२७१८ अपह्नवे ज्ञः १।३।४४।

शतमपजानीते। अपलपतीत्यर्थः।

अपलाप अर्थ में ज्ञाधातु से आत्मनेपद होता है।
वह सौ मुद्रा का अपलाप करता है = शतम् अपजानीते।

२७१९ अकर्मकाच्च १।३।४५।

सर्पिषो जानीते। सर्पिषा उपायेन प्रवर्तत इत्यर्थः।

अकर्मक ज्ञाधातु से आत्मनेपद होता है। सर्पिस्=घृत के उपाय से वह प्रवृत्त होता है= सर्पिषो जानीते।

२७२० सम्प्रतिभ्यामनाध्याने १।३।४६।

शतं सञ्जानीते। अवेक्षत इत्यर्थः। शतं प्रतिजानीते। अङ्गीकरोतीत्यर्थः। अनाध्यान इति योगो विभज्यते, तत्सामर्थ्याद् अकर्मकाच्चेति प्राप्तिरपि वार्य्यते। मातरं मातुर्वा संजानाति। कर्मणः शेषत्वविवक्षायां षष्ठी।

सम् एवं प्रतिपूर्वक ज्ञा धातु के उत्तर अनाध्यान अर्थ में आत्मनेपद होता है। शतकर्मक वह अङ्गीकार करता है। 'अनाध्यान' यह योग विभाग है, योग विभाग के सामर्थ्य से 'अकर्मकाच्च' सूत्र प्राप्ति का भी वारण यह करता है। मातरं मातुर्वा संजानाति। यहां कर्म को शेषत्वेन विवक्षा करके षष्ठी विभक्ति हुई है।

२७२१ भासनोपसंभाषा ज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः १।३।४७।

उपसम्भाषोपमन्त्रणे धातोर्वाच्ये, इतरे प्रयोगोपाधयः। शास्त्रे वदते = भासमानो ब्रवीतीत्यर्थः। उपसम्भाषा = उपसान्त्वनम्। भृत्यानुपवदते सान्त्वयतीत्यर्थः। ज्ञाने, शास्त्रे वदते। यत्ने—क्षेत्रे वदते। विमतौ = क्षेत्रे विवदन्ते। उपमन्त्रणम् = उपच्छन्दनम्। उपवदते = प्रार्थयते इत्यर्थः।

भासन, उपसम्भाषण, ज्ञान, यत्न, विमति, उपमन्त्रण इन अर्थों में विद्यमान वदधातु से आत्मनेपद होता है। उपसम्भाषण एवं उपमन्त्रण ये दोनों वदधातु की अभिधाशक्ति से वाच्यार्थ है। अन्य सूत्रोक्त अर्थ प्रयोग के उपाधिभूत है। वह भासमान होकर कहता है = शास्त्रे वदते। उपसान्त्वन अर्थ में यथा— भृत्यान् उपवदते = भृत्यों को वह सान्त्वना देता है। ज्ञान में—शास्त्र विषयक वह कथन करता है = शास्त्रे वदते। यत्न में उदा० क्षेत्रे वदते। विविधमति में-क्षेत्रे विवदन्ते। उपमन्त्रण से प्रार्थना = उपवदते = वह प्रार्थना करता है।

२७२२ व्यक्तवाचां समुच्चारणे १।३।४८।

मनुष्याणां सम्भूयोच्चारणे वदेरात्मनेपदं स्यात्। सम्प्रवदन्ते ब्राह्मणाः। नेह सम्प्रवदन्ति खगाः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनुष्यों की सहोक्ति में वद से आत्मनेपद होता है। ब्राह्मणगण मिलकर स्पष्ट बोलते है। जहां मनुष्यों का सम्भूय उच्चारण नहीं वहां आत्मनेपद नहीं होता है। यथा पक्षी बोलते हैं। वहां परस्मैपद से सम्प्रवदन्ति खगाः।

२७२३ अनोरकर्मकात् १।३।४९।

व्यक्तवाग्विषयाद् अनुपूर्वाद् अकर्मकाद् वदेरात्मनेपदं स्यात्। अनुवदते कठः कलापस्य। अकर्मकात् किम्, उक्तमनुवदति। व्यक्तवाचां किम्, अनुवदति वीणा।

अनुपूर्वक अकर्मक व्यक्तवाग् विषयीभूत वद से आत्मनेपद होता है विकल्प से। अनुवदते। सकर्मक में उक्तम् अनुवदति। व्यक्त वाग्विषय न होने पर अनुवदति वीणा।

२७२४ विभाषा विप्रलापे १।३।५०।

विरुद्धोक्तिरूपे व्यक्तवाचां समुच्चारणे उक्तं वा स्यात्। विप्रवदन्ते विप्रवदन्ति वा वैद्याः।

परस्पर विरुद्धार्थ का प्रतिपादक व्यक्त वचन का समुच्चारण होने पर वद् धातु से विकल्प करके आत्मनेपद होता है। वैद्यगण विरुद्ध मत बोलते हैं = विप्रवदन्ते प्रवदन्ति वा वैद्याः।

२७२५ अवाद् ग्रः १।३।५१।

अवगिरते। गृणातिः स्ववपूर्वो न प्रयुज्यते एवेति भाष्यम्।

अव पूर्वक गृ धातु से आत्मनेपद होता है। अवगिरते। अवपूर्वक इनाविकरणक क्रयादि गण प्रयुक्त गृ का प्रयोग ही नहीं होता है ऐसा भाष्य में लिखा है।

२७२६ समः प्रतिज्ञाने १।३।५२।

शब्दं नित्यं संगिरते। प्रतिजानीत इत्यर्थः। प्रतिज्ञाने किम्, संगिरति ग्रासम्।

प्रतिज्ञा अर्थ में सम्पूर्वक गृ से आत्मनेपद होता है। शब्द नित्य है उसमें ध्वंसीया प्रतियोगिता नहीं रहती है। शब्दो नित्यः स्फोटरूपत्वात् ऐसी प्रतिज्ञा शाब्दिक करता है, अनित्य पक्ष में अनन्तवर्णतत्प्रागभाव तद्ध्वंसकल्पना में महान् गौरव है, अध्ययन अध्यापन क्रिया भी शब्द के अनित्यत्व में असम्भव है। अध्यापन माने शिष्यों को आचार्य द्वारा शब्दकर्मक दान है। दीयमान वस्तु दाता एवं प्रतिग्रहीता दोनों के मध्य में स्थित रहती है, यथा छात्राय पुस्तकं ददाति मैत्रः। अनित्य पक्ष में मध्य स्थित शब्द ही नहीं अध्यापनक्रिया का सम्भव न होगा।

विशेष विवेचन श्रीबालकृष्णपञ्चोली विरचित वैयाकरणभूषण की प्रभा व्याख्या का स्फोट-निरूपण देखिये। पृ० सं० ४४३ से ४४८। प्रकाशित-चौखाम्बा सं० सीरीज, काशी द्वितीय संस्करण। प्रतिज्ञानभिन्न में संगिरति ग्रासम् = ग्रास को निगलता है।

२७२७ उदश्वरः सकर्मकात् १।३।५३।

घर्ममुच्चरते। उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः। सकर्मकात् किम्, बाष्पमुच्चरति उपरिष्टाद् गच्छतीत्यर्थः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पूर्वक सकर्मक चर धातु से आत्मनेपद होता है। वह धर्म मार्ग को उल्लङ्घन करता है= उच्चरते। जहां सकर्मत्वाभाव है वहां परस्मैपद होता है बाष्प उपरिभाग में गमन करता है वहां बाष्पमुच्चरति।

२७२८ समस्तृतीयायुक्तात् १।३।५४।

रथेन सञ्चरते।

तृतीयान्त से युक्त सम् से पर चरधातु से आत्मनेपद होता है। वह रथ से जाता है= रथेन सञ्चरते।

२७२९ दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे १।३।५५।

सम्पूर्वाद् दाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात् तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे। दास्या संयच्छते। पूर्वसूत्रे 'सम' इति षष्ठी। तेन सूत्रद्वयमिदं व्यवहितेऽपि प्रवर्तते। रथेन समुदाचरते। दास्या संयच्छते।

तृतीया यदि चतुर्थी के अर्थ में विहित हो तो उस तृतीयान्त पद के योग में सम् पूर्वक दाण धातु से आत्मनेपद होता है। कामुक रतिरूप फल के लिए दासी को उद्देश्य कर दान देता है। अशिष्ट व्यवहार में चतुर्थी को बाधकर दासी से तृतीया चतुर्थ्यर्थ में हुई वहां यह आत्मनेपद का विधान करता है= दास्या संयच्छते। पूर्व सूत्र में समः पञ्चम्यन्त नहीं है किन्तु षष्ठ्यन्त है। अतः पूर्वसूत्र तथा यह सूत्र दोनों व्यवधान में भी प्रवृत्त होते हैं। रथेन समुदाचरते। दास्या संप्रयच्छते।

२७३० उपाद् यमः स्वकरणे १।३।५६।

स्वकरणम्=स्वीकारः। भार्यामुपयच्छते।

उपपूर्वक यम धातु से स्वीकार अर्थ में आत्मनेपद होता है। वह भार्य्या को स्वीकार करता है= भार्यामुपयच्छते।

२७३१ विभाषोपयमने १।२।१६।

यमः सिच् किद्वा स्याद् विवाहे। रामः सीताम् उपायत उपायंस्त वा। उदवोढेत्यर्थः। गन्धनाङ्गे उपयमे तु पूर्वविप्रतिषेधान्नित्यं कित्त्वम्।

विवाह अर्थ में उपपूर्वक यम से पर स्थित सिच् विकल्प से कित् होता है। जहां सिच् कित् वहां यम् के मकार का 'अनुदात्तोपदेशवनोति' से लोप। कित्त्वाभाव में मकार लोपाभाव है। गन्धनाङ्ग उपयम में नित्य कित्त्व होता है 'यमो गन्धने' सूत्र से।

२७३२ ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः १।३।५७।

सन्नन्तानामेषां प्राग्वत्। धर्मं जिज्ञासते। शुश्रूषते। दिदृक्षते।

सन् प्रत्ययान्त ज्ञा, श्रु, स्मृ, दृश इनसे आत्मनेपद होता है, धर्मं जिज्ञासते। शुश्रूषते। सुस्मूर्षते। दिदृक्षते।

सन् प्रत्ययान्त ज्ञा, श्रु, स्मृ, दृश इनसे आत्मनेपद होता है। धर्मं जिज्ञासते= वह धर्म विषयक जिज्ञासा= ज्ञान विषयक इच्छा को करता है। शुश्रूषते= श्रवणविषयिणी इच्छाविषयक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यापार को वह करता है। स्मृ-सुस्मूर्षते। दृश्-दिदृक्षते। अपह्नव में ज्ञा से 'अपह्नवे ज्ञः' से आत्मनेपद प्राप्त ही था, 'अर्तिश्रुदृशिभ्यश्च' से श्रु एवं दृश् का आत्मनेपद प्राप्त ही था, वह करने पर 'पूर्ववत्सनः' से आ० प० सिद्ध था, विषयान्तर में सन्नन्त से आत्मनेपदार्थ यह सूत्र है।

२७३३ नानोर्ज्ञः १।३।५८।

पुत्रमनुजिज्ञासति। पूर्वसूत्रस्यैवायं निषेधः, अनन्तरस्येति न्यायात्। तेनेह न, सर्पिषोऽनुजिज्ञासते। सर्पिषा प्रवर्तितुमिच्छतीत्यर्थः। पूर्ववत् सन इति तङ्। अकर्मकाच्चेति केवलाद् विधानात्।

अनुपूर्वक सन्नन्त ज्ञाधातु से आत्मनेपद नहीं होता है। यह सूत्र वाक्यविशेषचिन्ता पक्ष से पूर्वसूत्र से प्राप्त आत्मनेपद का निषेधक ही है। 'अनन्तरस्य विधिः प्रतिषेधो वा' इस न्यायसे। 'सर्पिषोऽनुजिज्ञासते' यहां 'पूर्ववत् सनः' से आत्मनेपद हुआ। 'अकर्मकाच्च' सूत्र केवल ज्ञा से आत्मनेपद विधान करता है।

२७३४ प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः १।३।५९।

आभ्यां सन्नन्ताच्छ्रुव उक्तं न स्यात्। प्रतिशुश्रूषति। आशुश्रूषति। कर्मप्रवचनीयात् स्यादेव। देवदत्तं प्रति शुश्रूषते।

प्रति एवं आङ्पूर्वक सन्नन्त श्रु धातु से आत्मनेपद होता है। कर्मप्रवचनीय से पर आत्मनेपद होता ही है। देवदत्तं प्रति शुश्रूषते।

शदेः शितः १।३।६०। शिद्भावी शद् से उत्तर आत्मनेपद होता है। इस सूत्र का प्रथम व्याख्यान कर चुके हैं। ह्रियतेर्लुङ्लिङोश्च १।३।६१।

लुङ् लिङ् एवं शित् प्रत्यय की प्रकृतिभूत मृड्धातु से आत्मनेपद होता है। इस सूत्र का भी व्याख्यान तुदादिगण में कर चुके हैं।

२७३५ पूर्ववत् सनः १।३।६२।

सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात्। एदिधिषते। शिशयिषते। निविविक्षते। 'पूर्ववत्' किम्, बुभूषति। शदेरित्यादि सूत्रद्वये सनो नेत्यनुवर्त्य वाक्यभेदेन व्याख्येयम्। तेनेह न-शिशत्सति। मुमूर्षति। आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनु प्रयोगस्य १।३।६३। एधाञ्चक्रे।

सन् प्रत्यय की प्रकृतिभूत जो धातु उसके समान सन्नन्त से भी आत्मनेपद होता है। एध् धातु से सन् उसकी आर्धधातुक संज्ञा कर वलादिलक्षण इडागम, 'अजादेर्द्वितीयस्य' से सम्बद्ध 'सन्यङोः' से धिशब्द का द्वित्वादि एदिधिष से इस से आत्मनेपद त एत्व शप् पररूप से एदिधिषते। शीङ् स० तदन्त से आत्मनेपद शिशयिषते। भूधातु परस्मैपद से सन् बुभूषति। शदेः शितः, 'ह्रियतेः' इन दो सूत्रों में 'सनो न' इन अंश द्वय की अनुवृत्ति से व्याख्याकर 'शिशत्सति' यहां आत्मनेपद न हुआ। एवं मुमूर्षति यहां भी आत्मनेपद न हुआ।

आम् की प्रकृतिभूत धातु के समान ही अनुप्रयुज्यमान धातु से भी आत्मनेपद होता है। यथा-एधाञ्चक्रे।

२७३६ प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु १।३।६४।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयुङ्क्ते। उपयुङ्क्ते। ॐ स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वक्तव्यम् ॐ। उद्युङ्क्ते। नियुङ्क्ते। अयज्ञपात्रेषु किम्, द्वन्द्वं न्यञ्चि पात्राणि प्रयुनक्ति।

यज्ञपात्र साधन न होनेपर प्र एवं उप उपसर्ग से पर युज् धातु से आत्मनेपद होता है। जिन उपसर्गों के आदि में स्वर हो या अन्त में स्वर रहे उन उपसर्ग से पर जो युज उससे आत्मनेपद होता है। यज्ञपात्रसाधन में आत्मनेपद का अभाव है।

२७३७ समः क्ष्णुवः १।३।६५।

संक्ष्णुते शस्त्रम्।

सम्पूर्वक क्ष्णुधातु से आत्मनेपद होता है।

२७३८ भुजोऽनवने १।३।६६।

ओदनं भुङ्क्ते। अभ्यवहरतीत्यर्थः।

"बुभुजे पृथवीपालः पृथिवीमेव केवलाम्"॥
"वृद्धो जनो दुःखशतानि भुङ्क्ते"।

इहोपभोगो भुजेरर्थः। अनवने किम्, महीं भुनक्ति।

रक्षा से भिन्न अर्थ में भुजधातु से आत्मनेपद होता है। वह ओदन = चावल = भात क भोजन करता है = ओदनं भुङ्क्ते। बुभुजे पृथिवीपालः, एवं शतानि भुङ्क्ते—यहां भुजधात्वर्थ उपभोग जनक व्यापारार्थक होने से रक्षाभिन्नार्थ है, अतः आत्मनेपद हुआ। महीं भुनक्ति = यहां राजा पृथिवी की रक्षा करता है परस्मैपद हुआ।

२७३९ णेरणौ यत्कर्म णौ चेत् स कर्ताऽनाध्याने १।३।६७।

ण्यन्तादात्मनेपदं स्यादणौ या क्रिया सैव ण्यन्तेनोच्येत, अणौ यत्कर्मकारकं स चेण्णौ कर्ता स्यान्न त्वाध्याने। णिचश्चेति सिद्धेऽकर्त्रभिप्रायार्थमिदम्। कर्त्रभिप्राये तु विभाषोपपदेनेति विकल्पेऽणावकर्मकादिति परस्मैपदे च परत्वात् प्राप्ते पूर्वविप्रतिषेधेनेदमेवेष्यते।

कर्तृस्थभावकाः कर्तृस्थक्रियाश्चोदाहरणम्। तथा हि—पश्यन्ति भवं भक्ताः= चाक्षुषज्ञानविषयं कुर्वन्ति इत्यर्थः। प्रेरणांशत्यागे पश्यति भवः विषयो भवतीत्यर्थः। ततो हेतुमण्णिच्।

दर्शयन्ति भवं भक्ताः। पश्यन्ति इत्यर्थः। पुनर्ण्यर्थस्याविवक्षायां दर्शयते भवः। इह प्रथमतृतीययोरवस्थयोर्द्वितीयचतुर्थ्योश्च तुल्योऽर्थः। तत्र तृतीयकक्षायां न तङ् क्रियासाम्येऽप्यणौ कर्मकारकस्य णौ कर्तृत्वाभावात्। चतुर्थ्यां तु तङ्, द्वितीयामादाय क्रियासाम्यात्। प्रथमायां कर्मणो भवस्येह कर्तृत्वाच्च।

एवमारोहयते हस्तीत्यप्युदाहरणम्। आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः। न्यग् भावयन्ति—इत्यर्थः। तत आरोहति हस्ती। न्यग् भवतीत्यर्थः। ततो णिच। आरोहयन्ति। आरोहन्तीत्यर्थः। तत आरोहयते=न्यग्भवतीत्यर्थः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पश्यन्त्यारोहन्तीति प्रथमकक्षा प्राग्वत्। ततः कर्मण एव हेतुत्वारोपाण्णिच्। दर्शयति भवः। आरोहयति हस्ती। पश्यत आरोहतश्च प्रेरयतीत्यर्थः। ततो णिज्भ्यां तत्प्रकृतिभ्यां च उपात्तयोर्द्वयोरपि प्रेरणांशयोस्त्यागे दर्शयते आरोहयते इत्युदाहरणम्। अर्थः प्राग्वत्। अस्मिन् पक्षे द्वितीयकक्षायां न तङ् समानक्रियात्वाभावाण्णिजर्थस्याधिक्यात्। अनाध्याने किम्, स्मरति वनगुल्मं कोकिलः। स्मरयति वनगुल्मः। उत्कण्ठापूर्वकस्मृतौ विषयो भवतीत्यर्थः।

ण्यन्त धातु से आत्मनेपद होता है, अणिजन्तावस्था में जो क्रिया थी वही क्रिया ण्यन्त धातु से अभिहित हो, अणिजन्त काल में जो कर्मकारक था वह ण्यन्त काल में कर्ता रहते, उत्कण्ठा पूर्वक स्मरण अर्थ में आत्मनेपद नहीं होता है। णिचश्च सूत्र से आत्मनेपद यहां सिद्ध था पुनः आत्मनेपद जहाँ विधान क्रियाजन्य फल कर्तृगामि न रहे वहां आत्मनेपद विधानार्थ है। क्रियाजन्य फल कर्तृगामि होने पर तो 'विभाषोपपदेन' से विकल्प से आत्मनेपद की प्राप्ति एवं 'अणावकर्मकात्' से परत्व के कारण परस्मैपद की प्राप्ति थी। किन्तु पूर्वविप्रतिषेध से इसी सूत्र से आत्मनेपद होगा।

जहां कर्म में क्रिया कृत विशेषता की प्रतीति न रहे वैसे धातुओं की कर्तृस्थ भावक कहते हैं, कर्तृस्थ भावक एवं कर्तृस्थक्रिया वाले धातुओं का उदाहरण दिखाते हैं। उदाहरण प्रदर्शन के पूर्व में सूत्रार्थ पुनः अधिक स्पष्ट करने के लिए यहां चार वाक्य है—'आत्मनेपदम्' का अधिकार है। १—'णेरात्मनेपदम्' इत्येकं वाक्यम् = ण्यन्तात् आत्मनेपदं स्यात् यह व्याख्यान कर चुके हैं।

२—अणौ यत्कर्म णौ चेत् यह द्वितीय वाक्य है, कर्मशब्द क्रियापरक है, कर्तरि कर्मव्यतिहारे की तरह = अणौ या क्रिया सैव ण्यन्ते चेदित्यर्थः = णिच् उत्पन्न न होने पर जिस क्रिया की प्रतीति होती थी वह ण्यन्त से भी प्रतीयमान रहने पर।

३—'स कर्ता' तृतीयम्, अणौ से आरम्भ कर चेत् शब्दान्त की द्वितीय वाक्य का अनुकर्षण यहां है, यहां शब्दाधिकार से कर्मशब्द क्रियापरक न होकर कर्मकारक परक है, इसीलिए लघुभूत अर्थाधिकार का त्यागकर गुरुभूत शब्दाधिकार का आश्रयण आचार्यों ने यहां किया। अर्थ-अणौ यत् कर्मकारकं स चेत् णौ कर्ता।

४—'अनाध्याने' चतुर्थम्। आध्यानम् = उत्कण्ठापूर्वक स्मरण अर्थ है। वहां आत्मनेपद, नहीं होता है। वस्तुतः लाघवात् यहां पर्युदास ही उचित है, इस पक्ष में आध्यान भिन्न में आत्मनेपद होता है यह फलितार्थ कथन है। 'आध्याने न' यह निषेध की प्रतीति नहीं, प्रसज्यप्रतिषेध में त्रिविध गौरव है, असामर्थ्य में समास, शाब्दबोध, वाक्यभेद कल्पना, अतः जहां तक सम्भव रहे वहां तक नञ् में पर्युदासग्रहण ही उचित है। इस पक्ष स्वीकार करने में यहां वाक्यत्रय ही है।

विमर्श:—सूत्रसार्थक्य विवेचन—**विभाषोपपदेन** सूत्र का अवकाश—'स्वं यज्ञं यजते स्वं यज्ञं यजति' यहां है, 'णेरणौ' का अवकाश—'लावयते केदारः स्वयमेव' यहां है यहां 'लूयते केदारः' इस द्वितीयकक्षा में अणौ अकर्मकत्व होने से। यहां द्वि० कक्षा में ही 'कर्मवत् कर्मणा' से यक् एवं आत्मनेपद की प्रवृत्ति है, अतः 'पश्यति भवः' की तरह द्वि० क० में 'लुनाति केदारः' ऐसा प्रयोगभ्रम नहीं करना चाहिये। अतः 'विभाषोपपदेन' से प्राप्त वैकल्पिक आत्मनेपद बाधनार्थ सूत्र सार्थक है यह एक प्रयोजन सिद्ध हुआ। तुसरा प्रयोजन को पुनः स्पष्ट करते हैं—'दर्शयते राजा' यह भाष्यप्रयोग से यह सूत्र 'अणावकर्मकात्' का बाधक है यह नवीन आचार्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहते हैं। निवृत्त प्रेषण में दृश अण्यन्तावस्था में अकर्मक है एवं चित्तवत्कर्तृक भी है। परस्मैपद प्राप्त को बाधनार्थ ही यह सूत्र है। कोई कहता है कि पूर्वोक्त भाष्य का प्रयोग परगामिनि क्रिया-फले चरितार्थ है अतः 'अणावकर्मकात्' के बाध में प्रमाण नहीं है, आदि अनेक परस्पर विरुद्ध यहां आचार्यों के मतभेद हैं।

कर्तृस्थभावकाः—अपरिस्पन्दनसाधनसाध्यो धात्वर्थो भावः। सपरिस्पन्दनसाधनसाध्या क्रिया। साधनम् = कारकम्। तत्साध्यत्वाद् धात्वर्थस्य। यहां साधनपद से लकारवाच्य कारक विवक्षित है। अतः दृशधातु को कर्तृस्थभावकता हुई, कर्तृस्थक्रियाकता न हुई।

सूत्रोदाहरण विवेचन—कर्तृस्थभावक का उदाहरण—१ पश्यन्ति भवं भक्ताः = भक्त गण शिव को चाक्षुषज्ञानविषयीभूत करते हैं। धात्वर्थ यहां चक्षुरिन्द्रियजन्य ज्ञानविषयीभूत भवनानुकूल व्यापार रूपार्थक है। यहां धात्वर्थ व्यापाररूप प्रेरणा की सौकर्यविवक्षा के लिए त्याग करने पर भक्तगण भव को क्या देखते हैं, भव = शिव स्वयमेव ज्ञानविषयीभूत होते हैं—यहां इस विवक्षा में = धात्वर्थ चक्षुरिन्द्रियजन्यज्ञान विषयीभूतभवन है, 'अनुकूल व्यापार' इतना अंश का प्रथम स्वीकृत धात्वर्थ में त्याग यहां किया।

२—पश्यति भवः। चाक्षुषज्ञानविषय शिव स्वयं होते हैं। चाक्षुष ज्ञान विषयीभूतभवनाश्रय शिव को भक्त प्रेरणा करते हैं।

३—'दर्शयन्ति भवं भक्ताः' इस पक्ष में प्रथमकक्षा में जो धात्वर्थ था वहां णिच् करने पर भी यहां धात्वर्थ रहा, एवं प्रथम कक्षा में भव कर्म रहा वह इस तृतीय कक्षा में भी कर्म है, यहां दर्शयन्ति = पश्यन्ति के समानार्थक है।

४—पुनः ण्यर्थ प्रेरणांश का त्याग करने पर 'दर्शयते भवः' यहां धात्वर्थ पूर्व वर्णित द्वितीय कक्षा के समान है। यहां प्रथम एवं तृतीय कक्षा, द्वितीय एवं चतुर्थ कक्षा में धात्वर्थ तुल्य है। तृतीय कक्षा में धात्वर्थ तुल्य यद्यपि है, किन्तु इस कक्षा में आत्मनेपद इससे न हुआ, यहां अण्यन्तावस्था में जो कर्मकारक भव था वह ण्यन्त में कर्तृकारक नहीं है। चतुर्थ कक्षा में तो आत्मनेपद हुआ, क्योंकि द्वितीय कक्षा में जो क्रिया धात्वर्थवाच्य है अतः क्रियातुल्यत्व है एवं प्रथम कक्षा में जो भव कर्म रहा वह चतुर्थ कक्षा में कर्ता भी है।

कर्तृस्थक्रिया का उदाहरण अब प्रदर्शन करते हैं—१ हस्तिपका हस्तिनम् आरोहन्ति, यहां धात्वर्थ न्यग्भवनानुकूल व्यापार रूप अर्थ वाचक है, = पीलवान हाथी को न्यग्भवन जन्य व्यापार को करता है। २ वह क्या व्यापार को करता है हाथी स्वयं न्यग्भवनाश्रय होता है—आरोहते हस्ती = न्यग् भवतीत्यर्थः। ३—पश्चात् णिच् हुआ आरोहयन्ति = शुद्ध धात्वर्थसम प्रथम कक्षा में जो क्रिया थी वह ण्यन्त से प्रतीत है = आरोहयन्ति यह ण्यन्त का यहां पर्याय = 'आरोहन्ति' हुआ है। उसके बाद ४ णिच् – आरोहयते हस्ती। न्यग् भवति यह अर्थ है। पूर्ववत् प्र० तृ० में क्रिया साम्य, द्वि० च० में क्रिया साम्य, एवं कर्म कर्ता भी है अतः च० क० में तङ् हुआ। अब तृतीय कक्षा में आत्मनेपदार्थ यत्न करते हैं वह यत्न—

यङ्ग :—१—पूर्ववत् दोनों उदाहरण जो दिये वे प्रथम कक्षा में है। २—द्वितीय कक्षा में कर्म में ही प्रयोजकत्व = प्रेरकत्व स्वीकार करके हेतुत्व के आरोप कर द्वितीय कक्षा में ही णिच् प्रत्यय की उत्पत्ति करके दर्शयति भवः। एवं आरोहयति हस्ती–दिखनेवाले या आरोहण करने वालों को प्रेरणा वह भव या हस्ती करता है। ३—इसके बाद शुद्ध धातु के अर्थ में अनुकूल व्यापार रूप अर्थ का त्याग करने पर एवं णिच् वाच्य प्रेरणा रूप व्यापार के त्याग करने पर 'दर्शयते भवः' एवं 'आरोहते हस्ती' यह तृतीय कक्षा में ही आत्मनेपद रूप कार्य इस सूत्र से हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस पक्ष स्वीकार करने पर द्वितीय कक्षा में आत्मनेपद न हुआ, क्योंकि—समानक्रियात्व का अभाव इस कक्षा में है। णिच् प्रत्ययार्थ प्रेरणा रूप व्यापार अधिक है। उत्कण्ठा पूर्वक स्मरण में इस सूत्र की अप्रवृत्ति है। यथा—१-वनगुल्मं कोकिलः स्मरति, २-वनगुल्मः स्मरति, ३-स्मारयति वनगुल्मं कोकिलः, ४-स्मारयति वनगुल्मः। इस सूत्र से यावत् विषय अतीव उपयोगी है। शास्त्रार्थ एवं परीक्षा के लिए भी आवश्यक है। भीस्म्योर्हेतुभये १।३।६८। व्याख्यातम्।

हेतु से भय या स्मय होने पर 'भी' धातु एवं 'स्मि' धातु से आत्मनेपद होता है। सूत्र में ग्रहण 'स्मि' धातु का स्मयरूपार्थ का उपलक्षण है। यह सूत्र २५९६ सू० अङ्क में व्याख्यात है। वहां प्रसङ्ग से यह प्रदर्शित था यहां प्रकरण में वह मुख्यत्वेन प्रदर्शित है।

२७४० गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने १।३।६९।

प्रतारणेऽर्थे ण्यन्ताभ्यामाभ्यां प्राग्वत्। माणवकं गर्धयते वञ्चयते वा। प्रलम्भने किम्? श्वानं गर्धयति। अभिकाङ्क्षामस्योत्पादयतीत्यर्थः। अहिं वञ्चयति = वर्जयतीत्यर्थः।

प्रलम्भन अर्थ में णिच् प्रत्ययान्त गृध एवं वञ्च धातु से आत्मनेपद होता है प्रलम्भन=प्रतारण=वञ्चन समानार्थक ही है। वह बालक को ठगता है = माणवकं गर्धयते। प्रतारण-भिन्नार्थ में 'श्वानं गर्धयति' = आकाङ्क्षा उसकी वह उत्पन्न कराता है। यहां आत्मनेपद न हुआ। वह सर्प को त्याग करता है—अहिं वञ्चयति। लियः सम्माननशालीनीकरणयोश्च १।३।७०। व्याख्यातम्।

ण्यन्त लीङ् एवं ली से पूजा, अभिभव, प्रलम्भन अर्थ में आत्मनेपद होता है अकर्तृगामि फल रहने पर भी। सू० २५९३। लापयते। उल्लापयते। आदि उदाहरण है।

२७४१ मिथ्योपपदात् कृञोऽभ्यासे १।३।७१।

णेरित्येव। पदं मिथ्या कारयते। स्वरादिदुष्टमसकृदुच्चारयतीत्यर्थः। मिथ्योपपदात् किम्, पदं सुष्ठु कारयति। अभ्यासे किम्, सकृत् पदं मिथ्या कारयति।

बार बार उस कार्य करने की आदत को अभ्यास कहते हैं। अभ्यास अर्थ में मिथ्या शब्द है उपपद में जिसको ऐसा कृञ् धातु उससे विहित णिच् तदन्त से आत्मनेपद होता है। यथा—'पदं मिथ्या कारयते' बार बार स्वरादि दोषग्रस्त वह पद का उच्चारण करता है। कभी एक बार मिथ्या उच्चारण करने पर तो परस्मैपद ही होता है यथा 'सकृत्पदं मिथ्या कारयति'।

स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।३।७२।

यजते। सुनुते। कर्त्रभिप्राये किम्, ऋत्विजो यजन्ति। सुन्वन्ति।

स्वर की इत्संज्ञा युक्त या ञकारेत्संज्ञक, धातुओं से क्रियाजन्य जो फल है वह क्रिया का जनक जो कर्ता उसे प्राप्त रहने पर आत्मनेपद इन धातुओं से होता है। स्वरितेत्—यजते। ञित्—सुनुते। जहां फल कर्तृगामि नहीं वहां परस्मैपद होता है यथा—यजमान से दक्षिणा-ग्रहणार्थ ऋत्विग् गण यजन क्रिया कराते हैं, वहां यज्ञजन्य स्वर्गादि-फलप्रापक कालान्तरभावी कार्य के प्रति अदृष्ट रूप जो फल वह ऋत्विग्गामि नहीं किन्तु यजमानगामि है। फलपद से यहां धातुवाच्य फल लेना। अर्थात् धातुवाच्य व्यापार में विशेषणीभूत अर्थात् धात्वर्थतावच्छेदक फल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही यहां गृहीत है, अनुकूलत्व-जनकत्वसम्बन्धावच्छिन्नफलनिष्ठा प्रकारता तन्निष्ठा विशेष्यता-धात्वर्थ व्यापार में है।

२७४२ अपाद् वदः १।३।७३।

न्यायमपवदते। कर्त्रभिप्राय इत्येव। अपवदति।

अपपूर्वक वद धातु से आत्मनेपद होता है क्रियाजन्य फल वह यदि कर्तृगामि रहे तब ही। इस सूत्र की आत्मनेपदार्थ प्रवृत्ति होती है। अन्यथा नहीं। अपवदति ही होगा।

णिचश्च १।३।७४। ण्यन्त धातु से आत्मनेपद होता है। णिच् प्रत्ययबोधक पद होने से 'यस्मात् प्रत्ययविधिः' परिभाषा से 'तदादि' रूप शब्दस्वरूप विशेष्य तथा उपस्थित हुआ एवं 'येन विधिस्तदन्तस्य' सूत्र से णिच् की विशेषणसंज्ञा हुई है, संज्ञा को देखकर 'तदन्त' रूप संज्ञी की उपस्थिति हुई है अर्थतः 'ण्यन्ततदादि' रूप अर्थ का लाभ हुआ, परिभाषा में दो अंश है प्रथमांश अपूर्व है अर्थात् नवीन है। द्वितीयांश 'येन विधिस्तदन्तस्य' से लब्ध है उस अंश की अनुवादिका है 'तदन्तस्य ग्रहणम्' यह अङ्ग संज्ञा सूत्र में गृह्यमाणे का अध्याहार करके एवं योगविभाग करके परिभाषा लब्ध है १ यस्मात् प्रत्ययविधिः २ अङ्गम्। द्वितीय को प्रसिद्धार्थ ही है, पूर्व १ अंश परिभाषाबोधनार्थक ही है।

२७४३ समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे १।३।७५।

अग्रन्थे इति च्छेदः। व्रीहीन् संयच्छते। भारमुद्यच्छते। वस्त्रमायच्छते। अग्रन्थे किम्, उद्यच्छति वेदम्। अधिगन्तुमुद्यमं करोतीत्यर्थः। कर्त्रभिप्राये इत्येव।

क्रिया से जन्य फल कर्तृगामि होने पर सम्, उद्, आङ् पूर्वक यम् धातु से ग्रन्थभिन्न अर्थ में आत्मनेपद होता है। वेदाध्ययन निमित्तक उद्योग करता है—यहां ग्रन्थरूप अर्थ की प्रतीति से आत्मनेपद न हुआ।

२७४४ अनुपसर्गाज्ञः १।३।७६।

गां जानीते। अनुपसर्गात् किम्, स्वर्गं लोकं न प्रजानाति। कथं तर्हि भट्टिः—

"इत्थं नृपः पूर्वमवालुलोचे ततोऽनुजज्ञे गमनं सुतस्य"। इति।

कर्मणि लिट्। नृपेणेति विपरिणामः।

उपसर्ग पूर्व में न रहें ऐसे ज्ञाधातु से आत्मनेपद होता है। उपसर्ग पूर्व में रहें वहां परस्मैपद ज्ञा से होता है। भट्टि वाक्य में उपसर्ग पूर्व में है तो आत्मनेपद 'अनुजज्ञे' यहां कैसे हुआ? नृपः जो प्रथमान्त है, उसको तृतीयान्तत्व से विपरिणाम करके कर्म में लिट् लकार करके 'नृपेण अनुजज्ञे' यह तात्पर्य है। राजा दशरथ ने प्रथम स्वज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचन्द्र जी को राज्याभिषेकार्थ विचार किया, तदनन्तर कैकेयी के कथन से राम जी को वनगमनार्थ आज्ञा प्रदान की। इस भट्टिवाक्य में अनुजज्ञेकर्मलकारान्त है। धातुवाच्य क्रिया कर्ता लिट् से अनुक्त है, अतः तृतीयान्त प्रयोग नृपेण है।

२७४५ विभाषोपपदेन प्रतीयमाने १।३।७७।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वरितञित इत्यादि पञ्चसूत्र्या यदात्मनेपदं विहितं तत्समीपोच्चारितेन पदेन क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वे द्योतिते वा स्यात्। स्वं यज्ञं यजते यजति वा। स्वं कटं कुरुते करोति वा। स्वं पुत्रमपवदते, अपवदति वा। स्वं यज्ञं कारयते कारयति वा। स्वं व्रीहिं संयच्छते संयच्छति वा। स्वां गां जानीते, जानाति वा।

इत्यात्मनेपदप्रक्रिया

'स्वरितञित' इत्यादि पांच सूत्रों से विधीयमान आत्मनेपद वह समीप में उच्चारित पद अर्थात् उपपद से क्रियाजन्य फल कर्तृगामि प्रतीयमान रहे वहां वह = (आत्मनेपद) से विकल्प से होता है। क्रमेण पांच सूत्रों का स्पष्ट उदाहरण मूलग्रन्थ में दिये गये हैं।

प० श्री बालकृष्णपञ्चोलि विरचित रत्नप्रभा में आत्मनेपद प्रकरण समाप्त।

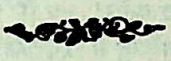

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ परस्मैपदक्रिया

शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् १।३।७८। अस्ति।

आत्मनेपद के निमित्त से रहित धातु से कर्ता अर्थ में परस्मैपद होता है। 'अस्ति' यहां परस्मैपद हुआ। इसकी व्याख्या पूर्व में भी प्रसङ्गात् हो चुकी है।

२७४६ अनुपराभ्यां कृञः १।३।७९।

कर्तृगेऽपि फले गन्धनादौ च परस्मैपदार्थमिदम्। अनुकरोति। पराकरोति। कर्तरीत्येव। भावकर्मणोर्मा भूत्। न चैवमपि कर्मकर्तरि प्रसङ्गः, कार्यातिदेशपक्षस्य मुख्यतया तत्र कर्मवत् कर्मणेत्यात्मनेपदेन परेणास्य बाधात्। शास्त्रातिदेशपक्षे तु कर्तरि कर्मेत्यतश्च कर्तृग्रहणद्वयमनुवर्त्य कर्तैव यः कर्ता न तु कर्मकर्ता तत्रेति व्याख्येयम्।

क्रियाजन्य फल कर्ता को प्राप्त होने पर एवं गन्धनादि अर्थों में अनुपूर्वक एवं परा पूर्वक कृञ् धातु आत्मनेपद होता है। 'शेषात् कर्तरि' सूत्र से इस सूत्र में 'कर्तरि' की अनुवृत्ति है। अतः भाव एवं कर्म में लकार विधीयमान धातु से रहें वहां यह सूत्र परस्मैपद का विधान नहीं करता है। जहां सौकर्यादि विवक्षा में कर्म ही कर्ता हुआ वहां अर्थात् कर्मकर्ता में इस सूत्र की 'कर्तरि' की अनुवृत्ति करने पर भी प्रवृत्ति क्यों नहीं हुई? इस शङ्का की निवृत्ति के लिए क्या समाधान है, यदि यह सूत्र कर्मकर्ता में परस्मैपदार्थ प्रवृत्त है, किन्तु 'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः' यह सूत्र अतिदेश = आरोपबोधक है। अतिदेश दो पक्ष है १ कार्यातिदेश २ एवं शास्त्रातिदेश, इनमें कार्यातिदेश मुख्य = प्रधान है। उस पक्ष में 'अनुपराभ्यां कृञः' पूर्व शास्त्र को 'कर्मवत् कर्मणा' जो पर शास्त्र है यह बाध इसका करता है अतः उससे विहित आत्मनेपद ही कर्मकर्ता में होगा। परस्मैपद बाध्य होने से न हुआ। यदि अमुख्य पक्ष भी शास्त्रातिदेश का आश्रयण करने पर 'कर्मवत् कर्मणा' आत्मनेपद स्वयं न करके तत् तत् कार्यों के विधायक शास्त्रों से करवायेगा तब तो भावकर्मणोः १।३।१३। पूर्व है जो आत्मनेपद करता हैं, अनुपराभ्यां कृञः पर है, ऐसी परिस्थिति में शास्त्रातिदेश में इससे कर्मकर्ता में परस्मैपद क्यों नहीं हुआ? यद्यपि मुख्य पक्ष में शङ्का समाधान हो गया है, इस अमुख्य पक्ष का समाश्रयण नहीं करेगें यह कह सकते थे, किन्तु यथा प्रज्ञ तथैव स्वप्रौढि एवं वैदुष्यविशेष को प्रकटनार्थ समाधान करते हैं कि इस सूत्र में शेषात् से एक कर्ता आया ही है तो भी 'कर्तरि शप्' सूत्र से कर्ता की पुनः अनुवृत्ति करके कर्ता ही कर्ता अर्थात् मुख्य कर्मकर्ता में तो कर्म वह वास्तविक है, उसमें कर्तृत्व वहां नहीं है, अतः कर्मकर्ता में 'अनुपराभ्याम्' की अप्रवृत्ति ही है। यह व्याख्यान यहां किया गया।

जिसके लिए जो होता है वह अप्रधान एवं जिस लिए होता है वह प्रधान वह लोकसिद्ध नियम है, कार्य के लिए शास्त्रों का अतिदेश में शास्त्र अमुख्य एवं कार्य ही मुख्य है अतः स्वयं अतिदेश उन उन कार्यों को करता है एतावता कार्यातिदेश में मुख्यत्व है।

२७४७ अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १।३।८०।

क्षिप प्रेरणे स्वरितेत्। अभिक्षिपति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभि, प्रति, अति, इनसे पर जो क्षिप् धातु उससे परस्मैपद होता है।

२७४८ प्राद् वहः १।३।८१।

प्रवहति ।

प्रपूर्वक वह धातु से परस्मैपद होता है।

२७४९ परेर्मृषः १।३।८२।

परिमृष्यति। भौवादिकस्य तु परिमर्षति। इह परेरिति योगं विभज्य वहेरपीति केचित्।

परि उपसर्ग पूर्वक मृष् धातु से परस्मैपद होता है। दिवादि में परिमृष्यति भ्वादि का मृष् में गुण से परिमर्षति। यहां 'परेः' ऐसा योग विभाग करके इस विभक्त सूत्र में पूर्व से वह की अनुवृत्ति करके 'परि से पर वह' उससे भी परस्मैपद होता है।

२७५० व्याङ्परिभ्यो रमः १।३।८३।

विरमति ।

विपूर्वक आङ् पूर्वक एवं परिपूर्वक रम् से परस्मैपद होता है।

२७५१ उपाच्च १।३।८४।

यज्ञदत्तमुपरमति। उपरमयतीत्यर्थः। अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम्।

उप उपसर्ग से पर क्रियाजन्य फल कर्तृगामि रहते रम् से परस्मैपद होता है, रमु धातु का क्रीडाजनक व्यापार अर्थ है, अर्थात् यहां क्रीडाजनक व्यापारार्थक रम् है। यहां णिजर्थ प्रेरणा धातु के अर्थ में उदरस्थ = कुक्षिप्रविष्ट है। णेः अर्थः ण्यर्थः, अन्तर् भावितः ण्यर्थः यस्य सः—बहुव्रीहि समास है। क्रीडा करवाना अर्थ है।

२७५२ विभाषाऽकर्मकात् १।३।८५।

उपादूरमेरकर्मकात् परस्मैपदं वा। उपरमति, उपरमते वा, निवर्तत इत्यर्थः।

उप पूर्वक अकर्मक रम् धातु से विकल्प से परस्मैपद होता है। निवृत्त होता है वह इस अर्थ में उपरमति उपरमते हुआ।

२७५३ बुधयुधनशजनेङ् प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः १।३।८६।

एभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं स्यात्। णिचश्चेत्यस्यापवादः। बोधयति पद्मम्। योधयति काष्ठानि। नाशयति दुःखम्। जनयति सुखम्। अध्यापयति वेदम्। प्रावयति = प्रापयतीत्यर्थः। द्रावयति = विलापयतीत्यर्थः। स्रावयति = स्यन्दयतीत्यर्थः।

ण्यन्त बुध, युध, नश, जन, इङ्, प्रु, द्रु, स्रु इन धातुओं के उत्तर कर्त्ता में परस्मैपद होता है। यह सूत्र 'णिचश्च' का बाधक है। बोधयति = विकासयति अर्थक है।

२७५४ निगरणचलनार्थेभ्यश्च १।३।८७।

निगारयति। आशयति। भोजयति। कम्पयति। ❀अदेः प्रतिषेधः❀ आदयते देवदत्तेन। गतिबुद्धीति कर्मत्वम् 'अदिखाद्योर्न' इति प्रतिषिद्धम्, निगरण-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चलनेति सूत्रेण प्राप्तस्यैवायं निषेधः। शेषादित्यकर्त्रभिप्राये परस्मैपदं स्यादेव। आदयत्यन्नं बटुना।

भक्षणार्थक एवं कम्पार्थक ण्यन्त धातु से परस्मैपद होता है। भक्षणार्थक यद्यपि अद् धातु भी है तो भी उससे परस्मैपद नहीं होता है। देवदत्तोऽन्नं तं चैत्रः प्रेरयति—यहां प्रयोज्यकर्ता देवदत्त से अकर्मत्व लक्षण कर्म संज्ञा 'गति बुद्धि' से प्राप्त थी, उसको 'आदिखाद्योर्न' वा० ने बाध किया। अतः प्रयोज्यकर्ता जो देवदत्त है, उससे तृतीया विभक्ति हुई है। देवदत्तेन आदयते णिचश्च से आत्मनेपद हुआ। भक्षणजनक व्यापार जनक व्यापार आदि का अर्थ है। 'अदेः प्रतिषेधः' अद् धातु से परस्मैपद निषेधक वार्तिक 'निगरण' से प्राप्त का ही निषेधक है। शेषात् का नहीं उससे परस्मैपद होता ही है। बटुः अन्नम् अत्ति तं आदयति यहां प्रयोज्य से तृतीया है।

२७५५ अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात् १।३।८८।

ण्यन्तात् परस्मैपदं स्यात्। शेते कृष्णस्तं गोपी शाययति।

अण्यन्त में अकर्मक एवं चित्तवत्कर्तृक धातु से परस्मैपद होता है। कृष्ण स्वप्नजनक व्यापार रूप शयन क्रिया करते हैं उनको गोपी सुलाती है। गोपी शाययति। स्वप्न जनक व्यापार जनक व्यापार यहां ण्यन्त शादि धात्वर्थ है।

२७५६ न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः १।३।८९।

एभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं न। पिबतिर्निगरणार्थः। इतरे चित्तवत्कर्तृकाऽकर्मकाः। नृतिश्चलनार्थोऽपि। तेन सूत्रद्वयेन प्राप्तिः। पाययते। दमयते। आयामयते। आयासयते। परिमोहयते। रोचयते। नर्तयते। वादयते। वासयते। ॡधेट उपसंख्यानम्ॡ। 'धापयेते शिशुमेकं समीची'। अकर्त्रभिप्राये शेषादिति परस्मपदं स्यादेव, वत्सान् पाययति पयः। 'दमयन्ती कमनीयतामदम्।' भिक्षां वासयति।

ण्यन्त पा, दमि, आङ्पूर्वक यम् एवं यस् परिपूर्वक मुह्, रुच्, नृत, वद, वस, इन धातुओं से परस्मैपद नहीं होता है। यहां पाधातु भक्षणार्थक = निगरणार्थक है। अन्य धातु चित्तवान् है कर्ता जिनका ऐसे धातु है। नृत धातु चलनार्थक है। इस कारण 'निगरण-चलनार्थेभ्यः' सूत्र से प्राप्ति रही एवं 'अणावकर्मकात्' से प्राप्ति परस्मैपद की थी उन दोनों का यह निषेधक सूत्र है। ण्यन्त धेट धातुसे परस्मैपद होता है। समीची प्रथमा का द्विवचन है। वा छन्दसि से पूर्वसवर्ण दीर्घ है। क्रियाजन्य फल जहां कर्तृगामि न रहे वहाँ परस्मैपद होता ही है शेषात् सूत्र से। पाययति पयः, 'शाच्छासा' से युक् आगम हुआ है। सौन्दर्य के गर्व को दमन करने वाली वह दमयन्ती है। 'दमयन्ती' शब्द दो अर्थों का बोधक है, दमनकर्त्री एवं राजकन्या, श्लेष है। यहां परस्मैपद क्रियाजन्य फल कर्तृगामि न होने से परस्मैपद होने से शतृ प्रत्यय हुआ। 'भिक्षां वासयति' शेषात् से परस्मैपद हुआ।

वा क्यषः १।३।९०।

क्यषन्त से परस्मैपद विकल्प से होता है। पक्षमें आत्मनेपद हुआ। लोहितायति। लोहितायते।

द्युद्भ्यो लुङि १।३।९१।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अद्युतत्। अद्योतिष्ट।

द्युतादि गण पठित धातुओं से लुङ् में परस्मैपद विकल्प से होता है।

वृद्भ्यः स्यसनोः १।३।९२।

वर्त्स्यति, वर्त्तिष्यते। विवृत्सति। विवर्त्तिषते।

वृतादि धातुओं से परस्मैपद विकल्प से स्य या सन् में होता है।

लुटि च क्लृपः १।३।९३।

कल्प्ता। कल्प्तासि, कल्पितासे। कल्प्स्यति। कल्पिष्यते। कल्प्स्यते। चिक्लृप्सति। चिकल्पिषते। चिक्लृप्सते।

इति परस्मैपदप्रक्रिया।

क्लृप् धातु से लुट् में परस्मैपद विकल्प से होता है।

प० श्री बालकृष्णपञ्चोलिविरचित रत्नप्रभा में परस्मैपद प्रक्रिया समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ भावकर्मप्रक्रिया

अथ भावकर्मणोर्लडादयः। भावकर्मणोरिति तङ्।

भाव एवं कर्म में लट् आदि प्रत्यय होते हैं। भाव अर्थबोधक एवं कर्म अर्थबोधक लकार के स्थान में आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय होते हैं।

२७५७ सार्वधातुके यक् ३।१।६१।

धातोर्यक् प्रत्ययः स्याद् भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके परे।

भावो भावना उत्पादना क्रिया। सा च धातुत्वेन सकलधातुवाच्या भावार्थकलकारेणानूद्यते। युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याभावात् प्रथमपुरुषः। तिङ्वाच्यभावनाया असत्त्वरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि। किन्त्वेकवचनमेव तस्यौत्सर्गिकत्वेन संख्यानपेक्षत्वाद् अनभिहिते कर्तरि तृतीया। त्वया, मया, अन्यैश्च भूयते। बभूवे।

भाव या कर्मवाचक सार्वधातुक प्रत्यय पर में रहते धातु से 'यक्' प्रत्यय विकरण होता है। यहां शङ्का होती है भाव किसको कहते हैं? भावपद का विवरण मूलकार करते हैं—भाव माने भावना, भावना माने उत्पत्तिजनक क्रिया, भूधात्वर्थविषयक संस्कारविशिष्ट अन्तःकरण की वृत्ति से 'उत्पादन क्रिया' यह कथन है, यहां उत्पत्तिरूप फल उपलक्षण हैं—सकल धातुजन्य फलों का।

अर्थात् फलजनक व्यापार रूप क्रियार्थक भावशब्द का वाच्य अर्थ है, संक्षेप में भावशब्द क्रियावाचक है। क्रियात्वरूप धर्मसामान्य सकल विशेष क्रियाओं में भी रहने वाला है, अर्थात् क्रियात्व व्यापक धर्म है। सामान्यतः धातुनिष्ठ शक्तिजन्य क्रिया रूप अर्थ शक्य है। शक्य में शक्यता रहती है, शक्यतावृत्ति धर्म को शक्यतावच्छेदक कहते हैं। लाघवात् क्रियात्व शक्यतावच्छेदक है, एवं धातु में तदर्थनिरूपिता शक्ति रहने से वह = धातु है शक्त, शक्त्याश्रय को शक्त कहते है, शक्त में शक्तता रहती है, शक्तता में रहने वाला धर्म शक्ततावच्छेदक होता है।

'भूवादयो धातवः' सूत्र धातुसंज्ञा का विधायक है। वह क्रियावाचक की धातुसंज्ञा करता है जो भूप्रभृति एवं वासदृश रहे वहां सादृश्य क्रियावाचकत्वेन ही गृहीत है। इतना आयास से यह फलितार्थ हुआ कि लाघवात् क्रियात्वरूप एक धर्म सकल धातुओं का शक्यतावच्छेदक धर्म सामान्य रूप से हुआ, एवं सकल धातुओं में रहने वाला एक सामान्यधर्म शक्ततावच्छेदक धातुत्व हुआ।

यहां ग्रन्थकार इसी रहस्य को "भावो भावना सैव उत्पादना क्रिया सा च सकलधातुत्वेन वाच्या" इन वर्णमालाओं से बोधन कर रहे हैं। इसी का तात्पर्य व्यर्थनार्थ पूर्व प्रयास किया गया है, यह ग्रन्थरहस्य अल्पजनवेद्य सम्प्रति है। इस व्याख्यान से ग्रन्थाशय सुस्पष्ट हुआ। धातुत्वेन सकलधातु क्रियात्वेन क्रिया का वाचक है। भू एध् पच् गम् इन से अर्थात् भूत्व एधत्व पचत्व गमत्व रूप विशेषशक्ततावच्छेदक धर्मों को पुरस्कार करके वे आत्मधारणानुकूल व्यापार आदि के वाचक है। अतः पर्य्यायतापत्तिः = एकार्थबोधकत्वापत्ति का परिहार भी हुआ। अर्थात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धातुत्ववृत्ति विशेषधर्म से विशेष क्रिया के वे धातु क्रियात्वव्याप्य तत्तत् विशेष क्रियाओं का बोधक है। क्रियात्वव्याप्य यथा —विक्लित्यनुकूलव्यापारत्वबुद्धिजनक-व्यापारत्व, आत्मधारण जन्य व्यापारत्वादि धर्म है।

भाव में जहां लकार विधीयमान रहता है वहां मध्यम पुरुष उत्तम पुरुष एवं प्रथमपुरुष इनकी अप्राप्ति ही है इस को ग्रन्थकार संक्षेपमें कह रहे हैं—युष्मदस्मद्भ्याम् सामानाधिकरण्याभावेन—तात्पर्य यह है कि मध्यमपुरुष विधायक शास्त्र का पर्यालोचन विना यह ग्रन्थ रहस्य दुर्ज्ञय है, "युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः" यह सूत्र है। वहां समानाधिकरण शब्दार्थ क्या है?, एकार्थ बोधकत्वरूप सामानाधिकरण्याश्रय है, तात्पर्य यह है कि शब्द अर्थ बोधन समय स्वार्थ में वृत्ति जो धर्म उसको पुरस्कार करके अर्थवाचक होता है। उस वाच्य धर्म को प्रवृत्तिनिमित्त कहते हैं यथा घटत्व, पटत्व आदि।

पक्षधर मिश्र ने अपने ग्रन्थ में प्रवृत्तिनिमित्त का सामान्य एवं संक्षिप्त लक्षण यह कहा है—वाच्यत्वे सति वाच्यार्थवृत्तित्वे सति, वाच्योपस्थितीयप्रकारताश्रयत्वं प्रवृत्तिनिमित्तत्वम्। अर्थवृत्तिधर्म घटत्वादि घटादि शब्दसमवेतशक्ति से वाच्य है, वाच्य घड़ा आदि में रहता है घटत्वादि एवं इनमें उपस्थितीया विशेषणतारूपा = प्रकारता है। उस प्रकारता के वे घटत्वादि आश्रय भी है।

अब मध्यमपुरुष सूत्र में भिन्न भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तानां शब्दानामेकस्मिन् अर्थे वृत्तिः = सामानाधिकरण्यम् यहाँ है यथा 'त्वं मत्रसि' यहां तिङ्त्वेन रूपेण सिप्कर्तृरूपार्थ बोधक है, क्यों कि लकार कर्ता में विहित है, युष्मदर्थ संबोध्यत्वेन रूपेण वह भी उसी कर्ता का वाचक है। अर्थतः मध्यम पुरुष विधायकसूत्र की वृत्ति में लिखा कि "तिङ्वाच्यकारकवाचिनि" तिङ्निष्ठ वाचकतानिरूपिता वाच्यता कर्तृ या कर्मकारक में ही रहेगी अर्थात् तिङ्वाच्य कर्तृकर्मकारक वाचक युष्मद् शब्द उपपद में उच्चरित रहे या न रहे वहां मध्यमपुरुष होता है 'स्थानिनि' का अर्थ अप्रयुज्यमाने हैं 'अपि' का अर्थ प्रयुज्यमाने है। 'अस्मद्युत्तमः' में भी तिङ् वाच्यकारक वाचिनि अस्मदि प्रयुज्यमाने अथवा अप्रयुज्यमाने अर्थ है वहां उत्तम पुरुष होता है।

इसी प्रकार 'शेषे प्रथमः' यहाँ भी तिङ्वाच्यकारकवाचिनि चैत्रादौ प्रयुज्यमाने अप्रयुज्यमाने प्रथम पुरुषः। यह तीनों सूत्रों का अर्थ समन्वय भाव में लकार में नहीं होता है।

धातु भावार्थ है लकार भी भावार्थ = क्रियार्थक है, अतः धातु को क्रियावाचकत्व है। लकार को धातुवाच्य क्रिया का अनुवादकत्व है। अतः क्रिया का दो बार भान न यहां हुआ, यहां लकार या तत्स्थान में जायमान तङ्प्रत्यय क्रियार्थक हैं वे कर्तृ या कर्म अर्थ का वाचक नहीं है। अतः युष्मद् अर्थ या अस्मद् अर्थ या चैत्रादि अर्थ के साथ एकार्थबोधकत्वरूप सामानाधिकरण्याभाव से मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष या प्रथम पुरुष की यहां (भावार्थकलकार में) अप्राप्ति ही है। किन्तु 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' 'बहुषु बहुवचनम्' इन दोनों सूत्रों के स्थान में न्यास किया है—"द्विबहोर्द्विवचनबहुवचने" द्वित्वविवक्षा में द्विवचन होता है। बहुत्व विवक्षामें बहुवचन प्रातिपदिक से होता है। द्वित्वबहुत्व की जहां विवक्षा नहीं वहां एक वचन होता है। ऐसे स्थल दो मिलते हैं जहां एकत्व की विवक्षा वहां या किसी भी संख्या की विवक्षा नहीं वहां एकवचन होता है—इस भाष्य कथन से यही सारांश गम्य हुआ कि "एकवचनम् उत्सर्गतः करिष्यते" अतः भाव में प्रत्यय विधान में संख्यादि की अप्रतीति में प्रथम पुरुष का एकवचन सभी लकारों का होता है। भाव में लकारस्थानिक जायमान तङ् स्थान्यर्थेन अर्थवान् होकर अद्रव्यार्थ क्रिया का बोधक है वहां द्वित्वादि की प्रतीति नहीं है। सत्त्व = द्रव्य को कहते हैं। समवायसम्बन्ध से लिङ्निष्ठप्रकारतानिरूपिता विशेष्यता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्रव्यरूपार्थवृत्ति होती है। एवं लिङ्गान्वयि भी द्रव्य ही रहता है। क्रिया में तादृशी विशेष्यता बाधित है, अतः द्वित्वादि की भावरूपाक्रिया में अप्रतीति है। एकवचन एकत्व की अविवक्षा में भी प्रमाण रहने पर आता ही है।

भाव में टकार से क्रिया लकार या तत्स्थानिक तिङ् से उक्त है, कर्ता को सर्वथा अनुक्त ही है अतः कर्तृवाचक युष्मद्, अस्मद् या चैत्रादि इनसे "अनभिहिते कर्तरि" तृतीया विभक्ति आकर "त्वया मया अन्यैश्च भूयते" यह प्रयोग की सिद्धि हुई।

२७५८ स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च।६।४।६२।

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात् स्यादिषु परेषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च। अयमिट् चिण्वद्भाव-सन्नियोगशिष्टत्वात् तदभावे न। इहार्धधातुके इत्यधिकृतं सीयुटो विशेषणं नेतरेषामव्यभिचारात्। चिण्वद्भावाद् वृद्धिः भाविता, भविता। भाविष्यते भविष्यते। भूयताम्। अभूयत। भूयेत। भाविषीष्ट। भविषीष्ट।

भाव या कर्म अर्थ गम्यमान रहे स्य, सिच्, सीयुट् एवं तास् प्रत्यय परमें रहते उपदेश अवस्था का जो अच् वह है अन्त में जिनको ऐसे जो धातु एवं हन्, ग्रह एवं दृश् इन धातुओं को चिण् प्रत्यय पर रहते जो अङ्ग को कार्य होता है वह कार्य विकल्प से होता है, एवं स्य आदि को इडागम होता है।

यहां 'उपदेशे' यह अनुवृत्ति है वह द्वन्द्व घटक अच् में ही विशेषण है, हनादि का वह विशेषण नहीं है, व्यभिचार के अभाव से। अजन्त का वह विशेषण नहीं है ण्यन्त धातु का उपदेश नहीं वहां तो उद्देश्य है वहां इष्ट चिण्वद्भाव की अप्रवृत्ति होगी। साक्षात् उच्चारण को उपदेश कहते हैं। 'चिण्वत्' में सप्तम्यन्त से वति प्रत्यय 'तत्र तस्येव' से है।

अङ्गाधिकार होने से अङ्गाधिकारस्थ कार्य का ही अतिदेश होता है अनङ्गाधिकारीय का नहीं हन् को वधादेश, इण् को गा आदेश, इङ् को गाङ् आदेश न हुए। 'आगमसमभिव्याहारे आगमविशिष्टस्यैव ग्रहणम्' परिभाषा से अर्थवत्त्व प्रत्ययत्व केवल आगमसीयुट् में नहीं है, किन्तु सीयुट् विशिष्ट लिङ् का ही सीयुट् पद से ग्रहण करना चाहिये। अत एव "भावकर्मवाचिषु परेषु स्यादयः" इस पक्ष में 'सीयुट् अविशिष्टतः स्यात् इति भाष्ये उक्तम्' इस भाष्य कथन से आगम समभिव्याहारे आगमविशिष्ट में ही अर्थवत्त्व का लाभ हुआ एवं यह परिभाषा तादृशभाष्य कथन से ज्ञापित भी हुई। चिण्वद्भाव निमित्त आङ्ग कार्यों का परिगणन इस प्रकार है—

"चिण्वद्वृद्धिर्युक् च हन्तेश्च घत्वं दीर्घश्चोक्तो यो मितां वा चिणीति।
इट्चासिद्धस्तेन मे लुप्यते णिर्नित्यश्चायं वलनिमित्तो विघाती"॥

इति। 'चिण् वत्' इस अतिदेश का वृद्धि आदि प्रयोजन है, यथा भाविता, भाविष्यते आदि में वृद्धि हुई। दायिता, दायिषीष्ट यहां युक् हुआ। घानिता, घानिष्यते यहां घत्व हुआ।

हेतुमण्ण्यन्त से कर्म में लकार करने पर शामिता, शमिता आदि में 'चिण्णमुलोः' से मित् धातु की उपधा का विकल्प करके दीर्घ हुआ। एवं शामिता इत्यादि में 'स्यसिच् सीयुट्' सूत्र से विहित इडागम आमीयत्वेन असिद्ध होने से 'अनिटि' यह निषेध की अप्रवृत्ति होने से णिलोप हुआ। भाविष्यते आदि में वलादिलक्षण इडागम बाध करके चिण्वद् इट् ही होता है, क्यों कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह इडागम नित्य है। वल् निमित्तक इडागम विघाती = अनित्य है। सेट् धातुओं से भी यह अपने विषय में इडागम करता है, इस इडागम से बलादित्व नष्ट होने से 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' की अप्राप्ति है, अतः वह अनित्य है।

चिण्वद्भावसन्नियोगशिष्ट यह इडागम चिण्वद्भाव के अभाव में अप्रवृत्तिमत् है अर्थात् होता नहीं है। यहां अनुवृत्त 'आर्धधातुके' है। वह अन्यभिचार होने के कारण अन्य का विशेषण न होकर केवल सीयुट् का ही विशेषण है, क्योंकि विधिलिङ् में सीयुट् सार्वधातुक है, एवं आशीर्लिङ् में सीयुट् आर्धधातुक है, "सम्भवव्यभिचाराभ्यां स्याद् विशेषणम् अर्थवत्" इस न्याय से। चिण्वद्भाव निमित्तक 'अचो ञ्णिति' से भाविता आदि में वृद्धि हुई। चिण्वद्भाव वैकल्पिक होने से पक्ष में भविता आदि रूप हुए। स्य सिच् सीयुट् एवं तास् में दो दो रूप प्रत्येक के होते हैं।

२७५९ चिण् भावकर्मणोः ३।१।६६।

च्लेश्चिण् स्याद् भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे। अभावि, अभाविष्यत। अभविष्यत।

धातु से पर विद्यमान च्लि को चिण् आदेश होता है भाव या कर्मवाचक तशब्द पर में रहते। अभावि। लृङ् में अभाविष्यत। अभविष्यत दो रूप हुए। अकर्मक एक उदाहरण भाव में दिखाकर तथैव अन्य धातुओं में जो अकर्मक है उनमें 'भू' सदृशरूप ज्ञान करना। सम्प्रति सकर्मक धातु में कर्म में लकार के उदाहरण प्रदर्शन करते हैं। आत्मधारणानुकूल व्यापार में फल एवं व्यापार का आश्रय एक होने से भूधातु अकर्मक है। वह भूधातु अनुभवजनक व्यापाररूप अर्थ में अनुपूर्वक भू सकर्मक भी है। वस्तुतः उपसर्ग अनु आदि में द्योतकत्व ही है, वाचकत्व नहीं है, समीपस्थ शब्दनिष्ठ जो शक्ति उसका उद्बोधक = प्रकट करने वाले को द्योतक कहते हैं—"स्वसमभिव्याहृतपदनिष्ठशक्त्युद्बोधकत्वं द्योतकत्वम्।" यहां पद से 'शक्तम्' पद ही गृहीत है, ऐसी परिस्थिति में भू धातु का ही अनुभव अर्थ भी है।

तङोक्तत्वात् कर्मणि द्वितीया न भवति, अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च। अनुभूयेते। त्वमनुभूयसे। अहमनुभूये। अन्वभावि, अन्वभाविषाताम्, अन्वभविषताम्। णिलोपः, भाव्यते, भावयाञ्चक्रे, भावयांबभूवे। भावयामासे, इह तशब्दस्य एशि इट एत्वे च कृते 'ह एति' इति हत्वं न, तासि साहचर्यादस्तेरपि 'व्यतिहे' इत्यादौ सार्वधातुके एति हत्वप्रवृत्तेरित्याहुः। भाविता। चिण्वदिट आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोपः। पक्षे भावयिता। भाविष्यते, भावयिष्यते। भाव्यताम्, अभाव्यत, भाव्येत, भाविषीष्ट, भावयिषीष्ट, अभावि, अभाविषाताम्, अभावयिषाताम्।

बुभूष्यते। बुभूषांचक्रे। बुभूषिता। बुभूषिष्यते। बोभूय्यते। यङ्लुगन्तात्तु बोभूयते। बोभवाञ्चक्रे। बोभाविता। बोभविता। अकृत्सार्वेति दीर्घः—स्तूयते विष्णुः। तुष्टुवे। स्तविता, स्तोता। स्ताविष्यते, स्तोष्यते। अस्तावि, अस्ताविषाताम्, अस्तोषाताम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुणोर्तीति गुणः, अर्यते। स्मर्यते, सस्मरे। परत्वान्नित्यत्वाच्च गुणे रपरे कृतेऽजन्तत्वाभावेऽप्युपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट्। आरिता, अर्ता, स्मारिता, स्मर्ता। गुणोर्तीत्यत्र नित्यग्रहणानुवृत्तेरुक्तत्वान्नेह गुणः, संस्क्रियते। अनिदितामिति नलोपः स्रस्यते। इदितस्तु-नन्ध्यते। सम्प्रसारणम् इज्यते। अयङ्यि क्ङिति, शय्यते।

कर्तरि प्रत्यय में चैत्रः आनन्दम् अनुभवति, त्वम् आनन्दम् अनुभवसि, अहम् आनन्दम् अनुभवामि। कर्मणि लकार में लकारस्थानिक तङ् से कर्म अर्थ उक्त है एवं कर्ता रूप अर्थ अनुक्त है, अतः कर्तृवाचक से तृतीया विभक्ति हुई एवं कर्मवाचक से प्रथमा विभक्ति हुई—अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च। चैत्रमैत्रौ अनुभूयेते। चैत्रमैत्रविष्णुमित्राः-अनुभूयन्ते। त्वम् अनुभूयसे। आदि प्रयोग ज्ञान करना चाहिये।

लुङ् में चिण् तलोप वृद्धि अन्वभावि। भूधातु से णिच् कर भावि से लट् यक् णिलोप भाव्यते। भावयामासे—यहां त को एश् करने पर उत्तम पुरुष में इट् प्रत्यय करके 'टित' से एकारादेश करने पर, 'इ एति' सूत्र से इकारादेश नहीं होता है, क्योंकि तास् में साहचर्य से अस् को भी व्यतिहे इत्यादि सार्वधातुक में ही इकारादेश की प्रवृत्ति होती है, अन्यत्र नहीं। ऐसा आचार्यगण कहे हैं।

'भाविता' यहां ण्यन्त से चिण्वद्भाव एवं इडागम हुआ है, वह इडागम आभीयत्व के कारण असिद्ध होने से अनिटि परत्व का ज्ञान करके णिच् का 'णेरनिटि' से लोप हुआ है। पक्ष में भावयिता। सन्नन्त भूधातु से लट् यक् आदि से बुभूष्यते। यङन्त भू से बोभूय्यते। यङ् लुगन्त से बोभूयते। कर्मणि प्रयोग में स्तु धातु से स्तूयते विष्णुः 'अकृत' सूत्र से दीर्घ हुआ। अर्यते स्मर्यते यहां 'गुणोऽर्ति' से गुण हुआ। आरिता-अर्ता। यहां परत्व एवं नित्यत्व के कारण गुण एवं रपर करने पर अजन्तत्व का अभाव है तो भी उपदेश अवस्था में अच् अन्त में होने से चिण्वदिट् हुआ। 'गुणोऽर्ति' में नित्य की अनुवृत्ति है, अतः नित्य संयोगादि धातु का ही ग्रहण होता है, संस्क्रियते में क्ङिट् के कारण संयोगादि होने से गुणाभाव है। स्रस्यते अनिदिताम् से नलोप है। नन्ध्यते इदित् के कारण नलोप न हुआ।

सकर्मक यज् से कर्म में लकार से सम्प्रसारणादि से इज्यते। शय्यते में अयङ् हुआ।

२७६० तनोतेर्यकि ६।४।४४।

आकारान्तादेशो वा स्यात्। तायते। तन्यते। ये विभाषा, जायते, जन्यते।

यक् परमें रहते तन्धातु को विकल्प से आकारादेश अन्त्य को होता है। 'ये विभाषा' से जन् को आकारान्त आदेश भी विकल्प से होता है।

२७६१ तपोऽनुतापे च ३।१।६५।

तपश्चलेश्चिण्न स्यात् कर्मकर्तर्यनुतापे च। अन्वतप्त पापेन। पापं कर्तृ तेनाभ्याहत इत्यर्थः। कर्मणि लुङ्। यद्वा पापेन पुंसा कर्त्रा अशोचीत्यर्थः। घुमास्थेतीत्त्वम्। दीयते। धीयते। आदेच इत्यत्राशितीति कर्मधारयाद् इत्संज्ञकशकारादौ निषेधः। एश आदिशित्त्वाभावात् तस्मिन्नात्त्वम्। जग्ले।

कर्मकर्ता में अनुताप अर्थ में तप धातु के उत्तर च्लि के स्थान में चिण् नहीं होता है। यथा 'अन्वतप्त पापेन' पाप दुःखप्रदान में कर्तृभूत है वह पाप के कारण दुःखी हुआ। अथवा 'अशो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदिभ्योऽच्' से पापशब्द से अच् प्रत्यय कर पापयुक्त पुरुष अर्थ है। अपराधी पुरुष शोकातुर हुआ। दीयते धीयते में घुमास्था से ईत्व हुआ है। आदेश सूत्र में अशिति में कर्मधारय समास से इत्संज्ञक शकार आदि में रहें वैसा प्रत्यय पद में रहते आकार का निषेध हुआ। दृश् में इत् संज्ञक शकार अन्त में है अतः जरले में आत्व हुआ।

२७६२ आतो युक् चिण्कृतोः ७।३।३३।

आदन्तानां युगागमः स्याच्चिणि ञिति णिति कृति च। दायिता, दाता। दायिषीष, दासीष्ट। अदायि। अदायिषाताम्, अदिषाताम्। अधायिषाताम्—अधिषाताम्। अग्लायिषाताम्, अग्लासाताम्।

हन्यते। अचिण्णलोरित्युक्तेर्हनस्तो न, हो हन्तेरिति कुत्वम्, घानिता-हन्ता, घानिष्यते-हनिष्यते, आशीर्लिङि वधादेशस्यापवादश्चिण्वद्भावः 'आर्धधातुकेसीयुटि' इति विशेषविहितत्वात्। घानिषीष्ट, पक्षे वधिषीष्ट, अघानि, अघानिषाताम्, अहसाताम्। पक्षे वधादेशः—अवधि, अवधिषाताम्, अघानिष्यत, अहनिष्यत।

न च स्यादिषु चिण्वदित्यतिदेशाद् वधादेशः स्यादिति वाच्यम्, अङ्गस्येत्यधिकारादाङ्गस्यैवातिदेशात्।

आकारान्तधातुको युगागम होता है, चिण् पर रहते, या ञित प्रत्यय पर रहते णित् पर रहते, या कृत्प्रत्यय पर रहते। दायिता। दाता। दायिषीष्ट। दासीष्ट। अदायि। अदायिषाताम्। अदिषाताम्। अधायि आदि। हन्यते। घानिता हन्ता, इन् के नकार को तकारादेश न हुआ। चिण्वद्भाव से 'अचिण्' से निषेध हुआ। 'हो हन्तेः' से कुत्व हुआ। आशीर्लिङ् में वधादेश को बाधकर चिण्वद्भाव हुआ। सीयुट् आर्धधातुके विशेषविहित चिण्वद्भाव ने वधादेश को बाध किया। घानिषीष्ट पक्ष में वधिषीष्ट। लुङ् में अघानि। अघानिषाताम्। अहसाताम्। पक्ष में अवधि स्यादि प्रत्यय पर में रहते चिण्वद्भाव का अतिदेशकरण सामर्थ्य से वधादेश होना चाहिये ऐसी शङ्का न करनी चाहिये। क्योंकि 'अङ्गस्य' इस अधिकार से अङ्गाधिकारीय कार्य का ही अतिदेश होता है।

गृह्यते। चिण्वदिटो न दीर्घत्वम्। प्रकृतस्य वलादिलक्षणस्यैवेटो ग्रहोऽलिटीत्यनेन दीर्घविधानात्। ग्राहिता। ग्रहीता। ग्राहिष्यते। ग्रहीष्यते। ग्राहिषीष्ट। ग्रहीषीष्ट। अग्राहि, अग्राहिषाताम्, अग्रहीषाताम्। दृश्यते। अदर्शि। अदर्शिषाताम्। सिचः कित्त्वादम्न, अदृक्षाताम्।

गिरितेर्लुङि ध्वमि चतुरधिकं शतम्। तथा हि चिण्वदिटो दीर्घो नेत्युक्तम्। अगारिध्वम्। द्वितीये त्विटि 'वृतो वा' इति वा दीर्घः, अगरीध्वम्, अगरिध्वम्, एषां त्रयाणां लत्वं ढत्वं द्वित्वत्रयं चेति पञ्च वैकल्पिकानि। इत्थं षण्णवतिः लिङ्सिचोरिति विकल्पाद् इडभावे उश्चेति कित्त्वम्, इत्त्वं रपरत्वं हलि चेति दीर्घः, इणः षीध्वम्, इति नित्यं ढत्वम्, अगीर्ढ्वम्। ढवमानां द्वित्वविकल्पेऽष्टौ। उक्तषण्णवत्या सह सङ्कलने उक्ता संख्येति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"इट् दीर्घश्चिण्वदिट् लत्वढत्वे द्वित्वत्रिकं तथा।
इत्यष्टानां विकल्पेन चतुर्भिरधिकं शतम्" ॥ १ ॥

हेतुमण्ण्यन्तात् कर्मणि लः, यक्, णिलोपः—शम्यते मोहो मुकुन्देन।

गृह्यते, ग्रह् से यक् सम्प्रसारण पूर्वरूपादि गृह्यते। ग्राहिता यहां चिण्वद् इडागम को 'ग्रहोऽलिटि' सूत्र से दीर्घ नहीं होता है, वह सूत्र वलादि लक्षण जो 'आर्धधातुकस्य' से विहित इडागम का ही दीर्घ विधान करता है, इसको नहीं। दृश्यते, अदर्शि, आदि यहां सिच् को विकरण किस्वके कारण अम् नहीं होता है। गृ धातु से लुङ् में ध्वम् पद में रहते एक सौ चार १०४ रूप होते हैं। चिण्वद् इट् को दीर्घ नहीं होता है यह अभी कह चुके हैं। अगारिध्वम्, द्वितीय इट् को 'वृतो वा' से दीर्घ विकल्प करके दीर्घ हुआ—अगरीध्वम्, अगरिध्वम्, इन तीनों रूपोंमें 'अचि विभाषा' सूत्र से रकार के स्थान में लकार, ढकार एवं द्वित्वत्रय ऐसे पांच प्रकार के विकल्प कार्य होते हैं। इसी प्रकार ९६ रूप होंगे। 'लिङ्सिचोः' सूत्र से विकल्प इट्के अभाव में 'उश्च' सूत्र से किस्व, इत्व, रपरत्व एवं 'हलि च' से दीर्घ हुआ, 'इणः षीध्वम्' से नित्य ढकार हुआ—अगीढ्वम्। ढकार, वकार मकार इनको विकल्प करके द्वित्व करने पर आठ रूप हुए। 'अचो रहाभ्याम्' से ढकारको द्वित्व करने पर दोनो पद के ही वकार को 'यणो मयः' इस वा० से द्वित्व करने पर चार रूप हुए। इन चारो रूपोमे मकार का 'अनचि च' से द्वित्व करने पर आठ रूप एवं पूर्ववर्णित २६ के साथ मिलाने से एक सौ चार रूप हुए। इट्, दीर्घ, चिण्वदिट्, लत्व, ढत्व, द्वित्वत्रय, इन आठ के विकल्प से १०४ रूप हुए।

'हेतुमति च' से प्रयोजक व्यापार में णिच् करके ण्यन्त से कर्म में लकार, यक् एवं णिलोप करके 'शम्यते मोहो मुकुन्देन' ऐसा प्रयोग सिद्ध हुआ।

२७६३ चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् ६।४।९३।

चिण्परे णमुल्परे च णौ मितामुपधाया दीर्घो वा स्यात्। प्रकृतो मितां ह्रस्व एव तु न विकल्पितः। ण्यन्ताण्णौ ह्रस्वविकल्पस्यासिद्धेः। दीर्घविधौ हि णिचो लोपो न स्थानिवदिति दीर्घः सिध्यति। ह्रस्वविधौ तु स्थानिवत्त्वं दुर्वारम्।

भाष्ये तु "पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवद्" इत्यवष्टभ्य द्विर्वचनसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चरः प्रत्याख्याताः। णाविति जातिनिर्देशः, दीर्घग्रहणं चेदं मास्त्विति तदाशयः। शामिता, शमिता, शमयिता। शामिष्यते, शमिष्यते, शमयिष्यते।

यङन्ताण्णिच्। शंशम्यते। शंशामिता, शंशमिता, शंशमयिता। यङ् लुङन्ताण्णिच्यप्येवम्। भाष्यमते तु यङन्ताश्चिण्वदिटि दीर्घो नास्तीति विशेषः। ण्यन्तत्वाभावे शम्यते मुनिना।

चिण् या णमुल है पर में जिसको ऐसा जो णिच् उसके पर में रहते मित् संज्ञक धातु की उपधा को विकल्प से दीर्घ होता है। प्रकरण प्राप्त जो 'मितां ह्रस्वः' सूत्र से विधीयमान ह्रस्व को ही इस सूत्र से विकल्प विधान आचार्य पाणिनि ने क्यों नहीं किया ?, ऐसा करने पर णिजन्त से उत्तर पुनः णिच् करने पर ह्रस्व की असिद्धि होगी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस सूत्र से दीर्घविधान करने पर तो 'दीर्घविधौ न स्थानिवद्भावः' से दीर्घ सिद्ध होता है। ह्रस्व विधान में स्थानिवद्भाव अवश्य होगा, भाष्यकार के मत में तो 'अचः परस्मिन्' सूत्र सपादसप्ताध्यायी है वह 'पूर्वत्रासिद्धम्' से त्रिपादीस्थ शास्त्र को असिद्धत्व कारण दिखता ही नहीं अर्थात् त्रिपादीशास्त्र कर्तव्य रहते असिद्धत्व से स्थानिवद्भाव अप्राप्त ही है।

इसी का फलितार्थ कथन यह है—'पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्' पुनः 'न पदान्त सूत्र' में द्विर्वचन, सवर्ण, अनुस्वार, दीर्घ, जश् एवं चर् इन का प्रत्याख्यान कर दिया है, 'णौ' यह जातिनिर्देश है अर्थात् प्रत्येक णिच् में रहनेवाली णिच्त्व जातिका णिच् द्वय में आरोप है। अर्थात् स्थानिवद्भाव करने पर भी ण्यन्त से णिच् करने पर ह्रस्व विकल्प से होगा ही, इस सूत्र में दीर्घग्रहण न करना यही भाष्यकार का आशय है। चिण्वद्भाव एवं इडागम वैकल्पिक पक्ष में ह्रस्वाभाव में चिण्वदिट् का अभाव में तीन रूप हुए। दो विकल्प से तीन रूप होते हैं।

विमर्श—न पदान्त सूत्र में जो त्रैपादिक विधियां हैं, उसका खण्डन करना उचित ही है वहां 'पूर्वत्रासिद्धम्' से असिद्धत्व प्रयुक्त स्थानिवद्भाव 'अचः परस्मिन्' से अप्राप्त है, किन्तु दीर्घग्रहण न पदान्त सूत्र में अवश्य चाहिये। उसका प्रत्याख्यान उचित नहीं है क्योंकि दीर्घ त्रिपादीस्थ भी है, वहां स्थानिवद्भाव यद्यपि अप्राप्त है किन्तु जो दीर्घ सपादसप्ताध्यायीस्थ है यथा 'चिण्णमुलो-र्दीर्घोऽन्यतरस्याम्'।

यहां ण्यन्त से णिच् करने पर प्राप्त स्थानिवद्भावार्थ निषेधक 'न पदान्त' में दीर्घ ग्रहण चाहिये। प्रत्येकवृत्ति जाति को व्यक्ति द्वय में आरोप करने में कोई प्रमाण नहीं है, स्वाङ्गसमुदाय में स्वाङ्गत्व का यथा अभाव से 'कल्याणपाणिपादा' वहां ङीष् न हुआ, तथैव णिच् द्वय में णिच्त्वके आरोप में कोई प्रमाण नहीं है।

इस सूत्र में स्थानिवद् भाव निषेधार्थ दीर्घविधान ही करना आवश्यक है। विकल्प ह्रस्व करने में फलभेद भी है, हेडृ अनादरे धटादि 'मितां ह्रस्वः' से पच् का इक् हिडयति रूप होता है, लुङ् में 'चिण्णमुलोः' करने पर यदि ह्रस्वविकल्प करेंगें तो अहिडि, अहेडि रूप होगें। दीर्घविधान में अहीडि, अहिडि रूप इष्ट हैं। अतः यहां दीर्घ ग्रहण प्रत्याख्यान आदि क्रम सर्वथा अनुचित है यथाश्रुत न्यास ही ठीक है।

यगन्तसे णिच् करने पर शंशम्यते आदि रूप है। यङ्लुगन्त से णिच् करने पर भी पूर्ववत् रूप है। भाष्यकार के मत में यङन्त से चिण्वत् इट् में दीर्घ नहीं होता है। यही विशेषता है। णिजन्त के अभावमें 'शम्यते मुनिना' ऐसा प्रयोग होता है।

२७६४ नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्याऽनाचमेः ७।३।३४।

उपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञिति णिति कृति च। अशमि। अदमि। उदात्तोपदेशस्येति किम्, अगामि। मान्तस्य किम्, अवादि। अनाचमेः किम्, आचामि। ❀ अनाचमिकमिवमीनामिति वक्तव्यम् ❀। चिणि आयादय इति णिङभावे अकामि। णिङ्णिचोरेप्येवम्। अवामि। वध हिंसायाम्। हलन्तः, जनिवध्योरिति न वृद्धिः, अवधि। जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्स्वित्युक्तेर्न गुणः, अजागारि।

चिण् पर में रहते या ञित् या णित् कृत् पर में रहते चमु धातु से भिन्न उपदेश अवस्था में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदात्त जो धातु उसकी जो उपधा उसकी वृद्धि नहीं होती है। अशमि। अदमि। अगामि में उदात्तोपदेश नहीं है। 'अवादि' यहां मान्त नहीं है। आचामि में चमु है अतः वृद्धि हुई। वार्तिककार कहते हैं कि चम्, कम्, नम् इन धातुओं से भिन्न उपदेश अवस्था में उदात्त जो मान्त धातु उनकी उपधावृद्धि नहीं होती है पूर्वोक्तनिमित्त में। चिण् में 'आयादयः' से णिङ् अभाव में अकामि। अवामि। हलन्त हिंसार्थक वध् का लुङ् में वृद्धि निषेध से अवधि। 'अजागारि' में 'जाग्रः' गुणविधायक शास्त्र की अप्रवृत्ति है वहां चिण् भिन्न कहने से।

२७६५ भञ्जेश्च चिणि ६।४।३२।

नलोपो वा स्यात्। अभाजि। अभञ्जि।

चिण् पर में रहते भञ्ज धातु के नकार का विकल्प करके लोप होता है।

२७६६ विभाषा चिण्णमुलोः ७।१।६९।

लभेर्नुमागमो वा स्यात्। अलम्भि-अलाभि। व्यवस्थितविकल्पत्वात् प्रादेर्नित्यं नुम्, प्रालम्भि। द्विकर्मकाणान्तु—

"गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्।
बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मणां च निजेच्छया॥ १॥
प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः।"

गौर्दुह्यते पयः। अजा ग्रामं नीयते। ह्रियते। कृष्यते। उह्यते। बोध्यते माणवकं धर्मः, माणवको धर्ममिति वा। भोज्यते माणवकमोदनः, माणवक ओदनं वा। देवदत्तो ग्रामं गम्यते। अकर्मकाणां कालादिकर्मकाणां कर्मणि भावे च लकार इष्यते। मासो मासं वा आस्यते देवदत्तेन। णिजन्तात्तु प्रयोज्ये प्रत्ययः। मासमास्यते माणवकः।

इति भावकर्मप्रक्रिया।

चिण् एवं णमुल् प्रत्यय पर में रहते लभ् धातु को विकल्प से नुम् आगम होता है। यह विकल्प व्यवस्थित है अतः प्रादि उपसर्ग पूर्वक लभ् का निमित्त सत्ता में नित्य नुम् होता है।

दुहादि १२ एवं नी ह कृष् वह वे १६ धातु द्विकर्मक प्रथम कारक प्रकरण में प्रदर्शन कर चुके हैं, अकथितञ्च से जिनकी कर्मसंज्ञा होती है ये अप्रधान कर्म अर्थात् गौण कर्मवाचक कहे जाते हैं। कर्तुरीप्सिततमं कर्म से जिनकी कर्मसंज्ञा होती है वे प्रधानकर्म कहे जाते हैं। अब यहां शङ्का होती है कि द्विकर्मक धातुओंमें कर्म में प्रत्यय किस कर्म में होता है एतदर्थ व्यवस्थार्थ यह भाष्यकारोक्त कारिका है। वह कहती है कि—

दुह आदि १२ धातुओं से गौण = अप्रधान कर्म में ही प्रत्यय होते हैं। कर्म उक्त होने से अप्रधान कर्मवाचक शब्दों से प्रथमा विभक्ति ही होती है, एवं प्रधान कर्म अनुक्त होने से उनसे द्वितीयान्त प्रयोग ही होता है। नी, ह, कृष् एवं वह से प्रधान कर्म में प्रत्यय हुआ, प्रधान कर्म उक्त होने से उनसे प्रथमान्त रूप, एवं अप्रधान कर्म अनुक्त से द्वितीयान्त प्रयोग होता है। ज्ञानार्थक एवं भक्षणार्थक धातुओं से एवं शब्दकर्मक धातुओं से इच्छाधीन गौण या मुख्य कर्म में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्यय होते हैं। अन्यणिजन्त धातुओं में प्रयोज्य कर्म जो प्रेर्य्य है उसमें लकारादि प्रत्यय होते हैं। उदाहरण—कर्तरि प्रत्यय में गां पयो दोग्धि होता है, कर्मणि प्रत्यय में गो रूप कर्म में प्रत्यय हुआ उससे कर्म उक्त होने से प्रथमा—गौर्दुह्यते पयः। अजा में प्रत्यय अजा ग्रामं नीयते आदि। बुध्यते के योग में इच्छाधीन शब्द प्रयोग से माणवकं धर्मः, या धर्मं माणवकः। ओदनः ओदनं वा भुज्यते। अकर्मक, एवं देश, काल, भाव, गन्तव्य मार्ग वाचक में कर्म में एवं भाव में लकार होना इष्ट है। मासः मासम् आस्यते देवदत्तेन। णिजन्त से प्रयोज्य में प्रत्यय हुआ—मासम् आस्यते माणवकः।

प० श्री बालकृष्णपञ्चोलि विरचित रत्नप्रभा में भावकर्मप्रक्रिया समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया

यदा सौकर्य्यातिशयं द्योतयितुं कर्तृव्यापारो न विवक्ष्यते तदा कारकान्तराण्यपि कर्तृसंज्ञां लभन्ते, स्वव्यापारे स्वतन्त्रत्वात्। तेन पूर्वं करणत्वादिसत्त्वेऽपि सम्प्रति कर्तृत्वात् कर्तरि लकारः। साध्वसिश्छिनत्ति। काष्ठानि पचन्ति। स्थाली पचति। कर्मणस्तु कर्तृत्वविवक्षायां प्राक् सकर्मका अपि प्रायेणाकर्मकास्तेभ्यो भावे कर्तरि च लकारः। पच्यते ओदनेन। भिद्यते काष्ठेन। कर्तरि तु—

जिस समय सुगमता का अतिशय बोधन करने के वास्ते कर्ता में रहने वाले व्यापार की विवक्षा न हो तब अपने व्यापार की स्वतन्त्रता के कारण अन्य कारक भी कर्तृसंज्ञा को प्राप्त होते हैं स्वतन्त्र कर्ता सूत्र से।

सभी कारक कर्तृनिष्ठ व्यापाराधीन है। अब कर्तृनिष्ठ व्यापार की अविवक्षा में अधीनत्व लक्षण बन्धन अन्य कारकों में हट जाने से वे भी स्वव्यापार में स्वतन्त्र हुए हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि पूर्व में (अर्थात् कर्ता के व्यापार विवक्षित दशा में) करण आदि कारकत्व इनमें विद्यमान था तो भी सम्प्रति (कर्तृव्यापाराविवक्षा में) स्वतन्त्रत्व के कारण कर्तृत्व होने से कर्ता में लकार होता है। 'चैत्रः साधु असिना छिनत्ति' यहां चैत्र अच्छी तरह तलवार से क्या काटता है वह तलवार इतनी तेज है की वह स्वयं काटती है, यहां इस विवक्षा में असिः प्रथमान्त कर्तृवाचक हुआ उसमें प्रत्यय। प्रत्यय लकार से वह उक्त होने से प्रथमा हुई, साधु यह क्रियाविशेषण निंत्यनपुंसक कर्मसंज्ञक द्वितीयैकवचन है। "क्रियाविशेषणानां कर्मत्वं नपुंसकैकत्वञ्च' फल भी फलाश्रय व्यपदेशिवद्भाव से होता है। एतन्मूलक यह वचन है अपूर्व नहीं है।

सर्वत्र करण व्यापार कर्तृ व्यापाराधीन ही है, अतः कर्तृव्यापार की विवक्षा में सौकर्यादि की अविवक्षा में तो असिशब्द से तृतीयान्त प्रयोग होता है। छिद्धात्वर्थ—द्विधाभवनानुकूलव्यापार है। 'काष्ठैः पचन्ति मनुष्याः' यहां भी काष्ठ में पूर्वोक्त क्रम से कर्तृव्यापार की अविवक्षा करके काष्ठ को कर्ता बनाकर उसमें लकार विधान कर लकार से काष्ठ उक्त है, अतः प्रथमा। चैत्रः स्थाल्यां पचति। स्थाली में अधिकरणत्व प्रथम हैं कर्तृत्वविवक्षा में उसमें लकार हुआ। स्थाली पचति। कर्म्को कर्तृत्व की यदि विवक्षा करेंगें तो प्रथम जो धातु सकर्मक थे वे इस समय प्रायः अकर्मक होंगें। तब उनसे भाव में या कर्ता में 'लः कर्मणि' से लकार होने पर पच्यते ओदनेन, भिद्यते काष्ठेन हुआ। भाव में प्रायः इस लिए दिया है कि द्विकर्मक धातुओं में एक कर्म में कर्तृत्व विवक्षा करने पर भी अन्य कर्म से वह सकर्मक धातु होने से वहां भाव या कर्ता में प्रत्यय न होकर कर्म में ही प्रत्यय = लकार होता है। यह प्रायः का फल है कर्म को कर्तृत्व विवक्षा में भाव में प्रत्यय का उदाहरण दे चुके हैं, अकर्मक धातु से कर्ता में प्रत्यय होने पर कार्य विशेष का अब निर्देश भविष्यत् सूत्र से करते हैं—

२७६७ कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः ३।१।८७।

कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत् स्यात्। कार्यातिदेशोऽयम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेन यगात्मनेपदचिण्चिण्वदिटः स्युः । कर्तुरभिहितत्वात् प्रथमा । पच्यते ओदनः । भिद्यते काष्ठम् । अपाचि । अभेदि ।

ननु भावे लकारे कर्तुर्द्वितीया स्याद् अस्मादतिदेशादिति चेन्न, लकारवाच्य एव हि कर्ता कर्मवत् । लिङ्थाशिष्यङिति द्विलकारकाल्ल इत्यनुवृत्तेः । भावे प्रत्यये च कर्तुर्लकारेणानुपस्थितेः । अत एव कृत्यक्तखलर्थाः कर्मकर्तरि न भवन्ति किन्तु भावे एव । भेत्तव्यं कुसूलेन ।

ननु पचिभिद्योः कर्मस्था क्रिया—विक्लित्तिर्द्विधाभवनञ्च, सैवेदानीं कर्तृस्था न तु तत्तुल्या ?, सत्यम्, कर्मत्वकर्तृत्वावस्थाभेदोपाधिकं तत्समानाधिकरणक्रियाया भेदमाश्रित्य व्यवहारः । कर्मणेति किम्, करणाधिकरणाभ्यां तुल्यक्रिये पूर्वोक्ते साध्वसिरित्यादौ मा भूत् ।

जिस कर्ता की क्रिया कर्मस्थ क्रिया से समान हो वह कर्ता कर्मवत् होता है । यह आरोप बोधक अतिदेश शास्त्र है । अतिदेश में दो पक्ष है । शास्त्रातिदेश एवं कार्यातिदेश । शास्त्रातिदेश अमुख्य पक्ष है, कार्यातिदेश ही मुख्य पक्ष है । अतः यही सूत्र कर्मवत् अतिदेश से यक्, आत्मनेपद, चिण् एवं चिण्वदिट् इन कार्यों को करता है । कार्य के लिए शास्त्र का अतिदेश गौण है । जिसके लिए होता है वह मुख्य होता है । कर्म की अविवक्षा में अकर्मक धातु से भाव में लकार के रूप कह चुके हैं अब अकर्मक से कर्ता में लकार कर लकार से कर्ता उक्त है उसका उदाहरण देते हैं पच्यते ओदनः । भिद्यते काष्ठम् ।

अब यहां शङ्का करते हैं कि भाव में अकर्मक धातु से लकार होने पर भी इस अतिदेश से कर्ता से अर्थात् कर्तृवाचक शब्द से द्वितीया विभक्ति होनी चाहिये ?, यह शङ्का न करनी चाहिये, क्योंकि 'व्यत्ययो बहुलिलड्याशिष्यङ्' इस प्रकार वह संहिता पाठ में वे दोनों सूत्र पठित है । उससे दो लकार घटित 'ल्ला' में से एक लकार की अनुवृत्ति करने के कारण यहां लकारवाच्य जो कर्ता वह कर्मवत् होता है, भाव में लकार रूप प्रत्यय के विधान करने पर लकार से भावरूप अर्थ वाच्य है कर्तृरूप अर्थ अवाच्य के कारण अनुपस्थित ही है । अतः लकारनिष्ठवाचकतानिरूपिता वाच्यता कर्ता में नहीं किन्तु भावार्थ में ही है । इस कारण कर्मकर्ता में कृत्य प्रत्यय, क्तप्रत्यय एवं खलर्थक प्रत्यय नहीं होते हैं । किन्तु वे केवल भाव में ही होते हैं वहां यथा भेत्तव्यं कुसूलेन ।

अब यहां शङ्का करते हैं कि पच् धातु का अर्थ—विक्लित्तिजनक व्यापार है । एवं भिद् धात्वर्थ—द्विधाभवनानुकूल व्यापार है, सौकर्यविवक्षा में कर्तृव्यापार अविवक्षित करने पर तण्डुल या काष्ठ में कार्तृत्व की विवक्षा हुई है, अर्थात् विक्लित्ति का आश्रय तण्डुल कर्ता हुआ एवं द्विधाभवन का आश्रय कर्ता हुआ तो भी कर्मस्थ विक्लित्ति या द्विधाभवन सम्प्रति कर्तृस्थ ही है, तुल्यता व्यवहार भेदघटित सादृश्य प्रयोजक धर्मयुक्त में होता है एक में नहीं । सैवेदानीं कर्तृस्था नतु तत्तुल्या" । इस शङ्का निरासार्थ यत्न—कर्तृस्थत्वविशिष्ट विक्लित्ति एवं द्विधाभवन कर्मस्थत्वविशिष्ट विक्लित्ति एवं द्विधाभवन इन में विशेषणतया भासमान जो कर्तृत्व एवं कर्मत्व रूप उपाधिद्वय तद्भिन्न से वह कर्मद्वय भी भिन्न कहे जायेंगे । एक ही पदार्थ उपाधि भेद से भिन्न-भिन्न प्रतीयमान होता है "एकोऽयम् आत्मा = उदकनाम उपाधिभेदाद् भिन्नं भिन्नं भवति अन्यद् उष्णम् अन्यत् शीतम् अन्यत् अनुष्णाशीतम्" इस भाष्योक्ति का अवलम्बन से स्पष्ट है कि उपाधि भेद का प्रयोजक है । उपाधि-शब्द संस्कृत में पुंल्लिङ्ग है, स्त्रीलिङ्ग नहीं है । अर्थात् कर्तृस्थत्ववृत्ति विक्लित्ति-भिन्ना, कर्मस्थविशिष्ट विक्लित्ति-भिन्ना आदि भेद व्यवहार करना चाहिये ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्मणा तुल्यक्रिया कहने से करण एवं अधिकरण कारक से तुल्य क्रिया जहां रहें वहां कर्मवद् भाव के निषेधार्थ सूत्र में कर्म ग्रहण है। यथा असिः छिनत्ति, स्थाली पचति यहां कर्मवद् भाव न हुआ।

किञ्च कर्तृस्थक्रियेभ्यो मा भूत्। गच्छति ग्रामः। आरोहति हस्ती। 'अधिगच्छति शास्त्रार्थः स्मरतिः श्रद्दधाति वा।' यत्र कर्मणि क्रियाकृतो विशेषो दृश्यते यथा पक्वेषु तण्डुलेषु, यथा वा च्छिन्नेषु काष्ठेषु तत्र कर्मस्था क्रिया नेतरत्र। नहि पक्वापक्वतण्डुलेष्विव गतागतग्रामेषु वैलक्षण्यमुपलभ्यते। करोतिरुत्पादनार्थः। उत्पत्तिश्च कर्मस्था। तेन करिष्यते घट इत्यादि। यत्नार्थत्वे तु नैतत् सिध्येत्। ज्ञानेच्छादिवद् यत्नस्य कर्तृस्थत्वात्। तेनानुव्यवस्यमानेऽर्थ इति व्याख्यातम्। कर्तृस्थत्वेन यगभावाच्छ्यनि कृते ओकारलोपे च रूपसिद्धेः, ताच्छील्यादावयं चानश्, न त्वात्मनेपदम्।

❀ सकर्मकाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः ❀ अन्योऽन्यं स्पृशतः। अजा ग्रामं नयति। ❀ दुहिपच्योर्बहुलं सकर्मकयोरिति वाच्यम् ❀।

कर्तृस्थ क्रियावान् धातुओं से भी कर्मवद् भाव नहीं होता है। चैत्रो ग्रामं गच्छति यहां ग्रामः स्वयमेव गच्छति यहां कर्मवद्भाव न हुआ, आरोहति हस्ती यहां भी कर्तृस्थभावक होने से कर्मवद्भाव न हुआ। एवं अधिगच्छति शास्त्रार्थः आदि में भी कर्मवद्भाव न हुआ।

जहां कर्म में क्रियाजन्य विशेषता की प्रतीति रहें वहां ही कर्मस्थ क्रियात्व व्यवहार से कर्मवद्भाव होता है। पच् धातुजन्य विक्लित्ति से पक्व तण्डुल में विशेषता की प्रतीति है। अपक्व में काठिन्यानुभूति होती है। एवं द्विधाभवन रूप फलाश्रय काष्ठ में क्रियाकृत विलक्षणता की प्रतीति है जिससे पच् धातु एवं भिद् आदि धातु कर्मस्थक्रियक है वहां कर्मवद्भाव हुआ। संयोगरूपफलाश्रय ग्राम एवं संयोगाभावाश्रय ग्राम में क्रियाकृत विलक्षणता की प्रतीति न होने से वह कर्तृस्थक्रियक है।

कृञ् धात्वर्थ—उत्पत्तिजनक व्यापार अर्थ है। फलरूप उत्पत्ति कर्मस्थ है। अतः 'करिष्यते घटः' यहां कर्मवद् भाव हुआ। नैयायिक मत में कृञ् धात्वर्थ यत्न है वह यत्न कर्तृस्थ है वहां कर्मवद्भाव न होगा यह आपत्ति उनके मत में है। यथा ज्ञान, इच्छा आदि कर्तृस्थ है वैसा ही यत्न भी कर्तृस्थ होने से कर्तृस्थ भावक होता है। अतः यत्न अर्थ नहीं कृञ् का है। ज्ञान के बाद पूर्व ज्ञान के समानाकारक जो ज्ञान होता है उस अर्थ में 'अनुव्यवस्यमान' शब्द का प्रयोग होता है वहां कर्तृस्थभावक होने से यक् एवं आत्मनेपद का अभाव से श्यन् करने के पश्चात् ओकार का लोप एवं चानश् प्रत्यय ताच्छील्य अर्थ में हुआ है आत्मनेपद नहीं है।

सकर्मक धातुओं के कर्ता को। कर्मवद्भाव नहीं होता है। यथा देवदत्त यज्ञदत्त को स्पर्श करता है एवं यज्ञदत्त देवदत्त को स्पर्श करता है। यहां कर्मवद्भाव से अन्योऽन्यं स्पृशतः। अजा ग्रामं नयति। सकर्मक पच् धातुवाच्य क्रिया कर्ता उसको कर्मवद्भाव नहीं होता है।

२७६८ न दुहस्नुनमां यक्चिणौ ३।१।८९।

एषां कर्मकर्तरि यक्चिणौ न स्तः। दुहेरनेन यक एव निषेधः। चिण् तु विकल्पिष्यते। शप्, लुक्, गौः पयो दुग्धे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुह्, स्नु एवं नम् धातु इनको कर्मकर्ता में यक् एवं चिण् नहीं होते हैं। इस सूत्र से दुह् को केवल यक् का ही निषेध होता है, चिण् तो विकल्प से होता ही है। दुग्धे में शप् एवं उसका लुक् है कर्म गोमें कर्तृत्व की विवक्षा है। गौः पयो दुग्धे।

२७६९ अचः कर्मकर्तरि ३।१।६२।

अजन्तात् च्लेश्चिण् वा स्यात् कर्मकर्तरि तशब्दे परे। अकारि। अकृत।

कर्मकर्ता में 'त' शब्द पर में रहते अजन्त धातु से पर च्लि को चिण् विकल्प से होता है। अकारि। अकृत। अकारि घटः कुलालेन। यहां कर्मकर्ता नहीं अतः चिण् हुआ नित्य ही।

२७७० दुहश्च ३।१।६३।

अदोहि, पक्षे क्सः, लुग्वेति पक्षे लुक्। अदुग्ध, अधुक्षत। उदुम्बरः फलं पच्यते। ॐसृजियुज्योः श्यंस्तुॐ। अनयोः सकर्मकयोः कर्ता बहुलं कर्मवत् यगपवादश्च श्यन् वाच्य इत्यर्थः। ॐसृजेः श्रद्धोपपन्ने कर्तर्येवेति वाच्यमॐ। सृज्यते स्रजं भक्तः। श्रद्धया निष्पादयतीत्यर्थः। असर्जि। युज्यते ब्रह्मचारी योगम्। ॐ भूषाकर्मकिरादिसनां चान्यत्रात्मनेपदात् ॐ। भूषावाचिनां किरादीनां सन्नन्तानाञ्च यक्चिणौ। चिण्वदिट् च नेति वाच्यमित्यर्थः। अलङ्कुरुते कन्या। अलमकृत। अवकिरते हस्ती। अवाकीर्ष्ट। गिरते। अगीर्ष्ट। आद्रियते। आदृत। किरादिस्तुदाद्यन्तर्गणः। चिकीर्षते कटः। अचिकीर्षिष्ट। इच्छायाः कर्तृस्थत्वेऽपि करोतिक्रियापेक्षमिह कर्मस्थक्रियात्वम्।

कर्मकर्ता मे तशब्द पर में रहते दुह धातु से उत्तर विकल्प से च्लि को चिण् आदेश होता है। अदोहि। पक्ष में 'शल इगुपधायाः' से क्सादेश होता है, उसका 'लुग्वा' सूत्र से विकल्प करके लोप होता है। अदुग्ध, अधुक्षत। उदुम्बरः फलं पच्यते। (कालः उदुम्बरं फलं पचति-कर्ता में रूप है) गौण कर्म जो उदुम्बर है उसमें कर्तृत्व की विवक्षा में यह उदाहरण है। सकर्मक सृज् एवं युज् धातु का कर्ता कर्मवत् होता है विकल्प से एवं यक् का अपवाद श्यन् होता है।

सृज धातु का कर्ता श्रद्धायुक्त होने पर कर्मवत् होता है एवं श्यन् होता है। सृज्यते स्रजं भक्तः। वह भक्त श्रद्धा से माला को बनाता है। लुङ् में असर्जि। युज्यते ब्रह्मचारी योगम्।

भूषावाचक धातु, कृ आदि धातु एवं सन्प्रत्ययान्त जो धातु उन से उत्तर यक् चिण् चिण्वदिट् नहीं होता है। 'स कन्याम् अलङ्करोति' कर्मकर्ता में—अलङ्कुरुते कन्या। अलम् अकृत लुङ् में। अवकिरते हस्ती। गिरते। आद्रियते। कृ आदि धातु तुदादि है। चिकीर्षते घटः। यद्यपि इच्छा कर्तृस्थ है, तथापि करोति-क्रिया की अपेक्षा वह कर्मस्थ क्रियात्व है। आत्मनेपद अत एव चिकीर्षते में हुआ।

२७७१ न रुधः ३।१।६४।

अस्माच्च्लेश्चिण् न। अवारुद्ध गौः। कर्मकर्तरीत्येव। अवारोधि गौर्गोपेन।

रुध् धातु से पर जो च्लि उसको कर्मकर्ता में चिण् नहीं होता है। कर्मकर्ता से भिन्न में च्लि को चिण् आदेश होता ही है। यथा—अवारोधि गौर्गोपेन। यह शुद्ध कर्मणिप्रयोग है।

२७७२ तपस्तपःकर्मकस्यैव ३।१।८८।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्ता कर्मवत् स्यात। विध्यर्थमिदम्। एवकारस्तु व्यर्थ एवेति वृत्त्यनुसारिणः। तप्यते तपस्तापसः। अर्जयतीत्यर्थः। 'तपोऽनुतापे च' इति चिण्निषेधात् सिच्। अतप्त। तपःकर्मकस्येति किम्, उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः।

न दुहस्नुनमां यक्चिणौ ३।१।८९।

प्रस्नुते। प्रास्नाविष्ट। प्रास्नोष्ट। नमते दण्डः। अनंस्त। अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र नमिः। ❀ यक्चिणोः प्रतिषेधे हेतुमण्णिश्रिन्ह्रूस्रामुपसंख्यानम् ❀। कारयते। अचीकरत। उच्छ्रयते दण्डः। उदशिश्रियत। चिण्वदिट् तु स्यादेव। कारिष्यते। उच्छ्रायिष्यते। ह्रूते कथा। अवोचत। भारद्वाजीयाः पठन्ति—

❀ णिश्रन्थिग्रन्थिब्रूस्यात्मनेपदाकर्मकाणामुपसंख्यानम् ❀।

पुच्छमुदस्यति—उत्पुच्छयते गौः। अन्तर्भावितण्यर्थतायां उत्पुच्छयते गाम्। पुनः कर्तृत्वविवक्षायाम्—उत्पुच्छयते गौः। उदपुपुच्छत।

यक्चिणोः प्रतिषेधाच् छप्चङौ। ग्रन्थिग्रन्थ्योराधृषीयत्वाण्णिजभावपक्षे ग्रहणम्। ग्रन्थति ग्रन्थम्। ग्रन्थति मेखलां देवदत्तः। ग्रन्थते ग्रन्थः। अग्रन्थिष्ट। ग्रन्थते। अग्रन्थिष्ट। क्रैयादिकयोस्तु ग्रथ्नीते, ग्रथ्नीते स्वयमेव। विकुर्वते सैन्धवाः=वल्गन्तीत्यर्थः। वेः शब्दकर्मणः। अकर्मकाच्चेति तङ्। अन्तर्भावितण्यर्थस्य पुनः प्रेषणत्यागे विकुर्वते सैन्धवाः। व्यकारिष्ट। व्यकारिषाताम्। व्यकारिषत। व्यकृत। व्यकृषाताम्। व्यकृषत।

तप है कर्म जिसका ऐसा जो तप् धातु उसका जो कर्ता वह कर्मवत् होता है। यह सूत्र विध्यर्थक है। सूत्र में एवकार व्यर्थ ही है ऐसा माधवादि आचार्य कहते हैं। तप्यते तपस्तापसः। यहां तप् धातु अर्जनार्थक है। 'तपोऽनुतापे' सूत्र से चिण् निषेध के कारण सिच् होकर उसका लोप से 'अतप्त'। 'तपःकर्मकस्य' यह सूत्र में क्यों किया ?, 'तपति सुवर्णं सुवर्णकारः' यहां कर्मवद् भाव न हुआ। यह फल है उसका। प्रस्नुते प्रास्नाविष्ट प्रास्नोष्ट आदि में 'न दुहस्नुनमाम्' से यक् एवं चिण् का निषेध हुआ। नमते दण्डः। यहां ण्यर्थ-प्रेरणा धातु के अर्थ में कुक्षिप्रविष्ट है नमना अर्थ नहीं नमाना अर्थ है।

यक् एवं चिण् प्रत्यय के प्रतिषेध विषय में हेतुमति च से विहित णिच् तदन्त धातु, एवं श्रिञ् इनका उपसंख्यान करना, अर्थात् इन से भी यक् एवं चिण् नहीं होता है। कारयते, अचीकरत, आदि।

भारद्वाज गोत्र वाले आचार्य पढ़ते हैं कि—णिजन्तधातु, ग्रन्थ, ग्रन्थ, ह्रूञ् एवं आत्मनेपदीय जो अकर्मक धातु इनसे यक् एवं चिण् का प्रतिषेध होता है। पुच्छम् उदस्यति = इतस्ततो विक्षिपति। यहां उत् पूर्वक अस् क्षेपणे का अर्थ क्षेपणजनक व्यापारानुकूल व्यापार अर्थ है, अर्थात् णिजर्थ व्यापार अस् धातु वाच्यार्थ में उदरस्थ है। फेंकना अर्थ नहीं फेंकवाना अर्थ शुद्ध धातु का अर्थ है। गाम् उत्पुच्छयते। कर्तृत्व विवक्षा में उत्पुच्छयते गौः।

यक् एवं चिण् के प्रतिषेध के कारण शप् एवं चङ् होगा। ग्रन्थ एवं ग्रन्थ धातु आधृषीयत्व के कारण णिच् के अभाव पक्ष में यह प्रतिषेध है। क्रयादि पठित इन दो धातुओं के ग्रथ्नीते ग्रथ्नीते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूप हुए। 'वेः शब्दकर्मणः' 'अकर्मकाच्च' इनसे आत्मनेपद हुआ। कृञ् धातु का अन्तर्भावित ण्यर्थ से उत्पत्तिजनक व्यापारानुकूल व्यापारवाचक मानकर उसमें प्रेरणांश व्यापार का त्याग करने पर विकुर्वते सैन्धवाः ऐसा प्रयोग हुआ।

२७७३ कुषिरजोः प्राचां श्यन् परस्मैपदञ्च ३।१।९०।

अनयोः कर्मकर्तरि न यक् किन्तु श्यन् परस्मैपदञ्च। आत्मनेपदापवादः। कुष्यति, कुष्यते वा पादः स्वयमेव। रज्यति-रज्यते वस्त्रम्। यगविषये तु नास्य प्रवृत्तिः। कोषिषीष्ट। रंक्षीष्ट।

❀ इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ❀

कुष् एवं रञ्ज धातु के कर्मकर्ता में यक् न हो किन्तु विकल्प से श्यन् एवं परस्मैपद होता है। यह सूत्र आत्मनेपद का बाधक है। कुष्यति कुष्यते पादः। रज्यति रज्यते वस्त्रम्। यक् के अविषय में इसकी प्रवृत्ति नहीं है।

प० श्री बालकृष्णपञ्चोलि विरचित रत्नप्रभा में कर्मकर्तृ प्रक्रिया समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ लकारार्थप्रक्रिया

२७७४ अभिज्ञावचने लृट् ३।२।११२।

स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातोर्लृट् स्यात्। लङोऽपवादः। स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः। एवं बुध्यसे चेतयसे इत्यादियोगेऽपि, तेषामपि प्रकरणादिवशेन स्मृतौ वृत्तिसम्भवात्।

उपपद स्मृतिबोधक होने पर भूत अनद्यतन कालवृत्ति क्रियावाचक धातु से लङ् को बाधकर लृट् लकार होता है। हे कृष्ण आपको स्मरण है कि हमलोग गोकुल में रहते थे—वत्स्यामः। इसी प्रकार बुध्यसे चेतयसे इत्यादि के योग में भी उनका भी प्रकरणवश से स्मृति अर्थ में वृत्ति का सम्भव है।

२७७५ न यदि ३।२।११३।

यद्योगे उक्तं न। अभिजानासि कृष्ण यदु वने अभुञ्ज्महि।

यत्पदार्थ के योग में स्मृतिबोधक उपपद रहने पर भूतानद्यतन कालवृत्ति क्रियावाचक धातु से लृट् नहीं होता है। अर्थात् यथाप्राप्त लङ् ही होता है। अभुञ्ज्महि।

२७७६ विभाषा साकाङ्क्षे ३।२।११४।

उक्तविषये लृङ् वा स्यात्, लक्ष्यलक्षणभावेन साकाङ्क्षश्चेद् धात्वर्थः। स्मरसि कृष्ण वने वत्स्यामस्तत्र गाश्चारयिष्यामः। वासो लक्षणं चारणं लक्ष्यम्। पक्षे लङ्। यच्छब्दयोगेऽपि 'न यदि' इति बाधित्वा परत्वाद् विकल्पः।

उपपद स्मृतिबोधक होने पर लक्ष्यलक्षणभाव की प्रतीति रहते अर्थात् ज्ञाप्य ज्ञापक भाव के द्वारा धात्वर्थ यदि साकांक्ष हो तो विकल्प से लृट् होता है। पक्ष में लङ् होता है। ज्ञानजनक ज्ञानविषयत्वम् = लक्षणत्वम्। ज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वं लक्ष्यत्वम्। लक्ष्य को ज्ञाप्य भी कहते हैं लक्षण को ज्ञापक कहते हैं। वनाधिकरणवासज्ञानजन्यज्ञान गोकर्मक चारण में है। अतः चारण लक्ष्य है। वास लक्षण है। यत् पदार्थ के योग में भी 'न यदि' को यह परत्व के कारण बाध करके विकल्प से लृट् करता है।

परोक्षे लिट् ३।२।११५।

चकार। उत्तमपुरुषे चित्तविक्षेपादिना पारोक्ष्यम्। सुप्तोऽहं किल विललाप। "बहु जगाद पुरस्तात् तस्य मत्ता किलाहम्"।

* अत्यन्तापह्नवे लिट् वक्तव्यः *। कलिङ्गेष्ववात्सीः ?, नाहं कलिङ्गान् जगाम। भूत अनद्यतन परोक्षकाल में होने वाली क्रियाओं का साधन में लिट्।

विमर्श—क्रियाएँ यावद् परोक्ष हैं अतः परोक्षे अव्यावर्तक क्रियाओं में है किन्तु क्रियाओं का साधन का विशेषण परोक्ष है। "क्रिया नामेयमत्यन्तापरिदृष्टा पूर्वापरीभूतावयवा नहि पिण्डीभूता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विज्ञातुं शक्या" यह भाष्योक्ति है = सभी क्रियाएँ परोक्ष हैं। चैत्रः पुस्तकं चकार। उत्तम पुरुष में स्वयं साधन स्व का प्रत्यक्ष है परोक्ष नहीं, किन्तु चित्त के विक्षेप से स्वक्रिया का साधन स्वयं भी परोक्ष है ऐसी विवक्षा से उत्तम पुरुष व्यवस्था करनी चाहिये। या प्रधानभूत तत् तत् कालिक राजाधिकर्तृक क्रियावृत्ति परोक्षत्वारोप से उत्तम पुरुष व्यवस्था समझनी चाहिए। यथा—"व्यातेने किरणावलिमुदयनः" यहां बहुतरयत्नसाध्यग्रन्थनिर्माणरूप व्यापार में चित्तविक्षेपादि से परोक्षत्व सम्भव नहीं है, अतः अन्यगतपरोक्षत्व अन्यत्र आरोपित करके 'सिद्धस्य गतिश्चिन्तनीया' से उपपत्ति करनी चाहिये।

शूर्पणखा कह रही है कि कामातुर होकर मैंने उस लक्ष्मण के सम्मुख बहुत कुछ कहा। यहां 'जगद अहम्' हुआ। अत्यन्त अपलाप में लिट् होता है। तुमने कलिङ्ग में वास किया था? इस प्रश्न के उत्तर में वह कहता है कि मैं कलिङ्गदेश में गया ही नहीं, गमनाभावप्रयोज्य वास का अभाव स्वतःसिद्ध हुआ। यहां यह अत्यन्त अपलापोक्ति है।

२७७७ हशश्वतोर्लङ् च ३।२।११६।

अनयोरुपपदयोर्लिङ्विषये लङ् स्यात्। चाल्लिट्। इति हाकरोत्, चकार वा, शश्वदकरोत् चकार वा।

'ह' एवं 'शश्वत्' शब्द उपपद में रहने पर लिङ् के विषय में लङ् लकार होता है, चकार से लिट् होता है।

२७७८ प्रश्ने चासन्नकाले ३।२।११७।

प्रष्टव्यः प्रश्नः। आसन्नकाले पृच्छ्यमानेऽर्थे लिङ्विषये लङ्लिटौ स्तः। अगच्छत् किम्, जगाम किम्, अनासन्ने तु कंसं जघान किम्।

समीप काल में जिज्ञासाविषयीभूत अर्थ में धातु से लिट् के विषय में लङ् एवं लिट् होता है। अनासन्न में तो लिट् ही होता है।

२७७९ लट् स्मे ३।२।११८।

लिटोऽपवादः। यजति स्म युधिष्ठिरः।

स्मशब्द उपपद में रहते धातु से लिट् के अर्थ में लट् होता है। यह सूत्र लिट् का अपवाद है। इयाज अर्थ में यजतिस्म हुआ।

२७८० अपरोक्षे च ३।२।११९।

भूतानद्यतने लट् स्यात् स्मयोगे। एवं स्म पिता ब्रवीति।

परोक्षभिन्न भूत अनद्यतन अर्थ में स्म-शब्द के योग में धातु से उत्तर लट् होता है। यह बात पिता ने कही थी = एवं स्म पिता ब्रवीति।

२७८१ ननौ पृष्टप्रतिवचने ३।२।१२०।

अनद्यतने परोक्ष इति निवृत्तम्। भूते लट् स्यात्। अकार्षीः किम्, ननु करोमि भोः।

अनद्यतन परोक्ष की यहां से निवृत्ति हुई। ननु शब्द के योग में प्रश्नोत्तर अर्थ में भूतकाल में धातु के उत्तर लट् होता है। अकार्षीः किम्, ननु करोमि भोः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२७८२ नन्वोर्विभाषा ३।२।१२१।

अकार्षीः किम्, न करोमि। नाकार्षम्। अहं नु करोमि। अहं न्वकार्षम्।

प्रत्युत्तर अर्थ में न एवं नु शब्दार्थ के योग में भूतकाल में धातु से लट् विकल्प से होता है। क्या तुमने वह कार्य किया ?, अकार्षीः किम्, न करोमि = नहीं किया। पक्ष में लुङ्—नाकार्षम्। अहं नु करोमि। पक्ष में अहं न्वकार्षम्।

२७८३ पुरि लुङ् चास्मे ३।२।१२२।

अनद्यतनग्रहणं मण्डूकप्लुत्यानुवर्तते। पुराशब्दयोगे भूतानद्यतने विभाषा लुङ्, चाल्लट्, न तु स्मयोगे। पक्षे यथाप्राप्तम्। वसन्तीह पुरा छात्राः, अवात्सुः, अवसन् ऊषुर्वा। 'अस्मे' किम्, यजति स्म पुरा। भविष्यतीत्यनुवर्तमाने—

मण्डूकप्लुति से यहां अनद्यतन ग्रहण की अनुवृत्ति होती है। पुरा-शब्द के योग में भूत अनद्यतन अर्थ में विकल्प से लुङ् होता है, सूत्र में चकार से लट् भी होता है, किन्तु स्म के योग में नहीं होता है। शब्द का शब्द के साथ योग = सम्बन्ध नहीं है। अतः शब्दार्थ का शब्दार्थ के साथ सम्बन्ध है। अथवा अर्थ द्वारा शब्द का शब्द से योग है। लुङ् और लट् के अभाव में पक्ष में लङ् एवं परोक्ष में लिट् होता है। लुङ्, लङ्, लिट्, लट् चार लकारों का प्रयोग होता है। स्म-योग में केवल लट् का ही प्रयोग। 'भविष्यति गम्यादयः' सूत्र से भविष्यति की अनुवृत्ति होती है। अग्रिम सूत्र में—

२७८४ यावत्पुरानिपातयोर्लट् ३।३।४।

यावद् भुङ्क्ते। पुरा भुङ्क्ते। निपातावेतौ निश्चयं द्योतयतः। निपातयोः किम्, यावद् दास्यते तावद् भोक्ष्यते। करणभूतया पुरा यास्यति।

निपातसंज्ञा युक्त यावत् एवं पुरा के योग में भविष्यत् काल में लट् होता है। निपात संज्ञक यावत् एवं पुरा निश्चयार्थक है। निपातसंज्ञक न होने पर अर्थात् पुर् का करण में तृतीया से निष्पन्न पुरा के योग में इसकी प्रवृत्ति न होने से लृट् ही होता है। इतना अर्थ में यावत्। तितना अर्थ में तावत् के योग में इस सूत्र की अप्रवृत्ति है। यावद् दास्यते, तावद् भोक्ष्यते। करण तृतीयान्त पुरा के योग में यास्यति यही होता है।

२७८५ विभाषा कदाकर्ह्योः ३।३।५।

भविष्यति लट् वा स्यात्। कदा कर्हि वा भुङ्क्ते भोक्ष्यते भोक्ता वा।

कदा एवं कर्हि शब्द के योग में भविष्यत्काल में विकल्प से लट् होता है। लट्, लृट्, लुट् तीन लकारान्त प्रयोग होता है।

२७८६ किंवृत्ते लिप्सायाम् ३।३।६।

भविष्यति लङ् वा स्यात्। कं कतरं कतमं वा भोजयसि, भोजयिष्यसि वा। लिप्सायां किम्, कः पाटलिपुत्रं गमिष्यति।

किम् शब्द से निष्पन्न जो शब्द तदर्थ के योग में उत्कट लालच रूप अर्थ में भविष्यत् काल में धातु से विकल्प से लट् होता है। लट् लृट् लुट् लकारान्त का प्रयोग लिप्सा में हुआ। जहां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिप्सा अर्थ नहीं वहां भविष्यत् में लृट् लकार होता है। कः प्रश्नार्थक है, पटना कौन जायगा। कः पाटलिपुत्रं गमिष्यति।

२७८७ लिप्स्यमानसिद्धौ च ३।३।७।

लिप्स्यमानेनान्नादिना स्वर्गादेः सिद्धौ गम्यमानायां भविष्यति लट् वा स्यात्। योऽन्नं ददाति, दास्यति, दाता वा स स्वर्गं याति, यास्यति, याता वा।

लिप्स्यमान अन्नादि से स्वर्गादि की सिद्धि गम्यमान होने पर भविष्यत् काल में विकल्प से लट् होता है। उदाहरणार्थ स्पष्ट है।

२७८८ लोडर्थलक्षणे च ३।३।८।

लोडर्थः = प्रैषादिर्लक्ष्यते येन तस्मिन्नर्थे वर्तमानाद् धातोर्भविष्यति लड् वा स्यात्। कृष्णश्चेद् भुङ्क्ते त्वं गाश्चारय। पक्षे लुट्लृटौ।

जिससे लोडर्थ जो प्रैषादि वद लक्षित हो उस अर्थ में विद्यमान जो धातु उससे भविष्यत् काल में विकल्प से लट् होता है। पक्ष में लुट् एवं लट् भी होता है।

२७८९ लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके ३।३।९।

ऊर्ध्वं मुहूर्तात् भवः ऊर्ध्वमौहूर्तिकः। निपातनात् समासः उत्तरपदवृद्धिश्च। ऊर्ध्वमौहूर्तिके भविष्यति लोडर्थलक्षणे वर्तमानाद् धातोर्लिङ्लटौ वा स्तः। मुहूर्तादुपरि उपाध्यायश्चेदागच्छेत् आगच्छति, आगमिष्यति, आगन्ता वा, अथ त्वं छन्दोऽधीष्व।

ऊर्ध्वं मुहूर्तात् भव इस विग्रह में ठक् उत्तरपद की वृद्धि से रूपसिद्धि। निपातन से समास एवं निपातन से ही उत्तरपद के आदि अच् की वृद्धि हुई है।

ऊर्ध्वं मुहूर्त से उत्पन्न = मुहूर्त की अपेक्षा अधिक काल में लोडर्थ प्रैषादि अर्थ प्रतीयमान हो तो धातु से भविष्यत्काल में विकल्प करके लिङ् एवं लट् होता है।

२७९० वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा ३।३।१३१।

समीपमेव सामीप्यम्। स्वार्थे ष्यञ्। वर्तमाने लडित्यारभ्य 'उणादयो बहुलम्' इति यावत् येनोपाधिना प्रत्यया उक्तास्ते तथैव वर्तमानसमीपे भूते भविष्यति च वा स्युः। कदाऽऽगतोऽसि, अयमागच्छामि, अयमागमम्। कदा गमिष्यसि, एष गच्छामि, गमिष्यामि वा।

सामीप्य में स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय कर समीपमेव सामीप्यम् = समीप अर्थ ही हुआ। 'वर्तमाने लट्' से 'उणादयो बहुलम्' इस सूत्र तक जिन जिन धातुओं के उत्तर जो जो प्रत्यय विहित है वे समस्त प्रत्यय वर्तमान समीप भूतकाल में एवं वर्तमानसमीप भविष्यत् काल में विकल्प से होते हैं।

२७९१ आशंसायां भूतवच्च ३।३।१३२।

'वर्तमानसामीप्ये' इति नानुवर्तते। भविष्यति काले भूतवद् वर्तमानवच्च प्रत्यया वा स्युराशंसायाम्। देवश्चेदवर्षीत्, वर्षति वर्षिष्यति वा, धान्यमवाप्स्म,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वपामः, वप्स्यामो वा। 'सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः' तेन लङ्-लिटौ न।

इस सूत्र में 'वर्तमानसामीप्ये' की अनुवृत्ति नहीं है। भविष्यत् काल में भूतवत् एवं वर्तमान सदृश प्रत्यय विकल्प से आशंसा में होते हैं। यहां भूतवत् से सामान्य भूतत्व का अतिदेश होता है, भूतत्वव्याप्य अनद्यतनपरोक्षभूतत्व या अनद्यतन भूतत्व का अतिदेश नहीं होता है। परिभाषा है—"सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः"। अतः इस सूत्र के विषय में लिट् एवं लङ् लकार नहीं होते हैं।

२७९२ क्षिप्रवचने लृट् ३।३।१३३।

क्षिप्रपर्याये उपपदे पूर्वविषये लृट् स्यात्। वृष्टिश्चेत् क्षिप्रमाशु त्वरितं वा आयास्यति शीघ्रं वप्स्यामः। नेति वक्तव्ये लृङ् ग्रहणं लुटोऽपि विषये यथा स्यात्। श्वः शीघ्रं वप्स्यामः।

क्षिप्र के पर्यायवाचक शब्द शीघ्र, आशु, त्वरित, क्षिप्र, द्रुत, सत्वर आदि यदि उपपद में रहे तो पूर्व विषय में = भविष्यत् काल में लृट् होता है, सूत्र में 'न' कहते लृट् ग्रहण से लुट् के विषय में भी लृट् होता है।

२७९३ आशंसावचने लिङ् ३।३।१३४।

आशंसावाचिन्युपपदे भविष्यति लिङ् स्यान्न तु भूतवत्। गुरुश्चेदुपेयाद् आशंसेऽधीयीय। आशंसे-क्षिप्रम् अधीयीय।

आशंसावाचक उपपद में रहते भविष्यत् काल में लिङ् होता है। अतीत एवं वर्तमान के समान प्रत्यय नहीं होते हैं।

२७९४ नानद्यतनवत् क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः ३।३।१३५।

क्रियायाः सातत्ये सामीप्ये च लङ्लुटौ न। यावज्जीवमन्नम् अदात् दास्यति वा। सामीप्यम् =तुल्यजातीयेनाव्यवधानम्। येयं पौर्णमासी अतिक्रान्ता तस्यामग्नीन् आधित। सोमेनायष्ट। येयममावास्याऽऽगामिनी तस्यामग्नीन् आधास्यते। सोमेन यक्ष्यते।

क्रिया का सातत्य एवं सामीप्य अर्थ गम्यमान होने पर लङ् एवं लुट् नहीं होता है। सामीप्य का अर्थ यह है कि समानजातीय से व्यवधान का अभाव।

२७९५ भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् ३।३।१३६।

भविष्यति काले मर्य्यादोक्ताववरस्मिन् प्रविभागेऽनद्यतनवन्न। योऽयमध्वा-गन्तव्य आपाटलिपुत्रात् तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र सक्तून् पास्यामः।

भविष्यत्काल में मर्यादोक्ति वचन में अवरदेश में विभाग गम्यमान रहते अनद्यतन समान प्रत्यय नहीं होते हैं। देशकृत मर्यादा ज्ञान करना चाहिये।

२७९६ कालविभागे चानहोरात्राणाम् ३।३।१३७।

पूर्वसूत्रं सम्पूर्णमनुवर्तते। अहोरात्रसम्बन्धिनि विभागे प्रतिषेधार्थमिदम्। योगविभाग उत्तरार्थः। योऽयं वत्सर आगामी तस्य यदवरमाग्रहायण्या-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे। अनहोरात्राणां किम्, योऽयं मास आगामी तस्य योऽवरः पञ्चदशरात्रस्तत्राध्येतास्महे।

इस सूत्र में सम्पूर्ण पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति आती है। भविष्यत्काल में मर्यादोक्ति रहते अहोरात्र सम्बन्धी विभाग में अनद्यतनवत् प्रत्यय न हो यह निषेध नहीं प्रवृत्त होता है। यह सूत्र अहोरात्रसम्बन्धी विभाग में प्रतिषेधार्थ है। योगविभाग उत्तर सूत्र में अनुवृत्ति के लिए है। इसमें कालकृत मर्यादा जाननी उचित है।

२७९७ परस्मिन् विभाषा ३।३।१३८।

अवरस्मिन्वर्ज्यं पूर्वसूत्रद्वयमनुवर्तते। अप्राप्तविभाषेयम्। योऽयं संवत्सर आगामी तस्य यत्परमाग्रहायण्यास्तत्राध्येष्यामहे। अध्येतास्महे।

अवरस्मिन् इस अंश को त्याग कर के पूर्व दोनों सूत्रों की यहां अनुवृत्ति होती है। भविष्यत्काल में मर्यादोक्ति रहते पर में अहोरात्र सम्बन्धी से भिन्न कालविभाग रहते अनद्यतनवत् प्रत्यय विकल्प से होता है। यह अप्राप्तविभाषा सूत्र है।

लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३।३।१३९।

भविष्यतीत्येव। सुवृष्टिश्चेदभविष्यत् तदा सुभिक्षमभविष्यत्।

हेतु हेतुमद्भाव आदि लिङ् के निमित्त है इनके विषय में क्रिया की अनिष्पत्ति गम्यमान रहते भविष्यत् अर्थ में धातु से लृङ् होता है। अनिष्पत्तिः = असिद्धिः।

२७९८ भूते च ३।३।१४०।

पूर्वसूत्रं सम्पूर्णमनुवर्तते।

सम्पूर्ण पूर्व सूत्र की इस सूत्र में अनुवृत्ति होती है। भूत काल में क्रिया की असिद्धि प्रतीयमान रहते कार्यकारण-भाव में लृङ् होता है।

२७९९ वोताप्योः ३।३।१४१।

वा आ उताप्योः। उताप्योरित्यतः प्राग्भूते लिङ्निमित्ते लृङ् वेत्यधिधिक्रियते। पूर्वसूत्रन्तु उताप्योरित्यादौ प्रवर्तते इति विवेकः।

'वा आ उताप्योः' ऐसा यहां पदच्छेद है। उताप्योः इस सूत्र के पूर्व तक 'भूते' लिङ् निमित्ते लृङ् इसका अधिकार है। 'उताप्योः' 'समर्थयोः' को लेकर 'इच्छार्थेभ्यो विभाषा' इस सूत्र तक 'भूते च' पूर्व सूत्र का अधिकार है।

२८०० गर्हायां लडपिजात्वोः ३।३।१४२।

आभ्यां योगे लट् स्यात्, कालत्रये गर्हायाम्। लुङादीन् परत्वादयं बाधते। अपि जायां त्यजसि जातु गणिकामाधत्से गर्हितमेतत्।

अपि एवं जातु के योग में गर्हा अर्थ में तीन काल में लट् होता है। परत्व के कारण लुङ् आदि को यह बाध करता है।

२८०१ विभाषा कथमि लिङ् च ३।३।१४३।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गर्हायामित्येव। कालत्रये लिङ् चाल्लट्। कथं धर्मं त्यजेस्त्यजसि वा। पक्षे कालत्रये लकाराः। अत्र भविष्यति नित्यं लृङ् भूते वा। कथं नाम तत्र भवान् धर्ममत्यदत्यत्-अत्याक्षीद्वा।

'कथम्' शब्द के योग में तीनों कालों में निन्दा अर्थ में विकल्प से लिङ् होता है। सूत्र में चकार से लट् भी होता है। पक्ष में कालत्रय में लकार होते हैं। भविष्यत् अर्थ में नित्य लृङ् होता है, भूतकाल में विकल्प से वह होता है।

२८०२ किंवृत्ते लिङ्लृटौ ३।३।१४४।

गर्हायामित्येव। विभाषा तु नानुवर्तते। कः कतरः कतमो वा हरिं निन्देत् निन्दिष्यति वा। लृङ् प्राग्वत्।

किंशब्द निष्पन्न शब्द उपपद में रहते निन्दा में तीनों काल में लिङ् एवं लट् होता है। यहां विभाषा की अनुवृत्ति नहीं है। केवल गर्हा की अनुवृत्ति है। इनमें भाष्यकारादि व्याख्यान प्रमाण है। क्रिया की अनिष्पत्ति में भूत में विकल्प से भविष्यत् में नित्य लृङ् होता है।

२८०३ अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि ३।३।१४५।

गर्हायामिति निवृत्तम्। अनवक्लृप्तिरसम्भावना, अमर्षोऽक्षमा। न सम्भावयामि न मर्षये वा भवान् हरिं निन्देत् निन्दिष्यति वा। कः कतरः कतमो वा हरिं निन्देत्, निन्दिष्यति वा। लृङ् प्राग्वत्।

'गर्हायाम्' की इसमें निवृत्ति है। असम्भावना एवं अक्षमा में किम्शब्द निष्पन्न उपपद रहते या उपपद उसके न रहते तीन काल में लिङ् एवं लृङ् होता है। क्रिया की असिद्धि में नित्यलृङ् भविष्यत् अर्थ में। भूत में विकल्प से लृङ् होता है।

२८०४ किङ्किलास्त्यर्थेषु लृट् ३।३।१४६।

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरित्येतद् गर्हायाञ्चेति यावदनुवर्तते। किङ्किलेति समुदायः क्रोधद्योतक उपपदम्, अस्त्यर्थाः=अस्ति-भवति-विद्यतयः। लिङोऽपवादः। न श्रद्दधे न मर्षये वा किङ्किल त्वं शूद्रान्नं भोक्ष्यसे। अस्ति, भवति विद्यते वा शूद्रीं गमिष्यसि। अत्र लृङ् न।

अनवक्लृप्ति एवं अमर्ष इन दोनों पदों की अनुवृत्ति 'गर्हायां च' सूत्र तक होती है। क्रोधद्योतक किङ्किल शब्द एवं अस्ति एवं उसके पर्यायवाचक शब्द उपपद होने पर अनवक्लृप्ति एवं अस्त्यर्थ अर्थ में तीनों कालों में लट् होता है। यह लिङ् का अपवाद है। यहां इसके विषय में लृङ् नहीं होगा।

२८०५ जातुयदोर्लिङ् ३।३।१४७।

॥ यदायद्योरुपसंख्यानम् ॥। लृटोऽपवादः। जातु यद् यदा यदि वा त्वादृशो हरिं निन्देन्नावकल्पयामि न मर्षयामि। लृङ् प्राग्वत्।

जातु एवं यत् शब्द के योग में अनवक्लृप्ति एवं अमर्ष अर्थ होने पर तीनों काल में लिङ् होता है, यह लृट् का अपवाद है। यदा एवं यदि के योग में धातु से लिङ् होता है। क्रिया की अनिष्पत्ति में भविष्य में लृङ् नित्य, भूत में लृङ् विकल्प से होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२८०६ यच्चयत्रयोः ३।३।१४८।

यच्च यत्र वा त्वमेवं कुर्याः न श्रद्दधे न मर्षयामि।

यच्च एवं यत्र के योग में अनवक्लृप्ति एवं अमर्ष में लिङ् होता है यह योग विभाग उत्तर सूत्रों में यच्च यत्र का सम्बन्धार्थ है।

२८०७ गर्हायां च ३।३।१४९।

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरिति निवृत्तम्। यच्चयत्रयोर्योगे गर्हायां लिङेव स्यात्। यच्च यत्र वा त्वं शूद्रं याजयेः, अन्याय्यं तत्।

अनवक्लृप्ति एवं अमर्ष की यहां निवृत्ति हुई। यच्च एवं यत्र के योग में निन्दा में धातु से लिङ् ही होता है। अन्य लकार नहीं होता।

२८०८ चित्रीकरणे च ३।३।१५०।

यच्च यत्र वा त्वं शूद्रं याजयेः, आश्चर्यमेतत्।

चित्रीकरण रूप अर्थ गम्यमान रहते यच्च एवं यत्र के योग में धातु से लिङ् होता है। चित्रीकरण = आश्चर्य अर्थ है।

२८०९ शेषे लृडयदौ ३।३।१५१।

यच्चयत्राभ्याम् अन्यस्मिन् उपपदे चित्रीकरणे गम्ये धातोर्लृट् स्यात्। आश्चर्यमन्धो नाम कृष्णं द्रव्यति। अयदौ किम्, आश्चर्यं यदि सोऽधीयीत।

यच्च यत्र से भिन्न उपपद में रहते आश्चर्य अर्थ प्रतीयमान रहें वहां धातु से लृट् होता है। यदि योग में लिङ् होता है।

२८१० उताप्योः समर्थयोर्लिङ् ३।३।१५२।

बाढमित्यर्थेऽनयोस्तुल्यार्थता। उत अपि वा हन्यादू अघं हरिः। समर्थयोः किम्, उत दण्डः पतिष्यति। अपि धास्यति द्वारम्। प्रश्नः प्रच्छादनञ्च गम्यते। इतः प्रभृति लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ भूतेऽपि नित्यो लृङ्।

दृढ अर्थ में उत एवं अपि इन दोनों का समानार्थकत्वरूप तुल्यार्थता है। तुल्यार्थक उत एवं अपि योग में धातु से लिङ् होता है। समर्थयोः न कहते तो प्रश्न अर्थ में उत एवं प्रच्छादन अर्थ में अपि के योग में भी धातु से लिङ् लकार जो इष्ट नहीं है वह होता। इस सूत्र से लेकर आगामी सूत्रों में हेतु एवं हेतुमद्भाव विषय में क्रिया की अनिष्पत्ति अर्थ गम्यमान होने पर भूत काल में नित्य लिङ् होगा।

२८११ कामप्रवेदनेऽकच्चिति ३।३।१५३।

स्वाभिप्रायाविष्करणे गम्यमाने लिङ् स्यान्न तु कच्चिति। कामो मे भुञ्जीत भवान्। अकच्चितीति किम्, कच्चिज्जीवति।

स्वाभिप्राय के प्रकट अर्थ में धातु से लिङ् होता है, किन्तु कच्चित् शब्द उपपद में रहते नहीं होता है लिङ्। कच्चित् योग में लट् जीवति यहां हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२८१२ सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे ३।३।१५४।

अलमर्थोऽत्र प्रौढिः। 'सम्भावनम्' इत्यलम् इति च प्रथमया सप्तम्या च विपरिणम्यते। सम्भावनेऽर्थे लिङ् स्यात् तच्चेत्सम्भावनम् अलम् इति सिद्धाप्रयोगे सति। अपि गिरिं शिरसा भिन्द्यात्। सिद्धाप्रयोगे किम्, अलं कृष्णो हस्तिनं हनिष्यति।

अलम् का अर्थ यहां प्रौढि है। सम्भावने एवं अलम् इन दोनों की आवृत्ति करके इन दोनों के मध्य में एक जो सम्भावन है उसकी प्रथमान्तत्व से विभक्ति का विपरिणाम है एवं अलम् का सप्तम्यन्तत्वेन विभक्ति विपरिणाम है। अर्थात् अर्थ करने में सप्तम्यन्त को प्रथमान्त एवं प्रथमान्त को सप्तम्यन्त मानना चाहिये। क्रिया में योग्यता निश्चय को सम्भावना कहते हैं। सम्भावन अर्थ में लिङ् हो वह सम्भावन समर्थ यदि सिद्ध है अप्रयोग जिसका ऐसा अलम् रहते। अर्थात् अलमर्थ की प्रतीति रहते अलम् का अप्रयोग रहते लिङ् होता है। व्यर्थत्व के कारण प्रयोगानर्ह रहें वहां लिङ् अन्यत्र लृङ् होता है।

२८१३ विभाषा धातौ सम्भावनवचनेऽयदि ३।३।१५५।

पूर्वसूत्रमनुवर्तते। सम्भावनेऽर्थे धातावुपपदे उक्तेऽर्थे लिङ् वा स्यात् न तु यच्छब्दे। पूर्वेण नित्ये प्राप्ते वचनम्। सम्भावयामि भुञ्जीत भोक्ष्यते वा भवान्। अयदौ किम्, सम्भावयामि यद् भुञ्जीथास्त्वम्।

पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति यहां आती है। सम्भावनार्थक धातु यदि उपपद में रहे तो उक्त अर्थ में लिङ् विकल्प से होता है, किन्तु यत् शब्द के योग में लिङ् नहीं होता है। पूर्व सूत्र से नित्य प्राप्त था विकल्प से विधानार्थ यह सूत्र किया है। यदि योग में इसकी वि० प्र० नहीं है। वहां 'त्वं भुञ्जीथाः' यही होता है।

२८१४ हेतुहेतुमतोर्लिङ् ३।३।१५६।

वा स्यात्। कृष्णं नमेच्चेत् सुखं यायात्। कृष्णं नंस्यति चेत् सुखं यास्यति। ❀ भविष्यत्येवेष्यते ❀। नेह, हन्तीति पलायते।

हेतु एवं हेतुमद्भाव रूप अर्थ प्रतीयमान रहते भविष्यत् काल में धातु से विकल्प करके लिङ् होता है। भविष्यत् काल में ही इसकी प्रवृत्ति है। अन्यत्र नहीं, यथा वह मारता है अतः पलायन करता है—यहां वर्तमान काल में लट् ही हुआ।

२८१५ इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ३।३।१५७।

इच्छामि भुञ्जीत भुङ्क्तां वा भवान्। एवं कामये प्रार्थये इत्यादि योगे बोध्यम्। ❀ कामप्रवेदने इति वक्तव्यम् ❀। नेह, इच्छन् करोति।

इच्छार्थक धातु उपपद में रहने पर धातु से लिङ् और लोट् होता है। यह सूत्र वहां ही प्रवृत्त होता है जहां स्वकीय अभिप्राय का प्रकट अर्थ की प्रतीति रहती है। इच्छन् करोति यहां लिङ् एवं लोट् न हुआ।

२८१६ लिङ् च ३।३।१५९।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषूपपदेषु लिङ्। भुञ्जीय इति इच्छति।
समानकर्तृक इच्छार्थक धातु उपपद में रहते धातु से लिङ् होता है।

२८१७ इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्तमाने ३।३।१६०।

लिङ् स्यात् पक्षे लट्। इच्छेत्, इच्छति। कामयेत। कामयते। विधि-निमन्त्रणेति लिङ्विधौ-यजेत। निमन्त्रणे-इह भुञ्जीत भवान्। आमन्त्रणे-इहासीत। अधीष्टे पुत्रम् अध्यापयेद् भवान्। संप्रश्ने-किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम्। प्रार्थने-भो भोजनं लभेय। एवं लोट्।

इच्छार्थक धातु से वर्तमान काल में विकल्प से लिङ् एवं पक्ष में लट् होता है। विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण अधीष्ट संप्रश्न एवं प्रार्थना में लिङ् लकार होता है। विधि आदि का अर्थ प्रथम लिख चुके हैं। इसी प्रकार लोट् भी होता है।

२८१८ प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च ३।३।१६३।

प्रैषो विधिः। अतिसर्गः = कामचारानुज्ञा। भवता यष्टव्यम्। भवान् यजताम्। चकारेण लोटोऽनुकर्षणं प्राप्तकालार्थम्।

विधि एवं कामचारानुज्ञा अर्थ में एवं प्राप्तकाल में धातु से कृत्यप्रत्यय एवं लोट् होता है। सूत्रस्थ चकार प्राप्तकाल में भी लोट् विधानार्थ लोट् का अनुकर्षणार्थ है। अन्य अर्थों में तो लोट् प्राप्त ही था।

२८१९ लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके ३।३।१६४।

प्रैषादयोऽनुवर्तन्ते। मुहूर्तादू ऊर्ध्वं यजेत, यजताम्, यष्टव्यम्।

इस सूत्र में प्रैषादिक की अनुवृत्ति है। प्रैष अतिसर्ग प्राप्तकाल अर्थ में यदि ऊर्ध्वमौहूर्तिक अर्थ प्रतीयमान रहे वहां धातु से लिङ् होता है, लिङ्, लोट् एवं कृत्यप्रत्यय हुआ—यजेत, यजताम्, यष्टव्यम्।

२८२० स्मे लोट् ३।३।१६५।

पूर्वसूत्रस्य विषये। लिङः कृत्यानां चापवादः। ऊर्ध्वं मुहूर्तादू यजतां स्म।

यह सूत्र पूर्वसूत्र के विषय में लिङ् एवं कृत्य प्रत्यय का बाधक है। स्म-शब्द के योग में ऊर्ध्वं मौहूर्तिक अर्थ गम्यमान रहते धातु के उत्तर लोट् होता है।

२८२१ अधीष्टे च ३।३।१६६।

स्मे उपपदेऽधीष्टे लोट् स्यात्। त्वं स्म अध्यापय।

स्म शब्द उपपद में होने पर अधीष्ट अर्थात् सत्कारपूर्वक व्यापार में धातु से लोट् होता है।

२८२२ लिङ् यदि ३।३।१६८।

यच्छब्दे उपपदे कालसमयवेलासु च लिङ् स्यात्। कालः समयो वेला वा यद् भुञ्जीत भवान्।

यत् शब्द उपपद में रहते काल या समय या वेला इनमें से किसी के उपपद में रहे तो भी धातु से लिङ् होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२८२३ अर्हे कृत्यतृचश्च ३।३।१६९।

चाच्छिलङ्। त्वं कन्यां वहेः।

योग्य अर्थ में धातु से कृत्य प्रत्यय एवं तृच् होता है, चकार से लिङ् भी होता है। लिङ् से कृत्य एवं तृच् का बाध न हो एतदर्थ सूत्र में कृत्य-तृच् ग्रहण किया है, इस कृत्य एवं तृच् ग्रहण से यहां 'वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्' की प्रवृत्ति नहीं है। अन्यथा विकल्प बाध से पक्ष में कृत्य एवं तृच् होता। पुनः इनका ग्रहण व्यर्थ हो जाता—क्त्व्युट् खलर्थेषु वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् की अप्रवृत्ति ही है।

२८२४ शकि लिङ् च ३।३।१७२।

शक्तौ लिङ् स्यात्, चात् कृत्याः। भारं त्वं वहेः।

शक्त अर्थ में धातु से लिङ् होता है। चकार से पक्ष में कृत्य प्रत्यय भी होते हैं।

माङि लुङ् ३।३।१७५।

कथं मा भवतु, मा भविष्यति इति, नायं माङ् किन्तु मा-शब्दः।

माङ् शब्द के योग में लुङ् होता है। मा-शब्द के योग में लुङ् नहीं होता है।

२८२५ धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः ३।४।१।

धात्वर्थानां सम्बन्धे यत्र काले प्रत्यया उक्तास्ततोऽन्यत्रापि स्युः। तिङ्-वाच्यक्रियायाः प्राधान्यात्। तदनुरोधेन गुणभूतक्रियावाचिभ्यः प्रत्ययाः। वसन् ददर्श। भूते लट्। अतीतवासकर्तृकं दर्शनमर्थः। सोमयाज्यस्य पुत्रो जनिता। सोमेन यक्ष्यमाणो यः पुत्रस्तत्कर्तृकं भवनम्।

धात्वर्थ के सम्बन्ध में जिस काल में जो प्रत्यय विधान किये हैं वे उससे भिन्न अर्थ में होते हैं। तिङ् प्रकृतिभूत धातु से वाच्य जो क्रिया उसका प्राधान्य से उसके अनुरोध से गुणभूत क्रिया-वाचक धातुओं से प्रत्यय होते हैं। वसन् ददर्श इसमें भूतकाल में लट् हुआ। अतीतकालिक वास का जो कर्ता वह है कर्ता जिसका ऐसा दर्शन अर्थ है। भविष्यत् काल में सोमयज्ञ करनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा 'करणे यजः' से भविष्यत् में णिनि प्रत्यय है।

विमर्श—धातुओं का विशेष्य विशेषण भावादि रूप सम्बन्धार्थ बाधकत्व नहीं है। स्वार्थ के स्मरण कराने से क्षीणशक्तिक है। पदार्थ संसर्ग वाक्यार्थ है। कारकयुक्त्या क्रिया भी वाक्यार्थ है। धात्वर्थानामिति—विषयगत बहुत्व का आरोप करके बहुवचन यहां है। प्रधानानुरोध से गुण का नयन उचित है विपरीत नहीं, अप्रधान क्रियावाचक धातु से कालान्तर के बाधक प्रत्यय होते हैं। वसन् ददर्श = उषित्वा ददर्श अर्थ है। अतीत आदि में बहुव्रीहि समास है।

२८२६ क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः ३।४।२।

पौनःपुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोर्लोट् स्यात् तस्य च हिस्वौ स्तः। तिङामपवादः। तौ च हिस्वौ क्रमेण परस्मैपदात्मनेपदसंज्ञौ स्तस्तिङ् संज्ञौ च। तध्वमोर्विषये तु हिस्वौ वा स्तः। पुरुषैकवचनसंज्ञे तु नानयोर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिदिश्येते, हिस्वविधानसामर्थ्यात् । तेन सकलपुरुषवचनविषये परस्मैपदिभ्यो हिः कर्तरि । आत्मनेपदिभ्यः स्वो भावकर्मकर्तृषु ।

पौनःपुन्य एवं भृशार्थ गम्यमान होने पर धातु से लोट् होता है। इस लोट् के स्थान में हि एवं स्व आदेश होता है, हि एवं स्व आदेश तिङ् के अपवाद है। तिङादि आदेश को बाधकर वे दो आदेश ही होते हैं। यह 'हि' एवं 'स्व' क्रमशः परस्मैपदी धातु एवं आत्मनेपदी धातुओं से होते हैं। एवं वे दोनों तिङ् संज्ञक होते हैं। 'त' एवं 'ध्वम्' के विषय में 'हि' एवं 'स्व' विकल्प से होता है। हि एवं स्व के विधानबल से उनके पुरुष एवं वचन का अतिदेश नहीं होता है। अतः सम्पूर्ण पुरुष एवं समस्त वचनों के विषय में कर्ता में परस्मैपदी धातुओं से 'हि' होता है। एवं भावकर्ताकर्म में आत्मनेपदी धातुओं से 'स्व' होता है।

२८२७ समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ३।४।३।

अनेककियासमुच्चये प्रागुक्तं वा स्यात् ।

अनेक क्रियाओं के समुच्चय होने पर धातु से उत्तर लोट् होता है एवं लोट् के स्थान में हि एवं स्व आदेश एवं त एवं ध्वम् के विषय में विकल्प से हि एवं स्व आदेश होते हैं। अर्थात् सम्पूर्ण पूर्वोक्त कार्य विकल्प से होता है।

२८२८ यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् ३।४।४।

आद्ये लोड्विधाने लोट्प्रकृतिभूत एव धातुरनुप्रयोज्यः ।

'क्रियासमभिव्याहार' सूत्र से विहित लोट् उसकी जो प्रकृतिभूत धातु उसका ही अनुप्रयोग होता है।

२८२९ समुच्चये सामान्यवचनस्य ३।४।५।

समुच्चये लोड्विधौ सामान्यार्थकस्य धातोरनुप्रयोगः स्यात् । अनुप्रयोगाद् यथायथं लडादयस्तिबादयश्च । ततः संख्याकालयोः पुरुषविशेषार्थस्य चाभिव्यक्तिः । ॐ क्रियासमभिहारे द्वे वाच्ये ॐ । याहि याहीति याति=पुनः पुनरतिशयेन वा यानं ह्यन्तस्यार्थः । एककर्तृकं वर्तमानकालिकं यानं यातीत्यस्य । इतिशब्दस्त्वभेदान्वये तात्पर्यं प्राहयति । एवं यातः । यान्ति । यासि । याथः । याथ । यात यातेति यूयं यात । याहि याहीत्ययासीत् । अयास्यद् वा । अधीष्वाधीष्वेत्यधीते । ध्वंविषये पक्षेऽधीध्वम् अधीध्वम् इति यूयमधीध्वे ।

समुच्चये तु सक्तून् पिब धानाः खादेत्यभ्यवहरति । अन्नं भुङ्क्ष्व, दाधिकमास्वादयस्वेत्यभ्यवहरते । तध्वमोस्तु पिबत-खादतेत्यभ्यवहरत । भुङ्ध्वम् आस्वदध्वम् इत्यभ्यवहरध्वे । पक्षे हिस्वौ । अत्र समुच्चीयमानविशेषाणाम् अनुप्रयोगार्थेन सामान्येनाभेदान्वयः । पक्षे सक्तून् पिबति । धानाः खादति । अन्नं भुङ्क्ते । दाधिकमास्वादयते । एतेन—

"पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः ।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः" ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति व्याख्यातम्। अवस्कन्दन-लवनादिरूपा भूतानद्यतनपरोक्षा एककर्तृका अस्वास्थ्यक्रियेत्यर्थात्। इह 'पुनः पुनश्चस्कन्देत्यादिरर्थः' इति तु व्याख्यानं भ्रममूलकमेव, द्वितीयसूत्रे क्रियासमभिहारे इत्यस्याननुवृत्तेः, लोडन्तस्य द्वित्वापत्तेश्च। पुशीमवस्कन्देत्यादि मध्यमपुरुषैकवचनमित्यपि केषाञ्चित् भ्रम एव, पुरुषवचनसंज्ञे इह नेत्युक्तत्वात्।

इति लकारार्थप्रक्रिया।

क्रिया के समुच्चय अर्थ में लोट् विधान में सामान्यार्थक धातु का अनुप्रयोग होता है। अनुप्रयोग के से यथायोग्य लट् आदि एवं तिप् आदि होते हैं। उससे सङ्ख्या, काल एवं पुरुषविशेषार्थ की अभिव्यक्ति = प्रकाश होता है।

क्रियासमभिहार अर्थ में धातु का द्वित्व होता है। पुनः पुनः अतिशयेन वा (या अतिशय से) याति इस विग्रह में 'याहि याहि' इति याति इसकी सिद्धि हुई। पुनः पुनः अतिशयेन यानम् यह विभक्त्यन्त का ही अर्थ है। एककर्तृकं वर्तमानकालिकं यानम् यह अर्थ 'याति' का है। यहां इति शब्द अभेदान्वय में तात्पर्यग्राहक है। इसी क्रम से यातः यान्ति, यासि, याथः, याथ आदि। ध्वम् पक्षमें यूयम् अधीध्वे। समुच्चयविषय में वक्ष्यमाण रूप होते हैं—यथा— सक्तून् पिब धानाः खाद इति अभ्यवहरति। अन्नं भुङ्क्ष्व दाधिकम् आस्वादय इति अभ्यवहरते। त एवं ध्वम् का उदाहरण—पिबत खादत इति अभ्यवहरथ। भुङ्ध्वम् आस्वादयध्वम् इति अभ्यवहरध्वे। पक्ष में हि एवं स्व आदेश। समुच्चीयमान विशेष का अनुप्रयोगार्थ सामान्य के साथ अभेदान्वय है। पक्ष में सक्तून् पिबति आदि। पुशीमवस्कन्देति—यहां अवस्कन्दनलवनादिरूपा भूतानद्यतन-परोक्षा एककर्तृक अस्वास्थ्यक्रिया-ऐसा अर्थ हुआ। द्वितीय सूत्र में क्रिया समभिहार की अनुवृत्ति नहीं है, अतः यहां 'पुनः पुनः चस्कन्द' यह व्याख्या ठीक नहीं है। वह भ्रममूलक है। एवं लोडन्त के द्वित्व की आपत्ति भी होगी। पुशीमवस्कन्द यहां मध्यम पुरुष एकवचन की व्याख्या भी गलत है, पुरुष एवं वचन संज्ञा नहीं होती ऐसा पूर्व में कह चुके हैं।

पं० श्रीबालकृष्णपञ्चोलि विरचित रत्नप्रभा में लकारार्थ प्रकरण समाप्त।

इति श्रीभट्टोजिदीक्षितविरचितायां सिद्धान्तकौमुद्यां तिङन्तप्रकरणं समाप्तम्।

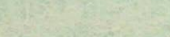

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ कृदन्तकृत्यप्रक्रिया

२८३० धातोः ३।१।९१।

आ तृतीयसमाप्तेरधिकारोऽयम् ।

तृतीयाध्याय की समाप्तिपर्यन्त 'धातोः' का अधिकार है। वह वक्ष्यमाण सूत्र में सम्बद्ध होकर वक्ष्यमाण प्रत्यय धातु से पर में होंगे। धातु से विहित तिङ् शित् भिन्न की आर्धधातुक संज्ञा होती है। सन्निहित धातु के अधिकार में विहित तिङ् भिन्न प्रत्ययों की कृदतिङ् से कृत् संज्ञा होती है आदि अनेक प्रयोजन इस अधिकार सूत्र के हैं।

तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ३।१।९२।

सप्तम्यन्त जो पद उसका जो वाच्य अर्थ उसका वाचक जो शब्द उसकी उपपद संज्ञा होती है, वह उपपदसंज्ञक शब्द पूर्व में रहते तत्तत् सूत्रों से धातु के उत्तर कृत् प्रत्यय होते हैं— कुम्भकारः आदि उदाहरण इसके हैं।

कृदतिङ् ३।१।९३।

तृतीयाध्यायस्थ धातु के अधिकार करके विधीयमान जो तिङ् भिन्न प्रत्यय उनकी कृत् संज्ञा होती है।

२८३१ वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ३।१।९४।

परिभाषेयम् । अस्मिन् धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकारोक्तं विना ।

यह परिभाषा शास्त्र है, अनियम में नियमकारिणी को परिभाषा कहते हैं, यह सामान्य परिभाषा स्वरूप है। इस 'धातोः' के अधिकार में असमान रूप अपवाद उत्सर्ग को विकल्प बाध करता है, किन्तु 'स्त्रियां क्तिन्' से स्त्रियाम् के अधिकारयुक्त प्रत्ययों में इसकी प्रवृत्ति नहीं है अर्थात् वे नित्य उत्सर्ग के बाधक है।

विमर्श—सरूपशब्दार्थ—समानानुपूर्वीक सारूप्यवान् अर्थ है। यहां सारूप्य अनुबन्ध से इतर प्रत्यय के अवयव वर्णों का ही गृहीत है 'नानुबन्धकृतमसारूप्यम्' यह परिभाषा 'ददाति-दधात्योर्विभाषा' में स्थित 'विभाषा' से ज्ञापित है। अतः अण् एवं क आदि में अनुबन्ध णकार ककार से इतर अ आ का परस्पर सारूप्य ही है अतः वहां इस परिभाषा का विषय नहीं है। क प्रत्यय अपने विषय में अण् को नित्य बाध करता है।

२८३२ कृत्याः ३।१।९५।

अधिकारोऽयं ण्वुलः प्राक् ।

यहां से 'ण्वुल्तृचौ' सूत्र के पूर्व तक 'कृत्याः' इस पद का अधिकार है। इस लिये इस प्रकरण को कृत्य प्रक्रिया कहते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२८३३ कर्तरि कृत् ३।४।९५।

कृत् प्रत्ययः कर्तरि स्यात्, इति प्राप्ते—

धात्वर्थ व्यापाराश्रयरूप कर्ता में कृत् प्रत्यय होता है। इस सूत्र से कर्ता में सभी कृत् प्रत्यय प्राप्त हुए, यह सामान्य = व्यापक वचन है। उसके बाध्य विशेषवचन व्याप्यवचन वक्ष्यमाण है, बाधकविषय से अतिरिक्त स्थल में कृत्प्रत्यय कर्तृरूपार्थ में होता है। 'प्रकल्प्य चापवाद-विषयम् उत्सर्गः प्रवर्तते' यह नियम है। अन्यथा अपवाद विधान ही व्यर्थ हो जायगा।

२८३४ तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ३।४।७०।

एते भावकर्मणोरेव स्युः।

धातु के उत्तर कृत्य, क्त एवं खलर्थ प्रत्यय भाव एवं कर्म में ही होते हैं। अर्थात् कर्ता में नहीं वे होते। यह सूत्र का अपवाद है। अकर्मक धातु से कृत् प्रत्यय भाव में सकर्मक धातु से कृत्प्रत्यय कर्मरूप अर्थ में होते हैं।

इन प्रत्ययों से अतिरिक्त कृत् प्रत्यय पूर्व सूत्र से कर्ता में होता है।

२८३५ तव्यत्तव्यानीयरः ३।१।९६।

धातोरेते प्रत्ययाः स्युः। तकाररेफौ स्वरार्थौ। एधितव्यम्, एधनीयं त्वया। भावे औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वञ्च। चेतव्यः, चयनीयो वा धर्मस्त्वया। ❀ वसेस्तव्यत् कर्तरि णिच्च ❀। वसतीति वास्तव्यः। ❀ केलिमर उपसंख्यानम् ❀। पचेलिमा माषाः पक्तव्याः। भिदेलिमाः सरलाः, भेत्तव्याः, कर्मणि प्रत्ययः। वृत्तिकारस्तु कर्मकर्तरि चायमिष्यत इत्याह तद्भाष्यविरुद्धम्।

धातु से तव्यत्, तव्य एवं अनीयर् प्रत्यय होते हैं। तव्यत् में तकार एवं अनीयर् में रेफ वे दोनों स्वर के लिए हैं। तित्स्वरितम् से स्वरितत्व-विधानार्थ तकार है। एवं 'उपोत्तमं रिति' सूत्र से मध्योदात्तार्थ रेफ है। अकर्मक वृद्धिजनक व्यापारार्थक एध धातु से तव्यदादि प्रत्यय भाव में होते हैं। भाव में कृत् प्रत्यय स्थल में कृदन्त से स्वाभाविक एकवचन एवं नपुंसकत्व रहता है। भाव में कृत् प्रत्यय होने से कर्ता अनुक्त है अतः कर्तृवाचक से तृतीया विभक्ति हुई। 'त्वया' यहां।

चिञ् चयने धातु सकर्मक है, धातु का अर्थ राशिकरणजनकव्यापार है। फल एवं व्यापार का भिन्न २ अधिकरण से स्वार्थफलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वम् = सकर्मकत्वम्। कर्म में प्रत्यय तव्यदादि हुए। कर्मरूप अर्थ कृत्प्रत्यय से उक्त होने से कर्मवाचक धर्मादि से प्रथमा एवं अनुक्त कर्ता होने से कर्तृवाचक से तृतीया हुई—चेतव्यो धर्मः त्वया। * निवासार्थक वस् धातु से कर्तृरूप अर्थ में तव्यत् प्रत्यय होता है एवं वह तव्यत् णित्सदृश होता है। णित् प्रत्यय पर में रहते विधीयमान कार्य तव्यत् पर में रहते होता है। वास्तव्यः यहां तव्यत् कर्ता में हुआ एवं 'अत उपधायाः' से वृद्धि हुई। निवासजनक-व्यापारकर्ता यह बोध हुआ, प्रत्ययार्थ विशेष्य बोध कृदन्तस्थल में होता है। तिङन्तस्थल में धात्वर्थ व्यापारविशेष्यक बोध होता है।

विमर्श—निरुक्तोक्तिः—"भावप्रधानमाख्यातं सत्त्वप्रधानानि नामानि" तिप् आदि को आख्यात कहते हैं। सत्त्व = द्रव्यार्थक है। इस निरुक्तोक्ति में दो लक्ष्य एवं दो लक्षण समाविष्ट हैं—२ आख्यातम् = तिङन्तम् यह लक्ष्य है। २ नाम = प्रातिपदिक लक्ष्य है, सत्त्वप्रधानानि = द्रव्य-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रधानानि यह लक्षण है। कर्तरि आदि सूत्रों में कर्ता, कर्म, शब्द धर्मिप्रधान है, धर्मप्रधान नहीं है 'शक्तिमत् कारकम्' पक्ष का यहां समाश्रयण है। भाव में अकर्मक से कृत् प्रत्यय प्रकृत्यर्थ धात्वर्थ क्रिया का ही अनुवादक है, अतः वहां क्रिया का द्विधाभान न हुआ। विशेष निर्वचन वैयाकरण भू० पञ्चोली 'प्रभा' में देखिए।

धातु से उत्तर केलिमर् प्रत्यय भी होता है। ककार इत्संज्ञक है। पच् धातु सकर्मक है, कर्म अर्थ में यह प्रत्यय होकर पचेलिमाः माषाः = कर्तृनिष्ठव्यापारजन्यविक्लित्तिरूपफलाश्रया माषाः—यह अर्थ में कर्मविशेष्यक बोध हुआ। इसी प्रकार भिदेलिमाः सरलाः—यहां 'कर्तृवृत्तिव्यापारजन्यद्विधाभवनरूपफलाश्रयवदुत्वविशिष्टाः सरलाः' यह अर्थ हुआ। इसी प्रकार धात्वर्थ, फल, प्रत्ययार्थ का सर्वत्र ज्ञानकर शाब्दबोध करने से व्युत्पत्ति होगी। अध्ययन एवं अध्यापन के दोष से उत्तरोत्तर ह्रास शास्त्र का एवं शास्त्रज्ञों का हो रहा है।

वृत्तिकार 'केलिमर्' प्रत्यय को कर्मकर्ता में होता है वैसा कह रहे हैं। वह कथन भाष्यादिविरुद्ध होने से उपेक्ष्य है।

२८३६ कृत्यचः ८।४।२९।

उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्याच उत्तरस्य कृत्स्थस्य नस्य णत्वं स्यात्। प्रयाणीयम्। अचः किम्, प्रमग्नः। ❀निर्विण्णस्योपसंख्यानम्❀। अचः परत्वाभावादप्राप्ते वचनम्। परस्य णत्वम्, पूर्वस्य ष्टुत्वम्। निर्विण्णः।

उपसर्गस्थ निमित्त से पर धातु के अवयव अच् से पर जो कृत् प्रत्यय उसका अवयव नकार को णकार होता है। प्रयाणीयम्, यहां अनीयर् के नकार को णकार हुआ। निर्विण्ण में नकार अच् से उत्तर नहीं है वहां अप्राप्त णत्व था उसके विधान के लिए वार्तिक किया है। वह निर्विण्ण में णत्व करता है कृत् प्रत्यय के अवयव नकार को धातु के नकार को ष्टुत्व से णकार हुआ।

२८३७ णेर्विभाषा ८।४।३०।

उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य ण्यन्ताद् विहितो यः कृत् तत्स्थस्य नस्य णो वा स्यात्। प्रयापणीयम्। प्रयापनीयम्। विहितविशेषणं किम्, यका व्यवधानेऽपि यथा स्यात्। प्रयाप्यमाणं पश्य। 'णत्वे दुर उपसर्गत्वं ने'त्युक्तम्। दुर्यानम्। दुर्यापनम्।

उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तर ण्यन्त से विहित जो कृत् प्रत्यय उसके नकार को विकल्प णकार होता है। प्रया से अनीयर् णत्व। पक्ष में णत्वाभाव। ण्यन्त से विहित क्यों कहा? ण्यन्त से पर ऐसा क्यों न कहा? उसका फल यक् व्यवधान में भी णत्वार्थ है। णत्व में दुर् को उपसर्गत्व का प्रतिषेध पूर्वकथित है। अतः णत्वाभाव से दुर्यापनम्, हुआ।

२८३८ हलश्चेजुपधात् ८।४।३१।

हलादेरिजुपधात् कृन्नस्याचः परस्य णो वा स्यात्। प्रकोपणीयम्। प्रकोपनीयम्। हल् किम्, प्रोहणीयम्। इजुपधात् किम्, प्रवपणीयम्।

उपसर्गस्थ निमित्त से पर हलादि इच् है उपधा में जिसको ऐसा धातु से पर कृत् प्रत्यय के नकार अच् से पर रहे वहां णकार विकल्प से होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रपूर्वक क्रोधार्थक कुप् से अनीयर् गुण णत्व सु अम्-प्रकोपणीयम्। पक्ष में णत्व का अभाव से प्रकोपनीयम्। कुप क्रोधे। प्रोहणीयम्, ऊह वितर्के। 'कृत्यचः' से नित्यणत्व होता है। प्रवपणीयम्। वीज सन्ताने। अनीयर् 'कृत्यचः' से नित्यणत्व हुआ।

२८३९ इजादेः सनुमः ८।४।३२।

सनुमश्चेद् भवति तर्हि इजादेर्हलन्तादु विहितो यः कृत् तत्स्थस्यैव। प्रेङ्खणीयम्। इजादेः किम्, मगि सर्पणे। प्रमङ्गनीयम्। नुमग्रहणमनुस्वारोपलक्षणम्। अट्कुप्वाङ् इति सूत्रेऽप्येवम्। तेनेह न, प्रेन्वनम्। इह तु स्यादेव-प्रोम्भणम्।

नुम् घटित धातु के नकार जो कृत प्रत्यय का अवयव है उसको णत्व हो तो इजादि हलन्त धातु से विहित जो कृत तत्स्थ को ही नकार को णत्व होता है। अन्य को नहीं। यथा—प्रेङ्खणीयम्। 'कृत्यचः' से वह सिद्ध था यह सूत्र नियमार्थ है, नियमाकार पूर्व में प्रदर्शित है। अनुवृत्त हल् तदन्तपरक है, तदादिपरकत्व इजादि धातुओं में सम्भव नहीं है।

विमर्श—विहितगर्भित व्याख्यान न करते तो नियमार्थता इसकी न होती। णिजन्त से विहित भी कृत्प्रत्यय के नकार को णिलोप करने पर हलन्त से पर के कारण 'णेर्विभाषा' इस विकल्प को बाधने के लिए विधित्व इस सूत्र को सम्भव होने से। विधिसूत्र ही यह है ऐसी इष्टापत्ति में तो अणिजन्तप्रकृतिक अनीयर्प्रत्ययान्त प्रेङ्खणीयम्। उदाहरण नहीं होगा। किन्तु ण्यन्तप्रकृतिक ही उदाहरण होगा, किञ्च—यह सूत्र यदि नियमार्थ न होता तो 'प्रमङ्गनीयम्' यहां कृत्यचः से णत्व होता अतः विहित ३ विशेषण आवश्यक है। 'प्रेन्वनम्' के लिए यह विध्यर्थत्व सम्भव क्यों नहीं नुम् के नकार के व्यवधान से कृत्यचः की प्राप्ति नहीं है। नुम् ग्रहणम्—अनुस्वार का नकार उपलक्षण है, वहां 'अट्कुप्वाङ्' की तरह अनुस्वारबोधक है। अतः यहां विहितयुक्त व्याख्या करके इस सूत्र को नियमार्थपरक ही मानना चाहिये।

सूत्र में इजादि ग्रहण से मगि सर्पणे—पुमङ्गनीयम्। 'प्रेन्वनम्' यहां अनुस्वाराभाव प्रयुक्त णत्वाभाव है। प्रोम्भणम् में अनुस्वार परसवर्ण से णत्व हुआ।

२८४० वा निंसनिंक्षनिन्दाम् ८।४।३३।

एषां नस्य णो वा स्यात् कृति परे प्रणिंसितव्यम्। प्रनि सितव्यम्।

कृत प्रत्यय पर में रहते उपसर्ग निमित्त से पर निंस निंक्ष निन्द धातु के नकार को णकार विकल्प से होता है। यहां कृत्यचः से कृति की अनुवृत्ति है।

२८४१ न भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम् ८।४।३४।

एभ्यः कृन्नस्य णो न। प्रभानीयम्। प्रभवनीयम्। ॐ पूञ एवेह ग्रहणमिष्यते ॐ। पूङस्तु प्रपवणीयः सोमः। ॐण्यन्तभादीनामुपसंख्यानम् ॐ। प्रभापनीयम्। कृशाश्वः शस्य यो वेत्युक्तं णत्वप्रकरणोपरि तद्बोध्यम्, यत्वस्यासिद्धत्वेन शकारव्यवधानान्न णत्वम्। प्रख्यानीयम्।

उपसर्गस्थ निमित्त से पर भा, भू, पू, कमि, गमि, प्यायी, वेप् इन धातुओं से पर कृत्प्रत्ययावयव नकार को णकारादेश नहीं होता है। यहां पूञ् से पर कृत् नकारको निषेध होता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। पूङ् से कृत नकार को णकार होता ही है। प्रपवणीयः सोमः। किन्तु भादि शब्दान्तर होने से सूत्रतः णकार निषेध अप्राप्त था। अतः वार्तिक ने ण्यन्तभा आदि से पर कृत्प्रत्ययावयव नकार को णादेश का निषेध किया।

विमर्श—'प्रकृतिग्रहणे ण्यधिकस्यापि ग्रहणम्' यह हेरचङि से ज्ञापन करेंगे, उस परिस्थिति में यह वार्तिक अनावश्यक है, सूत्र से ही णत्व निषेध सिद्ध है, ऐसी शङ्का यहां करनी चाहिये। 'अचङि' से ज्ञापित वचन कृत्वमात्रविषयक है। अर्थात् कृत्व करने में प्रकृतिग्रहण से ण्यधिक का भी ग्रहण करना चाहिये। अन्यत्र नहीं। विशेष ज्ञापन में भाष्य ही प्रमाण है।

प्रपूर्वक व्यक्तवचनार्थक चक्षिङ् धातु से अनीयर् प्रत्यय करके ख्याञ् आदेश क्ङाञ् है। शकार को वि० यकारादेश-विधायक वार्तिक णत्वप्रकरणोपरि है। उसके असिद्धत्व के कारण शकार-व्यवधान से णत्व न हुआ—प्रख्यानीयम्।

२८४२ कृत्यल्युटो बहुलम् ३।३।११३।

स्नात्यनेन स्नानीयं चूर्णम्। दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः।

कृत्यसंज्ञक प्रत्यय एवं ल्युट् प्रत्यय जिस अर्थ में जिनसे कहे हैं उनसे भिन्न अर्थों में भी वे बहुलग्रहणात् होते हैं। अनीयर् प्रत्यय यथा यहां करण अर्थ में कर 'स्नानीयम्' हुआ—स्नानक्रिया में प्रकृष्टोपकारक जो चूर्ण है उसको अनीयर् कहता है। दानक्रिया का जो उद्देश्य ब्राह्मण उस सम्प्रदाय अर्थ में अनीयर् प्रत्यय हुआ दानीयो विप्रः। चूर्णरूप करण ब्राह्मणरूप सम्प्रदान कारक उक्त अनीयर् से है अतः उभय से प्रथमा हुई।

२८४३ अचो यत् ३।१।९७।

अजन्ताद् धातोर्यत् स्यात्। चेयम्। जेयम्। अजग्रहणं शक्यमकर्तुम्। योगविभागोऽप्येवम्। तव्यदादिष्वेव यतोऽपि सुपठत्वात्।

अच् प्रत्याहार बोध्य वर्ण है चरम अवयव जिनका ऐसे धातु से यत् प्रत्यय होता है। तकार की इत्संज्ञा लोप है। राशिकरण जनक व्यापारार्थक चि-धातु जो सकर्मक है उससे कर्म में यत् प्रत्यय आर्धधातुकसंज्ञा गुण प्रातिपादिक संज्ञा सु अम् पूर्वरूप चेयम्। सकर्मक जयार्थक जिधातु से कर्म में यत् आदि जेयम्। चेयम् = धनम्। जेयम् = मनः। अच् ग्रहण सूत्र में न करना यत् का तव्यदादि में पाठ करना सूत्र योग विभाग अनावश्यक है। हलन्त धातु से ण्यत् विधान होने से परिशेष न्याय से अजन्त धातु से ही यत् प्रत्यय सम्भव है। भूतपूर्व अजन्त से यदर्थ अच् ग्रहण यह कल्पना भाष्यादि विरुद्ध एवं दोषग्रस्त होने से अनादरणीय है। येन क्रमेण अष्टाध्यायी आचार्यपठिता तेन क्रमेण पारायणजन्यम् अदृष्टफलार्थं स्वतन्त्रं सूत्रमिति आस्तिकाः।

२८४४ ईद्यति ६।४।६५।

यति परे आत ईत् स्यात्। गुणः। देयम्। ग्लेयम्। ❀ तकिशसिचति-यतिजनिभ्यो यद् वाच्यः ❀ तक्यम्। शक्यम्। चत्यम्। यत्यम्। जन्यम्। जनेर्यदुविधिः स्वरार्थः, ण्यतापि रूपसिद्धेः। न चं वृद्धिप्रसङ्गः, जनिवध्यो-श्चेति निषेधात्। ❀ हनो वा यद् वधश्च वक्तव्यः ❀। वध्यः। पक्षे वक्ष्यमाणो ण्यत्, घात्यः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यत् प्रत्यय पर रहते धातु के आकार को ईकारादेश होता है। सकर्मक दा धातु से कर्म में प्रत्यय करके आकार को 'ईकार गुण कृदन्त तदादिनिमित्तक प्रातिपदिकसंज्ञा सु अम् पूर्वरूप देयम् = दानकर्म वस्तु धनादि। हर्षक्षयार्थक ग्लैधातु से यत् आदेश सूत्र से आत्व ईकारादेश गुण सु अम् पूर्वरूप ग्लेयम्। * तक्, शस्, चत, यत, जन् इन धातुओं से यत् प्रत्यय होता है। जन् से यत् न करने पर भी 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र से ण्यत् करने पर भी रूपसिद्धि 'जन्यम्' होती, ण्यत् में वृद्धि प्रसक्ति का 'जनिवध्योश्च' से निषेध है, पुनः जन् से यत् प्रत्यय विधान स्वरार्थ है।

हन् से यत् प्रत्यय होता है एवं वधादेश हन् को विकल्प से होता है। वध्यपक्ष में ण्यत् से घात्यः। हनस्त सूत्र से तकारादेश, हो हन्तेः से कुत्व हुआ।

२८४५ पोरदुपधात् ३।१।९८।

पवर्गान्ताद् अदुपधात् यत् स्यात्। ण्यतोऽपवादः। शप्यम्। लभ्यम्। 'नानुबन्धकृतमसारूप्यम्' अतो न ण्यत्, तव्यदादयस्तु स्युरेव।

अकारोपध पवर्गान्त धातुओं से पर ण्यत् को बाधकर यत् प्रत्यय होता है। ण्यत् एवं यत् में अनुबन्धेतर स्वरूप है अतः नित्य यत् ने ण्यत् को बाध किया है। पक्ष में तव्यत् आदि होते ही हैं।

२८४६ आडो यि ७।१।६५।

आङः परस्य लभेर्नुम् स्याद् यादौ प्रत्यये विवक्षिते। नुमि कृतेऽदुपधत्वाभावात् ण्यदेव, आलम्भ्यो गौः।

सूत्र में 'यि' विवक्षित सप्तमी है, परसप्तमी नहीं है। आङ् से पर जो लभ् धातु उसको नुम् आगम होता है, यादि प्रत्यय विवक्षित रहते। नुम् करने के बाद उपधा में अकार न होने से पोरदुपधात् से यत् अप्राप्त है अतः हलन्त लक्षण ण्यत् हुआ। आलम्भ्यो गौः।

२८४७ उपात् प्रशंसायाम् ७।१।६६।

उपलम्भ्यः साधुः। स्तुतौ किम्, उपलब्धुं शक्यः उपलभ्यः।

प्रशंसा अर्थ में उप उपसर्ग पूर्वक लभ् को नुम् आगम होता है यादि प्रत्यय विवक्षित रहते। नुम् करके ण्यत्। स्तुति भिन्न में यत् प्रत्यय हुआ।

२८४८ शकिसहोश्च ३।१।९९।

शक्यम्। सह्यम्।

शक् एवं सह धातु से उत्तर यत् प्रत्यय होता है। शक्यम्। सह्यम्।

२८३९ गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ३।१।१००।

गद्यम्। मद्यम्। चर्यम्। ❀चरेराङि चागुरौ❀। आचर्यो देशः=गन्तव्य इत्यर्थः। अगुरौ किम्, आचार्यो गुरुः। यमेर्नियमार्थम्, सोपसर्गान्मा भूत्। प्रयाम्यम्। निपूर्वात् स्यादेव, तेन 'न तत्र भवेद् विनियम्यमि'ति वार्तिकप्रयो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गात्। एतेनानियम्यस्य नायुक्तिः। 'त्वया नियम्या ननु दिव्यचक्षुषा' इत्यादि व्याख्यातम्। नियमे साधुरिति वा।

उपसर्ग रहित गद मद चर यम इन धातुओं से यत् प्रत्यय होता है। आङ्पूर्वक चर धातु से गुरुभिन्न अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। गन्तव्य देश में आचर्यः देशः। आचार्यो गुरुः यहां ण्यत् गुरु में है। पोरदुपधात् सूत्र से यम् धातु से यत् प्रत्यय सिद्ध ही था। पुनः यहां यत् प्रत्ययार्थ जो यम् धातु का पाठ किया है वह नियमार्थ है—यम् धातु से यदि यत् हो तो अनुपसर्गपूर्वकादेव, इस नियम से उपसर्ग पूर्वक यम् से यत् न होकर ण्यत् प्रत्यय ही होगा। यथा—'प्रयाम्यम्। विनियम्यम्' इस भाष्य वार्तिक प्रयोग से निपूर्व यम् से तो यत् प्रत्यय होता ही है। इस वार्तिक प्रयोग से अनियम्य प्रयोग सिद्ध हुआ। यहां यम् से यत् नञ् तत्पुरुष है।

त्वया नियम्या प्रभृति प्रयोगों की यत् से सिद्धि हुई। अथवा नियमे साधु अर्थ में सप्तम्यन्त से यत् साधु अर्थ में हुआ है यह भी प्रकारान्तर है।

'यमः समुपनिविषु च' इति वैकल्पिक अप् प्रत्यय के अभाव में 'तत्र साधुः' से यत् प्रत्यय होता है। 'त्वया' में करण में तृतीया है यह भी पक्षान्तर है।

२८५० अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु ३।१।१०१।

वदेर्नञि उपपदे वदः सुपीति यत्क्यपोः प्राप्तयोर्यदेव, सोऽपि गर्हायामेवेत्युभयार्थं निपातनम्। अवद्यम्=पापम्। गर्ह्येति किम्, अनुद्यं गुरुनाम, तद्धि न गर्ह्यं वचनानर्हञ्च।

"आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः॥ १॥

इति स्मृतेः। पण्या गौः, व्यवहर्तव्येत्यर्थः। पाण्यमन्यत्=स्तुत्यर्हमित्यर्थः। अनिरोधोऽप्रतिबन्धस्तस्मिन् विषये वृङो यत्। शतेन वर्या कन्या। वृत्यान्या।

गर्ह्य पणितव्य एवं अनिरोध अर्थ में क्रम से अवद्य, पण्य, वर्य्य वे यत् प्रत्ययान्त पद निपातन से सिद्ध होते हैं। नञ् उपपद में रहते वद् धातु से 'वदः सुपि क्यप् च' से क्यप् एवं यत् दो प्रत्यय प्राप्त थे किन्तु यत् ही होता है, वह यत् भी गर्हा रूप अर्थ में। यह उभय निपातन है। अवद्यं पापम्। जो गर्ह्य नहीं है एवं कहने योग्य भी नहीं है वहां नञ् पूर्वक वद् से क्यप् सम्प्रसारण पूर्वरूपादि अनुद्यं गुरुनाम। गुरुनाम शिष्यमुख से उच्चारण करने में अयोग्य है। अपना नाम, गुरु का नाम, अतिकृपण का नाम, ज्येष्ठपुत्र या पुत्री का नाम, एवं धर्मपत्नी का नाम इन नामों को कल्याण कामनायुक्त पुरुष उच्चारण न करें यह शास्त्राज्ञा है। अर्थात् स्मृति वचन आदरणीय है। पण धातु व्यवहार एवं स्तुति में है। पण्या गौः यहां व्यवहर्तव्य में यत् निपातित है, स्तुत्यर्थ में ण्यत् पाण्यम्=स्तुतिकर्म। अनिरोध से अप्रतिबन्ध=अनियम गृहीत है। इस अर्थ में वृङ् धातु से यत् प्रत्यय होता है। अविवाहित कन्या के लिए सैकड़ों स्थलों में वर खोजा जाता है निश्चित होने पर सुयोग्य वर के साथ वैध सम्बन्धार्थ पवित्र विवाह संस्कार होता है शतेन वर्या कन्या। अन्य अर्थ में 'वृत्या' यहां क्यप् तुक् है।

२८५१ वह्यं करणम् ३।१।१०२।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहन्त्यनेनेति वह्यं शकटम् । करणं किम् , वाह्यम् । वोढव्यम् ।

वह धातु से करण अर्थ में यत् का निपातन होता है । वहन क्रिया में प्रकृष्टोपकारक शकटादि है उस करण में यत से वह्यम् । करण भिन्न अर्थ में वह से कर्म में ण्यत् प्रत्यय या तव्यत् प्रत्यय से वाह्यम् । वोढव्यम् होता है ।

२८५२ अर्यः स्वामिवैश्ययोः ३।१।१०३।

ऋगतौ अस्माद् यत् । ण्यतोऽपवादः । अर्यः स्वामी वैश्यो वा । अनयोः किम् , आर्यो ब्राह्मणः । प्राप्तव्य इत्यर्थः ।

स्वामी एवं वैश्य अर्थ में ऋ धातु से यत् प्रत्यय निपातन से अर्य यह रूप सिद्ध होता है । यह निपातन लभ्य यत् ण्यत् का अपवाद है । स्वामी या वैश्य को अर्य कहते हैं । अन्यत्र कर्म में ण्यत् वृद्धि से आर्यः यहां प्राप्ति रूप फलाश्रय ब्राह्मण है ।

२८५३ उपसर्या काल्या प्रजने ३।१।१०४।

गर्भग्रहण प्राप्तकाला चेदित्यर्थः । उपसर्या गौः । गर्भाधानार्थं वृषभेणोपगन्तुं योग्येत्यर्थः । प्रजने काल्येति किम् , उपसार्या काशी । प्राप्तव्येत्यर्थः ।

गर्भग्रहण में प्राप्तकाला स्त्रीलिङ्ग पशुव्यक्ति विवक्षा विषय में उपसर्गपूर्वक गत्यर्थक सृ धातु से निपातन से यत प्रत्यय होता है । उपसर्या गौः । गर्भ को धारण करने के लिए वृषभ के समीप गमन योग्य गौ यह अर्थ है । प्राप्तिक्रियाकर्म काशी अर्थ में उपसार्या काशी जाने योग्य ।

२८५४ अजर्यं सङ्गतम् ३।१।१०५।

नञ् पूर्वाज्जीर्यतेः कर्तरि यत् सङ्गतं चेद् विशेष्यम् । न जीर्यतीत्यजर्यम् । 'तेन सङ्गतमार्ष्येण रामाजर्यं कुरु द्रुतमि'ति भट्टिः । 'मृगैरजर्यं जरसोपदिष्टमदेहबन्धाय पुनर्बबन्धे'त्यत्र तु सङ्गतमिति विशेष्यम् अध्याहार्यम् । संगतं किम् , अजरिता कम्बलः । भावे तु सङ्गतकर्तृकेऽपि ण्यदेव । अजार्यं सङ्गतेन ।

नञ् पूर्वक जॄ धातु से कर्तृरूप अर्थ में यत् प्रत्यय होता है सङ्गत रूप अर्थ विशेष्य रहने पर, न नष्ट होने वाली सङ्गति इस अर्थ में अजर्यम् निपातन से लब्ध हुआ । भट्टिवाक्य में कहा है कि हे राम ! जल्दी से आर्य = श्रेष्ठ जो सुग्रीव है उनसे कभी नष्ट न होने वाली सङ्गति को आप करें यहां 'अजर्यम्' यह हुआ । दशरथ राजा को वृद्धावस्था ने उपदेश किया कि हे राजन् संसार में जन्म-मरण प्रयुक्त बन्धनों से मुक्त होने के लिये अब आप गृह एवं राज्यादिक सबको छोड़ कर वन में जाकर वनवास से वन में स्थित उन हरिणों से नष्ट न होने वाली सङ्गति को कीजिये । यहां भी अजर्यम् यह प्रयोग हुआ । यहां सङ्गतम् का अध्याहार करना चाहिये । जहां सङ्गत रूप अर्थ-विशेष्यतया प्रतीयमान नहीं है वहां यत्प्रत्ययाभाव है यथा—अजरिता कम्बलः यहां नञ्-पूर्वक जॄ धातु से तृच् प्रत्यय आर्धधातुक संज्ञा इडागम हुआ । भाव में सङ्गतकर्तृक रहे वहां ण्यत् ही होता है यत् प्रत्यय नहीं । अजार्यं सङ्गतेन ।

२८५५ वदः सुपि क्यप् च ३।१।१०६।

उत्तरसूत्रादिह 'भावे' इत्यनुकृष्यते । वदेर्भावे क्यप् स्याच्चाद्यत् अनुपसर्गे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुप्युपपदे। ब्रह्मोद्यम्। ब्रह्मवद्यम्। ब्रह्म=वेदः, तस्य वदनमित्यर्थः। कर्मणि प्रत्ययाविति्येके। उपसर्गे तु ण्यदेव, अनुवाद्यम्। अपवाद्यम्।

उत्तर सूत्र से यहां भावे का अपकर्षण है। वद् धातु से भाव में क्यप् एवं चकार से यत् प्रत्यय होता है, उपसर्गभिन्न सुबन्त उपपद में रहते। वेद का कथन अर्थ में ब्रह्मोद्यम् यहां क्यप् सम्प्रसारण पूर्वरूप गुण सु अम् पूर्वरूप हैं। यत् में ब्रह्मवद्यम्। कोई कहते हैं कि यत् क्यप् वे दोनों कर्म में ही हुए। उपसर्ग उपपद रहते ण्यत् हलन्त लक्षण हुआ, अत उपधायाः से वृद्धि हुई। अनुवाद्यम्। अपवाद्यम्।

२८५६ भुवो भावे ३।१।१०७।

क्यप् स्यात्। ब्रह्मणो भावो ब्रह्मभूयम्। सुपीत्येव। भव्यम्। अनुपसर्ग इत्येव प्रभव्यम्।

भाव में भू धातु से उत्तर क्यप् प्रत्यय होता है, सुबन्त उपपद में रहते। ब्रह्मभूयम्। भव्यम् यहां सुबन्त उपपद में नहीं अतः क्यप् न हुआ, यत् गुण अवादेश है अनुपसर्गपूर्वक में सुबन्त उपपद नहीं अतः प्रभव्यम् में क्यप् न हुआ। किन्तु यत् हुआ।

२८५७ हनस्त च ३।१।१०८।

अनुपसर्गे सुप्युपपदे हन्तेर्भावे क्यप् स्यात् तकारश्चान्तादेशः। ब्रह्मणो हननं ब्रह्महत्या। स्त्रीत्वं लोकात्।

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद में रहते हन् धातु से भाव में = धात्वर्थ में क्यप् प्रत्यय होता है एवं धातु के अन्त्य वर्ण को तकार आदेश होता है। इतिः = हननं ब्रह्मणः हननम् ब्रह्महत्या। यहां स्त्रीलिङ्ग लोकतः है, भाष्यकार ने कहा है कि—'लिङ्गमशिष्यम्, लोकाश्रयत्वात्।' लिङ्गविधायक वचनों का प्रणयन व्यर्थ है, लिङ्गज्ञान लोक से होता है, जो ज्ञान लोक से हो तदर्थ के वचनारम्भ व्यर्थ है। 'क्षुण्निवृत्त्यर्थं भोजनं कर्तव्यं एतदर्थं शास्त्रकृता वचनं न निरमायि' भूख लगे तो भोजन करना चाहिये इसलिए शास्त्रकार ने वचन जिस प्रकार निर्माण नहीं किया उसी प्रकार लोकसिद्ध कार्य पुंल्लिङ्गादि व्यवस्था स्वतः लोक या कोशादि से अवगत करनी चाहिये।

२८५८ एतिस्तुशास् वृदृजुषः क्यप् ३।१।१०९।

एभ्यः क्यप् स्यात्।

यहां सुपि उपपदे भावे इनकी निवृत्ति है। एति से इण् का ही ग्रहण है इङ् इक् का नहीं क्योंकि वे प्रायः अधिपूर्वक ही रहते हैं। उनका एति निर्देश उपपन्न नहीं होगा। अतः व्याकरण अध्ययन ज्ञान का प्रयोजन भगवान् भाष्यकार ने 'अध्येयम् व्याकरणम्' यह कहा, वहां क्यप् न हुआ। इण्वदिकः से 'अधीत्या = स्मर्त्तव्या माता' यहां इक् से क्यप् हुआ है।

इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ, जुष् इनसे क्यप् होता है। उपनेय में तो ईङ् गतौ दैवादिक से यत् प्रत्यय है। इण् का 'इत्यः' यहां तुक् के लिए वक्ष्यमाण सूत्र है—

२८५९ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ६।१।७१।

इत्यः। स्तुत्यः। शास इदङ्हलोः। शिष्यः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्यः यहां कर्म में क्यप् प्रत्यय कर तुक् आगम है। गमनक्रियाजन्य फलाश्रय जो मार्ग उसको इत्य कहते हैं। स्तुत्यः = उत्कर्ष गुणबोध जनक व्यापारार्थक स्तु से कर्म में क्यप् प्रत्यय तुक् स्तुत्य से स्तवनक्रिया कर्म श्रेष्ठ जन। रघु में 'स्तुत्यं स्तुतिभिः।' प्रयोग है। शिष्यः = शासितुं योग्यः शिष्यः। शासु अनुशिष्टौ = प्रवृत्तिपर्यवसायी शासेरर्थः = शास् का अर्थ आज्ञा देकर कार्य में प्रवृत्ति कराकर उस आज्ञाप्य ने कार्य किया या नहीं उसका भी निरीक्षण करना यह आज्ञापक के कर्तव्य में सन्निविष्ट है। शास् क्यप् शास इदङ् से इकारादेश शासिवसि से षत्व शिष्यः = अनुशासन करने योग्य।

वृ इति वृञो ग्रहणं न वृङः, वृत्यः। वृङस्तु 'वार्याः' ऋत्विजः। आदृत्यः। जुष्यः पुनः क्यबुक्तिः परस्यापि ण्यतो बाधनार्था। अवश्यस्तुत्यः। शंसिदुहिगुहिभ्यो वा० इति काशिका। शस्यम्, शंस्यम्। दुह्यम्, दोह्यम्, गुह्यम्, गोह्यम्। प्रशस्यस्य श्रः। ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः। इति सूत्रद्वयबलाच्छंसेः सिद्धम्। इतरयोस्तु मूलं मृग्यम्। ॐ आङ्पूर्वादञ्जेः संज्ञायामुपसंख्यानम् ॐ। अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणादिषु बाहुलकात् करणे क्यप्, अनिदिताम् इति नलोपः। आज्यम्।

'यतिस्तुशास्' सूत्र में वृपद से वृञ् का ग्रहण है वृत्यः। वृङ् से ण्यत् वार्याः = यशार्थ स्वीकार करने योग्य वेदाध्यायिनः ब्राह्मणाः। 'ईडवृन्द' इस ज्ञापन से वृङ् का ग्रहण नहीं वहां ईडवृद्धि साहचर्य से 'आत्मनेपदीः' वृङ् का ग्रहण है। आदर = सत्कार करने योग्य में कर्म में क्य आदृत्यः। प्रीति एवं सेवनार्थक जुषी धातु से कर्म में क्यप् जुष्यः = सेव्यः। या प्रीत्याश्रयो जनः। क्यप् की अनुवृत्ति आती पुनः सूत्र में क्यबुक्ति इस लिए है कि परत्व के कारण प्राप्त जो ण्यत् उसको भी बाधनार्थ है।

ओरावश्यके से प्राप्त ण्य का अवकाश अवश्यलाव्यम् में है। आवश्यकविवक्षा में क्यप् का अवकाश 'स्तुत्यः' यहां है, 'अवश्यस्तुत्यः' यहां उभय की प्राप्ति से परत्वात् प्राप्त ण्यत् को पुनः क्यप् की उक्ति ने बाधकर क्यप् किया। काशिकाकार कहते हैं कि शंस् दुह् गुह से क्यप् विकल्प से होता है पक्ष में ण्यत्। जहां क्यप् होगा वहां 'अनिदिताम्' से नकार का लोप होता है। यहां काशिकोक्ति में बीज क्या है उसपर परामर्श करने पर यह ज्ञान हुआ कि 'प्रशस्यस्य श्रः' निर्देश एवं ईडवृन्द इस सूत्र से शंस् को क्यप् सिद्ध है, किन्तु अन्य धातु द्वय से क्यप् की उत्पत्ति में कोई प्रमाण अद्यावधि अनुपलब्ध है जो अन्वेष्य है। आङ् पूर्वक अञ्ज् से क्यप् होता है ऐसा कहना चाहिये संज्ञारूप अर्थ में।

आज्यम्। यहां बहुल ग्रहण से करण में क्यप् हुआ है। यहां ण्यत् एवं नलोपविधान न किया, कुत्व एवं तित्स्वर रूप आपत्तिद्वय होती। क्यजन्त आज्यशब्द यहां पदकारों ने अवग्रह करके पाठ नहीं किया। अतः पदच्छेद नहीं होता है यहां भाष्यकार ने कहा है कि 'न लक्षणेन पदकारा अनुवर्त्याः, पदकारैस्तु लक्षणमनुवर्त्यम्' इति। लक्षण पदकारों का अनुगमन नहीं करता है, पदकारों को ही चाहिये कि लक्षण मर्यादा का वे अनुसरण स्वयं करें। यही शास्त्रीय सिद्धान्त की घोषणा है। अवान्तर पद रहने पर भी क्वचित् पदविभाग का अभाव विपरीत अर्थादि की सम्भावना से न की जाय यह तो अन्यमार्ग है। हवन साधनीभूत द्रव्यविशेष को आज्य कहते हैं।

२८६० ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः ३।१।११०।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृत, वृत्यम्। वृध् वृध्यम्, क्लृपिचृत्योस्तु-कल्प्यम्, चर्त्यम्। तपरकरणं किम्, कृत्, कीर्त्यम्। अनित्यण्यन्ताश्चुरादय इति णिजभावे ण्यत्। णिजन्तात्तु यदेव।

क्लृप् एवं चृत को छोडकर ऋकार है उपधा में जिनको ऐसे धातुओं से पर क्यप् होता है। वृत्यम्। वृध् से वृध्यम्। कृप् से ण्यत् लत्व के असिद्धत्व के कारण या ऋलृ की परस्पर सवर्ण संज्ञा के कारण इसको भी ऋदुपध माना गया है। कृप् सामर्थ्ये। चृती हिंसाग्रन्थनयोः ण्यत् चर्त्यम्। ऋत में तपरत्व करण से दीर्घ ऋकारोपध से क्यप् नहीं होता है किन्तु ण्यत् कीर्त्यम्। यहां ण्यत् एवं ऋकार को इकार दीर्घ। चुरादित्व प्रयुक्त णिज् प्रत्यय अनित्य है जहां णिज् का अभाव वहां ण्यत् एवं जहां णिजन्त वहां अचोयत् से यत् प्रत्यय होता है।

२८६१ ईच खनः ३।१।१११।

चात् क्यप्। आदृगुणः, खेयम्। 'इच' इति ह्रस्वः सुपठः।

खन् धातु से क्यप् प्रत्यय होता है, नकार के स्थान में ईकार आदेश होता है। आदृगुण से गुण करके खेयम् की सिद्धि हुई। विदारण जनक व्यापारार्थक खनु धातु से विदारण रूपफलाश्रय रूपकर्म में क्यप् प्रत्यय हुआ है। खेयम् = क्षेत्रम् शङ्कुलं वा। खन् का नकार को ह्रस्व इकारादेश या दीर्घ ईकारादेश कर गुण से खेयम् की ही सिद्धि होती है। दीर्घ ईकार का जब श्रवण नहीं तब तो लाघवार्थ इकारादेश ह्रस्व करना ही उचित है 'इच' इति ह्रस्वः सुपठः।

विमर्श—दीर्घ को पढ़ने वाले सूत्रकार का यह आशय है कि यहां इ इ प्रश्लेष है। एक इकार आदेशार्थ है द्वितीय इकार बाधक बाधनार्थ है। खायते खन्यते वहां ये विभाषा सावकाश है, इकारादेश का अवकाश जहां आकारादेश अप्राप्त है वहां है, एवं जहां उभय की प्राप्ति है वहां परत्व एवं अन्तरङ्गत्व के कारण आत्व प्राप्त है, 'ये विभाषा' में विषय सप्तमी 'ये' है। यकारादि बुद्धि प्रसङ्ग में पूर्व आकारादेश ही होता है। ईकार तो क्यप् सन्नियोगशिष्ट विधीयमान होने के कारण बहिरङ्ग है। अन्तरङ्ग आत्व को बाधनार्थ प्रश्लेष से द्वितीय इकारविधि आवश्यक ही है। अतः सूत्रकार ने 'ईच' दीर्घोच्चारण किया।

दीर्घ ग्रहण के प्रत्याख्यानवादियों का आशय यह है कि इकार आदेश अन्तरङ्ग है वह परनिमित्त को अपेक्षा न कर के विधीयमान है, क्यप् सन्नियोगशिष्ट ही वह केवल है। आकारादेश तो बहिरङ्ग है, सूत्र में 'ये' परसप्तम्यन्त है, असति बाधके सूत्रघटक जितनी सप्तमियां है वे सब औपश्लेषिकाधिकरण बोधक जो सप्तमी तदन्त है। भाष्यकार ने भी कहा है कि 'तस्मिन्निति परिभाषायां जागरूकायां सत्सप्तम्याश्रयणमयुक्तम्' इति। 'ये' को विषयसप्तम्यन्त स्वीकार में कोई भाष्यसम्मत प्रमाण नहीं है। प्रकृत में अन्तरङ्ग इकारादेश से बहिरङ्ग आकारादेश का बाध उचित है। मात्रालाघवार्थ इकार आदेश ह्रस्व ही पढ़ना चाहिये। इस लाघव भी 'ये' पर सप्तमी जो न्यायतः प्राप्त है उसमें प्रसाद है 'द्विर्वेद सुवेद भवति' इस न्यायसे।

सूक्ष्म विचार यहां प्रस्तुत करते हैं कि ह्रस्व इकार विधान कर गुण से 'खेयम्' की सिद्धि करने पर 'ह्रस्वस्य पितिकृति' इस तुक् विधायक शास्त्र की दृष्टि में 'आदृगुणः' यह एकादेशशास्त्र असिद्ध है इस कारण ह्रस्वस्य सूत्र से खेयम यहां तुक् आगम अनिष्ट की प्रसक्ति होगी। असिद्ध विधायक शास्त्र है 'षत्वतुकोरसिद्धः' यह शास्त्र है वह षत्व एवं तुक् करने में एकादेश शास्त्र को असिद्धत्व बोधन करता है, अतः दीर्घ ईकार का ही विधान उचित है। यह कथन भी अनुचित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सा है। 'शकहुषु' भाष्य प्रयोग से वह असिद्धत्व पदान्त एवं पदादि का एकादेश को पत्व या तुक् करने में असिद्ध बोधन करता है। अत एव वृक्षे छत्रम् यहां ह्रस्वाश्रय 'छे च' से तुक् न हुआ नित्य किन्तु 'दीर्घात् पदान्ताद्वा' से विकल्प से तुक् हुआ। सूत्रकार का दीर्घ पाठ उचित है। भाष्यकारादि का ह्रस्व पाठ सुपठ नहीं है। यह पङ्क्ति प्रसिद्ध है, इसे याद रक्खो। परीक्षक गण भी पूंछते हैं।

२८६२ भृञोऽसंज्ञायाम् ३।१।११२।

भृत्याः कर्मकराः। भर्तव्या इत्यर्थः। क्रियाशब्दोऽयं न तु संज्ञा। ❀ समश्च बहुलम् ❀। संभृत्याः। संभार्याः। असंज्ञायामेव विकल्पार्थमिदं वार्तिकम्। असंज्ञायां किम्, भार्या नाम क्षत्रियाः। अथ कथं भार्या वधूः इति? इह हि 'संज्ञायां समज'-इति क्यपा भाव्यम्। संज्ञापर्युदासस्तु पुंसि चरितार्थः। सत्यम्, बिभर्तेः 'भृ' इति दीर्घान्तात् क्र्यादेर्वा ण्यत्। क्यप् तु भरतेरेव 'तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य' इति परिभाषया।

संज्ञा से भिन्न अर्थ में भृञ् धातु से क्यप् प्रत्यय होता है। शुद्ध यौगिकार्थ बोधक भृत्याः = का अर्थ कर्म करने वाले हैं यह संज्ञावाचक नहीं है। * सम् उपसर्ग पूर्वक भृञ् से क्यप् विकल्प से होता है। पक्ष में ण्यत् प्रत्यय। यह वार्तिक भी संज्ञा से भिन्न अर्थ में क्यप् विधायक है। जहां संज्ञा होगी वहां भार्या क्षत्रिया यही होगा क्यप् नहीं हुआ यहां। वधू अर्थ में संज्ञा प्रतीयमान है वहां 'संज्ञायां समज' से क्यप् होने योग्य है। सूत्रस्थ 'असंज्ञायाम्' यह पर्युदास पुंस्त्वविशिष्ट संज्ञा में क्यप् के अभाव में बोधनार्थ है क्र्यादि गण पठित से या भृ दीर्घ ऋकारान्त धातु से ण्यत् से भार्या वधूः की सिद्धि है।

क्यप् प्रत्यय तो भ्वादि गण पठित भृ से होता है। डुभृञ् अनेकानुबन्ध घटित से क्यप् नहीं होता है। परिभाषा है एकानुबन्ध विशिष्ट के ग्रहण में २ या तीन अनुबन्धों से युक्त का ग्रहण नहीं होता है। स चासौ अनुबन्धस्तदनुबन्धः तस्य ग्रहणं तस्मिन् सति नातदनुबन्धकस्य ग्रहणम्—इस परिभाषा के बल से।

२८६३ मृजेर्विभाषा ३।१।११३।

मृजेः क्यब् वा स्यात् पक्षे ण्यत्। मृज्यः।

मृज् धातु से विकल्प से क्यप् प्रत्यय होता है। पक्ष में ण्यत् होगा। ऋकारोपध के कारण नित्य क्यप् प्राप्त था उसको बाधकर विकल्प से क्यप् हुआ। मृज्यः। कर्म में क्यप् है।

२८६४ चजोः कुघिण्यतोः ७।३।५२।

चस्य जस्य च कुत्वं स्यात् घिति ण्यति च प्रत्यये परे। ❀ निष्ठायामनिट इति वक्तव्यम् ❀। तेनेह न, गर्ज्यम्। मृजेर्वृद्धिः मार्ग्यः।

घित् प्रत्यय या ण्यत् प्रत्यय पर में रहते चकार एवं जकार को कुत्व होता है। निष्ठा प्रत्यय में अनिट् धातु का जो चकार एवं जकार उसको कुत्व होता है ऐसा कहना चाहिये। गर्ज्यम् यहां कुत्वाभाव इस कारण है। मृज् से ण्यत् वृद्धि कुत्व मार्ग्यः।

२८६५ न्यङ्क्वादीनाञ्च ७।३।५३।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुत्वं स्यात्। न्यङ्कुः। नावञ्चेरित्युप्रत्ययः।

न्यङ्कादि धातुओं को कुत्व होता है। न्यङ्कुः। नावञ्चेः सूत्र से उप्रत्यय हुआ है। "कृष्ण-सार-रुरु-न्यङ्कु-रङ्कु-शम्बर-रोहिषाः" वे समानार्थक पर्य्याय वाचक शब्द कोष में निर्दिष्ट है।

२८६६ राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ३।१।११४।

एते सप्त क्यबन्ता निपात्यन्ते राज्ञा सोतव्योऽभिषवद्वारा निष्पादयितव्यः। यद्वा लतात्मकः सोमो राजा स सूयते=खण्ड्यतेऽत्रेत्यधिकरणे क्यप्। निपातनाद् दीर्घः। राजसूयः। राजसूयम्। अर्धर्चादिः।

सरत्याकाशे सूर्यः। कर्तरि क्यप्। निपातनादुत्वम्। यद्वा षू प्रेरणे तुदादिः। सुवति = कर्मणि लोकं प्रेरयति, क्यपो रुट्। मृषोपपदाद् वदेः कर्मणि नित्यं क्यप्। मृषोद्यम्। विशेष्यनिघ्नोऽयम्। 'उच्छ्रायसौन्दर्यगुणा मृषोद्याः।' रोचतेः रुच्यः। गुपेरादेः कत्वं च संज्ञायाम्। सुवर्णरजतभिन्नं धनं कुप्यम्। गोप्यम् अन्यत्। कृष्टे स्वयमेव पच्यन्ते कृष्टपच्याः कर्मकर्तरि। शुद्धे तु कर्मणि कृष्ट-पाक्याः। न व्यथतेऽव्यथ्यः।

राजसूय, सूर्य, मृषोद्य, रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य, अव्यथ्य, ये क्यप् प्रत्ययान्त पद निपातन से सिद्ध होता है। तृतीयान्त राजन् उपपद रहते षुञ् अभिषवे से क्यप् निपातनात् दीर्घ राजसूयः, राजसूयम्, पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक उभयलिङ्गक अर्धर्चादि गण पठित होने से है। स्नान क्रिया द्वारा राजकर्तृक यज्ञविशेष को राजसूय कहते हैं। अथवा लतात्मक लतास्वरूप सोमलता को भी राजा कहते हैं वह कूट कर उसके जल से स्नानक्रिया सम्पादित की जाय जहां उसको राजसूय कहते हैं। यहां अधिकरण अर्थ में क्यप् प्रत्यय हुआ। निपातन से दीर्घ रूढ्यर्थ में निपातन भी। अश्व-मेध ज्योतिष्टोमादि में अतिप्रसङ्ग नहीं है। सूर्यः—आकाश में गमनक्रिया कर्ता। सृ धातु से कर्ता में क्यप् निपातन से उत्व रपरत्व एवं 'हलि च' से दीर्घ हुआ। अथवा प्रेरणार्थक षू से क्यप् एवं रुडागम लोकों को स्वकर्तव्य कर्म में सूर्य से प्रेरणा मिलती है वह प्रेरक सूर्य है। मृषा उपपद में रहते वद धातु से कर्म में नित्य क्यप् होता है। सम्प्रसारण पूर्वरूप यह विशेष्याधीन है। मृषोद्यम्। रेवतकपर्वत की ऊंचाई एवं सुन्दरता गुण कविवर्णित मिथ्या है। मृषोद्याः गुणाः। यहां गुण पुंल्लिङ्ग विशेष्य है अतः पुंल्लिङ्ग हुआ। रुच्य—गुप् से क्यप् आदि वर्ण को संज्ञा में कुत्व होता है। सुवर्ण रजतभिन्न जो धन उसे कुप्य कहते हैं। अन्य धनादिक को गोप्य कहते हैं। कर्मकर्ता में कृष्टपच्या हैं। शुद्ध कर्म से कृष्टपाक्या यहां ण्यत् कुत्व। नञ् पूर्वक व्यथ धातु से क्यप् प्रत्यय हुआ। अव्यथ्याः।

२८६७ भिद्योद्ध्यौ नदे ३।१।११५।

भिदेरुज्झेश्च क्यप् स्यात्। उज्झेर्धत्वञ्च। भिनत्ति कुलं भिद्यः। उज्झत्युदकमुद्ध्यः। नदे किम्? भेत्ता, उज्झिता।

नद अर्थ होने पर भिद्य उद्ध्य निपातन होता है। अर्थात् भिद् एवं उज्झ से क्यप् प्रत्यय होता है। उज्झ् धातु को धकार अन्तादेश होता है। कूल को विदारणकर्ता अर्थ में भिद्यः। जल को त्याग करने वाला वह नद रहते उद्ध्यः। नदविशेष की संज्ञा जहां नहीं है वहां कर्ता में तृच् प्रत्यय होता है भेत्ता। उज्झिता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२८६८ पुष्यसिध्यौ नक्षत्रे ३।१।११६।

अधिकरणे क्यब् निपात्यते। पुष्यन्त्यस्मिन्नर्थाः पुष्यः। सिद्ध्यन्त्यस्मिन् सिद्ध्यः।

नक्षत्र अर्थ में पुष्य एवं सिध्य निपातन होता है। पुष् से अधिकरण में क्यप् प्रत्यय हुआ। उसी प्रकार षिध् से अधिकरण में क्यप्। दोनों पर्यायवाचक हैं। नक्षत्र से भिन्न अर्थ में अधिकरण में ल्युट् से पोषणम्। सेधनम्। सिध्यपुष्य दोनों पर्य्याय वाचक है तो भी स्वरूप परत्व के कारण सूत्र में द्वन्द्व से निर्देश है। "पुष्ये तु सिध्यतिष्यौ" इत्यमरः।

२८६९ विपूयविनीयजित्यामुञ्जकल्कहलिषु ३।१।११७।

पूङ्नीञ्जिभ्यः क्यप्। विपूयो मुञ्जः। रज्ज्वादिकरणाय शोधयितव्य इत्यर्थः। विनीयः कल्कः, पिष्ट औषधिविशेष इत्यर्थः। पापं वा। जित्यो हलिः। बलेन कृष्टव्य इत्यर्थः। कृष्टसमीकरणार्थं स्थूलकाष्ठम् (हलिः) अन्यत् तु विपव्यम्। विनेयम्। जेयम्।

मुञ्ज कल्क हलि अर्थ में विपूय, विनीय, जित्य निपातित होते हैं। पूङ्, णीञ् जि इन धातुओं से पूर्व वर्णित अर्थ में क्यच् प्रत्यय निपातन से हुआ, विपूयः = रस्सी बनाने के लिए संशोधित मूञ्ज। विनीयः कल्कः = पिष्ट ओषधिविशेष या पाप। जित्यो हलिः = जोती हुई पृथ्वी को समान करने के लिए स्थूल काष्ठ विशेष। जहां मुञ्जादि अर्थ नहीं वहां यत् गुण अवादेश से विपव्यम्। विनेयम्। जेयम्। अचो यत् से यत् प्रत्यय हुआ। कल्क को पाप कहते हैं—महाभारत में "तपो न कल्कोऽध्ययनं न कल्कः" इसको उपक्रम करके "तान्येव भावोपहतानि कल्कः"। "कल्कः पापाशये पापे दम्भे विट्किट्टयोरपि" यह कोशोक्ति है।

२८७० प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः ३।१।११८।

❀ छन्दसीति वक्तव्यम् ❀। प्रतिगृह्यम्। अपिगृह्यम्। लोके तु प्रतिग्राह्यम्। अपिग्राह्यम्।

प्रतिपूर्वक एवं अपिपूर्वक ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय होता है, वह छन्द में ही होता है। लोक में हलन्त लक्षण ण्य प्रत्यय ही होता है। इस वार्तिक को वृत्तिकार ने सूत्र में ही प्रक्षिप्त किया है। क्यप् का उदाहरण केवल वेद में है—"यत्तस्य न प्रतिगृह्यं तस्मान्नापि गृह्यम्।" लोकोपयोगि उदाहरण ण्यत् प्रत्ययान्त ही है।

२८७१ पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च ३।१।११९।

अवगृह्यम्। प्रगृह्यं पदम्। अस्वैरी परतन्त्रः। गृह्यकाः शुकाः। पञ्जरादिबन्धनेन परतन्त्रीकृता इत्यर्थः। बाह्यायां ग्रामगृह्या सेना = ग्रामबहिर्भूतेत्यर्थः। स्त्रीलिङ्गनिर्देशात् पुन्नपुंसकयोर्न। पक्षे भवः पक्ष्यः। दिगादित्वाद् यत्। आर्यैर्गृह्यते आर्यगृह्यः। तत्पक्षाश्रित इत्यर्थः।

पद, अस्वैरि, बाह्य, पक्ष्य, इन अर्थों में ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय होता है। अवग्रह का अर्थ विच्छेद है। जिस पद का अवग्रह = विच्छेद किया जाय उसको अवगृह्यम् कहते हैं। प्रगृह्यम् =

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिसका प्रग्रह हो उस पद को। प्रकृतिभावादि को प्रग्रह कहते हैं, जिसकी प्रगृह्यसंज्ञा हुई हो उसको प्रगृह्य कहते हैं यह वृत्तिमत् है। अवयवधर्म समुदाय में आरोप कर पदावयववृत्ति प्रगृह्यत्व का पद में आरोप है अवगृह्य एवं प्रगृह्य शब्द प्रातिशाख्य में पदविशेष परत्वेन रूढ है।

स्वेन ईरितुं शीलमस्य स्वैरी = स्वतन्त्र न जो स्वतन्त्र अर्थात् परतन्त्र अर्थ में गृह्यकाः शुकाः = पिञ्जडे में पकड़ कर रखे गये तोते = शुक। गांव से बाहर स्थित सेना अर्थ में ग्राम-गृह्या सेना। बाह्या यह सूत्र में स्त्रीलिङ्गनिर्देश है।

अतः पुंलिङ्ग एवं नपुंसक में इसकी प्रवृत्ति नहीं है। पक्ष्य में सप्तम्यन्त से यत् प्रत्यय है। दिगादिलक्षण यह यत् है। सज्जनों से गृहीत पक्ष को आर्यगृह्य कहते हैं।

२८७२ विभाषा कृवृषोः ३।१।१२०।

क्यप् स्यात्। कृत्यम्। वृष्यम्। पक्षे—

कृ एवं वृष् धातु से विकल्प से क्यप् होता है। पक्ष में ण्यत् होता है वक्ष्यमाण सूत्र से।

२८७३ ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४।

ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत् स्यात्। कार्यम्। वर्ष्यम्।

ऋवर्णान्त एवं हलन्त धातु उनसे ण्यत् होता है। कार्यम्। वर्ष्यम्।

२८७४ युग्यं च पत्त्रे ३।१।१२१।

पत्त्रम् = वाहनम्। युग्यो गौः। अत्र क्यप् कुत्वञ्च निपात्यते।

वाहन अर्थ में युग्य निपातन होता है, युज् से क्यप् प्रत्यय एवं निपातन से कुत्व हुआ। वाहन में जोतने योग्य बैल को युग्य कहते हैं। पतन्ति अनेन अर्थ में पत् से करण में ष्ट्रन् प्रत्यय से पत्त्रम् बना है।

२८७५ अमावस्यदन्यतरस्याम् ३।१।१२२।

अमोपपदाद् वसेरधिकरणे ण्यत्। वृद्धौ सत्यां पाक्षिको ह्रस्वश्च निपात्यते। अमा=सह वसतोऽस्यां चन्द्रार्कावमावास्या। ऋहलोर्ण्यत्। चजोरिति कुत्वम्। पाक्यम्। ॐ पाणौ मृजेर्ण्यद् वक्तव्यः ॐ। ऋदुपध-लक्षणस्य क्यपोऽपवादः। पाणिभ्यां सृज्यते पाणिसर्ग्या रज्जुः। ॐ सम-वपूर्वाच्च ॐ। समवसर्ग्या।

अमा शब्द उपपद में रहते वस् धातु से अधिकरण अर्थ में ण्यत् प्रत्यय होता है। वृद्धि होने पर विकल्प से ह्रस्व निपातन से होता है। सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों जिस दिन एक साथ रहें उस तिथि को अमावास्या या अमावस्या कहते हैं। पाक्यम् हलन्तलक्षण ण्यत् प्रत्यय एवं चजोः से कुत्व हुआ। पाणि शब्द उपपद में रहते सृजधातु से ण्यत् प्रत्यय होता है। ऋकारोपध लक्षण क्यप् का यह बाधक वचन है। हाथ से बीन कर बनी हुई रस्सी में पाणिसर्ग्या। सम्पूर्वक अवपूर्वक सृज् से क्यप् होता है। या समव पूर्वक सृज् से क्यप् होता है। समवसर्ग्या।

२८७६ न क्तादेः ७।३।५९।

क्तादेर्धातोः कुत्वं न। राज्यम्। वार्तिककारस्तु चजोरिति सूत्रे निष्ठाया-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनिट इति पूरयित्वा न कादेरित्यादि प्रत्याचख्यौ। तेन अर्जितर्जिप्रभृतीनां न कुत्वं निष्ठायां सेट्त्वात्। ग्रुचुग्लुञ्चुप्रभृतीनान्तु कादित्वेऽपि कुत्वं स्यादेव। सूत्रमते तु यद्यपि विपरीतं प्राप्तं तथापि यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्।

कवर्ग के वर्ण है आदि में जिनको ऐसे धातुओं के अवयव चकार एवं जकार वर्ण को प्राप्त कुत्व नहीं होता है। वार्तिककारने 'चजोः' सूत्र में जो धातु निष्ठा प्रत्यय में अनिट् रहें वहां कुत्व चकार जकार को निमित्त होने पर होता है ऐसा कहकर 'न कादेः' सूत्र का खण्डन किया है। निष्ठा में सेट्क अर्ज एवं तर्ज धातु है अतः वहां भी कुत्व का जित् णित् प्रत्यय में अभाव ही है। एवं निष्ठा में अनिट् कादि होते हुए भी ग्रुचुग्लुञ्चु आदि को कुत्व होता ही है। सूत्रकार के मत से कुत्वाभाव प्राप्त था। वार्तिककार के मत से कुत्व प्राप्त है विपरीत व्यवस्था है तो भी उत्तरोत्तर मुनि से अभिप्रेत अर्थ में पूर्व पूर्व मुनियों की सम्मति ही है, विरोध परस्पर नहीं है, 'यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्' वचन से अर्थात् भगवान् पाणिनि आचार्य कहते हैं कि मेरे द्वारा विरचित सूत्र का जो कात्यायन या पतञ्जलि व्याख्या करें या खण्डनादि करें वह मुझे मान्य ही है। ज्ञान के क्षेत्र में परस्पर अभिनिवेश नहीं है। सुभाषित युक्तियुक्त वचन मुझे उनका आदरणीय है। 'बुद्धेः फलमनाग्रहः' यह पवित्रतम सिद्धान्त पर आधुनिक विद्वत्समाज ध्यान दें। शास्त्रीयक्षेत्र में रागद्वेष या पक्षपातादि या माण्डलिक वादादि से समाज की परिस्थिति का दिग् दर्शन में यह उच्चतम सिद्धान्त आदर्श बोधन कराता है।

२८७७ अजिव्रज्योश्च ७।३।६०।

न कुत्वम्। समाजः। परिव्राजः।

अज गतिक्षेपणयोः। व्रज गतौ। अज एवं व्रज धातु में चजोः से कुत्व नहीं होता सम्पूर्वक अज् से घञ् प्रत्यय कुत्वाभाव समाजः परिव्राजः यहां भी घञ् प्रत्यय कुत्व का अभाव है।

२८७८ भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः ७।३।६१।

एतयोरेतौ निपात्यौ। भुज्यतेऽनेनेति भुजः = पाणिः। हलश्चेति घञ्। न्युब्जन्त्यस्मिन्निति न्युब्जः। उपतापो रोगः। पाण्युपतापयोः किम्, भोगः समुद्रः।

पाणि एवं उपताप अर्थ में क्रमशः भुज एवं न्युब्ज निपातन से सिद्ध होते हैं। अर्थात् घञ् में कुत्व एवं गुणाभाव है। निपूर्वक उद्ज् धातु से घञ् में कुत्वाभाव एवं दकार को बकार है। भुजः = पाणिः करणे घञ् हलश्च सूत्र से हुआ। उपताप = रोग अर्थ में न्युब्जा हुआ। हाथ एवं रोग से भिन्न अर्थ में भोगः घञ् गुण कुत्व। समुद्रः।

२८७९ प्रयाजानुयाजौ यज्ञाङ्गे ७।३।६२।

एतौ निपातौ यज्ञाङ्गे। पञ्च प्रयाजाः। त्रयोऽनुयाजाः यज्ञाङ्गे किम्, प्रयागः। अनुयागः।

यज्ञ का अङ्ग होने पर प्रयाज एवं अनुयाज इनका निपातन होता है। प्रपूर्वक अनुपूर्वक यज धातु से घञ् प्रत्यय होता है, एवं कुत्वाभाव है। यज्ञाङ्ग नहीं वहां घञ् कुत्व है। प्रयागः। अनुयागः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२८८० वञ्चेर्गतौ ७।३।६३।

कुत्वं न, वञ्च्यम्। गतौ किम्? वङ्क्यं काष्ठम्, कुटिलीकृतमित्यर्थः।

गति अर्थ में वञ्च् धातु से ण्यत् विधान होने पर चकार को कुत्वाभाव होता है। गतिभिन्न में कुत्व होता है—वङ्क्यम् = टेढ़ा काष्ठ।

२८८१ ओक उचः के ७।३।६४।

उचेर्गुणकुत्वे निपात्येते के परे। ओकः शकुन्तवृषलौ। इगुपधलक्षणः कः। घञा सिद्धे अन्तोदात्तार्थमिदम्।

क प्रत्यय पर में रहते उच् धातु को गुण एवं कुत्व निपातन से होता है। ओकः = शकुन्त एवं वृषल। यहां उच् समवाये से इगुपध सूत्र से क प्रत्यय हुआ है। यद्यपि यह रूप घञ् प्रत्यय से सिद्ध हो सकता है किन्तु प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्तार्थ यह आवश्यक है, घञ् में आदि उदात्त से शेष-निघात से अन्त अनुदात्त होगा जो अनिष्ट है।

२८८२ ण्य आवश्यके ७।३।६५।

कुत्वं न। अवश्यपाच्यम्।

आवश्यक अर्थ में जहाँ ण्यप्रत्यय होता है वहां कुत्व का अभाव होता है। अवश्यपाच्यम्। अवश्य विक्लित्तिरूप फलाश्रय के लिए योग्य वस्तु।

२८८३ यजयाचरुचप्रवचर्चश्च ७।३।६६।

ण्ये कुत्वं न। याज्यम्। याच्यम्। रोच्यम्। प्रवाच्यं ग्रन्थविशेषः। ऋच्-अर्च्यम्। ऋदुपधत्वेऽप्यत एव ज्ञापकात् ण्यत्। ❀ त्यजेश्च ❀। त्याज्यम्। त्यजिपूज्योश्चेति काशिका। तत्र पूजेर्ग्रहणं चिन्त्यम्, भाष्यानुक्तत्वात्। ❀ ण्यत् प्रकरणे त्यजेरुपसंख्यानम् ❀ इति हि भाष्यम्।

यज, याज, रुच्, प्रपूर्वक वच्, ऋच् इनको कुत्व नहीं होता है ण्यत् पर में रहते। इलन्त-लक्षण ण्यत् करके चजोः से प्राप्त कुत्व का अभाव इसने किया। अर्च्यम्—यहां ऋकार उपधा में है, तो भी इस ज्ञापन से ण्यत् हुआ। यदि क्यप् होता तो कुत्व अप्राप्त स्वतः है इससे कुत्वाभावार्थ ऋच् ग्रहण इसमें क्यों किया? वह व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि ऋदुपध से भी ण्यत् होता है। त्यज् धातु को कुत्वाभाव होता है ण्यत् में। त्याज्यम्। त्यज, पूज को कुत्वाभाव काशिकाकार कहते है। भाष्यकार से अनुक्त होने से काशिकोक्ति में पूज का ग्रहण अप्रामाणिक है। ण्यत् प्रकरण में केवल कुत्वाभावार्थ त्यज् ग्रहण है—ऐसा भाष्य में कहा गया है।

२८८४ वचोऽशब्दसंज्ञायाम् ७।३।६७।

वाच्यम्। शब्दाख्यायान्तु वाक्यम्।

ण्यत् प्रत्यय पर रहते अशब्दसंज्ञा होने पर वच् के चकार का कुत्वाभाव है। अशब्दसंज्ञा होने पर कुत्व होता है। वाक्यम् = पदसमूह को वाक्य कहते हैं। 'सुप्तिङन्त चयो वाक्यं क्रिया वा कारकान्विता'।

सुबन्तचय या तिङन्तचय या सुबन्ततिङन्तचय को वाक्य कहते है। १ राजः पुरुषः, २—पचति भवति। ३—चैत्रः तिष्ठति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२८८५ प्रयोज्यनियोज्यौ शक्यार्थे ७।३।६८।

प्रयोक्तुं शक्यः प्रयोज्यः, नियोक्तुं शक्यो नियोज्यो भृत्यः ।

शक्य अर्थ होने पर प्रयोज्य एवं नियोज्य दोनों का निपातन होता है, अर्थात् ण्यत् पर में रहते चजोः सूत्र से कुत्वाभाव होता है ।

२८८६ भोज्यं भक्ष्ये ७।३।६९।

भोग्यमन्यत् । ❀ ण्यत्प्रकरणे लपिदभिभ्यां चेति वक्तव्यम् ❀ । लाप्यम् । दभिर्धातुष्वपठितोऽपि वार्तिकबलात् स्वीकार्य्यः । दाभ्यः ।

भक्षण क्रिया कर्म होने पर भोज्य यह निपातन से सिद्ध होता है । अर्थात् ण्यत् प्रत्यय पर में रहते कुत्वाभाव होता है । उपभोग योग्य अर्थ में कुत्व से भोग्यम् = राज्यम्, सुखं वा । ण्यत् प्रकरण मे लप् एवं दभ से ण्यत् प्रत्यय हो—ऐसा कहना चाहिये ।

धातुओं का जो नियत पाठ है उसमें दभ् धातु नहीं है तो भी वार्त्तिककारोक्तिबल से इसको स्वीकार करना चाहिये । अर्थात् धातुपाठ में इसका पाठ था लेखकप्रमाद से भ्रष्ट है ऐसा अनुमान करना । दाभ्यः । "न ता वशन्ति न दभाति तस्करः", "विष्णुर्गोपा अदाभ्यः" ।

२८८७ ओरावश्यके ३।१।१२५।

उवर्णान्ताद् धातोर्ण्यत् स्याद् अवश्यंभावे द्योत्ये । लाव्यम् । पाव्यम् ।

आवश्यक अर्थ में उवर्णान्त धातु के ण्यत् प्रत्यय होता है । कर्म में लूञ् एवं पूञ् से ण्यत् वृद्धि आवादेश हुआ । लाव्यम् । पाव्यम् ।

२८८८ आसुयुवपिरपिलपिन्रपिचमश्च ३।१।१२६।

षुञ्—आसाव्यम् । यु मिश्रणे—याव्यम् । वाप्यम् । राप्यम् । लाप्यम् । त्राप्यम् । चाम्यम् ।

आङ् पूर्वक षु, यु, वप्, रप्, लप्, त्रप्, चम्, इन से ण्यत् प्रत्यय होता है । यहां षुञ् अभिषवे का ग्रहण है, प्रसवार्थक एवं ऐश्वर्यार्थक का नहीं । इसमें प्रमाण कृत्यल्युटोंऽथं बहुलम्' में बहुल ग्रहण ही है । यु मिश्रणे का यहां ग्रहण है, युञ् बन्धने का ग्रहण नहीं है निरनुबन्धक-ग्रहणे न सानुबन्धकस्य इस परिभाषा के बल से । यहां यु प्रभृति का पूर्व में द्वन्द्व समास कर के पश्चात् आसु के साथ पुनः द्वन्द्व समास से साधुत्व करना, अतः 'अल्पाच्तरम्' से यु का पूर्व-निपात आसु के पूर्व में न हुआ ।

२८८९ आनाय्योऽनित्ये ३।१।१२७।

आङ्पूर्वान्नयतेर्ण्यदायादेशश्च निपात्यते । दक्षिणाग्निविशेष एवेदम् । स च गार्हपत्यादानीयतेऽनित्यश्च सततमप्रज्वलनात् । आनेयोऽन्यो घटादिः, वैश्य-कुलादेरानीतो दक्षिणाग्निश्च ।

अनित्य में आनाय्य निपातन से सिद्ध होता है । आङ् पूर्वक नी धातु से ण्यत् प्रत्यय होता है एवं आय आदेश निपातन से सिद्ध होता है । दक्षिणाग्नि विशेष में ही यह प्रयोग होता है । यह दक्षिणाग्नि गार्हपत्य से आनीत होने से अविच्छिन्न प्रकार से अप्रज्वलित होने से अनित्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। जहां गार्हपत्य से आनीत नहीं है वस्तु वहां आनेय रूप होता है, वैश्यकुल से आनीत अग्नि या घट।

२८९० प्रणाय्योऽसंमतौ ३।१।१२८।

संमतिः = प्रीतिविषयीभवनं कर्म व्यापारः। तथा भोगेष्वादशेऽपि संमतिः। प्रणाय्यश्चौरः। प्रीत्यनर्ह इत्यर्थः। प्रणाय्योऽन्तेवासी, विरक्त इत्यर्थः। प्रणेयोऽन्यः।

असम्मति अर्थ में प्रणाय्य यह निपातन से सिद्ध होता है। प्रपूर्वक नी धातु से ण्यत् प्रत्यय एवं आय् एवं णत्व निपातित है। लोगों की जो प्रीति तद्विषयीभवन जिसमें है उसको सम्मति कहते हैं, लोगों की प्रीति तद्विषयीभवन जिनमें नहीं है चौरादि में वह असम्मति अर्थ है। प्रणाय्यः चौरः प्रीत्यनर्हः। प्रणाय्योऽन्तेवासी = छात्रः। यहां विरक्त अर्थ है। असम्मति से भिन्न में प्रणेयः। यत् गुण णत्व है। प्रीतिविषयीभवन के अपेक्षा शरीरकृत लाघव से प्रीति ही सम्मति है। अथवा सम्मतिः = प्रीतिविषयेषु नास्ति यस्य नास्ति स विरक्तोऽसम्मतिः तन्त्र से अर्थद्वय है। दोनों अर्थ यहां गृहीत है।

२८९१ पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवाससामिधेनीषु ३।१।१२९।

पीयतेऽनेन पाय्यं मानम्। ण्यत् धात्वादेः पत्वञ्च। आतो युगिति युक्। सम्यङ् नीयते होमार्थमग्निं प्रतीति सान्नाय्यं हविर्विशेषः। ण्यद् आयादेशः समो दीर्घश्च निपात्यते। निचीयतेऽस्मिन् धान्यादिकं निकाय्यो निवासः। अधिकरणे ण्यत्, आय् धात्वादेः कुत्वं च निपात्यते। धीयतेऽनया समिदिति धाय्या ऋक्।

मान, हवि., निवास, सामिधेनी, इन अर्थों में क्रमशः पाय्य, सान्नाय्य, निकाय्य, धाय्य इनकी सिद्धि निपातन से होती है। मान अर्थ में भी धातु से करण अर्थ में ण्यत् प्रत्यय धातु के आदि वर्ण को पकार निपातन से होता है। मीयते अनेन इति पाय्यम् = मानम्—यहां मीनाति-मिनोति सूत्र से आकारादेश करने पर आतो युक् से युक् हुआ। सान्नाय्यम् = हविर्विशेष अर्थ में सम् पूर्वक नी धातु से ण्यत् प्रत्यय आय् आदेश, सम् को दीर्घ निपातन से है। होम के लिए अच्छी तरह जो अग्नि के प्रति हविष्यान्न लाया जाय उसको सान्नाय्य कहते हैं। निकाय्यः = निवास के अर्थ अधिकरण स्थान अर्थ में निपूर्वक चिञ् धातु से अधिकरण अर्थ में ण्यत्, आयादेश, धातु के आदि को कुत्व निपातन से होता है। धान्य आदि वस्तुएँ जहां रक्खी जांय उसको निकाय्य कहते हैं। निकाय्य = निवास। धीयते अनया समित् इसमें करण में ण्यत् प्रत्यय धाय्या = यहां सब सामधेनी गृहीत नहीं है किन्तु समिध्यमानवती के विना या समिद्धवती के विना विकृतियों में प्रक्षिप्त "पृथुयाजा अमर्त्यः" इत्यादिक ही। यह यहां विशेष है। वह निपातन का रूढ्यर्थत्वप्रयुक्त है। निपातन धाय्या से ही सामिधेनी अर्थलब्ध है पुनः सूत्र में क्रियमाण सामिधेनी ग्रहण प्रयोग-विशेष के उपलक्षणार्थक ही है। इससे यह लब्ध हुआ कि असामिधेनी ऋक् में भी 'धाय्या शंसति' यह है—नहि शस्त्रेण समित् प्रक्षिप्यते।

२८९२ क्रतौ कुण्डपाय्यसञ्चाय्यौ ३।१।१३०।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुण्डेन पीयतेऽस्मिन् सोमः कुण्डपाय्यः क्रतुः। सञ्चीयतेऽसौ संचाय्यः।

क्रतु अर्थ में कुण्डपाय्य, सञ्चाय्य निपातन से सिद्ध होते हैं। कुण्ड = पात्र से पान-क्रिया कर्म जो सोम इस अर्थ में तृतीयान्त कुण्ड उपपद में रहते या धातुसे अधिकरण अर्थ में यत् प्रत्यय होता है एवं युगागम निपातन से होता है। ण्यत् जो प्रकृत था उसका यहां निपातन कीजिये, ण्यत् में आतो युक् से युक् भी सिद्ध होता युक् का निपातन भी न करना पड़ेगा; यह लाघव भी है, यह कथन उचित नहीं है ण्यत् करने पर तित् स्वरितम् की यहां प्रवृत्ति तो इष्ट नहीं है वह होती। यत्प्रत्ययविधान में यतोऽनावः से आद्युदात्त, कृदुत्तरप्रकृतिस्वर है। मन्त्र में यह प्रयोग है—प्रणाय्यात् कुण्डपाय्ये इति। सञ्चाय्यः = सम्पूर्वक चिधातु से ण्यत् एवं आयादेश निपातन से होता है। क्रतु से भिन्न अर्थ में कुण्डपानम्, संचेयम्।

२८९३ अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः ३।१।१३१।

अग्निधारणार्थे स्थलविशेषे एते साधवः। अन्यत्र तु परिचेयम्। उपचेयम्। संवाह्यम्।

यहां ज्वलनार्थक अग्नि शब्द का ग्रहण नहीं है किन्तु अग्नि के धारण के लिए ईंटों के चयन से निर्मित स्थल = वेदिका रूप का यहां ग्रहण है। अग्निधारणार्थ स्थल विशेष अर्थ में परिचाय्य, उपचाय्य, समूह्य ये निपातन से सिद्ध होते हैं। अर्थात् स्थलविशेष वाच्य होने पर परिपूर्वक चि धातु से ण्यत् एवं आय् आदेश होते हैं, सम्पूर्वक वह से सम्प्रसारण एवं दीर्घ का भी निपातन है। उपपूर्वक चि से ण्यत् आय् निपातित है। स्थल विशेष से भिन्न में परिचेयम्। उपचेयम्। संवाह्यम्। प्रथम दो में यत् तृतीय में ण्यत् है।

२८९४ चित्याग्निचित्ये च ३।१।१३२।

चीयतेऽसौ चित्योऽग्निः। अग्नेश्चयनमग्निचित्या।

चित्य एवं अग्निचित्य ये दोनों निपातन से सिद्ध होते हैं। सकर्मक चि धातु से कर्म में क्यप् प्रत्यय हुआ यत् को बाधकर तुक् आगम-चित्यः राशीकरण योग्य अग्नि अर्थ है। अग्नि का चयन अग्निचित्या क्यप् तुक् टाप् दीर्घ। इस सूत्र में अग्नि की अनुवृत्ति जो है वह चित्य में ही विशेषणतया भासमान है, अग्निचित्य में नहीं। भावार्थकत्व के कारण अग्निवाचकत्व का सम्भव नहीं है। अग्नि से अन्यत्र चेयम् यही होता है। शब्दकौस्तुभ में भाव में य प्रत्यय एवं तुक् निपातन लब्ध है, क्यप् नहीं। अन्तोदात्त है क्यप् करने पर तो पित्त्वनिमित्तक अनुदात्तत्व करने पर धातुस्वर से चित्य की तरह आद्युदात्त होने लगेगा-ऐसा कहा गया है।

प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च ३।३।१६३। त्वया गन्तव्यम्। गमनीयम्। गम्यम्। इह लोटा बाधा मा भूदिति पुनः कृत्यविधिः स्त्र्यधिकारादूर्ध्वं वा सरूपविधिः क्वचिन्नेति ज्ञापयति। तेन क्त्वल्युट्तुमुन्खलर्थेषु नेति सिद्धम्।

विधि अनुज्ञा एवं प्राप्त काल में लोट् एवं कृत्यप्रत्यय होता है। लोट् से बाध न हो एतदर्थ सूत्र में विशेष रूप से कृत्यपद का उच्चारण किया है अतः बाध्यबाधक भाव यहां नहीं है। वा-सरूपविधि स्त्र्यधिकार से ऊर्ध्व कहीं नहीं है, कृत्यग्रहण सामर्थ्य से क्त ल्युट् तुमुन् एवं खलर्थ में वा सरूप विधि नहीं है यदि होती तो लोट् विकल्प से बाध करता, पक्ष में कृत्य प्रत्यय होते। सूत्रोक्त कृत्यग्रहण व्यर्थ होकर पूर्वोक्तार्थ में ज्ञापक है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्हे कृत्यतृचश्च ३।३।१६६। स्तोतुमर्हः स्तुत्यः=स्तुतिकर्म । स्तोता=स्तुतिकर्ता। लिङ्ग बाधा मा भूदिति कृत्यतृचोर्विधिः।

अर्ह अर्थ में धातु से कृत्य प्रत्यय एवं तृच् होता है चकार से लिङ् लकार होता है। सकर्मक स्तु से कर्म में क्यप् एवं तृच् होता है। स्तुत्य का अर्थ जिसकी स्तुति की जाय वह स्तवन क्रिया का कर्म। स्तोता—उत्कर्षगुणबोधजनकव्यापार का कर्ता। यहाँ कर्ता में तृच् प्रत्यय है। लिङ् बाध नित्य न करें एतदर्थ पुनः इसमें कृत्य एवं तृच् का विशेषरूप से ग्रहण किया है। कृत्य एवं तृच् ग्रहणसामर्थ्य से बाध्यबाधक भाव न हुआ।

२८९५ भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा ३।४।६८।

एते कृत्यन्ताः कर्तरि वा निपात्यन्ते। पक्षे 'तयोरेव'—इति सकर्मकात् कर्मणि अकर्मात्तु भावे ज्ञेयाः। भवतीति भव्यः, भव्यमनेन वा। गायतीति गेयः साम्नामयम्, गेयं सामानेन वा इत्यादि।

भव्य, गेय, प्रवचनीय, उपस्थानीय, जन्य, आप्लाव्य, आपात्य, ये कृत्यप्रत्ययान्त कर्ता में विकल्प से निपातित होते हैं। पक्ष में 'तयोरेव' सूत्र से सकर्मक धातु से कर्म में प्रत्यय एवं अकर्मक धातु से भाव में प्रत्यय होते हैं। अकर्मक आत्मधारणानुकूलव्यापाररूप सत्तार्थक भू धातु से कर्ता मे यत् प्रत्यय गुण अवादेश हुआ। कर्ता में अप्राप्त यत् भव्यगेय सूत्र से निपातित हुआ विकल्प से कर्ता अर्थ यत् से उक्त है अतः प्रथमान्त कर्ता है। भाव में यत् अकर्मकत्व प्रयुक्त भू धातु से पक्ष में हुआ। यहां प्रत्यय यत् प्रकृत्यर्थ क्रिया का अनुवादक है। कृत से कर्ता अनुक्त है अतः कर्तृवाचक से तृतीया अनेन = चैत्रेण यहां हुई। शब्दार्थक गै धातु से कर्ता में अप्राप्त यत् प्रत्यय का विधान कर आत्व करके ईद्यति से ईकारादेश हुआ गुण गेयः अयम् साम्नाम्। सामरूप कर्म अनुक्त होने से कर्म में कर्तृकर्मणोः से षष्ठी हुई। सकर्मक गा से कर्म साम रूप अर्थ में यत् से कर्ता अनुक्त है अतः अनेन यहाँ तृतीया हुई, कर्म उक्त से साम प्रथमान्त हुआ।

शकि लिङ् च ३।३।१७२। चात् कृत्याः। वोढुं शक्यो वहनीयो वाह्यः। लिङ्ग बाधा मा भूत् इति कृत्योक्तिः। लाघवादनेनैव ज्ञापनसम्भवे प्रैषादिसूत्रे कृत्याश्चेति सुत्यजम्। अर्हे कृत्यतृचोर्ग्रहणञ्च।

इति कृत्सु कृत्यप्रक्रिया

शक्य अर्थ में लिङ् लकार होता है, चकार से कृत्य प्रत्यय होता है। लिङ् नित्य बाध न करें अतः चकारबल से कृत्य प्रत्यय भी हुवा। एक ज्ञाप्यवचन के अनेक ज्ञापकवचन न मानकर इसी चकार से ज्ञापकत्व सम्भव था पुनः प्रैषातिसर्ग में एवं अर्हे सूत्र में कृत्यतृजादिग्रहण न करना ही उचित है।

पं० श्री बालकृष्ण पञ्चोलि विरचित रत्नप्रभा में कृदन्त में कृत्य प्रक्रिया समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ पूर्वकृदन्तप्रक्रिया

२८९६ ण्वुल्तृचौ ३।१।१३३।

धातोरेतौ स्तः कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे । युवोरनाकौ-कारकः । कर्ता । वोढुमर्हो वोढा । कारिका । कर्त्री । गाङ्कुटेति ङित्त्वम्-कुटिता । अञ्चिण-दित्युक्तेर्न ङित्त्वम्-कोटकः । विज इट्-विजिता । हनस्तोऽचिण्णलोः-घातकः । आतोयुक् दायकः । नोदात्तोपदेशस्येति न वृद्धिः-शमकः, दमकः । अनिटस्तु-नियामकः ।

जनिवध्योश्च-जनकः । वध हिंसायाम्-वधकः । रधिजभोरचि-रन्धकः । जम्भकः । नेट्यलिटि रधेः—रधिता, रुद्धा । मस्जिनशोरिति नुम्, मङ्क्ता, नंष्टा, नशिता । रभेरशब्लिटोः । रम्भकः, रब्धा ।

लभेश्च-लम्भकः, लब्धा । तीषसह-एषिता, एष्टा । सहिता, सोढा । दरिद्रातेरालोपः-दरिद्रिता । ण्वुलि न-दरिद्रायकः । कृत्यल्युट इत्येव सूत्र-मस्तु, यत्र विहितस्ततोऽन्यत्रापि स्युरित्यर्थात् । एवञ्च बहुलग्रहणं योग-विभागेन कृन्मात्रस्यार्थेऽभिचारार्थम्—पादाभ्यां ह्रियते पादहारकः, कर्मणि ण्वुल् ।

❀ क्रमेः कर्तर्यात्मनेपदविषयात् कृत इण्निषेधो वाच्यः ❀ । प्रक्रन्ता । कर्तरीति किम् ? प्रक्रमितव्यम् । आत्मनेपदेति किम् ? संक्रमिता । अनन्यथा-भावो विषयशब्दः । तेन अनुपसर्गाद् वेति विकल्पार्हस्य न निषेधः—क्रमिता । तदर्हत्वमेव तद्विषयत्वम् । तेन क्रन्तेत्यपीति केचित् । गमेरिडित्यत्र परस्मै-पदग्रहणं तङ्ग्रहणयोरभावं लक्षयति । सञ्जिगमिषिता । एवं न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः—विवृत्सिता । यङन्तात् ण्वुल् अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वान्न वृद्धिः—पापचकः । यङ्लुगन्तात्तु-पापाचकः ।

धातु से कर्ता अर्थ में ण्वुल् प्रत्यय एवं तृच् प्रत्यय होता है ।

इस सूत्र में कर्तरि कृत से कर्ता का सम्बन्ध है । यु एवं वु को क्रमशः अन एवं अक आदेश होता है । यु में एवं वु में अनुनासिक उकार अन्त में है उन्हीं को आदेश विधान से यु मिश्रणा-मिश्रणयोः धातु का अनादेश न हुआ । उत्पत्तिजनकव्यापारार्थक कृञ् धातु से उस व्यापार का जनक रूप कर्ता अर्थ में ण्वुल् प्रत्यय हुआ उसको अकादेश ऋकार की आर्वृद्धि कृदन्ततदादित्व-प्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा विभक्ति रुत्व विसर्ग कारकः = उत्पत्तिजनकव्यापारजनकः । कर्ता, तृच् प्रत्यय की आर्धधातुकसंज्ञा गुण रपरत्व कर्ता पूर्वोक्तार्थ ही इसका भी । उत्तरदेशसंयोगजनक व्यापारार्थक वह धातु से तृच् प्रत्यय कर्ता में सहिवहोः से ओकार, ढत्व धत्व ष्टुत्व ढलोप प्रथमैक-वचन में वोढा—वहनक्रियाकर्ता । कार्यकर्त्री स्त्री अर्थ में कृ से ण्वुल् अक टाप् दीर्घ प्रत्यय-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थात् से इकार कारिका। कृ से तृच् स्त्रीत्व में ऋन्नेभ्यो से ङीप् यण् कर्त्री। कुट धातु से तृच् इडागम गाङ्कुटादि से ङिद्वत् ङिति च से लघूपध गुणाभाव कुटिता।

ण्वुल् में ङित्त्वाभाव से गुण कोटकः। विजिता में विज इट् से ङित्त्वप्रयुक्त गुणाभाव हुआ। प्राणवियोगजनकव्यापारार्थक हन् से ण्वुल् अक उपधा वृद्धि हनस्तः से तकारादेश कुत्व घातकः = नाशक्रियाकर्ता। ददातीति दायकः—ण्वुल् अकादेश युक् का आगम हुआ। उपशमनार्थक शम् एवं दमनार्थक दम् इन दोनों से ण्वुल् प्रत्यय अकादेश के बाद उपधावृद्धि का 'नोदात्तोपदेशस्य' से निषेध शमकः। दमकः। अनुदात्तोपदेश यम् से ण्वुल् अक वृद्धि नियामकः।

प्रादुर्भावार्थक जनी धातु से ण्वुल् अकादेश जनिवध्योश्च से उपधावृद्धिनिषेध से जनकः। वध हिंसार्थक से कर्ता में ण्वुल् अकादेश वृद्धिनिषेध से वधकः। रध् एवं जभ् धातु से ण्वुल् अकादेश रधिजभोरचि से नुम् रन्धकः, जम्भकः, रधिता, रद्धा यहां इडागम रधादिभ्यश्च से विकल्प हुआ इडागम पक्ष में प्राप्त नुम् का नेट्यलिटि से निषेध हुआ। मस्ज धातु से तृच् मस्जिनशोः से नुम् सकार लोप मङ्क्ता। णश धातु से तृच् इडागम विकल्प में इडागम के अभाव में नुम् नष्टा। पक्ष में नशिता। रम्भकः यहां ण्वुल् अक नुम्। लम्भकः ण्वुल् अक नुम् लभेश्च से हुआ। लब्धा यह तृच्प्रत्ययान्तरूप है।

इष से तृच् तीषसह से विकल्प से इडागम ऐषिता, पक्ष में एष्टा। सह से तृच् वि० इडागम सहिता, पक्ष में सहिवहोः से ओकार ढत्व धत्व ष्टुत्व ढलोप सोढा। दरिद्रा से तृच् आकारलोप इडागम से दरिद्रिता। ण्वुल् में आकारलोप का अभाव युगागम दरिद्रायकः।

'कृत्यल्युटः' इतना ही सूत्र कीजिये जहां कृत प्रत्यय विहित है उससे अन्यत्र भी वे होंगे पुनः सूत्र में अनेक अर्थों को लानेवाला बहुल ग्रहण क्यों किया? वह व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है योगविभाग द्वारा कि कृत्प्रत्ययमात्र का अर्थ जो शास्त्रतः प्रतिपदोक्त रूप से निर्दिष्ट है उससे भी भिन्न अर्थों में कृत्प्रत्यय होते हैं। कर्ता में विधीयमान ण्वुल् कर्म में हुआ पादहारकः में। हरण क्रिया में प्रकृष्टोपकारक पाद है हरणक्रिया कर्म वस्तु अर्थ में प्रत्यय हुआ।

आत्मनेपदविषयक जो क्रम धातु उससे कर्ता में विहित जो कृत् प्रत्यय उसको वलादि लक्षण इडागम का प्रतिषेध इस वार्तिक से हुआ। प्र पूर्वक क्रम से तृच् इडागमाभाव है प्रक्रन्ता। यहां प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् से आत्मनेपदविषयता गम्यमान है। कर्म में तव्य प्रत्यय से प्रक्रमितव्यम् यहां इस वार्तिक से इडागम का निषेध न हुआ। संक्रमिता यहां आत्मनेपदविषयता का अभाव से तृच् को इडागम हुआ। विषय शब्द अनन्यभावार्थक है अर्थात् आत्मनेपद ही रहे पाक्षिक परस्मैपद का अत्यन्ताभाव जहां रहे वहां ही इडागम का अभाव होता है अतः 'अनुसर्गाद् वा' से विकल्प आत्मनेपद योग्य से इडागम का इस वा० से निषेध न हुआ क्रमिता। कोई कहता है कि आत्मनेपद की योग्यतायुक्त अर्थ में विषय शब्द है अनन्यभावार्थ नहीं, इस व्याख्या में क्रन्ता भी होता है यहां भी इडागम का निषेध हुआ। यह मत केचित् शब्द से उपेक्ष्य है सर्वसम्मत नहीं है।

गमेरिट् सूत्र में परस्मैपदग्रहण जो विद्यमान है वह तङ् एवं शानच् उनके अभाव का बोधन करता है अतः सम्पूर्वक गम् से सन् सन्यङोः से द्वित्व हलादिशेष सन्यतः से अभ्यास को इत्त्व, आर्धधातुकस्य से सन् को इडागम धत्व सन्नन्त से तृच् पुनः इडागम अकार का लोप सञ्जिगमिषिता हुआ।

विवृत्सिता। यहां इडागम का निषेध न वृङ्स्यश्रुतुदृभ्यः से हुआ। पच् से यङ् द्वित्वादि अभ्यास का दीर्घोऽकितः से दीर्घ कर पापच्य से ण्वुल् अक अकार का अतो लोपः से लोप यकार का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यस्य हलः से लोप अकारलोप का स्थानिवद्भाव से अत उपधायाः से वृद्धि का अभाव पापचकः। यङ्लुक् पापच् से ण्वुल् अक प्रातिः सु रुत्व विसर्ग पापचकः।

२८९७ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३।१।१३४।

नन्द्यादेर्ल्युर्ग्रह्यादेर्णिनिः पचादेरच् स्यात्। नन्दयतीति नन्दनः। जनमर्दयतीति जनार्दनः। मधु सूदयतीति मधुसूदनः। विशेषेण भीषयतीति विभीषणः। लवणः। नन्द्यादिगणे निपातनाण्णत्वम्। ग्राही। स्थायी। मन्त्री। विशयी। वृद्ध्यभावो निपातनात्। विषयी, इह षत्वमपि। परिभावी, परिभवी, पाक्षिको वृद्ध्यभावो निपात्यते।

पचादिराकृतिगणः, शिवशमरिष्टस्य करे, कर्मणि घटोऽठच् इति सूत्रयोः करोतेर्घटेश्चाच् प्रयोगात्। अच्प्रत्यये परे यङ्लुक्विधानाच्च। केषाञ्चित् पाठस्त्वनुबन्धासञ्जनार्थः। केषाञ्चित् प्रपञ्चार्थः। केषाञ्चिद् बाधकबाधनार्थः। पचतीति पचः। नदट्, चोरट्, देवट् इत्यादयश्चितः। नदी, चोरी, देवी। दीव्यतेरिगुपधेति कः प्राप्तः। जारभरा। श्वपचा। अनयोः कर्मण्यण् प्राप्तः। न्यङ्कादिषु पाठात् श्वपाकोऽपि।

यङोऽचि चेति लुक्, न धातुलोप इति गुणवृद्धिनिषेधः। चेक्रियः। नेन्यः। लुवः। पोपुवः। मरीमृजः। ॐ चरिचलिपतिवदीनां च द्वित्वमभ्यासे चाभ्यासस्येति वक्तव्यम् ॐ। आगमस्य दीर्घत्वविधानसामर्थ्याद् अभ्यासह्रस्वो हलादिशेषश्च न। चराचरः। चलाचलः। पतापतः। वदायदः। ॐ हन्तेर्घत्वञ्च ॐ। घत्वमभ्यासस्य उत्तरस्य त्वभ्यासाच्चेति कुत्वम्। घनाघनः। ॐ पाटेर्णिलुक् चोक्च दीर्घश्चाभ्यासस्य ॐ। पाटूपटः। पक्षे चरः। चलः। पतः। वदः। हनः। पाटः। रात्रेः कृतीति वा नुम्। रात्रिञ्चरो रात्रिचरः।

नन्द्यादिगणपठित धातु से ल्यु प्रत्यय, ग्रह्यादि से णिनि प्रत्यय, एवं पचादिगणपठित धातुओं से पर अच् प्रत्यय होता है। नन्दयति अर्थ में नन्दन होता है। दुष्टजनों को पीडा देने वाले इस अर्थ में जन कर्म उपपद रहते पीडार्थक अर्द से ल्यु अनादेश उपपदतत्पुरुषसमास से जनार्दनः = भगवान् विष्णु। मधुकर्मोपपद सूद नाशार्थक से ल्यु अनादेश उप० तत्पु० मधुसूदनः। विशेषतः भीषयते विभीषणः। भियो हेतुभये षुक् से षुक् का आगम है। लवणः ल्यु अन णत्व निपातनलभ्य है किसी सूत्र-विशेष से यह अप्राप्त है उसका लवण गण में उच्चारण आचार्यकर्तृक है अतः णत्व हुआ।

णिनि—ग्रह् आदि से णिनि प्रत्यय कर्ता में होता है, इन् अवशिष्ट रहता है अत उपधायाः से वृद्धि हुई ग्राही। स्था से णिन् युक् आगम स्थायिन् प्र० ए० व० में स्थायी। गुप्त परिभाषणार्थ मन्त्र से णिनि मन्त्री। विशयी यहां वृद्धि का अभाव निपातनलभ्य है। षिञ् बन्धने-विषयी। यहां आदेशप्रत्यययोः से प्राप्त षत्व का सात्पदाद्योः से निषेध से अप्राप्तषत्व निपातनलभ्य है एवं वृद्धि का अभाव भी निपातनलभ्य है। परिपूर्वक भू धातु से णिनि विकल्प से वृद्धि एवं तदभाव से रूपद्वय परिभावी, परिभवी। पचादि से अच् प्रत्यय है, आकृतिगण पचादि है। दो सूत्र में 'करे' एवं 'घटः' प्रयोग से यह आकृति गण से वे दोनों अच् प्रत्ययान्त शब्दों की सिद्धि हुई यदि आकृति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गण न होता तो करोति करः घट से घटः यहां अच् प्रत्यय न होता। निर्देश सुसङ्गतार्थ आकृतिगण पचादि है। उसमें अच् प्रत्यय पर में रहते यङोऽचि च यङ् लुक् का विधान भी प्रमाण है, द्विर्बद्धं सुबद्धम् भवति न्यायतः निर्विवाद यह सिद्ध हुआ कि पचादि आकृतिगण अवश्य है। पचादि गण में कुछ शब्दों का पाठ अनुबन्ध के संयोगार्थ है। कुछ का पाठ प्रपञ्चार्थ है। कुछ का पाठ बाधक प्रत्ययों का बाधनार्थक है। पचतीति पचः अच् प्रत्यय कर्ता में हुआ। नदट् में टकार से अच् प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग में ङीपर्थ है। देवट् अच् ङीप् देवी। दिव् से इगुपध क प्रत्यय प्राप्त था उसको बाधकर अच् प्रत्यय हुआ। जारं बिभर्ति यहां कर्मण्यण् से अण् प्रत्यय प्राप्त था उसको बाधकर अच् प्रत्यय से जारभरा टाबन्त हुआ। इसी प्रकार अण् को बाधकर अच् श्वपचा। न्यङ्क्वादि पाठ से अण् प्रत्यय कुत्व से श्वपाकः यह भी होता है। चेक्रिया—कृ धातु से यङ् द्वित्वादि यङ् लुक् न धातुलोप से गुण का निषेध अच् प्रत्यय संयोगपूर्वत्व से यण् न हुआ अचिश्नु से इयङादेश चेक्रियः। नेन्यः। लोलुवः यहां यङ् उसका लुक् द्वित्वादि उवङ् अभ्यास का गुणो यङ्लुकोः से गुण है। ओः सुपि की अप्राप्ति से यणादेश न हुआ। पोपुवः, मरीभृजः रीगृऋदुपधस्य च से रीगागम हुआ।

चर्, चल्, पत्, वद् इनको अच् प्रत्यय पर में रहते विकल्प से द्वित्व होता है, अभ्यास को आक् का आगम होता है। आगम में दीर्घविधान से अभ्यास को ह्रस्व नहीं होता है एवं हलादिशेष की भी अप्रवृत्ति है। चराचरः। चलाचलः। पतापतः। वदावदः। हन् में अभ्यास के हकार को घत्व भी होता है पूर्वोक्त कार्य तो होते ही हैं। अभ्यासोत्तरखण्ड के हकार को तो अभ्यासाच्च से घत्व होता ही है कुत्वविधान से। पाटि से णिच् का लुक् होता है, द्वित्व, उक्, एवं अभ्यास को दीर्घ होता है। पाटूपटः। द्वित्वादि कार्य के अभाव पक्ष में केवल अच् प्रत्यय से चरः, चलः, आदि रूप होते हैं। रात्रि उपपद में चर से अच् रात्रेः कृति विभाषा से विकल्प नुम् अनुस्वार परसवर्ण से रात्रिञ्चरः पक्ष में रात्रिचरः दो रूप हुए।

१८९८ इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ३।१।१३५।

एभ्यः कः स्यात्। क्षिपः। लिखः। बुधः। कृशः। ज्ञः। प्रीणाति इति प्रियः। किरतीति किरः। वा सरूपविधिना ण्वुल्तृचावपि—क्षेपकः, क्षेप्ता।

इगुपध धातु ज्ञा, प्री, कृ इनसे कर्ता में कप्रत्यय होता है। फेंकने वाला क्षिपः। लिखने वाला लिखः। जानने वाला बुधः। दुर्बलतायुक्त कृशः। जानने वाला ज्ञः। प्रसन्न करने वाला प्रियः क प्रत्यय इयङादेश। किरः। वा सरूप न्याय से ण्वुल् तृच् भी होते हैं क्षेपकः। तृच्-क्षेप्ता।

२८९९ आतश्चोपसर्गे ३।१।१३६।

कः स्यात्। श्यादव्यधेति णस्यापवादः। सुग्लः। प्रज्ञः।

उपसर्ग उपपद में होने पर आकारान्त धातु से क प्रत्यय होता है यह सूत्र श्यादव्यध से प्राप्त ण प्रत्यय का बाधक है। सुग्लः। प्रज्ञः। यहां ग्लै हर्षक्षये धातु से आत्व क प्रत्यय उपपद समास आकारलोप है। प्रज्ञा+क; स० आ० लोप सु रुत्वविसर्ग प्रज्ञः प्रकृष्टज्ञानवान्।

२९०० पाघ्राध्माधेट् दृशः शः ३।१।१३७।

पिबतीति पिबः। जिघ्रः। धमः। धयः। धया कन्या। धेटष्टित्त्वात् स्तनन्धयीति खशीव ङीप् प्राप्तः खशोऽन्यत्र नेष्यत इति हरदत्तः। पश्यतीति पश्यः। घ्रः संज्ञायां न, व्याघ्रादिभिरिति निर्देशात्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पा घ्रा ध्मा, धेट् दृश् इनसे कर्ता में शप्रत्यय होता है। पानक्रियाकर्ता अर्थ में पिबः। गन्धग्रहणकर्ता अर्थ में जिघ्रः। धमः ध्मा को धम् आदेश पाघ्राध्मा से हुआ। पान अर्थ में धेट् से शप्रत्यय अयादेश धयः। कन्या अर्थ में धया। स्तनन्धयी यहां धेट् धातु टित् है अतः ङीप्स्वरान्त की तरह यहां भी करना। हरदत्त कहते हैं कि खश् से अन्यत्र ङीप् नहीं होता है। दृश से शप्रत्य पश्यादेश हुआ—पश्यः। घ्रा धातु से संज्ञा में शप्रत्यय नहीं होता है व्याघ्रादिभिः निर्देश से।

२९०१ अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यश्च ३।१।१३८।

शः स्यात्। लिम्पः। विन्दः। धारयः। पारयः। वेदयः। उदेजयः। चेतयः। सातिः सुखार्थः सौत्रो हेतुमण्णन्तः—सातयः। वा सरूपन्यायेन क्विपि सात् परमात्मा। सात्वन्तो भक्ताः। षह मर्षणे चुरादिः। हेतुमण्यन्तो वा। साहयः। अनुपसर्गात् किम्, प्रलिपः। ❀ नौ लिम्पेर्वाच्यः ❀। निलिम्पा देवाः। ❀ गवादिषु विन्देः संज्ञायाम् ❀। गोविन्दः। अरविन्दम्।

उपसर्गपूर्वकरहित लिम्प, विन्द, धारि, पारि, वेदि, उत् पूर्वक एजि, चेति, साति, साहि इन धातुओं से श प्रत्यय होता है। भाविनुमधटित लिम्पादि निर्देश से लाभार्थक विन्द का ही ग्रहण हैं, सत्तार्थक का नहीं। धृङ् अवस्थाने, धृञ् धारणे ण्यन्त दोनों का ही ग्रहण यहां है, श्रीहर्ष-महाकाव्य में—"न मद्यमन्त्रोत्तरधारयस्य किम्" यहां परत्व के कारण सूत्रधारआदिवत् कर्म में अण् होना चाहिये, कर्मत्व की अविवक्षा से एवं शेषत्व की विवक्षा शप्रत्यय एवं शेष षष्ठी के साथ समास है। गङ्गाधरः, भूधरः, जलधरः के समान। पारयः=चुरादिण्यन्त कर्मसमाप्ति में पार धातु है। अथवा पॄ पालनपूरणयोः से हेतुमति च से ण्यन्त है। वेदयः—विद चेतनाख्यानादिषु चुरादिः, या ज्ञानादि अर्थवाचक हेतुमण्यन्त है। लिपि विदि से तुदादिभ्यः शः एवं शे मुचादीनाम् से नुम् है। धारि आदि से तो शप्विकरण गुण एवं अयादेश है। सुखार्थक साति सूत्रपठित धातु है। हेतुमण्यन्त वह है। सातयः। क्विप् असरूप पक्ष में सात्=परमात्मा। साहयः—सह मर्षणे चुरादि, अथवा ण्यन्त है। प्रलिपः यहां उपसर्गपूर्वक है श न हुआ कप्रत्यय है।

निपूर्वक लिम्पि से श प्रत्यय है। निलिम्पाः=देवाः। गवादि उपपद होने पर संज्ञा में विन्द से श प्रत्यय होता है। गोविन्दः। अरविन्दम्। गो शब्द का अनेकार्थ है। गाम्-भुवम्, धेनुम्, स्वर्गम्, वेदम्, विन्दति गोविन्दः। कमल का नाम=अरविन्दम्।

२९०२ ददातिदधात्योर्विभाषा ३।१।१३९।

शः स्यात्। ददः। दधः। पक्षे वक्ष्यमाणो णः। अनुपसर्गादित्येव-प्रदः, प्रधः।

अनुपसर्गक दा एवं धा से श प्रत्यय होता है विकल्प से। पक्ष में 'शाद्व्यधा' से ण प्रत्यय यहां जुहोत्यादिगणीय दा, धा का ग्रहण है अन्य का नहीं। ण प्रत्यय में युक् दायः। दायः उपसर्गपूर्वक दा एवं धा से आतश्चोपसर्गे से कप्रत्यय हुआ प्रदः। प्रधः।

२९०३ ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ३।१।१४०।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति शब्द आद्यर्थः। ज्वलादिभ्यः कसन्तेभ्यो णः स्याद् वा। पक्षेऽच्, ज्वालः ज्वलः। चालः। चलः। अनुपसर्गादित्येव, उज्ज्वलः। ॐ तनोतेरुपसंख्यानम् ॐ। इहानुपसर्गादिति विभाषेति च न सम्बध्यते। अवतनोतीत्यवतानः।

सूत्रस्थ इति शब्द आदिअर्थबोधक है। तुदादि गण में पठित ज्वल् से कस् तक के जो धातु उनसे विकल्प से णप्रत्यय होता है। निपातानामनेकार्थत्वम् से इति शब्द का आदि अर्थ उचित ही है। पक्ष में अच् प्रत्यय होता है। पचादि आकृति गण है अतः तन् धातु से णप्रत्यय होता है। यहां अनुपसर्गात् एवं विभाषा का सम्बन्ध नहीं है। अवतानः। कर्ता में णप्रत्यय हुआ।

२९०४ शाद्व्यधास्वसंस्त्रतीणवसावहलिहश्लिषसध्वः ३।१।१४१।

श्यैङ् प्रभृतिभ्यो नित्यं णः स्यात्। श्यैङोऽवश्यतेश्चाऽऽदन्तत्वात् सिद्धे पृथग् ग्रहणमुपसर्गे कं बाधितुम्। अवश्यायः। प्रतिश्यायः। आत्-दायः, घायः, व्याधः। सु गतौ आङ्पूर्वः संपूर्वश्च—आस्रावः। संस्रावः। अत्यायः। अवसायः। अवहारः। लेहः। श्लेषः। श्वासः।

इस सूत्र में अनुपसर्गात् एवं विभाषा इनकी निवृत्ति है। उत्तर सूत्र में अनुपसर्ग ग्रहण से जब वह अनुवृत्त न हुआ तो सन्नियोगशिष्ट विभाषा की भी निवृत्ति स्वाभाविक ही है। श्यैङ् धातु अकारान्त धातु व्यध, आङ् पूर्वक स्रु, सम्पूर्वक स्रु, अतिपूर्वक इण्, अव पूर्वक सो, अवपूर्वक ह लिह, श्लिष् एवं श्वस् इनसे कर्ता में नित्य णप्रत्यय होता है। श्यैङ् में आदेश उपदेशेऽशिति से अकारादेश एवं अवपूर्वक सो (षोऽन्तकर्मणि) को अकारादेश से दोनों आकारान्त धातु निष्पन्न हुए आदन्त धातु से विधीयमान णप्रत्यय सिद्ध ही था पुनः इन दोनों का पृथक् सूत्र में उच्चारण क्यों किया वह व्यर्थ होकर उपसर्ग पूर्वक इन से आतश्चोपसर्गे से प्राप्त कप्रत्यय के बाधनार्थ है, अर्थात् आदन्त लक्षण जो कप्रत्यय उसको बाधकर विशेष रूप से विधीयमान णप्रत्यय किया—अवश्याय आदि में। आदन्त का उदा० दायः, घायः णप्रत्यय एवं युक् का आगम हुआ। व्याधः। आङ् सम् पूर्वक स्रु उभयत्र णप्रत्यय आस्रावः, संस्रावः। अति पूर्वक इण् से णप्रत्यय वृद्धि आय् यण् अत्यायः। अव पूर्वक षोऽन्तकर्मणि से ण आत्व युक् अवसायः। अवह = णप्रत्यय = अवहारः। लिह् ण लेहः। श्लिष्ट ण श्लेषः। श्वस् ण श्वासः।

प्राचीन ने 'स्रु' न पढ़कर स्र्व पढ़ा है वह असङ्गत है, भाष्यादि विरुद्ध वह पाठ है, प्राचीन मत में आस्राव न बनकर आश्रावः बनने पर शिष्ट प्रयोग विरोध आता है—

"अनाश्रवा वः किमहं कदापि वक्तुं विशेषात् परमस्ति शेषः। (श्रीहर्ष)

वचने स्थितः = आश्रवा इति अमरः। यहां सामान्य विहित 'ऋदोरप्' से अप् को बाधकर णप्रत्यय से 'आश्रावः' यह अनिष्टरूपापत्ति प्राचीन मत में होगी अतः वह उपेक्ष्य ही है। लिह् श्लिष् में कप्रत्यय से गुणाभाव प्रसक्त था उस कप्रत्यय को बाधकर णप्रत्यय हुआ है श्लेषः लेह यहां इगुपध लक्षण क प्रत्यय न हुआ।

२९०५ दुन्योरनुपसर्गे ३।१।१४२।

णः स्यात्। दुनोतीति दावः। नीसाहचर्यात् सानुबन्धकाद् दुनोतेरेव णः। दवतेस्तु पचाद्यच्। दवः। नयतीति नायः। उपसर्गे तु प्रद्रवः। प्रणयः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुपसर्ग दु एवं नी से कर्ता में णप्रत्यय होता है। दु दु उपतापे दुनोति दावः = दुःखजनक-व्यापारकर्ता। णीञ् धातुसानुबन्धक साहचर्य से दु दु सानुबन्धक का ही ग्रहण करना स्वादिगण पठित दु गतौ से अच् प्रत्यय ही है दयः। नायः। उपसर्गपूर्वक में पचादि अच् प्रदयः। प्रणयः।

२९०६ विभाषा ग्रहः ३।१।१४३।

णो वा। पक्षेऽच्। व्यवस्थितविभाषेयम्। तेन जलचरे ग्राहः। ज्योतिषि ग्रहः। ❀ भवतेश्च ❀ इति काशिका। भवो देवः संसारश्च। भावाः पदार्थाः। भाष्यमते तु प्राप्त्यर्थाच्चुरादिण्यन्तादच्। भावः।

उपादानार्थक ग्रह धातु से कर्ता अर्थ में विकल्प से णप्रत्यय होता है, पक्ष में अच् प्रत्यय होता है। यह व्यवस्थित विभाषा है, कचित् णप्रत्यय ही होगा, कचित् अच् प्रत्यय ही होगा दोनों एक प्रकृति से विकल्प नहीं होगें। यथा जलचर अर्थ में णप्रत्यय से ग्राहः यही होगा, नक्षत्र तारापे में ग्रहः यही होगा। भूधातु से भी ण एवं पक्ष में अच् होता है यह काशिका-मत है। भवः = संसार या श्रीशङ्कर। भावाः = पदार्थाः = द्रव्यादयः, षट्भाव पदार्थ एवं सप्तम अभाव पदार्थ है। भाष्यकार मत में ण्यन्त भाविधातु से पचादिराकृतिगण से अच् प्रत्यय हुआ एवं णिलोप से भावाः यह सिद्ध हुआ।

२९०७ गेहे कः ३।१।१४४।

गेहे कर्तरि ग्रहेः कः स्यात्। गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम्। तात्स्थ्याद् गृहा दाराः।

गेह कर्ता होने पर ग्रह धातु से कप्रत्यय होता है। ग्रह क ककारेत्संज्ञा, अकार दाराः। ग्रहि-ज्या-से सम्प्रसारण, पूर्वरूप, नपुंसकत्वविवक्षा में सु अम् पूर्वरूप से गृहम् हुआ। धनधान्य आदि को ग्रहण करने वाला = गृहम्। स्त्रियाँ अधिकतर गृह में निवास करती है गृहलक्ष्मी स्वरूप वे है उनको भी गृहस्थिति के कारण गृहाः कहते हैं। तात्स्थ्यात् तच्छब्देन व्यवहारः। गृहशब्द अर्धर्चादि से पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक लिङ्ग है। दाराः पुंल्लिङ्ग है। दारशब्द बहुवचनान्त स्त्रीरूपार्थ बोधक नित्यबहुवचनान्त ही है। एक स्त्री में भी दाराः यही प्रयोग होता है। इसका मूल रहस्य यह है कि प्राचीन भारत में अत्यधिक आदर सूचनार्थ बहुवचन का प्रयोग दार से करते थे वह रिवाज शनैः शनैः रूढि सा बन गया तब कोशादिकार भी नित्यबहुवचनान्त इसको मानने लगें यह भी एक अनुसन्धान का विषय है, गवेषक विचार करें। अभिनिवेश इसमें लेखक का नहीं है। बुद्धेः फलमनाग्रहः। तर्काप्रतिष्ठानात् का जब अनादर न होगा पदार्थ निर्णय में एवं तर्क युक्ति युक्त आदरणीय नहीं होगा तब समाज की स्थिति अन्धं तमः प्रविशति की सदृशी होगी। लिङ्ग शब्दनिष्ठ है, अर्थनिष्ठ नहीं, अतः दार शब्द पुंल्लिङ्ग है।

२९०८ शिल्पिनि ष्वुन् ३।१।१४५।

क्रियाकौशलं शिल्पं तद्वत्कर्तरि ष्वुन् स्यात्। ❀ नृतिखनिरञ्जिभ्य एव ❀। नर्तकः। नर्तकी। खनकः। खनकी। ❀ असि अकेऽने च रञ्जेर्नलोपो वाच्यः ❀। रजकः। रजकी। भाष्यमते तु नृतिखनिभ्यामेव ष्वुन्, रञ्जेस्तु (उ०) 'क्वुन् शिल्पिसंज्ञयोः' इति क्वुन् टाप् रजिका। पुंयोगे तु रजकी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्रियाविषयक निपुणता को शिल्प कहते हैं। शिल्पकलावान् कर्ता इस अर्थ में धातु से ष्वुन् प्रत्यय होता है। षकार, नकार की इत् संज्ञा लोप हैं। नृत खन् एवं रञ्ज इन धातुओं से ही ष्वुन् प्रत्यय होता है। गात्रविक्षेपार्थक ष्वुन् धातु से अकादेश नर्तकाः = नाच क्रिया का कर्ता। स्त्री में पित्त्वप्रयुक्त षिद्गौरादिभ्यश्च से ङीप् हुआ अकार का यस्येति च से लोप है। खननक्रियाकर्ता खनकः। खनकी। अस्, अक, एवं अन पर में रहते रञ्ज के नकार का लोप होता है। भाष्यमत में तो नृत एवं खन् से ही ष्वुन् होता है। शिल्पि या संज्ञा में रञ्ज् से उणादिसूत्र से ष्वुन् प्रत्यय होता है। स्त्रीलिङ्ग में टाबन्त रजिका प्रयोग ही इष्ट है। पुंयोग में ङीन् से रजकी।

२९०९ गस्थकन् ३।१।१४६।

गायतेः थकन् स्यात् शिल्पिनि कर्तरि। गाथकः।

शिल्पी कर्ता होने पर गा धातु से थकन् प्रत्यय होता है। गै शब्द का यहां ग्रहण है, गाङ् गतौ का ग्रहण यहां नहीं है। 'गामादाग्रहणेष्वविशेषः' यह परिभाषा से लाक्षणिक 'गाङ्' का भी ग्रहण होता है। थकन् प्रत्यय गायति के अर्थ विषय को ही शिल्पिरूपार्थ कथन में समर्थ है। गै थकन् आत्व गाथकः।

२९१० ण्युट् च ३।१।१४७।

गायनः। टित्त्वाद् गायनी।

शिल्पी कर्ता होने पर गा धातु से ण्युट् होता है। टित्वके कारण स्त्रीलिङ्ग में गायनी होता है।

२९११ हश्च व्रीहिकालयोः ३।१।१४८।

हाको हाङश्च ण्युट् स्यात् व्रीहौ काले च कर्तरि। जहात्युदकमिति हायनो व्रीहिः। जहाति भावान् इति हायनो वर्षम्। जिहीते प्राप्नोतीति वा।

धान्य एवं समय के कर्ता रहने पर ओहाक् ओहाङ् धातु से ण्युट् होता है। उदककर्मक त्याग कर्ता धान्य में हायनः बना। भावों को = विषयों को त्यागकर्तृभूत वर्ष में हायनः। हा का अर्थ प्राप्ति भी है। भावों को प्राप्त करने वाला।

२९१२ प्रुसृल्वः समभिहारे वुन् ३।१।१४९।

समभिहारग्रहणेन साधुकारित्वं लभ्यते। प्रवकः। सरकः। लवकः।

समाभिहार का अर्थ साधु = सम्यक् कार्य कर्तृत्व है। समभिहार अर्थ में प्रु, सृ, लू से वुन् प्रत्यय होता है।

२९१३ आशिषि च ३।१।१५०।

आशीर्विषयार्थवृत्तेर्धातोर्वुन् स्यात् कर्तरि। जीवतात्, जीवकः। नन्दतात्, नन्दकः। आशीः = प्रयोक्तुधर्मः। आशासितुः पित्रादेरियमुक्तिः।

शुभाशंसनरूप आशीर्वाद रूप अर्थ में धातु से कर्ता अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है। तुम् जीवित रहो ऐसा पिता आदि आशीर्वाद में कहें वहां जीवकः। समृद्धियुक्त तुम हो इस अर्थ में नन्दकः। प्रयोक्ता के शुभ कथन को आशिर्वाद कहते हैं। पिता या गुरुजनादि अपने सन्तान आदि को प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं वह अभ्युदयकारी होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२९१४ कर्मण्यण् ३।२।१।

कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात्। उपपदसमासः। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। 'आदित्यं पश्यति' इत्यादावनभिधानान्न। ❀ शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्योः णः ❀। अपोऽपवादार्थं वार्तिकम्। मांसशीला। मांसकामा। मांसभक्षा। कल्याणचारा। ❀ ईक्षिक्षमिभ्यां च ❀। सुखप्रतीक्षा। बहुक्षामा। कथं तर्हि गङ्गाधरभूधरादयः, कर्मणः शेषत्वविवक्षायां भविष्यन्ति।

कर्म उपपद में रहते धातु से उत्तर कर्ता अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। 'तत्रोपपदं सप्तमी स्थम्' सूत्र से कुम्भादि की उपपदसंज्ञा होती है कुम्भं करोति यह लौकिक विग्रह है, कुम्भ अस् कार यह अलौकिक विग्रह है 'कर्तृकर्मणोः' सूत्र से कर्मवाचक कुम्भ से षष्ठी द्वितीया को बाधकर हुई है, कुम्भकार = कुम्भकर्मकउत्पत्तिजनकवर्तमान कालिकव्यापारजनक कर्ता यह सामान्य शब्दबोध हुआ। विशेष शाब्दबोध प्रकार विस्तार के भय से नहीं किया है। शब्दशक्तिस्वभाव के कारण सूर्यकर्मक चक्षुरिन्द्रियजन्य ज्ञानानुकूल व्यापारजनक इस अर्थ में आदित्यं पश्यति इस विग्रह में अण् प्रत्ययान्त शब्दस्वरूप का अभिधान नहीं है किन्तु अनभिधान ही है।

शील, कम्, भक्ष, आङ् पूर्वक चर, इनसे णप्रत्यय होता है। यह वार्तिक अण् प्रत्यय का बाधक है। ईक्ष एवं क्षम से णप्रत्यय होता। गङ्गाम् धरति, भुवं धरति आदि में अण् होकर गङ्गाधारः भूधारः होना चाहिये? किन्तु पचादित्व प्रयुक्त अच् से धरति धर अच् प्रत्ययान्त रूप कर्म में शेषत्व विवक्षा करके षष्ठी विभक्ति लाकर षष्ठ्यन्त गङ्गा अस् धर का षष्ठीसमास है।

२९१५ ह्वावामश्च ३।२।२।

अण् स्यात्। कापवादः। स्वर्गह्वायः। तन्तुवायः। धान्यमायः।

ह्वा वा मा इन धातुओं से अण् प्रत्यय कप्रत्यय को बाधकर होता है। अकारान्त लक्षण युक् आगम से स्वर्गह्वायः। तनुवायः। धान्यमायः।

२९१६ आतोऽनुपसर्गे कः ३।२।३।

आदन्ताद् धातोरनुपसर्गकर्मण्युपपदे कः स्यान्नाऽण्। आतो लोपः। गोदः। पार्ष्णिव्रम्। अनुपसर्गे किम्, गोसन्दायः। ❀ क्विधौ सर्वत्र सम्प्रसारणिभ्यो ङः ❀। ब्रह्म जिनाति ब्रह्मज्यः। सर्वत्रग्रहणात् आतश्चोपसर्गे। आह्वः। प्रह्वः।

उपसर्ग पूर्व में न रहते कर्म उपपद रहते आकारान्त धातु से कप्रत्यय होता है। अण् का यह बाधक है। गोदः = गो कर्मक दान क्रिया कर्ता अर्थ में गाम् ददाति यहां अण् को बाधकर इसी से कप्रत्यय हुआ, उपपद संज्ञा समास आकार लोप गोदः। पार्ष्णिव्रम् व्रैङ् पालने आत्व क समासादि हुआ। गोसंप्रदायः, यहां सोपसर्ग दा से अण् युक् है। सम्प्रसारण के स्थानि घटक वर्ण जो यण् उससे घटित जो धातु उनसे कप्रत्यय होता है, अर्थात् सम्प्रसारण भविष्य में होने वाले धातुओं से कप्रत्यय करना। ब्रह्मज्यः। सर्वत्र ग्रहण से आतश्चोपसर्गे—उपसर्ग पूर्वक आकारान्त से कप्रत्यय होता है। कप्रत्यय में सम्प्रसारणादि की आपत्ति होगी। आह्वः प्रह्वः टिलोप से आकार का लोप हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२९१७ सुपि स्थः ३।२।४।

सुपीति योगो विभज्यते। सुपि उपपदे आदन्तात्कः स्यात्। द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः। समस्थः। विषमस्थः। ततः स्थः। सुपि तिष्ठतेः कः स्याद्, आरम्भसामर्थ्याद् भावे। आखूनामुत्थानभाखूत्थः।

इस सूत्र में 'सुपि' योग विभाग है ततः 'स्थः' ऐसा है। आदि विभक्त की व्याख्या—१—सुबन्त उपपाद में रहते आकारान्त धातु से कर्ता में कप्रत्यय होता है। मुख एवं शुण्डादण्ड से पान क्रिया करता गज अर्थ में 'द्वित्र्याम् ण' से कप्रत्यय उपपद समास आकार लोप से द्विपः। समस्थः। विषमस्थः। २ स्थः—सुपि = सुबन्त उपपद मेस्था धातु से कप्रत्यय होता है पूर्व से सिद्ध या विभक्त सूत्र द्वारा कप्रत्यय स्था को जो विधीयमान है वह व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि यह कप्रत्यय भाव में होता है। कर्ता में नहीं। आखूत्थः। आखुस्था अ उप० समास आकार लोप उदः स्था–से पूर्वसवर्ण से सकार को थकार दकार को चर्त्व से तकार हुआ।

२९१८ प्रष्ठोऽग्रगामिनि ८।३।९२।

प्रतिष्ठते इति प्रष्ठो गौः। अग्रतो गच्छति।

अग्र चलने वाला अर्थ में प्रपूर्वक स्था धातु से कप्रत्यय होता है। निपातन से षत्व भी उपपद समास आकार लोप प्रष्ठः। अन्यत्र प्रथः।

२९१९ अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्कुवंगुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः ८।३।९७।

स्थ इति कप्रत्यान्तानुकरणम्। षष्ठ्यर्थे प्रथमा। एभ्यः स्थस्य सस्य षः स्यात्। द्विष्ठः। त्रिष्ठः। इत ऊर्ध्वं कर्मणि सुपीति द्वयमप्यनुवर्तते। तत्राकर्मकेषु सुपीत्यस्य सम्बन्धः।

'स्थः' यह कप्रत्ययान्त का अनुकरण है। षष्ठ्यर्थ में प्रथमा विभक्ति हुई है। अम्ब, आम्ब, गो, भूमि, सव्य, अप, द्वि, त्रि, कुशे, कुशदकु अङ्कु, मञ्जि, पुञ्जि, परमे, बर्हिष्, दिवि, अग्नि इन शब्दों से उत्तर कप्रत्ययान्त स्था के सकार को षत्व होता है। इससे अग्रियों में कर्मणि एवं सुपि की अनुवृत्ति होगी, अकर्मक धातुओं में केवल 'सुपि' का ही सम्बन्ध होता है।

२९२० तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ३।२।५।

तुन्दशोकयोः कर्मणोरुपपदयोराभ्यां कः स्यात्। ❀ आलस्यसुखापहरणयोरिति वक्तव्यम् ❀। तुन्दं परिमार्ष्टीति तुन्दपरिमृजोऽलसः। शोकापनुदः= सुखस्याहर्ता। अलसादन्यः तुन्दपरिमार्ज एव। यश्च संसारासारत्वोपदेशेन शोकमपनुदति स शोकापनोदः। ❀ कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् ❀। मूलानि विभजति मूलविभुजो रथः। आकृतिगणोऽयम्। महीघ्रः। क्रुघ्रः। गिलतीति गिलः।

तुन्द एवं शोक कर्म उपपद में रहते परिपूर्वक मृज एवं अवपूर्वक नुद से कर्ता में कप्रत्यय होता है, आलस्य एवं सुखावहरण अर्थ में कप्रत्यय होता है ऐसा कहना चाहिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आलस्य से भिन्न में अण् तुन्दपरिमार्जः। संसार सारशून्य है इस प्रकार के शिष्टोपदेश से शोक को त्याग करता है वहां अण् शोकापनोदः। कप्रत्यय मूलविभाजादि से होता है, आकृतिगण है। यही कर्म उपपदक धृ से कप्रत्यय उपपद सपास यण् महीध्रः पर्वतः। कुम् = पृथ्वीम् धरति कुध्रः पर्वतः। गिलः।

२९२१ प्रे दाज्ञः ३।२।६।

दारूपाज्ज्ञानातेश्च प्रोपसृष्टात्कर्मण्युपपदे कः स्यादणोऽपवादः। सर्वप्रदः। पथिप्रज्ञः। अनुपसर्ग इत्युक्तेः प्रादन्यस्मिन् सति न कः। गोसम्प्रदायः।

कर्म उपपद होने पर प्र उपसर्गपूर्वक दा धातु से एवं प्र उपसर्गपूर्वक ज्ञा धातु से क प्रत्यय होता है। यह सूत्र अण् का बाधक है। सर्व कर्मकदानकर्ता = सर्वप्रदः। मार्गकर्मक प्रकृत ज्ञानाश्रय = पथिप्रज्ञः। प्र से अन्य उपसर्गपूर्वक में कर्म उपपद रहते अण्—गोसम्मदायः, युगागम भी है।

२९२२ सभि ख्यः ३।२।७।

गोसंख्यः।

सुबन्त उपपद में रहते ख्या धातु से क प्रत्यय होता है। गोसंख्यः।

२९२३ गापोष्टक् ३।२।८।

अनुपसृष्टाभ्यामाभ्यां टक् स्यात्कर्मण्युपपदे। सामगः। सामगी। उपसर्गे तु सामसङ्गायः। ❀ पिबतेः सुराशीध्वोरिति वाच्यम् ❀। सुरापी। शीधुपी। अन्यत्र क्षीरपा ब्राह्मणी। सुरां पाति = रक्षति इति सुरापा।

कर्म उपपद में रहते अनुपसर्ग गा एवं पा से टक् प्रत्यय होता है। स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होता है सामगी। साममन्त्र कर्मक गानक्रिया कर्त्री स्त्री। सामसंगायः यहां अण् युक् उपपदसमासादि। सुरा एवं शीधु कर्म उपपद रहते पानार्थक पा धातु से कप्रत्यय होता है। सुरापी। शीधुपी, अन्योपपद में क प्रत्यय टाप् क्षीरपा सुरापा।

२९२४ हरतेरनुद्यमनेऽच् ३।२।९।

अंशहरः। अनुद्यमने किम्, भारहारः। ❀ शक्तिलाङ्गलांकुशतोमरयष्टिघटघटीधनुष्षु ग्रहेरुपसंख्यानम् ❀। शक्तिग्रहः। लाङ्गलग्रहः। ❀ सूत्रे च धार्येऽर्ये ❀। सूत्रग्रहः। यस्तु सूत्रं केवलमुपादत्ते न तु धारयति तत्राणेव। सूत्रग्राहः।

उद्यमनार्थ से भिन्न अर्थ में हृ धातु से कर्मोपपद रहते अच् प्रत्यय होता है। अंशहरः। उद्यमन में अण्—भारहारः। शक्ति, लाङ्गल, अङ्कुश, तोमर, यष्टि, घट, घटी, धनुष् इन कर्मों के उपपद रहने पर ग्रह से अच् प्रत्यय होता है।

सूत्र रूप कर्म उपपद रहते धारण अर्थ में ग्रह से अच् प्रत्यय होता है।

सूत्रग्रहः। जो ग्रहण करता है धारण नहीं करता वहां अण् से सूत्रग्राहः।

२९२५ वयसि च ३।१।१०।

उद्यमनार्थं सूत्रम्। कवचहरः कुमारः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्म उपपद में रहते अवस्था अर्थ में और उद्यमन अर्थ में भी हृञ् से अच् प्रत्यय होता है। कवच धारण कर उसको ढोने वाला राजकुमार—कवचहरः।

२९२६ आडि ताच्छील्ये ३।२।११।

पुष्पाण्याहरति तच्छीलः पुष्पाहरः। ताच्छील्ये किम्? भारहारः।

कर्म उपपद में रहते ताच्छील्य अर्थ में हृञ् धातु से अच् प्रत्यय होता है। पुष्पों का आहरण करने की प्रकृति वाला = पुष्पाहरः। कदाचित् बोझा ढोने वाला = भारहारः, अण् प्रत्यय उपपद समास है।

२९२७ अर्हः ३।२।१२।

अर्हतेरच् स्यात्। कर्मण्युपपदेऽणोऽपवादः। पूजार्हो ब्राह्मणी।

कर्म उपपद होने पर अर्ह धातु से पर अण् को बाधकर अच् प्रत्यय होता है। सत्कार क्रिया करने योग्य ब्राह्मणी = पूजार्हा।

२९२८ स्तम्बकर्णयो रमिजपोः ३।२।१३।

॥ हस्तिसूचकयोरिति वक्तव्यम् ॥। स्तम्बे रमते स्तम्बेरमो हस्ती।

स्तम्ब उपपद में रहते रम् धातु से एवं कर्ण उपपद रहते जप् धातु से अच् प्रत्यय होता है। हाथी जिस स्थान पर बांधे जाते हैं वे उस स्थान में क्रीडाजनक व्यापार करते हैं = स्तम्बेरमः। समास करने पर भी विभक्ति का अलुक् हुआ। चुगली खाने वाले निन्दक को कर्णेजप कहते हैं, जो दूसरे की बुराईयों को अन्य जनों के कान में कहता है। अतीव नीच वृत्ति यह है एवं परस्पर मनोमालिन्य के कारण कष्टजनक होने से निन्दा भी एक प्रकार की हिंसा है।

२९२९ शमिधातोः संज्ञायाम् ३।२।१४।

शम्भवः। शम्वदः। पुनर्धातुग्रहणं बाधकविषयेऽपि प्रवृत्त्यर्थम्। कृञो हेत्वादिषु टो मा भूत्। शङ्करा नाम परिव्राजिका तच्छीला च।

संज्ञा अर्थ में शम् शब्द उपपद रहने पर धातु से अच् प्रत्यय होता है। धातोः से धातु का अधिकार है पुनः धातु ग्रहण क्यों किया? वह व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि बाधक प्रत्ययों के विषय में ट आदि प्रत्ययों को बाधकर अच् प्रत्यय ही होता है। कृञो हेत्वादि की अप्रवृत्ति से शङ्करा।

२९३० अधिकरणे शेतेः ३।२।१५।

खे शेते खशयः। ॥ पार्श्वादिषूपसंख्यानम्। पार्श्वाभ्यां शेते पार्श्वशयः। पृष्ठशयः। उदरेण शेते उदरशयः। ॥ उत्तानादिषु कर्तृषु ॥। उत्तानः शेते उत्तानशयः। अवमूर्धशयः। अवततो मूर्धा यस्य सः अवमूर्धा = अधोमुखः शेते इत्यर्थः। ॥ गिरौ दश्छन्दसि ॥। गिरौ शेते गिरिशः। कथं तर्हि—

"गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी"

इति? गिररस्यास्तीति विग्रहे लोमादित्वाच्छः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अधिकरण उपपद में रहते स्वप्नार्थक शीङ् से अच् प्रत्यय होता है। पार्श्व आदि शब्द उपपद में रहते शीङ् से अच् प्रत्यय होता है। उत्तान आदि कर्ता रहते शीङ् से अच् प्रत्यय होता है। वेद में गिरि उपपद रहते शीङ् से डप्रत्यय होता है। लोक में डप्रत्ययाभाव से 'गिरिश' यह कविप्रयुक्त शब्द की सिद्धि के लिए यत्न करते हैं कि वहां लोमादित्वप्रयुक्त मत्वर्थीय शप्रत्यय ही है।

२९३१ चरेष्टः ३।२।१६।

अधिकरणे उपपदे। कुरुचरः। कुरुचरी।

अधिकरण उपपद में रहते चर धातु से टप्रत्यय होता है। कुरुदेश में गमनकर्ता या कर्त्री कुरुचरः, कुरुचरी। ङीप्।

२९३२ भिक्षासेनादायेषु च ३।२।१७।

भिक्षां चरति भिक्षाचरः। सेनाचरः। आदायेति ल्यबन्तम्। आदायचरः। कथं "प्रेत्य स्थितां सहचरीम्" इति ? पचादिषु चरडिति पाठात्।

भिक्षा, सेना एवं ल्यबन्त अव्यय 'आदाय' उपपद रहते चर धातु से टप्रत्यय होता है। सहचरीम् यहां पचादिगणपठित चरट् से अच् प्रत्यय है टकार प्रातिपदिकावयव की इत् संज्ञा ङीप् प्रत्यय अकारलोप है।

२९३३ पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः ३।२।१८।

पुरस्सरः। अग्रतस्सरः। एवम् अग्रम् अग्रेण अग्रे वा सरतीत्यग्रेसरः। सूत्रेऽग्रे इति एदन्तत्वमपि निपात्यते। कथं तर्हि—

"यूथं सदग्रसरगर्वितकृष्णसारम्"

इति ? बाहुलकादिति हरदत्तः।

पुरस् अग्रतस् एवं अग्रे उपपद होने पर सृ धातु से टप्रत्यय होता है। 'अग्रे' यहां निपातनात् एकारान्तत्व भी है। अग्रसर यहां बाहुलकत्वप्रयुक्त एकाराभाव है यह हरदत्त मत है।

२९३४ पूर्वे कर्तरि ३।२।१९।

कर्तृवाचिनि पूर्वशब्द उपपदे सर्तेष्टः स्यात्। पूर्वः सरतीति पूर्वसरः। कर्तरि किम् ? पूर्वदेशं सरतीति पूर्वसारः।

कर्तृवाचक पूर्व शब्द उपपद होने पर सृ से टप्रत्यय होता है। पूर्वं देशं गच्छति = सरतीति पूर्वसरः, यहां अण् प्रत्यय हुआ।

२९३५ कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ३।२।२०।

एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात्। अतः कृकमीति सः। यशस्करी विद्या। श्राद्धकरः। वचनकरः।

हेतु ताच्छील्य एवं आनुलोम्य अर्थ की प्रतीति रहते कृञ् धातु से टप्रत्यय होता है। यशस्करी, हेतु में। श्राद्धकरः ताच्छील्य में। वचनकरः आनुलोम्य में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२९३६ दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्तानन्तादिबहुनान्दीकिं-लिपिलिविबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबाहुव्राहर्यत्तद्धनुररुष्षु ३।२।२१।

एषु कृञष्टः स्यात् अहेत्वादावपि। दिवाकरः। विभाकरः। निशाकरः। कस्कादित्वात् सः—भास्करः। बहुकरः। बहुशब्दस्य वैपुल्यार्थं संख्यापेक्षया पृथग्ग्रहणम्। लिपिलिविशब्दौ पर्यायौ। संख्या—एककरः, द्विकरः। कस्कादित्वात्—अहस्करः। नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्येति षत्वम्—धनुष्करः। अरुष्करः। ❀ किंयत्तद्बहुषु कृञोऽञ्विधानम् ❀ इति वार्तिकम्। किंकरा। यत्करा। तत्करा। हेत्वादौ टं बाधित्वा परत्वादच्। पुंयोगे ङीष्।

दिवा, विभा, निशा, प्रभा, भास्, कार, अन्त, अनन्त, आदि, बहु, नान्दी, किम्, लिपि, लिवि, बलि, भक्ति, कर्तृ, चित्र, क्षेत्र, संख्या, जङ्घा, बाहु, अहर, यत् तद् धनुस् एवं अरुस् इन सताईस शब्दों में से कोई शब्द उपपद रहते अहेत्वादि अर्थ में भी कृञ् से ट प्रत्यय होता है। बहु शब्द विपुलार्थक है। अतः संख्या से उसका पृथक् ग्रहण किया गया है।

* किम् यत् तद् बहु उपपद रहते कृञ् से अच् प्रत्यय होता है। हेतु आदि अर्थ में टप्रत्यय को बाधकर परत्व के कारण अच् होता है। किङ्करी यहां पुंयोग में ङीष् प्रत्यय हुआ।

२९३७ कर्मणि भृतौ ३।२।२१।

कर्म उपपदे करोतेष्टः स्यात्। कर्मकरो भृतकः। कर्मकारोऽन्यः।

वेतन अर्थ होने पर कर्म उपपद रहते कृञ् से टप्रत्यय होता है। भृति से भिन्न अर्थ में अण् प्रत्यय कर्मकारः।

२९३८ न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु ३।२।२३।

एषु कृञष्टो न। हेत्वादिषु प्राप्तः प्रतिषिध्यते। शब्दकार इत्यादि।

शब्द, श्लोक, कलह, गाथा, वैर, चाटु, सूत्र, मन्त्र, पद इन उपपद के रहते हेत्वादि अर्थ में कृञ् से प्राप्त प्रत्यय नहीं होता है। अतः कर्मण्यण् से अण् प्रत्यय शब्दकार इत्यादि।

२९३९ स्तम्बशकृतोरिन् ३।२।२४।

❀ व्रीहिवत्सयोरिति वक्तव्यम् ❀। स्तम्बकरिर्व्रीहिः। शकृत्करिर्वत्सः। व्रीहिवत्सयोः किम्? स्तम्बकारः, शकृत्कारः।

स्तम्ब एवं शकृत् उपपद रहते कृ धातु से इन् प्रत्यय होता है व्रीहि एवं वत्स के क्रमशः वाच्य होने पर। शकृत् = मलवाचक है। अन्यत्र अण् प्रत्यय।

२९४० हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ ३।२।२६।

दृतिनाथयोरुपपदयोर्हृञ इन् स्यात् पशौ कर्तरि। दृतिं हरति इति दृतिहरिः। नाथं नासारज्जुं हरतीति नाथहरिः। पशौ किम्? दृतिहारः, नाथहारः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति एवं नाथ उपपदक हन् से इन् प्रत्यय होता है पशु के कर्त्ता होने पर। जहाँ पशु कर्ता न रहे वहां अण् प्रत्यय होता है।

२९४१ फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च ३।२।२६।

फलानि गृह्णाति फलेग्रहिः। उपपदस्येदन्तत्वं ग्रहेरिन् प्रत्ययश्च निपात्यते। आत्मानं बिभर्तीति आत्मम्भरिः, आत्मनो मुमागमश्च। भृञ् इत्। चात् कुक्षिम्भरिः। चान्द्रास्तु आत्मोदरकुक्षिष्विति पेठुः। "ज्योत्स्नाकरम्भलुदरम्भरयश्चकोराः' इति मुरारिः।

फलेग्रहि एवं आत्मम्भरि शब्द निपातित हैं। यहां फल के अकार को एकार निपातन से होता है एवं ग्रह से इन् प्रत्यय होता है। आत्मन् शब्द उपपद में रहते भृ धातु से इन् प्रत्यय होता है, आत्मन् को मुमागम होता है। चकारात् कुक्षिम्भरि यह भी प्रयोग सिद्ध होता है—चान्द्र के मत में आत्मन्, उदर, कुक्षि शब्द उपपद में रहते भृञ् से इन् प्रत्यय होता है। अतः मुरारिग्रन्थ में उदरम्भरयः प्रयोग सिद्ध हुआ। अत एव

"गिरिस्तु कनकाचलः, कति न सन्ति चाश्मन्वजाः
किटिस्तु धरणीधरः, कति न सन्ति भूदारकाः।
मरुत्तु मलयानिलः, कति न सन्ति झञ्झानिलाः
प्रभुस्तु विबुधाश्रयः, कति न सन्ति कुक्षिम्भराः॥"

यहां कुक्षिम्भराः यह प्रयोग प्रामादिक ही है।

२९४२ एजेः खश् ३।२।२८।

ण्यन्तादेजेः खश् स्यात्।

ण्यन्त एज् धातु से खश् होता है। एजृ कम्पने ण्यन्त का ग्रहण है। इकानिर्देश नहीं है, खश् के शित्करण से।

२९४३ अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ६।३।६७।

अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात् खिदन्ते उत्तरपदे, न त्वव्ययस्य। शित्त्वाच्छबादिः। जनमेजयतीति जनमेजयः। ❀ वातशुनीतिलशर्धेष्वजघेट्तुदजहातिभ्यः खश उपसंख्यानम् ❀। वातमजा मृगाः।

खिदन्त उत्तरपद रहते अरुष् द्विषत् तथा अजन्त को मुम् का आगम होता है किन्तु अव्यय को मुम् आगम नहीं होता है। खश् प्रत्यय के शकार के इत् होने से सार्वधातुकसंज्ञा से शबादि विकरण होते हैं। दुष्ट जनों को कम्पित करने वाले या पीडा देने वाले को जनमेजय कहा जाता है। श्रीमद्भागवत में जनमेजय राजा का विस्तृत वर्णन है।

वात उपपद में रहते अज से खश्, शुनी उपपद में रहते घेट् से खश्, तिल उपपद में रहते तुद से खश्, शर्ध उपपद में रहते हा से खश् होता है। यथा—वातमजाः मृगाः।

२२९३४ खित्यनव्ययस्य ६।३।६६।

खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः स्यात्। ततो मुम्। शुनिन्धयः। तिलन्तुदः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शर्द्धजहा भाषाः। शर्द्धोऽपानशब्दः, तं जहतीति विग्रहः। जहातिरन्तर्भावितण्यर्थः।

खिदन्त पद पर में रहते पूर्वपद के अक् को ह्रस्व होता है, ततः मुम् होता है। शुनिन्धयः प्रयोग हुआ। शर्द्ध= अपान शब्द को त्याग करने या कराने वाला अर्थ में खश् मुम् शर्द्धजहाः। णिच् का अर्थ प्रेरणा रूप व्यापार हा धातु के कुक्षिस्थ है।

२९४५ नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः ३।२।२९।

अत्र वार्तिकम् ॐ स्तने धेटो नासिकायां ध्मश्चेति वक्तव्यम् ॐ। स्तनं धयतीति स्तनन्धयः। धेटष्टित्त्वात् स्तनन्धयी। नासिकन्धमः। नासिकन्धयः।

नासिका एवं स्तन उपपद में रहते ध्मा एवं धेट् से खश् प्रत्यय होता है। वा० कहता है कि स्तन उपपद में रहते धेट् से नासिका उपपद में रहते ध्मा से खश् होता है। धेट् टित् है। स्तनन्धयी में ङीष्।

२९४६ नाडीमुष्टयोश्च ३।२।३०।

एतयोरुपपदयोः कर्मणोर्ध्माधेटोः खश् स्यात्।

यथासंख्यं नेष्यते। नाडिन्धमः। नाडिन्धयः। मुष्टिन्धमः। मुष्टिन्धयः। ॐ घटीखारीखरीषूपसंख्यानम् ॐ। घटिन्धमः। घटिन्धय इत्यादि। खारी= परिमाणविशेषः। खरी = गर्दभी।

नाडी एवं मुष्टि कर्म उपपद में रहते ध्मा एवं धेट् से खश् होता है। यहां यथासंख्य इष्ट नहीं है। घटी खारी एवं खरी उपपद में रहते ध्मा एवं धेट् से खश् होता है।

२९४७ उदि कूले रुजिवहोः ३।२।३१।

अत्पूर्वाभ्यां रुजिवहिभ्यां कूले कर्मण्युपपदे खश् स्यात्। कूलमुद्रुजतीति कूलमुद्रुजः। कूलमुद्वहः।

कूल कर्म उपपद में रहने पर उत् पूर्वक रुज एवं उत् पूर्वक वह् से खश् प्रत्यय होता है।

२९४८ वहाभ्रे लिहः ३।२।३२।

वहः=स्कन्धस्तं लेढीति वहंलिहो गौः। अदादित्वाच्छपो लुक्। खशो ङित्त्वान्न गुणः। अभ्रंलिहो वायुः।

वह एवं अभ्र कर्म उपपद में रहते लिह् से खश् होता है। अभ्र वह का अर्थ है स्कन्ध उसका लेहनकर्ता वृषभ वहंलिहः, खश् मुम् अनुस्वार शप् का लुक्। खश् ङित् है अतः लघूपध गुण न हुआ।

२९४९ परिमाणे पचः ३।२।३३।

प्रस्थम्पचा स्थाली। खारीम्पचः कटाहः।

परिणामवाचक शब्द उपपद रहने पर पच् से खश् प्रत्यय होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२९५० मितनखे च ३।२।३४।

मितम्पचा ब्राह्मणी। नखम्पचा यवागूः। पचिरत्र तापवाची।

मित एवं नख उपपद में रहते पच् से खश् प्रत्यय होता है। तापार्थक पच् यहां है।

२९५१ विध्यरुषोस्तुदः ३।२।३५।

विधुन्तुदः। मुमि कृते संयोगान्तलोपः। अरुन्तुदः।

विधु एवं अरुष् उपपद में रहते तुद् से खश् होता है। खश् करने के बाद मुम् आगम हुआ। संयोगान्तलोप अरुन्तुदः।

२९५२ असूर्यललाटयोर्दृशितपोः ३।२।३६।

'असूर्यम्' इति असमर्थसमासः, दृशिना नञः सम्बन्धात्। सूर्यं न पश्यतीत्यसूर्यम्पश्या राजदाराः। ललाटन्तपः सूर्यः।

सूर्यकर्मकदर्शनप्रतियोगिकाभाववन्तो राजदाराः। नञर्थ अभाव का दृश्यर्थ में अन्वय है सूर्यार्थ के साथ नहीं, समस्यमान पदों का अर्थ परस्परान्वित नहीं। अतः आचार्यनिर्देश जो 'असूर्यं' उससे सामर्थ्याभाव में भी समास हुआ। असूर्य एवं ललाट उपपद में रहते क्रमशः दृश् एवं तप् से खश् होता है। ललाटं तपति ललाटन्तपः सूर्यः।

२९५३ उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च ३।२।३७।

एते निपात्यन्ते। उग्रमिति क्रियाविशेषणं तस्मिन् उपपदे दृशेः खश्। उग्रं पश्यतीत्युग्रम्पश्यः। इरा उदकं तेन माद्यति = दीप्यतेऽम्बिन्धनत्वादिति इरम्मदो मेघज्योतिः। इह निपातनात् श्यन्न, पाणयो ध्मायन्तेऽस्मिन्निति पाणिन्धमोऽध्वा। अन्धकाराद्यावृत इत्यर्थः। तत्र हि सर्पाद्यपनोदनाय प्राणयः शब्दायन्ते।

उग्रम्पश्य, इरम्मद, पाणिन्धम, ये तीन पद निपातन से सिद्ध होते हैं। उग्रम् यथा स्यात् तथा यह क्रियाजन्य धात्वर्थ फल में अभेद सम्बन्ध से उग्रार्थ विशेषण है। क्रियाविशेषण उग्र उपपद में रहते दृश् धातु से खश् प्रत्यय होता है। उग्रम्पश्यः। जल से प्रदीप्त होने वाला अर्थात् जलरूपी काष्ठयुक्त मेघज्योति को 'इरम्मदः' कहते हैं, इरा उपपद में मद् से खश् हुआ। निपातन से श्यन् न हुआ मुमागम है। इरा से जल का ज्ञान करना। इरया = जलेन, माद्यति = दीप्यते = बिजली। पाणिन्धमः—पाणयो ध्मायन्तेऽस्मिन्—पाणि उपपदक ध्मा से खश् ध्मादेश मुम्। अन्धकार से आवृत मार्ग में विषैले सर्पादि जन्तुओं का दूरीकरणार्थ करतलध्वनि प्रायः लोग करते हैं उस मार्ग को पाणिन्धम कहते हैं।

२९५४ प्रियवशे वदः खच् ३।२।३८।

प्रियंवदः। वशंवदः। ❀ गमेः सुपि वाच्यः ❀ असंज्ञार्थमिदम्। मितङ्गमो हस्ती। ❀ विहायसो विह इति वाच्यम् ❀। ❀ खिच्च डिद् वा वाच्यः ❀। विहङ्गः, विहङ्गमः। भुजङ्गः, भुजङ्गमः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रिय एवं वश उपपद में रहते वद् धातु से खच् प्रत्यय होता है। सुबन्त उपपद रहते गम् से खश् होता है। संज्ञा में 'गमश्च' सू० से सिद्ध था यह असंज्ञार्थ है। विहायस् के स्थान में विह आदेश होता है, एव गम् से विहित प्रत्यय खश् डित विकल्प से होता है, डितसदृश जहां होगा वहां टि का लोप होता है। डित् के अभाव में टिलोपाभाव है। आकाशमार्ग से गमन करने वाले पक्षिगण विहङ्गः या विहङ्गमः कहे जाते हैं। भुजङ्गः भुजङ्गमः = भुजम् = वक्रम् = कुटिलं गच्छति यः स भुजङ्गः। सर्प टेढा सदा चलता है। भुज का अर्थ कुटिल है। बाहु अर्थ नहीं, सर्प को बाहु होते ही नहीं।

२७५५ द्विषत्परयोस्तापेः ३।२।३९।

खच् स्यात्।

द्विषत् एवं पर उपपद में रहते ण्यन्त तापि धातु से खच् प्रत्यय होता है।

२९५६ खचि ह्रस्वः ६।४।९४।

खचि परे णौ उपधाया ह्रस्वः स्यात्। द्विषन्तं परं वा तापयतीति द्विषन्तपः। परन्तपः। घटघटीग्रहणाल्लिङ्गविशिष्टपरिभाषा अनित्या। तेनेह न द्विषतीं तापयतीति द्विषतीतापः।

खच् प्रत्यय है पर में जिसके ऐसा जो णिच् उससे पूर्व धातु की उपधा को ह्रस्व होता है। पूर्व वर्णित वार्तिक में घट से गतार्थता थी पुनः उसमें घटी ग्रहण करण सामर्थ्य से लिङ्गबोधक परिभाषा के अनित्य के कारण द्विषत् से द्विषती ङीवन्त का यहां ग्रहण न हुआ। अतः द्विषतीतापः यह खच् न होकर अण् प्रत्यय हुआ।

२९५७ वाचि यमो व्रते ३।२।४०।

वाक् शब्दे उपपदे यमेः खच् स्याद् व्रते गम्ये।

व्रत के गम्य होने पर वाक् शब्दोपपदक यम से खच् होता है।

२९५८ वाचंयमपुरन्दरौ च ६।३।६९।

वाकपुरोरमन्तत्वं निपात्यते। वाचंयमो मौनव्रती। व्रते किम्? अशक्त्यादिना वाचं यच्छतीति वाग्यामः।

वाचम् एवं पुरन्दर ये निपातन से सिद्ध होते हैं। वाक् एवं पुर का अमन्तत्व निपातन होता है एवं यम् से खच् होता है। मौनव्रत धारणकर्ता अर्थ में वाचंयमः। वाग्यामः = शक्ति के अभाव से वचन के उच्चारण में अशक्त पुरुष, यहां अण् हुआ।

२९५९ पूःसर्वयोर्दारिसहोः ३।२।४१।

पुरं दारयतीति पुरन्दरः। सर्वंसहः। सहिग्रहणमसंज्ञार्थम्। भगे च दारेरिति काशिका। बाहुलकेन लब्धमिदमित्याहुः। भगं दारयतीति भगन्दरः।

पुर् एवं सर्व उपपद रहते क्रमशः दारि एवं सह से खच् होता है। पुरन्दरः। सर्वंसहः। संज्ञा में 'संज्ञायां भृत' से सिद्ध ही था सह ग्रहण यहां असंज्ञार्थ किया है। * भगशब्द उपपद में रहते दारि धातु से खच् होता है—यह काशिका मत बहुल ग्रहण से लब्ध है। रोग में भगन्दरः *।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२९६० सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः ३।२।४३।

सर्वङ्कषः खलः। कूलङ्कषा नदी। अभ्रंकषो वायुः। करीषङ्कषा वात्या।

सर्व, कूल, अभ्र, करीष इनके उपपद रहते कष् धातु से खच् होता है। शुष्कगोमय करीष है। वातसमूह = वात्या।

२९६१ मेघर्तिभयेषु कृञः ३।३।४३।

मेघङ्करः। ऋतिङ्करः। भयङ्करः। भयशब्देन तदन्तविधिः, अभयङ्करः।

मेघ, ऋति, भय उपपद में रहते कृञ से खच् होता है। भय शब्द से तदन्त विधि द्वारा अभय उपपद में रहते भी कृञ् से खच् हुआ अभयङ्करः।

२९६२ क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ३।२।४४।

एषु कृञोऽण् स्यात्। चात् खच्। क्षेमंकरः। क्षेमकारः। प्रियङ्करः। प्रियकारः। मद्रङ्करः। मद्रकारः। वेति वाच्येऽण्ग्रहणं हेत्वादिषु टो मा भूदिति। कथं तर्हि अल्पारम्भाः क्षेमकरा इति? कर्मणः शेषत्वविवक्षायां पचाद्यच्।

क्षेम, प्रिय, मद्र उपपद में रहते कृञ् धातु से अण् प्रत्यय होता है एवं चकारग्रहण से खच् भी होता है। अण् में क्षेमकारः। खच् में क्षेमंकरः। सूत्र में कहे अण् ग्रहण से हेतु आदि अर्थ में प्राप्त ट प्रत्यय को बाधकर अणर्थ अण्ग्रहण है। क्षेमकराः यहां क्षेमङ्कराः खच् मुम् से होना था किन्तु क्षेमरूपकर्म की शेषत्वविवक्षाकर कृ से अच् प्रत्यय हुआ। क्षेमकराः।

२९६३ आशिते भुवः करणभावयोः ३।२।४५।

आशितशब्दे उपपदे भवतेः खच् स्यात्। आशितो भवत्यनेनाशितम्भव ओदनः। आशितस्य भवनम् आशितम्भवः।

करण एवं भाव की प्रतीति रहते आशित उपपद में रहे तब भू धातु से खच् प्रत्यय होता है। जितने ओदन से अतिथि को भोजन करवाया जाय उसको आशितम्भव ओदन कहते हैं। वा सरूपन्याय से ल्युट् भी होता है—आशितभवनम्। भाव में आशितस्य भवनम् = आशितम्भवः।

२९६४ संज्ञायां भृतृवृजिधारिसहितपिदमः ३।२।४६।

विश्वं बिभर्ति इति विश्वम्भरः। विश्वम्भरा। रथन्तरं साम, इह रथेन तरतीति व्युत्पत्तिमात्रं न त्ववयवार्थानुगमः। पतिम्वरा कन्या। शत्रुञ्जयो हस्ती। युगन्धरः पर्वतः। शत्रुंसहः। शत्रुन्तपः। अरिन्दमः। दमि शमनायां तेन सकर्मक इत्युक्तम्। मतान्तरे तु अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र दमिः।

संज्ञा होनेपर भृ तृ, वृ, जि, धारि, सह्, तप्, दम् से खच् प्रत्यय होता है। मुम् अनुस्वार परसवर्ण। रथन्तर शब्द साममन्त्रविशेष में रूढ है अवयवार्थ की मणिः नूपुरम् की तरह प्रतीति नहीं है। शमनजनकव्यापारानुकूल व्यापार में दम् धातु सकर्मक है। केवल शमनजनक व्यापार में अकर्मक है। यहां णिजर्थ प्रेरणा धात्वर्थकुक्षिप्रविष्ट है।

२९६५ गमश्च ३।३।४७।

सुतंगमः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संज्ञा अर्थ में सुबन्त उपपद रहते गम् से खच् होता है।

२९६६ अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु ३।२।४८।

संज्ञायामिति निवृत्तम्। एषु गमेर्डः स्यात्। डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः। अन्तं गच्छतीत्यन्तगम इत्यादि। ❀ सर्वत्रपन्नयोरुपसंख्यानम् ❀। सर्वत्रगः। पन्नं पतितं गच्छतीति पन्नगः। पन्नमिति पद्यतेः क्तान्तं क्रियाविशेषणम्। ❀ उरसो लोपश्च ❀। उरसा गच्छतीत्युरगः। ❀ सुदुरोरधिकरणे ❀। सुखेन गच्छत्यत्र सुगः, दुर्गः। ❀ अन्यत्रापि दृश्यते इति वक्तव्यम् ❀। ग्रामगः। ❀ डे च विहायसो विहादेशो वक्तव्यः ❀। विहगः।

इस सूत्र में 'संज्ञायाम्' की निवृत्ति है। अन्त, अत्यन्त, अध्व, दूर, पार, सर्व, अनन्त इन उपपद के रहते गम् से ड प्रत्यय होता है। प्रत्यय में क्रियमाण डित् से भसंज्ञा न होने पर भी टि का लोप होता है। * सर्वत्र एवं क्रियाविशेषण पन्नम् उपपद में रहते गम से डप्रत्यय होता है। पन्न = पतितार्थक है। पद् धातु से क्तप्रत्यय से पन्न बना हुआ है। क्रिया विशेषण नित्य नपुंसक द्वि० वि० एकवचनान्त ही है। उसके उपपद में रहते गम् से डप्रत्यय एवं सकार का लोप होता है। उरगः = सर्पः। अधिकरण में सु एवं दुर् उपपद रहते गम् धातु से डप्रत्यय होता है। सुगः। दुर्गः।

२९६७ आशिषि हनः ३।२।४१।

शत्रुं वध्याच्छत्रुहः। आशिषि किम्? शत्रुघातः। ❀ दारावाहनोऽणन्तस्य च टः संज्ञायाम् ❀। दारु शब्दे उपपदे आङ् पूर्वाद्धन्तेरण् टकारश्चान्तादेशो वक्तव्य इत्यर्थः। दार्वाघाटः। ❀ चारौ वा ❀। चार्वाघाटः। चार्वाघातः। ❀ कर्मणि समि च ❀। कर्मण्युपपदे संपूर्वाद्धन्तेरुक्तं चेत्यर्थः। वर्णान् संहन्तीति वर्णसङ्घाटः, पदसङ्घाटः। वर्णसङ्घातः। पदसङ्घातः।

आशीर्वाद अर्थ में हन् धातु से डप्रत्यय होता है। शत्रुहः, आशीर्वाद अर्थ में जहां नहीं है वहां अण् से शत्रुघातः। नकार को तकारादेश एवं कुत्व है। संज्ञा में दारु शब्दोपपदक आङ्पूर्वक हन् से अण् प्रत्यय एवं अन्त्य को टकारादेश होता है। दार्वाघाटः।

चारु उपपद में रहते आङ्पूर्वक हन् से विकल्प से अण् प्रत्यय होता है, टकार अन्तादेश होता है। चार्वाघाटः। चार्वाघातः। कर्म उपपद में रहते संपूर्वक हन् से विकल्प से अण् प्रत्यय एवं टकार अन्तादेश होता है। वर्णसंघाटः। वर्णसंघातः।

२९६८ अपेः क्लेशतमसोः ३।२।५०।

अपपूर्वात् हन्तेर्डः स्यात्। अनाशीरर्थमिदम्। क्लेशापहः पुत्रः। तमोऽपहः सूर्यः।

क्लेश एवं तमस् उपपद रहते अपपूर्वक हन् से डप्रत्यय आशीर्वादभिन्नार्थ में होता है। क्लेशापहः सुपुत्रः। दुष्ट तो क्लेश की अभिवृद्धि में कारण होता है। अन्धकारनाशक सूर्य = तमोऽपहः सूर्यः।

२९६९ कुमारशीर्षयोर्णिनिः ३।२।५१।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुमारघाती। शिरसः शीर्षभावो निपात्यते। शीर्षघाती।

कुमार एवं शीर्ष उपपद में रहने पर हन् से णिनि प्रत्यय होता है। शिरस् के स्थान में शीर्ष आदेश निपातन से होता है।

२९७०. लक्षणे जायापत्योष्टक् ३।२।५२।

हन्तेष्टक् स्याल्लक्षणवति कर्तरि। जायाघ्नो ना। पतिघ्नी स्त्री।

लक्षण अर्थ गम्य रहे तो कर्ता में जाया एवं पति उपपदक हन् से टक् प्रत्यय होता है। शुभ या अशुभ चिह्न को लक्षण कहते हैं, वह लक्षणयुक्त प्रत्यासत्या कर्ता रहे। जायाघ्नः ना = स्त्री के नाशक चिह्न से युक्त पति। उपपद समास गमहन् से अकारलोप कुत्व। पतिघ्नी स्त्री = पतिनाशक लक्षणयुक्ता पत्नी। टित्वात् ङीप् अकार का लोप उपपद समास हो हन्तेः से कुत्व है।

२९७१. अमनुष्यकर्तृके च ३।२।५३।

जायाघ्नस्तिलकालकः। पतिघ्नी पाणिरेखा। पित्तघ्नं घृतम्। अमनुष्येति किम्? आखुघातः शूद्रः। अथ कथं बलभद्रः, प्रलम्बघ्नः, शत्रुघ्नः, कृतघ्न इत्यादि? मूलविभूजादित्वात् सिद्धम्। चोरघातो नगरघातो हस्तीति तु बाहुलकादणि।

मनुष्यभिन्न लक्षणवान् कर्ता रहने पर हन् से टक् प्रत्यय होता है। जायानाशक कृष्ण तिलक चिह्न = जायाघ्नः। हस्तरेखा पतिनाशिका = पतिघ्नी। पित्तनाशक घृत = पित्तघ्नम्। मनुष्यकर्ता में आखुघातः = अण् तकारादेश उपधा वृद्धि। चूहों का नाशक। प्रलम्बघ्नः आदि में मूलविभूजादित्वप्रयुक्त क प्रत्यय है।

चोरघात आदि में बाहुलकत्वप्रयुक्त अण् है।

२९७२. शक्तौ हस्तिकपाटयोः ३।२।५४।

हन्तेष्टक् स्यात् शक्तौ द्योत्यायाम्। मनुष्यकर्तृकार्थमिदम्। हस्तिघ्नो ना। कपाटघ्नश्चौरः। कवाटेति पाठान्तरम्।

शक्ति द्योत्य होने पर हस्तिन् एवं कपाट उपपद रहते हन् से टक् होता है। मनुष्यकर्तृकार्थ यह सूत्र है। हस्तिघ्नो ना। किवाड़ी को तोड़ने वाला चोर = कपाटघ्नः। कवाट ऐसा भी पाठ है।

२९७३. पाणिघताडघौ शिल्पिनि ३।२।५५।

हन्तेष्टक् टिलोपो घत्वञ्च निपात्यते पाणितादयोरुपपदयोः। पाणिघः। ताडघः। शिल्पिनि किम्? पाणिघातः, ताडघातः। ❀राजघ उपसंख्यानम्❀। राजानं हन्ति राजघः।

क्रियाविषयक कुशलतावान् कर्ता रहने पर पाणि एवं ताड उपपद में रहते हन् से टक् होता है। पाणिघः। ताडघः। शिल्प से भिन्न में अण् तकारादेश उपधा वृद्धि पाणिघातः, ताडघातः। राजन् उपपद में रहते हन् से टक् होता है—राजघः।

२९७४. आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन् ३।२।५६।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु कर्मसूपपदेषु कृञः ख्युन् स्यात्।

अनाढ्यम् आढ्यं कुर्वन्त्यनेन आढ्यङ्करणम्। अच्वौ किम्? आढ्यीकुर्वन्त्यनेन। इह प्रतिषेधसामर्थ्यात् ल्युडपि नेति काशिका। भाष्यमते तु ल्युट् स्यादेव। अच्वावित्युत्तरार्थम्।

च्विप्रत्ययार्थ अभूततद्भाव रूप अर्थ की प्रतीति रहे किन्तु च्विप्रत्ययान्त न रहे तो आढ्य, सुभग, स्थूल, पलित, नग्न, अन्ध, प्रिय ये कर्म उपपद रहते कृञ् से करण में ख्युन् प्रत्यय होता है। धनरहित को धनयुक्त जिससे किया जाय उस अर्थ में आढ्यङ्करणम्। यहां ख्युन् यु को अन सुमागम अनुस्वार परसवर्ण। च्विप्रत्ययोत्पत्ति में वाक्य का ही साधुत्व है वहां ख्युन् समासादि नहीं होता है। अच्वेः प्रतिषेधकरणसामर्थ्य से ल्युट् भी न हुआ—यह काशिका मत है। भाष्यकार के मत में ल्युट् होता है। अच्वि ग्रहण उत्तरत्र अनुवृत्त्यर्थ है।

२९७५ कर्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ ३।२।५७।

आढ्यादिषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु भवतेरेतौ स्तः। अनाढ्य आढ्यो भवतीति आढ्यम्भविष्णुः। आढ्यम्भावकः।

च्व्यर्थप्रतिपादक या अच्व्यर्थप्रतिपादक आढ्य आदि शब्द उपपद में रहते कर्ता में भूधातु से खिष्णुच् एवं खुकञ् प्रत्यय होते हैं। आढ्यम्भविष्णुः। आढ्यम्भावकः।

स्पृशोऽनुदके क्विन् ३।२।५८।

घृतस्पृक्। कर्मणीति निवृत्तम्। मन्त्रेण स्पृशतीति मन्त्रस्पृक्।

उदकभिन्न सुबन्त उपपद में रहते स्पृश् धातु से क्विन् प्रत्यय होता है। घृतस्पृक्। कर्म की निवृत्ति से करणादि उपपद में रहते भी स्पृश् से क्विन् हुआ मन्त्रस्पृक्।

ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चाञ्च ३।२।५९।

व्याख्यातम्।

इसकी व्याख्या प्रथम ३७३ सू० सं० में हो चुकी है उसे देखिये।

त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ३।२।६०।

* समानान्ययोश्चेति वक्तव्यम् *। सदृक्। सदृशः। अन्यादृक्। अन्यादृशः। * क्सोऽपि वक्तव्यः *। तादृक्षः, सदृक्षः, अन्यादृक्षः।

त्यदादि उपपद में रहते दृश् धातु से अनालोचन अर्थ में कञ् प्रत्यय होता है। चकार से क्विन् प्रत्यय होता है। * समान एवं अन्य उपपद में रहते दृश् से कञ् प क्विन् होता है। पूर्वोक्त उपपद में रहते दृश् से क्स प्रत्यय भी होता है। तादृशः। सदृक्षः। अन्यादृक्षः।

२९७६ सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप् ३।२।६१।

एभ्यः क्विप् स्यादुपसर्गे सत्यसति च सुप्युपपदे। घृसत्। उपनिषत्। अण्डसूः। प्रसूः। मित्रद्रुट्। प्रद्रुट्। मित्रघ्रुक्। प्रघ्रुक्। गोघ्रुक्। अश्वयुक्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयुक्। वेदवित्। निविदित्यादि। ❀अग्रग्रामाभ्यां नयतेर्णो वाच्यः❀। अग्रणीः। ग्रामणीः।

उपसर्गपूर्वक या अनुपसर्गपूर्वक सुबन्त उपपद में रहते सद, सू, द्विष् दुह्, दुह् युज्, विद्, भिद्, छिद्, जि नी, राज्, इनसे क्विप् प्रत्यय होता है।

सुसद्, पूर्वपदात् से षत्व न हुआ छन्द के अभाव से। माघ कवि ने कहा है कि—"मनस्सु येन सुसदां न्यधीयत", "आदितेया दिविषदः"। सुषामादित्वप्रयुक्त षत्व हुआ यह माघवादि मत है। उपनिषत्-सदिरप्रतेः से षकार है। अग्र एवं ग्राम से पर नी के नकार को णकार होता है। अग्रणीः। ग्रामणीः। 'स एषां ग्रामणीः' निर्देश से यह वचन ज्ञापित है।

२९७७ भजो ण्विः ३।२।६२।

सुप्युपसर्गे चोपपदे भजेर्ण्विः स्यात्। अंशभाक्। प्रभाक्।

सुबन्त उपपद रहते एवं उपसर्ग उपपद रहते भज धातु से ण्वि प्रत्यय होता है। अंशभाक्। प्रभाक्।

२९७८ अदोऽनन्ने ३।२।६८।

विट् स्यात्। आममत्ति आमात्। सस्यात्। अनन्ने किम्? अन्नादः।

अन्न शब्द से भिन्न उपपद में रहने पर अद् से विट् होता है। अन्न उपपद में रहते अण् प्रत्यय होता है—अन्नादः।

२९७९ क्रव्ये च ३।२।६९।

अदेर्विट् स्यात्। पूर्वेण सिद्धे वचनमण्बाधनार्थम्। क्रव्यात्। आममांसभक्षकः। कथं तर्हि क्रव्यादोऽस्रप आशर इति? पक्वमांसशब्दे उपपदेऽण्। उपपदस्य क्रव्यादेशः पृषोदरादित्वात्।

क्रव्यशब्द उपपद में रहने पर अद् धातु से विट् प्रत्यय होता है। पूर्व से विट् सिद्ध था, अण् बाधनार्थ पुनः विट् है। कच्चा मांस को खाने वाला = क्रव्यात्। क्रव्यादोऽस्रप यहां पक्व मांस शब्द से अण् प्रत्यय एवं उपपद को पृषोदरादित्व के कारण क्रव्य आदेश हुआ।

२९८० दुहः कप् घश्च ३।२।७०।

कामदुघा।

कर्म उपपद में रहते दुह् धातु से कप् एवं हकार को घकारादेश होता है। कामदुघा।

२९८१ अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३।२।७५।

छन्दसीति निवृत्तम्। मनिन्, क्वनिप्, विच् एते प्रत्ययाः धातोः स्युः।

छन्द की इसमें निवृत्ति है। धातु से मनिन् आदि प्रत्यय होते हैं।

२९८२ नेड्वशि कृति ७।२।८।

वशादेः कृत इण्न स्यात्। शु-सुशर्मा। प्रातरित्वा।

वशादि कृत्प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। सुपूर्वक शृ से मनिन्—सुशर्मा। प्रातर्पूर्वक इण् से क्वनिप् उस्वस्य से तुक् प्रातरित्वा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२९८३ विड्वनोरनुनासिकस्यात् ६।४।४१।

अनुनासिकस्य आत् स्यात्। विजायते इति विजावा। ओणृ-अवावा। विच्-रोट्, रेट्। सुगण्।

विट् एवं वन पर में रहते अनुनासिकान्त धातु को आकारादेश होता है। विजन् वन् आकारादेश विजावा। ओणृ वन् आकार अवादेश अवावा=दूर करने वाला। रुप् रिष् सुगण् से विच् प्रत्यय हुआ।

२९८४ क्विप् च ३।२।७६।

अयमपि दृश्यते। सत्सूद्विषेत्यस्यैव प्रपञ्चः। उखासत्। पर्णध्वत्। वाहभ्रट्।

धातु से क्विप् प्रत्यय होता है। 'सत्सू' सूत्र से लब्धार्थ का ही यह अनुवादक है।

२९८५ अन्तः ८।४।२०।

पदान्तस्यानितेर्नस्य णत्वं स्यादुपसर्गस्थान्निमित्तात् परश्चेत्। हे प्राण्। शास इदितीत्त्वम्। मित्राणि शास्ति मित्रशीः। ॐ आशासः कावुपधाया इत्वं वाच्यम् ॐ। आशीः। इत्वोत्वे। गीः। पूः।

उपसर्गस्थ निमित्त से पर स्थित अन् धातु के पदान्त नकार को णकारादेश होता है। यथा हे प्राण्। मित्रशीः क्विप् ह्रस्व दीर्घ। आङ् पूर्वक शास् धातु की उपधा को क्विप् पर रहते इकारादेश होता है। शुभ कथन आशीः। गृ क्विप् इत्वदीर्घ गीः। पू से क्विप् उत्व दीर्घ पूः।

२९८६ इसुमन्त्रन्क्विषु च ६।४।९७।

एषु छादेर्ह्रस्वः स्यात्। तनुच्छद्। अनुनासिकस्य क्वीति दीर्घः। मोनोधातोः। प्रतीन्। कशान्। च्छ्वोरित्यूठ्-अक्षद्यूः। ज्वरत्वरेत्यूठ्-जूः जूरौ, जूरः। तूः। स्नूः। ऊठ् वृद्धिः। जनानवतीति जनौः। जनावौ। जनावः। भूः। भुवौ। भुवः। सुभूः। सुभ्वौ। सुभ्वः। राल्लोपः मूर्च्छा-मूः, मुरौ, मुरः। धुर्वी धूः।

इन् मन् त्रन् क्विप् प्रत्यय पर में रहते छादि धातु की उपधाका ह्रस्व होता है। शरीर को आच्छादित कराने वाला तनुच्छद्। प्रतम् क्विप् अनुनासिकस्य से दीर्घ 'भो नोः' से मकार को नकारादेश प्रतान्। प्रशान्। अक्षद्यूः ज्वरत्वर से क्विप् पर में ऊठ् यणादेश 'नाजानन्तर्ये' परिभाषा से अन्तरङ्ग यण् करने में बहिरङ्ग 'ऊठ् अन्तरङ्ग परि० से असिद्ध न हुआ।

ज्वर् क्विप् ऊठ् जूः। त्वर् से तूः। जनौः ऊठ् वृद्धिः जनौः। मूर्च्छा का राल्लोपः मूः। धूर्वी का धूः।

२९८७ गमः क्वौ ६।४।४०।

अनुनासिकलोपः स्यात्। अङ्गगत्। ॐ गमादीनामिति वक्तव्यम् ॐ। परीतत्। संयत्। सुनत्। ॐ ऊङ् च गमादीनामिति वक्तव्यम् लोपश्च ॐ। अग्रेगूः। भ्रमु—अग्रेभूः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किप् प्रत्यय पर में रहते अनुनासिक गम का जो अन्त्य है उसका लोप होता है। तुगागम से अङ्गत्व। गमादि कहना चाहिये। गमादि का अनुनासिक लोप किप् पर में रहते होता है। गमादि से ऊङ् भी होता है एवं अनुनासिक लोप। अग्रेभूः।

२९८८ स्थः क च ३।२।७७।

चात् किप्। शंस्थः। शंस्थाः। शमि धातोरित्यचं बाधितुं सूत्रम्।

स्था धातु से क प्रत्यय होता है, चकार से किप्। शमि धातोः से प्राप्त अच के बाधनार्थ यह सूत्र है।

२१८९ सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ३।२।७८।

अजात्यर्थे सुपो धातोर्णिनिः स्यात् ताच्छील्ये द्योत्ये। उष्णभोजी। शीतभोजी। अजातौ किम्? ब्राह्मणान् आमन्त्रयिता। ताच्छील्ये किम्? उष्णं भुङ्क्ते कदाचित्।

इह वृत्तिकारेणोपसर्गभिन्न एव सुपि णिनिरिति व्याख्याय ❀ उत्प्रतिभ्यामाङि सर्तेरुपसंख्यानम् ❀ इति पठितम्। हरदत्तमाधवादिभिश्च तदेवानुसृतम्। एतच्च भाष्यविरोधादुपेक्ष्यम्। प्रसिद्धश्चोपसर्गेऽपि णिनिः। स बभूवोपजीविनाम्, अनुयायिवर्गः। पतत्यधोधाम विसारि, न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिरित्यादौ। ❀ साधुकारिण्युपसंख्यानम् ❀। ❀ ब्रह्मणि वदः ❀। अताच्छील्यार्थं वार्तिकद्वयम्। साधुदायी, ब्रह्मवादी।

जातिभिन्नार्थक सुबन्त उपपद में रहते ताच्छील्य अर्थ प्रतीयमान रहते धातु से णिनि प्रत्यय होता है। उष्णभोजन करने की प्रकृति वाला = उष्णभोजी। शीतभोजी। जातिवाचक सुबन्त ब्राह्मण उपपद में रहते आङ् पूर्वक मन्त्र से तृच् प्रत्यय हुआ। कभी गरम खाने वाला अर्थ में वाक्य ही रहता है। यहां वार्तिककार ने उपसर्गभिन्न ही सुबन्त उपपद में रहते धातु से णिनि प्रत्यय होता है ऐसी व्याख्या करके उत् प्रति आङ् पूर्वक सृ धातु से णिनि प्रत्यय होता है ऐसा कहा है। हरदत्त, माधव आचार्य भी उस मत का अनुगमन करते हैं। वह मत भाष्यविरुद्ध होने से सर्वथा उपेक्ष्य है। उपसर्गपूर्वक धातु से णिनि प्रत्यय होता है यह प्रसिद्ध भी है उपजीविनाम्, अनुयायिवर्गः, विसारि, अनुजीविभिः, आदि प्रयोगों में। साधुकारी अर्थ में धातु से णिनि प्रत्यय होता है। ब्रह्मन् उपपद रहते धातु से णिनि प्रत्यय होता है। पूर्वोक्त दोनों वा० ताच्छील्य से भिन्नार्थ में णिनि के लिए है।

२९९० कर्तर्युपमाने ३।२।७९।

णिनिः स्यात्। उपपदार्थः कर्ता, प्रत्ययार्थस्य कर्तुरुपमानम्। उष्ट्र इव क्रोशति उष्ट्रक्रोशी। ध्वाङ्क्षरावी। अताच्छील्यार्थं जात्यर्थश्च सूत्रम्। कर्तरि किम्, अपूपान् इव भक्षयति माषान्। उपमाने किम्? उष्ट्रः क्रोशति।

उपमानवाचक कर्ता उपपद में रहते धातु से णिनि प्रत्यय होता है। उपपदार्थ जो कर्ता वह प्रत्ययार्थ कर्ता का उपमान है। ऊँट की तरह शब्द करने वाला जो वह ऊष्ट्रक्रोशी। काकवत्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्दकर्ता ध्वाङ्क्षरावी। ताच्छील्यमित्र एवं जात्यर्थ में णिनि के लिए यह सूत्र है। यूवों की तरह उडदों को वह खाता है। यहाँ णिनि न हुआ किन्तु वाक्य ही है। उपमान न होने पर यथा—उष्ट्रः क्रोशति।

२९९१ व्रते ३।२।८०।

णिनिः स्यात्। स्थण्डिलशायी।

व्रत गम्यमान होने पर धातु से णिनि प्रत्यय होता है। अकृत्रिमभूमि में व्रतार्थ शयन-क्रिया कर्ता = स्थण्डिलशायी।

२९९२ बहुलमाभीक्ष्ण्ये ३।२।८१।

पौनः पुन्ये द्योत्ये सुप्युपपदे णिनिः स्यात्। क्षीरपायिण उशीनराः।

पुनः पुनः अर्थ में सुबन्त उपपद रहते धातु से णिनि प्रत्यय होता है। उशीनर देशोद्भव जन दूध पान करने के स्वभाव वाले होते हैं-क्षीरपायिनः।

२९९३ मनः ३।२।८२।

सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात्। दर्शनीयमानी।

सुबन्त उपपद होने पर मन् से णिनि प्रत्यय होता है।
आत्मा को दर्शनीय समझने वाला = दर्शनीयमानी।

२९९४ आत्ममाने खश्च ३।२।८३।

स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात् चाण्णिनिः।

पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितम्मन्यः। पण्डितमानी। खित्यनव्ययस्य—कालिम्मन्या। अनव्ययस्य किम्? दिवामन्या।

सुबन्त उपपद रहने पर आत्मकर्मक = स्वकर्मक मनन में विद्यमान मन् धातु से खश् होता है, चकार से णिचि भी होता है।

पण्डितम्मन्यः = अपने को स्वयं पण्डित मानने वाला। णिनि में पण्डितमानी। खश् की सार्वधातुक संज्ञा विकरण, मुमागम। कालिम्मन्या यहाँ खिदन्त उत्तर पद में रहते पूर्वपद के अन्त्य अच् का ह्रस्व हुआ—सूत्र = खित्यनव्ययस्य। अपने को काली मानने वाली स्त्री। अव्यय सुबन्त उपपद में रहते ह्रस्वाभाव—दिवामन्या।

२९९५ इच एकाचोऽम् प्रत्ययवच्च ६।३।६८।

इजन्तादेकाचोऽम् स्यात् स च स्वाद्यम्वत् खिदन्ते परे। औतोम्शसोः। गाम्मन्यः। वाम्शसोः। स्त्रियम्मन्यः, स्त्रीम्मन्यः। नृ-नरम्मन्यः। भुवम्मन्यः। श्रियमात्मानं मन्यते श्रिमन्यं कुलम्। भाष्यकारवचनात् श्रीशब्दस्य ह्रस्वो मुममोरभावश्च।

खिदन्त उत्तर पद पर में रहते इजन्त एकाच् पूर्वपद से अम् प्रत्यय होता है वह अम् स्वादि के अम् के समान होता है। औतोम् शसोः से आत्व होकर गाम्मन्यः। अम् शस् मे स्त्री को इयङ्-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देश विकल्प से होने से श्यङ् एवं तदभाव में दो रूप है। नृ पूर्वक मन् से खश् विकरण अम् गुण नरम्मन्यः। भुवम्मन्यः। श्रिमन्यं कुलम् यहां भाष्यकारवचन से ह्रस्व एवं मुम्, अम् का अभाव है।

२९९६ भूते ३।२।८४।

अधिकारोऽयम् वर्तमाने लडिति यावत्।

वर्तमाने लट् सूत्र पर्यन्त यह अधिकार सूत्र है।

२९९७ करणे यजः ३।२।८५।

करणे उपपदे भूतार्थाद् यजेर्णिनिः स्यात् कर्तरि। सोमेनेष्टवान् सोमयाजी। अग्निष्टोमयाजी।

करणकारक उपपद में रहने पर भूतकालिक क्रियावाचक यज् धातु से कर्ता अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है।

भूतकाल में सोमकरणक यागकर्ता पुरुष = सोमयाजी। भूतकाल में अग्निष्टोमकरणकयागकर्ता= अग्निष्टोमयाजी।

२९९८ कर्मणि हनः ३।२।८६।

पितृव्यघाती। कर्मणीत्येतत् सहे चेति यावद् अधिक्रियते।

कर्मकारक उपपद में रहने पर हन् से णिनि होता है। वक्ष्यमाण 'सहे च' सूत्र तक कर्मणि का अधिकार है।

२९९९ ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् ३।२।८७।

एषु कर्मसूपपदेषु हन्तेर्भूते क्विप् स्यात्। ब्रह्महा। भ्रूणहा। क्विप् चेत्येव सिद्धे नियमार्थमिदम्—ब्रह्मादिष्वेव, हन्तेरेव, भूते एव, क्विवेव, इति चतुर्विधोऽत्र नियम इति काशिका। ब्रह्मादिष्वेव, क्विबेवेति द्विविधो नियम इति भाष्यम्।

ब्रह्मन्, भ्रूण, वृत्र कर्म उपपद में रहते भूत अर्थ में हन् से क्विप् होता है। क्विप् च सूत्र से सिद्ध था पुनः सूत्र यह नियमार्थ है—

हन् से क्विप् हो तो ब्रह्मादि कर्म उपपद में रहते ही, ब्रह्मादि उपपद में रहते क्विप् हो तो हन् से ही। हन् से ब्रह्मादि उपपद में क्विप् हो तो भूत अर्थ में ही। एवं क्विप् ही होता है अन्य प्रत्यय नहीं यह चार प्रकार का नियम इस सूत्र ने किया—यह काशिका मत है। ब्रह्मादि उपपद में ही, हन् से क्विप् ही यह दो प्रकार का नियम भाष्यसम्मत है।

३००० सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ३।२।८९।

सुकर्मादिषु कृञः क्विप् स्यात्। त्रिविधोऽत्र नियम इति काशिका। सुकृत्, कर्मकृत्, पापकृत्, मन्त्रकृत्, पुण्यकृत्। क्विबेवेति नियमात् कर्म कृतवान् इत्यत्राण् न। कृञ एवेति नियमान्मन्त्रमधीतवान् मन्त्राध्यायी अत्र न क्विप्, स्वादिष्वेवेति नियमाभावादन्यस्मिन् अप्युपपदे क्विप् शास्त्रकृत्। भाष्यकृत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सु, कर्म, पाप, मन्त्र, पुण्य, कर्म उपपद में रहते कृञ् से क्विप् होता है। त्रिविध नियम यहां होता है, यह काशिकामत है। क्विप् ही होता है इस नियम से कर्म कृतवान् यहां अण् की व्यावृत्ति हुई। कृञ्ज पव इस नियम से मंत्राध्यायः यहां क्विप् नहीं। भूत में ही क्विप् इस नियम से वर्तमान एवं भविष्यत्-कालिक उत्पत्तिजनक व्यापारार्थक कृञ् से क्विप् नहीं है। स्वादिषु उपपदेषु स्वादि उपपद में रहते ही कृञ् से क्विप् यह नियम यहां न होने से अन्य उपपद में रहते भी कृञ् से क्विप् होता है। शास्त्रकृत् आदि में।

३००१ सोमे सुञः ३।२।९०।

सोमसुत्। चतुर्विधोऽत्र नियम इति काशिका। एवमुत्तरसूत्रेऽपि।

सोम उपपद में रहने पर सूञ् से भूतार्थ में क्विप् होता है। सोमसुत्। इस स्थल में चार प्रकार का नियम है। काशिका मत यह है। उत्तर सूत्र में भी इसी प्रकार नियम जानना।

३००२ अग्नौ चेः ३।२।९१।

अग्निचित्।

अग्निशब्द उपपद में होने पर चिधातु से अतीत = भूत अर्थ में क्विप् प्रत्यय होता है।

३००३ कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ३।२।९२।

कर्मण्युपपदे कर्मण्येव कारके चिनोतेः क्विप् स्यात्। अग्न्याधारस्थल-विशेषस्याख्यायाम्। श्येन इव चितः श्येनचित्।

अग्नि का आधारस्थल विशेष अर्थ की प्रतीति होने पर कर्म उपपद में रहते कर्म ही कारक में चिधातु से भूत में क्विप् होता है। श्येनचित् = यहां समुदायार्थ आवहनीय धारणार्थ ईंटों से निर्मित स्थल विशेष में रूढ है।

३००४ कर्मणीनिविक्रियः ३।२।९३।

कर्मण्युपपदे विपूर्वात् क्रीणातेरिनिः स्यात्। ॐ कुत्सितग्रहणं कर्तव्यम् ॐ सोमविक्रयी। घृतविक्रयी।

कर्म उपपद में रहते विपूर्वक क्री से भूत अर्थ में इनिप्रत्यय होता है। कुत्सित अर्थ में धातु से इनि प्रत्यय होता है। सोमलता यज्ञसम्बन्धिनी है उसका विक्रय करने वाला-यहां निन्दा प्रतीयमान है सोमविक्रयी। ब्राह्मण घी का विक्रय करता है निन्दा में घृतविक्रयी।

३००५ दृशेः क्वनिप् ३।२।९४।

कर्मणि भूत इत्येव। पारदृष्टवान् पारदृश्वा।

कर्मकारक उपपद में रहने पर भूत में दृश से क्वनिप् होता है।

३००६ राजनि युधिकृञः ३।२।९५।

क्वनिप् स्यात्। युधिरन्तर्भावितण्यर्थः। राजानं योधितवान् राजयुध्वा, राजकृत्वा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजन् कर्म उपपद में रहते युध् एवं कृञ् से भूत अर्थ में क्विप् प्रत्यय होता है। युद्ध करवाना अर्थ में णिजर्थ कुक्षिप्रविष्ट युध धात्वर्थ की यहां प्रतीति है। केवल सम्प्रहारार्थक की नहीं। संप्रहारजनक व्यापारजनक व्यापारार्थक युध् है। राजकृत्वा क्विप् एवं तुक् अव्ययसंज्ञा।

३००७ सहे च ३।२।९६।

कर्मणीति निवृत्तम्। सहयुध्वा। सहकृत्वा।

'कर्मणि' इस पद की निवृत्ति है। सह उपपद में रहते युध् एवं कृ से अतीतार्थ में क्विप् होता है। सहयुध्वा। सहकृत्वा।

३००८ सप्तम्यां जनेर्डः ३।२।९७।

सरसिजम्। मन्दुरायां जातो मन्दुरजः। ङ्याप्रातिपदिकात्प्रातिपदिकग्रहणं किम्? ङ्याप्रातिपदिकस्य मा भूत्। ङ्याप्रातिपदिकस्य किम्? मन्दुरायां जातः। ङ्याप्रातिपदिकस्य ह्रस्वः।

सप्तम्यन्त उपपद में रहते जन् से डप्रत्यय होता है अतीतार्थ में। सरसिजम् डप्रत्यय टिलोप 'इकदन्ताः' से सप्तमी का अलुक्।

मन्दुरजः में ङ्यापो से ह्रस्व है।

३००९ पञ्चम्यामजातौ ३।२।९८।

जातिशब्दवर्जिते पञ्चम्यन्ते उपपदे जनेर्डः स्यात्। संस्कारजः। अदृष्टजः।

जाति से भिन्न पञ्चम्यन्त उपपद में रहते जन् से डप्रत्यय होता है। संस्कारात् जातः संस्कारजः। अदृष्टात् जातः अदृष्टजः।

३०१० उपसर्गे च संज्ञायाम् ३।२।९९।

प्रजा स्यात् सन्ततौ जने।

संज्ञा में उपसर्ग पूर्वक जन् से डप्रत्यय होता है। प्रजा सन्तति में एवं जनों में व्यवहृत है संज्ञावाचक है।

३०११ अनौ कर्मणि ३।२।१००।

अनुपूर्वाज्जनेः कर्मण्युपपदे डः स्यात्। पुंमासमनुरुध्य जाता पुमनुजा।

कर्म उपपदक अनुपूर्वक जन् से ड होता है। जिस कन्या की उत्पत्ति के पूर्व भाई उत्पन्न है उसके बाद की उत्पन्न कन्या को पुमनुजा कहते हैं।

३०१२ अन्येष्वपि दृश्यते ३।२।१०१।

अन्येष्वप्युपपदेषु जनेर्डः स्यात्। अजः। द्विजः। ब्राह्मणजः। अपिशब्दः सर्वोपाधिव्यभिचारार्थः। तेन धात्वन्तरादपि कारकान्तरेष्वपि क्वचित्। परितः खाता परिखा।

अन्य उपपद में रहते भी जन् से डप्रत्यय होता है। अपि शब्द सब उपाधि व्यभिचारार्थ है अर्थात् जिनके उपपद में जिससे प्रत्यय जिस अर्थ में विधान है उनसे भिन्न उपपदक भिन्न धातु से भिन्न अर्थ में प्रत्यय होता है। अर्थात् धात्वन्तर एवं कारकान्तर से भी प्रत्यय होता है। यथा परिपूर्वक विदारणार्थक खन् से डप्रत्यय टाप् दीर्घ परिखा = खाई।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३०१३ क्तक्तवतू निष्ठा १।१।२६।

एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः।

क्तप्रत्यय एवं क्तवतु प्रत्यय इनकी निष्ठा संज्ञा होती है, विधि सूत्र में या उद्देश्यतया जहां कहीं निष्ठा पद आवेगा वह संज्ञा निष्ठा को देखकर उसके संज्ञी क्त एवं क्तवतु की उपस्थिति होती है। संज्ञां दृष्ट्वा संज्ञिन उपस्थितिः।

३०१४ निष्ठा ३।२।१०२।

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात्। तत्र तयोरेवेति भावकर्मणोः क्तः। कर्तरि कृदिति कर्तरि क्तवतुः। उकावितौ। स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विष्णुर्विश्वं कृतवान्।

भूतकालिक क्रिया रूप अर्थवाचक धातु से निष्ठा होते हैं। 'तयोरेव' सूत्र से सकर्मक धातु से क्त कर्म में अकर्मक धातु से क्त भाव में होता है। क्तवतु प्रत्यय 'कर्तरि कृत्' से कर्ता में होता है कर्ता उक्त होने से प्रथमान्त रहता है कर्म अनुक्त से द्वितीया। एवं जहां कर्म क्त से है उक्त वहां कर्मवाचक से प्रथमा। एवं कर्तृवाचक से तृतीया होती है। यथा—स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विश्वं विष्णुः कृतवान्।

विमर्श—धातुसंज्ञक से लक्ष्य में परत्वविशिष्ट जब क्त प्रत्यय एवं क्तवतु प्रत्यय रहे तब निष्ठा संज्ञा हो सकती है। जब निष्ठा संज्ञा हो तो निष्ठा सूत्र से धातु से पर क्त एवं क्तवतु प्रत्यय आ सकता है यह अन्योन्याश्रय दोष हुआ, ज्ञान एवं उत्पत्ति में अन्योन्याश्रयकार्य सिद्ध नहीं होते हैं।

स्वज्ञप्यधीनज्ञप्तिकत्व—स्वाधीनोत्पत्त्यधीनोत्पत्तिकत्वैतदन्यतरसम्बन्धेन स्वविशिष्टत्वम् = अन्योन्याश्रयत्वम्। अतः यहां सूत्रशाटकवत् न्याय से भाविसंज्ञा का समाश्रयण से अन्योन्याश्रय दोष का उद्धार करना एतादृश क्त एवं क्तवतु प्रत्यय होते हैं जिनके विधान के बाद भविष्य में निष्ठा संज्ञा हो सके।

३०१५ निष्ठायामण्यतदर्थे ६।४।६०।

ण्यदर्थो भावकर्मणी ततोऽन्यत्र निष्ठायां क्षियो दीर्घः स्यात्।

ण्यत् प्रत्यय का भाव एवं कर्म अर्थ है, उससे अन्य अर्थ में जो निष्ठाप्रत्यय उसके परमें रहती क्षि धातु के अवयव अच् का दीर्घ होता है।

३०१६ क्षियो दीर्घात् ८।२।४६।

दीर्घात् क्षियो निष्ठातस्य नः स्यात्। क्षीणवान्। भावकर्मणोस्तु क्षितः कामो मया। श्युकः किति। श्रितः। श्रितवान्। भूतः। भूतवान्। क्षुतः क्षूर्णोतेर्गुणवद्भावो वाच्यः क्ष। तेनैकाच्त्वान्नेट्, ऊर्णुतः। नुतः। वृतः।

दीर्घान्त क्षी से उत्तर निष्ठा प्रत्ययावयव तकार के स्थान में नकारादेश होता है। क्षीणवान्। भाव एवं कर्म में जहाँ निष्ठाप्रत्यय का विधान है वहाँ पूर्व सूत्र से दीर्घाभाव से इससे नत्वाभाव है, यथा क्षितः कामः। श्रितः, श्रितवान् यहाँ वकादिलक्षण प्राप्त इडागम का 'श्युकः किति' से निषेध है। ऊर्णु धातु यद्यपि अनेकाच् है उससे विहित निष्ठा को इडागम-निवारणार्थ वार्तिक है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह ऊर्णु को णुवत् भाव बोधन करता है अतः एकाच्त्व के अतिदेश से 'एकाच्' सूत्र से इडागम का अभाव हुआ—ऊर्णुतः।

३०१७ रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ८।२।४२।

रेफदकाराभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात् निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दकारस्य च। शॄ 'ऋत इत्', रपरः, णत्वम्, शीर्णः। बहिरङ्गत्वेन वृद्धेरसिद्धत्वान्नेह, कृतस्यापत्यं कार्तिः। भिन्नः। छिन्नः।

रेफ या दकार से पर जो निष्ठाप्रत्यय तदवयव जो तकार उसको नकारादेश होता है, एवं यदि सम्भव हो तो निष्ठा के पूर्व धातु के दकार को भी नकारादेश होता है। यह द्वितीयांश आनुषङ्गिक है, प्रथमांश मुख्य है।

अन्यार्थं प्रवृत्तस्यान्यार्थलाभ अनुषङ्गः। 'भिक्षामट गाञ्चानय' की तरह। हिंसार्थक शॄ से क्त प्रत्यय इत्व, रपरत्व, नत्व, णत्व, शीर्णः। कृत षष्ठ्यन्त से अपत्यार्थक इञ् प्रत्यय, आदि वृद्धि, रपरत्व से कार्ति यहाँ नत्व अन्तरङ्ग है, वृद्धि बहिरङ्गत्वप्रयुक्त असिद्ध है अतः रेफ का ज्ञानाभावप्रयुक्त नत्वाभाव है। भिन्नः छिन्नः में धातु का दकार एवं निष्ठा का तकार दोनों को नकार हुआ। भूतकालिकविदारणकर्माश्रयः।

३०१८ संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ८।२।४३।

निष्ठातस्य नः स्यात्। द्राणः। स्त्यानः। ग्लानः। म्लानः।

संयोग है आदि में जिसको ऐसा यण् घटित आकारान्त धातु उससे पर निष्ठा को नकारादेश होता है। द्राण इत्यादि।

३०१९ ल्वादिभ्यः ८।२।४४।

एकविंशतेर्ल्वादिभ्यः प्राग्वत्। लूनः। ज्या, ग्रहिज्या, जीनः। ॐ दुग्वोर्दीर्घश्चॐ दु गतौ दूनः। 'दु द्रु उपतापे' इत्ययं तु न गृह्यते, सानुबन्धकत्वात्। मृदुतया द्रुतयेति माघः। गूनः। पूञो विनाशे ॐ। पूना यवाः। विनष्टा इत्यर्थः। पूतमन्यत्। ॐ सिनोतेर्ग्रासकर्मकर्तृकस्य ॐ। सिनो ग्रासः। ग्रासेति किम्, सिता पाशेन सूकरी। कर्मकर्तृकेति किम्, सितो ग्रासो देवदत्तेन।

क्रयादिगणपठित लूञ् है आदि में जिनको ऐसा २१ इक्कीस धातु से परं निष्ठा प्रत्यय के अवयव तकार के स्थान में नकार आदेश होता है। वयोहानिरूपार्थक ज्या धातु से क्त प्रत्यय 'ग्रहिज्या' से सम्प्रसारण 'हलः' से दीर्घ जीनः। यह संयोगादि यण् घटित होने से पूर्व से अप्राप्त नत्व है। दु एवं द्रु से पर निष्ठासम्बन्धी तकार को नकारादेश होता है एवं धातु को दीर्घ भी होता है। गत्यर्थक दु है, सानुबन्धक उपतापार्थक का ग्रहण नहीं है "निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य" परिभाषा से। उपताप में नत्वाभावघटित माघकविका वाक्य है 'द्रुतया' इति। विनाश अर्थ में पूञ् से पर निष्ठातकार को नकारादेश होता है 'पूनाः'। पवित्र अर्थ में पूतम्।

ग्रासरूप कर्म कर्ता रहते बन्धनार्थक सि से पर तकार को नकारादेश होता है। सिनः। कर्म कर्ता से भिन्न में अर्थात् शुद्ध कर्मणि प्रयोग में नत्वाभाव है। सितो ग्रासो देवदत्तेन।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३०२० ओदितश्च ८।२।४५।

भुजो भुग्नः। द्रुओश्वि उच्छूनः। ओहाक् प्रहीणः। स्वादय ओदित इत्युक्तम्। सूनः सूनवान्। दूनः, दूनवान्। ओदिन्मध्ये डीङ्पाठसामर्थ्यान्नेट् उड्डीनः।

ओकार की इत्संज्ञा युक्त धातु से पर निष्ठाप्रत्ययावयव तकार को नकारादेश होता है। स्वादि धातु ओदित् है। ओदित् धातुओं के बीच में डीङ् का पाठकरण से उड्डीनः यहाँ इडागमाभाव है।

३०२१ द्रवमूर्तिस्पर्शयोः श्यः ६।१।२४।

द्रवस्य मूर्तौ काठिन्ये स्पर्शे चार्थे श्यैङः सम्प्रसारणं स्यान्निष्ठायाम्।

निष्ठाप्रत्यय पर में रहते द्रव पदार्थ की मूर्ति अर्थात् कठोरता गम्यमान रहते एवं स्पर्श अर्थ में श्यैङ् का सम्प्रसारण होता है।

३०२२ श्योऽस्पर्शे ८।२।४७।

श्यैङो निष्ठातस्य नः स्याद् अस्पर्शेऽर्थे। हल इति दीर्घः, शीनं घृतम्। अस्पर्शे किम् शीतं जलम्। द्रवमूर्तिस्पर्शयोः किम्, संश्यानो वृश्चिकः=शीतात् संकुचित इत्यर्थः।

अस्पृश्य अर्थ में श्यैङ् से पर निष्ठा तकार को नकारादेश होता है।

हलः से दीर्घ शीनं घृतम्। स्पर्श में शीतम् जलम्। द्रवमूर्ति स्पर्श से भिन्न में संप्रसारणाभाव है। शीत से संकुचित बिच्छू में संश्यानः।

३०२३ प्रतेश्च ६।१।२५।

प्रतिपूर्वस्य श्यः सम्प्रसारणं स्यात् निष्ठायाम्। प्रतिशीनः।

निष्ठा प्रत्यय पर में रहते प्रतिपूर्वक श्यैङ् का सम्प्रसारण होता है। यथा प्रतिशीनः।

३०२४ विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य ६।१।२६।

श्यः सम्प्रसारणं वा स्यात् अभिशीनम्, अभिश्यानं घृतम्। अवशीनः, अवश्यानो वृश्चिकः। व्यवस्थितविभाषेयम्। तेनेह न, समवश्यानः।

निष्ठा प्रत्यय पर में रहते अभिपूर्वक एवं अवपूर्वक श्यैङ् का विकल्प से सम्प्रसारण होता है। यह व्यवस्थित विभाषा है। समवश्यानः यहाँ सम्प्रसारणाभाव ही है पक्ष में सम्प्रसारण न हुआ। एक ही रूप है।

३०२५ अञ्चोऽनपादाने ८।२।४८।

अञ्चो निष्ठातस्य नः स्यान्न त्वपादाने।

अञ्चू धातु से पर निष्ठासम्बन्धी तकार को नकारादेश होता है किन्तु अपादानार्थ प्रयोग में नहीं।

३०२६ यस्य विभाषा ७।२।१५।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यस्य क्वचिद् विभाषयेड्विहितस्ततो निष्ठाया इण्न स्यात्। उदितो वेति क्त्वायां वेट्त्वादिह नेट्। समक्नः। अनपादाने किम्, उदक्तमुदकं कूपात्। नत्वस्यासिद्धत्वाद् व्रश्चेति षत्वे प्राप्ते, ॐ निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेड्विधिषु सिद्धो वाच्यः ॐ। वृक्णः। वृक्णवान्।

जिस धातु से पर वलादि आर्धधातुक को विकल्प से कदाचित् इडागम विधान हो उससे उत्तर निष्ठा प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। 'उदितो वा' सूत्र से क्त्वा को विकल्प इडागम विहित होने से उदित् धातु से पर निष्ठा को इडागम का इससे अभाव होता है। समक्नः। अपादान कारक के प्रयोग में तो उदक्तम् हुआ। यहां तकार को नकारादेशाभाव है। तकार को नकारादेश असिद्धत्व के कारण षत्वप्राप्त के निषेधार्थ वार्त्तिक है। षत्वविधि, स्वरविधि, प्रत्ययविधि, इड्विधि कर्तव्य रहते निष्ठा प्रत्यय के स्थान में आयमान आदेश सिद्ध रहता है। यथा वृक्णः। वृक्णवान्। ओव्रश्चू छेदने व्रश्चिक्या से सम्प्रसारण नत्व के असिद्ध से स्कोः से सकार लोप, चोः कुः से कुत्व, ऊदित के कारण विकल्प इडागम यस्य विभाषा से इडागमाभाव, वर्णैकदेशपरिभाषा से अट्कुप्वाङ् से णकारादेश णत्व की विनामसंज्ञा प्राचीन है।

३०२७ परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु ८।३।७५।

पूर्वेण मूर्द्धन्ये प्राप्ते तदभावो निपात्यते। परिस्कन्दः। प्राच्येति किम्, परिष्कन्दः। परिस्कन्दः। परेश्च इति षत्वविकल्पः। स्तन्भेरिति षत्वे प्राप्ते।

प्राच्य एवं भरत अर्थ में परिस्कन्दः निपातित है। पूर्वसूत्र से मूर्धन्य की प्राप्ति होने पर निपातनसे षत्वाभाव है। प्राच्य एवं भरत से भिन्न में 'परेश्च' से विकल्प षकार हुआ। 'स्तन्भेः' से विहित षत्व का बाधक वक्ष्यमाण वचन है—

३०२८ प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च ८।२।११४।

अत्र षत्वं न स्यात्।

प्रतिस्तब्ध एवं निस्तब्ध से षत्वाभाव निपातन से होता है।

३०२९ दिवोऽविजिगीषायाम् ८।३।४९।

दिवो निष्ठातस्य नः स्याद् अविजिगीषायाम्। द्यूनः। विजिगीषायान्तु द्यूतम्।

अविजिगीषा अर्थ में दिव् धातु से पर निष्ठा प्रत्यय के तकार को नकारादेश होता है।

३०३० निर्वाणोऽवाते ८।२।५०।

अवाते इति च्छेदः। निर्पूर्वाद् वातेर्निष्ठातस्य नत्वं स्याद् वातश्चेत्कर्ता न, निर्वाणोऽग्निर्मुनिर्वा। वाते तु निर्वातो वातः।

निर्वाणः अवाते ऐसा पदच्छेद सूत्र में है। यदि वायु कर्ता न हो तो निर् पूर्वक वा धातु से पर निष्ठा तकार को नकारादेश होता है। अग्नि एवं मुनि में निर्वाणः। वात में निर्वातः।

३०३१ शुष्कः कः ८।२।५१।

निष्ठात इत्येव। शुष्कः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुष् धातु से विहित निष्ठासम्बन्धी तकार को ककारादेश होता है। शुष्कः।

३०३२ पचो वः ८।२।५२।

पक्वः।

पच् धातु से पर निष्ठा तकार को वकारादेश होता है, विक्लित्तिरूप पच् धात्वर्थ फलाश्रय ओदनादि में कर्म में क्त है उसको वकार से पक्वः।

३०३३ क्षायो मः ८।२।५३।

क्षामः।

क्षै धातु से पर निष्ठा तकार को मकारादेश होता है। क्षामः।

३०३४ स्त्यः प्रपूर्वस्य ६।१।२३।

प्रात् स्त्यः सम्प्रसारणं स्यान्निष्ठायाम्।

निष्ठा प्रत्यय पर में रहते प्रपूर्वक स्त्यै धातु के यण् को सम्प्रसारण होता है।

३०३५ प्रस्त्योऽन्यतस्याम्।

निष्ठातस्य मो वा स्यात् प्रस्तीमः। प्रस्तीतः। प्रात् किम्, स्त्यानः।

प्रपूर्वक स्त्यै से पर निष्ठा तकार को मकार विकल्प से होता है। जहां प्रपूर्वक नहीं वहां स्त्यानः।

३०३६ अनुपसर्गात् फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः ८।२।५५।

स्फिला, फुल्लः। निष्ठातस्य लत्वं निपात्यते। क्तवत्वेकदेशस्यापीदं निपातनमिष्यते। फुल्लवान्। क्षीबादिषु तूक्तप्रत्ययस्यैव तलोपः, तस्यासिद्धत्वात् प्राप्तस्येटोऽभावश्च निपात्यते। क्षीबो मत्तः कृशस्तनुः। उल्लाघो नीरोगः। अनुपसर्गात् किम्—

उपसर्ग पूर्व रहित फुल्ल, क्षीब, कृश, उल्लाघ ये निपातन से सिद्ध होते हैं। स्फिला धातु से क्तप्रत्यय तकार को निपातन से लकारादेश है, यह निपातन क्तवतु के एकदेश क्तान्त में भी होता है यथा—फुल्लवान्। क्षीबादि क्तप्रत्यय के तकार का लोप होता है। लोप के असिद्धत्व प्रयुक्त प्राप्त वलादिलक्षण इडागम का अभाव होता है निपातन से। क्षीबः मत्तः। कृशस्तनुः। उल्लाघो रोगरहितः। उपसर्ग से पर रहने पर तो इडागमाभावार्थ सूत्र—

३०३७ आदितश्च ७।२।१६।

आकारेतो निष्ठाया इण्न स्यात्।

आदित् धातु से उत्तर निष्ठा प्रत्यय को इडागमाभाव होता है।

३०३८ ति च ७।४।८९।

चरफलोरत उत्स्यात् तादौ किति। प्रफुल्तः। प्रक्षीबितः। प्रकृशितः। प्रोल्लाघितः। कथं तर्हि "लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम्" इति, फुल्ल विकसने पचाद्यच्। सूत्रन्तु फुल्तादिनिवृत्त्यर्थम्। ❀ उत्फुल्लसंफुल्लयोरुपसंख्यानम् ❀।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तकारादि कित्प्रत्यय पर में रहते चर एवं फल के अकार को उकारादेश होता है। उत् में तपर से ह्रस्व उकारादेश है। फुल्ल धातु से अच् से 'प्रफुल्लम्' की सिद्धि है। यह सूत्र 'फुल्लतः' आदि प्रयोगनिवृत्त्यर्थ है। उत्फुल्ल एवं संफुल्ल ये दोनों निपातन से सिद्ध होते हैं अर्थात् तकार का लकारादेश निपातन से है।

३०३९ नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम् ८।२।५६।

एभ्यो निष्ठातस्य नो वा। नुन्नः। नुत्तः। विद विचारणे रौधादिक एव गृह्यते, उन्दिना परेण साहचर्य्यात्। विन्नः, वित्तः। वेत्तेस्तु विदितः। विद्यते-र्विन्नः। उन्दी।

नुद्, विद्, उन्द, त्रा, घ्रा, ह्री इनसे पर निष्ठा तकार को नकार विकल्प से होता है। विद् विचारणार्थ रुधादिका उन्द साहचर्य से यहां गृहीत है। अन्य नहीं, अदादिगणीय विद् से क्त विदितः। दिवादि का विन्नः। भाष्यवचन—

"वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते।
विन्तेर्विन्नश्च वित्तश्च वित्तं भोगेषु विन्दतेः" इति॥ १॥

उन्दी धातु के उदाहरण में वक्ष्यमाण सूत्र से विशेष कार्य है—

३०४० श्वीदितो निष्ठायाम् ७।२।१४।

श्वयतेरीदितश्च निष्ठाया इण्न। उन्नः, उत्तः। त्राणः, त्रातः। घ्राणः, घ्रातः। ह्रीणः। ह्रीतः।

श्वि धातु एवं ईदित् धातु से उत्तर निष्ठा को इडागम नहीं होता है। उन्नः, उत्तः इत्यादि।

३०४१ न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम् ८।२।५७।

एभ्यो निष्ठातस्य नत्वं न। ध्यातः। ख्यातः। पूर्तः। राल्लोपः, मूर्तः। मत्तः।

ध्या, ख्या पॄ, मूर्च्छि, मद धातुओं से उत्तर निष्ठा प्रत्यय के तकार को नकारादेश नहीं होता है। ध्यै चिन्तायाम्, ख्या प्रकथने, पॄ पालनपूरणयोः, मुर्च्छा मोहसमुच्छ्राययोः, मदी हर्षे। पूर्तः, ऋयुकः किति से इडागमाभाव है। मूर्तः में राल्लोपः की प्रवृत्ति मत्तः में श्वीदितः से इडागमाभाव है।

३०४२ वित्तो भोगप्रत्यययोः ८।२।५८।

विन्दतेर्निष्ठान्तस्य निपातोऽयं भोग्ये प्रतीते चार्थे। वित्तं धनम्। वित्तः पुरुषः। अनयोः किम्, विन्नः। विभाषा गमहनेति कसौ वेट्त्वाद् इह नेट्।

भोग एवं प्रत्यय शब्द कर्म साधन है अतः भोग्य एवं प्रतीति अर्थ में निष्ठाप्रत्ययान्त तुदादि विद् धातु का वित्त निपातन होता है, वित्तं धनम्। वित्तः पुरुषः। इन दो अर्थ से भिन्न में विन्न होता है रदाभ्याम् से दकार एवं तकार को नकारद्वय आदेश हुए। कसु को विकल्प 'विभाषा गमहन्' से इड् विधान से निष्ठा को इडागमाभाव यस्य विभाषा से हुआ।

३०४३ भित्तं शकलम् ८।२।५९।

भिन्नम् अन्यत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खण्ड अर्थ में भित्तम् यह निपातन होता है। अन्य अर्थ में भिन्नम् हुआ।

३०४४ ऋणमाधमर्ण्ये ८।२।६०।

ऋधातोः क्ते तकारस्य नत्वं निपात्यते अधमर्ण्यव्यवहारे। ऋतमन्यत्।

अधमर्ण व्यवहार में ऋधातु से पर क्तप्रत्यय के तकार को नत्व निपातन से होता है। अन्यत्र ऋतम् यही प्रयोग होता है।

३०४५ स्फायः स्फी निष्ठायाम् ६।१।२२।

स्फीतः।

निष्ठा प्रत्यय परमें रहते स्फाय को स्फी आदेश होता है। स्फीतः=स्फायी वृद्धौ। स्फीतिकामः स्फीतमाचष्टे ण्यन्त से अचः इः, अलोप एवं णिलोप है।

३०४६ इण् निष्ठायाम् ७।२।४७।

निरः कुषो निष्ठाया इट् स्यात्। यस्य विभाषेति निषेधे प्राप्ते पुनर्विधिः। निष्कुषितः।

निपूर्वक कुष् धातु से पर निष्ठा को इडागम होता है। यस्य विभाषा से प्राप्त निषेध को बाधकर इडागम विधान इसने किया है। यथा निष्कुषितः। निरः कुषः से विकल्प इडागम बोधन से यहां यस्य विभाषा का विषय है।

३०४७ वसतिक्षुधोरिट् ७।२।५२।

आभ्यां क्त्वानिष्ठयोर्नित्यमिट् स्यात्। उषितः। क्षुधितः।

वस् धातु से क्त, यजादित्व प्रयुक्त सम्प्रसारण, पूर्वरूप, शासिवसि से षकार, उषितः। क्षुधितः। 'यस्याल्पमेषा क्षुधितस्य' यह प्रयोग भी इडागम से हुआ।

३०४८ अञ्चेः पूजायाम् ७।२।५३।

पूजार्थादञ्चेः क्त्वानिष्ठयोरिट् स्यात्। अञ्चितः। गतौ तु अक्तः।

पूजार्थवाचक अञ्चु से पर क्त्वा एवं निष्ठा को इडागम होता है। उदित्त्वप्रयुक्त क्त्वा में विकल्प इडागम से यस्य विभाषा से अप्राप्त इडागम को विधानार्थ यह सूत्र है। नाञ्चेः पूजायाम् से नलोपाभाव है। अञ्चितः। गति में अक्तः यही रूप है।

३०४९ लुभो विमोहने ७।२।५४।

लुभः क्त्वानिष्ठयोर्नित्यमिट् स्यात् न तु गार्ध्ये। लुभितः। गार्ध्ये तु लुब्धः।

विमोहन अर्थ में लुभ धातु से परवर्ती तथा एवं निष्ठा को नित्य इडागम होता है, किन्तु गार्ध्य में वह नहीं होता है। लोभी अर्थ में लुब्धः।

३०५० क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः ७।२।५०।

इड्वा। क्लिश उपतापे नित्यं प्राप्ते क्लिशू विबाधने अस्य क्त्वायां विकल्पे सिद्धेऽपि निष्ठायां निषेधे प्राप्ते विकल्पः। क्लिशितः। क्लिष्टः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्लिश् धातु से पर क्त्वा एवं निष्ठा को विकल्प इडागम होता है। उपतापार्थक क्लिश् धातु से पर प्रत्यय को नित्य इडागम प्राप्त है। विबाधनार्थक क्लिशू को क्त्वा में इडागम विकल्प विधान से यस्य विभाषा से निष्ठा में इडागमाभाव प्राप्त है यहां इस से विकल्प इडागम किया क्लिशितः। क्लिष्टः।

३०५१ पूङश्च ७।२।५१।

पूङः क्त्वानिष्ठयोरिड् वा स्यात्।

पूङ् धातु से पर क्त्वा एवं निष्ठा उनको इडागम विकल्प से होता है।

३०५२ पूङः क्त्वा च १।२।२२।

पूङः क्त्वा निष्ठा च सेट् किन्न स्यात्। पवितः। पूतः। क्त्वाग्रहणमुत्तरार्थम्। नोपधादित्यत्र हि क्त्वैव सम्बध्यते।

पूङ् धातु से पर सेट् क्त्वा एवं निष्ठा कित् नहीं होते हैं। इस सूत्र में क्त्वा ग्रहण न भी करते तो भी 'न क्त्वा सेट्' से कित्त्व का निषेध होता पुनः क्त्वाग्रहण इस लिए किया है कि 'नोपधात्' सूत्र में क्त्वा का ही सम्बन्ध हो निष्ठा का नहीं यह प्रयोजन अत्रत्य क्त्वा का है।

३०५३ निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः १।२।१९।

एभ्यः सेण्निष्ठा किन्न स्यात्। शयितः शयितवान्। अनुबन्धनिर्देशो यङ्लुङ्निवृत्त्यर्थः। शेश्यितः। शेश्यितवान्। ❀ आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या।

शीङ्, स्विद्, मिद्, क्ष्विद्, धृष् इनसे पर इट्-विशिष्ट निष्ठा कित् नहीं है। अनुबन्ध निर्दिष्ट कार्य यङ्लुक् में नहीं होता है। शेश्यितः यहां कित्त्व है। गुणाभाव से यणादेश हुआ।

आदिकर्म में निष्ठा प्रत्यय होता है। कर्म शब्द क्रियापरक है। आदित्वलक्षण विशिष्ट क्रियावृत्ति धातु से निष्ठा प्रत्यय होता है।

३०५४ आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च ३।४।७१।

आदिकर्मणि यः क्तः स कर्तरि स्यात्। चाद् भावकर्मणोः।

आदिकर्म में जो क्त प्रत्यय का विधान किया है वह कर्ता में होता है। चकार से भाव एवं कर्म में भी होता है।

३०५५ विभाषा भावादिकर्मणोः ७।२।१७।

भावे आदिकर्मणि चादितो निष्ठाया इड्वा स्यात्। प्रस्वेदितश्चैत्रः। प्रस्वेदितं तेन। ञिष्विदेति भ्वादिरत्र गृह्यते, ञिदृभिः साहचर्यात्। स्विद्यतेस्तु स्विदित इत्येव। ञिमिदा, ञिष्विदा, दिवादी भ्वादी च। प्रमेदितः। प्रमेदितवान्। प्रद्वेदितः। प्रद्वेदितवान्। प्रधर्षितः। प्रधर्षितवान्। धर्षितं तेन। सेट् किम्, प्रस्विन्नः। प्रस्विन्नं तेनेत्यादि।

भाव में एवं आदिकर्म में आकार की इत्संज्ञा वाले धातु से पर निष्ठा को विकल्प से इडागम होता है। प्रस्वेदितश्चैत्रः = प्रारभ्यमाण-प्रस्वेदन-क्रियायुक्तश्चैत्रः। यहां ञिष्विदा भ्वादि का ग्रहण है, ञकारेत्संज्ञक धातुओं के साहचर्य से। दिवादिगणीय स्विद् का स्विदित ऐसा ही रूप होता है। ञिमिदा ञिष्विदा वे दो धातु दिवादिगणीय है एवं भ्वादिगणीय है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथा—प्रमेदितः, प्रमेदितवान्। प्रक्ष्वेदितः प्रक्ष्वेदितवान्। 'निष्ठा शीङ्' सूत्र से यहां सेट् की अनुवृत्ति है, अतः प्रस्विन्नः आदि स्थल में कित्व नहीं हुआ।

३०५६ मृषस्तितिक्षायाम् १।२।२०।

सेण्निष्ठा किन्न स्यात्। मर्षितः। मर्षितवान्। क्षमायां किम्, अपमृषितं वाक्यम्। अविमृष्टमित्यर्थः।

सहनशीलतारूप तितिक्षा अर्थ में मृष् धातु से पर सेट् निष्ठा कित् नहीं है। तितिक्षा भिन्न में कित्व से अपमृषितम् हुआ।

३०५७ उदुपधाद् भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् १।२।२१।

उदुपधाद् भावादिकर्मणोः सेण्निष्ठा वा किन्न स्यात्। द्योतितम् द्युतितम्। मोदितं मुदितं साधुना। प्रद्योतितः, प्रद्युतितः। प्रमोदितः प्रमुदितः साधुः। उदुपधात् किम्, विदितम्। भावेत्यादि किम्, रुचितं कार्षापणम्। सेट् किम्, क्रुष्टम्। ॐ शबविकरणेभ्य एवेष्यते ॐ। नेह, गुध्यतेर्गुधितम्।

उकारोपध धातु से पर भाव एवं आदिकर्म में सेट् निष्ठा विकल्प से कित् नहीं है। अर्थात् कित्वाभाव पक्ष में कित्व से दो रूप, प्रथम कित्वाभाव का उदाहरण मूल में चाहिये बाद में कित्व का यही क्रम उचित है।

शबविकरण युक्त धातु से उत्तर ही निष्ठा को कित्वाभाव विकल्प से इष्ट है। अतः गुधितम् यहां विकल्प से कित्वाभाव न हुआ।

३०५८ निष्ठायां सेटि ६।४।५२।

णिलोपः स्यात्। भावितः, भावितवान्। श्वीदित इति नेट्, सम्प्रसारणम्, शूनः। दीप्तः। गुहू गूढः, वनु वतः, तनु ततः। पतेः सनि वेट्त्वादिडभावे प्राप्ते द्वितीयाश्रितेति सूत्रे निपातनादिट्। पतितः। सेऽसिचीतिवेट्कत्वात् सिद्धे कृन्तत्यादीनामीदित्त्वेनानित्यत्वज्ञापनाद् वा। तेन धावितमिभराजधियेत्यादि। यस्य विभाषेत्यत्रैकाच इत्येव, दरिद्रितः।

सेट् निष्ठा परमें रहते णि का लोप होता है। भू से णिच् वृद्धि भावि से क्त या क्तवतु को वकादिलक्षण इडागम करके सेट्निष्ठापरक णि का लोप करना चाहिये। यथा—भावितः भावितवान्। शूनः—श्वि से निष्ठा तप्रत्यय सम्प्रसारण पूर्व रूप इक से दीर्घ, ओदितश्च से निष्ठा तकार को नकार है, मूलधातु 'ष्टुओश्वि गतिवृद्धयोः' है। गूढः 'यस्य विभाषा' से इट् न, ह्रस्व-वत्व ष्टुत्व ढलोप दीर्घ यहां है। वन् त, तन् त यहाँ अनुदात्तोपदेश से नकारलोप वतः, ततः। पत् धातु से सन् को 'तनिपति' से विकल्प इडागम विधान से निष्ठा में इडागमाभाव प्राप्त है किन्तु द्वितीया तत्पुरुष समास विधायक शास्त्र में 'पतित' इस निर्देशकरण से यस्य विभाषा को क्वचित् अनित्य मान कर अर्थात् "नञ्सुभ्याम्" से इडागम निष्ठा को हुआ पतितः कृती में 'सेऽसिचि' से विकल्प इडागम से निष्ठा को यस्य विभाषा से इडागम अप्राप्त है ही पुनः इसमें ईदित् ग्रहण से इडागमाभावशोधन से यह ज्ञापित होता है यस्य विभाषा अनित्य है अनित्य में प्रमाणद्वय का उपन्यास 'दिर्वेदं सुवचं भवति" यह बोधनार्थ है। इससे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धातु धातु से क्तप्रत्यय में उदित को क्त्वा में विकल्प इडागम से निष्ठा को इडागम का अभाव यस्य विभाषा अनित्य होने से न लगा "धावितम् इमराजधिया" यह हुआ। यस्य विभाषा में एकाच् की अनुवृत्ति से वह अनेकाच् में न लगा—दरिद्रितः।

विमर्श—निष्ठायां सेटि में सेट् ग्रहण काळावधारणार्थ है, अर्थात् इट् निष्ठा को करके तदनन्तर ही णिलोप होता है प्रथम णिलोप नहीं होता है। अन्यथा णिलोपोत्तर एकाचूलक्षण इडागम का प्रतिषेध होगा। ननु सेट् के अभाव में भी प्रथम जायमान णिलोप का स्थानिवद्भाव अचः परस्मिन् सूत्र से (पूर्वस्मात् विधिः पूर्वविधिः-पक्ष मे परनिमित्तकोऽजादेशः स्थानिवत् स्थानीभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टात् परस्य कार्ये कर्तव्ये) स्थानिवद्भाव से अनेकाचूत्व होने से 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' की अप्रवृत्ति होगी पुनः सेट् ग्रहण क्यों किया। वह व्यर्थ होकर पूर्वविधौ में पञ्चमी समास अनित्य है ऐसा ज्ञापन करता है, पञ्चमी समास अनित्य में सेट् ग्रहण एवं 'प्रविगणय्य' भाष्यप्रयोग भी प्रमाण है। इत्यन्यत्र विस्तरः।

३०५९ क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताविस्पष्टस्वरानायासभृशेषु ७।२।१८।

क्षुब्धादीन्यष्टावनिट्कानि निपात्यन्ते समुदायेन मन्थादिषु वाच्येषु।

द्रवद्रव्यसंपृक्ताः सक्तवो मन्थः, मन्थनदण्डश्च। क्षुब्धो मन्थश्चेत्। स्वान्तं मनः। ध्वान्तं तमः। लग्नं सक्तम्। निष्ठानत्वमपि निपातनात्। म्लिष्टमविस्पष्टम्। विरिब्धः स्वरः। 'म्लेच्छ' 'रेभृ' अनयोरुपधाया इत्त्वमपि निपात्यते। फाण्टम्=अनायाससाध्यः कषायविशेषः माधवस्तु नवनीतभावात् प्रागवस्थापन्नं द्रव्यं फाण्टमिति वेदभाष्ये आह। बाढं भृशम्। अन्यत्र क्षुभितम्। 'क्षुब्धो राजा' इति त्वागमशास्त्रस्यानित्यत्वात्। स्वनितम्। ध्वनितम्। लगितम्। म्लेच्छितम्। विरेभितम्। फणितम्। वाहितम्।

मन्थ, मनः, तमः, सक्त, अविस्पष्ट, स्वर, अनायास, भृश इन आठ अर्थों में यथाक्रम क्षुब्ध, स्वान्त, ध्वान्त, लग्न, म्लिष्ट, विरिब्ध, फाण्ट, बाढ ये निपातन से सिद्ध होते हैं। अर्थात् इडागम का अभाव होता है। गीले=द्रव द्रव्य के सम्मिलित सतुवा को मन्थ कहते हैं या मन्थन दण्ड कहते हैं। मन्थ अर्थ में क्षुब्ध होता है क्षुभ सञ्चलने। 'झषस्तथोः' इति धत्वम्। मनमें स्वान्तम्। स्वन शब्दे क्तप्रत्यय इडागमाभाव 'अनुनासिकस्य किझलोः' से दीर्घ हुआ। तम अर्थ में ध्वान्तम्। ध्वनशब्दे क्तप्रत्यय इडागमाभाव दीर्घ हुआ। सक्त अर्थ में लग्नम्। लगे सङ्गे क्तप्रत्यय निपातन से निष्ठा तकार को नकारादेश हुआ। अविस्पष्ट अर्थ में म्लिष्टम्। म्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे व्रश्चेति षकार ष्टुत्व एकार को इकारादेश। स्वर अर्थ में विरिब्ध। रेभृ शब्दे क्तप्रत्यय एकार को इकारादेश। फाण्टः, क्तप्रत्यय दीर्घ षत्व। बाढ में बाह प्रयत्ने क्तप्रत्यय इडभाव ढत्व-धत्व-ष्टुत्व ढलोप हुआ। फाण्ट=से अनायास साध्य कषाय विशेष समझना अर्थात्-पिसा हुआ औषधसमूह को गरम जल में प्रक्षेप करके तुरन्त छानकर पान जो किया उसको फाण्ट कहते हैं—"क्षुण्णमौषधजातमुष्णोदके प्रक्षिप्य सद्योऽभिषुत्य पूता यत्पीयते तत् फाण्टम्" इत्युच्यते। वेदभाष्य में माधवाचार्य ने फाण्ट का अर्थ यह भी किया है कि मक्खन से पूर्वावस्था युक्त द्रव्य विशेष को फाण्ट कहते हैं। वेदभाष्य—"तद्वै नवनीतं भवति घृतं देवानां फाण्टं मनुष्याणाम्" यह शतपथश्रुति की व्याख्या में कहा है। भृश=पौनःपुन्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ में गाढम् हुआ है। पूर्वोक्त आठ वर्णित अर्थों से भिन्न अर्थ में रूप इस प्रकार के हैं। क्षुभितम्। क्षुब्धो राजा यहां इडागम का अभाव 'आगमजमनित्यम्' परिभाषा जो आनि लोट में नि लोट् कहने पर भी लोडुत्तम का नि 'आनि' का ही रहेगा पुनः सूत्र में आकारोच्चारण व्यर्थ होकर पूर्व परिभाषा को ज्ञापन करता है उससे इडागम का अभाव हुआ। अत एव 'भट्टोजि दीक्षित' यहां तुक् न हुआ 'भट्टोजित्' न हुआ। स्वनितम्। ध्वनितम्। विरेभितम्। लगितम्। म्लेच्छितम्। फणितम्। वादितम्।

३०६० धृषिशसी वैयात्ये ७।२।१९।

एतौ निष्ठायामविनये एवानिटौ स्तः। धृष्टः। विशस्तः। अन्यत्र धर्षितः, विशसितः। भावादिकर्मणोस्तु वैयात्ये धृषिर्नास्ति। अत एव नियमार्थमिदं सूत्रमिति वृत्तिः। धृषेरादित्वे फलं चिन्त्यमिति हरदत्तः। माधवस्तु भावादिकर्मणोरवैयात्ये विकल्पमाह। धृष्टम्। धर्षितम्। प्रधृष्टः, प्रधर्षितः।

अविनय अर्थ में ही निष्ठा में धृष् एवं शस् धातु अनिट् होता है। यथा धृष्टः, विशस्तः। अन्य अर्थ में धर्षितः। विशसितः। भाव एवं आदिकर्म में अविनय अर्थ में धृष् धातु नहीं है। अतः यह सूत्र नियमार्थक है। अन्यथा 'विभाषा भावादिकर्मणोः' के बाधनार्थ यह विध्यर्थ होता। यह वृत्तिकार-मत है। ञिधृषा के आदित्व में कोई प्रयोजन नहीं है यह हरदत्तमत है। माधवमत में तो भाव एवं आदिकर्म में अवैयात्य से धृष् से पर निष्ठा को विकल्प इडागम से धृष्टम्-धर्षितम् होता है। एवं प्रधृष्टः, प्रधर्षितः होता है।

३०६१ दृढः स्थूलबलयोः ७।२।२०।

स्थूले बलवति च निपात्यते। दृह दृहि वृद्धौ। क्तस्येडभावः। तस्य ढत्वम्, हस्य लोपः। इदितो नलोपश्च। दृहितः, दृंहितोऽन्यः।

स्थूल एवं बलवान् अर्थ में 'दृढः' यह निपातन से सिद्ध होता है। वृद्धिरूपार्थक दृह एवं दृंहि से क्तप्रत्यय करके उसको इडागम का अभाव हुआ, तकार को ढकार एवं हकार का लोप हुआ, इदित् धातु के नुम् के नकार का भी लोप हुआ निपातन से। अन्यार्थ में दृहितः, दृंहितः।

३०६२ प्रभौ परिवृढः ७।२।२१।

बृह बृंहि वृद्धौ। निपातनं प्राग्वत्। परिबृंहितः। परिबृंहितोऽन्यः।

प्रभु अर्थ में परिपूर्वक बृह एवं बृंहि से क्तप्रत्यय इडागम का अभाव तकार को ढकार हकार का लोप एवं इदित् में नकार का लोप निपातन से हुआ। प्रभु-भिन्नार्थ में परिबृंहितः, परिबृंहितः हुआ।

३०६३ कृच्छ्रगहनयोः कषः ७।२।२२।

कषो निष्ठाया इण्न स्यादेतयोरर्थयोः। कष्टं दुःखं तत्कारणञ्च। स्यात् कष्टं कृच्छ्रमाभीलम्। कष्टो मोहः। कष्टं शास्त्रम्। दुरवगाहमित्यर्थः। कषितमन्यत्।

कष्ट एवं दुरवगाह अर्थ में कष् से पर जो निष्ठा उसको इट् नहीं होता है। दुःख या दुःखजनक को कष्ट कहते हैं। अन्यत्र कषितम् हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३०६४ घुषिरविशब्दने ७।२।२३।

घुषिनिष्ठायामनिट् स्यात्। घुष्टा रज्जुः। अविशब्दने किम्, घुषितं वाक्यम्। शब्देन प्रकटीकृताभिप्रायमित्यर्थः।

विशब्दन = प्रतिज्ञा तद्भिन्न अर्थ में घुषिर धातु से पर जो निष्ठा प्रत्यय उसको इडागमाभाव होता है। बीनी हुई रस्सी अर्थ में घुष् + त इडागम का अभाव ष्टुत्व टाप् दीर्घघुष्टा। शब्द द्वारा स्वाशय को प्रकट करने वाले वाक्य में घुषितम् हुआ।

३०६५ अर्देः संनिविभ्यः ७।२।२४।

एतत्पूर्वादर्देर्निष्ठाया इण्न स्यात्। समर्णः। न्यर्णः। व्यर्णः। अर्दितोऽन्यः।

संपूर्वक, निपूर्वक, विपूर्वक, अर्द धातु से पर जो निष्ठाप्रत्यय उसको इडागम का अभाव होता है। अन्यत्र अर्दितः।

३०६६ अभेश्चाविदूर्ये ७।२।२५।

अभ्यर्णम्। नातिदूरम्, आसन्नं वा। अभ्यर्दितमन्यत्।

अनतिदूर अर्थ में अभिपूर्वक अर्द धातु से इडागम नहीं होता है। अभ्यर्णम् = अतिदूर नहीं वा समीप। अन्यत्र अभ्यर्दितम्। विशेषेण दूरम् = विदूरम्, ततोऽन्यत् अविदूरम्, तस्य भाव अर्थ में ब्राह्मणादित्व से ष्यञ् हुआ। निपातनकरण से यहां न नञ्पूर्वात् की अप्रवृत्ति है। समीपे ऐसा कहने पर अनतिदूर का असंग्रह रूप आपत्ति होती। इसी को ग्रन्थकार ने मूल में ध्वनित किया है।

३०६७ णेरध्ययने वृत्तम् ७।२।२६।

ण्यन्तात् वृतेः क्तस्येडभावो णिलुक् चाधीयमानेऽर्थे। वृत्तं छन्दः। छात्त्रेण सम्पादितम्। अधीतमिति यावत्। अन्यत्र तु वर्तिता रज्जुः।

अधीयमान अर्थ होने पर ण्यन्त वृत धातु से पर निष्ठा को इट् का अभाव होता है। एवं णिच् का लुक् होता है। छात्र ने अध्ययन सम्पादित किया अर्थ में वृत्तम् हुआ। अधीत भिन्न में वर्तिता रज्जुः। 'अध्ययने' निर्देश से 'कार्यमनुभवन् कार्य्यी निमित्ततया नाश्रीयते" यह परिभाषा ज्ञापित होती है।

३०६८ शृतं पाके ६।१।२७।

श्रातिश्रपयत्योः क्ते शृभावो निपात्यते क्षीरहविषोः पाके। शृतं क्षीरं स्वयमेव विक्लिन्नं पक्वं वेत्यर्थः। क्षीरहविर्भ्यामन्यत्तु श्राणं श्रपितं वा।

पाक अर्थ होने पर पाकार्थक अदादि श्रा धातु एवं चुरादि में घटादि मित्स्वार्थ पठित श्रै पाके कृतात्व से क्तप्रत्यय में शृभाव होता है एवं इट् का अभाव निष्ठा को होता है। यहां निपातन सामर्थ्य से लक्षणप्रतिपदोक्त परिभाषा की अप्रवृत्ति है। व्यङः सम्प्रसारणम् जो प्रकृत है उसका विधान किया, ण्यन्त क्षपयति का भी शृतं यही हो एतदर्थ शृ आदेश किया। इस सूत्र में विभाषान्यवपूर्वस्य से विभाषा की अनुवृत्तिकर व्यवस्थित विभाषा मानकर क्षीर एवं हविष् में ही नित्य शृभाव होता है, अन्यत्र नहीं। दूध स्वयमेव परिपक्व होता है शृतम्। अन्यत्र शाकादि में श्रा × त णत्व श्राणः। ण्यन्त में अपितम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३०६९ वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः ७।२।२७।

एते णिचि निष्ठान्ता वा निपात्यन्ते। पक्षे दमितः। शमितः। पूरितः। दासितः। स्पाशितः। छादितः। ज्ञापितः।

दान्त, शान्त, पूर्ण, दस्त, स्पष्ट, छन्न, ज्ञप्त ये निष्ठाप्रत्ययान्त णिच् में विकल्प से निपातित होते हैं। शमु दमु उपशमे, पूरी आप्यायने दिवादि एवं चुरादि है। दसु उपक्षये, स्पश बाधने, छद अपवारणे, इति मित् मारणादि अर्थ में है। पक्ष में दमितः आदि।

३०७० रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् ७।२।२८।

एभ्यो निष्ठाया इड्वा। रुषितः, रुष्टः। अमितः, आन्तः। तूर्णः, त्वरितः। अस्यादित्त्वे फलं मन्दम्। संघुष्टः, संघुषितः। आस्वान्तः। आस्वनितः।

रुष्, अम्, त्वर, संपूर्वक, घुष आङ्पूर्वक स्वन् इनसे पर निष्ठाप्रत्यय को वलादिलक्षण इडागम विकल्प से होता है। रुष रोषे को 'तीषसह' से विकल्प इडागम विधान से यस्य विभाषा से इडागम का अभाव प्राप्त था इसने विकल्प इडागम किया—रुषितः पक्ष में रुष्टः। अम गत्यादिषु का ही यहां ग्रहण है। चुरादि अम रोगे का ग्रहण नहीं है वह अनेकाच् है यहां एकाच् का अधिकार है। अमितः। पक्ष में 'अनुनासिकस्य' से दीर्घ आन्तः। तूर्णः—'ज्वरत्वर संभ्रमे' 'ज्वरत्वर' से ऊठ् निष्ठा नत्व है यहां आदितश्च से निषेध इट् का प्राप्त था इसने विकल्प से इडागम किया। इस परिस्थिति में आदित् का फल आकारेत्व प्रयुक्त अनुदात्तङित से आत्मनेपद मात्र ही है। वह तो ह्रस्व अकारान्त धातु पढ़ने पर भी होता अर्थात् आदित् का फल कोई भी नहीं। संघुष्टः सम्पूर्वक घुषेर्विशब्दने इट् प्राप्त था विकल्पार्थक यह है। आस्वान्तः। आङ्पूर्वक स्वन् से तप्रत्यय इडागम का विकल्प बोधन है पक्ष में इडागम का अभाव है मन के अभिधान में यह प्रवृत्त होता है अन्यत्र नहीं। अनुनासिकस्य से उपधा दीर्घ है।

३०७१ हृषेर्लोमसु ७।२।२९।

हृषेर्निष्ठा इट्वा स्यात् लोमसु विषये। हृषितं हृष्टं लोम। ❀ विस्मित-प्रतिघातयोश्च ❀। हृषितो हृष्टो मैत्रः। विस्मितः प्रतिहतो वेत्यर्थः। अन्यत्र तु हृषु अलीके उदित्त्वान्निष्ठायां नेट्। हृष तुष्टौ इट्।

लोम अर्थ में अलीकार्थक हृष् से पर निष्ठा को विकल्प से इडागम होता है। हृषु उदित् है उदितो वा से क्त्वा में विकल्प इडागम से निष्ठा में यस्य विभाषा से इडागमाभाव प्राप्त था ऐसी परिस्थिति में इसने निष्ठा को विकल्प इडागम किया लोमार्थ में। विस्मित एवं प्रतिघात अर्थ में हृष से पर निष्ठा को विकल्प से इडागम होता है। विस्मित एवं प्रतिहत मैत्र अर्थ में हृषितः हृष्टः। अन्यत्र अर्थ में अलीकार्थ हृष् उदित् है उसको यस्य विभाषा से इडागम का अभाव ही है।

तुष्टि अर्थ में हृष् से पर निष्ठा को इडागम से हर्षितः होता है।

३०७२ अपचितश्च ७।२।३०।

चायतेर्निपातोऽयं वा अपचितः। अपचायितः।

'अपचितः' यह निपातन से सिद्ध होता है। अव पूर्वक ण्यन्त चिधातु के स्थान में चि आदेश होता है निष्ठा प्रत्यय में विकल्प से। अपचितः। पक्ष में अपचायितः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३०७३ प्यायः पी ६।१।२८।

वा स्यान्निष्ठायाम्। व्यवस्थितविभाषेयम्। तेन स्वाङ्गे नित्यम्। पीनं मुखम्। अन्यत्र प्यानः पीनः स्वेदः। सोपसर्गस्य न, प्रप्यानः। आङ् पूर्वस्यान्धूधसोः स्यादेव। आपीनोऽन्धुः। आपीनमूधः।

निष्ठाप्रत्यय पर में रहते प्याय् को विकल्प से पी आदेश होता है। यह व्यवस्थित विभाषा है। शरीरावयव में नित्य पी भाव होता है पीनं मुखम्। प्यानः पीनः स्वेदः। उपसर्गपूर्वक प्याय् को निष्ठा में पी आदेश नहीं होता है। यथा—प्रप्यानः। अन्धू एवं ऊधस् अर्थ में आङ् पूर्वक प्याय् को पी आदेश ही होता है नित्य। अन्धुः = कूपः। ऊधः स्तनभागः।

३०७४ ह्लादो निष्ठायाम् ६।४।९५।

ह्रस्वः स्यात्। प्रह्लन्नः।

निष्ठा प्रत्यय पर में रहते ह्लाद् धातु के उपधास्थ आकार को ह्रस्व होता है। 'अचो रहाभ्याम्' से तकार एवं दकार दोनों को नकारद्वय होता है।

३०७५ द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति ७।४।४०।

एषामिकारान्तादेशः स्यात् तादौ किति। ईत्वदद्भावयोरपवादः। दितः। सितः। मा माङ् मेङ्—मितः। स्थितः।

तकारादि कित् प्रत्यय पर में रहते दो धातु, स्यो धातु, मा धातु स्था धातुओं को इकार अन्तादेश होता है। यह सूत्र घुमास्था से प्राप्त ईत्व का बाधक है, एवं दोदद्घोः से प्राप्त दद्भाव का भी बाधक है। दो अवखण्डने, षोऽन्तकर्मणि, मा माने, माङ् माने, मेङ् प्रणिदाने, ष्ठा-गतिनिवृत्तौ सूत्र में श्तिपा निर्देश है। श्तिप् विना श्यन् दुर्लभ है। प्रसादकृत् ने कहा कि यङ्लुक्निवृत्यर्थं यहां श्तिपा निर्देश है, दादत्तः, सासत्तः इति। यह प्रसादकृत् का कहना उचित नहीं है, यङ्लुक् में इट् होकर दादितः सासितः वहां 'ति किति' इस वचन से दोष नहीं है। किञ्च, दोदद्घोः से विधीयमान दद् आदेश अनेकाल्त्व से सर्वादेश होगा यह कथन तो ठीक नहीं द्वित्व निष्पन्न में धातुत्व नहीं किन्तु उत्तर खण्ड में ही धातुत्व है जंवध्यात् यही रूप न कि वध्यात् यङ्लुक् में आदि प्रथम कह चुके हैं। अतः तत्त्वबोधिनी अत्रत्या चिन्त्या एव। मूलकारोऽपि वध्यात् यङ्लुक् में कहने वाले भी चिन्त्य हैं। इस पर विस्तृत व्याख्या पूर्व में लिख चुके हैं। षो का सितः। तीन मा रूप से निष्पन्न मा + क्त से मितः। ष्ठा + त आदि को सकारादेश निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः से ष्टुत्व की निवृत्ति स्था + त इत्व = स्थितः।

३०७६ शाच्छोरन्यतरस्याम् ७।४।४१।

शितः, शातः। छितः छातः। व्यवस्थितविभाषात्वाद् व्रतविषये श्यतेर्नित्यम्। संशितं व्रतम्। सम्यक् सम्पादितमित्यर्थः। संशितो ब्राह्मणः व्रतविषयकयत्नवानित्यर्थः।

तकारादि कित् प्रत्यय पर में रहते तनूकरणार्थक शो एवं छेदनार्थक छो को विकल्प से इकारान्त आदेश होता है। यह व्यवस्थित विभाषा के कारण व्रतविषय में शो को नित्य इत्व होता है। शंसितो ब्राह्मणः। व्रतविषयक यत्न वाला ब्राह्मण है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३०७६ दधातेर्हिः ७।४।४२।

तादौ किति। अभिहितम्। निहितम्।

तकारादि कित् प्रत्यय पर में रहते धा धातु के स्थान में हि आदेश होता है। अभिहितम् आदि। इतपा निर्देश धेट् की व्यावृत्ति के लिए है। यहां का प्रसादकृत मत उपेक्ष्य है।

३०७७ दो दद्घोः ७।४।४६।

घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दथ् स्यात् तादौ किति। चर्त्वम्-दत्तः। घोः किम्; दातः। तान्तो वायमादेशः। न चैवं विदत्तम् इत्यादावुपसर्गस्य 'दस्ती'ति दीर्घापत्तिः, तकारादौ तद्विधानात्। दान्तो वा, धान्तो वा। न च दान्तत्वे निष्ठानत्वम्, धान्तत्वे 'झषस्तथोरि'ति धत्वं शङ्क्यम्, सन्निपातपरिभाषाविरोधात्।

तकारादि कित् प्रत्यय पर में रहते घुसंज्ञक दा धातु के स्थान में दथ् आदेश होता है। दत्तः 'खरि च' से चर्त्वम् से थकार का तकारादेश हुआ। घुसंज्ञक न होने से दा को दथ् आदेश नहीं। दातः। कोई कहता है कि यह आदेश दत्त है। यदि तकारान्त आदेश इसको मानेंगे तो 'विदत्तम्' में 'दस्ति' सूत्र से दीर्घापत्ति होगी। वह तकारादि उत्तरपद में रहते इगन्त उपसर्गस्थ अच् के स्थान में दीर्घ का वह विधान करता है। यदि दकारान्त या धकारान्त यह आदेश दद् या दध् है ऐसा मानेंगे तो दकारान्त पक्ष में निष्ठा को तत्व की आपत्ति होगी। धकारान्तत्व में 'झषस्तथोः' सूत्र से 'ध' की आशङ्का अर्थात् नत्व एवं धत्वकी शङ्का न करनी चाहिये, सन्निपात परिभाषा से उक्त कार्य नहीं होंगे। थकारान्त दथ् आदेश पक्ष सर्वथा निर्दुष्ट है, अतः थकारान्त आदेश किया है।

"तान्ते दीर्घत्वाख्यो दोषो दान्ते दोषो निष्ठानत्वम्।
धान्ते दोषो धत्वाख्यः स्यान् निर्दोषत्वात् थान्तो ग्राह्यः॥ १॥"

३०७८ अच उपसर्गात्तः ७।४।४७।

अजन्तादुपसर्गात् परस्य दा इत्यस्य घोरचस्तः स्यात् तादौ किति। चर्त्वम्, प्रत्तः। अवत्तः।

"अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि।
सुदत्तमनुदत्तञ्च निदत्तमिति चेष्यते"॥ १॥

चकारात् यथाप्राप्तम्।

तकारादि कित् प्रत्यय पर में रहते अजन्त उपसर्ग से पर घुसंज्ञक जो दा उसका अवयव जो अच् उसके स्थान में तकारादेश होता है।

प्रदा+त आकारको तकारादेश दकारको चर्त्व प्रत्तः। अवत्तः। आदि कर्म विषय में 'अवदत्तम्' एवं 'विदत्तम्' एवं 'प्रदत्तम्' होता है। एवं सुदत्तम्, अनुदत्तम्, निदत्तम् भी रूप इष्ट है। चकार से यथाप्राप्त भी रूप होते हैं।

३०७९ दस्ति ६।३।१२४।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इगन्तोपसर्गस्य दीर्घः स्याद् दादेशो यस्तकारस्तदादावुत्तरपदे। खरि चेति चर्त्वम् आश्रयात् सिद्धम्। नीत्तम्। सूत्तम्। घुमास्थेतीत्त्वम्। धेट्-धीतम्। गीतम्। पीतम्। जनसनेत्यात्त्वम्। जातम्। सातम। खातम्।

दा के स्थान में आदेश जो तकार तदादि उत्तर पद में रहते इगन्त उपसर्ग का दीर्घ होता है। यद्यपि इसकी दृष्टि में चर्त्व असिद्ध है किन्तु तकार को आश्रय करने के सामर्थ्य से चर्त्व सिद्ध रहा है यथा नीत्तम्। 'घुमास्था' से ईत्व से धीतम्। गै का गीतम्। पा का पीतम्। 'जनसन' से जन् सन् खन् के नकार को आकारादेश से जातम्। सातम्। खातम्= गतं अर्थ है।

३०८० अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति २।४।३६।

ल्यबिति लुप्तसप्तमीकम्। अदो जग्धिः स्यात् ल्यपि तादौ किति च। इकार उच्चारणार्थः। घत्वम्। 'झरो झरि' जग्धः। 'आदि कर्मणि क्तः कर्तरि च ३।४।७१' प्रकृतः कटं सः। प्रकृतः कटस्तेन। 'निष्ठायामण्यदर्थे' इति दीर्घः। 'क्षियो दीर्घादि'ति नत्वम्, प्रक्षीणः सः।

सूत्र में 'ल्यप्' यह लुप्तसप्तमीक पद है, उससे आगत सप्तमी का 'सुपां सुलुक्' से लुक् है। ल्यप् प्रत्यय पर रहते एवं तकारादि कित् प्रत्यय पर में रहते अद् धातु के स्थान में जग्धि आदेश होता है। जग्धि में इकार उच्चारणार्थक है। जग्धः। अद्+त, जग्ध्+तः 'झषस्तथोः' से धकारादेश 'झरो झरि' से धकार लोप हुआ।

विमर्श—'युष्मदस्मदोरनादेशे' सूत्र में आदेश में विभक्तित्व का अभाव है। पुनः अनादेश ग्रहण सामर्थ्य से ज्ञापन होता है कि 'आदेशः स्थानिवृत्तिधर्मवान् भवति', आदेश में स्थानिवद् भाव से आगत विभक्तित्व में आत्वाभावार्थ अनादेश ग्रहण चरितार्थ हुआ। प्रकृत में क्त्वा-वृत्ति तकारादित्व समानाधिकरण कित्त्वातिदेश से 'ति किति' से अद् को जग्धि आदेश होता पुनः इस सूत्र में ल्यप् ग्रहण सामर्थ्य से 'अलविधौ आदेशो न स्थानिवत्' यह ज्ञापन होता है, इस प्रकार स्थानिवदादेशोऽनलविधौ—सूत्र के अंशद्वय ज्ञापन से सिद्ध होते हैं, वह सूत्र के अंशद्वय ज्ञापन से सिद्ध होते हैं, वह सूत्र अपूर्व नहीं किन्तु ज्ञापकसिद्ध अर्थ का अनुवादकमात्र है।

आदि कर्म में क्तप्रत्यय कर्ता में होता है। यथा प्रकृतः कटं सः—उसने कट की रचना को प्रारम्भ किया। 'निष्ठायामण्यदर्थे' से निष्ठाप्रत्यय पर में रहते पूर्व स्वर को दीर्घ होता है। प्रक्षीणः—में दीर्घ हुआ, तकार को नकार 'क्षियो दीर्घात्' से हुआ। नकार को णकार हुआ।

३०८१ वाऽऽक्रोशदैन्ययोः ६।४।६१।

क्षियो निष्ठायां दीर्घो वा स्याद् आक्रोशे दैन्ये च। क्षीणायुर्भव। क्षितायुर्वा। क्षीणोऽयं तपस्वी। क्षितो वा।

आक्रोश एवं दैन्य अर्थ में निष्ठाप्रत्यय पर रहते क्षिधातु के इकार को दीर्घ विकल्प से होता है। क्षीणायुः। क्षीणः क्षितो वा।

३०८२ निनदीभ्यां स्नातेः कौशले ८।३।८९।

आभ्यां स्नातेः सस्य षः स्यात् कौशले गम्ये। निष्णातः शास्त्रेषु। नद्यां स्नातीति नदीष्णः। 'सुपी'ति कः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुशलता अर्थ गम्यमान रहते नि एवं नदी से पर स्ना-धातु के सकार को षकारादेश होता है। शास्त्रों में प्रवीण = निष्णातः। नदी में स्नान करने वाला वह = नदीष्णः। यहां 'सुपि स्थः' सूत्र में 'सुपि' यह विभक्त सूत्र है, उससे सुबन्त नदी पर में रहते स्ना धातु से कप्रत्यय हुआ।

३०८३ सूत्रं प्रतिष्णातम् ८।३।९०।

प्रतेः स्नातेः षत्वम्। प्रतिष्णातं सूत्रम्। शुद्धमित्यर्थः। अन्यत्र प्रतिस्नातम्।

पवित्र अर्थ में प्रति उपसर्ग से पर स्ना धातु के सकार को षत्व होता है। सूत्रार्थ से षत्वोत्तर णत्व से प्रतिष्णातम् सूत्रम्। अर्थात् शुद्ध सूत्र दोषरहित। शुद्ध से अन्यार्थ में षत्वाभाव से प्रतिस्नातम्।

३०८४ कपिष्ठलो गोत्रे ८।३।९१।

कपिष्ठलो नाम यस्य कापिष्ठलिः पुत्रः। गोत्रे किम्, कपीनां स्थलं कपिस्थलम्।

गोत्र अर्थ होने पर कपिष्ठल यह निपातन से होता है अर्थात् स्थल के सकार को षकारादेश हुआ। गोत्र से भिन्न में यथा—वानरों का निवास स्थान में कपिस्थलम् हुआ।

३०८५ विकुशमिपरिभ्यः स्थलम् ८।३।९६।

एभ्यः स्थलस्य सस्य षः स्यात्। विष्ठलम्। कुष्ठलम्। शमिष्ठलम्। परिष्ठलम्।

वि, कु, शमि, परि इनसे पर स्थल शब्द के सकार को षकारदेश है।

३०८६ गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ३।४।७२।

एभ्यः कर्तरि क्तः स्यात् भावकर्मणोश्च। गङ्गां गतः। गङ्गां प्राप्तः। म्लानः सः। लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः। शेषमधिशयितः। वैकुण्ठमधिष्ठितः। शिवमुपासितः। हरिदिनमुपोषितः। राममनुजातः। गरुडमारूढः। विश्वमनुजीर्णः। पक्षे 'प्राप्ता गङ्गा तेन' इत्यादि।

गमनार्थक धातु, अकर्मक धातु, श्लिष्, शीङ्, स्था, आस्, वस्, जन्, रुह्, जॄ इनसे पर कर्तृवाच्य में एवं भाव तथा कर्म में क्तप्रत्यय होता है।

क्रमेण उदाहरण है। गङ्गां गतः, प्राप्तः। म्लानः सः अकर्मकोदाहरण है। आश्लिष्टः। अधिशयितः। उपासितः। उपोषितः। अनुजातः। आरूढः। अनुजीर्णः। कर्म में कर्ता से तृतीया—प्राप्ता गङ्गा तेन इत्यादि। १. गतः अनुदात्तोपदेश से मकार का लोप है। २. प्राप्तः में आप् धात्वर्थ व्याप्तिरूप अर्थ यहां गतित्वेन विवक्षित है। ३. म्लानः म्लै हर्षक्षये अकर्मक है, 'आदेच उपदेशे' से आत्व कर 'संयोगादेरातो धातोः' से नकारादेश निष्ठा का हुआ। ४. वैकुण्ठ अधिकरण कारक की 'अधिशीङ्' सूत्र से कर्मसंज्ञा हुई, अधिष्ठितः यहां 'अतिस्यति' से इकारादेश है। ५. उपोषितः उप पूर्वक वस् से क्तः सम्प्रसारण पूर्वरूप, 'वसति-क्षुधोः' से इडागम, 'शासि वसि' से षकारादेश है। ६. अनुजीर्णः जॄष् वयोहानौ, 'ऋत इद् धातोः' से इत्व रपरत्व हलि च से दीर्घ हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३०८७ क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः ३।४।७६।

एभ्योऽधिकरणे क्तः स्यात्। चाद् यथाप्राप्तम्। ध्रौव्यं स्थैर्यम्।

'मुकुन्दस्यासितमिदमिदं यातं रमापतेः।
भुक्तमेतदनन्तस्येत्यूचुर्गोप्यो दिदृक्षवः॥ १॥'

पक्षे आसेरकर्मकत्वात् कर्तरि भावे च। आसितो मुकुन्दः। आसितं तेन। गत्यर्थेभ्यः कर्तरि कर्मणि च। रमापतिरिदं यातः। तेनेदं यातम्। भुजेः कर्मणि-अनन्तेनेदं भुक्तम्। कथं 'भुक्ता ब्राह्मणाः' इति। भुक्तमस्ति एषामिति मत्वर्थीयोऽच्। 'वर्तमाने' इत्यधिकृत्य।

ध्रुवार्थक, गत्यर्थक, भोजनार्थक इन धातुओं से अधिकरण रूप अर्थ वाच्य रहते क्त प्रत्यय होता है। ध्रौव्य से स्थिरता समझनी चाहिये। चकार से पक्ष में यथाप्राप्त भाव एवं कर्म वाच्य रहते भी क्तप्रत्यय होता ही है।

श्री मुकुन्द भगवान् का यह स्थिति का अधिकरण स्थान है। वे इस मार्ग में गमन किये थे। इस स्थान पर उन्हों ने भोजन क्रिया संपादित की थी, ऐसा कृष्णदर्शन की अभिलाषा युक्त गोपियों ने कहा। पक्ष से आस् धातु अकर्मक होने से कर्ता में क्तप्रत्यय या भाव में क्तप्रत्यय 'गत्यर्थाकर्मक' से हुआ। कर्ता उक्त प्रथमान्त-आसितो मुकुन्दः। भाव में प्रत्यय से क्रिया उक्त कर्ता अनुक्त तृतीयान्त तेन आसितम्। पक्ष में गत्यर्थक से कर्ता एवं कर्म में प्रत्यय—रमापतेरिदं यातः। तेनेदं यातम्। भुज् से कर्म में क्तप्रत्यय अनन्तेन इदम् भुक्तम्। भुक्त शब्द से मत्वर्थीय अच् से भुक्ताः ब्राह्मणाः।

वर्तमाने का अधिकार कर के वक्ष्यमाण कार्य—

३०८८ ओतः क्तः ३।२।१८७।

'ञिक्ष्विदा'-क्ष्विण्णः। 'ञि इन्धी' इद्धः।

ओकार की इत्संज्ञायुक्त धातु से वर्तमान काल में क्तप्रत्यय होता है।

क्ष्विण्णः यहां 'आदितश्च' से इडागम का अभाव है। इद्धः यहां श्वीदित् से इडागमाभाव है।

३०८९ मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ३।२।१८८।

मतिरिहेच्छा, बुद्धेः पृथगुपादानात्। राज्ञां मतः=इष्टः। तैरिष्यमाण इत्यर्थः। बुद्धः। विदितः। पूजितः। अर्चितः। चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थकः। 'शीलितो रक्षितः क्षान्तः जुष्ट इत्यपि' इत्यादि।

यहां मति से इच्छार्थक धातुओं का ग्रहण है, सूत्र में बुद्धि के पृथक् ग्रहण से। मत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक=ज्ञानार्थक, पूजार्थक से वर्तमान काल में क्तप्रत्यय होता है अनुक्त धातुओं से भी क्तप्रत्यय होता है चकार इनका समुच्चायक है। शीलितः आदि में भविष्यत् काल में क्त प्रत्यय से, पूर्ववत् रूप हुए।

३०९० नपुंसके भावे क्तः ३।२।११४।

क्लीबत्वविशिष्टे भावे कालसामान्ये क्तः स्यात्। जल्पितम्। शयितम्। हसितम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नपुंसकत्व विशिष्ट भाववाच्य रहने पर कालसामान्य में धातु से क्तप्रत्यय होता है। जल्पितम् आदि।

३०९१ सुयजोर्ङ्वनिप् ३।२।१०३।

सुनोतेर्यजेश्चङ् वनिप् स्याद् भूते। सुत्वा। सुत्वानौ। यज्वा। यज्वानौ।

भूत काल में सु एवं यज् से ङ्वनिप् प्रत्यय होता है।

३०९२ जीर्यतेरतृन् ३।२।१०४।

भूत इत्येव। जरन्, जरन्तौ, जरन्तः। वासरूपन्यायेन निष्ठापि। जीर्णः, जीर्णवान्।

भूत काल में जॄ धातु से अतृन् प्रत्यय होता है। वासरूपन्याय से निष्ठा भी होता है। जीर्णो जीर्णवान्। अतृन् में जरन् आदि।

३०९३ छन्दसि लिट् ३।२।१०५।

वेद में भूतसामान्य काल में लिट् होता है।

३०९४ लिटः कानज्वा ३।२।१०६।

लिट् के स्थान में विकल्प कानच् होता है।

३०९५ क्वसुश्च ३।२।१०७।

इह भूतसामान्ये छन्दसि लिट्। तस्य विधीयमानौ क्वसुकानचावपि छान्दसाविति त्रिमुनिमतम्। कवयस्तु बहुलं प्रयुञ्जते। 'तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे'। 'श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते' इत्यादि।

भूत सामान्यार्थ में लिट् छन्द में होता है, एवं लिट् के स्थान में विधीयमान क्वसु एवं शानच् भी वेद में ही होता है ऐसा तीनो मुनियों का मत है। किन्तु कविगण बहुल प्रयोग करते हैं— अर्थात् वे इस नियम को नहीं मानते हैं। कविगण पर व्याकरणनियमपालन मर्यादा का अभाव है अर्थात् नियमरूप अङ्कुश रहित वे है। निरङ्कुशाः कवय इति। अत एव तस्थिवांसम्। अधिजग्मुषः वैसा प्रयोग वे लोक में भी करते हैं। अथवा व्याकरणान्तर से उन प्रयोगों की सिद्धि लोक में हुई यह भी कह सकते हैं।

३०९६ वस्वेकाजाद् घसाम् ७।२।६७।

कृतद्विर्वचनानामेकाचामादन्तानां घसेश्च वसोरिट् नान्येषाम्। एकाचः, आरिवान्। आत्-ददिवान्। जक्षिवान्। एषां किम्? बभूवान्।

द्वित्व करने पर जिन् धातुओं का एक अच् शेष रहे वैसे धातु से, एवं आकारान्त धातु से, एवं अद् के स्थान में जायमान आदेश घस् से पर क्वसु को इडागम होता है। इनसे भिन्न धातुओं से पर जो क्वसु उसको इडागम नहीं होता है।

एकाच् का उदाहरण यथा—आदिवान् आरिवान्। आकारान्त का उदा० ददिवान्। घस् का उदा० जक्षिवान्। पूर्वोक्त धातुओं से भिन्न में यथा बभूवान् यहाँ इडागम न हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३०९७ भाषायां सदवसश्रुवः ३।२।१०८।

सदादिभ्यो भूतसामान्ये भाषायां लिट् वा स्यात् तस्य च नित्यं क्वसुः—'निषेदुषीमासनबन्धधीरः।' 'अध्यूषुषस्तामभवज्जनस्य।' शुश्रुवान्।

सद्, वस्, श्रु, इन धातुओं से पर लिट् होता है भूत सामान्यार्थ में विकल्प से। एवं लिट् के स्थान में क्वसु आदेश नित्य होता है भाषा में। निषसाद इति निषेदुषी, ताम्। आदि में लिट् क्वसु हुआ। वस् लिट् क्वसु सम्प्रसारण पूर्वरूप षत्व अध्यूषुषः। शुश्रुवान्।

३०९८ उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च ३।२।१०९।

एते निपात्यन्ते। उत्पूर्वादिणो भाषायामपि भूतमात्रे लिङ् वा, तस्य नित्यं क्वसुः। इट् उपेयिवान्। 'उपेयुषः स्वामपि मूर्तिमग्र्याम्'। उपेयुषी। उपेत्यविवक्षितम्, ईयिवान् समीयिवान्। नञ्पूर्वादश्नातेः क्वसुरिडागमश्च। 'धृतजयधृतेरनाशुषः' इति भारविः। अनुपूर्वाद् वचेः कर्त्तरि कानच्। वेदस्यानुवचनं कृतवान् अनूचानः।

उपेयिवान्, अनाश्वान्, अनूचान ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं। अर्थात् उत्पूर्वक इण् धातु से भूतकाल मात्र में भाषा में भी विकल्प लिट् होता है, एवं इस लिट् के स्थान में क्वसु आदेश नित्य होता है, बाद में इडागम हुआ। उप इण् क्वसु यहाँ इट् उपेयिवान्। षष्ठयन्त में उपेयुषः, स्त्रीलिङ्ग में उपेयुषी। यहां उप अविवक्षित है। केवल में भी ईयिवान् या सम् पूर्वक में समीयिवान् हुआ। अनाश्वान्—नञ् पूर्वक अश् से लिट् उसको क्वसु आदेश एकाच् प्रयुक्त इडागमाभाव निपातन से होकर रूप अनुपूर्वक वच् से कर्ता में कानच् सम्प्रसारणादि अनूचानः। वेदका व्याख्याता हुआ।

३०९९ विभाषा गमहनविदविशाम् ७।२।६८।

एभ्यो वसोरिड् वा। जग्मिवान्-जगन्वान्। जघ्निवान्-जघन्वान्। विविदिवान्-विविद्वान्। विविशिवान्-विविश्वान्। विशिना साहचर्याद् विन्दतेर्ग्रहणम्। वेत्तेस्तु विविद्वान्। 'नेड्वशि कृति'इतीण्निषेधः। दृशेश्च। ददृशिवान्-ददृश्वान्।

गम्, हन्, विद्, विश् इन से पर क्वसु प्रत्यय को विकल्प से इडागम होता है। गम् से लिट् क्वसु द्वित्वादि इडागम पक्षमें 'गमहन्' से उपधालोप जग्मिवान्। पक्षमें जगन्वान्। विश् साहचर्य से यहाँ विन्द का ग्रहण है। अदादि विद् से क्वसु में विविद्वान् हुआ। नेड्वशि से इडागमाभाव है। दृश् धातु से पर लिट् के स्थान में जो क्वसु उसको इडागम विकल्प से होता है। ददृशिवान् ददृश्वान्।

३१०० लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३।२।१२४।

अप्रथमान्तेन सामानाधिकरण्ये सतीत्यर्थः। शबादि, पचन्तं चैत्रं पश्य।

भिन्न भिन्न प्रवृत्तिनिमित्तक शब्दों का एकार्थबोधकत्व को सामानाधिकरण्य कहते हैं। प्रवृत्तिनिमित्त माने धर्म।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रथमान्तार्थ से भिन्नार्थक के साथ एकार्थबोधकत्व रूप सामानाधिकरण्य रहने पर वर्तमान कालमें लट् के स्थानमें शतृ प्रत्यय एवं शानच् प्रत्यय होता है। पचन्तं चैत्रं पश्य त्वम्। यहां पच् धात्वर्थ विक्लित्तिजनक व्यापारार्थक है वर्तमान में विधीयमान लट् का कर्तृसंख्या काल अर्थ है विक्लित्ति जनक व्यापारकर्ता जो यहां है वह चैत्र है एवं जो चैत्र है वह विक्लित्ति जनक व्यापार जनक है। लडर्थ चैत्रार्थ दोनों का सामानाधिकरण्य है, द्वितीयान्त है अतः शतृ, नुम् से पचन्तम् की सिद्धि हुई। पाककियाकर्तृकं चैत्रकर्मकं त्वदभिन्नकर्तृकं दर्शनम्—यह अतीव संक्षिप्त शाब्दबोध हुआ इस वाक्य से। विस्तृतार्थ ज्ञान वै० भू० श्री पञ्चोलि विरचित प्रभा-व्याख्या से अवगत करना चाहिये।

३१०१ आने मुक् ७।२।८२।

अदन्तस्याङ्गस्य मुगागमः स्यादाने परे। पचमानं चैत्रं पश्य। लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणमधिकविधानार्थम्। तेन प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित्। सन् ब्राह्मणः। ॐ माङ्याक्रोश इति वाच्यम् ॐ।

"मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति"

माङि लुङिति प्राप्ते एतद्वचनसामर्थ्याच्छतृ।

ह्रस्व अकार है चरमावयव जिसका ऐसा जो अङ्ग उसको मुक् आगम आन पर में रहते होता है। पच् लट्, शानच् शप् अनुबन्धलोप पच आन अकार को मुक् पचमानं चैत्रं पश्य।

विमर्शः—'णेरनिटि' में अनिट् से 'यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते' यह परिभाषा ज्ञापित होती है। अर्थात् आगमी में रहने वाला धर्म आगम विशिष्ट में अतिदिष्ट होता है। प्रकृत में अकारवृत्ति धर्म अम् में आरोप कर अम् को अकार समझकर यहां 'अकः सवर्णे' से दीर्घ होने पर मुक् आगम विधान ही व्यर्थ होगा अतः 'आने मुक्' सूत्रारम्भ सामर्थ्य से 'यदागमाः' यह परिभाषा अनित्य है यह ज्ञापन हुआ। अनिष्ट आपत्ति जहां परिभाषाप्रवृत्ति से रहें वहां परिभाषा को अनित्य मानना। वर्णग्रहण में यदागम परिभाषा की अप्रवृत्ति यह आने मुक् से ज्ञापन न करना इसमें अनेक दोष है। विस्तृत विवरण परिभाषेन्दुशेखर की भूति व्याख्या एवं जया व्याख्या में है।

'वर्तमाने लट्' से लट् की अनुवृत्ति आती, पुनः सूत्र में लट् ग्रहण से अधिकम् अधिकार्थम् से से क्वचित् प्रथमान्तार्थ के साथ लडर्थ का सामानाधिकरण्य रहे वहां भी शतृ शानच् होता है। यथा सन् ब्राह्मणः। माङ् अव्यय उपपद में रहते आक्रोशार्थ में धातु से पर लट् के स्थान में शतृ एवं शानच् होता है। माङि लुङ् से यद्यपि माशब्द के योग में लुङ् प्राप्त था किन्तु वार्तिक के आरम्भ सामर्थ्य से लुङ् न करके धातु से लट् हुआ उसको शतृ एवं शानच् यथा—दूसरे द्वारा जात जो अपमान उससे उत्पन्न जो दुःख उस से दग्ध हो कर जीवन धारण करने की अपेक्षा मृत्यु का वरण करना श्रेयस्कर है—इस भाव में प्रयुक्त वाक्य में 'मा जीवन्' यह प्रयोग वार्तिक से निष्पन्न हुआ।

३१०२ सम्बोधने च ३।२।१२५।

हे पचन्। हे पचमान।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्बोधन में लट् के स्थान में शतृ एवं शानच् प्रत्यय होता है। पचतीति हे पचन् हे पचमान।

३१०३ लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ३।२।१२६।

क्रियायाः परिचायके हेतौ चार्थे वर्तमानाद् धातोर्लटः शतृशानचौ स्तः। शयाना भुञ्जते यवनाः। अर्जयन् वसति। हरिं पश्यन्मुच्यते। हेतुः=फलम्, कारणञ्च। 'कृत्यचः' प्रपीयमाणः सोमः।

क्रिया का परिचायक हेतुरूप अर्थ में विद्यमान धातुसे पर जो लट् उस के स्थान में शतृ एवं शानच् होता है। यवनकर्तृक भोजन का परिचायक=चिह्न=लक्षण=शयन है। लक्ष्यते अनेन लक्षणम्=परिचायकं चिन्हम्। न तु फलं नापि करणम्, इसीलिए हेतुसे लक्षण का पृथक् निर्देश सूत्र में किया है। अर्जयन् वसति अर्जनफलक वास वह करता है। हरिदर्शन मुक्ति में कारण है=हरिं पश्यन् मुच्यते। कृत्यचः इसकी व्याख्या प्रथम कर चुके हैं, यह णत्व का विधायक है।

'प्रपीयमाणः सोमः' प्रकृष्टपान क्रियाकर्मीभूत सोम यह अर्थ है।

३१०४ ईदासः ७।२।८३।

आसः परस्यानस्य ईत् स्यात्। 'आदेः परस्य', आसीनः।

आस् धातु से पर आद को ईकारादेश प्राप्त वह 'आदेः परस्य' सूत्रसहयोग से आकार को ईकारादेश हुआ—आसीनः।

३१०५ विदेः शतुर्वसुः ७।१।३६।

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा स्यात्। विद्वान्-विदन्। विदुषी।

विद् धातु से पर लट् के स्थान में आयमान जो शतृ प्रत्यय उसको वसु आदेश होता है विकल्प से। वसु पक्ष में विद्वा। वसु के अभाव में विदन् स्त्रीलिङ्ग में 'उगितश्च' से ङीप् 'वसोः सम्प्रसारणम्' 'शासिवसि' से षत्व विदुषी।

३१०६ तौ सत् ३।२।१२७।

तौ=शतृशानचौ सत् संज्ञौ स्तः।

इस शतृ प्रत्यय एवं शानच् कृत्यय की सत् संज्ञा होती है।

३१०७ लृटः सद्वा ३।३।१४।

व्यवस्थितविभाषेयम्। तेनाप्रथमासामानाधिकरण्ये, प्रत्ययोत्तरपदयोः, सम्बोधने, लक्षणहेत्वोश्च नित्यम्। कर्रिष्यन्तं करिष्यमाणं वा पश्य। करिष्यतोऽपत्यं कारिष्यतः। करिष्यद्भक्तिः। हे करिष्यन्। अर्जयिष्यन् वसति। प्रथमासमानाधिकरण्येऽपि क्वचित्, करिष्यतीति करिष्यन्।

लट् के स्थान में विकल्प से शतृ एवं शानच् होता है, सत् संज्ञा के संज्ञी शतृ एवं शानच् है, जहां जहां सत् पद आवेगा वहां संज्ञा को दिखा कर शतृ एवं शानच् रूप संज्ञी की उपस्थिति होगी। यह व्यवस्थितविभाषा है अतः इसका फल यह है—प्रथमान्तार्थ से भिन्न एकार्थ बोधकत्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूप सामानाधिकरण्य में शतृशानच् प्रत्यय, नित्य होते हैं, एवं उत्तर पद में, एवं सम्बोधन में तथा लक्षण एवं हेतु में शतृशानच् नित्य होते हैं' यथा—करिष्यन्तं करिष्यमाणं वा पश्य। करिष्यत् से षष्ठी तदन्त से अपत्यार्थक अण् प्रत्यय से कारिष्यतः की सिद्धि हुई। उत्तर पद भक्ति पर में रहते लृट् को शतृ से करिष्यद् भक्ति हुआ। सम्बोधन में हे करिष्यन् हुआ। लक्षण अर्थ में लृट् को शतृ से करिष्यन् वसति। प्रथमान्तार्थ एवं लृडर्थ वे दोनों एकार्थक रहते भी शतृ हुआ यथा—करिष्यति इति करिष्यन्।

३१०८ पूङ्यजोः शानन् ३।२।१२८।

वर्तमाने। पवमानः। यजमानः।

वर्तमान काल में पूङ् एवं यज् से शानन् प्रत्यय होता है। यह शानन् ण्वुलादि की तरह स्वतन्त्र है। किसी के स्थान में नहीं होता है। अर्थात् आदेश नहीं है। पूङ् से कर्ता में शानन् पवमानः। पूङ् शानम् विकरण का अकार गुण अवादेश आनेमुक् से मुक् आगम पवमानः। यज् शानन् अनुबन्ध लोप शप् मुक् यजमानः।

३१०९ ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ३।२।१२९।

एषु द्योत्येषु कर्तरि चानश्। भोगं भुञ्जानः। कवचं बिभ्राणः। शत्रुं निघ्नानः।

ताच्छील्य, वयोवचन, शक्ति इन अर्थों में कर्ता में धातु से पर चानश् प्रत्यय होता है। भुञ्जानः। बिभ्राणः। निघ्नानः। सूत्र में वचन ग्रहण व्यर्थ है, यह प्रत्यय भी स्वतन्त्र है। लस्थानिकत्वाभाव से आत्मनेपद संज्ञा अभाव से परस्मैपदी है यह प्रत्यय होता है। निघ्नानः गमहन् से उपधा लोप है।

३११० इङ्धार्ध्योः शत्रकृच्छ्रिणि ३।२।१३०।

आभ्यां शतृ स्याद् अकृच्छ्रिणि कर्तरि। अधीयन्। धारयन्। अकृच्छ्रिणि किम्, कृच्छ्रेणाधीते। धारयति।

इङ् धातु एवं णिच् प्रत्ययान्त धृ से कृच्छ्रभिन्न कर्ता में शतृ प्रत्यय होना है। अधीयन्। धारयन्। वह कष्ट से अध्ययन क्रिया सम्पादित करता है। यहां शतृ न हुआ। अधीते। धारयति यही हुआ।

३१११ द्विषोऽमित्रे ३।२।१३१।

द्विषन् शत्रुः।

अमित्र अर्थ में द्विष् से शतृ प्रत्यय होता है, द्वेष्टि इति द्विषन् शतृ प्रत्यय होता है। अमित्र में विरुद्धार्थक नञ् है। अमित्र = शत्रु पर्याय है।

३११२ सुञो यज्ञसंयोगे ३।२।१३२।

सर्वे सुन्वन्तः सर्वे यजमानाः सत्रिणः।

धात्वर्थ व्यापार यज्ञ से संयुज्यमान रहते सुञ् धातु से शतृ प्रत्यय होता है। बहुवचन में सुन्वन्तः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३११३ अर्हः प्रशंसायाम् ३।२।१३३।

अर्हन्।

प्रशंसा अर्थ में अर्ह से शतृ प्रत्यय होता है। अर्हति अर्हन्।

३११४ आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ३।२।१३४।

क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छील्यतद्धर्मतत्कारिषु कर्तृषु बोध्याः।

क्विप् प्रत्यय तक वक्ष्यमाण प्रत्यय तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारी अर्थ में प्रयुक्त होते है।

३११५ तृन् ३।२।१३५।

कर्ता कटान्।

कर्ता में धातु से पूर्वोक्त वर्णित अर्थों में तृन् प्रत्यय होता है। कटकर्मक उत्पत्त्यनुकूल व्यापार कर्ता पुरुष अर्थ में-कटं कर्ता। यहां तच्छील अर्थ गम्यमान है।

३११६ अलङ्कृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतु-वृधुसहचर इष्णुच् ३।२।१३६।

अलङ्करिष्णुः। निराकरिष्णुः। प्रजनिष्णुः। उत्पचिष्णुः। उत्पतिष्णुः। उन्मदिष्णुः। रोचिष्णुः। अपत्रपिष्णुः। वर्तिष्णुः। वर्धिष्णुः। सहिष्णुः। चरिष्णुः।

अलं पूर्वक कृर् से निर् आङ् पूर्वक कृञ् से, प्रपूर्वक जन से, उत्पूर्वक पच् से, उत्पूर्वक पत से, उत्पूर्वक मद से, रुच् से, अपपूर्वक त्रप् से, वृत, वृध्, सह्, चर् कर्तृरूप अर्थ में इष्णुच् प्रत्यय होता है।

यहाँ प्रसिद्ध 'डुकृञ् करणे' का ही ग्रहण है, 'कृञ् हिंसायाम्' अप्रसिद्ध का ग्रहण नहीं है। "प्रसिद्धाप्रसिद्धयोः प्रसिद्धस्यैव ग्रहणम्" इस न्याय से। निराङ् पूर्वक भी डुकृञ् का ही ग्रहण है। प्रपूर्वक 'जनी प्रादुर्भावे' का ग्रहण है। डुपचष् पाके, पत्लृ गतौ, मदी हर्षे, वे तीन उत्पूर्वक ही यहां गृहीत है। यहां 'उदः पचपतमदः' ऐसा कहते प्रत्येक में उत् लगाने से उपसर्गान्तर पूर्वक इनसे इष्णुच्का अभाव है। अतः समुत्पतिष्णुः-पादि प्रयोग न हुआ। रुच दीप्तौ। अप पूर्वक त्रपूष् लज्जायाम्, वृतु वर्तने, वृधु वृद्धौ, षह मर्षणे, चर गतौ-इनका यहां उद्देश्यतया ग्रहण है।

किसी प्राचीन पुस्तक में 'अलङ्करिष्णुरित्यादिः' ऐसा पाठ है वहां आदिपद से आद्य के दो = निराकरिष्णुः आदि गृहीत हैं। भट्टिमहाकाव्य में—"उत्पतिष्णुसहिष्णू च चेरतुः खरदूषणौ" इति। महाकवि श्री कालिदास ने भी कहा है—एकानामुत्पतिष्णवः।

३११७ णेश्छन्दसि ३।२।१३७।

'वीरुधः पारयिष्णवः'।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेद में कर्ता में ण्यन्त धातु से ष्णुच् प्रत्यय होता है। पारयिष्णवः यहां 'अयामन्ता-' से णिको अयादेश हुआ।

३११८ भुवश्च ३।२।१३८।

छन्दसीत्येव। भाविष्णुः। कथं तर्हि "जगत्प्रभोरप्रभविष्णु वैष्णवम्" इति, निरङ्कुशाः कवयः। चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः। भ्राजिष्णुरिति वृत्तिः। एवं क्षयिष्णुः, नैतद् भाष्ये दृष्टम्।

वेद में भू से ष्णुच् प्रत्यय होता है। लोक में अप्रभविष्णुः यह कैसे हुआ? कविगण व्याकरण नियममर्यादारूप अङ्कुश को नहीं मानते हैं, अर्थात् यह प्रयोग लोक में असङ्गत पाणिनिव्याकरण है। सम्भवतः अन्य व्याकरण दृष्टि से लोक में भी भूधातु से ष्णुच् होता होगा। तदनुसारी कवि प्रयोग यह भी कल्पना हो सकती है। सूत्र में चकार अनुक्त धातुओं का शिष्ट प्रयोगानुसारी व्याख्या से ष्णुच् प्रत्यय हुआ, यथा—भ्राजिष्णुः, क्षयिष्णुः, भाष्य में कथन नहीं है। यहां से वक्ष्यमाण सूत्रों में 'छन्दसि' की निवृत्ति है।

३११९ ग्लाजिस्थश्च स्नुः ३।२।१३९।

छन्दसीति निवृत्तम्। गिदयं न तु कित्। तेन स्थ ईत्वं न। ग्लास्नुः। गित्त्वान्न गुणः। जिष्णुः। स्थास्नुः। चाद् भुवः। अथुकः कितीत्यत्र गकार-प्रश्लेषान्नेट्। भूष्णुः। ❀ दंशेश्छन्दस्युपसंख्यानम् ❀। दङ्क्ष्णवः पशवः।

ग्लै, जि, ष्ठा से स्नु प्रत्यय होता है। यह प्रत्यय गित् है, कित् नहीं। अतः कित् एवं ङित् में विधीयमान 'घुमास्था' से ईत्व स्था को न हुआ, यथा—स्थास्नुः। जिष्णुः 'विङ्कृति च' में गकार प्रश्लिष्ट है अतः गुणाभाव हुआ। भूष्णुः 'अथुकः किति' में गकार दुश्लिष्ट है अतः इडागम का अभाव हुआ।

तथा च वार्तिकम्—

"स्नोर्गित्त्वान्न स्थ ईकारः किङतोरीत्वप्रशासनात्।
गुणाभावस्त्विषु स्मार्थैः अथुकोऽनिट्त्वं कगोरितोः॥"

वेद में दंश से ष्णुच् होता है। दङ्क्ष्णवः। दंश दशने, ब्रश्च से षत्व, 'षढोः कः सि' से कत्व 'आदेशप्रत्यययोः' से षकार 'स्नु:' प्रत्यय गित् होने से यहां अनिदिताम् से नकोप की प्राप्ति नहीं है।

३१२० त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः ३।२।१४०।

त्रस्नुः। गृध्नुः। धृष्णुः। क्षिप्नुः।

त्रसि, गृधि, धृषि, क्षिप् इनसे क्नु प्रत्यय कर्ता में होता है।

त्रस्नुः यहां 'नेड् वशि' से इडागम का अभाव है। त्रास देने वाला या उद्वेग प्राप्तिकर्ता, आकांक्षा करने वाला, प्रगल्भ, फेंकने वाला, क्रमशः अर्थ है।

३१२१ शमित्यष्टाभ्यो घिनुण् ३।२।१४१।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'उकार उच्चारणार्थ' इति काशिका । 'अनुबन्ध' इति भाष्यम् । तेन 'शमिनितरा, शमिनीतरा' इत्यत्र 'उगितश्चे'ति ह्रस्वविकल्पः ।

नचैवं 'शमी, शमिनौ' इत्यादौ नुम्प्रसङ्गः, झल्ग्रहणमपकृष्य झलन्तानामेव तद्विधानात् । नोदात्तोपदेशस्येति वृद्धिनिषेधः । शमी, तमी, दमी, श्रमी, भ्रमी, क्षमी, क्लमी । प्रमादी । उत्पूर्वान्मदेः अलङ्कृञ्यादि-सूत्रेणेष्णुजुक्तः वासरूपन्यायेन घिनुणपि, उन्मादी । ताच्छीलिकेषु वासरूपविधिर्नास्ति इति तु प्रायिकम् ।

शम्, तम्, यम्, श्रम्, भ्रम्, क्षम्, क्लम्, मद् इन आठ धातुओं से घिनुण् प्रत्यय होता है । प्रत्यय घटक उकार शुद्ध उच्चारण मात्र फलक है "नाचं विना व्यञ्जनस्योच्चारणं भवति" एतदर्थ है यह काशिका कार का मत है । भाष्यकार के मत में वह उच्चारण मात्र फलक नहीं । किन्तु उकार अनुबन्ध उगितत्व सम्पादनार्थ है अतः शम् से घिनुण् स्त्रीलिङ्ग में 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' प्रत्यय से शमिनी उससे अतिशय अर्थ में तरप् या तमप् प्रत्यय करके तदन्त से टाप् दीर्घ होकर शमिनीतरा शमिनीतमा यहां 'उगितश्च' सूत्र से उगित् से पर जो नदी-संज्ञक वर्ण उसका ह्रस्व विकल्प से होता है । तरप् या तमप् प्रत्यय पर में रहते । ह्रस्व विकल्प से होकर शमिनितरा, शमिनितमा पक्ष में ह्रस्वाभाव से शमिनीतरा, शमिनीतमा दो रूप हुए ।

नदी संज्ञा विधायक में वर्णसंज्ञा पक्ष है, या ईकारान्त, ऊकारान्त यह भी पक्ष है । वर्णसंज्ञा पक्ष में विकल्प ह्रस्व विधायक 'उगितश्च' प्रमाण भी है । तदन्त पक्ष तो तदन्तविधि से स्वतः सिद्ध है ।

उकार अनुबन्ध पक्ष में 'उगिदचाम्' सूत्र से शमी शमिनौ आदि में नुम् आगम की प्रसक्ति हुई । उसको निवारणार्थ 'नपुंसकस्य झलचः' सूत्र से झल् का अपकर्ष करके झलन्त उगिदन्त को नुम् होता है ऐसा अर्थ कर यहां नुम् का वारण करना चाहिये ।

प्रत्यय णित् होने से शमी आदि में 'अत उपधायाः' से वृद्धि होनी चाहिये, किन्तु प्राप्त वृद्धि का 'नोदात्तोपदेशस्य' से निषेध हुआ ।

उत्पूर्वक मद धातु से 'अलङ्कृञ्' सूत्र से इष्णुच् वासरूपन्याय से विकल्प हुआ । अतः पक्ष में घिनुण् भी हुआ । उन्मादी । ताच्छील्य में 'वासरूपविधिर्नास्ति' यह जो प्रथम ज्ञापन कर चुके है वह ज्ञाप्य वचन प्रायिक है, या 'ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र' यह मानना ।

३१२२ सम्पृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविविचत्यजरजभजातिचरापचरामृषाभ्याहनश्च ३।२।१४२।

घिनुण् स्यात् ।

सम्पर्की । अनुरोधी । आयामी । आयासी । परिसारी । संसर्गी । परिदेवी । संज्वारी । परिक्षेपी । परिराटी । परिवादी । परिदाही । परिमोही । दोषी । द्वेषी । द्रोही । दोही । योगी । आक्रीडी । विवेकी । त्यागी । रागी । भागी । अतिचारी । अपचारी । आमोषी । अभ्याघाती ।

संपूर्वक पृच्धातु, अनुपूर्वक रुध्, आङ्पूर्वक यम्, आङ्पूर्वक यस्, परिपूर्वक सृ, संपूर्वक सृज्, परिपूर्वक देव्, संपूर्वक ज्वर्, परिपूर्वक क्षि, परिपूर्वक रट्, परिपूर्वक वद्, परिपूर्वक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दह्, परिपूर्वक मुह्, दुष्, द्विष्, द्रुह्, दुह्, युज्, आङ्पूर्वक क्रीड्, विपूर्वक विच्, स्यज्, रज्, मज्, अतिपूर्वक चर्, अपपूर्वक चर्, आङ्पूर्वक मुष्, अभिपूर्वक इन्, आङ्पूर्वक इन्, इन धातुओं से पर कर्ता में घिनुण् प्रत्यय होता है। क्रमशः २७ इस सूत्र के उदाहरण मूल ग्रन्थ में दिये गये हैं। सम्पर्की पूची संपर्के 'चजोः' से कुत्व एवं गुण। परिदेवी में देवृ देवने भ्वादि, ण्यन्त लाक्षणिक का ग्रहण यहां नहीं है।

अभ्याघाती—इन् के इकार को कुत्व से घकार। 'हनस्त' से नकारको तकार, 'अत उपधायाः' से वृद्धि।

३१२३ वौ कषलसकत्थस्तम्भः ३।२।१४३।

विकाषी। विलासी। विकत्थी। विस्तम्भी।

विपूर्वक कष्, लस्, कत्थ, स्तम्भ इनसे पर घिनुण् प्रत्यय होता है। कष हिंसार्थः। लस श्लेषणक्रीडनयोः। कत्थ श्लाघायाम्। स्तम्भु विश्वासे।

३१२४ अपे च लषः ३।२।१४४।

चाटू वौ। अपलाषी। विलाषी।

अप एवं वि पूर्वक लष् से घिनुण् प्रत्यय होता है। लष् कान्तौ।

३१२५ प्रे लपसृद्रुमथवदवसः ३।२।१४५।

प्रलापी। प्रसारी। प्रद्रावी। प्रमाथी। प्रवादी। प्रवासी।

प्रपूर्वकलप्, सृ, द्रु, मथ्, वद्, वस्, इन धातुओं से घिनुण् होता है।
लप् व्यक्तायां वाचि। मथे विलोडने।

३१२६ निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षेपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूलो वुञ् ३।२।१४६।

पञ्चम्यर्थे प्रथमा। एभ्यो वुञ् स्यात्। निन्दकः हिंसकः। इत्यादि। ण्वुलासिद्धे वुञ्वचनं ज्ञापकं तच्छीलादिषु वासरूपन्यायेन तृजादयो नेति।

निन्द, हिंस, क्लिश, खाद् विपूर्वक ण्यन्त नाश, परिपूर्वक क्षिप्, परिपूर्वक रट्, परिपूर्वक ण्यन्त वद (वादि) वि एवं आङ्पूर्वक भाष, असूय कण्वादि यगन्त धातु इनसे वुञ् होता है। सूत्र में पञ्चमी के अर्थ में विभक्ति व्यत्यय से प्रथमा है, प्रत्यय विधान में प्रकृति से पञ्चम्यन्त निर्देश उचित है अतः तदर्थ में विहित प्रथमा का भी पञ्चम्यर्थ बोध होता है। सूत्र में समाहार द्वन्द्व में सौत्रत्वात् पुंस्त्व निर्देश है। केवल असूय से वुञ् विधान कीजिये इतर धातुओं से ण्वुल् से प्रयोग सिद्धि होगी। यह वुञ् वचन ज्ञापक है कि तच्छीलादि अर्थों में वा सरूपविधि नहीं है, अतः तृजादि प्रत्यय पक्ष में नहीं होते है। वुञ् घटित एक ही रूप हुआ। ण्वुल् वुञ् में स्वरविशेष का अभाव है उभयत्र आद्युदात्तत्व प्रत्ययस्वर से है। असूय से ण्वुलि क्ति से प्रत्ययात् पूर्व आद्युदात्तत्व है, वुञ् में तो 'ञ्नित्यादेर्नित्यम्' से आदि उदात्त है। यह विशेष है स्वर में वुञ् से ज्ञाप्य वचन प्रत्ययमात्र विषयक सामान्य परक है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३१२७ देविक्रुशोश्चोपसर्गे ३।२।१४७।

आदेवकः। आक्रोशकः। उपसर्गे किम्, देवयिता। क्रोष्टा।

उपसर्गपूर्वक 'हेतुमति च' सूत्रविहित जो णिच् तदन्त जो देवि धातु तथा क्रुश् धातु में वुञ् प्रत्यय होता है। आदेवकः। आक्रोशकः। उपसर्ग पूर्व में रहते तृच् प्रत्ययान्त रूप हुआ—देवयिता, क्रोष्टा।

३१२८ चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् ३।२।१४८।

चलनार्थाच्छब्दार्थाच्च युच् स्यात्। चलनः। चोपनः। कम्पनः। शब्दनः। रवणः। अकर्मकात् किम्, पठिता विद्याम्।

चलनार्थक एवं शब्दार्थक अकर्मक धातु से युच् प्रत्यय होता है। चल् कम्पने, चुप् मन्दायां गतौ, कपि चलने, चुरादि शब्द शब्दने, रु शब्दे सकर्मक धातु से तृच् या तृन् प्रत्यय कर्ता में हुआ। विद्यां पठिता।

३१२९ अनुदात्तेतश्च हलादेः ३।२।१४९।

अकर्मकाद् युच् स्यात्। वर्तनः। वर्धनः। अनुदात्तेतः किम्, भविता। हलादेः किम्, एधिता। अकर्मकात् किम्, वसिता वस्त्रम्।

अनुदात्तेत् हलादि अकर्मक जो धातु इससे पर युच् प्रत्यय होता है। सभी अनुदात्तेत् धातु हलन्त है, अतः तदन्त विधि को बाध कर सामर्थ्य से हलादि का ग्रहण होगा पुनः सूत्र में आदि ग्रहण क्यों किया ?, आदि ग्रहण के अभाव में हलन्त अर्थ होकर एधिता यहां अतिप्रसङ्ग होगा। एवं 'जुगुप्सनः' इत्यादि की सिद्धि न होगी, अवयव में अचरितार्थ अनुबन्ध समुदाय का उपकारक होने से सन्नन्त को भी अनुदात्तेत्त्व है। सूत्रोदाहरण-वर्तनः। वर्धनः। भविता यहां अनुदात्तेत्त्व नहीं अतः तृन् या तृच् हुआ। हलादि ग्रहण से एधिता यहां युच् न हुआ। वस्त्रं वसिता—यहां वस् धातु सकर्मक है अतः तृन् या तृच् हुआ।

३१३० जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः ३।२।१५०।

जु इति सौत्रो धातुर्गतौ वेगे च। जवनः। चङ्क्रमणः। दन्द्रमणः। सरणः। पूर्वेण सिद्धे पद-ग्रहणं 'लषपतपदे'त्युक्त्वा बाधा मा भूदिति। तेन ताच्छीलिकेषु परस्परं 'वासरूप'विधिर्नास्तीति। तेनालङ्क्रवस्तृन्।

गति या वेगार्थक सूत्रपठित जो जुधातु, चङ्क्रम्यधातु, दन्द्रम्यधातु, सृ, गृधि, ज्वल, शुच्, लष, पत, पद, इन धातुओं से पर युच् प्रत्यय होता है। यथा—जवनः। क्रमि एवं द्रमि यङ् प्रत्ययान्त है, क्रमु पादविक्षेपे, द्रम, इम्म, मीमृ वे तीन गत्यर्थक है। 'अनुदात्तेतश्च हलादेः' से युच् पद से होता ही पुनः यहां यह ग्रहण से 'लषपतपद' से विधीयमान जो उकञ् उससे बाध युच् का न हो एतदर्थ यहां पद ग्रहण है। वासरूपन्याय से उकञ् विकल्प से बाध करने पर पक्ष में युच् होता पुनः पद ग्रहण से ज्ञापन होता है कि ताच्छील्य आदि अर्थों में वासरूप सूत्र की अप्रवृत्ति ही है। इस ज्ञाप्य वचन से अलं पूर्वक कृञ् से तृन् प्रत्यय न हुआ। यहां वृत्तिकार ने "सकर्मकार्थं पदग्रहणम्" यह कहा है, वह कथन भाष्यविरुद्ध है सकर्मक पद से युच् का अनभिधान ही है। यह भाष्यसम्मत मत है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३१३१ क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ३।२।१५१।

क्रोधनः। रोषणः। मण्डनः। भूषणः।

क्रुध, भूषणार्थक धातु इनसे युच् प्रत्यय होता है। क्रुध क्रोधे, रुष रोषे। मडि भूषायाम्, भूष अलङ्कारे। इन् से युच् हुआ।

३१३२ न यः ३।२।१५२।

यकारान्ताद् युच् न स्याद्। क्नूयिता। क्ष्मायिता।

यकारान्त धातु से युच् प्रत्यय नहीं होता है। क्नूयिता, क्ष्मायिता यहां तृन् क्नूयी शब्दे उन्दे, क्ष्मायी विधूनने, अनुदात्तेत्त्व लक्षण प्राप्त जो युच् हुआ उसका यह बाधक है, यहाँ निषेधार्थक न पृथक् पद एवं 'यः' पृथक् पद है।

'नय' गत्यर्थक का यह निर्देश नहीं है।

३१३३ सूददीपदीक्षश्च ३।२।१५३।

युच् न स्यात्। सूदिता। दीपिता। दीक्षिता। 'नमि कम्पी'ति रेण युचो बाधे सिद्धे दीपेर्ग्रहणं ज्ञापयति ताच्छील्येषु वासरूपविधिर्नास्तीति प्रायिकम्। तेन कम्रा-कमना युवतिः। कम्प्रा-कम्पना शाखा। यदि सूदेर्युच् न, कथं मधुसूदनः? नन्द्यादिः।

सूद, दीप, दीक्ष, इनसे युच् नहीं होता है। अतः इनसे तृन् प्रत्यय होता है। दीप् से युच् प्राप्त था उसका 'नमिकम्पि' सूत्र में विधीयमान र से बाध होता ही पुनः युच् निषेधार्थ इस सूत्र में दीप् ग्रहण क्यों किया, वह व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि ताच्छील्य में 'वा सरूपविधि' नहीं है वह वचन प्रायिक है। इससे सिद्ध हुआ कि ताच्छील्य में भी वासरूप सूत्र की प्रवृत्ति से असरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग को विकल्प से बाध करता है अतः इसका फल यह हुआ कम्रा पक्ष में युच् कमना युवति स्त्री। कम्प्रा कम्पना शाखा। मधुसूदन में युच् नहीं है किन्तु नन्द्यादित्वप्रयुक्त ल्यु प्रत्यय वहां है।

३१३४ लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ् ३।२।१५४।

लाषुकः, पातुक इत्यादि।

लष पत पद स्था भू वृष हन कम गम एवं शॄ इनसे उकञ् प्रत्यय होता है।

३१३५ जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ३।२।१५५।

जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। लुण्टाकः। वराकः। वराकी।

जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट, वृङ् इन से षाकन् प्रत्यय होता है। स्त्रित्वप्रयुक्त स्त्रीलिंग में ङीष् प्रत्यय हुआ वराकी। जप जल्प व्यक्तायां वाचि 'भिक्ष भिक्षायां लाभे अलाभे च', कुट्ट छेदने, 'लुण्टस्तेये' अन्तिमद्वय चुरादि है। चलनार्थत्वप्रयुक्त युच् जल्प को प्राप्त था, भिक्ष को अनुदात्तेत्त्व लक्षण युच् प्राप्त था, कुट्ट लुण्ट इनको 'ण्वुल्तृचौ' ण्वुच् प्राप्त था, वृङ् को 'आदृगमहनजन' से किन् प्राप्त थे उनको बाधकर इसने उनसे षाकन् प्रत्यय किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३१३६ प्रजोरिनिः ३।२।१५६।

प्रजवी, प्रजविनौ, प्रजविनः।

प्र पूर्वक जु धातु से पर इनि प्रत्यय होता है।

३१३७ जिदक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च ३।२।१५७।

जयी, दरी, क्षयी, विश्रयी, अत्ययी, वमी, अव्यथी, अभ्यमी, परिभवी, प्रसवी।

जि, दृ, क्षि विपूर्वक श्रीधातु, इण्, वम्, नञ्पूर्वक व्यथ, अभिपूर्वक अम्, परिपूर्वक भू, प्रपूर्वक सू, इन धातुओं से पर इनि प्रत्यय होता है। जि जये, जि अभिभवे, दृङ् आदरे, क्षि क्षये, क्षि निवासगत्योः, श्रिञ् सेवायाम्, विपूर्वः। नञ् पूर्वक व्यथभयचलनयोः। निपातन से नञ् का धातु से समास कर नञोप करके प्रत्यय हुआ। अभिपूर्वक गाथादि है अम् धातु से इनि। प्रसवी षू प्रेरणे का ही यहाँ ग्रहण है निरनुबन्धक परिभाषा से। अन्य का नहीं = षूङ् प्राणिगर्भविमोचने, षूङ् प्राणिप्रसवे वे दोनों सानुबन्धक है।

३१३८ स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच् ३।२।१५८।

आद्यास्त्रयश्चुरादावदन्ताः। स्पृहयालुः। गृहयालुः। पतयालुः। दयालुः। निद्रालुः। तत्पूर्वो द्रा। तदो नान्तत्वं निपात्यते। तन्द्रालुः। श्रद्धालुः। ❀ शीङो वाच्यः ❀। शयालुः।

स्पृहि, गृहि, पति, दयि, निपूर्वक द्रा, तत्पूर्वक न्द्रा, श्रत्पूर्वक डुधाञ् इनसे पर आलुच् प्रत्यय होता है। इनमें प्रथम तीन धातु चुरादिगणीय अकारान्त है। स्पृहयालुः। गृहयालुः। पतयालुः। दयालुः आदि। तन्द्रालुः यहां तत् पूर्वक द्रा धातु से आलुच् तद् का दकार को नकारादेश हुआ।

शीङ् धातु से आलुच् होता है. गुण अयादेश से 'शयालु'।

३१३९ दाधेट्सिदशसदो रुः ३।२।१५९।

दारुः, धारुः, सेरुः, शद्रुः, सद्रुः।

दा, धेट्, सि, शद्, सद्, इनसे पर रुप्रत्यय होता है। दारु इत्यादि। यहां दा से डुदाञ्, इन तीनों का ग्रहण है, दाण् दाप् का ग्रहण नहीं है।

३१४० सृघस्यदः क्मरच् ३।२।१६०।

सृमरः। घस्मरः। अद्मरः।

सृ, घस्, अद् से पर क्मरच् प्रत्यय होता है। ककार की इत्संज्ञा लोप किच्चप्रयुक्त गुणाभाव है। सृमरः। घस्मरः। अद्मरः।

३१४१ भञ्जभासमिदो घुरच् ३।२।१६१।

भङ्गुरः। भासुरः। मेदुरः।

भञ्ज, भास, मिद् धातु से पर घुरच् प्रत्यय होता है। भङ्गुरः में 'चजोः' से कुत्व हुआ, शब्द शक्ति स्वभावतः भञ्ज से कर्म कर्ता में ही घुरच् होता है। भासुरः। मेदुरः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३१४२ विदिभिदिच्छिदेः कुरच् ३।२।१६२।

विदुरः। भिदुरम्। छिदुरम्।

ज्ञानार्थक विद् धातु विदारणार्थक भिद् धातु द्वैधीभावार्थक छिद् धातु से कुरच् प्रत्यय होता है। विदुरः। ज्ञानार्थक विद् यहां है। लाभार्थक नहीं, शिष्ट कृत व्याख्यान से। छिदुरम्। वृत्ति के मत से यहां कर्मकर्त्ता मे प्रत्यय है। भाष्यमत इससे विपरीत ही है। महाकवि ने मुख्य कर्ता में प्रत्यय का प्रयोग स्वकाव्य में किया है—"प्रियतमाय वपुर्गुरुमत्सरच्छिदुरबाऽदुरयाचित-मञ्जनाः" इति यहां क्रिया 'अदुः' है।

३१४३ इण्नशजिसर्तिभ्यः क्वरप् ३।२।१६३।

इत्वरः। इत्वरी। नश्वरः। जित्वरः। सृत्वरः।

इण्, नश, जि, सृ इनसे क्वरप् प्रत्यय होता है। इण् गतौ से क्वरप् 'ह्रस्वस्य पिति' से लुक् हुआ इत्वरः, यहां कित्व प्रयुक्त गुणाभाव है। इत्वरी यहां 'टिड्ढ' से ङीप् प्रत्यय हुआ। नश्वरः। जित्वरः। सृत्वरः।

३१४४ गत्वरश्च ३।२।१६४।

गमेरनुनासिकलोपोऽपि निपात्यते। गत्वरी।

गम् धातु से क्वरप् प्रत्यय होता है, एवं निपातन से अनुनासिक मकार का लोप भी होता है। तुक् गत्वरः। गमनशीला स्त्री गत्वरी ङीप्।

३१४५ जागुरूकः ३।२।१६५।

जागर्तेरूकः स्याद्। जागरूकः।

जागृ धातु से ऊक प्रत्यय होता है। जागरण करने की प्रकृति वाला = जागरूकः।

३१४६ यजजपदशां यङः ३।२।१६६।

एभ्यो यङन्तेभ्य ऊकः स्यात्। 'दशाम्' इति भाविना नलोपेन निर्देशः। यायजूकः। जञ्जपूकः दन्दशूकः।

यङन्त यज, जप, दंश से ऊक प्रत्यय होता है। 'दशाम्' सूत्र में भविष्यत्काल में होने वाला नकारलोप का प्रथमतः निर्देश किया। पुनः पुनः अतिशयेन वा याग करने का शीलवाला—यायजूकः। यज् से यङ् द्वित्वादि 'दीर्घोऽकितः' से अभ्यास का दीर्घ अकार का लोप 'यस्य हलः' से यकारलोप हुआ जजपूकः—'जपजभ दह दश' से लुक्। वावदूकः 'उलूकादिभ्यश्च' उ० सू० से ऊक हुआ। माधव ने तो कुर्वादिगण में 'वावदूकः' पाठ से वद् से यङ् तदन्त से हुआ। यङन्त दंश से ऊक दन्दशूकः। राक्षस या सर्प का नाम है।

३१४७ नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः ३।२।१६७।

नम्रः। कम्प्रः। स्मेरः। जस्रिर्नव्पूर्वः क्रियासातत्ये वर्तते। अजस्रम्= सन्ततमित्यर्थः। कम्रः। हिंस्रः। दीप्रः।

नम, कम्प, स्मि, नञ् पूर्वक जस्, कम्, हिंस, दीप इनसे रप्रत्यय होता है। अजस्रम् का अर्थ निरन्तर = सन्तत है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३१४८ सनांशसभिक्ष उः ३।२।१६८।

चिकीर्षुः। आशंसुः। भिक्षुः।

सनन्त तदादि से आङ् पूर्वक शंसु से एवं भिक्ष से कर्ता में उप्रत्यय होता है। गर्गादि गण में जिगमिषु के पाठ से यहां सन् से प्रत्यय ग्रहण करके 'प्रत्ययग्रहणे' से तदादि शब्द स्वरूप विशेष्य की उपस्थिति कर सन् की 'येन विधिस्तदन्तस्य' से विशेषणसंज्ञा होने से विशेषण संज्ञा का संज्ञी तदन्त जो है उसकी उपस्थिति से सनन्त तदादि अर्थ हुआ। षणु दाने षग संभक्तौ का ग्रहण सन् से न हुआ। आङ् पूर्वक शंस से उकार आशंसुः। भिक्ष से उप्रत्यय भिक्षुः। आङ् पूर्वक शंस् से 'आङः शासि इच्छायाम्' का ग्रहण यहां है। शंसु स्तुतौ का ग्रहण नहीं है।

३१४९ विन्दुरिच्छुः ३।२।१६९।

वेत्तेर्नुम् इषेश्छत्वं च निपात्यते। वेत्ति तच्छीलो विन्दुः। इच्छति इच्छुः।

अलाक्षणिक कार्य जो होता है उसे निपातन कहते हैं। विन्दुः इच्छुः, ये दो निपातन से सिद्ध होते हैं। विद् धातु से उप्रत्यय एवं नुम् आगम एवं इष् से उप्रत्यय एवं षकार को छकार होता है। ज्ञान करने का शील वाला = विन्दुः। इच्छा करने की प्रकृति वाला = इच्छुः।

३१५० क्याच्छन्दसि ३।२।१७०।

'देवाञ्जिगाति सुम्नयुः'।

वेद में क्य प्रत्ययान्त धातु से उप्रत्यय होता है। यहां 'क्य' से क्यच्, क्यप्, क्यङ् इन तीनों का ग्रहण है। एवं कण्वादि गण में विहित यक् प्रत्ययान्त का भी शिष्टोक्त व्याख्यान से ग्रहण है। अर्थात् क्यच् क्यप् क्यङ् यक् प्रत्ययान्त से वेद उप्रत्यय होता है। सुम्नयुः सुम्न शब्द सुबन्त से क्यच् प्रत्यय, 'न छन्दस्यपुत्रस्य' से इकार एवं 'अकृत' सूत्र से दीर्घाभाव।

३१५१ आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च ३।२।१७१।

आदन्ताद् ऋदन्ताद् गमादिभ्यश्च किकिनौ स्तश्छन्दसि तौ च लिड्वत्। पपिः सोमम्। ददिर्गाः। बभ्रिर्वज्रम्। जग्मिर्युवा। 'जघ्निर्वृत्रमिन्द्रियम्'। जज्ञिः। ❀ भाषायां धाव्कृसृगमिजनिनमिभ्यः ❀। दधिः। चक्रिः। सस्रिः। जग्मिः। जज्ञिः। नेमिः। ❀ सासहिवावहिचाचलिपापतीनामुपसंख्यानम् ❀। यङन्तेभ्यः किकिनौ पतेर्नीगभावश्च निपात्यते।

आकारान्त धातु से ऋकारान्त धातु से गम् से इन् से जन् से वेद में कि एवं किन् प्रत्यय होते हैं, वे दोनों प्रत्यय लिट् के समान होते हैं अर्थात् लिट् पर में रहते द्वित्वादि कार्य जो होता है वे कार्य कि एवं कित् प्रत्यय पर रहते करना चाहिये। 'ऋदोरप्' की तरह यहां आद् में दकार मुखसुखार्थ है यहां तकार नहीं है अतः तपर सूत्र की अप्रवृत्ति है, दीर्घ ऋकारान्त के ग्रहण से ततुरिः जगुरिः की सिद्धि हुई। तॄ प्लवनतरणयोः। गॄ निगरणे। पपिः सोमम्। यहां 'नलोकाव्यय' से षष्ठी निषेध से द्वितीया हुई पा+कि या किन्=इ अवशिष्ट, पापा पपा आकार लोप पपिः= सोमकर्मक पानक्रियाकर्ता। बहुत्वविशिष्ट गोकर्मक दानक्रिया कर्ता = ददिः गाः। वज्रकर्मक धारण करने का शील वाला = बभ्रिः वज्रम्। गमन क्रियाकर्ता युवक = जग्मिर्युवा, गमहन् से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से उपधालोप। शत्रुभूत वृत्रासुर का नाश क्रिया कर्ता अग्निः वृत्रममित्रम्। प्रादुर्भाव क्रियाकर्ता—अग्निः। भाषा में धाञ्, कृ, सृ, गम्, जन्, नम् इनसे उत्तर कि एवं किन् होता है वे लिड्वत् है। क्रम से उदाहरण—दधिः। चक्रिः। सस्रिः। जग्मिः। नेमिः।

सासहि, वावहि, चाचलि, पापति, अर्थात् यङन्त सह, वह, चल, पत् कि एवं किन् होता है, पत् को नीग् आगम का अभाव होता है निपातन से।

३१५२ स्वपितृषोर्नजिङ् ३।२।१७२।

स्वप्नक्। तृष्णक्। तृष्णजौ। तृष्णजः। 'धृषेश्चेति वाच्यम्' इति काशिकादौ। धृष्णक्।

स्वपि और तृषि धातुओं से तच्छील आदि अर्थों में नजिङ् प्रत्यय होगा। ज से इ उच्चारणार्थ है। ङ् इत् है।

३१५३ शृवन्द्योरारुः ३।२।१७३।

शरारुः। वन्दारुः।

शृ एवं वद् से आरु प्रत्यय होता है। शरारुः। वन्दारुः = अभिवादन कर्ता या स्तुतिकर्ता।

३१५४ भियः क्रुकलुकनौ ३।२।१७४।

भीरुः। भीलुकः। क्रुकन्नपि वाच्यः॥ भीरुकः।

भी धातु से क्रु एवं क्लुकन् प्रत्यय होता है। भीरुः। भीलुकः। भी धातु से क्रुकन् भी होता है। भीरुकः।

३१५५ स्थेशभासपिसकसो वरच् ३।२।१७५।

स्थावरः। ईश्वरः। भास्वरः। पेस्वरः। कस्वरः।

स्था, ईश, भास, पिस, कस इनसे वरच् प्रत्यय होता है।

तिष्ठति = स्थावरः। ईष्टे = ईश्वरः। भाति = भास्वरः। पिनष्टि = पेस्वरः। कस गतौ कस्वरः।

३१५६ यश्च यङः ३।२।१७६।

यातेर्यङन्ताद् वरच् स्यात्। अतो लोपः, तस्याचः परस्मिन्निति स्थानिवद्भावे प्राप्ते 'न पदान्न' सूत्रेण (पदस्य चरमावयवे द्विर्वचनादौ च कर्तव्ये परनिमित्तोऽजादेशो न स्थानिवत्) यलोपं प्रति स्थानिवद्भावनिषेधाल्लोपो व्योरिति यलोपः। अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वमाश्रित्यातो लोपे प्राप्ते 'वरे लुप्तं न स्थानिवत्', यायावरः।

यङन्त या धातु से वरच् प्रत्यय होता है। यायाय + वर यहां अतो लोपः से अकार का लोप हुआ उसका अचः परस्मिन् से स्थानिवद्भाव प्राप्त हुआ। किन्तु न पदान्त सूत्र से यकार लोप कर्तव्य लोपोव्योः से है अतः अकारलोप का स्थानिवद्भाव न हुआ। अकार लोप का स्थानिवद्भाव से आतो लोप इटि च से आकारलोप प्राप्त हुआ। किन्तु वरेयोऽआदेशः स स्थानिवत् एतदर्थक न पदान्त सूत्र में वरेग्रहण से स्थानिवद्भाव का निषेध हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विमर्श—यङ् में ङकार की इत्संज्ञा के बाद प्रत्ययत्व 'य' में है न कि अकार में प्रथम अकार का लोप हुआ तब य् मात्र में प्रत्ययत्व है ऐसी परिस्थिति में अजादि ङित्, प्रत्ययस्य अकार में नहीं स्थानिवद्भाव से आकार लोप की प्राप्ति ही नहीं पुनः न पदान्त सूत्र में वरे ग्रहण क्यों किया? वह व्यर्थ होकर एक काल्पनिक व्यवस्था यह बोधन करता है वह यद्यपि सम्भव नहीं तो भी उस कल्पना को मान कर 'वरे' की सार्थकता सिद्ध करती। वह कल्पना यह है कि "यदि पूर्व में यकार लोप होगा, तदा 'यः शिष्यते' न्याय से अवशिष्ट अकार में प्रत्ययत्व रहेगा" उसका लोप कर उसका स्थानिवद्भाव से आकार लोप निवृत्त्यर्थ वरे सार्थक हुआ। प्रथम यकार का लोप अकार सत्ता दशा मे वल् परत्वाभाव से अप्राप्त है तो भी "यदि पूर्व यकारलोपः स्यात् तदनन्तरम् अकारलोपः स्यात् तदा अकारे प्रत्ययत्वम् आगतं भवेत्" इति सम्भावनाऽऽकार असम्भव कल्पना रूप सम्भावना न करके 'वरे' ग्रहण न पदान्त में न करना इसमें लाघव है तथापि इस सम्भावना का फल भाष्यसम्मत 'याति' यह प्रयोग सिद्ध हुआ। याययि+ति यहां अकार लोप यकार लोप क्रम से अकार में यकार सत्ता दशा में प्रत्ययत्व नहीं उसका स्थानिवद्भाव से याया का अन्तिम आकार का लोप अप्राप्त था किन्तु वरे ग्रहण ज्ञापित सम्भावना से आकार लोप ततः यकार लोप 'याति' सिद्ध हुआ।

३१५७ भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप् ३।२।१७७।

विभ्राट्। भाः। भासौ। धूः। धुरौ। विद्युत्। ऊर्क्। पूः। पुरौ। दृशिग्रहणस्याप्यपकर्षाज्जवतेर्दीर्घः। जूः। जुवौ, जुवः। ग्रावशब्दस्य धातुना समासः सूत्रे निपात्यते ततः क्विप्, ग्रावस्तुत्।

'आक्रोः' इत्युक्त होने से यह क्विप् तच्छीलादि अर्थों में होता है, वहाँ 'क्विपमभिव्याप्य' कह चुके हैं। भ्राज, भास, हिंसार्थक धुर्वी, विपूर्वक द्युत धातु, ऊर्ज, पॄ, जु, ग्रावपूर्वक स्तु इन से क्विप् होता है। भ्राजृ दीप्तौ, भासृ दीप्तौ, धुर्वी हिंसायाम्, द्युत दीप्तौ, ऊर्ज बल-प्राणनयोः, पॄ पालन-पूरणयोः, जु गतौ सौत्रः, ग्रावपूर्वक ष्टुञ् स्तुतौ इनका यहां ग्रहण है। विभ्राट्—'ब्रश्च' से षकार, जश्त्व, एवं चर्त्व हुआ। धूः—धुर्वी से क्विप्, राल्लोपः से वकार लोप, 'वोरुपधायाः' से दीर्घ हुआ ऊर्क् चोः कुः से कुत्व, रात्सस्य से नियमप्रयुक्त संयोगान्त लोप न हुआ। पूः उदोष्ठ्यपूर्वस्य से उकार हुवा एवं वोः से दीर्घ। अन्येभ्योऽपि दृश्यते से दृश् के सम्बन्ध से दीर्घ से जूः। निपातनात् ग्राव का स्तु धातु से समास तुक् ग्रावस्तुत्।

३१५८ अन्येभ्योऽपि दृश्यते ३।२।१७८।

क्विप् ङित्, भिद्। दृशिग्रहणं विध्यन्तरोपसंग्रहार्थम्। क्वचिद् दीर्घः, क्वचिदसम्प्रसारणम्, क्वचिद् द्वे, क्वचिद्ह्रस्वः। तथा च वार्तिकम्—क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च ॥ क्विब्वचीत्यादिना उणादिसूत्रेण केषाञ्चित्सिद्धे तच्छीलादौ तृना बाधा मा भूदिति वार्तिके ग्रहणम्। वक्तीति वाक्। प्रच्छतीति प्राट्। आयतं स्तौति आयतस्तूः। कटं प्रवते कटप्रूः। जुरुक्तः। श्रयति हरि सा श्रीः। द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च ॥ दृशिग्रहणादभ्यासस्य सञ्ज्ञा। विद्युत्। जगत्। जुहोतेर्दीर्घश्च ॥ जुहूः। दृ भये अस्य ह्रस्वश्च ॥ दीर्यति दरत्। ध्यायतेः सम्प्रसारणञ्च ॥ धीः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वोक्त से भिन्न धातुओं से भी क्विप् प्रत्यय होता है। छिद् से क्विप् छित् 'ह्रस्वस्य पिति' से तुक्। भिद्। सूत्र में अन्यत्र क्रियावाचक दृश्यते प्रयोग नहीं किया, यहां भी उसका प्रयोग न करना ही उचित था पुनः आचार्य ने 'दृश्यते' यह प्रयोग किया अतः शब्दाधिक्य से अधिकार्थ की प्रतीति इष्टानुरोध से हुई—अन्य विधीयमान कार्य का यहां संग्रह है। यथा—१ कहीं दीर्घ होता है २ कहीं सम्प्रसारण होता है, ३–कहीं द्वित्व होता है ४–कहीं ह्रस्व होता है, इसका सारभूत वचन वार्तिक रूप से यह पठित है कि वच, प्रच्छ, आयतपूर्वक स्तु, कटपूर्वक प्रु, जु, श्री, इनसे क्विप् प्रत्यय एवं इन धातुओं के अन्तिम स्वर का दीर्घ एवं जहाँ इनमें से धातुओं को प्राप्त सम्प्रसारण होगा वहां सम्प्रसारण का अभाव होता है। क्विप् वचि इत्यादि उणादि सूत्र से दीर्घ एवं सम्प्रसारणाभाव होता पुनः यह वार्तिक इसलिए किया गया है कि ताच्छील्य अर्थ में तृन् प्रत्ययद्वारा क्विप् का बाध नहीं होता है एतदर्थ यह वार्तिकारम्भ है। यथा वच् परिभाषणे कर्ता में उससे क्विप् दीर्घ चोः कुः वाक् सम्प्रसारणाभाव प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्–प्राट्। आयतम् कर्मोपपदक स्तु से क्विप् दीर्घ–आयतस्तूः उपपद समास हुआ। कटप्रूः। श्रि से क्विप्, दीर्घ श्रीः।

द्युत, गम्, द्रु, इन से क्विप् द्वित्व भी इनका होता है। दृशि का यहाँ सम्बन्ध से अभ्यास संज्ञा भी जो अप्राप्त थी हुई। दिद्युत् यहां द्युतिस्वाप्योः से सम्प्रसारण पूर्वरूप हुआ। जगत्-गमः क्वौ से मलोप तुक् आदि। दीर्घ का यहां चकार से सम्बन्ध है वह द्युत् गम् में अनन्वित है, केवल अजन्तत्व द्रु मे सम्भव है अतः वहां ही दीर्घ का अन्वय है। द्रू का दीर्घ हुआ क्विप् द्वित्व-जुहूः।

हृ धातु से क्विप् द्वित्वादि कार्य एवं ह्रस्व भी होता है यथा दहृत्। * चिन्तार्थक ध्ये से क्विप् एवं सम्प्रसारण भी होता है, इदः से दीर्घ हुआ धीः—ध्यानकर्ता पुरुष है न कि धीः, (बुद्धि), यहां करण में कर्तृत्व विवक्षा से क्विप् है। एवं जुहू में ज्ञान करना। यह श्री हरदत्ताचार्य का मत है।

३१५९ भुवः संज्ञान्तरयोः ३।२।१७९।

मित्रभूर्नाम कश्चित्। धनिकाधमर्णयोरन्तरे यस्तिष्ठति विश्वासार्थं स प्रतिभूः।

संज्ञा एवं अन्तर = मध्य में इन दो अर्थों में भू धातु से क्विप् प्रत्यय होता है। किसी व्यक्ति-विशेष का नाम रूप संज्ञा में मित्रभूः। उत्तमर्ण = धनिक एवं अधमर्ण कर्जा लेने वाला इन दोनों के बीच में विश्वास स्थापन के लिए मध्यस्थता स्थापन करने वाला इस अर्थ में अन्तर का उदाहरण प्रतिभूः है।

३१६० विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम् ३।२।१८०।

एभ्यो भुवो ड्वुः स्यान्न तु संज्ञायाम्। विभुर्व्यापकः। प्रभुः स्वामी। संभुर्जनिता। संज्ञायान्तु विभूर्नाम कश्चित्। ॐ मितद्र्वादिभ्य उपसंख्यानम् ॐ। मितं द्रवतीति मितद्रुः। शतद्रुः। शम्भुः। अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र भवति।

विपूर्वक, प्रपूर्वक, संपूर्वक, जो भू धातु इनसे असंज्ञा में ड्वुप्रत्यय होता है। संज्ञा में ड्वुप्रत्यय नहीं होगा सूत्र में असंज्ञायाम् इस कथन से।

व्यापकः। विभुः। स्वामी = प्रभुः। जनिता = शम्भुः। कोई व्यक्ति का नाम इसमें विभूः क्विप्। मितद्रु आदि से ड्वुप्रत्यय होता है अर्थात् मित आदि शब्द पूर्व में रहे द्रु आदि धातु अन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में जहाँ रहे वहां डुप्रत्यय होता है। मितद्रुः, शतद्रुः, शम्भुः, यहां कल्याण कराने वाला यह अर्थ है भूधातु का आत्मधारणानुकूल व्यापारानुकूल व्यापारार्थक है, ण्यप्रेरणा धात्वर्थ कुक्षिप्रविष्ट है।

३१६१ धः कर्मणि ष्ट्रन् ३।२।१८१।

धेटो धावश्च कर्मण्यर्थे ष्ट्रन् स्यात्। धात्री=जनन्यामलकीवसुमत्युपमातृषु।

धेट् एवं धाव् धातु से कर्म अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय होता है। यथा धात्री इसका अर्थ जननी = माता, आमलकी, वसुमती, एवं उपमाता समझना चाहिये।

३१६२ दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ३।२।१८२।

दाबादेः ष्ट्रन् करणेऽर्थे। दान्त्यनेन दात्रम्। नेत्रम्।

दाप्, नी, शस, यु, युज, स्तु, तुद, सि, सिच, मिह, पत, दश, नह, इन धातुओं से ष्ट्रन् प्रत्यय करण अर्थ में होता है। दात्रम्। नेत्रम्।

३१६३ तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च ७।२।९।

एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण्न स्यात्।

शस्त्रम्। योत्रम्। योक्त्रम्। स्तोत्रम्। तोत्रम्। सेत्रम्। सेक्त्रम्। मेढ्रम्। पत्त्रम्। दंष्ट्रा। नद्ध्री।

ति, तुन्, ष्ट्रन्, त्र, थन्, सि, सु, सर, क, स, इन दश कृत् प्रत्ययों को इडागम नहीं होता है। मेढ्रम्—ह्रोढः से ढकार धत्वष्टुत्व ढलोप हुआ। दंष्ट्रा, यहाँ प्रत्यय णित् हो तो भी णित् प्रयुक्त ङीष् अनित्य है यह प्रथम कह चुके हैं, या अजादि में पाठ करण से टाप् ने ङीष् को बाध किया। नद्ध्री—नहो धः, झषस्तथोः से धत्व, जश्त्व, दश निर्देश ज्ञापक है कि अकित् में भी दंश के नकार का लोप होता है।

३१६४ हलसूकरयोः पुवः ७।२।१८३।

पूङ्पूञोः करणे ष्ट्रन् स्यात् तच्चेत्करणं हलसूकरयोरवयवः। हलस्य सूकरस्य वा पोत्रम्=मुखमित्यर्थः।

पूङ् या पूञ् से करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय होता है, वह करण हल एवं सूकर का यदि अवयव रहे तब। पोत्रम्=यह शब्द मुख अर्थ में रूढ है।

३१६५ अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ३।२।१८४।

अरित्रम्। लवित्रम्। धवित्रम्। सवित्रम्। खनित्रम्। सहित्रम्। चरित्रम्।

ऋ, लू, धू, सू, खन्, सह, चर, इन धातुओं से इत्र प्रत्यय होता है।

विधूननार्थक कुटादि धू का ग्रहण है। अतः गुणाभाव से उवङ् हुआ। यहाँ गाङ्कुटादिभ्यः से ञ्णित्वातिदेश है। धुवित्रम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३१६६ पुवः संज्ञायाम् ३।२।१८५।

पवित्रम्। येनाज्यमुत्पूयते, यच्चानामिकावेष्टनम्।

पूङ् एवं पूञ् धातु से संज्ञा में करणमें इत्र प्रत्यय होता है। यथा पवित्रम्। इवनीय द्रव्य जिससे पवित्र होता है घृतादि अथवा अनामिका में कुशा की जो पवित्री धारण की जाती है उस दो अर्थ में पवित्रम् शब्द का प्रयोग होता है।

३१६७ कर्तरि चर्षिदेवतयोः ३।२।१८६।

पुव इत्रः स्यात् ऋषौ करणे देवतायां कर्तरि। ऋषिः=वेदमन्त्रः,। तदुक्तम्—ऋषिणेति दर्शनात्। पूयतेऽनेनेति पवित्रम्। देवतायां त्वग्निः पवित्रं स मा पुनातु।

इति पूर्वकृदन्तं समाप्तम्।

ऋषिकरण एवं देवता कर्ता यह वाच्य रहते पूङ् धातु से इत्र प्रत्यय होता है। वेद के मन्त्र को ऋषि कहते हैं। यह वेदमन्त्र ने कहा था इसमें तदुक्तम् ऋषिणा यह प्रयोग दिखा गया है। वेदमन्त्र के द्रष्टा ऋषिगण है। वे मन्त्र उनके द्वारा कहे गये हैं। देवता अर्थ कर्ता होने पर "अग्निः पवित्रं समा पुनातु" यहां पवित्रम् प्रयोग सिद्ध हुआ। कर्तरि कृत् सूत्रस्थ भाष्य से यहां यथासंख्य अन्वय नहीं है। इस सूत्र वर्णन में यथासंख्य व्याख्याता वृत्तिकार का मत उपेक्ष्य है। शब्दकौस्तुभ में भी यथासंख्य नहीं यही सिद्धान्त है।

पं० श्री बालकृष्णपञ्चोलिविरचित सविमर्श रत्नप्रभा में पूर्वकृदन्त समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथोणादिप्रकरणम्

तत्रोणादिषु प्रथमः पादः

१ कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ।

करोतीति कारुः, शिल्पी कारकश्च । 'आतो युक्—' (२७६१) वातीति वायुः । पायुर्गुदस्थानम् । जयत्यभिभवति रोगान् जायुः औषधम् । मिनोति प्रक्षिपति देहे ऊष्माणमिति मायुः पित्तम् । स्वादुः । साध्नोति परकार्यं साधुः । अश्नुते आशु शीघ्रम् । 'आशुर्व्रीहिः पाटलः स्यात् ।'

सम्प्रति उणादि प्रत्यय प्रदर्शित हो रहे हैं । उनमें प्रथम पाद के वक्ष्यमाण प्रत्यय हैं —

कृ, वा, पा, जि, मि, स्वदि साधि, अश् इन धातुओं से उण् प्रत्यय होता है । डुकृञ् करणे, वा गतिगन्धनयोः, पा पाने, पा रक्षणे, जि अभिभवे, डुमिञ् प्रक्षेपणे, स्वद आस्वादने, साध संसिद्धौ, अशू व्याप्तौ, इनका यहां ग्रहण है । करोति कारुः = शिल्पी एवं कारकः = उत्पत्ति जनक व्यापार कर्ता । मेदिनीकोष में कहा है कि "विश्वकर्मणि ना, कारुस्त्रिषु कारकशिल्पिनोः ।" धरणि कोश में लिखा है कि "कारुः शिल्पिनि कारके" इति । प्रथमार्थ में योगरूढ है । द्वितीयार्थ में केवल यौगिक है । द्वितीयार्थ में मत्वर्थ के प्रति कारकान्वय होता ही है । भट्टि में कहा है कि— "राघवस्य ततः कार्यं कारुर्वानरपुङ्गवाः" इति । वाति वायुः यहां उण् प्रत्यय कर आतो युक् से से युगागम है । पायुः गुदस्थान है । 'गुदं त्वपानं पायुर्ना' यह कोशोक्ति है । रोगनाशक औषधि को जायुः कहते हैं । मायुः = पित्त को कहते हैं वह शरीर में ऊष्मा की वृद्धि करता है । कोश— 'मायुः पित्तं कफः श्लेष्मा' । स्वद् उण् स्वादुः रुचिकर्ता । परकार्य सिद्धि कर्ता में साधुः । अश्नुते आशु = शीघ्रम् । आशुशब्द व्रीहि में एवं पाटल अर्थ में है । श्वेतरक्त को पाटल कहते हैं यथा गुलाब का वर्ण । 'उणादयो बहुलम्' इस बहुलग्रहण से अन्य धातुओं से भी उण् प्रत्यय होता है । यथा—चन्द्र का ग्रहण कर त्याग करने वाला इसमें रह धातु से उण् प्रत्यय से राहुः ।

वस निवासे से उण् वासुः = सर्वं जिसमें वास करें या जो सर्वत्र निवास करे उसको वासु कह सकते हैं वासुश्चासौ देवश्च वासुदेवः = वसत्यस्मिन् सर्वं, सर्वत्रासौ वसति इति वासुः । वसुदेवस्य अपत्यम् इस अर्थ में तो 'ऋष्यन्धक' सूत्र से अण् एवं पूर्व व्युत्पत्ति से भिन्न व्युत्पत्ति है ।

२ छन्दसीणः ।

'मान आयौ' ।

वेद में इण् धातु से उण् प्रत्यय होता है । इण्+उण् वृद्धि आयादेश आयुः = जीवित काल को कहते हैं । "मा न आयौ" वैदिक निघण्टु में आयुः शब्द मनुष्य पर्य्याय में प्रयुक्त है । लोक में भी इण् से उण् प्रत्यय होता है, बहुवचन निर्देश से । "आयुर्जीवितकालो ना" वेदमन्त्र में भी "त्वमग्ने प्रथममायुमायवे" इति । "मा नस्तोके तनये मा न आयौ" । उस प्रत्ययान्त आयुस् शब्द भी है 'एतेर्णिच्च' से वह सकारान्त लोक वेद साधारण है । जटा आयुरस्य जटायुषम् । रामायण में "गृध्रं हत्वा जटायुषम्" । महाकवि श्रीहर्ष ने नैषध महाकाव्य में कहा है कि—

"यदि त्रिलोकी गणनापरा स्यात् तस्याः समाप्तिर्यदि नायुषः स्यात्" । यह षकारान्त प्रयोग असङ्गत हुआ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३ दृसनिजनिचरिचटिभ्यो ञुण् ।

दार्यत इति दारु । 'स्तुः प्रस्थः सानुरस्त्रियाम्' । जानु । जानुनी । इह 'जनिवध्योश्च' (सू २५१२) इति न निषेधः । अनुबन्धद्वयसामर्थ्यात् । चारु रम्यम् । 'चाटु प्रियं वाक्यम्' । मृगय्वादित्वात्कुप्रत्यये 'चटु' इत्यपि ।

विदारणार्थक दृ, दानार्थक षणु, जननार्थक जन, गत्यर्थक चर, भेदनार्थक चर इन धातु ओं से ञुण् प्रत्यय होता है । दारुः = काष्ठम् । सानुः = प्रस्थः सानुः । जानु = जानुनी । जन् धातु के अकार की वृद्धि हुई आकार एवं णकार दो अनुबन्ध करण सामर्थ्य से 'जनिवध्योः' से वृद्धि का यहां निषेध हुआ । चारु = रम्यम् । चाटु = प्रिय वाक्य मृगय्वादित्व के कारण कुप्रत्यय से चटु भी हुआ । रत्नमाला कोश में "चाटुर्नरि प्रयोक्तिः स्यात्" । नरि = पुंल्लिङ्गे । माघ में— 'स चकर किल चाटून् प्रौढयोषिद् वदस्य' । चाटु शब्द नपुंसक भी देखा गया है । "चाटु चाकृत-कसंभ्रममासाम्" इति ।

४ किञ्जरयोः श्रिणः ।

किं शृणातीति किंशारुः सस्यशूकं, बाणश्च । जरामेति जरायुः गर्भाशयः । 'गर्भाशयो जरायुः स्यात्' ।

हिंसार्थक शृ, गत्यर्थक इण् , किं शब्द पूर्वक शृ धातु, जरापूर्वक इण् धातु इनसे ञुण् प्रत्यय होता है । शस्यशूक या बाण अर्थ में किंशारुः । गर्भाशय को जरायुः कहते हैं । मेदिनीकोश में कहा है—"किंशारुर्ना सस्यशूके विशिखे कङ्कपक्षिणि" इति ।

५ त्रो रश्च लः ।

तरन्त्यनेन वर्णा इति तालु ।

तरणप्लवनार्थक तॄ से ञुण् प्रत्यय होता है एवं रकार के स्थान में लकार होता है । तरन्ति वर्णा अनेन इसमें तालुः । इस सूत्र में ऐसा च्छेद करके दोनों का दीर्घ से निर्देश है उस मत में आलु = शाक विशेष में प्रयोग है । 'घटी' अर्थ में भी आलुः का प्रयोग है ।

६ कृके वचः कश्च ।

कृकेन गलेन वक्तीति कृकवाकुः । 'कृकवाकुर्मयूरे च सरटे चरणायुधे' इति विश्वः ।

कृक उपपद में रहते परिभाषणार्थक वच् धातु से ञुण् प्रत्यय होता है, वच् के चकार को ककार अन्तादेश होता है । कृक गले को कहते हैं गले से बोलने वाला कृकवाकुः । मोर, सरट, एवं चरणायुध कृकवाकु का अर्थ है ऐसा विश्वकोष का मत है ।

७ भृमृशीतृचरित्सरितनिधनिमिमस्जिभ्य उः ।

भरति बिभर्ति वा भरुः, स्वामी हरश्च । म्रियन्तेऽस्मिन् भूतानि मरुर्निर्ज-लदेशः । शेते शयुः अजगरः । तरुर्वृक्षः । चरन्ति भक्षयन्ति देवता इममिति चरुः । त्सरुः खड्गादिमुष्टिः । तनु स्वल्पम् । तन्यते कर्मपाशोऽनया इति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तनुः, शरीरं च। 'स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः'। धनुः शस्त्रविशेषः। 'धनुना च धनुर्विदुः'। 'धनुरिवाऽजनि वक्रः' इति श्रीहर्षः। मयुः किन्नरः। 'मद्गुः पानीयकाकिका' इति रभसः। न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वं, जश्त्वेन सस्य दः।

भृञ्, डुभृञ्, मृङ्, शीङ्, तॄ, चर, स्मर, तनु, धन, डुमिङ्, डुमस्जो, इन दश धातुओं से उप्रत्यय होता है। भरति या बिभर्ति में भरुः स्वामी, हरश्च। जलरहित प्रदेश में मनुष्यादि का मरण होता है = मरुः निर्जल प्रदेश। शयुः = अजगरः। तरुः = वृक्ष है। वृक्ष लगाने वाले मृत्यु के बाद स्वर्ग गमन करते हैं = तरन्ति नरकम् अनेन रोपकाः। देवताः चरन्ति = भिक्षयन्ति इमम् = देशम् चरुः। स्थाली वाचक चरु शब्द ओदनरूप अर्थ को लक्षणावृत्ति से बोधन करता है। स्मरुः = खड्गमुष्टिः। तनुः = शरीर। "स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः" इति। धनुः = शस्त्रविशेष। धनुषा च धनुर्विदुः। मयुः = किन्नर। मद्गुः = पक्षिविशेष = पानकौडी नाम से यह प्रसिद्ध है। यहाँ रभसमत यह है कि न्यङ्क्वादि पाठ से कुत्व हुआ, जश्त्वसे सकार को दकार हुआ।

८ अणश्च।

'लवलेशकणाऽणवः'। चात्कटिवटिभ्याम्। कटति रसनां कटुः। वटति वदतीति वटुः।

शब्दार्थक अण् से उप्रत्यय होता है। अणुः = सूक्ष्म। लव या लेश या कण या अणु वे समानार्थक है। सूत्रस्थ चकार से कटि एवं वटि से भी उप्रत्यय होता है। कटुः = रसविशेष। वटुः = कहने वाला।

९ धान्ये नित्।

धान्ये वाच्येऽण् उप्रत्ययः स्यात्, स च नित्। नित्त्वादाद्युदात्तः। 'प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे।' 'व्रीहिभेदस्त्वणुः पुमान्।' निद्ग्रहणं 'फलिपाटि-' इत्यादिसूत्रमभिव्याप्य सम्बध्यते।

धान्य अर्थ में अण् से उ प्रत्यय होता है। उकार निद्वत् है या नित् है। आद्युदात्तार्थ यहां नित्त्व का बोधन किया है। अणुः = धान्यविशेष। यह नित् का सम्बन्ध अठारवा सूत्र तक है जो 'फलपाटि' आदि से निर्दिष्ट है।

१० शृस्वृस्निहित्रप्यसिवसिहनिक्लिदिवन्धिमनिभ्यश्च।

शृणातीति शरुः। 'शरुरायुधकोपयोः'। स्वरुर्वज्रम्। स्नेहुर्व्याधिः। चन्द्र इत्यन्ये। त्रपु सीसम्। 'पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः'। 'वसुर्हेऽग्नौ योक्त्रेऽशौ वसु तोये धने मणौ'। हनुर्वक्त्रैकदेशः। क्लेदुश्चन्द्रः। बन्धुः। मनुः। चात् 'विदि अवयवे' बिन्दुः।

शृ, स्वृ, स्निहि, त्रपि, वसि, हनि, क्लिदि, वन्धि, मनि इनसे पर उ प्रत्यय होता है। शरुः = आयुध या कोप में है। स्वरुः = वज्र। स्नेहुः = व्याधिः। अन्य आचार्य चन्द्र अर्थ में भी इसका प्रयोग करते हैं। त्रपुः लज्जा का अनुभव या सीसक। असुः = प्राण। असु शब्द पुंल्लिङ्ग एवं बहुवचनान्त ही है। "पुंसि भूम्नि असवः प्राणाः" इति। वसुः = हद, अग्नि, योक्त्र, अंशु,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तोय, धन मणि इतने शब्द इनका पर्याय है। हनुः = मुख का अंश ठोडी। क्लेदुः = चन्द्र। बन्धुः। मनुः। सूत्रस्थ चकार से अवयवार्थक बिद् से उप्रत्यय बिन्दुः।

११ स्यन्देः सम्प्रसारणं धश्च।

'देशे नदविशेषेऽब्धौ सिन्धुर्नौ सरिति स्त्रियाम्' इत्यमरः।

स्यन्द से उप्रत्यय होता है, यकार का सम्प्रसारण होता है एवं दकार को धकारादेश होता है। स्यन्द उ—सिन्धुः = सिन्धुदेश नद या समुद्र। सिन्धु शब्द पुंलिङ्ग है।

१२ उन्देरिच्चादेः।

उनत्ति इन्दुः।

उन्द से उप्रत्यय एवं धातु के आदि उकार के स्थान में इकारादेश होता है।

इन्दुः = चन्द्रमाः।

१३ ईषेः किच्च।

ईषेरुः स्यात्, स च कित्, आदेरिकारादेशश्च। ईषते हिनस्ति इषुः, शरः। 'इषुर्द्वयोः'।

ईष् धातु से उप्रत्यय होता है, उकार कित् होता है।

धातु के ईकार को इकारादेश भी होता है। नाशक्रियाकर्ता बाण में इषुः। इषु शब्द पुंलिङ्ग एवं स्त्रीलिङ्ग है।

१४ स्कन्देः सलोपश्च।

कन्दुः।

स्कन्द धातु से उप्रत्यय एवं सकार का लोप होता है। कन्दुः।

१५ सृजेरसुम् च।

चात्सलोपः उप्रत्ययश्च। रज्जुः।

सृज धातु से उप्रत्यय एवं धातु को असुम् का आगम होता है, चकार से सकार का लोप होता है। रस्सी अर्थ में 'रज्जुः'।

१६ कृतेराद्यन्तविपर्ययश्च।

ककारतकारयोर्विपर्ययः। तर्कुः सूत्रवेष्टनम्।

कृत धातु से उप्रत्यय होता है, आदि एवं अन्तवर्ण का विपर्यय होता है। इससे ककार एवं तकार का विनिमय हुआ—तर्कुः = सूत्रवेष्टन = तकुआ।

१७ नावञ्चेः।

न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम्। नियतमञ्चति न्यङ्कुर्मृगः।

निपूर्वक अञ्चु धातु से उप्रत्यय होता है। एवं न्यङ्क्वादि सूत्र से चकार को ककार है। न्यङ्कुः = हरिण।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१८ फलिपाटिनमिमनिजनां गुक्पटिनाकिधतश्च ।

फलेर्गुक् । फल्गुः । पाटेः पटिः पाटयतीति पट्टुः । नम्यतेऽनेन नाकुर्वल्मीकम् । मन्यत इति मधु । जायत इति जतु ।

फल, पाट, नम, मन, जन, से उप्रत्यय होता है, एवं क्रमशः फल के लकार को गुक् का आगम होता है । फल्गुः । पाटि का पटिः । उप्रत्यय पट्टुः । नाकुः नाकि आदेश हुआ । मन् के नकार को धकार उप्रत्यय मधुः । जन् के नकार को तकार उप्रत्यय जतुः । गुक्, पटि, नाकि, धकार, तकार इनका बोधन एवं उप्रत्यय विधान किया । आगम पक्ष में अवयव षष्ठी अन्यत्र स्थान षष्ठी है विषयभेद से । जतुः = लाख ।

१९ वलेर्गुक्च ।

'वल संवरणे' वल्गुः ।

वल् से उप्रत्यय, एवं लकार को जुक् का आगम होता है । संवरणार्थक वल् से उप्रत्यय एवं गुक् आगम से वल्गुः । छगल एवं सुन्दर अर्थ है मेदिनीकोषकारका मत है ।

२० शः कित्सन्वच्च ।

श्यतेरुः स्यात्, स च कित् सन्वच्च । शिशुर्बालः ।

शो धातु से उप्रत्यय होता है वह उकार कित् है । एवं सन्वद् कार्य होता है । शिशुः = बालकः । आदेश सूत्र से आत्व द्वित्वादि सन्यतः इकार आकार लोप हुआ ।

२१ यो द्वे च ।

ययुरश्वोऽश्वमेधीयः । सन्वादिति प्रकृते द्वेग्रहणमित्त्वनिवृत्त्यर्थम् ।

या धातु से उप्रत्यय एवं धातु को द्वित्व होता है । ययुः = अश्वमेध । शेफित्सन्वन्ध से यहाँ सन्वद् की अनुवृत्ति है । उसी से द्वित्व होता है ग्रहण सन्यतः से इत्वनिवृत्ति के लिए किया है यहां ।

२२ कुर्भ्रश्च ।

बभ्रुः । 'बभ्रुर्मुन्यन्तरे विष्णौ बभ्रू नकुलपिङ्गलौ ।' चादन्यतोऽपि । चक्रुः कर्ता । जघ्नुर्हन्ता । पपु पालकः ।

भृ धातु से कुप्रत्यय होता है, एवं धातु का द्वित्व होता है । बभ्रुः = मुन्यन्तरे विष्णु में नकुल एवं पिङ्गल में है । सूत्रस्थ चकार से अन्य धातु से भी कुप्रत्यय होता है एवं द्वित्व । चक्रुः । जघ्नुः = हननकर्ता । पपुः = पालक = रक्षणकर्ता ।

२३ पृभिदिव्यधिगृधिधृषिभ्यः ।

कुः स्यात् । पुरुः । भिनत्ति भिदुर्वज्रम् । 'ग्रहिज्या—' (सू २४१२) इति । सम्प्रसारणम् । विरहिणं विध्यति विधुः । 'विधुः शशाङ्के कर्पूरे हृषीकेशे च राक्षसे ।' गृधुः कामः । धृषुर्दक्षः ।

पृ, भिद्, व्यध्, गृध, धृष्, इनसे उत्तर कुप्रत्यय होता है । पालनकर्ता या परिपूर्णकर्ता पुरुः । उत्व उदोष्ठ्यपूर्वस्य से भिदुः = विदारण क्रियाकर्ता । वियोगिजनों को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कष्ट देनेवाला विधुः चन्द्रः। स्त्रीजनवियुक्तों को चन्द्रमा विषयविषयिणी वासना का उद्दीपक है। चन्द्र में कर्पूर में, हृषीकेश में, राक्षस में विधुशब्द का प्रयोग आता है। गृधुः = कामः। धृषुः = दक्षः।

२४ कुग्रोरुच्च।

करोतीति कुरुः। गृणातीति गुरुः।

कु एवं गृ से कुप्रत्यय होता है एवं ऋकार के स्थान में उकार होता है। कुरुः = देश विशेष में योगरूढ है या कार्यकर्ता यौगिकार्थ है। गृणाति इति गुरुः = ज्ञानप्रदाता गृ शब्दे से कुप्रत्यय उकारोन्तादेश रपर। नृपान्तर में या भक्त में भी कुरु शब्द है यह मेदिनीकोष में वर्णितार्थ है।

२५ अपदुःसुषु स्थः।

'सुषामादिषु च' (सू १०२४) इति षत्वम्। अपष्ठु प्रतिकूलम्। दुष्ठु। सुष्ठु।

अपपूर्वक, दुर् पूर्वक, सुपूर्वक स्था से कुप्रत्यय होता है। सुषामादिषु च से सकार को षत्व होता है। प्रतिकूल अर्थ में अपष्ठु। खराब अर्थ में दुष्ठु। अच्छा अर्थ में सुष्ठु।

२६ रपेरिच्चोपधायाः।

अनिष्टं रपतीति रिपुः।

रिप् धातु से कुप्रत्यय एवं धातु की उपधा को इकार होता है। रिपुः = शत्रुः।

२७ अर्जिदृशिकम्यमिपशिबाधाभृजिपशितुग्घुग्दीर्घहकाराश्च।

अर्जयति गुणानृजुः। सर्वानविशेषेण पश्यतीति पशुः। कन्तुः कन्दर्पः। अन्धुः कूपः। 'पांशुर्ना न द्वयो रजः।' 'तालव्या अपि दन्त्याश्च सम्बसूकर-पांसवः।' बाधते इति बाहुः। 'बाहुः स्त्रीपुंसयोर्भुजः।'

अर्ज दृश, कम, अम, पश, बाध इनसे कुप्रत्यय होता है। एवं क्रमशः इन छः धातुओं को छः आदेश ऋज, पश, तुक्, धुक्, दीर्घ इकार होते हैं। गुणों का सम्पादन कर्ता = ऋजुः। पशुः = सबको समान दिखने वाला। कन्तुः = इच्छाजनक व्यापारकर्ता। अन्धुः—कूपः। पांशुः = रजः = धूलि। यह पुंलिङ्ग है। दन्त्य एवं तालव्य पांशु पांशु द्विविध है। बाधते बाहुः = भुज = हस्त = कर। यहां धकार को इकारादेश हुआ। बाहुशब्द स्त्रीलिङ्ग एवं पुंलिङ्ग है भुज अर्थ में।

२८ प्रथिम्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च।

त्रयाणां कुः सम्प्रसारणं भ्रस्जेः सलोपश्च। पृथुः। मृदुः। न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम्। भृज्जति तपसा भृगुः।

प्रथ, म्रद, भ्रस्ज, इनसे कुप्रत्यय एवं धातु को सम्प्रसारण, एवं भ्रस्ज के सकार का लोप होता है। प्रथुः = विस्तारकर्ता। मृदुः = कोमल, भृगुः = यहां सकार लोप कुत्व पाकक्रिया कर्ता यह शुद्ध यौगिकार्थ है। मुनिविशेष में रूढ है।

२९ लङ्घिबंह्योर्नलोपश्च।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लघुः । 'बालमूललघ्वलमङ्गुलीनां वा लो रत्वमापद्यते' (वा ४७६८)। रघुर्नृपभेदः । बहुः ।

लङ्ग एवं वह इनसे कुप्रत्यय होता है एवं नकार का लोप होता है। लघुः। बाल, मूल, लघु, अलम्, अङ्गुलि इनके लकार के स्थान में विकल्प से रकार होता है। यथा रघुः। बहुः = अधिक = बहुत।

३० ऊर्णोतेर्नुलोपश्च ।

ऊरुः सक्थि ।

ऊर्णु धातु से कुप्रत्यय एवं कुप्रत्यय पर में रहते ऊर्णु का णु-भाग का लोप होता है। ऊरुः = सक्थि।

३१ महति ह्रस्वश्च ।

उरु महत् ।

महत् अर्थ में ऊकार का ह्रस्व होता है। उरु = महत्।

३२ श्लिषेः कश्च ।

श्लिष्यतीति श्लिकुर्भृत्यः, उद्यतो ज्योतिश्च ।

श्लिष धातु से कुप्रत्यय होता है। धातु के अवयव षकार को ककार आदेश होता है। भृत्य या उद्यत तेज में श्लिकुः।

३३ आङ्परयोः खनिशृभ्यां डिच्च ।

आ खनतीत्याखुः । परं शृणातीति परशुः । पृषोदरादित्वादकारलोपात्पर्शुरपि ।

आङ्पूर्वक खन्, परपूर्वक शृ, इनसे कुप्रत्यय होता है। वह कुप्रत्यय डित् संज्ञक है। खनन क्रिया कर्ता में आखुः। दूसरे की हिंसा करनेवाला परशुः। पर्शुः यहां पृषोदरादित्व प्रयुक्त पर के रेफोत्तर जो अकार उसका लोप है।

३४ हरिमितयोर्द्रुवः ।

'द्रु गतौ' अस्मात् हरिमितयोरुपपदयोः कुः, स च डित्। हरिभिर्द्रूयते हरिद्रुर्वृक्षः। मितं द्रवति मितद्रुः समुद्रः ।

हरि एवं मित शब्द उपपद में रहते द्रु से कुप्रत्यय होता है यह कु डित् है। वृक्षविशेष अर्थ में हरिद्रुः। मितद्रुः = समुद्र।

३५ शते च ।

शतधा द्रवति शतद्रुः । बाहुलकात्केवलादपि । द्रवत्यूर्ध्वमिति द्रुर्वृक्षः, शाखा च । तद्वान्द्रुमः ।

शतशब्द उपपद में रहते द्रु से कुप्रत्यय होता है। द्रुधातु गत्यर्थक है। शतप्रकार से गमन क्रिया कर्ता अर्थ में शतद्रुः यह यौगिकार्थ है। बहुल ग्रहण से केवल गत्यर्थक द्रु से कुप्रत्यय डित् हुआ—द्रुः = वृक्षः, शाखा च। शाखायुक्त वृक्ष को द्रुमः कहते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३६ खरुशङ्कुपायुनीलङ्गुलिगु ।

पञ्चैते कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । खनते रेफश्चान्तादेशः । खरुः कामः क्रूरो मूर्खोऽश्वश्च । 'शङ्कुर्नाकीज्ञशल्ययोः ।' पिबतेरीत्त्वं युगागमश्च । पीयुर्वायसः । कालः सुवर्णं च । निपूर्वाल्लगि गतावस्मात्कुर्नेर्दीर्घश्च । नीलङ्गुः कृमिविशेषः शृगालश्च । 'नीलाङ्गुः' इति पाठान्तरम् । तत्र धातोरति दीर्घः । लगे सङ्गे, अस्य अत इत्त्वं च । लगतीति लिगु चित्तम् । लिगुर्मूर्खः ।

खरु, शङ्कु, पीयु, नीलङ्गु, लिगु इनसे कुप्रत्ययान्त निपातन से सिद्धि होती है ।

खन् से कुप्रत्यय नकार को रकार अन्तादेश हुआ, जैसे खरुः = काम, क्रूर, मूर्ख, अश्व । पतिवरण की इच्छा करने वाली कन्या को भी खरुः कहते हैं । शङ्कते अस्मादिति शङ्कुः । विश्वकोष में शङ्कु के अनेक अर्थ दिखाये हैं यथा—

"शङ्कुः कीले गले शस्त्रे संख्यापादपभेदयोः ।
यादोभेदे च पापे च, स्थाणावपि च दृश्यते" ॥ १ ॥

पीयुः पाङ्कु आकार को ईत्त्व एवं युगागम है । काक, काल एवं सुवर्ण अनेकार्थक पीयु शब्द है । "पीयुः काले रवौ घोरे" यह मेदिनी कोष है । नीलङ्गुः—निपूर्वक गत्यर्थक लगि धातु से कुप्रत्यय, निर् के इकार को दीर्घ होता है । कृमिविशेष अर्थ में नीलङ्गु है, सीयार अर्थ भी इसका है, नीलाङ्गु ऐसा भी पाठान्तर है । यहां निपातन प्रयुक्त धातु का दीर्घ है । मूर्ख अर्थ में लगे संगे से कुप्रत्यय धातु के अकार को इत्त्व होता है । लगुशब्द चित्त एवं मूर्ख वाचक है । वररुचिजी ने कहा है—"लगु चित्ते नपुंसकम्" इति ।

३७ मृगय्वादयश्च ।

एते कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । मृगं यातीति मृगयुर्व्याधः । देवयुर्धार्मिकः । मित्रयुर्लोकयात्राभिज्ञः । आकृतिगणोऽयम् ।

मृगयु आदि शब्द कुप्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध होते हैं । मृगयुः = मृगकर्मकयानक्रिया वधार्थ करने वाला बहेलीया = व्याध ।

देवयुः = धार्मिक जन । मित्रयुः = देवताओं की यात्रा विषयक ज्ञानवान् ।

यह आकृति गण है । विश्वकोष में लिखा है कि—

"मृगयुर्ब्रह्मणि ख्यातो गोमायुव्याधयोरपि ।
देवयुर्वाच्यलिङ्गः स्याद् धार्मिके लोकयात्रिके ॥"

यह मेदिनीकार का मत है । आकृतिगण से सिद्ध शब्द—पीलुः, गम्र, द्रुम, काण्ड, परमाणु, प्रसून वे अर्थ इसके हैं विश्वकोश के आधार पर ।

३८ मन्दिवाशिमथिचतिचङ्क्यङ्क्भ्य उरच् ।

मन्दुरा वाजिशाला । वाशुरा रात्रिः । मथुरा । चतुरः । चङ्कुरो रथः । अङ्कुरः । खर्जूरादित्वादङ्कूरोऽपि ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मन्द, वाश, मथ, चत, चङ्क, अङ्क नसे उरच् प्रत्यय होता है। वाजिशाला को 'मन्दुरा' कहते हैं। वाशुरा = रात्रि वाचक है। गदहे को वासुर भी कहते हैं। चतुरः पटुः निपुणः। चङ्कुरः=रथः। अङ्कुरः = खर्जूर आदि अंकूर भी होता है।

३९ व्यथेः सम्प्रसारणं किच्च।

'विथुरश्चोरक्षसोः'।

व्यथ से उरच् प्रत्यय एवं धातु का सम्प्रसारण होता है। विथुर = चौर या राक्षस।

४० मुकुरदर्दुरौ।

मुकुरो दर्पणः। बाहुलकान्मकुरोऽपि। 'दृ विदारणे' धातोर्द्विवचनमभ्यासस्य रुक्टिलोपश्च। 'दर्दुरस्तोयदे भेके वाद्यभाण्डाऽद्रिभेदयोः। दर्दुरा चण्डिकायां स्याद् ग्रामजाले च दर्दरम्', इति विश्वः।

मुकुर एवं दर्दुर वे उरच् प्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध होते हैं। मुकुर का अर्थ है दर्पण। बाहुलक के कारण मकुरः यह भी होता है। मकिमण्डने से उरच्, एवं नलोप, धातु की उपधा को विकल्प से उकारादेश बाहुलक से हुआ।

विदारणार्थक दृ से उरच् धातुका द्वित्व, अभ्यास को रुह टिलोप हुआ।

दर्दुर मेघ में मेढक में वाद्य में भाण्ड में पर्वत विशेष में है। चण्डिका में दर्दुरा ग्रामसमूह में नपुंसक दर्दुरम्। यह विश्वकोषकार का मत है।

४१ मद्गुरादयश्च।

उरजन्ता निपात्यन्ते। माद्यतेर्गुक्। मद्गुरो मत्स्यभेदः। 'कबृ वर्णे' रुमागमः। 'कर्बुरं श्वेतरक्षसोः।' बध्नातेः खर्जूरादित्वादूरोऽपि। 'बन्धूरबन्धुरौ स्यातां नम्रसुन्दरयोस्त्रिषु' इति रन्तिदेवः। 'कोकतेर्वा कुक् च' (ग १९५) कुक्कुरः—कुकुरः।

मद्गुरादि शब्द उरच् प्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध होते हैं। मद से उरच् गुक् मदुरः मत्स्यः कबृ से वर्ण में उरच् रक्-कर्बुरः = श्वेत तथा राक्षस अर्थ है। खर्जूरादि से बन्ध को ऊर भी होता है। बन्धूरः। बन्धुरः। तुम एवं सुन्दरार्थ है एवं तीन लिङ्गक है, यह रन्तिदेव आचार्य की उक्ति है। कुक् धातु से उरच् पर रहते विकल्प से कुक् आगम होता है। कुक्कुरः। कुकुरः।

४२ असेरुरन्।

असुरः। प्रज्ञाद्यण्, आसुरः।

अस् धातु से उरन् प्रत्यय होता है। असुरः। प्रज्ञादि गण में पाठकरण से अण् से आसुरः।

४३ मसेश्च।

पञ्चमे पादे 'मसेरूरन्' इति वक्ष्यते। 'मसूरा मसुरा व्रीहिप्रभेदे पण्ययोषिति' 'मसूरा मसुरा वा ना वेश्यात्रीहिप्रभेदयोः'। 'मसूरी पादरोगे स्यादुपधाने पुनः पुमान्' 'मसूरमसुरौ च द्वौ' इति विश्वः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मस् धातु से उरच् प्रत्यय होता है, पञ्चम पाद में मस् से ऊरन् प्रत्यय भी है। मसूराः का अर्थ धान्यविशेष एवं पण्ययोषित् = वेश्याकोशकारोक्ति :—

"मसूरा मसुरा। वा ना वेश्या व्रीहिप्रभेदयोः"। चरण रोग एवं उपधान-तकीया अर्थ में मसूरी शब्द है वह पुंल्लिंग है।

४४ शावशेराशौ।

'शु' इत्याश्वर्थे। श्वशुरः। 'पतिपत्न्योः प्रसूः श्वश्रूः श्वशुरस्तु पिता तयोः' इत्यमरः।

आशु अर्थ में शु उपपद में रहते प्राप्ति अर्थ में अशूङ् व्याप्तौ से उरन् श्वशुरः। पत्नी या पति के जनक को श्वशुरः कहते हैं। ऊङन्त श्वश्रूः = सास है। पत्नी या पति की माता।

४५ अविमह्योष्टिषच्।

अविषः। महिषः।

अवि और मह धातु से टिषच् प्रत्यय होता है। अविषः। महिषः। राजा या समुद्र में अविषः। महिषः = महान्। महिषी = राजपत्नी। मह पूजायाम् स्त्रीलिङ्ग में ङीप्।

४६ अमेर्दीर्घश्च।

'आमिषं त्वस्त्रियां मांसे तथा स्याद्भोग्यवस्तुनि।'

अम् धातु से टिषच् प्रत्यय होता है एवं पूर्व स्वर को दीर्घ होता है। आमिष शब्द मांस में एवं भोज्य वस्तु में है।

४७ रुहेर्वृद्धिश्च।

'रङ्कुशम्बररौहिषाः'। 'रौहिषो मृगभेदे स्याद्रौहिषं च तृणं मतम्' इति संसारावर्तः।

रुह धातु से टिषच् प्रत्यय होता है। पूर्व स्वर की वृद्धि भी होती है। मृग अर्थ में पुंल्लिङ्ग तृण अर्थ में नपुंसक रौहिष शब्द है। रुह बीजजन्म में एवं प्रादुर्भाव में है। संसारावर्त कोषकार ने कहा है—'रौहिषो मृगभेदे स्याद् रौहिषं च तृणं मतम्। इति।

४८ तवेर्णिद्वा।

'तव' इति सौत्रो धातुः। 'तविष-ताविषावब्धौ स्वर्गे च'। स्त्रियां तविषी-ताविषी नदी देवकन्या भूमिश्च। 'तविषी बलम्' इति वेदभाष्यम्।

रुह् धातु से टिषच् प्रत्यय होता है वह प्रत्यय णित्संज्ञक है। तव धातु सौत्र है। वेद में 'इन्द्रस्य वृत्रस्य तविषीम्' 'इन्द्रस्यात्र तविषीभ्यो विरप्शिन्' तविषः का अर्थ शोभन आकार, बल, समुद्र, व्यवसाय अर्थ है। तविषी = देवकन्या में स्त्रीलिङ्ग है। स्वर्ग एवं समुद्र में पुंल्लिङ्ग वह है। ताविषी = इन्द्रकन्या में है। एवं पुंल्लिङ्ग वह स्वर्ग, समुद्र एवं स्वर्ण में है यह मेदिनीकार का मत है।

४९ नञि व्यथेः।

'अव्यथिषोऽब्धिसूर्ययोः'। अव्यथिषी धरारात्र्योः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नञ् पूर्वक व्यय धातु से टिषच् प्रत्यय होता है। अव्यथिषः = समुद्र एवं सूर्य। अव्यथिषी = पृथ्वी एवं रात्रि।

५० किलेर्बुकच।

किल्बिषम्।

किल् धातु से टिषच् प्रत्यय होता है, एवं उसको बुगागम होता है किल्बिषम् पाप या रोग। किल श्वैत्यक्रीडनयोः। इससे टिषच् धातु को बुगागम होता है। अपराध अर्थ में भी यह किल्बिष शब्द मेदिनीकार मत में प्रयुक्त है।

५१ इषिमदिमुदिखिदिच्छिदिभिदिमन्दिचन्दितिमिमिहिमुहिमुचि-रुचिरुधिबन्धिशुषिभ्यः किरच्।

इषिरोऽग्निः। मदिरा सुरा। 'मुदिरः कामुकाऽभ्रयोः' इति विश्वमेदिन्यौ। खिदिरश्चन्द्रः। 'छिदिरोऽसिकुठारयोः'। भिदिरं वज्रम्। मन्दिरं गृहम्। क्लियामपि। 'मन्दिरं मन्दिरापि स्यात्' इति विश्वः। 'चन्दिरौ चन्द्रहस्तिनौ'। तिमिरं तमोऽक्षिरोगश्च। मिहिरः सूर्यः। 'मुहिरः काम्यसभ्ययोः'। मुचिरो दाता। रुचिरम्। रुधिरम्। बधिरः। शुष शोषणे। शुषिरं छिद्रम्। शुष्कमित्यन्ये।

इष, मद, मुद, खिद, छिद, भिद, मन्द, चन्द, तिम, मिह, मुह, मुच, रुच, रुधिर्, बन्ध, शुष, इन धातुओं से किरच् प्रत्यय होता है। इषिरः = अग्निः। मदिरा = मद्य = सुरा। मुदिरः = कामुक = कामी या मेघ—यह विश्वकोष एवं मेदिनीकोष का मत है। खिदिरः = चन्द्रः। छिदिरः = कुठार एवं तलवार = असिः। भिदुरम् = वज्र। मन्दिरम् = गृह, गृहस्थिता स्त्री में गृहा भी है स्त्रीलिङ्ग में मन्दिरम् या मन्दिरा गृह में है यह विश्वकोश का मत है। चन्दरः = चन्द्र या हस्ती। तिमिरम् = अन्धकार या नेत्ररोग। मिहिरः = सूर्य। मुहिरः = काम्य या सभ्य। मुचिरः = दानक्रिया कर्ता = दाता। रुचिरम् = श्रेष्ठ। रुधिरम् = बधिर। भाषा में बहरा कहते हैं। शुष् से शोषण में प्रत्यय कर शुषिरम् = छिद्र एवं शुष्क अर्थ है।

५२ अशेर्णित्।

'आशिरो वह्निरक्षसोः।

अश् धातु से किरच् होता है वह किरच् णित् होता है। आशिरः = अग्नि या राक्षस।

५३ अजिरशिशिरशिथिलस्थिरस्फिरस्थविरखदिराः।

अजेर्वीभावाऽभावः। अजिरमङ्गणम्। शशेरुपधाया इत्त्वम्। 'शिशिरः स्याद्ऋतोर्भेदे तुषारे शीतलेऽन्यवत्'। श्रथ मोचने, उपधाया इत्त्वं रेफलोपः। प्रत्ययरेफस्य लत्वम्। शिथिलम्। स्थास्फाय्योष्टिलोपः। स्थिरं निश्चलम्। स्फिरं प्रभूतम्। तिष्ठतेर्वुक् ह्रस्वत्वं च। स्थविरः। खदिरः। बाहुलकाच्छीङो वुक् ह्रस्वत्वं च। शिविरम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अजिर, शिशिर, शिथिल, स्थिर, स्फिर, स्थविर, खदिर, ये किरच् प्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध होते हैं। अज को निपातन के कारण वीभाव न हुआ। अजिरम् = आंगन। शश धातु की उपधा को इकार निपातन से हुआ। शिशिरम् = शीतऋतु, तुषार एवं शीतल। मोचनार्थक अथ की उपधा के स्थान में निपातन प्रयुक्त इकारादेश होता है एवं रेफ का लोप, प्रत्यय का रेफ के स्थान में लकार होता है, शिथिलम्। स्था एवं स्फा की टिसंज्ञक का लोप होता है, स्थिरम् = निश्चल। स्फिरम् = अधिक प्रभूत। स्था से किरच् धातु को वुक् का आगम होता है। स्थविरः खदिरः = वृक्षविशेष। शाक में खदिरी स्त्रीलिङ्ग है। चन्द्र में पुंल्लिङ्ग, एवं दन्तधावन में भी पुंल्लिङ्ग यह है। शीङ् से बाहुलक प्रयुक्त वुक् आगम एवं ह्रस्वत्व होता है। शिविरम् = राजा के सैनिक जहां निवास करते हैं वह स्थान। "निवेशः शिविरं षण्ढे" यह अमरकोषकार का मत है।

५४ सलिकल्यनिमहिभडिभण्डिशण्डिपिण्डितुण्डिकुकिभूभ्य इलच्।

सलति गच्छति निम्नमिति सलिलम्। कलिलम्। अनिलः। महिला। पृषोदरादित्वान्महेलाऽपि। भड इति सौत्रो धातुः। 'भडिलौ शूरसेवकौ'। भण्डिलो दूतः कल्याणं च। शण्डिलो मुनिः। पिण्डिलो गणकः। तुण्डिलो मुखरः। कोकिलः। भविलो भव्यः। बाहुलकात्कुटिलः।

सल, कल, अन, मह, भडि, भण्ड, शण्ड, पिण्ड, तुण्ड, कुक, भू, इनसे इलच् प्रत्यय होता है। षल गतौ, निम्न प्रदेश में गमनकर्तृ जल में सलिलम्। कलिलम् = गहन एवं मिश्र। यह अमरकोषकार का मत है। अनिलः = वायुः। महिला = फलयुक्ता या स्त्री। पृषोदरादित्व प्रयुक्त फलयुक्त प्रियङ्गु को फलिनी कहते हैं। महेला भी हुआ, इसका प्रयोग दमयन्ती को अधिकृत कर किया हुआ महाकाव्य में प्रयोग है। यथा—"परमहेलारतोऽन्यपरदारिकः" यहां परस्य महेला = स्त्री, अथवा परमा हेला = क्रीडा उत्कृष्ट क्रीडायां रत इत्यर्थः। प्रथम श्रीहर्ष ने विरोधाभास का प्रदर्शन किया कि राजा अन्य की स्त्री में रत है, तदनन्तर उसका परिहार किया कि उत्कृष्ट क्रीडा में रत वह है, कवि का पाण्डित्य प्रशंसनीय है। पद्म का अर्थ उपानह् जूता एवं कमल किया है कवि ने पैरों की शोभा जूता से होती है। मंडिलः = सौत्र भड धातु यहां है, शूर वीर एवं सेवक = भृत्य में इसका प्रयोग है। मण्डिल का अर्थ = दूत एवं कल्याण है। शण्डिलः = मुनिविशेष। पिण्डिलः = गणक। तुण्डिलः = मुखर = अधिक बोलने वाला। कोकिलः प्रसिद्ध है। भविलः = उत्पन्न होने वाला भव्यः = श्रेष्ठ। बहुलग्रहण का सम्बन्ध से कुटिलः यह भी हुआ।

५५ कमेः पश्च।

कपिलः।

कम् धातु से इलच् प्रत्यय होता है एवं मकार के स्थान में पकारादेश होता है। कपिलः = रेणुका में, शिंशपा वृक्ष में एवं गोविशेष में है।

५६ गुपादिभ्यः कित्।

गुपिलो राजा। तिजिलो निशाकरः। गुहिलं वनम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुपादि धातुओं से इलच् होता है, यह प्रत्यय कित् है। गुपिलः = राजा, तिजिलः = चन्द्रमा, गुहिलम् = वन।

५७ मिथिलादयश्च।

मथ्यन्तेऽत्र रिपवो मिथिला नगरी। पथिलः—पथिकः।

मिथिलादि शब्द में इलच् प्रत्ययान्त निपातित है। जहां शत्रुओं का मथन किया जाता है वह नगरी मिथिला। पथिलः = पथिक। गतिला = वेत्रलता। तकिला = अवधिः। चण्डिला = नदी। आदि।

५८ पतिकठिकुठिगडिगुडिदंशिभ्यः एरक्।

पतेरः पक्षी गन्ता च। कठेरः कृच्छ्रजीवी। कुठेरः पर्णाशः। बाहुलकान्नुम्न। गडेरो मेघः। गुडेरो गुडकः। दंशेरो हिंस्रः।

गत्यर्थक पत्लृ, कृच्छ्र जीवनार्थक कठ एवं कुठि, सेचनार्थक गड, रक्षार्थक गुड, दंशनार्थक दंश इन धातुओं से एरक् प्रत्यय होता है। पतेरः = पक्षी एवं गमन क्रिया कर्ता। कठेरः = कष्ट से जीवन व्यतीत करनेवाला। कुठेरः = पर्णों को खाने वाला = पत्ते खाने वाला। बहुल ग्रहण के सम्बन्ध से नुम् का अभाव हुआ जो इदित् लक्षण प्राप्त था। गडेरः = मेघः। गुडेरो = गुडकः। दंशिरः = हत्यारा = हिंस्रः।

५९ कुम्बेर्नलोपश्च।

कुबेरः।

कुम्बधातु से एरच् प्रत्यय होता है एवं धातु का नकार लोप। कुबेरः = देवताओं का खजानची उसको निधिपति या मनुष्यधर्मा भी कहते हैं, देवताओं को डाढी एवं मूछ नहीं उत्पन्न होती केवल कुबेर को ही दाढी एवं मूछ है। इसलिए वे मनुष्यधर्मा नाम से पुकारे जाते हैं, देवताओं के चित्र में जो डाढी एवं मूछ का चित्रकार अनुकरण करते हैं वह गलत क्रम है। मूलवस्तु जो अनुकार्य है उसमें जो वस्तु का अत्यन्ताभाव है वह वस्तु अनुकरण में नहीं आ सकती है।

६० शदेस्त च।

शतेरः शत्रुः।

शद धातु से एरक् होता है एवं दकार को तकार होता है। शतेरः = शत्रु अर्थ है।

६१ मूलेरादयः।

एरगन्ता निपात्यन्ते। मूलेरो जटा। गुधेरो गोप्ता। गुहेरो लोहघातकः। मुहेरो मूर्खः।

मूलेर आदि एरच् प्रत्ययान्त निपातित है। मूलेरः = जटा। गुधेरः = रक्षक। गुहेरः = लोहे से मारने वाला। मुहेरः = मूर्ख।

६२ कपेर्होतः पश्च।

कपोतः पक्षी।

कप् धातु से ओतच् प्रत्यय होता है एवं पकार को पकारादेश। कपोतः = पक्षी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६३ भातेर्डवतुः ।

भातीति भवान् ।

भा धातु से डवतु प्रत्यय होता है, सुशोभित होने वाला भवान् यह यौगिक अर्थ है ।

६४ कठिचकिभ्यामोरन् ।

कठोरः । चक्रोरः ।

कठ एवं चक से ओरन् प्रत्यय होता है । कठोरः । चक्रोरः ।

६५ किशोरादयश्च ।

किंपूर्वस्य शृणातेष्टिलोपः किमोऽन्त्यलोपः । किशोरोऽश्वशावः । सहोरः साधुः ।

किशोर आदि शब्द ओरन् प्रत्ययान्त निपातित है । किम् उपपदक शृ धातु से ओरन् एवं टिलोप का निपातन एवं किम् के मकार का लोप । किशोरः = अश्वशावक । सहोरः = साधु ।

६६ कपिगडिगण्डिकटिपटिभ्य ओलच् ।

कपीति निर्देशान्नलोपः । कपोलः । गडोलगण्डोलौ गुडकपर्यायौ । कटोलः कटुः । पटोलः ।

कपि, गड, गडि, कटे, इनसे पर ओलच् होता है । कपि-निर्देश बल से नकार का लोप है कपोलः । गडोलः । गण्डोलः । वे गुडक के समानार्थक है । कटु अर्थ में कटोल । पटोलः = वस्त्र में, पुंश्चिह्न औषधि में, ज्योत्स्ना में एवं योषित् में भी है ।

६७ मीनातेरूरन् ।

मयूरः ।

मी धातु से ऊरन् प्रत्यय होता है । मोर अर्थ में मयूरः ।

६८ स्यन्देः सम्प्रसारणं च ।

सिन्दूरम् ।

स्यन्द धातु से ऊरन् प्रत्यय एवं धातु को सम्प्रसारण होता है ।

६९ सितनिगमिमसिसच्यविधाञ्क्रुशिभ्यस्तुन् ।

सिनोतीति सेतुः । 'तितुत्र—' (सू. ३१६३) इति नेट् । तन्तुः । गन्तुः । मस्तु दधिमण्डम् । सच्यत इति सक्तुः । अर्घर्चादिः । 'ज्वरत्वर—'(सू. २६५४) इत्यूठ् । तत्र क्ङितीत्यनुवर्तत इति मते तु बाहुलकात् । ओतुर्बिडालः । धातुः । क्रोष्टा ।

षिञ् बन्धने, तनु विस्तारे, गम्लृ गतौ, मसी परिणामे, यच समवाये, अव रक्षणादौ, डुधाञ् धारणपोषणयोः, क्रुश आक्रोशे, इन धातुओं से तुन् प्रत्यय होता है । सेतुः = पुल = नीव ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तन्तुः यहां 'तितुत्र' से इडागमाभाव है। गन्तुः। मस्तु = दधिमण्ड। सक्तुः। अर्धर्चादि है। ओतुः—'ज्वरत्वर' से ऊठ् हुआ, इस सूत्रमें यदि क्ङिति की अनुवृत्ति है तो वाहुलक के सामर्थ्य से ऊठ् हुआ। विडाल अर्थ ओतुः। धातुः। क्रोष्टा।

७० पः किच्च।

पिबतीति पितुः। 'पितुर्वह्नौ दिवाकरे'।

पा धातु से तुन् प्रत्यय होता है, इसमें तुन् कित है। पितुः = अग्नि या सूर्य।

७१ अर्तेश्च तुः।

अर्तेस्तुः स्यात् स च कित्। 'ऋतुः स्त्रीपुष्पकालयोः'।

ऋ धातु से तु प्रत्यय एवं वह कित् है। ऋतुः शब्द स्त्रीलिङ्ग है। वसन्तादि ऋतुओं में या स्त्री के मासिक धर्म समय यह प्रयुक्त होता है।

७२ कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च।

एभ्यस्तुः स्यात्। 'कन्तुः कन्दर्पचित्तयोः'। मन्तुरपराधः। 'जन्तुः प्राणी। 'गातुः पुंस्कोकिले भृङ्गे गन्धर्वे गायनेऽपि च।' भातुरादित्यः। रक्षसि क्लीबम्। हेतुः कारणम्।

कमु कान्तौ, मन ज्ञाने, जनी प्रादुर्भावे, गै शब्दे, भा दीप्तौ, या प्रापणे, हि गतौ वृद्धौ च इन धातुओं से तु प्रत्यय होता है। कामदेव एवं चित्त में कन्तुः। अपराध में मन्तुः। प्राणी से अन्तुः। पुंस्त्वजातीय कोयल में, भ्रमर में, गन्धर्व में, गायन में गातुः। आदित्य में भातुः। मार्ग-कर्मक गमनकर्ता में या काल में यातुः। राक्षस अर्थ में यातु नपुंसक है। हेतुः = कारण।

७३ चायः किः।

'केतुर्ग्रहपताकयोः।'

चाय् धातु से तु प्रत्यय होता है, एवं चाय् को की आदेश होता है। केतु = गृह या पताका = ध्वज।

७४ आप्नोतेर्ह्रस्वश्च।

अप्तुः शरीरम्।

आप् से तु प्रत्यय होता है पूर्व स्वर का ह्रस्व होता है। अप्तुः = शरीर।

७५ वसेस्तुन्।

वस्तु।

वस् धातु से तुन् प्रत्यय होता है। वस्तु।

७६ अगारे णिच्च।

'वेश्मभूर्वास्तुरस्त्रियाम्'।

गृह अर्थ में वस् से तुन् प्रत्यय होता है वह तुन् णित् है। वास्तुः—निवासार्थ गृह यह स्त्री लिङ्ग नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

७७ कृञः कतुः ।

क्रतुर्यज्ञः ।

कृञ् धातु से कतु प्रत्यय होता है । यज्ञ अर्थ में क्रतुः = यज्ञः ।

७८ एधिवह्योश्च तुः ।

एधतुः पुरुषः । वहतुरनड्वान् ।

एध एवं वह् से तु प्रत्यय होता है । एधतुः पुरुष । वहतुः = वृष ।

७९ जीवेरातुः ।

'जीवातुरस्त्रियां भक्ते जीविते जीवनौषधे' ।

जीव से आतु प्रत्यय होता है । जीवातुः = भक्त, जीवित, जीवनोपयुक्त औषध में । यह पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक लिङ्ग है ।

८० आतृकन्वृद्धिश्च ।

जीवेरित्येव । 'जैवातृकस्त्विन्दुभिषगायुष्मत्सु कृषीवले' ।

जीव धातु से आतृकन् प्रत्यय होता है, एवं धातु स्वर की वृद्धि होती है । जैवातृकः = चन्द्रमा, भिषक्, आयुष्मत, कृषीवल ।

८१ कृषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः ।

'कर्षूः पुंसि करीषाग्नौ कर्षूर्नद्यां स्त्रियां मता' । चमूः । तनूः । धनूः शस्त्रम् । सर्ज सर्जने, सर्जूर्वणिक् । खर्ज व्यथने, खर्जूः पामा ।

कृष विलेखने, चमु अदने, तनु विस्तारे, धन धान्ये, सर्ज सर्जने, खर्ज व्यथने इन धातुओं से ऊ प्रत्यय होता है । कर्षूः = सूखे गोबर के कण्डे की अग्नि इस अर्थ में यह पुंल्लिङ्ग है, नदी में यह स्त्रीलिङ्ग है । चमूः = सेना । तनूः = शरीर । धनूः = शस्त्र । सर्जूः = वैश्य । खर्जूः = खुजली ।

८२ मृजेर्गुणश्च ।

मर्जूः शुद्धिकृत् ।

मृज् धातु से ऊ प्रत्यय होता है एवं धातु को गुण होता है । मर्जूः = शुद्धि करने वाला कारक पदार्थ ।

८३ वहो धश्च ।

'वधूर्जायास्नुषास्त्रीषु' ।

वह से ऊप्रत्यय एवं हकार धकार होता है । वधूः = जाया, एवं स्नुषा यह स्त्रीलिङ्ग है । जिसमें पुनः पुत्ररूप से अवतीर्ण पति होता है उसे जाया कहते हैं, पिता ही पुत्र रूप से प्रकट होता है, "आत्मा वै पुत्रनामासि" यह श्रुतिवचन है ।

८४ कषेश्छश्च ।

कच्छूः पामा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कष् से उप्रत्यय एवं धातु के अन्त्य को छ होता है। कच्छूः = पामा = खुजली = दाद।

८५ णित्कसिपद्यर्तेः।

कासूः शक्तिः। 'पादूश्चरणधारिणी'। आरूः पिङ्गलः।

कस, पद, ऋ इनसे ऊप्रत्यय एवं वह णित् होता है। कासूः = शक्ति। पादूः = खडाऊ या जूता। आरूः = पिङ्गल।

८६ अणो डश्च।

आडूर्जलप्लवद्रव्यम्।

अण् से ऊ प्रत्यय, धातु के णकार को डकारादेश होता है। आडूः = जल में पौड़ने का साधन।

८७ नञि लम्बेर्नलोपश्च।

'तुम्ब्यलाबूरुभे समे' इत्यमरः।

नञ् पूर्वक लम्ब धातु से ऊ प्रत्यय, धातु-नकार का लोप होता है। अलाबूः = तुम्बी।

८८ के श्र एरङ् चाऽस्य।

कशब्दे उपपदे शृणातेरूः स्यात्। एरङादेशः। 'कशेरूस्तृणकन्दे स्त्री'। बाहुलकादुप्रत्यये कशेरुः। क्लीबे पुंसि च।

क शब्द पूर्वक शृ से ऊ प्रत्यय, एवं एरङ् आदेश होता है। कशेरुः = स्त्रीलिङ्ग तृणकन्द। बाहुलक से उप्रत्यय भी हुआ कशेरुः। यह पु० एवं नपुंसक लिङ्ग है।

८९ त्रो दुट् च।

तरतेरूः स्यात्तस्य दुट्। 'तर्दूः स्याद्दारुहस्तकः'।

तृ धातु से ऊप्रत्यय, प्रत्यय को दुट् का आगम तर्दूः = लकड़ी की कड़छी।

९० दरिद्रातेर्यालोपश्च।

इश्च आश्च यौ तयोर्लोपः। दर्द्रूः कुष्ठप्रभेदः।

दरिद्रा धातु से ऊप्रत्यय एवं धातु के इकार और आकार का लोप होता है। दर्द्रुः = कुष्ठ रोग।

९१ नृतिशृध्योः कूः।

नृतूर्नर्तकः। शृधूरपानम्।

नृति एवं शृधि से कू प्रत्यय होता है। नृतूः = नर्तक। शृधूः = अपान।

९२ ऋतेरम् च।

ऋतिः सौत्रो धातुः। ततः कूरमागमश्च। रन्तूर्देवनदी सत्यवाक् च।

ऋति सौत्र धातु है, ऋ धातु से कूप्रत्यय एवं अमागम होता है। रन्तूः = देवनदी। या सत्यवाक्य।

९३ अन्दूदम्भूजम्बूकफेलूकर्कन्धूदिधिषूः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एते कूप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। अन्दूर्बन्धनम्। दृभी ग्रन्थे, निपातनान्नुम्। दृम्भूः। अनुस्वाराऽभावोऽपि निपातनादित्येके। दृन्भूः। जनेर्बुक्-जम्बूः। जमु अदने, इत्यस्येत्येके। बाहुलकाद्ध्रस्वोऽपि। जम्बुः। कफं लाति कफेल्लुः श्लेष्मातकः। निपातनादेत्त्वम्। कर्कं दधाति कर्कन्धूर्बदरी। निपातनान्नुम्। दिधिं धैर्यं स्यति त्यजतीति दिधिषूः पुनर्भूः। केचित्तु 'अन्दूदृम्भूजम्बूकम्बू' इति पठन्ति। 'दृम्फ उत्क्लेशे' दृम्फूः सर्पजातिः। 'कमेर्बुक्'। कम्बूः परद्रव्यापहारी।

अन्दू, दम्भू, जम्बू, कफेल्लु, कर्कन्धू, दिधिषू वे कूप्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध होते हैं। अदि बन्धने कूप्रत्यय अन्दूः=बन्धन। दृभी ग्रन्थे कूप्रत्यय निपातन से नुम्। दृम्भूः अनुस्वाराभाव-निपातन से यह भी किसी का मत है। सन्दर्भकर्ता या कथक। जन् से कूप्रत्यय बुक् का आगम होता है। जम्बूः। जमु का अर्थखाना है। कूप्रत्यय बुक् का आगम। ऐसा भी मत है। ह्रस्वान्त भी है जम्बुः। कफ को लानेवाला=कफेलुः श्लेष्मातक। निपातन से एकार हुआ। कर्कन्धूः=बेर। बदरीफलम्। यहां निपातन से नुम् है। धैर्य को त्याग करने वाला दधिषूः=पुनर्भूः। कोई कोई अन्दू दम्फू, जम्बू कम्बू ऐसा पाठ मानते हैं। दम्फूः=सर्पत्व जातिः। कम् से ऊप्रत्यय होता है कम्बूः=परद्रव्यापहारी।

९४ मृग्रोरुतिः।

मरुत्। गरुत्पक्षः।

मृ एवं गृ धातु से उतिप्रत्यय होता है। वायु अर्थ में मरुत्। पक्ष अर्थ में गरुत्।

९५ ग्रो मुट् च।

गिरतेरुतिस्तस्य च मुट्। गर्मुत् सुवर्णं लताविशेषश्च।

गृ धातु से उप्रत्यय होता है एवं प्रत्यय को मुट् आगम होता है। गर्मुत्=सुवर्ण अथवा घास=तृण विशेष।

९६ हृषेरुलच्।

'हर्षुलो मृगकामिनोः'। बाहुलकाच्चटतेः। चटुलं शोभनम्।

हृष् से उलच् प्रत्यय होता है। हर्षुलः=मृग या कामुक=कामी। बाहुल से चट् धातु से भी उलच् होता है। चटुलम्=शोभनम् सुन्दरम्।

९७ हृसृरुहियुषिभ्यः इतिः।

'हरित्ककुभि वर्णे च तृणवाजिविशेषयोः'। सरिन्नदी। 'रोहित् मृगविशेषस्य स्त्री'। युष इति सौत्रो धातुः। 'ऋश्यस्य रोहित् पुरुषस्य योषित्' इति भाष्यम्।

हृ, सृ, रुह, युष, इति प्रत्यय होता है। हरित्=दिक्=दिशा, वर्ण, तृण, वाजि, विशेष नदी=सरित्। मृगविशेष की पत्नी=स्त्री रोहित्। मनुष्यजातीय स्त्री योषित्। सूत्रजात युष धातु है। यह प्रयोग स्त्री में होता है यह भाष्यमत है मनुष्यपत्नी योषित्।

९८ ताडेर्णिलुक् च।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताडयतीति तडित्।

ताड धातु से इति प्रत्यय होता है एवं णिप्रत्यय लुक् होता है। तडित् = बिजली।

९९ शमेर्दः।

बाहुलकादित्संज्ञा एयादेशः इट् च न। 'शण्ढः स्यात्पुंसि गोपतौ'। शण्ढः क्लीबः।

शम् धातु से ढप्रत्यय होता है। बाहुल से इत्संज्ञा, का अभाव एयादेश का अभाव एवं इडागम का अभाव होता है। शण्ढः। अर्थ इसका नपुंसक या स्वेच्छाचारी बैल है।

१०० कमेरठः।

कमठः। 'कमठः कच्छपे पुंसि भाण्डभेदे नपुंसकम्' इति मेदिनी। बाहुलकाज्जरठः।

कम् धातु से अठ प्रत्यय होता है। कमठः = कच्छप अर्थ में पुंल्लिङ्ग है। बरतन विशेष में नपुंसकलिङ्ग यह है। यह मेदिनी कोषकार का मत है। वृद्धार्थक जरठः इसकी सिद्धि भी इसीसे बहुल ग्रहण से होता है।

१०१ रमेर्वृद्धिश्च।

रामठं हिङ्गु।

रम् से अठ प्रत्यय होता है एवं अकार की वृद्धि हुई। रामठम् = हिङ्ग = हिंगु।

१०२ शमेः खः।

शङ्खः।

शम् धातु से खप्रत्यय होता हैं। शंखः।

१०३ कणेष्ठः।

कण्ठः।

कण धातु से ठप्रत्यय होता है। कण्ठः।

१०४ कलस्तृपश्च।

तृपतेः कलप्रत्ययः, चात्तृफतेः। तृपला लता। 'तृफला तु फलत्रिके'।

तृप् धातु से कल प्रत्यय होता है। चकार से तृफ से भी कल होता है। तृपला = लता। तृफला = तीनफल = हर, बहेड़ा, आमला।

१०५ शपेर्बश्च।

शबलः।

शप् धातु से कल प्रत्यय होता है, पकार के स्थान में बकार होता है। शबलः।

१०६ वृषादिभ्यश्चित्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृषलः। पललम्। बाहुलकाद् गुणः। सरलः। तरलः। 'कमेर्बुक् च' (गण १६६) कम्बलः। मुस खण्डने, मुसलम्। 'लङ्गेर्वृद्धिश्च'। (गण १६७) लाङ्गलम्। 'कुटिकशिकौतिभ्यः प्रत्ययस्य मुट् च' (गण १६८) कुट्मलः। कुडेरपि। कुड्मलः। कश्मलम्। बाहुलकाद् गुणः। कोमलम्।

वृषादि धातुओं से कल प्रत्यय होता है यह प्रत्यय चित् है। वृषलः। पललम्। बाहुलक से गुण सरलः। तरलः = पूतिकाष्ठे·····आदि मेदिनी।

"सरला विरलायन्ते घनायन्ते किल द्रुमाः।
न शमी न च पुन्नागा अस्मिन् संसारकानने" ॥ १ ॥

यह शिष्टों की उक्ति है।

तरलः। कम से कल प्रत्यय होता है एवं बुक् का आगम। कम्बलः। मुसलम्। मुस खण्डने धातु है। लङ्ग से कल प्रत्यय एवं वृद्धि लाङ्गलम्। कुट, कश, कु से कल प्रत्यय एवं मुट् का आगम होता है। कुट्मलः। कुड से कल प्रत्यय होता है। कुड्मलः। कश्मलम। बहुल से गुण कोमलम्।

१०७ मृजेलिष्टोपश्च।

मलम्।

मृज् धातु से कल प्रत्यय होता है एवं टि का लोप होता है। मलम्।

१०८ चुपेरच्चोपधायाः।

चपलम्।

चुपेरच्चोपधायाः। चपलम्।

चुप् से कल प्रत्यय एवं धातु की उपधा को अत् होता है। चपलम्।

१०९ शकिशम्योर्नित्।

शकलम्। शमलम्।

शक एवं शम से कल प्रत्यय एवं यह प्रत्यय नित् है। शकलम्। शमलम्।

११० छो गुग्ह्रस्वश्च।

छगलः। प्रज्ञादित्वाच्छागलः।

छो धातु से कल प्रत्यय होता है, एवं गुक् आगम एवं ह्रस्व होता है। छगलः। प्रज्ञादि से अण् छागलः।

१११ अमन्ताड्डः।

दण्डः। रण्डा। खण्डः। मण्डः। वण्डः छिन्नहस्तः। अण्डः। बाहुलकात्सत्वाऽभावः। षण्डः संघातः। तालव्यादिरित्यपरे। शण्डः। पण्डः। चण्डः। पण्डः क्लीबः। पण्डा बुद्धिः।

अम् अन्त में रहे वैसे धातुओं से उत्तर डप्रत्यय होता है। दण्डः। रण्डा। खण्डः। मण्डः। वण्डः = छिन्नहस्तः। अण्डः। षण्डः। बाहुलक से सत्वाभाव है। षण्डः = संघातः। कोई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तालव्य शकारादि है ऐसा कहते हैं। शण्डः। गण्डः। चण्डः। पण्डः = क्लीव। सद् असद् विषयक विचार करने वाली बुद्धि में पण्डा = सदसद्विवेकिनी बुद्धिः पण्डा, सा संजाता अस्य इति पण्डितः।

११२ कादिभ्यः कित्।

कवर्गादिभ्यो डः कित् स्यात्। कुण्डम्। काण्डम्। गुड्, गुडः। घुण भ्रमणे, घुण्डो भ्रमरः।

कवर्गादि धातुओं से डप्रत्यय होता है एवं यह डप्रत्यय कित् है। कुण्डम्। काण्डम्। गुडः। घुण भ्रमणे से डप्रत्यय घुण्डः = भ्रमरः।

११३ स्थाचतिमृजेरालज्वालजालीयचः।

तिष्ठतेरालच्। स्थालम्-स्थाली। चतेर्वालञ्। चात्वालः। मृजेरालीयच्। मार्जालीयो बिडालः।

स्था से आलच्, स्थालम् = स्थाली। चत से वालञ्, चात्वालः। मृज से आलीयच्, मार्जालीयः = बिडालः।

११४ पतिचण्डिभ्यामालञ्।

पातालम्। चण्डालः। प्रज्ञादित्वादणि चाण्डालोऽपीत्येके।

पति एवं चडि से आलञ् होता है। पातालम्। चण्डालः। प्रज्ञादित्व के कारण अण् से चाण्डालः।

११५ तमिविशिविडिमृणिकुलिकपिपलिपञ्चिभ्यः कालन्।

तमालः। विशालः। बिडालः। मृणालम्। कुलालः। कपालम्। पलालम्। पञ्चालाः।

तम, विश, विड, मृण, कुल, कप, पल, पञ्चि इनसे कालन् प्रत्यय होता है। तमालः। विशालः। बिडालः। मृणालम्। कुलालः। कपालम्। पलालम्। पञ्चालाः।

११६ पतेरङ्गच् पक्षिणि।

पतङ्गः।

पत धातु से अङ्गच् प्रत्यय होता है पक्षि अर्थ में। पतङ्गः।

११७ तरत्यादिभ्यश्च।

तरङ्गः। लवङ्गम्।

तॄ आदि धातुओं से अङ्गच् प्रत्यय होता है। तरङ्गः। लवङ्गम्।

११८ बिडादिभ्यः कित्।

बिडङ्गः। मृदङ्गः। कुरङ्गः। बाहुलकादुत्वं च।

बिडादि धातुओं से अङ्गच् प्रत्यय कित् होता है। बिडङ्गः। मृदङ्गः। उत्व भी बाहुलकसे होकर कुरङ्गः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

११९ सृवृभोर्धृद्धिश्च ।

सारङ्गः । वारङ्गः खड्गादिमुष्टिः ।

सृ एवं वृञ् से अङ्गच् प्रत्यय होता है एवं धातु के अच् की वृद्धि भी होती है । सारङ्गः । वारङ्गः खड्गादि मुष्टिः ।

१२० गन्गम्यद्योः ।

गङ्गा । अद्गः पुरोडाशः ।

गम् एवं अद्धातु से गन् प्रत्यय होता है । गङ्गा । अद्गः = पुरोडाशः ।

१२१ छापूखडिभ्यः कित् ।

छागः । पूगः । खड्गः । बाहुलकात् 'षिड अनादरे' गन्सत्वाभावश्च । षिड्गस्तरलः । 'षिड्गैरगद्यत ससम्भ्रममेवमेका' इति माघः ।

छा, पू, खडि इनसे गन् प्रत्यय होता है, एवं यह गन् कित् है । छागः । पूगः । खड्गः । षिड्गः यहां बहुल ग्रहण से तिरस्कार अर्थ में षिट् से गम् प्रत्यय एवं सत्वाभाव है । तरलः = षिड्गः । चञ्चल पुरुष से कोई स्त्री सम्भ्रम के साथ इस प्रकार बोली गई । यह माघकवि की उक्ति है ।

१२२ भृञः क्विन्नुट् च ।

भृञो गन्कित्स्यात्तस्य नुट् च । 'भृङ्गाः षिड्गालिधूम्याटाः' ।

भृञ् से गन् प्रत्यय होता है । वह प्रत्यय कित् है एवं उसको नुट् का आगम होता है । भृंगाः षिड्गाः ।

१२३ शृणातेर्ह्रस्वश्च ।

शृङ्गम् ।

शृधातु से गन् प्रत्यय होता है, उसको नुट् का आगम होता है, एवं शृ का ह्रस्व । शृङ्गम् ।

१२४ गण्शकुनौ ।

नुट् चेत्यनुवर्तते । शार्ङ्गः ।

शकुनि अर्थ में गृ से गन् प्रत्यय, नुट् का आगम होता है । शार्ङ्गः ।

१२५ मुदिग्रोर्गग्गौ ।

मुद्गः । गर्गः ।

मुद् एवं गृ से गक् एवं ग प्रत्यय होता है । मुद्गः । गर्गः ।

१२६ अण्डन्कृसृभृवृञः ।

करण्डः । सरण्डः पक्षी । भरण्डः स्वामी । वरण्डो मुखरोगः ।

कृ, सृ, भृ, वृञ् धातु से अण्डन् प्रत्यय होता है । करण्डः । सरण्डः = पक्षी । भरण्डः = स्वामी । वरण्डो मुखरोगः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१२७ शृदृभसोऽदिः ।

शरत् । 'दरद्धृदयकूलयोः' । भसज्जघनम् ।

शृ, दृ, भस् से अदि प्रत्यय होता है वह डित् है । शरत् । दरत् हृदय या कूल, भसत् = जघन ।

१२८ दृणातेः षुग्घ्रस्वश्च ।

दृषत् ।

दृ धातु से अदि प्रत्यय होता है, षुक् का आगम होता है । यथा दृषत् ।

१२९ त्यजितनियजिभ्यो डित् ।

त्यद् । तद् । यद् । सर्वादयः ।

त्यज्, तन्, यज् से अदि प्रत्यय होता है, वह डित् है । त्यद् । तद् । यद् । ये सर्वादि है ।

१३० एतेस्तुट् च ।

एतद् ।

इण् से अति प्रत्यय एवं तुट् का आगम होता है । एतद् ।

१३१ सर्तेरटिः ।

'सरट् स्याद्वातमेघयोः' । वेदभाष्ये तु 'याभिः कृशानुम्' इति मन्त्रे सरड्भ्यो मधुमक्षिकाभ्यः' इति व्याख्यातम् ।

सृ से अटि प्रत्यय होता है । सरट् । इसका अर्थ वायु एवं मेघ है । वेदभाष्य में सरट् का मधुमक्खियाँ ऐसी व्याख्या है ।

१३२ लङ्घेर्नलोपश्च ।

लघट् वायुः ।

लङ्घ धातु से अटि प्रत्यय नकार का लोप होता है । लघट् = वायुः ।

१३३ पारयतेरजिः ।

पारक् सुवर्णम् ।

पारि धातु से अजि प्रत्यय होता है । पारक् = सुवर्ण ।

१३४ प्रथः कित्सम्प्रसारणं च ।

पृथक् । स्वरादिपाठादव्ययत्वम् ।

प्रथ से अजि प्रत्यय होता है वह कित् है, एवं धातु का सम्प्रसारण होता है । पृथक् यह स्वरादित्व प्रयुक्त अव्यय है ।

१३५ भियः षुग्घ्रस्वश्च ।

भिषक् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी धातु से अजि प्रत्यय होता है, धातु को पुक् का आगम होता है, एवं ह्रस्व भी होता है। भिषक्।

१३६ युष्यसिभ्यां मदिक्।

युष्, सौत्रो धातुः। युष्मद्। अस्मद्। त्वम्। अहम्।

युष एवं अस् से मदिक् प्रत्यय होता है। सूत्रपठित युष् धातु है। युष्मद्। अस्मद्। त्वम्। अहम्।

१३७ अर्तिस्तुधुहुसृधृक्षिक्षुभायावापदियक्ष्मनीभ्यो मन्।

एभ्यश्चतुर्दशभ्यो मन्। अर्मश्चक्षूरोगः। स्तोमः संघातः। सोमः। होमः। सर्मो गमनम्। धर्मः। क्षेमं कुशलम्। क्षोमम्। प्रज्ञाद्यणि क्षौमं च। भामः आदित्यः। यामः। 'वामः शोभनदुष्टयोः'। पद्मम्। यक्ष पूजायाम्, यक्ष्मो रोगराजः। नेमः।

ऋ, स्तु, सु, हु, सृ, धृ, क्षि, क्षु, भा, या, वा, पद, यक्ष, नी, इनसे मन् प्रत्यय होता है। अर्म्मः = नेत्ररोग। स्तोमः = समूहः। सोमः। होमः। सर्म्मः = गमनम्। धर्म्मः। क्षेमम् = कुशलम्। क्षोमम्। प्रज्ञादिप्रयुक्त अण् = क्षौमम्। भामः = सूर्यः। यामः = पहर। शोभन या दुष्ट अर्थ में वामः। पद्मम्। पूजार्थक यक्ष से मन् यक्ष्मः राजरोगः। क्षयरोग असाध्य रोग है। रोगाणां राजयक्ष्मा इव यह प्रयोग माघ में आया है शिशुपाल के वर्णन में। नेमः = अर्ध अर्थ मे।

१३८ जहातेः सन्वदालोपश्च।

'जिह्मः कुटिलमन्दयोः'।

ओहाक् धातु से मन् प्रत्यय होता है। एवं प्रत्यय सन्वत् होता है एवं आकार का लोप भी होता है। मन्द या कुटिल अर्थ में जिह्मः।

१३९ अवतेष्टिलोपश्च।

मन्प्रत्ययस्यायं टिलोपो न प्रकृतेः। अन्यथा डिदित्येव ब्रूयात्। 'ज्वरत्वर—'(सू. २६५४) इति ऊठौ। तयोर्दीर्घे कृते गुणः। चादिपाठादव्ययत्वमित्युज्ज्वलदत्तः। तन्न, तेषामसत्त्वार्थत्वात्। वस्तुतस्तु स्वरादिपाठादव्ययत्वम्। अवतीति ओम्।

अव धातु से मन् प्रत्यय होता है। एवं मन् प्रत्यय को जो टि उसका ही लोप होता है, धातु को टि का लोप नहीं होता है। यदि धातु की टि का लोप इष्ट होता तो प्रत्यय को टित्व बाध न करते। 'ज्वरत्वरं' सूत्र से उपधा एवं वकार को ऊठ् आदेश होता है। बाद में दीर्घ के बाद गुण हुआ। चादिगण में पाठ से अव्यय है यह उज्ज्वलदत्ताचार्य का मत है। असत्त्वार्थक के कारण यह कथन ठीक नहीं है। स्वरादिपाठ प्रयुक्त ही यहां अव्ययत्व वास्तविक है। ओम् = रक्षक वेदमयी सर्ववाणी में श्रेष्ठ ओम्कार एव सर्वा वाक् प्रणवस्वरूप भागवत के एकादश प्रकरण में 'समाहितात्मनो ब्रह्मन्' से ओंकार का स्वरूप वर्णन किया है।

१४० ग्रसेरा च।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्रामः ।

ग्रस से मन् प्रत्यय एवं धातु को आकार होता है । ग्रामः ।

१४१ अविसिविसिशुषिभ्यः कित् ।

ऊमं नगरम् । स्यूमो रश्मिः । सिमः सर्वः । 'शुष्ममग्निसमीरयोः' ।

अव, सिव्, सि, शुष्, इनसे मन् प्रत्यय होता है । ऊमम् = नगर । स्यूमः = रश्मि । सिमः = सर्व । अग्नि या वायु में शुष्मम् ।

१४२ इषियुधीन्धिदसिश्याधूसूभ्यो मक् ।

'इष्मः कामवसन्तयोः' ईषीति पाठे दीर्घादिः । युध्मः शरो योद्धा च । इध्मः समित् । दस्मो यजमानः । श्यामः । धूमः । सूमोऽन्तरिक्षम् । बाहुलकादीर्घ व्रणः ।

इष, युध, इन्ध, दस, श्या, धू, सू इनसे मक् प्रत्यय होता है । इष्मः = काम या वसन्त । ईष्मः । युध्मः = बाण = शर या युद्ध करने वाला = योद्धा ।

१४३ युजिरुचितिजां कुश्च ।

युग्मम् । रुक्मम् । तिग्मम् ।

इध्म = समिध् । दस्मः = यजमानः । श्यामः । धूमः । सूमः = अन्तरीक्षम् । ईर्ष्मम् = व्रण । युज, रुज, तिज, इनसे उत्तर यक् प्रत्यय होता है एवं धातु के अवयव चवर्ग को कवर्ग होता है । युग्मम् । रुक्मम् । तिग्मम् ।

१४४ हन्तेर्हिं च ।

हिमम् ।

हन् से मक् प्रत्यय होता है, एवं हन् के स्थान में हि आदेश होता है । हिमम् ।

१४५ भियः षुग्वा ।

भीमः । भीष्मः ।

भी से मक् प्रत्यय होता है, विकल्प से षुक् का आगम होता है । भीष्मः । भीमः ।

१४६ घर्मः ।

घृघातोर्मग्गुणश्च निपात्यते ।

घर्मः निपातन से सिद्ध होता है । घृ धातु से मक् प्रत्यय एवं गुण होता है ।

१४७ ग्रीष्मः ।

ग्रसतेर्निपातोऽयम् ।

'ग्रीष्मः' यह निपातन से सिद्ध होता है, ग्रस् से मक् प्रत्यय, उपधा को ईकार एवं सकार को षकारादेश ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१४८ प्रथेः षिवन् प्रसम्प्रसारणं च ।

पृथिवी । षवन्नित्येके । पृथवी । 'पृथवी पृथिवी पृथ्वी' इति शब्दार्णवः ।

प्रथ धातु से षिवन् प्रत्यय एवं धातु को सम्प्रसारण होता है । पृथिवी । षवन् प्रत्यय ऐसा भी मत है । पृथवी, 'पृथवी पृथिवी, पृथ्वी' वे तीन रूप शब्दार्णव में हैं ।

१४९ अशू प्रुषिलटिकणिखटिविशिभ्यः क्वन् ।

अश्वः । प्रुष स्नेहनादौ । 'प्रुष्वः स्याद्दतुसूर्ययोः' । प्रुष्वा जलकणिका । लट्वा पक्षिभेदः फलं च । कण्वं पापम् । बाहुलकादित्त्वे किण्वमपि । खट्वा । विश्वम् ।

अशू, प्रुष्, लट्, कण्, खट्, विश् इन से क्वन् प्रत्यय होता है । अश्वः । स्नेहनादि में प्रुष्वः = ऋतु या सूर्य । प्रुष्वा = जलकणिका । लट्वा = पक्षिविशेष या फलविशेष । कण्वम् = पाप । किण्वम् यहां बहुल से इत्त्व हुआ । खट्वा । विश्वम् ।

१५० इण्शीभ्यां वन् ।

एवो गन्ता । 'ये च एवा मरुतः' । असत्त्वे निपातोऽयम् । शेवं लाञ्छनं पुंसाम् । 'शेवं मित्राय वरुणाय' ।

इण् एवं शी धातु से वन् प्रत्यय होता है । एवः=गन्ता । मन्त्र में 'एवा' असत्त्वार्थक निपातन है ।

१५१ सर्वनिघृष्वरिष्वलष्वशिवपद्वप्रह्वेष्वा अतन्त्रे ।

अकर्तर्येते निपात्यन्ते । सृतमनेन विश्वमिति सर्वम् । निपूर्वाद् घृषेर्गुणाभावोऽपि । निघृष्यते अनेन निघृष्वः खुरः । रिष्वो हिंस्रः । लष्वो नर्तकः । लिष्व इत्यन्ये । तत्रोपधाया इत्त्वमपि । शेतेऽस्मिन् सर्वमिति शिवः शम्भुः । शीङो ह्रस्वत्वम् । पद्वो रथो भूलोकश्च । प्रह्वयते इति प्रह्वः । ह्वेञ् आकारवकारलोपः । जहातेरालोपो वा । ईषेर्वन् । ईष्वः आचार्यः । इष्वः इत्यन्ये । अतन्त्रे किम् ? सर्ता सारकः । बाहुलकाद्ध्रसतेः, ह्रस्वः ।

सर्व, निघृष्व, रिष्व, लष्व, शिव, पद्व, प्रह्व, ईष्व, ये कर्ता से भिन्न में निपातित हैं सर्वम् । निपूर्वक घृष् से गुण का अभाव, वन् प्रत्यय । निघृष्वः = खुर । रिष्वः = हिंस्रः, लष्वः = नाचने वाला । लिष्वः यह भी मतभेद से है । यहां उपधा को इकार भी हुआ । सारा संसार जिस में प्रलय में शयन करें उसको शिवः कहते हैं । शीङ् का ह्रस्व हुआ । पद्वः = रथ, भूलोक भी । प्रह्वः- ह्वेञ् आकार वकार लोप अथवा ओहाक् का आकार लोप । ईष् से वन् प्रत्यय ईष्वः = आचार्य । इष्व भी होता है । कर्ता में सर्ता, तृच्, सारकः ण्वुल् । ध्रस् से वन् बहुलग्रहण से ह्रस्व ।

१५२ शेवयह्वजिह्वाग्रीवाऽऽप्वामीवाः ।

शेव इत्यन्तोदात्तार्थम् । यान्त्यनेन यह्वः । ह्रस्वो हुगागमश्च । लिहन्त्यनया जिह्वा । लकारस्य जः गुणाऽभावश्च । गिरन्त्यनया ग्रीवा । ईडागमश्च । आप्नोतीत्याप्वा वायुः । मीवा उदरकृमिः । वायुरित्यन्ये ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शेव, यह्वः, जिह्वा, ग्रीवा, आप्व, मीवा, यह निपातन से सिद्ध होते हैं। शेवः यह अन्तोदात्तार्थ निपातन है, 'इण्शीभ्याम्' से अन्यथा सिद्ध हो था। गमन जिससे किया जाय यहां वन् प्रत्यय, ह्रस्व एवं हुक् आगम होता है। यह्वः। जिह्वा = आस्वादन किया जाय जिससे यहां वन् प्रत्यय लकार को जकारादेश गुणाभाव। ग्रीवा = यहां ईडागम भी हुआ, आप्वा = वायुः। मीवा = उदरकृमि। अन्यमत में मीवा का अर्थ वायु है।

१५३ कृगृशृदृभ्यो वः।

कर्वः कामः आखुश्च। गर्वः। शर्वः। दर्वो राक्षसः।

कृ गृ शृ दृ इनसे वप्रत्यय होता है। कर्वः = काम, या आखु। गर्वः, शर्वः। दर्वः = राक्षस।

१५४ कनिन्युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः।

यौतीति युवा। वृषा इन्द्रः। तक्षा। राजा। धन्वा मरुः। धन्व शरासनम्। द्युषा सूर्यः। प्रतिदीव्यन्त्यस्मिन्प्रतिदिवा दिवसः।

यु, वृष्, तक्ष्, राज्, धन्व्, द्यु, प्रतिपूर्वक दिव् इनसे कनिन् प्रत्यय होता है। युवा। वृषा = इन्द्र। तक्षा। राजा। धन्वा = मरु। धन्व = शरासन। द्युषा = सूर्य। प्रतिदिवा = दिवस।

१५५ सप्यशूभ्यां तुट् च।

सप्न। अष्ट।

सप् एवं अश् धातु से कनिन् प्रत्यय एवं तुट् का आगम होता है। सप्न। अष्ट।

१५६ नञि जहातेः।

अहः।

नञ् पूर्वक हा धातु से कनिन् प्रत्यय होता है। अहः।

१५७ श्वन्नुक्षन्पूषन्प्लीहन्क्लेदन्स्नेहन्मूर्धन्मज्जन्नर्यमन्विश्वप्सन्परिज्मन्मातरिश्वन्मघवन्निति।

एते त्रयोदश कनिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। श्वयतीति श्वा। उक्षा। पूषा। प्लिह गतौ। इकारस्य दीर्घत्वम्। प्लेहतीति प्लीहा कुक्षिव्याधिः। क्लिदू आर्द्रीभावे। क्लिद्यति क्लेदा चन्द्रः। स्निह्यतेर्गुणः। स्निह्यतीति स्नेहा सुहृच्चन्द्रश्च। मुह्यन्त्यस्मिन्नाहते मूर्धा। मुहेरुपधाया दीर्घो धोऽन्तादेशो रमागमश्च। मज्जत्यस्थिषु मज्जा अस्थिसारः। अर्यपूर्वो माङ्-अर्यमा। विश्वं प्साति विश्वप्सा अग्निः। परिजायते परिष्मा चन्द्रोऽग्निश्च। जनेरुपधालोपो मश्चान्तादेशः। मातर्यन्तरिक्षे श्वयतीति मातरिश्वा। घातोरिकारलोपः। मह पूजायाम्। हस्य घो वुगागमश्च। मघवा इन्द्रः।

इत्युणादिषु प्रथमः पादः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्वन्, उक्षन्, पूषन्, प्लीहन्, क्लेदन्, स्नेहन्, मूर्धन्, मज्जन्, अर्य्यमन्, विश्वप्सन्, परिज्मन्, मातरिश्वन्, मघवन्, ये १३ कनिन् प्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध होते हैं। श्वा। उक्षा। पूषा। प्लीहा = प्लिह धातु गत्यर्थक है उसके इकार को दीर्घ होकर कुक्षि की व्याधि अर्थ में प्लीहा शब्द है। क्लेदा = चन्द्र। क्लिद् आर्द्रभाव से कनिन् प्रत्यय होता है। स्नेहा = स्नुह्द्। स्नुह् से कनिन् धातु की उपधा का दीर्घ इकार को धकार आदेश रम् का आगम। मज्जा = चरबी। अर्य उपपदक माङ् सेकनिन् अर्यमा। विश्वप्सा—विश्वं प्साति = अग्नि। चन्द्र में परिज्मा = अग्नि। जन धातु से कनिन् उपधालोप, नकार को मकार आदेश। मातरिश्वा धातु के इकार का लोप। मह पूजायाम् इकार के स्थान में घ वुक् आगम माघवा = इन्द्रः।

पं० श्री बालकृष्ण पञ्चोलि-विरचित रत्नप्रभा में उणादि सूत्र प्रथम पाद समाप्त।

अथ द्वितीयपादः

१५८ कृहृभ्यामेणुः।

करेणुः। हरेणुः गन्धद्रव्यम्।

कृ एवं हृ धातु से एणु प्रत्यय होता है। करेणुः। हरेणुः। इनका अर्थ गन्ध द्रव्य है।

१५९ हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्।

हृथो विषण्णः। कुष्ठः। नीथो नेता। रथः। काष्ठम्।

हन्, कुष्, नी, रम्, काश् इनसे क्थन् प्रत्यय होता है। हृथः = विषण्णः = दुःखी। कुष्ठः। नीथः = नेता। रथः = काष्ठ।

१६० अवे भृञः।

अवभृथः।

अव पूर्वक भृञ् से क्थन् प्रत्यय होता है। अवभृथः।

१६१ उषिकुषिगार्तिभ्यस्थन्।

ओष्ठः। कोष्ठम्। गाथा। अर्थः। बाहुलकाच्छोथः।

उष, कुष, गा, ऋ इनसे थन् प्रत्यय होता है। ओष्ठः = उष्णाहार से जलनेवाला। कोष्ठम्। गाथा। अर्थः। शोथः। यहाँ भी बहुलग्रहण से हुआ।

१६२ सर्तेर्णित्।

सार्थः समूहः।

सृ धातु से थन् प्रत्यय होता है वह णित् है। सार्थः = समूह।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१६३ जॄवृञ्भ्यामूथन् ।

जरूथं मांसम् । 'वरूथो रथगुप्तौ ना' ।

जॄ वृञ्भ्याम् ऊथन् । जरूथं मांसम् । वरूथो रथगुप्तौ ना ।

जॄ एवं वृञ् से ऊथन् प्रत्यय होता है । मांसमें जरूथम् । रथगुप्ति में वरूथ यह पुंल्लिङ्ग है ।

१६४ पाततुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्थक् ।

पीथो रविः । घृतं पीथम् । 'तीर्थं शास्त्रोऽध्वरक्षेत्रोपायोपाध्यायमन्त्रिषु । अवतारर्षिजुष्टाम्भःस्त्रीरजःसु च विश्रुतम् ।' इति विश्वः । तुत्थोऽग्निः । उक्थं सामभेदः । रिक्थम् । बाहुलकादृचेरपि । 'रिक्थमृक्थं धनं वसु' । सिक्थम् ।

पा, तॄ, तुद, वच्, रिच्, सिच्, इनसे थक् होता है । पीथः = सूर्य, घी, तीर्थं = तीर्थम्, शास्त्र, यज्ञ, उपाय, उपाध्याय, मन्त्री अवतार, ऋषि से सेवित जल, स्त्री के रज यह है । तुत्थः = अग्नि । उक्थम् = सामविशेष । रिक्थम् = धन में । बाहुलक सामर्थ्य से ऋच् धातु से थक् ऋक्थम् = धन, वसु । सिक्थम् = अन्न ।

१६५ अर्तेर्निरि ।

निरृत्थं साम ।

निपूर्वक ऋधातु से थक् होता है । साम अर्थ में निरृत्थम् ।

१६६ निशीथगोपीथाऽवगथाः ।

निशीथोऽर्धरात्रो रात्रिमात्रं च । गोपीथं तीर्थम् । अवगथः प्रातःस्नातः ।

निशीथ, गोपीथ, अवगथ, यह तीन पद निपातन से सिद्ध होता है । निशीथः = अर्धरात्र, रात्रिमात्र भी अर्थ है । गोपीथम् = तीर्थ । अवगथः = प्रातःकाल में स्नान करने वाला प्रातः स्नातः ।

१६७ गश्चोदि ।

उद्गीथः साम्नो भागविशेषः ।

उत्पूर्वक गैधातु से थक् प्रत्यय होता है । उद्गीथः = सामवेद का प्रकरणविशेष ।

१६८ समीणः ।

समिथो वह्निः, संग्रामश्च ।

सम्पूर्वक इण् धातु से थक् प्रत्यय होता है । समिथः = वह्नि या संग्राम ।

१६९ तिथपृष्ठगूथयूथप्रोथाः ।

तिजेर्जलोपः । तिथोऽनलः कामश्च । पृष्ठम् । गूथं विष्ठा । यूथं समूहः । 'प्रोथमश्वो तुरङ्गास्ये प्रोथः प्रस्थित उच्यते' ।

तिथ, पृष्ठ, गूथ, यूथ, प्रोथ, ये थक् प्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध है । तिथः यहां तिज् धातु के जकार का लोप है । तिथः = अग्नि या कामदेव । पृष्ठम् । गूथम् = विष्ठा । यूथम् = समूह । प्रोथम् = घोड़े का मुख । प्रोथम् = प्रस्थान ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१७० स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपिदपिवन्द्युन्दिध्विति-वृत्यजिनीपदिमदिमुदिखिदिछिदिभिदिमन्दिचन्दिददहिदसिदम्भिवसिवा-शिशीङ्हसिसिधिशुभिभ्यो रक् ।

द्वात्रिंशतो रक्स्यात् । वलि यलोपः, स्फारम् । न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम्, तक्रम् । वक्रम् । शक्रः । क्षिप्रम् । क्षुद्रः । सृप्रश्चन्द्रः । तृप्रः पुरोडाशः । दृप्रो बलवान् । वन्द्रः पूजकः । उन्दी, उन्द्रो जलचरः । श्वित्रं कुष्ठम् । 'वृत्रो रिपौ श्वनौ ध्वान्ते शैले चक्रे च दानवे' । अजेर्वी वीरः । नीरम् । पद्रो ग्रामः । मद्रो हर्षो देशभेदश्च । 'मुद्रा प्रत्ययकारिणी' । 'खिद्रो रोगो दरिद्रश्च' । छिद्रम् । भिद्रं वज्रम् । मन्द्रः । चन्द्रः । पचाद्यचि चन्दोऽपि । 'हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्रः शशी चन्दो हिमद्युतिः' । दह्रोऽग्निः । दस्रः स्वर्वैद्यः । दभ्रः समुद्रः, स्वल्पं च । वसेः सम्प्रसारणे ।

स्फाय, तञ्च, वञ्च, शक्, क्षिप्, क्षुद्, सृप्, तृप्, दृप्, वन्द्, उन्द्, श्वि, वृत, अज्, नी, पद्, मद्, मुद, खिद्, छिद्, भिद्, मन्द्, चन्द्, दह्, दस्, दम्भ्, वस्, वसि, वाश्, शीङ्, हस्, सिध्, शुभ्, इन ३२ धातुओं से रक् प्रत्यय होता है, एवं वल् पर में रहते यकार का लोप होता है । स्फारम्, तक्रम् तञ्चि धातु में कुत्व न्यङ्क्वादित्वात् हुआ । वक्रम् । शक्रः । क्षिप्रम् । क्षुद्रः, सृप्रः = चन्द्र । तृप्र अग्नि में हवनार्थ पुरोडाश को कहते हैं । दृप्रः = बलवान् अर्थ है । वन्द्रः = पूजक । उन्दी का उन्द्रः = जलचर को कहते हैं । श्वित्रम्–कुष्ठ । वृत्रः = शत्रु, श्वनि, ध्वान्त, शैल, चक्र, एवं राक्षस इतने अर्थ हैं । वीरः = अज को वी आदेश बाद में रक् प्रत्यय । नीरम् । पद्रः = गांव । मद्रः = हर्ष या देशविशेष । मुद्रा = प्रत्ययकारिणी=मुद्दर । खिद्रः=रोगविशेष एवं दरिद्र । छिद्रम् । भिद्रम् = वज्र । मन्द्रः । चन्द्रः । पचादि के कारण अच् होने पर चन्दः = चन्द्रमा । दहः = अग्नि । दस्रः = देवताओं का वैद्य अश्विनीकुमार । दभ्रः = समुद्र एवं अल्पवस्तु । निवासार्थक वस् से रक् प्रत्यय एवं वसोः सम्प्रसारणम् से सम्प्रसारण करके । यह पाणिनि सूत्र है—जो वक्ष्यमाण है ।

३१६८ न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् ८।३।११०॥

रेफपरस्य सकारस्य सृप्यादीनां सवनादीनां च मूर्धन्यो न स्यात् । 'पूर्वपदात्' (सू ३६४१) इति प्राप्तः प्रतिषिध्यत इति वृत्तिर्भूयोभिप्राया । तेन 'शासिवसि–' (सू २४१०) इति प्राप्तमपि न । उस्रो रश्मिः । उस्रा गौः । वाश्रो दिवसः । वाश्रं मन्दिरम् । शीरोऽजगरः । हस्रो मूर्खः । सिभ्रः साधुः । शुभ्रम् । बाहुलकात् मुसेरक् । मुस्रम् उदश्र ।

रपर में रहते सकार एवं सृप्यादि सवनादि धातुओं का जो सकार उसको मूर्धन्यादेश नहीं होता है । 'पूर्वपदात्' इसकी प्राप्ति को निषेध करता है । यह वृत्ति पुनर्वार होगी इसका प्रकाश यहां करते हैं । शासिवसि सूत्र की प्राप्ति भी हुई थी किन्तु उसका भी निषेध हुआ । उस्रः = रश्मि । उस्रा का अर्थ है गाय । वाश्र का अर्थ है दिवस । वाश्रम् का अर्थ मन्दिर =

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गृह है। शीरः = अजगर। इस का अर्थ है 'मूर्ख'। सिध्रः = साधु अर्थ है। शुभ्रम्। शुस् धातु से रक् प्रत्यय शुस्रम्। वाहुलक के कारण हुआ।

१७१ चकिरम्योरुच्चोपधायाः।

चुक्रमम्लद्रव्यम्। रुग्रोऽरुणः।

चक् एवं रम् से रक् प्रत्यय होता है। उपधा के स्थान में उकार होता है। चुक्रम् = अम्ल-द्रव्य = चूक। रुग्रः = अरुणः।

१७२ वौ कसेः।

विकुस्रश्चन्द्रः।

विपूर्वक कस धातु से रक् प्रत्यय होता है। विकुस्रः = चन्द्र।

१७३ अमितम्योर्दीर्घश्च।

आम्रम्। ताम्रम्।

अम् एवं तम् से रक् प्रत्यय होता है। एवं पूर्वस्वर का दीर्घ होता है। आम्रम्। ताम्रम्।

१७४ निन्देर्नलोपश्च।

निद्रा।

निन्द धातु के नकार का लोप होता है एवं रक् प्रत्यय धातु से होता है। निद्रा।

१७५ अर्देर्दीर्घश्च।

आर्द्रम्।

अर्द धातु से उत्तर रक् प्रत्यय होता है। पूर्व अच् का दीर्घ। आर्द्रम् = गीला।

१७६ शुचेर्दश्च।

शूद्रः।

शुच् धातु से उत्तर रक् प्रत्यय होता है, एवं चकार के स्थान में दकार, पूर्व स्वर का दीर्घ होता है। शूद्रः।

१७७ दुरीणो लोपश्च।

दुःखेनेयते प्राप्यत इति दूरम्।

दुर् पूर्वक इण् धातु से रक् प्रत्यय होता है, इण् का लोप, एवं स्वर का दीर्घ। दूरम्, दुर् इण् रक् दुर् रक् दूर अम् दूरम्।

१७८ कृतेश्छः क्रू च।

कृच्छ्रम्। क्रूरः।

कृत धातु से रक् तकार को छकार, आदेश, तुगागम, धुत्व एवं कृत का क्रू आदेश होता है, कृच्छ्रम्। क्रूरम्।

१७९ रोदेर्णिलुक् च।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोदयतीति रुद्रः।

रोदि धातु से रक् प्रत्यय होता है एवं णिच् का लोप होता है। रुद्रः = प्रलयकर्ता शङ्कर।

१८० बहुलमन्यत्रापि संज्ञाच्छन्दसोः।

णिलुगित्येव। 'वान्ति पर्णशुषो वातास्ततः पर्णमुचोऽपरे। ततः पर्णरुहो वान्ति ततो देवः प्रवर्षति'।

संज्ञा एवं वेद में, बाहुलकात् अन्यत्र भी णि का लुक् दिखा गया है। वाताः = पत्रों का सुखाने वाला वायु वह रहा है।

१८१ जोरी च।

जीरोऽणुः। ज्यश्चेत्येके।

जुधातु से रक् प्रत्यय एवं उकार के स्थान में ईकार आदेश होता है। अणु अर्थ में जीरः। अन्यमत से ज्या धातु से रक् प्रत्यय कर सम्प्रसारण पूर्वरूप एवं दीर्घ से जीरः होगा।

१८२ सुसूधागृधिभ्यः क्रन्।

सुरः। सूरः। धीरः। गृध्रः।

सु, सू, धा, गृध् इनसे क्रन् प्रत्यय होता है। सुरः। सूरः। धीरः। गृध्रः।

१८३ शुसिचिमीनां दीर्घश्च।

शूः सौत्रः। शूरः। सीरम्। चीरम्। मीरः समुद्रः।

शु, सि, चि, मि, इनसे क्रन् प्रत्यय होता है एवं पूर्व अच् का दीर्घ। सूत्रजात शुधातु है। शूरः। सीरम्। चीरम्। मीरः = समुद्रः।

१८४ वाविन्धेः।

वीध्रं विमलम्।

वि पूर्वक इन्ध धातु से क्रन् प्रत्यय होता है, एवं इकार को ईकार दीर्घ होता है एवं नकार का लोप होता है। निर्मल अर्थ में वीध्रम्।

१८५ वृधिवपिभ्यां रन्।

वर्ध्रं चर्म। वप्रः प्राकारः।

वृध् एवं वप् से रन् प्रत्यय होता है। वर्ध्रम् = चर्म। वप्रः प्राकार।

१८६ ऋज्रेन्द्राग्रवज्रविप्रकुम्रचुम्रक्षुरखुरभद्रोग्रभेरभेलशुक्रशुक्लगौरवम्रेरामालाः।

रम्रन्ता एकोनविंशतिः। निपातनाद् गुणाभावः। ऋष्रो नायकः। इदि इन्द्रः। अञ्चेर्नलोपः। अग्रम्। 'वज्रोऽस्त्री हीरके पवौ'। डुवप्, उपधाया ह्रस्वम्। विप्रः। कुम्बिचुम्ब्योर्नलोपः। कुम्रमरण्यम्। चुम्रं मुखम्। 'क्षुर विलेखने' रेफलोपः। अगुणः। क्षुरः। 'खुर छेदने' रलोपो गुणाभावश्च।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खुरः। भन्देर्नलोपः भद्रम्। 'उच समवाये' चस्य गः। उग्रः। ञिभी, भेरी। पक्षे लः। भेलो जलतरणद्रव्यम्। शुचेश्चस्य कः, शुक्रः। पक्षे लः, शुक्लः। गुङ् वृद्धिः 'गौरोऽरुणे सिते पीते'। 'वन संभक्तौ' वन्रो विभागी। इणो गुणाभावः। 'इरा मद्ये च वारिणि'। 'मा माने' माला।

ऋज्र, इन्द्र, अग्र, वज्र, विप्र, कुम्र, चुम्र, क्षुर, खुर, भद्र, उग्र, भेरी, भेल, शुक्र, शुक्ल, गौर, वन्र, इरा, माला इन १९ रन् प्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध होते हैं। निपातन-प्रयुक्त गुण का अभाव होता है। ऋज्रः = नेता = नायक। इन्द्रः यहां धातु के अवयव नकार का लोप हुआ। अञ्ज् धातु से रक् नकार का लोप हुआ अग्रम्। वज्रः शब्द अकारलिङ्गक है हीरा एवं वज्र में है। विप्रः = वप् धातु की उपधा को इकार एवं रक् प्रत्यय है। कुम्ब् एवं चुम्ब् धातु के नकार का लोप हुआ रक् प्रत्यय। कुम्रम् = अरण्य। मुख को चुम्रम् कहते हैं। क्षुरः। खुरः छेदनार्थक खुर से रक् धातु के रकार का लोप, गुणाभाव निपातन से हुआ। भन्द् धातु के नकार का लोप। भद्रम्। उग्रः उच धातु समवाय में है, चकार को गकारादेश। उग्रः। ञिभी से रक् भेरी, विकल्प से लत्व भेलः = जलतरण-साधन नौका आदि। शुक्रः—शुच् धातु के चकार को ककार रक् प्रत्यय। पक्ष में लकार आदेश से शुक्लः। गुङ् से रक् उपधा वृद्धिः। गौरः = अरुण, सित या पीत में है। विभागी अर्थ में वन्रः, संभक्ति अर्थ में वन् से रक्। इरा = मद्य या जल में है इण् धातु से रक् प्रत्यय निपातन से गुणाभाव है। माला = मा धातु से मान अर्थ में निपातन से प्रत्यय के रकार को लत्व हुआ। पुष्पदामनि माला। क्षेत्र अर्थ में मालम्, जल में मालः। उन्नत भूतल को मालम् कहते हैं।

१८७ समि कस उकन्।

'कस गतौ' सम्यक् कसन्ति पलायन्ते जनाः अस्मादिति संकसुकः दुर्जनः, अस्थिरश्च।

सम्पूर्वक कस धातु से उकन् प्रत्यय होता है। कस गत्यर्थक धातु है। जिस दुष्ट जन से मनुष्यगण पलायन करते हैं वह = संकसुकः = दुर्जन या स्थिर न रहने वाला = अस्थिर।

१८८ पचिनशोर्णुकन्कनुमौ च।

पचेः कः। पाकुकः सूपकारः। नशेर्नुम्। नंशुकः।

पच् एवं नश् से णुकन् प्रत्यय होता है, पच् के चकार को ककारादेश होता है, नश् के नुम् आगम होता है। पाकुकः = सूपकारः = रसोइया नुमागम से नंशुकः।

१८९ भियः क्रुकन्।

भीरुकः।

भी धातु से क्रुकन् होता है। भीरुकः।

१९० क्वुन् शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि।

रजकः। इक्षुकुट्टकः। चरकः। 'चष भक्षणे'। चषकः। शुनकः। भषकः।

पूर्व में कोई पद न रहते क्रियाविषयक कुशलता रूप शिल्प अर्थ में धातु से क्वुन् होता है। रजकः = धोबी। इक्षुकुट्टकः। चरकः। चषकः चष भक्षणार्थक है शुनकः। भषकः = कुक्कुर।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१९१ रमे रश्च लो वा ।

रमको विलासी । लमकः ।

रम् से क्वुन् प्रत्यय रकार को विकल्प से लकार आदेश होता है । रमकः=विलासी । लमकः ।

१९२ जहातेर्द्वे च ।

जहकस्त्यागी कालश्च ।

हा धातु से क्वुन् प्रत्यय होता है, प्रकृति धातु का द्वित्व होता है । जहकः = त्यागी, कालश्च = त्याग करने वाला एवं काल अर्थ है ।

१९३ घ्मो धम च ।

धमकः कर्मकारः ।

घ्मा धातु से क्वुन् प्रत्यय एवं घ्मा को धम आदेश होता है । धमकः = कर्मकार ।

१९४ हनो वध च ।

वधकः ।

हन् धातु से क्वुन् होता है, हन् को वधादेश भी होता है । वधकः ।

१९५ बहुलमन्यत्रापि ।

'कुह विस्मापने' । कुहकः । कृतकम् ।

बाहुलक के सामर्थ्य से अन्य धातुओं से भी क्वुन् होता है । आश्चर्य से चकित करवाना अर्थ में कुह धातु है । कुहकः । कृन धातु से कृतकम् ।

१९६ कृषेर्वृद्धिश्चोदीचाम् ।

कार्षकः-कृषकः ।

कृष् धातु से क्वुन् होता है एवं धातु के ऋकार की वृद्धि होती है उन्दीच् मत से । अन्य मत में वृद्धि नहीं होती । कार्षकः । कृषकः ।

१९७ उदकं च ।

प्रपञ्चार्थम् ।

उन्दी धातु से भी क्वुन् प्रत्यय होता है । उदकम् । पृथक् सूत्र विस्तारार्थक है, योगविभाग व्यर्थ है ।

१९८ वृश्चिकृषोः किकन् ।

वृश्चिकः । कृषिकः ।

वृश्च् एवं कृष् से किकन् प्रत्यय होता है । वृश्चिकः । कृषिकः ।

१९९ प्राड्डि पणिकषः ।

प्रापणिकः पण्यविक्रयी । प्राकषिकः परदारोपजीवी ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रपूर्वक एवं आङ् पूर्वक पण एवं कष से किकन् होता है, प्रापणिकः पण्यविक्रयी। प्राकर्षिकः= यरदारोपजीवी।

२०० मुषेर्दीर्घश्च।

मूषिकः आखुः।

मुष धातु से किकन् प्रत्यय होता हैं एवं धातु के उकार को दीर्घ होता है। मूषिकः = आखुः = चूहा।

२०१ स्यमेः संप्रसारणं च।

चाद्दीर्घः। सीमिकः वृक्षभेदः।

स्यमि धातु के उत्तर किकन् प्रत्यय होता है, धातु का सम्प्रसारण होता है एवं चकार बल से दीर्घ भी होता है। सीमिकः = वृक्ष विशेष।

२०२ क्रिय इकन्।

क्रयिकः क्रेता।

क्री धातु से इकन् प्रत्यय होता है। क्रयिकः = क्रेता = खरीदने वाला।

२०३ आङि पणिपनिपतिखनिभ्यः।

आपणिकः। आपनिकः इन्द्रनीलः किरातश्च। आपतिकः श्येनो दैवायत्तश्च। आखनिको मूषिको वराहश्च।

आङ् पूर्वक पण, पन, पत, खन् इनसे इकन् प्रत्यय होता है। आपणिकः। आपनिकः = इन्द्रनील या भील = किरातः। आपतिकः = बाज या दैवाधीन। वराह या मूषक अर्थ में आखनिकः।

२०४ श्यास्त्याहृञविभ्य इनच्।

श्येनः। स्त्येनः। हरिणः। अविनोऽध्वर्युः।

श्या, स्त्या, हृञ्, अवि इनसे इनच् प्रत्यय होता है। श्येनः = बाज। स्त्येनः = चोर। हरिणः। अध्वर्यु अर्थ में अविनः।

२०५ वृजेः किच्च।

वृजिनम्।

वृञ् से इनच् प्रत्यय होता है। यह प्रत्यय कित् है। वृजिनम्।

२०६ अजेरज च।

वीभावबाधनार्थम्। अजिनम्।

अज धातु से इनच् प्रत्यय होता है निपातन से वी आदेश का अभाव होता है। अजिनम् = चमड़ा।

२०७ बहुलमन्यत्रापि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कनिनम्। नलिनम्। मलिनम्। कुण्डिनम्। द्यतेः। 'यत्परुषि दिनम्'। दिवसोऽप दिनम्।

बाहुलक के सामर्थ्य से अन्य धातुओं से भी इनच् प्रत्यय होता है। कठिनम्। नलिनम्। मलिनम्। कुण्डिनम्। दो धातु से इनच् होता है, आकारादेश ओकार का करके आकार का लोप हुआ। दिनम्। दिवस को भी दिन कहते हैं।

२०८ द्रुदक्षिभ्यामिनन्।

द्रविणम्। दक्षिणः। दक्षिणा।

द्रु एवं दक्षि धातु से इनन् प्रत्यय होता है। द्रविणम्। दक्षिणः। दक्षिणा।

२०९ अर्तेः किदिच्च।

इरिणं शून्यम्।

ऋधातु से इनन् प्रत्यय होता है। एवं यह प्रत्यय कित् है। धातुको इर् आदेश होता है। इरिणम्=शून्य।

२१० वेपितुह्योर्ह्रस्वश्च।

विपिनम्। तुहिनम्।

वप् एवं तुह् से इनन् प्रत्यय होती है, एवं ह्रस्व भी होता है। विपिनम्। तुहिनम्=तुषार।

२११ तलिपुलिभ्यां च।

'तलिनं विरले स्तोके स्वच्छेऽपि तलिनं त्रिषु'। पुलिनम्।

तल एवं पुल धातु से इनन् प्रत्यय होता है। विरल, स्तोक, स्वच्छ इन अर्थों में तलिनम्। स्वच्छार्थक तलिन शब्द तीन लिङ्ग में है। पुलिनम्।

२१२ गर्वेरत उच्च।

गौरादित्वान्ङीष्। गुर्विणी। गर्भिणी।

गर्व धातु से इनन् प्रत्यय होता है, अकार के स्थान में उकार का आदेश होता है। स्त्री-लिङ्ग में गौरादि के कारण ङीष् होता है। गर्भयुक्ता स्त्री अर्थ में गुर्विणी हुआ।

२१३ रुहेश्च।

रोहिणः।

रुह धातु से इनन् प्रत्यय होता है। रोहिणः।

२१४ महेरिनण्च।

चादिनन्। माहिनम् महिनम् राज्यम्।

मह धातु से इनण् प्रत्यय होता है। एवं इनन् प्रत्यय भी होता है। माहिनम्। महिनम्=राज्यम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२१५ क्विब्वचिप्रच्छिश्रिस्रुद्रुप्रुज्वां दीर्घोऽसंप्रसारणं च ।

वाक् । प्राट् । श्रीः । स्रवत्यतो घृतादिकमिति स्रूः, यज्ञोपकरणम् । द्रूर्हिरण्यम् । कटप्रूः कामरूपी कीटश्च । 'जूराकाशे सरस्वत्यां पिशाच्यां जवने स्त्रियाम्' ।

वच्, प्रच्छ, श्रि, स्रु, द्रु, प्रु, ज्रु इनसे क्विप् प्रत्यय होता है, दीर्घ होता है, एवं सम्प्रसारण का अभाव । वाक्, प्राट्, श्रीः, स्रूः = यज्ञोपकरण सामग्री । द्रूः = सुवर्ण । कटप्रूः = कामरूपी या कीट । जूः = आकाश, सरस्वती, पिशाची, एवं वेग अर्थ लोकिक है ।

२१६ आप्नोतेर्हस्वश्च ।

आपः । अपः । अद्भिः । अद्भ्यः ।

आप् धातु से क्विप् प्रत्यय होता है एवं आप् के आकार को ह्रस्व होता है । आपः । अपः । अद्भिः । अद्भ्यः ।

२१७ परौ व्रजेः षः पदान्ते ।

व्रजेः क्विब्दीर्घौ स्तः पदान्ते तु षश्च । परिव्राट् । परिव्राजौ ।

परिपूर्वक व्रज धातु से क्विप् प्रत्यय होता है, पूर्व स्वर का दीर्घ होता है, एवं पदान्त वर्ण को षकार आदेश होता है । वैराग्य से धनादि, पुत्रादि सब को त्याग कर संन्यास दीक्षा से दीक्षित विरक्त, असंग्रही, सदाचारी, राजनीति से पूर्ण बहिर्मुख, आडम्बर, छल, कपट, दम्भ, पाखण्ड आदि दुर्गुणों से रहित को परिव्राट् कहते हैं, उसको परमहंस भी कहते हैं । वर्तमान समय में स्वल्पतम ऐसे विरक्त मिलते हैं, यह देश का महान् दुर्भाग्य है । रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रामानन्द, शङ्कराचार्य, आदि महानुभावों ने त्याग-तपश्चर्या द्वारा भारत को आध्यात्मिक ज्ञान जगत्-प्रसिद्ध सैंकिया था ।

२१८ हुवः श्लुवच्च ।

जुहूः ।

हु धातु से क्विप् प्रत्यय होता है । एवं श्लुवत् कार्य होता है तथा दीर्घ भी होता है । यथा जुहूः = पर्णमयी कुटी या कुटीर, या काटेज ।

२१९ स्नुवः कः ।

स्नुवः ।

स्नु धातु से कप्रत्यय होता है । यथा स्नुवः उवङादेश ।

२२० चिक्च ।

इकार उच्चारणार्थः । क इत्, कुत्वम्, स्नुक् । 'स्नुवं च स्नुचश्च संमृडृढि' ।

स्नु धातु से चिक् प्रत्यय होता है । प्रत्यय में इकार शुद्ध उच्चारणफलक है । ककार की इत् संज्ञा है । चकार के स्थान में ककार आदेश होता है । स्नुक्, स्नुवम् ।

२२१ तनोतेरनश्च वः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तनोतेश्चिक्प्रत्ययः, अनो वशब्दादेशश्च । त्वक् ।

तन् धातु से चिक् प्रत्यय होता है, एवं धातु के अवयव अन् को वकार आदेश होता है। त्वक् = खाल ।

२२२ ग्लानुदिभ्यां डौः ।

ग्लौः । नौः ।

ग्ला एवं नुद् से डौ प्रत्यय होता है। ग्लौः । नौः । ग्लौः = मृगाङ्कः, कलानिधिः = चन्द्र । नौः = नौका ।

२२३ च्विरव्ययम् ।

डौरित्येव । ग्लौकरोति । 'कृन्मेजन्तः' (सू ४५०) इति सिद्धे नियमार्थमिदम् ।

च्विप्रत्यय अव्यय अर्थतः डौ प्रत्ययान्त च्व्यन्त अव्ययसंज्ञक होता है। न ग्लौः अग्लौः अग्लौः ग्लौः संपद्यते ग्लौ । करोति इस अर्थ में अव्यय संज्ञा हुई अव्ययात् से सुप् का लुक् हुआ, यह कृन्मेजन्त का नियमन करता है। एजन्त कृद् तदन्त की अव्यय संज्ञा हो तो च्व्यन्त की ही । इस नियम से च्व्यन्तरहित एजन्त कृत् की अव्यय संज्ञा का अभाव से ग्लौः नौः यहां सुप् लुक् न हुआ। यह नियमार्थ न करते तो अव्ययत्व से सुप् लुक् जो अनिष्ट था वह हो जाता। अर्थात् उणादि प्रत्ययान्त च्व्यन्त ही की अव्ययसंज्ञा होती है ।

२२४ रातेर्डैः ।

राः । रायौ । रायः ।

रा धातु को डै प्रत्यय होता है । राः । रायौ । रायः ।

२२५ गमेर्डोः ।

'गौर्नोदित्ये बलीवर्दे किरणक्रतुभेदयोः । स्त्री तु स्याद्दिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि । नृस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बुरश्मिदृग्बाणलोमसु' । बाहुलकाद्द्युतेरपि डोः । 'द्यौः स्त्री स्वर्गान्तरिक्षयोः' इति कोषः ।

गम् धातु से डोस् प्रत्यय होता है। गौः = सूर्य अर्थ में, बैल अर्थ में, किरण अर्थ में, यज्ञ विशेष अर्थ में है एवं पुंल्लिङ्ग है, स्त्रीलिङ्ग गो-शब्द दिशा, वाणी, भूमि, सुरभी, स्वर्ग, वज्र, अम्बु, रश्मि, नेत्र, बाण, लोम में पुंल्लिङ्ग एवं स्त्रीलिङ्ग है। बहुल ग्रहण से द्युत् से भी डो प्रत्यय होता है । द्यौः = यह स्त्रीलिङ्ग है, खगोल अन्तरिक्ष में है ।

२२६ भ्रमेश्च डूः ।

भ्रूः । चाद् गमेः । अग्रेगूः ।

भ्रम धातु से डूप्रत्यय होता है । भ्रूः । गम् धातु से भी डूप्रत्यय होता है । अग्रेगूः ।

२२७ दमेर्डोसिः ।

दोः । दोषौ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दमधातु से डोस् प्रत्यय होता है। दोः। दोषौ।

२२८ पणेरिज्यादेश्च वः।

वणिक्। स्वार्थेऽण्। 'नैगमो वाणिजो वणिक्'।

पणधातु से इजिप्रत्यय होता है। एवं पकार को वकार होता है। वणिक् = वैश्य। स्वार्थ मे अण् प्रत्यय करने पर वाणिजः।

२२९ वशेः कृत्।

उशिगग्नौ घृतेऽपि च'।

वश धातु से इजिप्रत्यय होता है एवं प्रत्यय यह कित् है। उशिक् = अग्नि एवं घृत में है।

२३० भृञ ऊच्च।

भूरिक् भूमिः।

भृञ् धातु से इञिप्रत्यय होता है एवं धातु के ऋकार को ऊकारादेश होता है। भूरिक् = भूमिः।

२३१ जसिसहोरुरिन्।

जसुरिर्वज्रम्। सहुरिरादित्यः पृथिवी च।

जस् एवं सह् से उरिन् प्रत्यय होता है। जसुरिः = वज्र। सहुरिः = सूर्य, पृथ्वी।

२३२ सुयुरुवृञो युच्।

सवनश्चन्द्रमाः। यवनः। रवणः कोकिलः। वरणः।

सु, यु, रु, वृञ् इनसे युच् प्रत्यय होता है। सवनः = चन्द्र। यवनः। रवणः = कोकिल। वरणः।

२३३ अशे रश च।

अश्नोतेर्युच्स्यात् रशादेशश्च। रशना काञ्ची। जिह्वावाची तु दन्त्यसकारवान्।

अशधातु से युच् प्रत्यय होता है, एवं धातु को रश आदेश होता है। रशना = काञ्ची रसना = जिह्वा।

२३४ उन्देर्नलोपश्च।

ओदनः।

उन्दधातु से उत्तर युच् प्रत्यय होता है एवं धातु के नकार का लोप होता है। ओदन = भात।

२३५ गमेर्गश्च।

गमेर्युच्स्याद् गश्चादेशः। गगनम्।

गम धातु से युच् प्रत्यय होता है, धातु के मकार को गकार आदेश होता है। गगनम् = आकाश।

२३६ बहुलमन्यत्रापि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युच्स्यात् । स्यन्दनः । रोचना ।

बहुल ग्रहण के सामर्थ्य विशेष से अन्य धातुओं से भी युच् प्रत्यय होता है । स्यन्दनः । रोचना ।

२३७ रञ्जेः क्युन् ।

रजनम् ।

रञ्ज् धातु से क्युन् प्रत्यय होता है । रजनम् ।

२३८ भूसूधूभ्रस्जिभ्यश्छन्दसि ।

भुवनम् । सुवनः आदित्यः । धुवनो वह्निः । निधुवनं सुरतम् । भृज्जन-मम्बरीषम् ।

वेद में भू, सू, धू एवं भ्रस्ज् से क्युन् प्रत्यय होता है । भुवनम् । सुवनः = सूर्य । धुवनः = अग्नि । निधुवनम् = स्त्री के साथ संभोग = सुरतम् = स्त्रीप्रसङ्ग ।

२३९ कृपॄवृजिमन्दिनिधाञः क्युः ।

किरणः । पुरणः समुद्रः । वृजनमन्तरिक्षम् । मन्दनं स्तोत्रम् । निधनम् ।

कृ, पॄ, वृज, मन्द, निपूर्वक धाञ् से क्युप्रत्यय होता है । किरणः । पुरणः = समुद्र । अन्तरिक्ष को वृजनम् कहते हैं । स्तोत्र को मन्दनम् कहते हैं । मरण को निधनम् ।

२४० धृषेर्धिष् च संज्ञायाम् ।

धिषणो गुरुः । धिषणा धीः ।

धृष् धातु से क्युप्रत्यय एवं धृष् को धिष् आदेश होता है । गुरु को धिषणः । धिषणा = बुद्धि ।

२४१ वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच्च ।

अतिप्रत्ययान्ताः । 'पृषु सेचने' गुणाभावः । पृषन्ति । बृहत् । महान् । गमेर्जगादेशः जगत् ।

वर्तमान में शतृ प्रत्यय समान अति प्रत्ययान्त पृषत्, बृहत्, महत्, जगत् ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं । सेचनार्थक पृष् धातु से अतिप्रत्यय इकार का लोप, गुणाभाव पृषत् जस् शि नुम् पृषन्ति । गम् से अति, धातु को जगादेश-जगत् ।

२४२ संश्चतृपद्वेहत् ।

एते निपात्यन्ते । पृथक्करणं शतृवद्भावनिवृत्त्यर्थम् । सञ्चिनोतेः सुट् । इकारलोपः । संश्चत् कुहकः । तृपत् छत्रम् । विपूर्वात् हन्तेष्टिलोपः, इत ए च । 'वेहद्भर्भोपघातिनी' ।

संश्चत्, तृपत्, वेहत्, ये निपातन से सिद्ध होते हैं । यह पृथक् सूत्रकरण शतृवद्भाव का निषेधार्थक है । संपूर्वक चि धातु से अतिप्रत्यय होता है सुट् का आगम निपातन से होता है, एवं इकार का लोप होता है । संश्चत् = कुहक । तृपत् = छत्रम् । विपूर्वक हन् से अतिप्रत्यय एवं टिलोप तथा इकार को एकारादेश वेहत् = गर्भ को नाश करने वाली गौ इत्यादि ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२४३ छन्दस्यसानच्शुजृभ्याम् ।

शवसानः पन्थाः । जरसानः पुरुषः ।

वेद में शु एवं जृ धातु से असानच् प्रत्यय होता है। मार्ग अर्थ में शवसानः। पुरुष अर्थ में जरसानः।

२४४ ऋज्रिवृधिमन्दिसहिभ्यः कित् ।

ऋज्रसानो मेघः । वृधसानः पुरुषः । मन्दसानोऽग्निर्जीवश्च । सहसानो यज्ञो मयूरश्च ।

ऋन्ज्, वृध्, मन्द्, सह, इनसे असानच् प्रत्यय होता है। प्रत्यय यह कित् है। मेघ अर्थ में ऋज्रसानः = मेघ। वृधसानः = पुरुष। अग्नि एवं जीव को मन्दसानः। यज्ञ एवं मयूर में सहसानः शब्द है।

२४५ अर्तेर्गुणः शुट् च ।

अर्शसानोऽग्निः ।

ऋधातु से असानच् होता है, सुट् का आगम, एवं गुण होता है। अग्नि अर्थ में अर्शसानः।

२४६ सम्यानच्स्तुवः ।

संस्तवानो वाग्मी ।

सम्पूर्वक स्तु धातु से आनच् प्रत्यय होता है। युक्ति युक्त अधिक वचन को कथयिता = वाग्मी अर्थ में संस्तवानः शब्द है।

२४७ युधिबुधिदृशिभ्यः किच्च ।

युधानः । बुधानः । दृशानो लोकपालकः ।

युध्, बुध्, दृश् इनसे आनच् होता है। यह प्रत्यय कित् है। युधानः। बुधानः। लोकपालक अर्थ में दृशानः।

२४८ हुर्छेः सनो लुक् छलोपश्च ।

जुहुराणश्चन्द्रमाः ।

सन्नन्त हुर्छ् धातु से आनच् होता है, सन् का लुक् एवं छकार का लोप होता है। चन्द्र अर्थ में जुहुराणः शब्द।

२४९ शिवतेर्दश्च ।

शिश्विदानः पुण्यकर्मा ।

सन्नन्त शिश्विता धातु से आनच्, सन् का लुक्, तकार के स्थान में दकार आदेश होता है। पुण्यकारी कर्मकर्ता अर्थ में शिश्विदानः।

२५० तृन्तृचौ शंसिक्षदादिभ्यः संज्ञायां चानिटौ ।

शंसेः क्षदादिभ्यश्च क्रमात्तृन्तृचौ स्तः, तौ चानिटौ । शंस्ता स्तोता । शंस्तरौ । शंस्तरः । क्षदिः सौत्रो धातुः, शकलीकरणे भक्षणे च । अनुदात्तेत् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'वृक्ये चक्षदानम्' इति मन्त्रात् । 'उक्षाणं वा वेहत्तं वा क्षदन्ते' इति ब्राह्मणाच्च । 'क्षत्ता स्यात्सारथौ द्वाःस्थे वैश्यायामपि शूद्रजे' ।

संज्ञा गम्यमान रहते शंस् एवं क्षुद् आदि धातुओं से क्रमशः तृन् एवं तृच् होता है । स्तवन-कर्ता अर्थ में शस्ता । शकलीकरण एवं भक्षणार्थ में प्रयुक्त सौत्र क्षुद् धातु है । इससे क्षत्ता । वेद-मन्त्रों के आधार पर यह क्षुद् धातु अनुदात्तेत् आत्मनेपदी है एवं खण्डकरण तथा भोजनार्थक है । क्षत्ता = सारथि या द्वारपाल अथवा वैश्या में शूद्र से उत्पन्न व्यक्ति का नाम क्षत्ता है ।

२५१ बहुलमन्यत्रापि ।

मन्-मन्ता । हन्-हन्ता । इत्यादि ।

अन्य धातुओं से भी तृन् एवं तृच् प्रत्यय बहुल ग्रहण से होते हैं । यथा—मनु अवबोधने से मन्ता । हन् से हन्ता ।

२५२ नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृपोतृभ्रातृजामातृमातृपितृदुहितृ ।

न पतन्त्यनेन पितरो नरके इति नप्ता पौत्रो दौहित्रश्च । नयतेः षुग्गुणश्च-नेष्टा । त्विषेरितोऽत्वम्, त्वष्टा । होता । पोता, ऋत्विग्भेदः । भ्राज-तेर्जलोपः भ्राता । जायां माति जामाता । 'मान पूजायाम्' नलोपः । माता । पातेराकारस्येत्त्वम् । पिता । दुहेस्तृच्, इट् गुणाभावश्च । दुहिता ।

नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, होतृ, पोतृ, भ्रातृ, जामातृ, मातृ, पितृ, दुहितृ ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं । अन्यजन्यः पुमान् नप्ता । नप्तृ आदि दश तृन् या तृच् प्रत्ययान्त निपातन होते हैं । नप्ता, नञ्पूर्वक पत से तृन् या तृच् नञ् तत्पुरुष अत का लोप है, पौत्र या दौहित्र, जिसके उत्पन्न होने पर नरक-गमन न हो जाय उसे नप्ता कहते हैं—न पतन्ति पितरो नरके स नप्ता । नेष्टा-नी धातु से तृन् षुक् आगम, गुण, यह शब्द पुंलिङ्ग देवशिल्पी, या बढ़ई, आदित्यभिद् आदि अर्थों में है । त्वष्टा-त्विष् धातु से तृन् इकार को अकार विश्वकर्मा । हु से तृन् होता । पोता = ऋत्विग् विशेष । भ्राजृ से तृन्, जकार का लोप भ्राता । जायां माति जामाता = मान पूजायाम् है, ण्यर्थ धातु के कुक्षि में प्रविष्ट है, कन्या का पति अर्थ है । मान्+तृन् नकार का लोप माता = जननी । पा+तृ आकार के स्थान में इकार पिता = जनकः । दुह्+तृ इट् आगम, गुण का अभाव दुहिता = कन्या-निरुक्त में दूरे हिता दुहिता, या दोहनकर्त्री = पितृधनापहारिणी आदि व्युत्पत्ति की है ।

२५३ सुञ्यसेर्ऋन् ।

स्वसा ।

सु पूर्वक अस् से ऋन् प्रत्यय होता है । स्वसा = भगिनी = बहन = बेन गुर्जर भाषा में ।

२५४ यतेर्वृद्धिश्च ।

याता । 'भार्यास्तु भ्रातृवर्गस्य यातरः स्युः परस्परम्' ।

यत् धातु से ऋन् प्रत्यय होता है उपधा की वृद्धि । याता—भाइयों की बहुएं परस्पर याता कही जाती हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२५५ नञि च नन्देः ।

न नन्दति ननान्दा । इह वृद्धिर्नानुवर्तते इत्येके । 'ननान्दा तु स्वसा पत्युर्ननन्दा नन्दिनी च सा' इति शब्दार्णवः ।

नञ् पूर्वक नन्द् से ऋन् प्रत्यय होता है, सेवा करने पर भी प्रसन्न न होने वाली 'ननद' अर्थ में ननान्दा = दुनदि समृद्धौ तृन् वृद्धि, पति की बहन ननान्दा । कोई वृद्धि न कर ननन्दा यह भी कहते हैं । नन्दिनी भी उसका नाम है ।

२५६ दिवेर्द्रुः ।

देवा । देवरः । 'स्वामिनो देवृदेवरौ' इत्यमरः ।

दिव् धातु से ऋप्रत्यय होता है । देवा, नकारलोप, पतिका भाई पत्नी का देवर है । देवरोऽपि वर इति नैरुक्ताः । पुत्र के अभाव में देवर नियोग द्वारा 'एक मात्र सन्तान' की उत्पत्ति करता है, यह भी एक गौण पक्ष धर्मशास्त्र में देवर-विषयक वर्णन किया है । तदनन्तर 'मातृवत् परिपालनीया सा' आदि वर्णन है ।

२५७ नयतेर्डिच्च ।

ना । नरौ । नरः ।

नी धातु से ऋप्रत्यय होता है, वह प्रत्यय डित् है, ना, नरौ, नरः ।

२५८ सव्ये स्थश्छन्दसि ।

'अम्बाम्ब-' (सू. २६१८) इत्यत्र 'स्थास्थिन्स्थूणामुपसंख्यानम्' (वा ४६६१) । सव्येष्ठा सारथिः । सव्येष्ठरौ । सव्येष्ठरः ।

वेद में सव्यशब्द उपपदक स्था से ऋप्रत्यय होता है, यह अम्बाव सूत्र पर कहा है कि स्था, स्थिन्, स्थू, इनका अवयव सकार को षकार का उपसंख्यान करना । सव्येष्ठा = सारथिः ।

२५९ अर्तिसृधृधम्यम्यश्ववितॄभ्योऽनिः ।

अष्टभ्योऽनिप्रत्ययः स्यात् । अरणिरग्नेर्योनिः । सरणिः । धरणिः । धमनिः । अमनिर्गतिः । अशनिः । अवनिः । तरणिः । बाहुलकाद्रजनिः ।

ऋ, सृ, धृ, धम्, अम्, अश्, अव्, तॄ इनसे अनि प्रत्यय होता है । अरणि अग्नि का उत्पादक काष्ठविशेष, जिसके परस्पर मन्थनजन्य अग्नि की उत्पत्ति होती है । सरणिः । धरणिः । धमनिः । अमनिः = गति । अशनिः । अवनिः । तरणिः । रजनिः बहुल ग्रहण से हुआ । श्रेणि या मार्ग को सरणिः कहते हैं । शरणिः=व्रतलोप रूप हिंसा में है । अशनिः—वज्र, जिसकी सहायता से राज्य का उपभोग किया जाय । अवनिः—पृथ्वी । तरणिः = कुमारी या नौका । कुमारी = लता-विशेष । रजनिः नलोप निपातन से, रात्रि अर्थ है ।

२६० आङि शुषेः सनश्छन्दसि ।

आशुशुक्षणिरग्निर्वातश्च ।

वेद में आङ् पूर्वक सन्नन्त शुष् धातु से अनि प्रत्यय होता है । अग्नि या वायु में आशुशुक्षणिः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२६१ कृषेरादेश्च चः ।

चर्षणिर्जनः ।

विलेखनार्थक कृष् धातु से अनि प्रत्यय एवं आदि वर्ण को चकारादेश होता है । चर्षणिः जन को कहते हैं । धातु की उपधा को गुण होता है ।

२६२ अदेर्मुट् च ।

अद्मनिः अग्निः ।

भक्षणार्थक अद् धातु से अनि प्रत्यय एवं मुट् आगम होता है । अद्मनिः = अग्नि ।

२६३ वृतेश्च ।

वर्तनिः । गोवर्धनस्तु चकारान्मुट् वर्त्मनिरित्याह ।

वृतु-वर्तने धातु से अनि प्रत्यय होता है । गोवर्धन के मत से चकार से मुट् आगम भी होता है । इससे वर्तनिः और वर्तमानः होता है ।

कृदिकारादक्तिनः से ङीष् होने पर वर्तनी होता है जिसका अर्थ पगदण्डी होता है ।

२६४ क्षिपेः किच्च ।

क्षिपणिरायुधम् ।

प्रेरणार्थक क्षिप् धातु से अनि प्रत्यय और कित् होता है । जिससे लघूपध गुण का अभाव होने से क्षिपणिः = अस्त्रवाचक होता है ।

२६५ अर्चिशुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्य इसिः ।

अर्चिर्ज्वाला । इदन्तोऽप्ययम् । 'अग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ।' शोचिर्दीप्तिः । हविः । सर्पिः । 'इस्मन्–' (मू - ६८५) इति ह्रस्वः । छदिः पटलम् । छर्दिर्वमनव्याधिः । इदन्तोऽपि । 'छर्द्यतीसारशूलवान्' ।

अर्च्, शुच्, हु, सृप्, छादि, छर्द्, इनसे असि प्रत्यय होता है । अर्चिः = ज्वाला । यह शब्द इकारान्त भी है । शोचिः = दीप्ति । हविः । सर्पिः । ह्रस्व कर छदिः = पटलम् । छर्दि = कै = वमन उसका रोग में है । यह भी इदन्त है ।

२६६ बृंहेर्नलोपश्च ।

'बर्हिर्नो कुशशुष्मणोः' ।

बृंह् धातु से इसि प्रत्यय होता है, नकार का लोप । कुशा एवं अग्निवाचक बर्हिः है ।

२६७ द्युतेरिसिन्नादेश्च जः ।

ज्योतिः ।

द्युत् धातु से इसिन् प्रत्यय होता है एवं दकार को जकारादेश होता है । ज्योतिः ।

२६८ वसौ रुचेः संज्ञायाम् ।

वसुरोचिर्यज्ञः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वसु शब्द पूर्वक रुच् धातु से संज्ञा में इसिन् प्रत्यय होता है। वसुरोचिः = यज्ञ।

२६९ भुवः कित्।

भुविः समुद्रः।

भू धातु से इसिन् प्रत्यय होता है एवं प्रत्यय कित् है। भुविः = समुद्रः।

२७० सहो धश्च।

सधिरनड्वान्।

सह् धातु से इसिन् प्रत्यय होता है एवं इकार के स्थान में धकारादेश। सधिः = बैल।

२७१ पिबतेस्थुक्।

"पाथिश्चक्षुःसमुद्रयोः"।

पा धातु से इसिन् प्रत्यय होता है, थुक् का आगम होता है। पाथिः = चक्षु एवं समुद्र।

२७२ जनेरुसिः।

जनुर्जननम्।

जन् धातु से उसि प्रत्यय होता है। जनुः = जनन, जन्म अर्थ में है।

२७३ मनेर्धश्छन्दसि।

मधुः।

वेद में मन् से उसि प्रत्यय होता है, एवं नकार के स्थान में धकार होता है। मधुः।

२७४ अर्तिपॄवपियजितनिधनितपिभ्यो नित्।

अरुः। परुर्मन्थिः। वपुः। यजुः। तनुः। तनूषी। तनूंषि। धनुरस्त्रियाम्। 'धनुर्वंशविशुद्धोऽपि निर्गुणः किं करिष्यति'। सान्तस्योदन्तस्य वा रूपम्। रूपम्। 'तपुः सूर्याऽग्निशत्रुषु।'

ऋ, पॄ, वप्, यज्, तन्, धन्, तप्, इन धातुओं से उसि होता है, यह प्रत्यय नित् है। अरुः। परुः = ग्रन्थि। वपुः। यजुः। तनुः। धनुः शब्द स्त्रीलिङ्ग नहीं है। वंश-विशुद्ध धनुष् रहने पर भी वह गुण = सूत्र से रहित है तो कार्य करने में सर्वथा असमर्थ ही रहता है। मनुष्य श्रेष्ठ कुलोद्भव होते हुए भी यदि विद्या-विनयादि गुण-रहित है तो सांसारिक पारलौकिक सिद्धि में सर्वथा अयोग्य ही है। धनुष् सान्त या उकारान्त भी है। तपुः = सूर्य में, अग्नि में एवं शत्रु में है।

२७५ एतेर्णिच्च।

आयुः। आयुषी।

इण् से उसि प्रत्यय होता है एवं वह प्रत्यय णित् है। आयुः।

२७६ चक्षेः शिच्च।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शित्त्वात् सार्वधातुकत्वेन ख्याञ्बाधः ।

चक्षुः ।

चक्ष् धातु से उसि प्रत्यय होता है, वह शित् है, शित्-प्रयुक्त सार्वधातुक संज्ञा से ख्याञ् आदेश का अभाव हुआ । चक्षुः = नेत्र ।

२७७ मुहेः किच्च ।

मुहुरव्ययम् ।

मुह् धातु से उसि प्रत्यय होता है एवं वह प्रत्यय कित् है । अव्यय, वारकार अर्थ में मुहुः ।

२७८ बहुलमन्यत्रापि ।

आचक्षुः । परिचक्षुः ।

अन्यत्र भी बहुल ग्रहण से उसि प्रत्यय होता है । आचक्षुः, परिचक्षुः ।

२७९ कृगृशृवृञ्चतिभ्यः ष्वरच् ।

कृ गृ शृ वृञ् चत्

'कर्वरो व्याघ्ररक्षसोः' । गर्वरोऽहङ्कारी । शर्वरी रात्रिः । 'वर्वरः प्राकृतो जनः' । चत्वरम् ।

कृ, गृ, शृ, वृञ्, चत्, इनसे ष्वरच् प्रत्यय होता है । व्याघ्र एवं राक्षस अर्थ में कर्वरः । गर्वरः = अहङ्कारवान् । शर्वरी = रात्रि । वर्वरः = साधारणजन । चत्वरम् = चौराहा ।

२८० नौ सदेः ।

'निषद्वरस्तु जम्बालः' निषद्वरी रात्रिः ।

इत्युणादिषु द्वितीयः पादः ।

निपूर्वक सद् से ष्वरच् होता है । निषद्वरः यहां 'सदिरप्रतेः' से षकार हुआ, इसका जम्बाल अर्थ है । निषद्वरी = रात्रि अर्थ है ।

पं० श्री बालकृष्ण पञ्चोलि-विरचित रत्नप्रभा में उणादि सूत्रों में द्वितीयपाद समाप्त ।

अथ उणादिषु तृतीयः पादः

२८१ छित्वरछत्वरधीवरपीवरमीवरचीवरतीवरनीवरगह्वरकट्वर-संयद्वराः ।

एकादश ष्वरच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । छिदिर् छद अनयोस्तकारोऽन्तादेशः, छिदेर्गुणाभावश्च । छित्वरो धूर्तः । 'छत्वरो गृहकुञ्जयोः' । धीवरः कैवर्तः । पीवरः स्थूलः । मीवरो हिंसकः । चिनोतेर्दीर्घश्च । चीवरं भिक्षुकप्रावरणम् । तीवरो जातिविशेषः । नीवरः परिव्राट् । गाहतेर्ह्रस्वत्वम् । गह्वरम् । कटे वर्षादौ । कट्वरं व्यञ्जनम् । यमेर्दकारः संयद्वरो नृपः । पदेः सम्पद्वर इत्येके ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छित्वर, छत्वर, धीवर, पीवर, मीवर, चीवर, तीवर, नीवर, गह्वर, कट्वर, संयद्वर, ये एकादश शब्द क्वरच् प्रत्ययान्त निपातन से निर्मित होते हैं। इर् इत-संज्ञक छिद् एवं छद् इनके दकार को तकारादेश भी होता है, एवं धातु के इकार को गुण का अभाव होता है, छित्वरः = धूर्त। छत्वरः = गृह या कुब्जा। धीवरः = कैवर्तः = केवट। पीवरः = स्थूल = मोटा। मीवरः = हिंसक। चिधातु से दीर्घ कर चीवरम् = फटा टुटा वस्त्र या भिक्षुक का वस्त्र, अधिकतर बौद्ध भिक्षु उसको धारण करते हैं। तीवरः = जातिविशेष। संन्यासी को नीवरः कहते हैं। गाह् की उपधा का ह्रस्व से गह्वरम्। 'कटे' से क्वरच् कट्वरम् = व्यञ्जन। यम् के मकार के स्थान में दकार होकर संयद्वरः = राजा। मतभेद से संपद् से संपद्वरः।

२८२ इणिसञ्जिदीङ्ष्यविभ्यो नक्।

'इनः सूर्ये नृपे पत्यौ'। सिनः काणः। जिनः अर्हन्। दीनः। उष्णः। ऊनः।

इण्, सिञ्, जि, दीङ्, उष्, अव्, इनसे नक् प्रत्यय होता है। इनः = सूर्य में, राजा में, पति में प्रयुक्त है। सिनः = काणः लेशतोऽपि दर्शनसामर्थ्यशून्यत्वम् = काणत्वम्। जिनः = पूज्य-पूजायोग्य को अर्हन्। दीनः = कायर। 'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्'। उष्णः। ऊनः = न्यून अर्थ में है।

२८३ फेनमीनौ।

एतौ निपात्येते। स्फायतेः फेनः। मीनः।

फेन एवं मीन ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं। स्फायी वृद्धौ से धातुको आदेश नक्प्रत्यय फेनः। भीङ् हिंसायाम् नक् मीनः = मत्स्यः, या राश्यन्तर में है।

२८४ कृषेर्वर्णे।

कृष्णः।

वर्ण अर्थ में कृष् से नक् प्रत्यय होता है। नकार को णकार से कृष्णः = श्याम।

२८५ बन्धीर्ब्रधिबुधे च।

ब्रध्नः। बुध्नः।

बन्ध धातु से नक् प्रत्यय, एवं धातु के स्थान में ब्रध् आदेश होता है, एवं बुध् आदेश भी होता है। ब्रध्नः। बुध्नः। मूल या रुद्र इन अर्थों में यह पुंल्लिङ्ग है।

२८६ धापृवस्यज्यतिभ्यो नः।

'धानाः भृष्टयवे स्त्रियः'। पर्ण पत्रम्। पर्णः, किंशुकः। 'वस्नो मूल्ये वेतने च'। अजेर्वी। वेनः। अत्नः आदित्यः। बाहुलकाच्छृणोतेः। श्रोणः पङ्गुः।

धा, पॄ, वस्, अज्, अत, इनसे न प्रत्यय होता है। भुने हुए यवों को धाना कहते हैं। यह स्त्रीलिङ्ग है। पर्णम् = पत्र में है। पर्णः = किंशुकः। वस्नः = मूल्य या वेतन में। अज्+न वीभाव गुण वेनः = प्रजापतिः, अत्नः = आदित्य। बहुलग्रहण के सामर्थ्य से श्रु से न णत्व श्रोणः = पङ्गु।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२८७ लक्षेरट् च ।

लक्षेश्चुरादिण्यन्तान्नः स्यात्तस्याऽऽडागमश्च । चान्मुडित्येके । 'लक्ष्मणं नाम्नि चिह्ने च' । लक्षणो लक्ष्मणश्च रामभ्राता । 'लक्षणा हंसयोषायां सारसस्य च लक्ष्मणा' ।

चुरादिण्यन्त लक्ष् से न प्रत्यय होता है एवं अडागम, चकार से मुट् आगम भी किसी मत से होता है । लक्षणम्, लक्ष्मणम् द्विविध प्रयोग । नाम या चिह्न में यह प्रयुक्त है । श्रीराम चन्द्रजी का अनुज लक्ष्मण । हंसपत्नी में 'लक्षणा' शब्द, सारसी को 'लक्ष्मणा' कहते हैं । सारस पत्नी = सारसी ।

२८८ वनेरिच्चोपधायाः ।

वेन्ना नदी ।

वन् धातु से न प्रत्यय, उपधा को इकार । वेन्ना = नदी ।

२८९ सिवेष्टेर्यूं च ।

दीर्घोच्चारणसामर्थ्यान्न गुणः । स्यून आदित्यः । बाहुलकात्केवलो नः । ऊठ् । अन्तरङ्गत्वाद्यण् । गुणः । स्योनः ।

सिव् से न प्रत्यय, एवं टिको यू आदेश, आदेश में दीर्घ उच्चारण से गुण का अभाव, स्यूनः = आदित्य ।

बहुल ग्रहण से केवल न प्रत्यय एवं ऊठ्, अन्तरङ्ग के कारण यण् कर एवं गुण से स्योन । सिवु तन्तुसन्तानें धातु है, स्योनः = सूर्य में या किरण में व्यवहृत है ।

२९० कृवृजूसिद्रुपन्यनिस्वपिभ्यो नित् ।

कर्णः । वर्णः । 'जर्णश्चन्द्रे च वृक्षे च' । सेना । द्रोणः । पन्नो नीचैर्गतिः । अन्नमोदनः । स्वप्नो निद्रा ।

कृ, वृ, जू, द्रु, पन्, अन्, स्वप्, इनसे न प्रत्यय होता है, वह नित् है । कर्णः = पृथाज्येष्ठ सुत में है । सुवर्णाऽौ च । वर्णः = द्विजादि में, शुक्लादि में, यश, गुण, कथादि में है । स्तुति अर्थ में, भेद में, रूप में, अक्षरविलेखन में है । जर्णः = चन्द्र एवं वृक्ष । सेना । द्रोणः, पन्नः = नीचैर्गति में है । अन्नम् = ओदन = भात । स्वप्नः = निद्रा ।

२९१ धेट इच्च ।

'धेनः सिन्धुर्नदी धेना ।'

धेट् धातु से न प्रत्यय एवं इकारादेश निपातन-लभ्य है, धेनः = सिन्धुः, नदी + धेना ।

२९२ तृषिशुषिरसिभ्यः कित् ।

तृष्णा । शुष्णः सूर्यो वह्निश्च । रत्नं द्रव्यम् ।

तृष्, शुष्, रस्, से न प्रत्यय, वह कित् है । तृष्णा, शुष्णः = सूर्य या अग्नि । रत्नम् = द्रव्य ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२९३ सुञो दीर्घश्च ।

सूना वधस्थानम् ।

सुञ् धातु से न प्रत्यय होता है एवं दीर्घ । सूना = वधस्थान ।

२९४ रमेस्त च ।

रमयतीति रत्नम् ।

रम् धातु से न प्रत्यय, मकार के स्थान में तकार होता है । रमयति इति रत्नम् ।

२९५ रास्नासास्नास्थूणावीणाः ।

रास्ना गन्धद्रव्यम् । सास्ना गोगलकम्बलः । स्थूणा गृहस्तम्भः । वीणा वल्लकी ।

रास्ना, सास्ना, स्थूणा, वीणा, ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं । सुगन्धि द्रव्य में रास्ना शब्द है । गाय के गले में लटकता कम्बल-सम चर्म को सास्ना कहते हैं । गृहस्तम्भ को स्थूणा कहते हैं । वल्लकी को वीणा कहते हैं ।

२९६ गादाभ्यामिष्णुच् ।

गेष्णुर्गायनः । देष्णुर्दाता ।

गा एवं दा धातु से इष्णुच् प्रत्यय होता है । गेष्णुः = गायनः । देष्णुः = दाता ।

२९७ कृत्यशूभ्यां क्स्नः ।

कृत्स्नम् । अक्ष्णमखण्डम् ।

कृत एवं अश् धातु से क्स्न प्रत्यय होता है । कृत्स्नम् । अक्ष्णम् = अखण्ड ।

२९८ तिजेर्दीर्घश्च ।

तीक्ष्णम् ।

तिज् धातु से क्स्न प्रत्यय होता है, एवं दीर्घ । तीक्ष्णम् ।

२९९ श्लिषेरच्चोपधायाः ।

श्लक्ष्णम् ।

श्लिष् धातु से क्स्न प्रत्यय एवं उपधा को अकार । श्लक्ष्णम् = चिकना ।

३०० यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच् ।

यज्युरध्वर्युः । 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' । शुन्ध्युरग्निः । दस्युस्तस्करः । जन्युः शरीरी ।

यज्, मन्, शुन्ध्, दस्, जन्, इनसे युच् प्रत्यय होता है । यज्युः = अध्वर्यु । मन्युः = दीनता, यज्ञ, एवं क्रोध में है । शुन्ध्युः = वह्निः । दस्युः = तस्कर = चोर । शरीर धारण करने वाला = जन्युः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३०१ भुजिमृङ्भ्यां युक्त्युकौ ।

भुज्युर्भोजनम् । मृत्युः ।

भुज् एवं मृङ् से इनसे क्रमशः युक् एवं युक् प्रत्यय होते हैं । भुज्युः बरतन = पात्र । मृत्युः ।

३०२ सर्तेरयुः ।

सरयुर्नदी । अयूरिति पाठान्तरम् । सरयूः ।

सृ धातु से अयु प्रत्यय होता है । सरयुः = नदी विशेष । अयूः प्रत्यय में सरयूः ।

३०३ पानीविपिभ्यः पः ।

पाति रक्षत्यस्मादात्मानमिति पापम् । तद्योगात्पापः । नेपः पुरोहितः । बाहुलकाद् गुणाभावे नीपो वृक्षविशेषः । वेष्पः पानीयम् ।

पा, नी, विषृ, इनसे प प्रत्यय होता है । जिससे अपनी रक्षा की जाय उसको 'पापम्' कहते हैं । पापयुक्त पुरुष भी 'पापः' कहा जाता है तद्योगात् ताच्छब्द्यम् । नेपः = पुरोहितः । बहुल ग्रहण से गुणाभाव में नीपः = वृक्षविशेष । वेष्पम् = पेयद्रव्य = पानीय ।

३०४ च्युवः किच्च ।

च्युपो वक्त्रम् ।

च्यु से प प्रत्यय होता है, एवं वह कित् है । च्युपः = मुख ।

३०५ स्तुवो दीर्घश्च ।

स्तूपः समुच्छ्रायः ।

स्तु से प प्रत्यय, उकार का दीर्घ होता है । स्तूपः = समुच्छ्राय ।

३०६ सुशृभ्यां निच्च ।

चात्कित् । सूपः । बाहुलकादूत्त्वम् , शूर्पम् ।

सु एवं शृ से प प्रत्यय नित् होता है एवं चकार से कित् होता है । सूपः । बहुल से ऊत्व रपर दीर्घ शूर्पम् ।

३०७ कुयुभ्यां च ।

कुर्वन्ति मण्डूका अस्मिन्कूपः । युवन्ति बध्नन्त्यस्मिन्पशुमिति यूपो यज्ञस्तम्भः ।

कु एवं यु से प प्रत्यय होता है । मेढक जिसमें शब्द करे उसको 'कूपः' । पशुबन्धन यज्ञ में वधार्थ जिसे किया जाय उस स्तम्भविशेष को 'यूपः' कहते हैं ।

३०८ खष्पशिल्पशष्पबाष्परूपपर्पतल्पाः ।

सप्तैते पप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । खनतेर्नकारस्य षत्वम् । 'खष्पौ क्रोधबलात्कारौ । शीलतेर्ह्रस्वश्च । शिल्पं कौशलम् । शसु हिंसायाम् । निपातनात्षत्वम् । शष्पं बालतृणं प्रतिभाक्षयश्च । बाधतेः षः । 'बाष्पो नेत्रजलोष्मणोः' ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाष्पं च। रौतेर्दीर्घः। 'रूपं स्वभावे सौन्दर्ये'। पृ पर्पं गृहं बालतृणं पङ्गुपीठं च। 'तल प्रतिष्ठाकरणे' चुरादिणिचो लुक्। 'तल्पं शय्याऽङ्गदारेषु'।

खष्प, शिल्प, शष्प, बाष्प, रूप, पर्प, तल्प, ये सात शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं। खन् के नकार को षकार भी हुआ, खष्पः = क्रोध एवं बलात्कार। शील से प धातु के ईकार का ह्रस्व—शिल्पम् = कुशलता। हिंसार्थक शस् धातु के सकार को षकार कर शष्पम् = कोमल तृण एवं प्रतिभा का क्षय = नाश। वाध के धकार को षकार आदेश, बाष्पः। नेत्रजलोष्मणोः = बाष्पम्। रुधातु के उकार को दीर्घ रूपम्—स्वभाव में या सौन्दर्य में। पर्पम् = गृह, बालतृण, पंगुपीठ। तल् धातु से प्रतिष्ठा करने में चुरादि ण्यन्त है उससे प प्रत्यय णिच् का लुक् तल्पम् = शय्या।

३०९ स्तनिहृषिपुषिगदिमदिभ्यो णेरित्नुच्।

'अयामन्त–' (सू० २३११) इति णेरयादेशः। स्तनयित्नुः। हर्षयित्नुः। पोषयित्नुः। गदयित्नुः वावदूकः। मदयित्नुः मदिरा।

ण्यन्त स्तन्, हृष्, पुष्, गद्, मद्, इनसे इत्नुच् प्रत्यय होता है। णि को अयादेश से 'स्तनयित्नुः = बादल। हर्षयित्नुः। पोषयित्नुः। गदीर्यः = अधिक बोलने वाला। मदिरा अर्थ में मदयित्नुः।

३१० कृहनिभ्यां क्त्नुः।

कृत्नुः शिल्पी। हत्नुर्व्याधिः शस्त्रं च।

कृ एवं हन् से क्त्नु प्रत्यय। कृत्नुः = कारीगर। हत्नुः = व्याधि या शस्त्र।

३११ गमेः सन्वच्च।

जिगत्नुः।

गम् से क्त्नु प्रत्यय होता है एवं सन्वद्भाव। जिगत्नुः।

३१२ दाभाभ्यां नुः।

दानुर्दाता। भानुः।

दा एवं भा से नु प्रत्यय होता है। दानुः = दाता। भानुः = सूर्य।

३१३ वचेर्गश्च।

वग्नुः।

वच् धातु से नु प्रत्यय, चकार के स्थान में गकारादेश होता है। वग्नुः।

३१४ धेट इच्च।

धयति तामिति धेनुः।

धेट् धातु से नु प्रत्यय एवं आकार को 'आदेच०' सूत्र से हुआ है उसको इत् आदेश होता है, सूत = बच्चों का पान कराने वाली = दूध पिलाने वाली = धेनुः।

३१५ सुवः कित्।

'सूनुः पुत्रेऽनुजे रवौ'।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सू धातु से नु प्रत्यय होता है, एवं वह कित् है। सूनुः = पुत्र में, छोटे भाई में, रवि में।

३१६ जहातेर्ढेऽन्तलोपश्च।

जह्नुः।

हा धातु से नु प्रत्यय एवं धातु का द्वित्व, अन्त्य का लोप है। जह्नुः = ऋषि जिनकी कन्या गङ्गा है।

३१७ स्थो णुः।

'स्थाणुः कीले स्थिरे हरे'।

स्था धातु से णु प्रत्यय होता है। स्थाणुः = कील में, स्थिर में भी एवं शङ्कर अर्थ में है।

३१८ अजिवृरीभ्यो निच्च।

अजेर्वी, वेणुः। वर्णुर्नददेशभेदयोः। 'रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः'।

अज्, वृ, री से णु प्रत्यय होता है एवं वह नित् है। अजको वी आदेश करके वेणुः। वर्णुः = नद में एवं देशभेद में है। रेणुः = धूलि में है।

३१९ विषेः किच्च।

विष्णुः।

विष् धातु से णु प्रत्यय होता है। वह कित् है, विष्णुः = समस्त संसार में व्याप्त रहते हुए सबके रक्षक वे हैं।

३२० कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः।

बाहुलकान्न कस्येत्सञ्ज्ञा। 'कर्को धवलघोटकः'। दाको दाता। धाकोऽनड्वानाधारश्च। राका पौर्णमासी। अर्कः। 'कल्कः पापाशये पापे दम्भे विट्किट्टयोरपि'।

कृ, दा, धा, रा, अर्च्, कल्, इनसे क प्रत्यय होता है। कर्कः = सफेद घोड़े को कहते हैं। दाकः = दाता। धाकः = अनड्वान् = बैल, आधार। राका = पौर्णमासी। राकेश चन्द्र का नाम है। अर्कः = सूर्य। कल्कः = दुष्टाशय में, पाप में, दम्भ में, विट् में, किट्ट में है।

३२१ सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक्।

'सृक उत्पलवातयोः'। 'वृकः श्वापदकाकयोः'। भूकं छिद्रम्। शुष्कः। मुष्कोऽण्डम्।

सृ, वृ, भू, शुष्, मुष्, इनसे कक् प्रत्यय होता है। सृकः = कमल या वायु। वृकः = श्वापद या काक। भूकम् = छिद्रम्। शुष्कः। मुष्कः = अण्डकोष।

३२२ शुकवल्कोल्काः।

शुभेरन्त्यलोपः। शुकः। 'वल्कं वल्कलमस्त्रियाम्'। 'उष दाहे'। षस्य लः। उल्का।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुक, वल्क, उल्का, ये कक् प्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध हैं। शुभ् का भकार लोप शुकः। वल संवरणे वल्कम् = वल्कल में है। उप दाहे कक्, पकार को लकार उल्का।

३२३ इण्भीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन्।

'एके मुख्यान्यकेवलाः', 'भेको मण्डूकमेषयोः' इति विश्वमेदिन्यौ। काकः। पाकः शिशुः। शल्कं शकलम्। अत्कः पथिकः शरीरावयवश्च। मर्कः शरीरवायुः।

इण्, भी, का, पा, शल्, अत्, मर्च्, इनसे कन् प्रत्यय। एकः = मुख्य, अन्य, केवल। भेकः = मण्डूक एवं मेघ में है। काकः। पाकः शिशुः। शल्कम् = शकलम् = टुकड़ा = खण्ड। अत्कः = पथिक एवं शरीर का अवयव। मर्कः = शरीर की वायुः।

३२४ नौ हः।

जहातेः कन्स्यान्नौ। निहाका गोधिका।

निपूर्वक हा से कन् प्रत्यय होता है। निहाका = गोधा।

३२५ नौ सदेर्डिच्च।

'निष्कोऽस्त्री हेम्नि तत्पले'।

निपूर्वक सद् से कन् प्रत्यय, वह प्रत्यय डित् होता है। डि का लोप सकार को 'सदिरप्रतेः' से षत्व निष्कः = सुवर्ण या उसका पल में है।

३२६ स्यमेरीट् च।

स्यमीको वल्मीकः वृक्षभेदश्च। इट् ह्रस्व इति केचित्। स्यमिकः।

स्यम् से कन् प्रत्यय एवं ईट् का आगम। स्यमीकः = वल्मीक, या वृक्षविशेष। स्यमिकः यह भी किसी मत से ह्रस्व इकार करके होता है।

३२७ अजियुधूनीभ्यो दीर्घश्च।

'वीकः स्याद्वातपक्षिणोः'। यूका। धूको वायुः। नीको वृक्षविशेषः।

अज्, यु, धू, नी, इनसे कन्, एवं दीर्घ। वी आदेश 'वीकः' = वायु या पक्षी। यूका = कृमि। धूकः = वायुः, नीकः = वृक्षविशेष।

३२८ ह्रियो रश्च लो वा।

'ह्रीका ह्रीका त्रपा मता'।

ह्री से कन्, रकार को विकल्प से लकार ह्रीका, ह्लीका = लज्जा में है।

३२९ शुकेरुनोन्तोन्त्युनयः।

उन, उन्त, उन्ति, उनि एते चत्वारः स्युः। शकुनः। शकुन्तः। शकुन्तिः। शकुनिः।

शक् धातु से उन, उन्त, उन्ति, उनि ये चार प्रत्यय होते हैं। शकुनः, शकुन्तः, शकुन्तिः, शकुनिः ये सब पक्षिवाचक है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३३० भुवो झिच् ।

भवन्तिर्वर्तमानकालः । बाहुलकादवेश्च । अवन्तिः । वदेर्वदन्तिः । 'किंवदन्ती जनश्रुतिः' ।

भू धातु से झिच् प्रत्यय होता है । भवन्तिः = वर्तमान काल । बहुल ग्रहण से अव् आदि से भी झिच् होता है । अवन्तिः । वदन्तिः । किंवदन्ती = जनश्रुति को कहते हैं ।

३३१ कन्युञ्झिपेश्च ।

चाद् भुवः । 'झिपण्युर्वसन्तः' इत्युज्ज्वलदत्तः । 'भुवन्युः स्वामिसूर्ययोः' ।

झिप् एवं चकार से भू से कन्युच् प्रत्यय होता है । झिपण्युः = वसन्तः । भुवन्युः = स्वामी या सूर्य ।

३३२ अनुङ् नदेश्च ।

चात्झिपेः । नदनुर्मेघः । झिपणुर्वातः ।

नद् एवं झिप् से अनुङ् होता है । नदनुः = मेघ । झिपणुः = वायु ।

३३३ कृवृदारिभ्य उनन् ।

'करुणो वृक्षभेदः स्यात्करुणा च कृपा मता' । वरुणः । दारुणम् ।

कृ, वृ, दारि इनसे उनन् होता है । करुणः = वृक्ष । करुणा = कृपा में है । वरुणः । दारुणम् ।

३३४ त्रो रश्च लो वा ।

'तरुणस्तलुनो युवा' ।

तॄ धातु से उनन् होता है, रकार के स्थान में विकल्प से लकार होता है । तरुणः । तलुनः युवा अर्थ में ये हैं ।

३३५ क्षुधिपिशिमिथिभ्यः कित् ।

क्षुधुनो म्लेच्छजातिः । पिशुनः । मिथुनम् ।

क्षुध्, पिश्, मिथ्, इनसे उनन् होता है, वह कित् । क्षुधुनः = म्लेच्छजातिः । पिशुनः = चुगली करने वाला = सूचक । मिथुनम् ।

३३६ फलेर्गुक्च ।

फल्गुनः पार्थः । प्रज्ञाद्यण् । फाल्गुनः ।

फल धातु से उनन् एवं गुक् का आगम होता है । फल्गुनः = पार्थ । फाल्गुनः प्रज्ञादित्व से अण् प्रत्यय है ।

३३७ अशेर्लशश्च ।

लशुनम् ।

अश् से उनन् होता है एवं धातु को लश् आदेश होता है । लशुनम् ।

३३८ अजेर्णिलुक् च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्जुनः।

णिजन्त अर्ज् से उनन् एवं णिच् का लुक्। अर्जुनः।

३३९ तृणाख्यायां चित्।

चित्त्वादन्तोदात्तः। अर्जुनं तृणम्।

तृण अर्थ में अर्ज् से उनन् प्रत्यय वह चित् अन्तोदात्तत्व-सम्पादनार्थ चकार यहां इत्संज्ञक किया है। अर्जुनम् = तृण।

३४० अर्तेश्च।

अरुणः।

ऋ धातु से उनन् हो तो है। गुण-अरुणः।

३४१ अजियमिशीङ्भ्यश्च।

'वयुनं देवमन्दिरम्'। यमुना। शयुनः अजगरः।

अज्, यम्, शीङ्, इनसे उनन्। वयुनम् = देवमन्दिर। यमुना। शयुनः = अजगरः।

३४२ वृतवदिहनिकमिकषिभ्यः सः।

वर्सम्। (वर्षम्) तर्सम्। (तर्षम्) 'तर्सः प्लवसमुद्रयोः'। वत्सः। वत्सम् वक्षः। हंसः। 'कंसोऽस्त्री पानभाजनम्।' कक्षम् अरण्यम्।

वृ, तृ, वद्, हन्, कम्, कष् इनसे स प्रत्यय होता है। वर्षम्। तर्षं = नौका या समुद्र। वत्सः। वत्सम् = वक्ष। हंसः। कंसः = जलादिपानपात्र। कक्षम् = नक्षत्र।

३४३ प्लुषेरच्चोपधायाः।

प्लक्षः।

प्लुष् धातु से स प्रत्यय एवं उपधा को अकार होता है। प्लक्षः = पिलखन का वृक्ष।

३४४ मनेर्दीर्घश्च।

मांसम्।

मन् धातु से स प्रत्यय एवं उपधा का दीर्घ। मांसम्।

३४५ अशेर्देवने।

अक्षः।

देवनार्थक अश् से स प्रत्यय। अक्षः = पासा।

३४६ स्नुत्रश्चिकृत्यृषिभ्यः कित्।

स्नुषा। वृक्षः। कृत्समुदकम्। ऋक्षं नक्षत्रम्।

स्नु, त्रश्च्, कृत्, ऋष्, इनसे स प्रत्यय, एवं यह प्रत्यय कित् है, स्नुषा = पुत्र की पत्नी। वृक्षः। कृत्सम् = जल। ऋक्षम् = नक्षत्र।

३४७ ऋषेर्जातौ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'ऋक्षोऽद्रिभेदे भल्लूके शोणके कृतवेधने । ऋक्षमुक्तं च नक्षत्रे' इति विश्वः ।

जाति वाच्य रहते ऋष् से स प्रत्यय वह कित् है । ऋक्षः = पर्वतविशेष, भालू, नक्षत्र आदि अनेक अर्थ है । विश्वकोष देखिये ।

३४८ उन्दिगुधिकुषिभ्यश्च ।

उत्सः प्रस्रवणम्' । गुत्सः स्तबकः । कुक्षो जठरम् ।

उन्द्, गुध्, कुष्, इनसे स प्रत्यय होता है, एवं वह कित् है । उत्सः = प्रस्रवण, । गुत्सः = स्तबक । कुक्षः = जठर ।

३४९ गृधिपण्योर्दकौ च ।

गृत्सः कामदेवः । पक्षः ।

गृध् एवं पण् से स प्रत्यय एवं वह कित् है । एवं क्रमशः धकार को एवं णकार को दकार, ककार आदेश होते हैं । गृत्सः = कामदेव । पक्षः ।

३५० अशेः सरः ।

अक्षरम् ।

अश् धातु से सर प्रत्यय होता है । अक्षरम् ।

३५१ वसेश्च ।

वत्सरः ।

वस् धातु से सर प्रत्यय होता है । वत्सरः ।

३५२ संपूर्वाच्चित् ।

संवत्सरः ।

सम् पूर्वक वस् से सर प्रत्यय एवं वह चित् है । संवत्सरः ।

३५३ कृधूमदिभ्यः कित् ।

बाहुलकान्न षत्वम् 'कृसरः स्यात्तिलौदनम्' । धूसरः । मत्सरः । मत्सरा मक्षिका ज्ञेया भम्भराली च सा मता' ।

कृ, धू, मद् इनसे सरप्रत्यय वह कित् । एवं बाहुलक बल से षत्वाभाव । कृसरः = तिलौदनम् । तिल से संमिश्रित चावल = भात । खिचड़ी में यह शब्द प्रयुक्त लक्षणा वृत्ति से है 'भाटे' का शब्दकोष देखिये विस्तृत वर्णन उसमें है । मत्सरा = मक्षिका ।

३५४ पते रश्च लः ।

पत्सलः पन्थाः ।

पत् से सर प्रत्यय एवं प्रत्यय के रकारको लकार होता है । पत्सलः = मार्ग ।

३५५ तन्यृषिभ्यां कसरन् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'तसरः सूत्रवेष्टनम्' । ऋक्षरः ऋत्विक् ।

तन् एवं ऋष् से क्सरन् होता है । सूत्रवेष्टन में तसरः । ऋक्षरः = ऋत्विक् ।

३५६ प्रीयुकृणिभ्यां कालन्ह्रस्वः सम्प्रसारणं च ।

प्रीयुः सौत्रः । प्रियालो वृक्षभेदः । कुणालो देशभेदः ।

प्रीयु एवं कण् से कालन् प्रत्यय होता है एवं क्रमशः ह्रस्व एवं सम्प्रसारण होता है । प्रियालः= वृक्षविशेष । कुणालः = देशभेद में है ।

३५७ कटिकुषिभ्यां काकुः ।

कटाकुः पक्षी । कुषाकुरग्निः सूर्यश्च ।

कट् एवं कुष् से काकु प्रत्यय होता है । कटाकुः पक्षी । कुषाकुः = अग्नि एवं सूर्य ।

३५८ सर्तेर्दुक्च ।

'सृदाकुर्वातसरितोः' ।

सृ धातु से काकु प्रत्यय होता है, दुक् का आगम । सृदाकुः = नदी या वायु ।

३५९ वृतेर्वृद्धिश्च ।

वार्ताकुः । बाहुलकादुकारस्य अत्वम् । वार्ताकम् ।

वृत् धातु से काकु प्रत्यय होता है एवं ऋकार की वृद्धि होती है । वार्ताकुः । वार्ताकम् = भण्टा, यह पित्तल है । अङ्गार से परिपक्व औषधि = "वार्ताकं पित्तलं किञ्चिद् अङ्गारपरिपाचितम्" इति वैद्यशास्त्रम् । बाहुलकात् उकार के स्थान में अकार आदेश होता है । स्त्रीलिङ्ग में वार्ताकी = सिंही, भण्टाकी, दुष्प्रधर्षिणी ।

३६० पदेर्नित्सम्प्रसारणमल्लोपश्च ।

'पृदाकुर्वृश्चिके व्याघ्रे चित्रके च सरीसृपे' ।

पद् धातु से काकु प्रत्यय वह नित् एवं रेफ का सम्प्रसारण, अकार का लोप पृदाकुः = वृश्चिक, व्याघ्र, चित्रक, सरीसृप = सर्प ।

३६१ सृयुवचिभ्योऽन्युजागूजक्नुचः ।

अन्युच्, आगूच्, अक्नुच्, एते क्रमात्स्युः । 'सरण्युर्मेघवातयोः' । यवागूः । 'वचक्नुर्विप्रवाग्मिनोः' ।

सृ, यु, वच् इन तीनों से क्रमशः तीन प्रत्यय अन्युच्, आगूच्, अक्नुच् प्रत्यय होते हैं । मेघ या वायु में सरण्युः । यवागूः । विप्र या वाग्मी में वचक्नुः ।

३६२ अनाकः शीङ्भियोः ।

शयानकोऽजगरः । भयानकः ।

शी एवं भी से आनक् होता है, शयानकः = अजगर । भयानकः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३६३ आणको लूधूशिङ्घिधाङ्भ्यः ।

लवाणकं दात्रम् । धवाणको वातः । शिङ्घाणकः श्लेष्मा । पृषोदरादित्वात्पक्षे कलोपः । 'शिङ्घाणं नासिकामले' । 'धाणको दीनारभागः' ।

लू धू, शिङ्घ्, धाङ् इनसे आणक होता है । लवाणकम् = दात्रम्–हँसुवा । धवाणकः = वायु । शिङ्घाणकः = श्लेष्मा । पृषोदरादित्व-प्रयुक्त ककार का लोप करके शिंघाणं = नासिकामल । धाणकः= दीनारभागः ।

३६४ उल्मुकदर्विहोमिनः ।

उष दाहे । षस्य लः मुक्प्रत्ययश्च । उल्मुकं ज्वलदङ्गारम् । हृणातेर्विः दर्विः । जुहोतेर्मिनिः । होमी ।

उल्मुक, दर्वि, होमी, ये निपातन से बनते हैं । 'उष दाहे' के षकार को लकार मुक् होकर उल्मुकम् = जलता हुआ अङ्गारा । कड़छी अर्थ में दर्विः । हु से मिनिः होमी ।

३६५ ह्रियः कुग्रश्च लो वा ।

ह्रीकुः-ह्रीकुः लज्जावान् ।

ह्री से कुक् प्रत्यय एवं रकार के स्थान में विकल्प से लकार होता है । ह्रीकुः, ह्रीकुः = लज्जायुक्त मनुष्य ।

३६६ हसिमृग्रिण्वाऽमिदमिलूपूधुर्विभ्यस्तन् ।

दशभ्यस्तन् स्यात् । 'तितुत्र–' (सू ३·६३) इति नेट् । हस्तः । मर्तः । गर्तः । एतः कर्बुरः । वातः । अन्तः । दन्तः । 'लोतः स्यादश्रुचिह्नयोः' । 'पोतो बालवहित्रयोः' । धूर्तः । बाहुलकात्तुसेर्दीर्घश्च । तूस्त पापं, धूलिर्जटा च ।

हस्, मृ, गृ, इण्, वा, अम, दम्, लू, पू, धुर्व, इनसे तन् प्रत्यय होता है । 'तितुत्र' से इडागम का निषेध से हस्तः । मर्त्तः । गर्त्तः । एतः = कर्बुरः । वातः । अन्तः । दन्तः, लोतः = चिह्न या अश्रु । धूर्तः । तुस् के उकार का दीर्घ बहुल से है तूस्तम् = पाप, धूलि, या जटा ।

३६७ नञ्याप इट् च ।

नापितः ।

नञ् पूर्वक आप् से तन् एवं इडागम नापितः = नाई ।

३६८ तनिमृङ्भ्यां किच्च ।

ततम् । मृतम् ।

तन्, मृङ् से तन् प्रत्यय, वह कित् है । नकार का लोप ततम् = विस्तृतम् । मृतम् ।

३६९ अञ्जिघृसिभ्यः क्तः ।

अक्तम् । घृतम् । सितम् ।

अञ्ज्, घृ, सि, से उत्तर क्त प्रत्यय होता है । अक्तम् । घृतम् । सितम् = श्वेत ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३७० दुतनिभ्यां दीर्घश्च ।

दूतः । तातः ।

दु एवं तन् से क्त प्रत्यय एवं दीर्घ दूतः । तातः ।

३७१ जेर्मूट् चोदात्तः ।

जीमूतः ।

जि से क्त प्रत्यय, दीर्घ, मूट् का आगम होता है । जीमूत = मेघ ।

३७२ लोष्टपलितौ ।

लुनातेः क्तः तस्य सुट्, धातोर्गुणः, लोष्टम् । पलितम् ।

लोष्ट एवं पलित निपातन से सिद्ध होता है । लू धातु से क्त प्रत्यय, सुट् का आगम, धातु को गुण लोष्टम् = मिट्टी का ढेला । पलितम् ।

३७३ हृश्याभ्यामितन् ।

हरितश्येतौ वर्णभेदौ ।

हृ, एवं श्या से इतन् प्रत्यय होता है । हरितः, श्येतः = वर्ण विशेष ।

३७४ रुहे रश्च लो वा ।

'रोहितो मृगमत्स्ययोः' । लोहितं रक्तम् ।

रुह धातु से इतन् प्रत्यय होता है । रकार को विकल्प से लकारादेश । रोहितः । मृग एवं मत्स्य । लोहितम् = लाल ।

३७५ पिशेः किच्च ।

पिशितं मांसम् ।

पिश् से इतन् प्रत्यय होता है वह कित् है । पिशितम् = मांस ।

३७६ श्रुदक्षिस्पृहिगृहिभ्य आय्यः ।

श्रवाय्यो यज्ञपशुः । दक्षाय्यो गरुडो गृध्रश्च । स्पृहयाय्यः । गृहयाय्यो गृहस्वामी ।

श्रु, दक्ष, स्पृह्, गृह्, इनसे आय्य प्रत्यय होता है । यज्ञपशु में = श्रवाय्यः । गरुड या गृध्र में दक्षाय्यः । स्पृहयाय्यः । गृहस्वामी में गृहयाय्यः ।

३७७ दिधिषाय्यः ।

दधातेर्द्वित्वमित्त्वं षुक्च । 'मित्र इव यो दिधिषाय्यः' ।

'दिधिषाय्यः' निपातन से सिद्ध होता है । धा से आय्य प्रत्यय, धातु का द्वित्व, इकार, षुक् आगम दिधिषाय्यः = मित्रसमान ।

३७८ वृञ एण्यः ।

वरेण्यः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृञ् धातु से ण्य प्रत्यय। स्तुतियोग्य, स्वीकार करने योग्य में वरेण्यः।

३७९ स्तुवः क्सेय्यश्छन्दसि।

'स्तुषेय्यं पुरुवर्चसम्'।

वेद में स्तु से क्सेय्य प्रत्यय होता है। महती कान्ति में स्तुषेय्यम्।

३८० राजेरन्यः।

राजन्यो वह्निः।

राज से अन्य प्रत्यय होता है। राजन्यः = अग्नि।

३८१ शॄरम्योश्च।

शरण्यम्। रमण्यम्।

शॄ एवं रम् से अन्य प्रत्यय होता है। शरण्यम्। रमण्यम् = क्रीडायोग्य।

३८२ अर्तेर्नित्च।

अरण्यम्।

ऋ धातु से अन्य प्रत्यय, वह नित् होता है। वन में अरण्यम्।

३८३ पर्जन्यः।

'पृषु सेचने' षस्य जः। 'पर्जन्यः शक्रमेघयोः'।

सेचन करने में पृष् धातु से अन्य प्रत्यय एवं षकार को जकार पर्जन्य = इन्द्र या मेघ।

३८४ वदेरान्यः।

'वदान्यस्त्यागिवाग्मिनोः'।

वद् से आन्य प्रत्यय है। वदान्यः = त्याग करने की प्रकृति वाला, या वाग्मी।

३८५ अमिनक्षियजिवधिपतिभ्योऽत्रन्।

अमत्रं भाजनम्। नक्षत्रम्। यजत्रः। वधत्रमायुधम्। 'पतत्रं तनूरुहम्'।

अम्, नक्ष्, यज्, वध्, पत् इनसे अत्रन् होता है। अमत्रम् = पात्र। नक्षत्रम्। यजत्रः। वधत्रम् = आयुध, पतत्रम् = रोम।

३८६ गडेरादेश्च कः।

कडत्रम्। डलयोरेकत्वस्मरणात्कलत्रम्।

गड से अत्रन्, गकार के स्थान में ककार। कडत्रम्। डकार लकार वे दोनों एक ही हैं। कलत्रम् = स्त्री।

३८७ वृञश्चित्।

वरत्रा चर्ममयी रज्जुः।

वृञ् धातु से अत्रन् प्रत्यय चित् होता है। वरत्रा = चमड़े से बनी हुई रस्सी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३८८ सुविदेः कत्रन् ।

'सुविदत्रं कुटुम्बकम्' ।

सुपूर्वक विद् से कत्रन् । सुविदत्रम् = कुटुम्बक ।

३८९ कृतेर्नुम्च ।

कृन्तत्रं लाङ्गलम् ।

कृत धातु से कत्रन् एवं नुम् आगम होता है । हल अर्थ में कृन्तत्रम् ।

३९० भृमृदृशियजिपर्विपच्यमितमिनमिहर्येभ्योऽतच् ।

दशभ्योऽतच्स्यात् । भरतः । भरतो-मृत्युः । 'दर्शतः सोमसूर्ययोः ।' यजतः ऋत्विक् । पर्वतः । पचतोऽग्निः । अमतो रोगः । तमतस्तृष्णापरः । नमतः प्रह्वः । हर्यतोऽश्वः ।

भृ, मृ, दृश्, यज्, पर्व, पच्, अम्, तम्, नम्, हर्य् इनसे अतच् होता है । भरतः । पोषक या राजा । मरतः = मृत्युः । दर्शतः = सोम या सूर्य । यजतः = ऋत्विक् । पर्वतः । पचतः = अग्नि । डामतः = रोग । तमतः = तृष्णापर । नमतः प्रह्वः । हर्यतः = घोड़ा = अश्व ।

३९१ पृषिरञ्जिभ्यां कित् ।

पृषतो मृगो बिन्दुश्च । रजतम् ।

पृष् एवं रञ्ज् से अतच प्रत्यय होता है, वह कित है । पृषतः मृग या बिन्दु । रजतम् ।

३९२ खलतिः ।

स्खलतेः सलोपः अतच्प्रत्ययान्तस्येत्त्वं च । खलतिर्निष्केशशिराः ।

स्खल् धातु से अतच् एवं इकार होता है । जिसके शिर में बाल न रहे उसे खलतिः कहते हैं ।

३९३ शीङ्शपिरुगमिवञ्जिजीविप्राणिभ्योऽथः ।

सप्तभ्योऽथः स्यात् । शयथोऽजगरः । शपथः । रवथः कोकिलः । गमथः पथिकः पन्थाश्च । वञ्चथो धूर्तः । वन्दीति पाठे कर्मणि कर्तरि वा प्रत्ययः । वन्दते वन्द्यते वा वन्दथः स्तोता स्तुत्यश्च । जीवथः आयुष्मान् । प्राणथो बलवान् । बाहुलकाच्छमिदमिभ्याम् । 'शमथस्तु शमः शान्तिर्दान्तिस्तु दमथो दमः' ।

शीङ्, शप्, रु, गम्, वञ्च्, जीव्, प्राण इनसे अथ प्रत्यय होता है । शयथः = अजगर । शपथः । रवथः = कोयल । गमथः = राहगीर । वञ्चथः = धूर्त । वदि से वन्दथः = स्तुतिकर्ता या स्तुति क्रियाकर्म । जीवथः = दीर्घायुः । प्राणः = बलयुक्त । बहुलग्रहण से शम् एवं दम् से अथ प्रत्यय । शम अर्थ में शमथः । दम में दमथः ।

३९४ भृञश्चित् ।

भरथो लोकपालः ।

भृञ् से अथ प्रत्यय एवं प्रत्यय यह चित है । भरथः = लोकपाल कुबेरादि आठ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३९५ रुदिविदिभ्यां डित् ।

रोदितीति रुदथः शिशुः । वेत्तीति विदथः ।

रुद एवं वद् से अथ प्रत्यय होता है वह प्रत्यय डित् है । रोदन क्रिया-कर्ता बालक रुदथः । आवरण ध्वंस-कर्ता ज्ञानवान् अर्थ में विदथः ।

३९६ उपसर्गे वसेः ।

आवसथो गृहम् , संवसथो ग्रामः ।

उपसर्गपूर्वक वस् से अथ प्रत्यय । आवसथः = गृह । संवसथः = ग्राम ।

३९७ अत्यविचमितमिनमिरभिलभिनभितपिपतिपनिपणिमहिभ्योऽसच् ।

त्रयोदशभ्योऽसच्स्यात् । अततीत्यतसो वायुरात्मा च । अवतीत्यवसो राजा भानुश्च । चमन्त्यस्मिंश्चमसः सोमपानपात्रम् । तम्यत्यस्मिन्निति तमसोऽन्धकारः । नमसोऽनुकूलः । 'रभसो वेगहर्षयोः' । लभसो धनं याचकश्च । नभते नभ्यति वा नभस आकाशः । तपसः पक्षी चन्द्रश्च । पतसः पक्षी । 'पनसः कण्टकिफलः' । पणसः पण्यद्रव्यम् । महसं ज्ञानम् ।

अत , अव् , चम् , तम् , नम् , रम् , लभ् , नभ् , तप् , पत , पन् , पण् , मह इन तेरह से असच् प्रत्यय होता है । अत सः = वायु एवं आत्मा । राजा एवं सूर्य में अवसः । सोमपानपात्र में चमसः । अन्धकार में तमसः । अनुकूल अर्थ में नमसः । वेग या हर्ष में रमसः । धन की याचना करने वाला अर्थ में लभसः । आकाश में नभसः । पक्षी या चन्द्र में तपसः । पतसः=पक्षी । कण्टकिफल में पनसः । विक्रेय द्रव्य में पणसः । ज्ञान में महसम् ।

३९८ वेञस्तुट् च ।

बाहुलकादात्त्वाभावः । वेतसः ।

वेञ् से असच् प्रत्यय होता है, एवं तुट् का आगम, आकार का बहुल ग्रहण से अभाव होता है । वेतसः ।

३९९ वहियुभ्यां णित् ।

वाहसोऽजगरः । यावसस्तृणसङ्घातः ।

वह एवं यु से असच् प्रत्यय होता है, वह णित् है । वाहसः = अजगर । यावसः = तृणसमूह ।

४०० वयश्च ।

वय गतौ, वायः काकः ।

वय् धातु से असच् होता है । वायसः = काक ।

४०१ दिवः कित् ।

दिवसम् । दिवसः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिव् से असच्, वह कित है। दिवसम्। दिवसः।

४०२ कृशृशलिकलिगर्दिभ्योऽभच्।

करभः। शरभः। शलभः। कलभः। गर्दभः।

कृ शृ, शल्, कल् गर्द् इनसे अभच् होता है। हाथी की सूंड करभः। जन्तु में शरभः। कलभः = हाथी का बच्चा। गर्दभः = गधा।

४०३ ऋषिवृषिभ्यां कित्।

ऋषभः। वृषभः।

ऋष् एवं वृष् से अभच् होता है। वह कित है। बैल में वृषभः।

४०४ रुषेर्निल्लुष च।

'रुष हिंसायाम्' अस्मादभच् नित्किकित्स्यात्, लुषादेशश्च। 'लुषभो मत्त-दन्तिनि'।

रुष् से अभच्, वह नित, कित, है एवं लुष् आदेश होता है। लुषभः = मत्त हाथी।

४०५ रासिवल्लिभ्यां च।

रासभः। वल्लभः।

रास् एवं वल्ल् से अभच् प्रत्यय होता है। रासभः = गदहा। प्रिय में वल्लभः।

४०६ जृविशिभ्यां झच्।

जरन्तो महिषः। वेशन्तः पल्वलम्।

जृ एवं वश् से झच् होता है। जरन्तः = महिषः। अल्प सरोवर = वेशन्तः।

४०७ रुहिनन्दिजीविप्राणिभ्यः षिदाशिषि।

रोहन्तो वृक्षभेदः। नन्दन्तः पुत्रः। जीवन्त औषधम्। प्राणन्तो वायुः। षित्त्वान्ङीष्। रोहन्ती।

रुह्, नन्द्, जीव्, प्राण्, इनसे आशिषि अर्थ में षित झच् होता है। रोहन्तः = वृक्षविशेष। नन्दन्तः = पुत्र। जीवन्तः औषध। प्राणन्तः = वायु। षित के कारण ङीष्—रोहन्ती।

४०८ तृभूवहिवसिभासिसाधिगडिमण्डिजिनन्दिभ्यश्च।

दशभ्यो झच्स्यात्। स च षित्। तरन्तः समुद्रः। तरन्ती नौका। भवन्तः कालः। वहन्तो वायुः। वसन्तः ऋतुः। भासन्तः सूर्यः। साधन्तो भिक्षुः। गडेर्घटादित्वान्मित्त्वं ह्रस्वः। 'अयामन्त—' (सू २३११) इति णेरयः। गण्डयन्तो जलदः। मण्डयन्तो भूषणम्। जयन्तः शक्रपुत्रः। नन्दयन्तो नन्दकः।

तृ, भू, वह्, वस्, भास्, साध्, गडि, मण्डि, जि, नन्द्, इनसे झच् होता है, वह षित करता है। तरन्तः = समुद्रः। तरन्ती = नौका। भवन्तः = काल। प्रभृति रूप है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४०९ हन्तेर्मुट् हि च ।

हेमन्तः ।

हन् धातु से झच् प्रत्यय, मुट् आगम धातु के स्थान में हि आदेश । हेमन्तः = ऋतु का नाम ।

४१० मन्देर्नलोपश्च ।

मदन्तः प्रव्रजितः ।

मन्द धातु से झच्, धातु के नकार का लोप होता है । मदन्तः = संन्यासी ।

४११ ऋच्छेररः ।

ऋच्छरा वेश्या । बाहुलकाज्जर्जरमर्झरादयः ।

ऋच्छ धातु से अर प्रत्यय होता है । वेश्या अर्थ में ऋच्छरा । बाहुलक से जर्जरः । झर्झरः आदि भी हुए ।

४१२ अतिकमिभ्रमिचमिदेविवासिभ्यश्चित् ।

षड्भ्योऽरश्चित्स्यात् । अररं कपाटम् । कमरः कामुकः । भ्रमरः । चमरः । देवरः । वासरः ।

ऋ धातु कम्, भ्रम्, चम्, देव्, वासि इनसे अर होता है, एवं वह चित् संज्ञक है । अररम् = किवाड = कपाट । कमरः = कामुकः = कामी । वासरः = दिवस ।

४१३ कुवः क्ररन् ।

कुररः पक्षिभेदः ।

कु धातु से क्ररन् होता है । कुररः पक्षी ।

४१४ अङ्गिमदिमन्दिभ्य आरन् ।

अङ्गारः । मदारो वराहः । 'मन्दारः पारिजातकः' ।

अङ्ग, मद्, मन्दि से आरन् प्रत्यय होता है । मन्दसः = पारिजातः = कल्पवृक्ष ।

४१५ गडेः कड च ।

कडारः ।

गड धातु से आरन् प्रत्यय गड को कड आदेश होता है । कडारः = कल्पवृक्ष ।

४१६ शृङ्गारभृङ्गारौ ।

शृभृञ्भ्यामारन्नुम्गुग्ह्रस्वश्च । शृङ्गारो रसः । 'भृङ्गारः कनकालुका' ।

शृंगार, भृंगार ये निपातित हैं । शृ, भृञ् से आरन्, नुम्, गुक् आगम एवं ह्रस्व होता है । शृंगारः = रसः । भृङ्गारः = कनकालुका = झारी भी इसका नाम है ।

४१७ कञ्जिमृजिभ्यां चित् ।

कञ्जिः सौत्रः । कञ्जारो मयूरः । मार्जारः ।

कञ्ज एवं मृज् से आरन् प्रत्यय । कञ्जारः = मयूर । मार्जारः = बिलाड ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४१८ कमेः किदुच्चोपधायाः ।

चिदित्यनुवृत्तेरन्तोदात्तः । कुमारः ।

कम् धातु से आरन् प्रत्यय होता है, वह कित्संज्ञक है । एवं उपधा को उकार एवं चित् की अनुवृत्ति से आरन् चित् कहा गया । अवः चितः अन्तोदात्त हुआ । कुमारः ।

४१९ तुषारादयश्च ।

तुषारः । कासारः । सहार आम्रभेदः ।

तुषारादि शब्दों की निपातन से सिद्धि होती है । सहारः = आम्र ।

४२० दीङो नट् च ।

दीनारः सुवर्णाभरणम् ।

दीङ् धातु से आरन् प्रत्यय, नुट् का आगम है । सुवर्ण-मुद्रा को दीनारः ।

४२१ सर्तेरपः पुक्च ।

सर्षपः ।

सृप् धातु से अप प्रत्यय, पुक् का आगम होता है । सर्षपः ।

४२२ उषिकुटिदलिकचिखजिभ्यः कपन् ।

'उषपो वह्निसूर्ययोः' । कुटपो मानभाण्डम् । दलपः प्रहरणम् । कचपं शाकपात्रम् । खजपं घृतम् ।

उष्, कुट्, दल्, कच्, खज् इनसे कपन् होता है । उषपः = अग्नि एवं आदित्य । कुटपः = तोल का बर्तन । दलपः = प्रहरण । कचपम् = शाक की पत्ती । खजपम् = घी ।

४२३ क्वणेः सम्प्रसारणं च ।

कुणपम् ।

कण् से कपन् प्रत्यय धातु का सम्प्रसारण होता है । कुणपम् ।

४२४ कपश्चाक्रवर्मणस्य ।

कुणपम् । स्वरे भेदः ।

चाक्रवर्मण आचार्य के मत से कप प्रत्यय होता है । उसमें स्वरभेद है ।

४२५ विटपपिष्टपविशिपोलपाः ।

चत्वारोऽमी कपन्प्रत्ययान्ताः । विट शब्दे, विटपः । विशतेरादेः पः । प्रत्ययस्य तुट्, षत्वं 'पिष्टपम् भुवनम्' । विशतेः प्रत्ययादेरित्त्वम् । विशिपं मन्दिरम् । वलतेः सम्प्रसारणम् । 'उलपं कोमलं तृणम्' ।

विटप, पिष्टप, विशिप, उलप, यह चार शब्द कपन् प्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध होते हैं । शब्दार्थक विट् से विटपः । पिष्टपम् । यहां विश् के आदि वर्ण को षकार प्रत्यय के तुट् का आगम षत्व । विश् धातु से प्रत्यय के आदि वर्ण को इकार विशिपम्=मन्दिर = गृह । उलपम् = कोमलम् । वल को सम्प्रसारण कोमल तृण उलप संज्ञा है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४२६ वृतेस्तिकन् ।

वर्त्तिका । वर्तिका ।

वृत् धातु से तिकन् प्रत्यय होता है । वर्तिका ।

४२७ कृतिभिदिलतिभ्यः कित् ।

कृत्तिका । भित्तिका । भित्तिः । लत्तिका । गोधा ।

कृत, भिद्, लद् से तिकन् । कृत्तिका, दिवाळ = भित्तिः, भित्तिका । लृत्तिका = गोधा ।

४२८ इष्यशिभ्यां तकन् ।

इष्टका । अष्टका ।

इष, अश, से तकन् प्रत्यय होता है । इष्टका । अष्टका ।

४२९ इणस्तशन्तशसुनौ ।

एतशो ब्राह्मणः । स एव एतशाः ।

इण् से तशन्, तशसुन् प्रत्यय होते हैं । एतशः एतशाः = ब्राह्मण ।

४३० वीपतिभ्यां तनन् ।

वी गत्यादौ । वेतनम् । पत्तनम् ।

वी एवं पति धातु से तनन् प्रत्यय होता है । वेतनम् । पत्तनम् ।

४३१ दृदलिभ्यां भः ।

दर्भः । 'दल्भः स्यादृषिचक्रयोः' ।

दृ एवं दल् धातु से भ प्रत्यय होता है । दर्भः । दल्भः । ऋषि एवं चक्र अर्थ है ।

४३२ अर्तिगृभ्यां भन् ।

अर्भः । गर्भः ।

ऋ एवं गृ से भन् प्रत्यय होता है । अर्भः । गर्भः । अर्भः = बालक ।

४३३ इणः कित् ।

इभः ।

इण् धातु से भन् प्रत्यय होता है, वह प्रत्यय कित् है । इभः = हस्ती ।

४३४ असिसञ्जिभ्यां किथन् ।

अस्थि । संक्थिः ।

अस्, सञ्ज से किथन् प्रत्यय होता है । अस्थि, सक्थि ।

४३५ प्लुषिकुषिशुषिभ्यः किसः ।

प्लुक्षिर्वह्निः । कुक्षिः । शुक्षिर्वातः ।

प्लुष्, कुष्, शुष्, इनसे किस प्रत्यय होता है । प्लुक्षिः = अग्नि । कुक्षिः । शुक्षिः = वायु ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४३६ अशेर्नित् ।

अक्षि ।

अश् धातु से क्सि प्रत्यय होता है, यह नित् है । अक्षि = नेत्र ।

४३७ इषेः क्सुः ।

इक्षुः ।

इष् धातु से क्सु प्रत्यय होता है । इक्षुः = गन्ना = ऊख ।

४३८ अवितृस्ततन्त्रिभ्य ईः ।

'अवीर्नारी रजस्वला' । तरीर्नौः । स्तरीर्धूमः । तन्त्रीर्वीणादेर्गुणः ।

अवि, तृ, स्तृ, तन्त्र् इनसे ईप्रत्यय । अवीः=रजस्वला स्त्री । तरीः=नौका । स्तरीः = धूमः । तन्त्रीः = वीणागुण = डोरा ।

४३९ यापोः किद् द्वे च ।

ययीरश्वः । 'पपीः स्यात्सोमसूर्ययोः' ।

या, पा धातु से ईप्रत्यय, वह कित् है एवं धातु का द्वित्व होता है । ययीः = अश्व । पपीः = सोम या सूर्य ।

४४० लक्ष्मेर्मुट् च ।

लक्ष्मीः ।

इत्युणादिषु तृतीयः पादः ।

लक्ष धातु से ईप्रत्यय होता है एवं मुट् का आगम होता है । लक्ष्मीः ।

पं० श्रीबालकृष्णपञ्चोलिविरचित उणादि सूत्रों में तृतीयपाद समाप्त ।

अथ उणादिषु चतुर्थः पादः

४४१ वातप्रमीः ।

वातशब्द उपपदे माधातोरीप्रत्ययः, स च कित् । वातप्रमीः । अयं स्त्री-पुंसयोः ।

वात शब्द उपपदक मा धातु से ईप्रत्यय होता है एवं यह प्रत्यय कित् है । वातप्रमीः यह स्त्रीलिङ्ग एवं पुंल्लिङ्ग है ।

४४२ ऋतन्यञ्जिवन्यञ्ज्यर्पिमद्यत्यञ्जिकुयुकृशिभ्यः कत्निज्यतुजलिजिष्टुजिष्ठजिसन्स्यनिथिनुल्यसासानुकः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वादशभ्यः क्रमात्स्युः । अर्तेः कत्निच्, यण् । 'बद्धमुष्टिः करो रत्निः सोऽरत्निः प्रसृताङ्गुलिः' । तनोतेर्यतुच् । तन्यतुर्वायू रात्रिश्च । अञ्जेरलिच् । अञ्जलिः । वनेरिष्टुच् । वनिष्टुः स्थविरान्त्रम् । अञ्जेरिष्ठच् । अञ्जिष्ठो भानुः । अर्पयतेरिसन् । अर्पिसोऽग्रमांसम् । मदेः स्यन्, मत्स्यः । अतेरिथिन्, अतिथिः । अङ्गेरुलिः, अङ्गुलिः । कौतेरसः । कवसः । अच इत्येके । कवचम् । यौतेरासः । यवासो दुरालभा । कृशेरानुक् । कृशानुः ।

ऋ धातु से कत्निच् एवं यण् होता है । तन् से यतुच्, अञ्जि से अलिच्, वन् से इष्णुच्, अंजि से इष्ठच्, अर्पि से इसन्, मद से स्यन्, अत से इथिन्, अङ्गि से उलि, कु से असु, या अच, यु से आस, कृश् से आनुक् होता है ।

बद्धमुष्टिकर को रत्निः कहते हैं अत्यन्तकृपण = कञ्जूस । अरत्निः प्रसृताङ्गुलिः । तन्यतुः रात्रि या वायु । कृशानुः = अग्निः ।

४४३ श्रः करन् ।

उत्तरसूत्रे कित्ग्रहणादिह ककारस्य नेत्त्वम् । शर्करा ।

श्रृ धातु से करन् प्रत्यय होता है । उत्तर सूत्र में कित ग्रहण से इस ककार का इत् संज्ञा नहीं है । शर्करा ।

४४४ पुषः कित् ।

पुष्करम् ।

पुष् धातु से करन् प्रत्यय होता है, यह कित है । पुष्करम् ।

४४५ कलंश्च ।

पुष्कलम् ।

पुष् धातु से कल प्रत्यय भी होता है । पूर्ण अर्थ में पुष्कलम् ।

४४६ गमेरिनिः ।

गमिष्यतीति गमी ।

गम् से इनि प्रत्यय होता है । गमी ।

४४७ आङि णित् ।

आगामी ।

आङ् पूर्वक गम् से इनि प्रत्यय होता है वह णित् है । आनेवाला = आगामी ।

४४८ भुवश्च ।

भावी ।

भू धातु से इनि प्रत्यय होता है । भावी = होनेवाला ।

४४९ प्रे स्थः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रस्थायी ।

प्रपूर्वक स्था से इनि प्रत्यय । प्रस्थायी ।

४५० परमे कित् ।

परमेष्ठी ।

परमपूर्वक स्था से इनि प्रत्यय होता है एवं वह कित है । परमेष्ठी ।

४५१ मन्थः ।

मन्थतेरिनिः कित्स्यात् । कित्त्वान्नकारलोपः, मन्थाः । मन्थानौ । मन्थानः ।

मन्थ धातु से इनि प्रत्यय, वह कित है, कित प्रयुक्त नकारलोप हुआ । मन्थाः ।

४५२ पतस्थ च ।

पन्थाः । पन्थानौ ।

पत से इनिप्रत्यय अन्त्य को थकार आदेश होता है । पन्थाः ।

४५३ खजेराकः ।

खजाकः पक्षी ।

खजि धातु से आक प्रत्यय होता है । खजाकः = पक्षी ।

४५४ बलाकादयश्च ।

बलाका । शलाका । पताका ।

बलाक आदि शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं । बलाका । शलाका । पताका ।

४५५ पिनाकादयश्च ।

पातेरित्वं नुम् च । 'क्लीबपुंसोः पिनाकः स्याच्छूलशङ्करधन्वनोः' । तड आघाते, तडाकः ।

पिनाक आदि निपातित है । पा के आ को इकार, नुम् आगम पिनाकः = शङ्कर धनुष् में नपुंसक या पुंल्लिङ्ग है । आघातार्थक तड से तडाकः ।

४५६ कपिदूषिभ्यामीकन् ।

कपीका पक्षिजातिः । दूषीका । 'दूषिका नेत्रयोर्मलम्' ।

कप् एवं दुष् से ईकन् होता है । पक्षिजाति = कपीका । दूषिका = नेत्र का मल ।

४५७ अनिहृषिभ्यां किच्च ।

अनीकम् । हृषीकम् ।

अन् एवं हृष् से ईकन् होता है वह कित् संज्ञक है । अनीकम् । हृषीकम् ।

४५८ चङ्कणः कङ्कणश्च ।

'कण शब्दे' अस्माद्यङ्लुगन्तादीकन्, धातोः कङ्कणादेशश्च । 'घण्टिकायां कङ्कणीका सैव प्रतिसराऽपि च' ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थक यङ् लुगन्त कण् से ईकन् प्रत्यय होता है धातु के स्थान में कङ्कणादेश होता है। छोटी घण्टी में 'कङ्कणीका', उसी को 'प्रतिसरा' भी कहते हैं।

४५९ शृपॄवृञां द्वे रुक्चाभ्यासस्य ।

शर्शरीको हिंस्रः। 'पर्परीको दिवाकरः'। वर्वरीकः कुटिलकेशः।

शृ, पृ, वृञ् से ईकन् प्रत्यय होता है, एवं धातु को द्वित्व, अभ्यास को रुक् आगम, शर्शरीकः = हिंस्र। पर्परीकः = सूर्य। पर्परीकः = कुटिलकेशः = टेढ़े बाल वाला।

४६० फर्फरीकादयश्च ।

स्फुर स्फुरणे अस्मादीकन्, धातोः फर्फरादेशः। फर्फरीकं किसलयम्। दर्दरीकं वादित्रम्। झर्झरीकं शरीरम्। तिन्तिडीको वृक्षभेदः। 'चरेर्नुम् च' (गण १६६) चञ्चरीको भ्रमरः। मर्मरीको हीनजनः। 'कर्करीका गलन्तिका'। पुणतेः पुण्डरीकं वादित्रम्। पुण्डरीको व्याघ्रोऽग्निर्दिग्गजश्च।

फर्फरीक आदि शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं। स्फुरणार्थक स्फुर धातु से ईकन् प्रत्यय, धातु के स्थान में फर्फरादेश होता है। कमल अर्थ में फर्फरीकम् = किसलय। दर्दरीकम् = बाजा = वादित्र। झर्झरीकम् = शरीर। तिन्तिडीकः = इमली। चर से नुम् ईकन् प्रत्यय चञ्चरीकः = भ्रमर। मर्मरीकः = हीनजन। कर्करीका = गलन्तिका। पुण धातु से ईकन् पुण्डरीकम् = वादित्र = बाजा। पुण्डरीकः = व्याधः = बहेलिया, या अग्नि या दिग्गज।

४६१ इषेः किद्ध्रस्वश्च ।

इषीका शलाका।

इष् धातु से ईकन् प्रत्यय होता है, वह कित् है, एवं धातु के ईकार का ह्रस्व होता है। इषीका = शलाका।

४६२ ऋजेश्च ।

ऋजीक उपहतः।

ऋज् धातु से ईकन् प्रत्यय होता है। ऋजीकः।

४६३ सर्तेर्नुम् च ।

सृणीका लाला।

सृ धातु से ईकन् प्रत्यय होता है एवं नुम् का आगम होता है। सृणीका = लाला।

४६४ मृडः कीकच्कङ्कणौ ।

मृडीको मृगः। मृडङ्कणः शिशुः।

मृड् धातु से कीकन् होता है एवं कङ्कण् प्रत्यय भी होता है। मृडीकः=मृगः। मृडङ्कणः=शिशुः।

४६५ अलीकादयश्च ।

कीकञन्ता निपात्यन्ते। 'अल भूषणादौ'। अलीकं मिथ्या। विपूर्वाद्व्यलीकं विप्रियं खेदश्च। 'वलीकनीध्रे पटलप्रान्ते' इत्यादि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अलीकादि शब्द कीकन् प्रत्ययान्त निपातित है। भूषणादि अर्थ में अल् धातु से अलीकम् = मिथ्या। न्यलीकम् = विप्रिय या खेद। विप्रिय = अप्रिय। वलीकम् = पटल के समीप।

४६६ कृतृभ्यामीषन्।

'करीषोऽस्त्री शुष्कगोमये'। तरीषः तरिता।

कृ एवं तृ से ईषन् प्रत्यय होता है। करीषः = सूखा गोबर। तरीषः = तरण क्रियाकर्ता।

४६७ शृपॄभ्यां किच्च।

शिरीषः। पुरीषम्।

शृ एवं पॄ से ईषन् प्रत्यय वह कित् है। शिरीष। पुरीषम् = विष्ठा।

४६८ अर्जे ऋजु च।

'ऋजीष पिष्टपचनम्'।

अर्ज से ईषन् प्रत्यय ऋज आदेश धातु को होता है। पिष्टपचन को ऋजीषम्।

४६९ अम्बरीषः।

अयं निपात्यते। अबि शब्दे। 'अम्बरीषः पुमान्भ्राष्ट्रम्'। अमरस्तु 'क्लीबेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ना'।

अबि से ईषन् कर निपातन से अम्बरीष होता है। भ्राष्ट्रार्थ में अम्बरीष नपुंसक एवं पुंल्लिङ्ग में भ्राष्ट्र शब्द है।

४७० कॄशॄपकटिपटिशौटिभ्य ईरन्।

करीरो वंशाङ्कुरः। शरीरम्। परीरं फलम्। कटीरः कन्दरो जघनप्रदेशश्च। पटीरश्चन्दनः कण्टकः काकश्च। 'शौटीरस्त्यागिवीरयोः।' ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्। शौटीर्यम्।

कृ शॄ पॄ कट्, पट्, शौटि इनसे ईरन् होता है। करीरः = वंशाङ्कुरः। शरीरम्। परीरम् = फलम्। कटीरः = कन्दर = जघन प्रदेश = कंदरा = गुफा या जंघा। पटीरः = चन्दन, या कण्टक या काग। शौटीरः = त्यागी या वीर। ब्राह्मणादित्व प्रयुक्त ष्यञ् से शौटीर्यम्।

४७१ वशेः कित्।

वशीरम्।

वश् से ईरन् प्रत्यय, वह कित् है। वशीरम् = खस।

४७२ कशेर्मुट् च।

कश्मीरो देशः।

कश से ईरन् प्रत्यय होता है एवं मुट् का आगम। कश्मीरः = देश।

४७३ कृञ उच्च।

कुरीरं मैथुनम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृन् से ईरन् प्रत्यय एवं ऋकार के स्थान में उकार। कुरीरम् = मैथुन।

४७४ घसेः किच्च।

क्षीरम्।

घस् से ईरन् वह कित् है। क्षीरम् = दुग्ध।

४७५ गभीरगम्भीरौ।

गमेर्भः। पक्षे नुम् च।

गम् धातु से ईरन् एवं मकार के स्थान में भकार आदेश होता है, एवं पक्ष में नुम् आगम। गभीरः, गम्भीरः = गहरा।

४७६ विषा विहा।

स्यतेर्जहातेश्च विपूर्वाभ्यामाप्रत्ययः। विषा बुद्धिः, विहा स्वर्गः, अव्यये इमे।

विपूर्वक 'षो अन्तकर्मणि' एवं हा इनसे आ प्रत्यय होता है। विषा = बुद्धिः। विहा = स्वर्गः। यह अव्यय है।

४७७ पच एलिमच्।

'पचेलिमो वह्निरव्योः'।

पच् से एलिमच् प्रत्यय होता है। पचेलिमः = अग्नि एवं रवि।

४७८ शीङो धुक्लक्वलञ्वालनः।

चत्वारः प्रत्ययाः स्युः। शीधु मद्यम्। शीलं स्वभावः। शैवलः शेवालम्। बाहुलकात् वस्य पोऽपि। 'शेवालं शैवलो न स्त्री शेपालो जलनीलिका'।

शीङ् धातु से धक्, लक्, वलञ्, वालन् चार प्रत्यय होते हैं। शीधु = मद्य। शीलम् = स्वभाव = प्रकृति। शैवलः = शेवाल। बाहुलक से वकार के स्थान में पकार होता है। शेवालः, शैवलः यह स्त्रीलिङ्ग नहीं है। शेपालः = जलनीलिका। शेवालः = सिवार।

४७९ मृकणिभ्यामूकोकणौ।

मरूको मृगः। काणूकः काकः।

मृ एवं कण् से ऊक प्रत्यय होता है एवं ऊकण् प्रत्यय भी। मरूकः = मृगः। काणूकः = काकः।

४८० वलेरूकः।

बल्लूकः पक्षी उत्पलमूलं च।

वल से ऊक होता है। वल्लूकः = पक्षी या कमल की जड़।

४८१ उलूकादयश्च।

वलेः सम्प्रसारणमूकश्च। उलूकाविन्द्रपेचकौ। वावदूको वक्ता। भल्लूकः। 'शमेर्बुक् च' (गण २००)। शम्बूको जलशुक्तिः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वल से ऊक प्रत्यय एवं वकार को सम्प्रसारण होता है। उलूक = चन्द्र एवं पेचक है। वावदूकः = वक्ता। भल्लूकः। शम् से ऊक प्रत्यय वुक् आगम जल की सीपी घोंघा = शम्बूकः।

४८२ शशिमण्डिभ्यामूकण्।

'शालूकं कन्दविशेषः।' मण्डूकः।

शल एवं मण्ड से ऊकण् होता है। शालूकम् = कन्दा।

४८३ निञो मिः।

नेमिः।

निधातु से मि प्रत्यय होता है नेमिः = लीक।

४८४ अर्तेरुच्च।

ऊर्मिः।

ऋ धातु से मि प्रत्यय, ऋकार स्थान में उकार ऊर्मिः = लहर।

४८५ भुवः कित्।

भूमिः।

भू से मि प्रत्यय, वह कित् है। भूमिः।

४८६ अश्नोते रश्च।

रश्मिः किरणो रज्जुश्च।

अश् से मि प्रत्यय, रश् आदेश। रश्मिः = किरण या रज्जुः।

४८७ दलिमः।

दल विशरणे। दल्मिरिन्द्रायुधम्।

दल धातु से मि प्रत्यय। दल्मिः = इन्द्रायुधम्।

४८८ वीज्याज्वरिभ्यो निः।

बाहुलकाण्णत्वम्। 'वेणिः स्यात्केशविन्यासः प्रवेणी च स्त्रियामुभे'। ज्यानिः। जूर्णिः।

वी, ज्या, ज्वर इनसे नि प्रत्यय एवं णत्व बाहुलक से। स्त्रियों के बालों की गुथी हुई चोटी को = वेणिः कहते हैं। उसको प्रवेणि भी कहते हैं। जीर्णता या हानि से ज्यानिः या जूर्णिः होता है।

४८९ सुवृषिभ्यां कित्।

सृणिरङ्कुशः। 'वृष्णिः क्षत्रियमेषयोः'।

सृ या वृञ् धातु से निप्रत्यय होता है। वह कित् है, सृणिः = अंकुश। क्षत्रिय या मेष में वृष्णिः।

४९० अङ्गेर्नलोपश्च।

अग्निः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अङ्ग धातु से निप्रत्यय होता है एवं नकार का लोप होता है। अग्निः।

४९१ वहिश्रिश्रुयुद्रुग्लाह्वास्नाभ्यो नित्।

वह्निः। श्रेणिः। श्रोणिः। योनिः। द्रोणिः। ग्लानिः। ह्वानिः। तूर्णिः। बाहुलकान्म्लानिः।

वह्, श्रि, श्रु, यु, द्रु, ग्ला, ह्वा, स्वर्, इनसे निप्रत्यय होता है। वह नित् है। बाहुलक से म्लानिः। श्रेणिः = पंक्तिः। अन्नादि आधार या परिमाण विशेष द्रोणिः। म्लानिः मालिन्य। ह्वानिः नुकसान।

४९२ घृणिपृश्निपार्ष्णिचूर्णिभूर्णि।

एते पञ्च निपात्यन्ते। घृणिः किरणः। स्पृशतेः सलोपः। पृश्निरल्पशरीरः। पृषेर्वृद्धिश्च। पार्ष्णिः पादतलम्। चरेरुपधाया उत्त्वम्। चूर्णिः कपर्दकशतम्। बिभर्तेरुत्त्वम्।

घृणि, पृश्नि, पार्ष्णि, चूर्णि, भूर्णि नित् प्रत्ययान्त निपातित है। घृणिः = किरण। स्पृश् धातु के सकार का लोप होता है। पृश्निः = स्वल्पकाय। पृष् की वृद्धि से पार्ष्णिः = पादतल। चर के उपधास्थ अकार को उकारादेश चूर्णिः। भृ धातु के ऋकार के स्थान में दीर्घ ऊकार भूर्णिः = पृथ्वी। पार्ष्णिः = गुल्फ का नीचे का अवयव।

४९३ वृहभ्यां विन्।

वर्विर्घस्मरः। दर्विः।

वृ एवं हृ धातु से विन् प्रत्यय होता है। वर्विः = घस्मरः। दर्विः।

४९४ जृशस्तृजागृभ्यः क्विन्।

जीर्विः पशुः। शीर्विर्हिंस्रः। स्तीर्विरध्वर्युः। जागृविर्नृपः।

जृ, शॄ, स्तृ, जागृ, इनसे क्विन् होता। जीर्विः = पशु। शीर्विः = हिंस्रः। स्तीर्विः = अध्वर्यु। जागृविः = नृपः।

४९५ दिवो द्वे दीर्घश्चाभ्यासस्य।

'दीर्दिविः स्वर्गमोक्षयोः'।

दिव धातु क्विन् प्रत्यय, धातु का द्वित्व एवं अभ्यास का दीर्घ होता है दीदिविः = स्वर्ग या मोक्ष।

४९६ कृविघृष्विछविस्थविकिकीदिवि।

कृविस्तन्तुवायद्रव्यम्। घृष्विर्वराहः। छास्थोर्ह्रस्वत्वं च। छविर्दीप्तिः। स्थविस्तन्तुवायः। दीव्यते किकिपूर्वात् किकीदिविश्चाषः। बाहुलकाद्ह्रस्वदीर्घयोर्विनिमयः। 'चाषेण किकिदीविना'।

कृवि, घृष्वि, छवि, स्थवि, किकीदिवि ये शब्द निपातित है। कृविः = तन्तुवाय द्रव्य में है। घृष्विः = वराहः। 'छा एवं स्था का ह्रस्वत्व। छविः—दीप्तिः। स्थविः = तन्तुवायः। किकी पूर्वक दिव् से इप्रत्यय किकीदिविः = चाषः। ह्रस्व एवं दीर्घ बाहुलक से है 'किकिदीविना' प्रयोग है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४९७ पातेर्डतिः ।

पतिः ।

पा धातु से डति प्रत्यय होता है । पतिः ।

४९८ शकेर्ऋतिन् ।

शकृत् ।

शक् धातु से ऋतिन् प्रत्यय होता है शकृत् = विष्ठा ।

४९९ अमेरतिः ।

अमतिः कालः ।

अम् धातु से अति प्रत्यय होता है । अमतिः = कालः ।

५०० वहिवस्यर्तिभ्यश्चित् ।

वहतिः पवनः । 'वसतिर्गृहयामिन्योः' । अरतिः क्रोधः ।

वह्, वस्, ऋ से अतिप्रत्यय होता है वह प्रत्यय चित् है । वहतिः = पवन । वसतिः = घर या रात्रिः = यामिनी । अरतिः = क्रोध ।

५०१ अञ्चेः को वा ।

अङ्कतिः, अञ्चतिर्वातः ।

अञ्च् धातु से अति प्रत्यय एवं विकल्प से चकार को ककार वायु में अङ्कतिः, या अञ्चतिः ।

५०२ हन्तेरंह च ।

हन्तेरतिः स्यादंहादेशश्च धातोः । हन्ति दुरितमनया अंहतिर्दानम् । 'प्रादेशनं निर्वपणमपवर्जनमंहतिः' ।

हन् से अति प्रत्यय एवं धातु के स्थान में अंह आदेश होता है । पाप को नष्ट करने वाला दान है = अंहतिः ।

५०३ रमेर्नित् ।

'रमतिः कालकामयोः' ।

रम् से अति प्रत्यय होता है, वह नित् संज्ञक है । रमतिः = काल में या काम में है ।

५०४ सूडः क्रिः ।

सूरिः ।

सूड् धातु से क्रिप्रत्यय होता है । सूरिः = विद्वान् ।

५०५ अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन् ।

अद्रिः । शद्रिः शर्करा । भूरि प्रचुरम् । शुभ्रिर्ब्रह्मा ।

अद्, शद्, भू, एवं शुभ् इनसे क्रिन् प्रत्यय होता है । अद्रिः = पर्वतः । शद्रिः = शर्करा । भूरि = प्रचुरम् । शुभ्रिः = ब्रह्मा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५०६ वङ्क्रयादयश्च ।

क्रिन्नन्ता निपात्यन्ते । वङ्क्रिर्वाद्यभेदो गृहदारु पार्श्वास्थि च । वप्रिः क्षेत्रम् । 'अंह्रिरङ्घ्रिश्च चरणः' । तन्दिः सौत्रो धातुः । तन्द्रिर्मोहः । बाहुलकाद्-गुणः । भेरिः ।

वङ्क्रयादि शब्द क्रिन् प्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध होते हैं वङ्कि कौटिल्ये । डुवप् बीजसन्ताने । अहि भाषार्थः णिजन्तः 'अधिगतौ, त्रिभी भये । वङ्क्रिः = बाद्य विशेष । गृहदारु पार्श्वास्थि । वप्रिः क्षेत्र । तन्द्रिः = मोह । बाहुलक से भेरिः ।

५०७ राशदिभ्यां त्रिप् ।

रात्रिः । शत्रिः कुञ्जरः ।

रा एवं शद् से त्रिप् होता है । रात्रिः । शत्रिः = हाथी ।

५०८ अदेस्त्रिनिश्च ।

चात्रिप् । अत्त्री । अत्त्रिणौ । अत्त्रिणः । अत्त्रिः । अत्त्री । अत्त्रयः ।

अद् धातु से त्रिन्, एवं त्रिप् होता है । अत्त्री = भक्षक । अत्त्रिः = ऋषि विशेष ।

५०९ पतेरत्रिन् ।

पतत्रिः पक्षी ।

पत् से अत्रिन् होता है । पतत्रिः = पक्षी ।

५१० मृकणिभ्यामीचिः ।

मरीचिः । कणीचिः पल्लवो निनादश्च ।

मृ एवं कण् से ईचि प्रत्यय । मरीचिः किरणः । कणीचिः = पल्लव या निनाद । पत्ता या शब्द ।

५११ श्वयतेश्चित् ।

श्वयीचिर्व्याधिः ।

श्वि धातु से ईचि प्रत्यय होता है वह चित् संज्ञक है । श्वयीचिः = व्याधिः ।

५१२ वेजो डिच्च ।

वीचिस्तरङ्गः । नञ्समासे अवीचिर्नरकभेदः ।

वेञ् से ईचि प्रत्यय होता है वह डित् है । वीचिः = तरङ्ग । नरक में नञ् पूर्वक वीचि का 'अवीचिः' शब्द है ।

५१३ ऋहनिभ्यामूषन् ।

अरूषः सूर्यः । हनूषा राक्षसः ।

ऋ एवं हन् से ऊषन् होता है । अरूषः = सूर्य । हनूषः = राक्षस ।

५१४ पुरः कुषन् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'पुर अग्रगमने' पुरुषः 'अन्येषामपि—' (सू ३५३६) इति दीर्घः । पूरुषः ।

पुर् धातु से कुषन् प्रत्यय होता है । पुर अग्रगमने । 'अन्येषाम्' सूत्र से दीर्घ । पूरुषः ।

५१५ पॄनहिकलिभ्य उषच् ।

परुषम् । नहुषः । कलुषम् ।

पॄ, नह्, कल्, से उषच् प्रत्यय होता है । 'परुषम् ।' कलुषम् = पाप या चैल ।

५१६ पीयेरूषन् ।

पीय इति सौत्रो धातुः । पीयूषम् । बाहुलकाद् गुणे 'पेयूषोऽभिनवं पयः' ।

पीय से ऊषन् , पीयूषम् = अमृत । बहुल से गुण पेयूषः = नूतन दूध । ताजा दूध ।

५१७ मस्जेर्नुम्च ।

'मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम् वाच्यः' । मञ्जूषा ।

मस्ज धातु से ऊषन् प्रत्यय होता है एवं नुम् का आगम । मञ्जूषा = पिटारी ।

५१८ गडेश्च ।

गण्डूषः । गण्डूषा ।

गण्ड् धातु से ऊषन् होता है । कुल्ला अर्थ में गण्डूषः ।

५१९ अर्तेररुः ।

अररुः शत्रुः । अररू । अरवः ।

ऋ धातु से अरु प्रत्यय होता है । अररुः = शत्रुः ।

५२० कुटः किच्च ।

कुटरुर्वल्मीकगृहम् । कित्त्वमिह चिन्त्यम् ।

कुट धातु से अरु प्रत्यय होता है एवं वा कित् है । कुटरुः = वल्मीकगृह ।

५२१ शकादिभ्योऽटन् ।

'शकटोऽस्त्रियाम्' । ककिर्गत्यर्थः कङ्कटः संनाहः । देवटः शिल्पी । करट इत्यादि ।

शक आदि धातुओं से अटन् प्रत्यय होता है । यान विशेष में—शकटः । देवटः = शिल्पी ।

५२२ कृकदिकडिकटिभ्योऽम्बच् ।

करम्बं व्यामिश्रम् । कदिकडी सौत्रौ । कदम्बो वृक्षभेदः । कटम्बोऽग्रभागः । कडम्बो वादित्रम् ।

कृ, कदि कडि, कटि से अम्बच् होता है । कटि कडि वे सौत्र धातु हैं ।

५२३ कदेर्णित्पक्षिणि ।

कादम्बः कलहंसः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पक्षि अर्थ में कदि से अम्बच् होता है एवं वह णित् होता है। कलहंस में = कादम्बः।

५२४ कलिकर्द्योरमः।

कलमः। कर्दमः।

कलि एवं कर्दि से अम प्रत्यय होता है। कर्दमः = कीचड़ या मुनि।

५२५ कुणिपुल्योः किन्दच्।

'कुण शब्दोपकरणयोः'। कुणिन्दः शब्दः। पुलिन्दो जातिविशेषः।

कुणि एवं पुलि से किन्दच् प्रत्यय होता है। कुणिन्दः = शब्दः। पुलिन्दः = जातिविशेष।

५२६ कुपेर्वा वश्च।

कुपिन्दकुविन्दौ तन्तुवाये।

तन्तुवाय अर्थ में कुप् से किन्दच् होता है एवं पकार को वकार विकल्प से होता है। कुपिन्दः कुविन्दः = जुलाहा = तन्तुवाय।

५२७ नौ षञ्जेर्घथिन्।

निषङ्गथिरालिङ्गकः।

निपूर्वक सञ्ज से घथिन् प्रत्यय होता है।

५२८ उद्यर्तेश्चित्।

उदरथिः समुद्रः।

उत्पूर्वक ऋ से घथिन् होता है, वह चित् है। उदरथिः = समुद्र।

५२९ सर्तेर्णिच्च।

सारथिः।

स से घथिन्, वह णित् है। सारथिः।

५३० खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ।

खर्जूरः। कर्पूरः। वल्लूरं शुष्कमांसम्। पिञ्जूलं कुशवर्तिः। 'लङ्गेर्वृद्धिश्च' (गण २०१) लाङ्गूलम्। कुसूलः। 'तमेर्वुग्वृद्धिश्च' (गण २०२)। ताम्बूलम्। 'शृणातेर्दुग्वृद्धिश्च' (गण २०३)। शार्दूलः। 'दुकोः कुक्च' (गण २०४)। दुकूलम्। कुकूलम्।

खर्जादि एवं पिञ्जादि से ऊर ऊलच् होता है। खर्जूरः आदि। लङ्ग धातु से ऊलच् एवं वृद्धि। लांगूलम्। कुसूलः = तुषाग्नि या अन्न जिसमें रक्खा जाता है वह कोठी। तमि धातु से ऊलच् होता है दुक् का आगम होता है एवं वृद्धि। ताम्बूलम्। शृ धातु से ऊलच् दुक् का आगम होता है एवं वृद्धि भी होती है। शार्दूलः। दु एवं कु से ऊलच् एवं कुक् आगम। दुकूलम् = वस्त्र।

५३१ कुवश्चट् दीर्घश्च।

कूची चित्रलेखनिका।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कु धातु से चट् प्रत्यय एवं पूर्वस्वर का दीर्घ होता है। कूची = चित्र में रङ्ग भरने की कूची।

५३२ समीणः।

समीचः समुद्रः। समीची हरिणी।

सम्पूर्वक इण् से चट् प्रत्यय होता है एवं पूर्व अच् का दीर्घ भी होता है। समीचः = समुद्र। मृगपत्नी में समीची।

५३३ सिवेष्टेरू च।

सूचो दर्भाङ्कुरः। सूची।

सिव् से चट् प्रत्यय एवं टि के स्थान में ऊकार आदेश। सूचः = कुशा का अङ्कुर।

५३४ शमेर्बन्।

शम्बो मुसलम्।

शम् से बन्। शम्बः = मुसलाग्र आदि में है।

५३५ उल्बादयश्च।

बन्नन्ता निपात्यन्ते। 'उच समवाये'। चस्य लत्वं गुणाऽभावश्च। उल्बो गर्भाशयः। शुल्बं ताम्रम्। बिल्वम्। निम्बः। बिम्बम्।

उल्ब आदि से बन् प्रत्ययान्त निपातन है। समवायार्थक उच् से बन् चकार को लकार एवं गुण का अभाव। गर्भाशय अर्थ में उल्बः। ताम्र में शुल्बम्। बिम्ब जो दर्पणादि में दिख पड़ती है आकृति।

५३६ स्थः स्तोऽम्बजबकौ।

तिष्ठतेरम्बच् अबक एतौ स्तः, स्तादेशश्च। 'स्तम्बो गुच्छस्तृणादिनः'। स्तबकः पुष्पगुच्छः।

स्था से अम्बच् एवं अबक तथा स्था को स्त आदेश होता है। फूलों का गुच्छा = स्तम्बः।

५३७ शाशपिभ्यां ददनौ।

'शादो जम्बालशष्पयोः'। शब्दः।

शा एवं शप् से द एवं दन् प्रत्यय होते हैं। छोटी २ घास में शादः। शब्दः।

५३८ अब्दादयश्च।

अवतीत्यब्दः। 'कौतेर्नुम् (च)' (ग २०५) कुन्दः।

अब्दादि शब्द निपातन से होते हैं। अब्दः। कु धातु से द प्रत्यय एवं नुम् होता है। कुन्दः।

५३९ वलिमलितनिभ्यः कयन्।

वलयम्। मलयः। तनयः।

वल् मल् तल् इनसे कयन् होता है। वलयम् = कङ्कण। मलयः = पर्वतविशेष। तनयः = पुत्र।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५४० वृहोः षुग्दुकौ च ।

वृषयः आश्रयः । हृदयम् ।

वृ, हृ इनसे कयन्, एवं धातुओं को क्रमशः षुक्, दुक् आगम होते हैं ।

५४१ मिपिभ्यां नः ।

मेरुः । पेरुः सूर्यः । बाहुलकात्-पिबतेरपि । 'संवत्सरवपुः पारुः पेरुर्वासी-र्दिनप्रणीः' ।

मि एवं पि से रु प्रत्यय होता है । मेरुः । बाहुलक से पा से भी यह प्रत्यय पारुः ।

५४२ जत्वादयश्च ।

जत्रु । जत्रुणी । अश्रु । अश्रुणी ।

जत्रु आदि शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

५४३ रुशातिभ्यां क्रुन् ।

रुरुर्मृगभेदः । शातयतीति शत्रुः । प्रज्ञादौ पाठाद्ध्रस्वत्वम् ।

रु एवं शाति से क्रुन् होता है । रुरुः = हरिणविशेष । शाति से क्रुन् एवं ह्रस्व शत्रुः ।

५४४ जनिदाच्युसृवृमदिषमिनमिभृञ्भ्य इत्वन्त्वन्त्वनण्क्नञ्श-क्स्यढडटाऽटचः ।

जनित्वौ मातापितरौ । दात्वो दाता । च्यौत्नो गन्ता अण्डजः क्षीणपुण्यश्च । सृणिरङ्कुशश्चन्द्रः सूर्यो वायुश्च । वृश आर्द्रकं मूलकं च । मत्स्यः । षण्ढः । डित्त्वाट्टिलोपः । नमतीति नटः शैलूषः । बिभर्ति भरटः कुलालो मृत कश्च ।

जन्, दा, च्यु, सृ, वृ, मद्, षम्, नम्, भृञ्, इनसे यथाक्रम इत्वन्, त्वन्, त्नण्, क्नन्, शक्, स्य, ढ, डट्, अटच् प्रत्यय होते हैं । माता एवं पिता में जनित्वौ । दाता में दात्वः । गमनकर्ता में च्यौत्नः । यह अण्डज या क्षीणपुण्य में भी है । अङ्कुश में सृणिः । चन्द्र सूर्य वायु में भी सृणिः । अद्रख = आदि एवं मूलो = मूलक में वृशः । मत्स्यः षण्ढः । डकार डित् कारण टिलोप है = नटः नम् से हुआ । बिभर्ति = भरटः कुलालः मृतकश्च ।

५४५ अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ।

पेत्वममृतम् । भृशम् ।

अन्य धातुओं से भी पूर्वोक्त प्रत्यय होते हैं ।

५४६ कुसेरुम्भोमेदेताः ।

कुसुम्भम् । कुसुमम् । कुसीदम् । कुसितो जनपदः ।

कुस् से उम्भ, उम, ईद, इत प्रत्यय होते हैं ।

५४७ सानसिवर्णसिपर्णसितण्डुलाङ्कुशचषालेल्वलपल्वलधिष्ण्य-शल्याः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सनोतेरसिप्रत्यये उपधावृद्धिश्च । सानसिर्हिरण्यम् । वृञो नुक्च । वर्णसिर्जलम् । पृ, पर्णसिर्जलगृहम् । तडि आघाते, तण्डुलाः । अकि लक्षणे, उशच्, अङ्कुशः । चषेरालः 'चषालो यूपकटकः' । इल्वलो दैत्यभेदः । पल्वलम् । घिधृषा, ण्यः । ऋकारस्येकारः, धिष्ण्यम् । शलेर्यः, शल्यम् । 'वा पुंसि शल्यं शङ्कुर्नो' ।

सानसि, वर्णसि, पर्णसि, तण्डुल, अङ्कुश, चषाल, इल्वल, पल्वल, धिष्ण्य, शल्य, ये निपातन से सिद्ध होते हैं । सन् धातु से असि प्रत्यय, एवं उपधावृद्धि से सानसिः = सुवर्ण । वृञ् से असि प्रत्यय, नुक् का आगम होता है । वर्णसिः जल । पृ से असि प्रत्यय, नुक्का आगम । पर्णसिः = जलगृह । तड से उलच्, नुक् आगम, तण्डुलाः । लक्षणार्थक अकि से उशच्, अङ्कुशः । चष् धातु से आल चषालः = यूपकटक । इल्वलः = दैत्य । धृष् धातु से ण्यप्रत्यय, ऋकार को इकार धिष्ण्यम् । शल् से यप्रत्यय शल्यम् = शङ्कुः पुंल्लिङ्ग है ।

५४८ मूशक्यविभ्यः क्लः ।

मूलम् । 'शक्लः प्रियंवदे' । अम्लो रसः । बाहुलकादमेः । अम्लः ।

मू, शक्, अव् इनसे क्ल प्रत्यय । मूलम् । क्ल प्रत्यय अम् से भी बाहुलक से होता है । अम्लः ।

५४९ माच्छाससिभ्यो यः ।

माया । छाया । सस्यम् । बाहुलकात्सुनोतेः । 'सव्यं दक्षिणवामयोः' ।

मा, छा, सस् से य प्रत्यय । बाहुलक से सु से भी य । सव्यम् ।

५५० जनेर्यक् ।

'ये विभाषा' (सू. २३१६) जन्यं युद्धम् । जाया भार्या ।

जन् से यक् प्रत्यय जन्यम् = युद्ध । ये विभाषा से आकार जाया = भार्या ।

५५१ अघ्न्यादयश्च ।

यगन्ता निपात्यन्ते । 'हन्तेर्यक् अडागम उपधालोपश्च ।' अघ्न्या माहेयी । अघ्न्यः प्रजापतिः । कनी दीप्तौ । कन्या । ववयोरैक्यम् । वन्ध्या ।

यक् प्रत्ययान्त अघ्न्यादि शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं । हन् धातु से यक्, अडागम, उपधा का लोप होता है । माहेयी अर्थ में अघ्न्या । प्रजापति अर्थ में अघ्न्यः । कनी धातु से कन्या वकार का एकत्व है । वन्ध्या ।

५५२ स्नामदिपद्यर्तिपृशकिभ्यो वनिप् ।

स्नावा रसिकः । मद्रा शिवः । पद्या पन्थाः । अर्वा तुरङ्गगर्दभयोः । पर्व ग्रन्थिः प्रस्तावश्च । शक्वा हस्ती । ङीत्रौ । शक्वरी अङ्गुलिः ।

स्ना, मद्, पद्, ऋ, पृ, शक्, से वनिप् स्नावा = रसिक । मद्रा = शिव । पन्था पद्वा । अश्व एवं निन्द्य में अर्वा । पर्व = प्रस्ताव या ग्रन्थि । शक्वा = हस्ती । शक्वरी = स्त्रीलिङ्ग में ङीप् एवं रकारान्तादेश होकर रूप सिद्धि । अङ्गुली अर्थ है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५५३ शीङ्क्रुशिरुहिजिक्षिसृधृभ्यः क्कनिप् ।

शीवा अजगरः । क्रुश्वा शृगालः । रुह्वा वृक्षः । जित्वा जेता । क्षित्वा वायुः । सृत्वा प्रजापतिः । धृत्वा विष्णुः ।

शीङ्, क्रुश्, रुह, जि, क्षि, सृ, धृ इनसे क्कनिप् प्रत्यय होता है । शीवा = अजगर । शृगाल में क्रुश्वा । वृक्ष अर्थ में रुह्वा । जयकर्ता में जित्वा । वायु में क्षित्वा । प्रजापति में सृत्वा । विष्णु में धृत्वा ।

५५४ ध्याप्योः सम्प्रसारणं च ।

धीवा कर्मकरः । पीवा स्थूलः ।

ध्या एवं प्या से क्कनिप् प्रत्यय होता है एवं सम्प्रसारण होता है । धीवा = कर्मकर । स्थूल अर्थ में पीवा ।

५५५ अदेर्घ च ।

अध्वा ।

अद् से क्वनिप् होता है एवं दकार के स्थान में धकार होता है । अध्वा ।

५५६ प्र ईरशदोस्तुट् च ।

प्रेर्त्वा प्रशस्त्वा च सागरः । प्रेर्त्वरी प्रशस्त्वरी च नदी ।

प्रपूर्वक ईर् एवं शद् से क्वनिप् होता है एवं तुट् का आगम होता है प्रेर्त्वा = समुद्र । प्रेर्त्वरी = नदी ।

५५७ सर्वधातुभ्य इन् ।

पचिरग्निः । तुडिः । तुण्डिः । वलिः । वटिः । यजिः । देवयजिः । काशत इति काशिः । यतिः । मल्लिः । मल्ली । केलिः । मसी परिणामे । मसिः । बाहुलकाद् गुणः । कोटिः । हेलिः । हलिः । बोधिः । नन्दिः । कलिः ।

सब धातुओं से इन् प्रत्यय होता है । पचिः = अग्नि में है । परिमाणार्थक मसी से इन् प्रत्यय मसिः । कोटि में बाहुलक से गुण ।

५५८ हृपिषिरुहिवृतिविदिछिदिकीर्तिभ्यश्च ।

'हरिर्विष्णावहाविन्द्रे भेके सिंहे हये रवौ । चन्द्रे कीले प्लवंगे च यमे वाते च कीर्तितः' । पेषिर्वज्रम् । रोहिर्ध्रती । वर्तिः । वेदिः । छेदिश्छेत्ता । कीर्तिः ।

हृ, पिष्, रुह, वृत्, विद्, छिद्, कीर्त्, इनसे इन् प्रत्यय होता है । हरिः = विष्णु, सर्प, इन्द्र, भेक, सिंह, अश्व, रवि, चन्द्र, वानर, वायु में है ।

५५९ इगुपधात्कित् ।

कृषिः । ऋषिः । शुचिः । लिपिः । बाहुलकाद् वत्वे लिविः । तूल निष्कर्षे । तूलिः । तूली कूर्चिका ।

इगुपध धातु से इन् कित् होता है । लिविः पकार को वकार हुआ लिविः । तूली = कूर्चिका ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५६० भ्रमेः सम्प्रसारणं च ।

भूमिर्वातः । बाहुलकाद् भ्रमिः ।

भ्रम् से इन्, सम्प्रसारण होता है । भूमिः = वातः । भ्रमि भी होता है ।

५६१ क्रमितमिशतिस्तम्भामत इच्च ।

क्रिमिः । सम्प्रसारणानुवृत्तेः कृमिरपि । तिमिर्मत्स्यभेदः । 'शितिर्मेचक-शुक्लयोः' । स्तिम्भिः समुद्रः ।

क्रम्, तम्, शद, स्तम्भ् इनसे इन् प्रत्यय होता है । धातु के अकार को इकार । क्रिमिः । संप्रसारण से कृमिः । तिमिः = मत्स्य । कृष्ण या शुक्ल में शितिः । स्तिम्भिः = समुद्रः ।

५६२ मनेरुच्च ।

मुनिः ।

मन् से इन् प्रत्यय, अकार को उकार मुनिः । मुनिशब्द गीता में—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।

स्मृतियों में—शाके पत्रे फले मूले·····स विप्रो मुनिरुच्यते ॥

५६३ वर्णेर्वलिश्चाहिरण्ये ।

वर्णिः सौत्रः । अस्य बलिरादेशः । 'करोपहारयोः पुंसि बलिः प्राण्यङ्गके स्त्रियाम् ।' बवयोरैक्यात् बलिः । हिरण्ये तु वर्णिः सुवर्णम् ।

सुवर्ण भिन्न अर्थ में वर्ण धातु से इन् प्रत्यय होता है एवं वलि आदेश होता है । बलिः = कर में उपहार में पुंल्लिङ्ग है । प्राण्यङ्ग में स्त्रियाम् = स्त्रीलिङ्ग है । हिरण्य में सुवर्णम् ।

५६४ वसिवपियजिराजिव्रजिसदिहनिवाशिवादिवारिभ्य इन् ।

'वासिश्छेदनवस्तुनि' । वापिः । वापी । याजिर्यष्टा । राजिः । राजी । व्राजि-र्वीतालिः । सादिः सारथिः । 'निघातिर्लोहघातिनी' । वाशिरग्निः । वादि-र्विद्वान् । वारिर्गजबन्धनी । जले तु क्लीबम् । बाहुलकाद् 'हारिः पथिकसंहतौ' ।

वस्, वप्, यज्, राज्, व्रज्, सद्, हन्, वाश्, वादि, एवं वृ इनसे इन् प्रत्यय होता है छेदनं वस्तु में वासिः । वपिः = तड़ाग, वापी = बावली, बारुगुर्जर भाषा में । यजनकर्ता याजिः । सादिः= सारथिः । निघातिः = लोहघातिनी । वाशिः=अग्निः । वादिः = विद्वान् । वारिः, वारी वा गजशाला जल में वारि नपुंसक है । हारिः = राहगीरसमूह यह बाहुलक से सिद्ध हुआ ।

५६५ नहो भश्च ।

नाभिः स्यात्क्षत्रिये पुंसि । प्राण्यंगे तु स्त्रियाम् । पुंस्यपीति केचित् ।

नह् से इन् प्रत्यय एवं हकार को भकार होता है । नाभिः = क्षत्रिय में पुंल्लिङ्ग है, प्राण्यङ्ग में स्त्रीलिङ्ग है ।

५६६ कृषेर्वृद्धिश्छन्दसि ।

कार्षिः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छन्द में कृष् से इञ् प्रत्यय की वृद्धि होती है। कार्षिः।

५६७ शृः शकुनौ।

शारिः, शारिका।

शकुनि अर्थ में शृ से इञ् प्रत्यय एवं वृद्धि। शारिः।

५६८ कृञ उदीचां कारुषु।

कारिः शिल्पी।

उत्तरदेश में उत्पन्न शिल्पी अर्थ में इञ् प्रत्यय एवं वृद्धि। कारिः = शिल्पी।

५६९ जनिघसिभ्यामिण्।

जनिर्जननम्। घासिर्भक्ष्यमग्निश्च।

जन्, घस् से इण्। जनिः = जन्म। भक्ष्यवस्तु या अग्नि में घासिः।

५७० अज्यतिभ्यां च।

आजिः संग्रामः। आतिः पक्षी।

अज्, अत् इनसे इण् होता है। पूर्व स्वर की वृद्धि। आजिः = संग्राम। आतिः = पक्षी।

५७१ पादे च।

पदाजिः। पदातिः।

पाद शब्द पूर्वक अज् एवं अत से इण् प्रत्यय होता है पाद को पद आदेश। पदाजिः पदातिः = पैदल चलने वाला मनुष्य।

५७२ आशिपणाय्यो रुडायलुकौ च।

अशेरुट्। राशिः पुञ्जः। पणायतेरायलुक्। पाणिः करः।

अश्, पणाय, इनसे इण् प्रत्यय होता है एवं अश् का रुट् का आगम होता है पणाय में आय भाग का लुक्=अदर्शन होता है। राशिः = पुञ्ज। पाणिः = कर।

५७३ वातेर्डिच्च।

विः पक्षी। स्त्रियां वीत्यपि।

वा से इण् प्रत्यय, वह डित् है। विः = पक्षिः। स्त्रीलिङ्ग में 'वी' होता है।

५७४ प्रे हरतेः कूपे।

प्रहिः कूपः।

कूप अर्थ में प्रपूर्वक हृ इण् प्रत्यय डित् है। प्रहिः = कूपः।

५७५ नौ व्यो यलोपः पूर्वस्य च दीर्घः।

व्येञ इण् स्यात् यलोपश्च नेर्दीर्घः। नीविः। नीवी। वस्त्रग्रन्थौ मूलधने च।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निपूर्वक ग्येञ् से इण् प्रत्यय होता है, एवं यकार का लोप है, नि के इकार को दीर्घ होता है। नीविः = वस्त्र की ग्रन्थि में या मूल धन में है।

५७६ समाने ख्यः स चोदात्तः।

समानशब्दे उपपदे ख्या इत्यस्मादिण् स्यात्, स च डिच्च यलोपश्च। समानस्य तूदात्तः स इत्यादेशश्च। समानं ख्यायते जनेरिति सखा।

समान शब्द पूर्वक ख्या में इण् वह डित् है चकार का लोप, समान को उदात्त से आदेश होता है। 'सखा' माने मित्र।

५७७ आङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च।

इण् स्यात्स च डित् आङो ह्रस्वश्च। 'स्त्रियः पाल्यश्रिकोटयः'। 'सर्पे वृत्रासुरेऽप्यहिः'।

आङ् पूर्वक श्रि एवं हन् से डित् इण् प्रत्यय, आङ् का ह्रस्व होता है।

५७८ अच इः।

रविः। पविः। तरिः। कविः। अरिः। अलिः।

अजन्त धातु से इ प्रत्यय होता है। रविः प्रभृति।

५७९ खनिकष्यज्यसिवसिवनिसनिध्वनिग्रन्थिचलिभ्यश्च।

खनिः। कषिर्हिंस्रः। अजिः। असिः। वसिर्वस्त्रम्। वनिरग्निः। सनिर्भक्तिर्दानं च। ध्वनिः। ग्रन्थिः। चलिः पशुः।

खन्, कष्, अज्, अस्, वस्, वन्, सन्, ध्वन्, ग्रन्थ्, चल् इन धातुओं से इ प्रत्यय होता है। ध्वनिः = प्रभृति।

५८० वृतेश्छन्दसि।

वर्तिः।

वेद में वृत से इ प्रत्यय होता है, वर्तिः।

५८१ भुजेः किच्च।

भुजिः।

भुज् धातु से इ प्रत्यय वह कित् है। भुजिः।

५८२ कृगृशपकुटिभिदिछिदिभ्यश्च।
ट् ट् ट् ट्

इः कित्स्यात्। किरिर्वराहः। गिरिर्गोत्राऽक्षिरोगयोः। गिरिणा काणः गिरिकाणः। शिरिः शलभो हन्ता च। पुरिर्नगरं राजा नदी च। कुटिः शाला शरीरं च। भिदिर्वज्रम्। छिदिः परशुः।

कृ गृ शृ, पॄ, कुट्, भिद्, छिद् इनसे इ प्रत्यय वह कित्। किरिः = वराह। शलभ या हन्ता को शिरिः। पुरिः = नगर, राजा एवं नदी। कुटिः = शाला या शरीर। भिदिः = वज्र। छिदिः = परशु। गिरिः = गोत्र या अक्षि रोग में है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५८३ कुडिकम्प्योर्नलोपश्च ।

कुडि दाहे, कुडिर्देहः । कपिः ।

कुण्ड् एवं कम्प् से इ प्रत्यय होता है, एवं नकारलोप । कुडिः = देह । कपिः = वानर में ।

५८४ सर्वधातुभ्यो मनिन् ।

क्रियत इति कर्म । चर्म । मस्म । जन्म । शर्म । स्थाम बलम् । 'इस्मन्' इति ह्रस्वः । छद्म । सुत्रामा ।

सर्व धातुओं से मनिन् प्रत्यय होता है । कृ धात्वर्थं व्यापारजन्य उत्पत्ति फलाश्रय जो इस अर्थ में कर्म । स्थाम = बल । छाद् = मन् ह्रस्व छद्म । सुत्रामा = इन्द्र ।

५८५ बृंहेर्नोऽच्च ।

नकारस्याऽकारः । 'ब्रह्म यत्त्वं तपो वेदो ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः' ।

बृंह् से मनिन् प्रत्यय होता है एवं नकार को अकार होता है । ब्रह्म = तप, वेद, ब्रह्मा, विप्र, प्रजापति इतने अर्थों में वह है ।

५८६ अशिशकिभ्यां छन्दसि ।

अश्मा । शक्मा ।

वेद में अश् एवं शक् धातु से मनिन् प्रत्यय होता है । अश्मा, शक्मा ।

५८७ हृभृधृसृस्तृशृभ्य इमनिच् ।

हरिमा कालः । भरिमा कुटुम्बम् । धरिमा रूपम् । सरिमा वायुः । स्तरिमा तल्पम् । शरिमा प्रसवः ।

हृ भृ, धृ, सृ, स्तृ, शृ इनसे इमनिच् प्रत्यय होता है । हरिमा = काल । भरिमा—कुटुम्बजन । धरिमा = रूप । वायु में सरिमा । तल्प में स्तरिमा । प्रसव में शरिमा ।

५८८ जनिमृङ्भ्यामिमनिन् ।

जनिमा जन्म । मरिमा मृत्युः ।

जन्, मृङ्, इनसे इमनिच् होता है । जन्म में जनिमा । मृत्यु में मरिमा ।

५८९ वेञः सर्वत्र ।

छन्दसि भाषायां चेत्यर्थः । वेमा तन्तुवायदण्डः । अर्धर्चादिः । सामनी वेमनी इति वृत्तिः ।

वेद एवं लोक में अर्थात् सर्वत्र वेञ् से इमनिच् प्रत्यय होता । तन्तुवाय दण्ड में वेमा । अर्धर्चादि से सामनी, वेमनी यह भी है ।

५९० नामन्सीमन्व्योमन्रोमन्पाप्मन्धामन् ।

सर्वे सप्त अमी निपात्यन्ते । म्नायतेऽनेनेति नाम । सिनोतेर्दीर्घः । सीमा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सीमानौ । सीमानः । पक्षे डाप् । सीमे । सीमाः । व्येञोऽन्यस्योत्त्वं गुणः । व्योम । रौतेः रोम । लोम । पाप्मा पापम् । धाम परिमाणं तेजश्च ।

नामन्, सीमन्, व्योमन्, रोमन्, लोमन्, पाप्मन् धामन् ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं । नाम । सि इमन् दीर्घ सीमा । पक्ष में डाप् सीमे । व्येञ्+इमन् अन्त्य को उकार गुण व्योम । रु इमन् रोम । पाप में पाप्मा । परिमाण या तेज में धाम ।

५९१ मिथुने मनिः ।

उपसर्गक्रियासम्बन्धो मिथुनम् । न तु स्त्रीपुंसौ । स्वरार्थमिदम् । सुशर्मा ।

मिथुन अर्थ प्रतीयमान रहते मनि प्रत्यय होता है । उपसर्गार्थ एवं धातु से वाच्य जो क्रिया इन दोनों अर्थों का जो सम्बन्ध उसको मिथुन कहते हैं । सु शृ से 'सार्वधातुभ्यः' से मनिन् प्रत्यय सिद्ध था यह मनि विधान अन्तोदात्तार्थ ही है । सुशर्मा ।

५९२ सातिभ्यां मनिन्मनिणौ ।

स्यतीति साम । सामनी । आत्मा ।

सो एवं अत् धातुओं को क्रमशः मनिन् एवं मनिण् होता है । साम । आत्मा ।

५९३ हनिमशिभ्यां सिकन् ।

हंसिका हंसयोषिति । मक्षिका ।

हन्, मश् इनसे सिकन् होता है । हंसिका = हंसपत्नी । मक्षिका ।

५९४ कोरन् ।

कवरः ।

कु धातु से अरन् प्रत्यय होता है । केशपाश में कवरः । धम्मिल्ल शब्द भी केशपाश में है ।

५९५ गिर उडच् ।

गरुडः ।

गृ से उडच् प्रत्यय होता है । गरुडः ।

५९६ इन्देः कमिर्नलोपश्च ।

इदम् ।

इन्द् धातु से कमि प्रत्यय होता है एवं नकार का लोप भी होता है । इदम् ।

५९७ कायतेर्डिमिः ।

किम् ।

कै धातु से डिमि प्रत्यय होता है । किम् ।

५९८ सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् ।

वस्त्रम् । अस्त्रम् । शस्त्रम् । 'इस्मन्नि'ति ह्रस्वत्वम् । छादनाच्छत्रम् ।

सर्व धातुओं से ष्ट्रन् प्रत्यय होता है । शास् त्रन् ह्रस्व से । शस्त्रम् । आच्छादन साधन में योगरूढ—छत्रम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५९९ अस्जिगमिनमिहनिविश्यशां वृद्धिश्च ।

आष्ट्रः । गान्त्रं शकटम् । नान्त्रं स्तोत्रम् । हान्त्रं मरणम् । वैष्ट्रं पिष्टपम् । आष्ट्रमाकाशम् ।

अस्ज्, गम्, नम्, हन्, वश्, अश्, इनसे ष्ट्रन् होता है, एवं वृद्धि। आष्ट्र। शकट में स्तोत्र में नान्त्रम्। मरण में हान्त्रम्। पिष्टप में वैष्ट्रम्। आकाश में आष्ट्रम्।

६०० दिवेर्द्युच्च ।

द्यौत्रं ज्योतिः ।

दिव् धातु से ष्ट्रन्, धातु के स्थान में आदेश द्यु होता है। एवं वृद्धि ज्योति में द्यौत्रम्।

६०१ उषिखनिभ्यां कित् ।

कित् । उष्ट्रः । खात्रं खनित्रं जलाधारश्च ।

उष् एवं खन् से ष्ट्रन् होता है एवं वह कित् है। उष्ट्रः। खनित्र एवं जलाधार में खात्रम्।

६०२ सिविमुच्योष्टेरू च ।

सूत्रम् । मूत्रम् ।

सिव् एवं मुच् से ष्ट्रन् होता है, धातु की टि को ऊकार भी होता है। सूत्रम्।

६०३ अमिचिमिदिशसिभ्यः क्त्रः ।

आन्त्रम् । चित्रम् । मित्रम् । दित्रम् । शस्त्रम् ।

अम्, चि, मिद्, शस् इनसे क्त्र होता है।

६०४ पुवो ह्रस्वश्च ।

पुत्रः ।

पू से क्त्र प्रत्यय होता है, एवं धात्ववयव अच् का ह्रस्व होता है। पुत्रः।

६०५ स्त्यायतेर्ड्रट् ।

स्त्री ।

स्त्यै धातु से ड्रट् प्रत्यय होता है। शुक्र एवं शोणित ये दोनों जिसमें रहे उसको स्त्री कहते हैं।

६०६ गुधृवीपचिवचियमिसदिक्षदिभ्यत्रः ।

'गोत्रं स्यान्नामवंशयोः' । गोत्रा पृथिवी । धर्त्रं गृहम् । वेत्रम् । पक्त्रम् । वक्त्रम् । यन्त्रम् । सत्रम् । क्षत्रम् ।

गु, धृ, वी, पच्, वच्, यम्, सद्, क्षद् इनसे त्र प्रत्यय होता है। नाम में या वंशमें गोत्रम्। पृथिवी में गोत्रा। गृह में धर्त्रम्।

६०७ हुयामाश्रुभसिभ्यत्रन् ।

होत्रम् । थात्रा । मात्रा । श्रोत्रम् । भस्त्रा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हु, या, मा, ह्वु, मस्, इनसे त्रन् होता है। मत्रा = घौंकनी।

६०८ गमेरा च।

गात्रम्।

गम् से त्रन् प्रत्यय एवं मकार को आकार आदेश होता है। गात्रम् = शरीरावयव।

६०९ दादिभ्यश्छन्दसि।

दात्रम्। पात्रम्।

छन्द में दा प्रभृति धातुओं से त्रन्। दात्रम्। पात्रम्।

६१० भूवादिगृभ्यो णित्रन्।

भावित्रम्। वादित्रम्। गारित्रमोदनम्।

भू, वादि, गृ इनसे णित्रन् होता है।

६११ चरेर्वृत्ते।

चारित्रम्।

आचरण = चरित्ररूप वृत्त वाच्य रहते चर् से णित्रन् होता है। चारित्रम्।

६१२ अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ।

अशित्रम्। वहित्रम्। धरित्री मही। त्रैङ् एवमादिभ्य उत्रः। त्रोत्रं प्रहरणम्। वृञ्, वरुत्रं प्रावरणम्।

अश प्रभृति एवं त्रा आदि धातुओं से क्रमशः इत्र एवं उत्र प्रत्यय होते हैं। अशित्रम्। वहित्रम्। धरित्री = पृथ्वी। त्रोत्रम् में—त्रैङ् पालने धातु है।

६१३ अमेर्द्विषति चित्।

अमित्रः शत्रुः।

रिपु अर्थ में अम् से चित् इत्र प्रत्यय होता है। अमित्रः = शत्रुः।

६१४ आः समिण्निकषिभ्याम्।

सम्पूर्वादिणो निपूर्वात्कसेश्च आः स्यात्। स्वरादित्वादव्ययत्वम्। समया। निकषा।

सम्पूर्वक इण् एवं निपूर्वक कष् इनसे आ प्रत्यय होता है, स्वरादित्व प्रयुक्त इसमें अव्ययत्व है। सामीप्य विशिष्ट स्थान में समया एवं निकषा है।

६१५ चितेः कणः कश्च।

बाहुलकाद् गुणः। 'चिक्कणं मसृणं स्निग्धम्'।

चित् धातु से कण प्रत्यय होता है, एवं ककार आदेश, गुणाभाव बाहुलक प्रयुक्त है। चिकन अर्थ में चिक्कणम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६१६ सूचेः स्मन् । सूक्ष्मम् ।

सूच् धातु से स्मन् प्रत्यय होता है । सूक्ष्मम् ।

६१७ पातेर्डुम्सुन् ।

पुमान् ।

पा धातु से डुम्सुन् प्रत्यय होता है । पुमान् ।

६१८ रुचिभुजिभ्यां किष्यन् ।

रुचिष्यमिष्टम् । भुजिष्यो दासः ।

रुच् एवं भुज् से किष्यन् होता है । इष्ट अर्थ में रुचिष्यम् । दास अर्थ में भुजिष्यः ।

६१९ वसेस्तिः ।

'वस्तिर्नाभेरधो द्वयोः' । 'वस्तयः स्युर्दशासूत्रे' । बाहुलकात् शासः । शास्तिः राजदण्डः । विन्ध्याख्यमगमस्यतीत्यगस्तिः । शकन्ध्वादिः ।

वस् से ति होता है । नाभि के नीचे के प्रदेश को 'वस्तिः' कहते हैं । दशा-सूत्र में वस्तयः । बहुल से शास् का शास्तिः इसका अर्थ राजदण्ड है । प्राचीन काल में यह पौराणिक कथा है कि विन्ध्याचल पर्वत इतना बढ़ा कि सूर्यमण्डल का प्रकाश तक अवरुद्ध सा हो गया । पर्वतों के या उनके अधिष्ठाताओं के गुरु अगस्त्यमुनि हैं, उनके समीप प्रार्थनार्थ देवगण गये, काशी में अगस्त्य-मुनि निवास करते थे । उस समय देवताओं की प्रार्थना उनसे थी कि आप विन्ध्याचल के पास जायँ एवं आपका वह शिष्य आप को देखकर दण्डवत् प्रणाम करेगा तब आप उससे कहिये कि जमीन में तुम तब तक पड़े रहो जब तक मैं पुनः यहां वापस न आऊँ एवं आप वापस मत आइए । तब ही इसलोगों की रक्षा होगी यह देवगण की प्रार्थना सुन कर काशीवास की ममता से वशीभूत अगस्त्यमुनि ने काशी एक महान् तीर्थ का त्याग करने से दुःखी होकर देवकार्यार्थ प्रार्थनानुकूल कार्य किया एवं पुनः काशी लौटकर न आये । पर्वत जमीन पर ही पड़ा रहा, अगस्त्य की वादा जगत् में प्रसिद्ध ही है कि कार्य न करना या अत्यधिक विलम्ब करना इसमें । इस पौराणिक कथा का दार्शनिक अनुसन्धान गवेषक वर्ग कर इसका रहस्य जगत् के सामने प्रकट करें कि वास्तविक क्या रहस्य इन गाथाओं में है । विचारार्थ यह विषय यहां प्रस्तुत है । विन्ध्याख्यम् अगम् = पर्वतम् अस्यति इति अगस्त्यः । शकन्ध्वादित्व प्रयुक्त पररूप से दीर्घ सन्धि न हुई ।

६२० सावसेः ।

स्वस्ति । स्वरादिपाठादव्ययत्वम् ।

सुपूर्वक अस् से ति प्रत्यय होता है । अव्यय कल्याणार्थक स्वस्ति शब्द है । रेफान्त स्वस्तिः शब्द अनव्यय भी है । 'स्वस्तिर्भवतु' पुराणादि में वर्णित है ।

"प्रतिगृह्णाति ते धेनुं कुटुम्बार्थे विशेषतः ।
स्वस्तिर्भवतु ते नित्यं सुखं चानुत्तमां गतिम्" ॥ १ ॥

६२१ वौ तसेः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वितस्तिः ।

विपूर्वक तस् से तिप्रत्यय होता है। वालिस्त में वितस्तिः। कहीं २ ऐसा भी पाठ है—'वौ शसेः" तब यह अर्थ है—वि पूर्वक शस् से ति प्रत्यय। विशस्तिः।

६२२ पदिप्रथिभ्यां नित् ।

पत्तिः। प्रथितिः। 'तितुत्रेष्वग्रहादीनाम्' (वा ४२१३) इतीट्।

पद्, प्रथ्, इनसे तिप्रत्यय वह नित् है। पत्तिः। प्रथितिः। तितुत्र से इट्।

६२३ दृणातेर्ह्रस्वश्च ।

दृतिः।

दृ से ति प्रत्यय एवं ऋकार का ह्रस्व भी होता है। दृतिः।

६२४ कृतृकुषिभ्यः कीटन् ।

किरीटं शिरोवेष्टनम्। तिरीटं सुवर्णम्। कुपीटं कुक्षिवारिणोः।

कृ तृ, कुष्, इनसे कीटन् प्रत्यय होता है। शिरोवेष्टन में किरीटम्। सुवर्ण अर्थ में तिरीटम्। कुक्षि एवं वारि = जल में कुपीटम्।

६२५ रुचिवचिकुचिभ्यः कितच् ।

रुचितमिष्टम्। उचितम्। कुचितं परिमितम्। कुटितं कुटिलम्।

रुच्, वच्, कुच्, कुट् इनसे कितच् होता है। इस अर्थ में रुचितम्। परिमित में कुचितम्। कुटिल में कुटितम्।

६२६ कुडिकुषिभ्यां क्मलन् ।

कुड्मलम्। कुष्मलम्।

कुड् एवं कुष् से क्मलन् होता है।

६२७ कुषेर्लश्च ।

कुल्मलं पापम्।

कुष् से क्मलन् धातु के षकार को लकार होता है। कुल्मलम् = पाप।

६२८ सर्वधातुभ्योऽसुन् ।

चेतः। सरः। पयः। सदः सभा।

सर्व धातुओं में असुन् होता है। चेतः। सरः। पयः। सदः।

६२९ रषेरत एच्च ।

रेषोऽवद्यम्।

रष् से असुन्, एवं अकार के स्थान में एकार आदेश होता है। रेषः = अवद्य।

६३० अशेर्देवने युट् च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवने स्तुतौ। यशः।

अश् से स्तुति में असुन्, युट् का आगम। यशः।

६३१ उब्जेर्बले बलोपश्च।

ओजः।

बलार्थ में उब्ज् से असुन् एवं बकार का लोप होता है। ओजः।

६३२ श्वेः सम्प्रसारणं च।

शवः। शवसी। बलपर्यायोऽयम्।

श्वि से असुन् एवं धातु को सम्प्रसारण होता है। बल में शवः।

६३३ श्रयतेः स्वाङ्गे शिरः किच्च।

श्रयतेः शिर आदेशोऽसुन् किच्च। शिरः। शिरसी।

श्रि को शिर आदेश होता है। एवं इस धातु से कित् असुन् होता है। शिरः।

६३४ अर्तेरुच्च।

उरः।

ऋ से असुन् अकार को उकारादेश। उरः।

६३५ व्याधौ शुट् च।

अर्शो गुदव्याधिः।

व्याधि में ऋ से असुन् एवं शुट् का आगम। अर्शः = बवासीर।

६३६ उदके नुट् च।

अर्तेरसुन्स्यात्तस्य च नुट्। अर्णः। अर्णसी।

जल अर्थ में ऋ से असुन् होता है एवं नुट् का आगम। अर्णः।

६३७ इण आगसि।

एनः। एनसी।

अपराध में इण् से असुन् होता है एवं नुट् का आगम। एनः का अर्थ अपराध है।

६३८ रिचेर्धने धिच्च।

चात्प्रत्ययस्य नुट्। धित्वात्कुत्वम्। रेक्णः सुवर्णम्।

धन में रिच् से असुन् होता है वह धित है, नुट् का आगम चकार से होता है। फल 'चोः' से कुत्वरूप है अर्थात् चकार को ककार होगा। सुवर्ण में रेक्णः।

६३९ चायतेरन्ने ह्रस्वश्च।

चनो भक्तम्।

अन्न में चाय् से असुन्, नुट् का आगम, धातु का ह्रस्व। भक्त में चनः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६४० वृङ्शीङ्भ्यां रूपस्वाङ्गयोः पुट् च ।

वर्पो रूपम् । शेपो गुह्यम् ।

वृङ् एवं शीङ् से रूप एवं स्वाङ्ग में असुन् प्रत्यय एवं पुट् का आगम । रूप में वर्पः । गुह्य अर्थ में शेपः' ।

६४१ स्तुरीभ्यां तुट् च ।

स्तोतः । रेतः ।

स्तु एवं री से असुन् प्रत्यय एवं तुट् का आगम । स्तोतः । रेतः = वीर्य ।

६४२ पातेर्बले जुट् च ।

पाजः । पाजसी ।

बल अर्थ में पा धातु से असुन् प्रत्यय एवं जुट् आगम होता है । बल अर्थ में पाजः ।

६४३ उदके थुट् ।

पाथः ।

जल अर्थ में पा से असुन् होता है एवं थुट् का आगम । जल में पाथः ।

६४४ अन्ने च ।

पाथो भक्तम् ।

अन्न में पा से असुन् होता है थुट् का आगम । पाथः = भक्त में ।

६४५ अदेर्नुम्धौ च ।

अदेर्भक्ते वाच्येऽसुन्नुमागमो धादेशश्च । अन्धोऽन्नम् ।

भक्त में अद् असुन् , नुम् का आगम एवं दकार को धकार । अन्धः = अन्न में ।

६४६ स्कन्देश्च स्वाङ्गे ।

स्कन्धः । स्कन्धसी ।

स्वाङ्गार्थक स्कन्द् से असुन् एव धकार आदेश दकार को होता है । स्कन्धः ।

६४७ आपः कर्माख्यायाम् ।

कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा । अप्नः । अपः । बाहुलकात् आपः । आपसी ।

कर्माख्यान में आप् धातु से असुन् होता है, एवं ह्रस्व, नुट् होता है । विकल्प से ।

६४८ रूपे जुट् च ।

अज्जो रूपम् ।

आप् से रूप अर्थ में असुन् , धातु का ह्रस्व एवं जुट् का आगम रूप में । अज्जः ।

६४९ उदके नुम्भौ च ।

अम्भः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदक = जल अर्थ में आप् से असुन्, नुम् का आगम, एवं म आदेश। अम्भः = जल।

६५० नहेर्दिवि भश्च।

नभः।

आकाश में नह् से असुन्, हकार को भकार। नभः = आकाश।

६५१ इण आगोऽपराधे च।

'आगः पापाऽपराधयोः'।

इण् को आग आदेश एवं इण् धातु से असुन्। पाप एवं अपराध में आगः।

६५२ अमेर्हुक्च।

अंहः।

अम् से असुन्, हुक् आगम होता है। अंहः।

६५३ रमेश्च।

रंहः।

रम् से असुन् एवं हुक् का आगम। वेग में रंहः।

६५४ देशे ह च।

रमन्तेऽस्मिन् रहः।

देश अर्थ में रम् से असुन्, हकार आदेश। रहः = रमण का एकान्त स्थान।

६५५ अञ्चयञ्जियुजिभृजिभ्यः कुश्च।

एभ्योऽसुन्कवर्गश्चान्तादेशः। 'अङ्कश्चिह्नशरीरयोः' अङ्कः पक्षी। योगः समाधिः। भर्गस्तेजः।

अञ्च् अञ्ज् युज् भृज् इन से असुन् एवं कवर्ग अन्तादेश होता है। चिह्न एवं शरीर में अङ्कः। पक्षी में अङ्कः। योगः = समाधिः = चित्तवृत्ति का निरोध अर्थ पातञ्जल योगशास्त्र में विस्तृत वर्णन है देखिए उसको तेज में भर्गः।

६५६ भूरञ्जिभ्यां कित्।

भुवः। रजः।

भू एवं रञ्ज से असुन् होता है, वह कित्। भुवः। रजः।

६५७ वसेर्णित्।

वासो वस्त्रम्।

वस् से असुन्, वह णित् है। वस्त्र अर्थ में वासः।

६५८ चन्देरादेश्च छः।

छन्दः।

चन्द् से असुन् आदि वर्ण को छकार आदेश। छन्दः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६५९ पचिवचिभ्यां सुट् च ।

'पक्षसी तु स्मृतौ पक्षौ' । वक्षो हृदयम् ।

पच् एवं वच् से असुन् एवं सुट् आगम होता है । स्मृतौ पक्षौ = पक्षसी । हृदय अर्थ में वक्षः ।

६६० वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि ।

वक्षाः अनडवान् । हासाश्चन्द्रः । धासाः पर्वत इति प्राञ्चः, वस्तुतस्तु णिदित्यनुवर्तते, न तु सुट् । तेन वहेरुपधावृद्धिः । इतरयोः 'आतो युक्—' (सू० २७६१) इति युक् । 'शोणा धृष्णू नृवाहसा' । 'श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः' । 'विश्वो विहायाः' । 'त्राजम्भरो विहायाः' । 'देवो नयः पृथिवीं विश्वधायाः' । 'अधारयत्पृथिवीं विश्वधायसम्' । 'धर्णसं भूरिधायसम्' इत्यादि ।

वेद में वह्, हा, धाञ् से असुन् प्रत्यय होता है । वक्षाः = बैल । चन्द्र में हासाः । पर्वत में धासाः । यह प्राचीन मत है । वस्तुतः यहां णित् की अनुवृत्ति है, सुट् की नहीं । अतः वह धातु की उपधा की वृद्धि होगी । एवं अन्य धातुओं को युक् का आगम होगा ।

६६१ इण आसिः ।

अयाः वह्निः । स्वरादिपाठादव्ययत्वम् ।

इण् से आसि प्रत्यय । अयाः = अग्निः । यह अव्यय है । स्वादि में पठित है ।

६६२ मिथुनेऽसिः पूर्ववच्च सर्वम् ।

उपसर्गविशिष्टो धातुर्मिथुनं तत्रासुनोऽपवादोसिः स्वरार्थः । यस्य धातोर्यत्कार्यम् असुन्प्रत्यये उक्तं तदत्रापि भवतीत्यर्थः । अशेर्देवने युट् चेत्यादि । सुयशाः ।

धातु से असि प्रत्यय मिथुन अर्थ में । एवं पूर्ववत् आगम आदि सम्पूर्ण कार्य । जिन धातुओं से जो जो कार्य असुन् में कहे गये हैं वे वे कार्य असि प्रत्यय करने पर भी उन उनसे करना चाहिये । उपसर्ग विशिष्ट धातु से असुन् का बाधक असि होता है । स्वरार्थ असि है—अन्तोदात्तार्थ ।

६६३ नञि हन एह च ।

अनेहाः । अनेहसौ ।

नञ् पूर्वक हन् से असिप्रत्यय एवं धातु से एह आदेश ।

६६४ विधाञो वेध च ।

विदधातीति वेधाः ।

विपूर्वक धाञ् से असिन् एवं धा के स्थान में वेध आदेश होता है । सृष्टि के निर्माता को वेधाः ।

६६५ नुवो धुट् च ।

नोधाः ऋषिः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नु से असिन् । एवं धुट् का आगम । नोधाः ।

६६६ गतिकारकोपपदयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च ।

असिः स्यात् । सुतपाः । जातवेदाः । 'गतिकारकोपपदात्कृत्' (सू० ३८७३) इत्युत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वे सति शेषस्यानुदात्तत्वे प्राप्ते तदपवादार्थमिदम् ।

गति एवं कारक उपपद में रहने पर धातु से असि प्रत्यय होता है एवं पूर्वपद का प्रकृति स्वर होता है । अग्नि में सुतपाः । 'गतिकारकोपपदात्' इससे उत्तरपद प्रकृति स्वर होने से अवशिष्ट को अनुदात्तत्व प्राप्त होने पर उसके बाधनार्थ यह सूत्र है ।

६६७ चन्द्रे मो डित् ।

चन्द्रोपपदान्माङोऽसिः स्यात् , स च डित् । चन्द्रमाः ।

चन्द्र शब्द उपपद होने पर माङ् से असि प्रत्यय एवं वह डित् है । चन्द्रमाः ।

६६८ वयसि धाञः ।

वयोधास्तरुणः ।

वयस् शब्द पूर्वक धाञ् से असि प्रत्यय । तरुण अर्थ में वयोधाः ।

६६९ पयसि च ।

पयोधाः समुद्रो मेघश्च ।

पयस् शब्द पूर्वक धाञ् से असि प्रत्यय होता है । समुद्र या मेघ में पयोधाः ।

६७० पुरसि च ।

पुरोधाः ।

पयस् शब्द पूर्वक धाञ् से असि प्रत्यय होता है । पुरोहित अर्थ में पुरोधाः ।

६७१ पुरूरवाः च ।

पुरु शब्दस्य दीर्घो रौतेरसिश्च निपात्यते ।

पुरु पूर्वक रु धातु से आम प्रत्यय पुरु के अन्त्य का दीर्घ होता है । पुरूरवाः = राजविशेष ।

६७२ चक्षेर्बहुलं शिच्च ।

नृचक्षा ।

चक्ष् से असि प्रत्यय, वह शित् है, बहुल ग्रहण से । नृचक्षाः ।

६७३ उषः कित् ।

उषः ।

उष् से असि प्रत्यय, वह कित् है । उषः ।

६७४ दमेरुनसिः ।

'सप्ताचिर्दमुनाः' ।

दम् धातु से उनसि प्रत्यय होता है । दमुनाः = अग्नि ।

. CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६७५ अङ्गतेरसिरिरुडागमश्च ।

अङ्गिराः ।

अङ्ग धातु से असि प्रत्यय इरुट् का आगम । अङ्गिराः ।

६७६ सर्तेरप्पूर्वादसिः ।

अप्सराः प्रायेणायं भूम्नि । अप्सरसः ।

अप् पूर्वक सृ से असि प्रत्यय । अप्सराः यह प्रायः बहु वचनान्त है । अप्सरसः ।

६७७ विदिभुजिभ्यां विश्वे ।

विश्ववेदाः । विश्वभोजाः ।

विश्व पूर्वक विद् एवं भुज् से असि प्रत्यय होता है । विश्ववेदाः । विश्वभोजाः ।

६०८ वशेः कनसिः ।

सम्प्रसारणम् । उशनाः ।

इत्युणादिषु चतुर्थः पादः ।

वश्धातु से कनसि प्रत्यय होता है एवं धातु के यण् को सम्प्रसारण होता है । शुक्र अर्थ में उशनाः ।

पं. श्री बालकृष्ण पञ्चोली की विरचित रत्नप्रभा में उणादि सूत्रों का चतुर्थ पाद समाप्त

अथोणादिसूत्रेषु पञ्चमः पादः

६७९ अदि भुवो डुतच् ।

अद्भुतम् ।

अद् उपपदक भू से डुतच् प्रत्यय होता है । अद्भुतम् ।

६८० गुधेरूमः ।

गोधूमः ।

गुध से ऊम प्रत्यय होता है । गेहूँ अर्थ में गोधूमः ।

६८१ मसेरूरन् ।

मसूरः । प्रथमे पादे असेरुरन्, 'मसेश्च' इत्यत्र व्याख्यातः ।

मस् धातु से ऊरन् । मसूरः । प्रथम पाद में 'असेः' इस सूत्र में यह कथित है ।

६८२ स्थः किच्च ।

स्थूरो मनुष्यः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्था धातु से ऊरन् प्रत्यय, वह कित है। स्थूरो मनुष्यः।

६८३ पातेरतिः।

पातिः स्वामी। सम्पातिः पक्षिराजः।

पा धातु से अति प्रत्यय। पातिः = स्वामी। गरुड में सम्पातिः।

६८४ वातेर्नित्।

'वातिरादित्यसोमयोः'।

वा से अति, वह नित है। सूर्य एवं चन्द्र में वातिः।

६८५ अर्तेश्च।

अरतिरुद्वेगः।

ऋ धातु से अति प्रत्यय होता है। उद्वेग अर्थ में अरतिः।

६८६ तृहेः कनो हलोपश्च।

तृणम्।

तृह से कन प्रत्यय होता है, हकार का लोप होता है। तृणम्।

६८७ वृञ्लुठितनिताडिभ्य उलच् तण्डश्च।

व्रियन्ते लुट्यन्ते तन्यन्ते ताड्यन्त इति वा तण्डुलाः।

वृञ्, लुट्, तन्, ताडि, इनसे उलच् प्रत्यय एवं धातु को तण्ड आदेश होता है। तण्डुलाः।

६८८ दंसेष्टनौ च आ च।

'दासः सेवकशूद्रयोः'।

दंस् से ट एवं टन् एवं नकार के स्थान में आ आदेश। दासः सेवक एवं शूद्र में।

६८९ दंशेश्च।

दाशो धीवरः।

दंश से भी वही प्रत्यय एवं आदेश होता है। दाशः।

६९० उदि चेर्डैसिः।

स्वरादिपाठादव्ययत्वम्। उच्चैः।

उत्पूर्वक चि से डैसि प्रत्यय होता है। उच्चैः उच्चत्व विशिष्ट अधिकरण = स्थान में अव्यय यह है।

६९१ नौ दीर्घश्च।

नीचैः।

निपूर्वक चि से डैसि प्रत्यय एवं नि के इकार का दीर्घ होता है। नीचैः = यह भी नीचत्व विशिष्ट स्थानार्थक अव्यय है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६९२ सौ रमेः क्तौ दमे पूर्वपदस्य च दीर्घः ।

रमेः सुपूर्वाद्दमे वाच्ये क्तः स्यात् । कित्त्वादनुनासिकलोपः । सूरत उपशान्तो दयालुश्च ।

सुपूर्वक रम् से दम अर्थ में क्तप्रत्यय, पूर्वपद का दीर्घ, कित् के कारण अनुनासिक वर्ण का लोप होता है । सूरतः = दयालु या उपशान्त ।

५९३ पूञो यण्णुग्ह्रस्वश्च ।

यत्प्रत्ययः । पुण्यम् ।

पू धातु से यत् प्रत्यय एवं णुक् का आगम एवं ह्रस्व होता है । पुण्यम् ।

६९४ स्रंसेः शिः कुट् किच्च ।

स्रंसतेः शिरादेशो यत्प्रत्ययः कित्त्वस्य कुडागमश्च । शिक्यम् ।

स्रंसधातु से यत् प्रत्यय एवं वह कित्, धातु को शि आदेश, उसको कुडागम । छींका अर्थ में शिक्यम् ।

६९५ अर्तेः क्युरुच्च ।

उरणो मेषः ।

ऋ धातु से क्यु प्रत्यय, अकार के स्थान में उकार । उरणः = मेढा ।

६९६ हिंसेरीरन्नीरचौ ।

'हिंसीरो व्याघ्रदुष्टयोः' ।

हिंस धातु से ईरन् एवं ईरच् होता है । हिंसीरः = दुष्टजन या व्याघ्र ।

६९७ उदि दृणातेरजलौ पूर्वपदान्त्यलोपश्च ।

उदरम् ।

उत्पूर्वक दृ से अच् एवं अल् प्रत्यय होता है पूर्वपद के दकार का लोप । उदरम् = पेट ।

६९८ डित्खनेर्मुट् स चोदात्तः ।

अजल् च डित् स्याद्धातोर्मुट्, स चोदात्तः । मुखम् ।

खन् धातु से अच् एवं अल् होते हैं, एवं धातु को मुट् आगम, वह डित् एवं उदात्त स्वर होता है । मुखम् ।

६९९ अमेः सन् ।

अंसः ।

अम् से सन् प्रत्यय होता है । अंसः ।

७०० मुहेः खो मूर्च ।

मूर्खः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुह् से ख प्रत्यय एवं मूर् आदेश होता है। मूर्खः।

७०१ नहेर्हलोपश्च।

नखः।

नह् से ख प्रत्यय हकार का लोप होता है। नखः।

७०२ शीङो ह्रस्वश्च।

शिखा।

शीङ् से खप्रत्यय एवं ह्रस्व होता है। शिखा।

७०३ माङ ऊखो मय् च।

मयूखः।

माङ् से ऊख प्रत्यय एवं धातु को मय् आदेश। किरण अर्थ में मयूखः।

७०४ कलिगलिभ्यां फगस्योच्च।

कुल्फः शरीरावयवो रोगश्च। गुल्फः पादग्रन्थिः।

कल्, गल्, से फक् प्रत्यय एवं अ को उत् आदेश होता है। शरीर का अवयव या रोग में कुल्फः। गुल्फः = पादग्रन्थि।

७०५ स्पृशेः श्वण्शुनौ पृ च।

श्वण्शुनौ प्रत्ययौ। पृ इत्यादेशः। पार्श्वम्। 'पार्श्वोऽस्त्री कक्षयोरधः'। पर्शुरायुधम्।

स्पृश् से श्वण् एवं शुन् प्रत्यय एवं धातु को पृ आदेश होता है।

७०६ श्मनि श्रयतेर्डुन्।

श्मञ्छब्दो मुखवाची। मुखमाश्रयत इति श्मश्रुः।

श्मन् पूर्वक श्रि से डुन् प्रत्यय होता है। श्मन् का अर्थ है मुख। जो मुख को आश्रय करे उसे श्मश्रुः = मूंछ।

७०७ अश्रूवादयश्च।

अश्रु नयनजलम्।

निपातन से अश्रु आदि शब्द सिद्ध होते हैं। नेत्र के जल = आंसुओं को अश्रु कहते हैं।

७०८ जनेष्टन्लोपश्च।

जटाः।

जन् से टन् प्रत्यय एवं धातु के नकार का लोप होता है।

७०९ अचतस्य जङ्घ च।

तस्य जनेर्जङ्घादेशः स्यादच्च। जङ्घा।

जन् से अच् प्रत्यय, धातु को जंघ आदेश होता है। जङ्घा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

७१० हन्तेः शरीरावयवे द्वे च ।

जघनम् । 'पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः बलीबे तु जघनं पुरः' ।

शरीरावयव में हन् से अच् होता है, एवं द्वित्व होता है । जघनम् = स्त्री के कमर के नीचे का भाग नितम्ब कहाता है एवं पुरोभाग जङ्घा है ।

७११ क्लिशेरन् लो लोपश्च ।

लकारस्य लोपः । केशः ।

क्लिश् से अन् प्रत्यय होता है एवं लकार का लोप । केशः ।

७१२ फलतेरितजादेश्च पः ।

पलितम् ।

फल से उत्तर इतच् एवं फकार को पकारादेश होता है । पलितम् ।

७१३ कृञादिभ्यः संज्ञायां वुन् ।

करकः । करका । कटकः । नरकम् । करकम् । नरकः । 'नरको नारकोऽपि च' इति द्विरूपकोशः । सरकं गगनम् । कोरकः । कोरकं च ।

कृञ् आदि धातुओं से संज्ञा में वुन् प्रत्यय होता है ।

७१४ चीकयतेराद्यन्तविपर्ययश्च ।

कीचको वंशभेदः ।

ण्यन्त चीक् से वुन् होता है एवं आदि एवं अन्त्य वर्ण का विपर्य्यय होता है । वायु भर जाने से जिससे शब्द होता है उसको कीचकः कहते हैं ।

७१५ पचिमच्योरिच्चोपधायाः ।

पेचकः । मेचकः ।

पच एवं मच् से वुन् प्रत्यय एवं उपधा को इकार होता है । पेचकः । मेचकः ।

७१६ जनेरठ च ।

जठरम् ।

जन् से अर् प्रत्यय एवं धातु के नकार को ठकार होता है । जठरम् ।

७१७ वचिमनिभ्यां चिच्च ।

वठरो मूर्खः । 'मठरो मुनिशौण्डयोः' । विदादित्वान्माठरः । गर्गादित्वान्माठर्यः ।

वच् एवं मन् से अर होता है, वह चित् है । मूर्ख में वठरः । मठरः = मुनि एवं शौण्ड में । माठरः = विदादिगण में पाठ से अञ् वृद्धि । गर्गादित्व प्रयुक्त यञ् से माठर्यः ।

७१८ ऊर्जि दृणातेरलचौ पूर्वपदान्तलोपश्च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'ऊर्दरः शूररक्षसोः'।

ऊर्ज उपपद रहते दृ धातु से अल् एवं अच् प्रत्यय होता है एवं पूर्व पद के अन्त का लोप होता है। शूर में एवं राक्षस में ऊर्दरः।

७१९ कृदरादयश्च।

कृदरः कुसूलः। सृदरं बिलवत्। सृदरः सर्पः।

कृदर आदि शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं। कुसूल को कृदरः। बिलवत् में सृदरम्। सर्प में सृदरः।

७२० ह्यन्तेर्युन्नाद्यन्तयोर्घत्वतत्वे।

घातनो मारकः।

हन् से युन् प्रत्यय एवं धातु के आदि वर्ण जो हकार है उसको घकार एवं अन्त्यवर्ण नकार को तकार आदेश होता है। मारक में घातनः।

७२१ क्रमिगमिक्षमिभ्यस्तुन्वृद्धिश्च।

क्रान्तुः पक्षी। गान्तुः पथिकः। क्षान्तुर्मशकः।

क्रम् गम्, क्षम्, इनसे तुन् एवं वृद्धि। पक्षी में क्रान्तुः। पथिक में गान्तुः। मच्छर में क्षान्तुः।

७२२ हर्यतेः कन्यन्हिरच्।

कन्यन्प्रत्ययः। हिरण्यम्।

हर्य्य से कन्यन्, धातु को हिरच् आदेश। सुवर्ण में हिरण्यम्।

७२३ कृञः पासः।

कर्पासः। बिल्वादित्वात्कार्पासं वस्त्रम्।

कृञ् से पास प्रत्यय होता है। कर्पासः = कपास। बिल्वादित्व के कारण कार्पासम् = कपड़ा = वस्त्र।

७२४ जनेस्तु रश्च।

जर्तुर्हस्ती योनिश्च।

जन् से तु प्रत्यय रकारान्तादेश। हाथी या योनि में जर्तुः।

७२५ ऊर्णोतेर्डः।

ऊर्णा।

ऊर्णु धातु से ड प्रत्यय होता है। ऊर्णा।

७२६ दधातेर्यन् नुट् च।

धान्यम्।

धा धातु से यत् प्रत्यय एवं नुट् का आगम होता है। धान्यम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

७२७ जीर्यतेः किन् रश्च वः ।

'जिव्रिः स्यात्कालपक्षिणोः' । बाहुलकात् 'हलि च' (सू. ३५४) इति दीर्घो न ।

जृ से किन् एवं रकार को वकार होता है । काल और पक्षि में जिव्रिः । 'हलि च' से बाहुलक से दीर्घाभाव यहां है ।

७२८ मव्यतेर्यलोपो मश्चाऽपतुट् चालः ।

मव्यतेरालप्रत्ययः स्यात्तस्यापतुडागमो धातोर्यलोपो मकारश्चान्त्यस्य । ममापतालो विषये ।

मव्य से आल एवं आपतुट् आगम, यकार का लोप, अन्त के स्थान में मकार होता है ।

७२९ ऋजेः कीकन् ।

ऋजीक इन्द्र धूमश्च ।

ऋज् से कीकन् प्रत्यय होता है । इन्द्र में या धूम में ऋजीकः ।

७३० तनोतेर्डउः सन्वच्च ।

'ततउ पुंसि क्लीबे च' ।

तन् धातु से उत्तर डउ प्रत्यय होता है एवं उसको सन्वत् कार्य होता है 'ततउ' पुंलिङ्ग में एवं नपुंसक लिङ्ग में है । इसके सम्बोधन में अतो गुणे से पररूप होकर 'हे ततो' रूप ।

७३१ अर्भकपृथुकपाकाः वयसि ।

'ऋधु वृद्धौ' । अतो वुन् । भकारश्चान्तादेशः । प्रथेः कुकन् । सम्प्रसारणं च । पिबतेः कन् ।

वयोऽर्थ में अर्भक, पृथुक, पाक वे निपातित है । वृद्धि अर्थबोधक ऋधु से वुन्, अन्त को भकार आदेश । अर्भकः = बालक । प्रथ से कुकन् एवं सम्प्रसारण पृथुकः । पा धातु से कन् । पाकः ।

७३२ अवद्याऽवमाऽधमार्वरेफाः कुत्सिते ।

वदेर्नञि यत् । अवद्यम् । अवतेरमः । वस्य पत्वे धः । अवमः । अधमः । अर्तेर्वन् । अर्वा । रिफतेस्तौदादिकात् अः । रेफः ।

अवद्य, अवम, अधम, अर्व, रेफ, वे कुत्सित = निन्दा अर्थ में नञ् उपपद रहते वद् से यत् प्रत्यय निपातन से सिद्ध होता है । अवद्यम्—अवधातु से अम प्रत्यय एवं विकल्प से वकार को धकार होता है । अवमः । अधमः । ऋ से वन्—अर्वा । तुदादिस्थ रिफ से अ प्रत्यय–रेफः ।

७३३ लीरीङोर्ह्रस्वः पुट्च तरौ श्लेषणकुत्सनयोः ।

तरौ प्रत्ययौ क्रमात्स्तो, धातोर्ह्रस्वः, प्रत्ययस्य पुट् । लिप्तं श्लिष्टम् । रिप्रं कुत्सितम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लेषण एवं कुत्सन अर्थ में लीङ् एवं रीङ् को क्रमशः त एवं र प्रत्यय धातु को ह्रस्व, एवं प्रत्यय को पुट् आगम। लिप्तम् = श्लिष्ट में कुत्सितम्। रिप्रम् = निकम्मा।

७३४ क्लिशेरीच्चोपधायाः कन्लोपश्च लो नाम् च।

क्लिशेः कंन्स्यादुपधाया ईत्वं, लस्य लोपो, नामागमश्च। कीनाशो यमः। किन्त्वफलं चिन्त्यम्।

क्लिश धातु से कन् प्रत्यय, उपधा को ईकार, लकार का लोप एवं नाम् आगम होता है। यम अर्थ में कीनाशः। यहां किद् का फल विवेचन करने योग्य है।

७३५ अश्नोतेराशुकर्मणि वरट् च।

चकारादुपधाया ईत्त्वम्। ईश्वरः।

शीघ्रकरण में अश् से वरट् प्रत्यय, चकार के कारण उपधा को ईत्त्व होता है। ईश्वरः।

७३६ चतेरुरन्।

चत्वारः।

चत् से उरन्। चत्वारः = चार।

७३७ प्रातते॰रन्।

प्रातः।

प्रपूर्वक अत से अरन्। प्रातः।

७३८ अमेस्तुट् च।

अन्तर्मध्यम्।

अम् से अरन्, एवं तुट् का आगम होता है। मध्य में अन्तः।

७३९ दहेर्गो लोपो दश्च नः।

गप्रत्ययो धातोरन्त्यस्य लोपो दकारस्य नकारः। नगः।

दह् से ग प्रत्यय धातु के अन्त का लोप, दकार को नकार। नगः = पर्वतः, अचलः।

७४० सिचेः सञ्ज्ञायां हनुमौ कश्च।

सिञ्चतेः कप्रत्ययो हकारादेशा, नुम्च स्यात्। सिंहः।

संज्ञा अर्थ में सिच् से कप्रत्यय, हकारान्तादेश, नुम् आगम होता है। सिंहः।

७४१ व्याङ् घ्रातेश्च जातौ।

कप्रत्ययः स्यात्। व्याघ्रः।

जाति अर्थ में विपूर्वक एवं आङ् पूर्वक घ्रा से कप्रत्यय होता है। व्याघ्रः।

७४२ हन्तेरच् घुर च।

घोरम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन् से अच् प्रत्यय एवं घुर आदेश होता है। घोरम्।

७४३ क्षमेरुपधालोपश्च।

चादच्। क्षमा।

क्षम् से अच् प्रत्यय एवं उपधा का लोप। क्षमा। चकार से अच् क्षमा।

७४४ तरतेर्ड्रिः।

त्रयः। त्रीन्।

तृ से ड्रि प्रत्यय। त्रयः। त्रीन्।

७४५ ग्रहेरनिः।

ग्रहणः। ङीष्। ग्रहणी व्याधिभेदः।

ग्रह से अनि प्रत्यय होता है। ग्रहणिः। इससे ङीष् होता है। स्त्रीलिङ्ग में ग्रहणी दस्त की बीमारी। आयुर्वेद में संग्रहणी रोग प्रसिद्ध है।

७४६ प्रथेरमच्।

प्रथमः।

प्रथ् से अमच् प्रत्यय होता है। पहला अर्थ में प्रथमः।

७४७ चरेश्च।

चरमः।

चर् धातु से अमच् प्रत्यय होता है। चरमः = अन्त।

७४८ मङ्गेरलच्।

मङ्गलम्।

इत्युणादिषु पञ्चमः पादः।

मङ्गि धातु से अलच् प्रत्यय की उत्पत्ति होती है। मङ्गलम् = शुभ अर्थ में।

विमर्शः—आधुनिक एवं प्राचीन शब्दों का भण्डार उणादि प्रकरण में है। इस प्रकरण की उपेक्षा करने से एवं पठन-पाठन इसका सुचारु रूप से न होने से छात्रगण अधिकांश अव्युत्पन्न हो रहे हैं। अनुवाद करने में शब्दों के ज्ञान तदर्थ ज्ञान न होने से असमर्थ होते है। प्रत्येक वैयाकरण के लिये चाहे वह छात्र या अध्यापक रहे इन उणादि में वर्णित शब्द-शब्दार्थ का अवश्य ज्ञान करें। एवं परीक्षा में भी इसको पाठ्यक्रम में रखा जाय तो संस्कृत समाज का महान् उपकार होगा। आचार्य पाणिनि ने इन शब्दों की सिद्धि क्यों स्वसूत्रों से नहीं की? यह महान् त्रुटि पाणिनि व्याकरण में दीख पड़ती है। "उणादयो बहुलम्" यद्यपि कहा किन्तु विशेष प्रकृतियों से विशेष अर्थ में नियत प्रयोगार्थ यत्न विशेष न करना यह क्रम उचित सा प्रतीत नहीं होता है। केवल 'बहुलम्' से सर्वत्र इष्ट प्रयोगों का ज्ञान नहीं हो सकता है। "बाहुलकन्तु अगतिकगतिकम्" है। उणादि सूत्र-निष्पन्न शब्द एवं उणादि सूत्र-प्रतिपादित विषय आचार्य पाणिनि-सम्मत है अनेकत्र स्थल में स्व सूत्रों में वर्णित है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन तीन सौ पच्चीस ३२५ उणादि प्रत्ययों के आधार पर अनेक अवर्णित शब्दों की भी सिद्धि करनी चाहिये। उणादि सूत्रों पर गवेषण एवं अनुसन्धान जन्य अनुभूतियों का प्रकाशन विश्वविद्यालय जैसी महती संस्थाओं को कराना चाहिये। इसकी उपेक्षा वैयाकरणों के लिए आत्म-हनन तुल्य है।

पं० श्री बालकृष्ण पञ्चोलिविरचित रत्नप्रभा में उणादि सूत्रों में पञ्चम पाद समाप्त।

अथोत्तरकृदन्तप्रकरणम्

३१६९ उणादयो बहुलम् ३।३।१।

एते वर्तमाने सञ्ज्ञायां च बहुलं स्युः। केचिदविहिता अप्यूह्याः। 'सञ्ज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे। कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु' (भाष्यम्)।

उणादि प्रत्यय वर्तमानकाल में एवं संज्ञा में बहुल होते हैं। 'वा' आदि शब्दों का उच्चारण न कर अनेक अर्थ संग्राहक सूत्र में बहुल ग्रहण करने से विशेष वचनों से अविहित प्रत्ययों का भी संग्रह होता है। अष्टाध्यायी बहिर्गत उणादि प्रत्ययों की प्रत्ययसंज्ञा, कृत्संज्ञा, कृदन्ततदादित्व प्रयुक्त प्रातिपदिक संज्ञा, एवं उणादि प्रत्यय धातु से पर 'कर्तरिकृत्' का यहां सम्बन्धकर कर्ता में होते हैं। उणादि प्रत्ययान्त से स्वादिविभक्ति की उत्पत्ति भी इष्ट है। 'वर्तमाने लट्' से वर्तमान की अनुवृत्ति यहां है, एवं 'पुयः संज्ञायाम्' से संज्ञा की भी अनुवृत्ति है। विहित अविहित उभय संग्रहार्थ 'अपि' शब्द है। अविहित यथा फिड फिड्ड वे कहीं भी विहित नहीं है। वे ऋधातु से होते हैं, यथा ऋफिडः, ऋफिड्डः। इसी प्रकार अनेक अविहित प्रत्ययों का शिष्ट प्रयोग दर्शन मात्र से कहा होती है। प्रथम संज्ञा में धातुरूप का कह, पश्चात् प्रत्यय का कह, उसके बाद प्रत्ययों का कह करना चाहिये।

बहुलमिति—बहून् = अर्थान् लाति तत् तत् बहुलम् = अनेकार्थबोधजनकम्।

कारिकार्थः—अनादि संज्ञाओं में ही धातुओं के स्वरूपज्ञान, एवं उन धातुओं से प्रत्यय उनका ज्ञान, एवं गुणप्रतिषेधादि कार्यानुरोध से अनुबन्ध ककारादिक का ज्ञान करना उणादि में यह कारिकार्थ बहुल ग्रहण मूलक ही है। भूत एवं भविष्यत् में उणादि प्रत्यय क्वचित् ही होते हैं। अधिकतर वर्तमान में ही वे होते हैं। इस ज्ञान के लिए वक्ष्यमाण सूत्र प्रणयन है—

३१७० भूतेऽपि दृश्यन्ते ३।३।२।

उणादि प्रत्ययों का प्रयोग भूतकाल में भी देखा जाता है। इसका सारांश यह है कि वर्तमान में अधिकतर एवं भूत में क्वचित् क्वचित् प्रत्यय होते हैं।

३१७१ भविष्यति गम्यादयः ३।३।३।

गमी आदि णिनि प्रत्ययान्त शब्द भविष्यत् काल में ही होते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३१७२ दाशगोघ्नौ सम्प्रदाने ३।४।७३।

एतौ सम्प्रदाने कारके निपात्येते। दाशन्ति तस्मै दाशः। गां हन्ति तस्मै गोघ्नोऽतिथिः।

अच् प्रत्ययान्त दाश एवं क प्रत्ययान्त गोघ्न ये शब्द सम्प्रदान कारकरूप अर्थ में निपातन से सिद्ध होते हैं। तात्पर्य यह है कि दानार्थक दाश् धातु से सम्प्रदान अर्थ में अच् प्रत्यय करना। एवं कर्मसंज्ञक गो उपपद रहते हिंसार्थक हन् से सम्प्रदान अर्थ में क प्रत्यय होता है। जिनके लिए दान दिया जाय वह 'दाशः'। जिसको उद्देश्यकर गोकर्मक हनन क्रिया की जाय वह अतिथि गोघ्नः।

विमर्श—प्राचीनकाल में अभ्यागत स्वागतार्थ गो का वध किया जाता था यह 'गोघ्नोऽतिथिः' से सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। किन्तु गो शब्द अनेकार्थक है अतिथि के सामने अधिक प्रवचन करना या बोलना अनुचित है उस समय वाक् संयम आवश्यक है। अधिक सम्भाषण कर्ता अनृतभाषण या अतिथि के सम्मान विरुद्ध कुछ कह न जाय अतः अनुशासन रक्षार्थ वाक् संयम यह भी अर्थ सम्भव है। वेद मन्त्रों में गवालम्भनादि की भी दार्शनिक व्याख्या लेखविस्तृतिभय से स्वल्प लिखी गई है। यथा—

१—"राजन्यवधे षड्वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्महत्या प्रायश्चित्तम्। वैश्ये त्रैवार्षिकम्, गाञ्च वैश्यवत् (गौ० ध० २२, १३ १४, २०)। २—प्रायश्चित्त प्रकरणमें "गौश्चेद् हता स्यात् तस्याश्च चर्मणा आर्द्रेण परिवेष्टितः षण्मासान् कृच्छ्रं तप्तकृच्छ्रं वाऽऽतिष्ठेत्" आदि अनेक वचन गोवध का निषेध करते हैं।

म० म० प० श्रीचिन्नस्वामी शास्त्री ने १९९७ में लेख द्वारा यह सिद्ध किया है कि प्राचीन भारत में गोवध नहीं होता था।

ऋग्वेद में "यदीदहं संनयान्यदेव यत् तन्वा शशुजानान्" (७, २, ७, २) (७, २८, ३) ऋग्वेद एवं कृष्ण यजुर्वेद 'तैत्तिरीयब्राह्मण' आदि में इन्द्र के लिए वृषभमांस, एवं काम्य इष्टियों में बैल आदि का बलिदेना, अश्वमेध में १८० पशुओं के वध में गाय बैल का भी उल्लेख है "तस्मा दष्टा दशिनो रोहितो धूम्ररोहित इत्यादिभिरनुवाकैरुक्ताः" इत्यादि से। एवं आश्वलायनसूत्र में 'शूलगव' प्रकरण में भिन्नभिन्न वर्ण की गायों का हनन वर्णन है गवामयन = एकाष्टका कहते हैं, जो माघमास में चार दिन मनाया जाता है। कात्यायन ने 'अतिरात्र' १४।२।११। में इस विषय का वर्णन विस्तृत किया है।

यज्ञों में विभिन्न संस्कारों में, मधुपर्क में, "नामांसो मधुपर्को भवति" एवं पारस्कर गृह्यसूत्र में कण्डिका ३, काण्ड १ पृ. १८ सू. २६ एवं ३१ में अतिथि को 'गोघ्न' कहा गया है। 'बृहदारण्योपनिषद् ब्राह्मण' में—"अथ य इच्छेत् पुत्रो मे पण्डितो विगीतः समितिंगमः शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत" इत्यादि में वृषभमांसौदन भक्षण वर्णन है, एवं याज्ञवल्क्य में "महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत्" १०९। महाभारत में भी गोकर्मक हनन प्रस्तुत है = "अहनि अहनि वध्येत इत्यारम्य रन्तिदेवस्य नित्यशः" वनपर्व २७ एवं द्रोणपर्व अ० ६७ शान्तिपर्व अध्याय २९, ब्रह्मवैवर्त, महावीरचरित, सारांश यह है कि संहिता, ब्राह्मणसूत्र उपनिषद्, स्मृति, इतिहास, पुराण, साहित्य आयुर्वेद में गोकर्मक हनन क्रिया का उल्लेख मिलता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किन्तु वे कर्म कलियुग में निषिद्ध माने गये हैं। इसमें अनेक प्रतिबन्धक प्रमाण शास्त्रों में हैं अतः उपसंहार में यही निश्चित हुआ कि गोवधादिकर्म इस युग में सर्वथा निषिद्ध है।

"एतानि लोकगुप्त्यर्थं कलेरादौ महात्मभिः।
निवर्तितानि कर्माणि व्यवस्थापूर्वकं बुधैः॥
समयश्चापि साधूनां प्रमाणं वेदवद् भवेत्॥"

बृहन्नारदीयपुराण, आदित्यपुराण आदिमें निषेधक वचन मिलते हैं।

अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्नेति निषेधः।

श्री इन्दुशेखरसिंह राठोर ने भी इस विषय में विस्तृत वर्णन लिखा था ३० वर्ष पूर्व में स्वलेख में। गुजरात के वैदिक धर्मप्रचारक मेरे कुल में उत्पन्न उदीच्य ब्राह्मणकुलोद्भव टंकारा निवासी यशोदा-पुत्र करशन जी पिटक श्री दयानन्द सरस्वती महादेव ने हन् का गति अर्थ मान कर गोघ्न की व्याख्या की है।

३१७३ भीमादयोऽपादाने ३।४।७४।

भीमः। भीष्मः। प्रस्कन्दनः। प्ररक्षः। मूर्खः। खलतिः।

अपादान कारक अर्थ में भी धातु से मप्रत्यय होता है एवं विकल्प से 'भियो हेतुभये षुक्' से षुक् प्रत्यय होता है। भीमः। भीष्मः। प्रस्कन्दनः, अपादान में ल्युट् होता है। प्ररक्ष से अपादान में पचादिस्वप्रयुक्त अच् होता है। अविवेक जिससे प्राप्त होता है उसे 'मूर्ख', कहते हैं मुह् से ख प्रत्यय एवं धातु को मूर् आदेश होता है। खलतिः खल् से अति प्रत्यय अपादान में। शिर में केशरहिता स्त्री इसका अर्थ है। या केशरहित पुरुष। इन्द्रलुप्तरोग युक्ता या युक्त।

३१७४ ताभ्यामन्यत्रोणादयः ३।४।७५।

सम्प्रदानापादानपरामर्शार्थं ताभ्यामिति। ततोऽसौ भवति तन्तुः। वृत्तं तदिति वर्त्म। चरितं तदिति चर्म।

सम्प्रदान एवं अपादान कारक भिन्न कारकों में उणादि प्रत्यय होता है। विस्तृत वह होता है इस अर्थ में तनु विस्तारे से कर्ता में क्तप्रत्यय एवं अनुदात्तोपदेश से नकार का लोप हुआ—ततः = वह विस्तृत होता है = तन्तु तन् से तुन् प्रत्यय होता है। वृत्तम् = गमन आदि क्रिया से निष्पन्न जो वृत् धातु से कर्म में मनिन् प्रत्यय होता है। अयन, वर्त्म, मार्ग, अध्वा ये इसके पर्याय हैं कोष प्रमाण से।

३१७५ तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३।३।१०।

क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः। मान्तत्वादव्ययत्वम्। कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्णं दर्शको याति। अत्र वाऽसरूपेण तृजादयो न, पुनर्ण्वुलुक्तेः।

क्रियार्थक क्रिया वाचक शब्द उपपद में रहते भविष्यत् काल में धातु से तुमुन् प्रत्यय एवं ण्वुल् प्रत्यय होता है भविष्यत् अर्थ में। तुमुन् में उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक' से इत्संज्ञा, नकार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा एवं लोप 'तुम्' मात्र अवशिष्ट है। मान्तत्व प्रयुक्त 'कृन्मेजन्तः' से अव्यय संज्ञा विभक्ति का 'अव्ययात्' सूत्र से लोप होता है, यथा 'कृष्णं द्रष्टुं याति' वह जाता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, किस लिए ? कृष्ण कर्मक भविष्यद् दर्शनार्थ, यहाँ गमन क्रिया का फल दर्शन है दर्शन का अर्थ चक्षुरिन्द्रिय व्यापार है, 'दर्शनफलकं रमेशकर्तृकं यानम्' यह संक्षिप्त अर्थ बोध यहां दृश्+तुम्, म्रक्षेति पकार एवं ट्रत्व से द्रष्टुम् अव्ययत्व प्रयुक्त विभक्ति का लुक्। ण्वुल् में 'दर्शकः' यहां 'युवोरनाकौ' से अक आदेश एवं लघूपध गुण हुआ।

यहां 'वा सरूपोऽस्त्रियाम्' से तृजादि प्रत्यय नहीं होते हैं क्योंकि वे होते तो इस सूत्र से पुनः ण्वुल् विधान न कर उस 'ण्वुल्तृचौ' से ही ण्वुल कर इससे केवल तुमुन् लाघव से विधान करते। अव्यय संज्ञा का प्रयोजक प्रत्यय 'अव्ययकृतो भावे' से भाव = क्रिया में होता है। क्रिया अर्थः = प्रयोजनं यस्याः सा तस्याम् यह समास से क्रियार्थायाम् की सिद्धि है। तुमुन् विशेष वचन से भाव में होता है किन्तु ण्वुल् प्रत्यय तो कर्ता में ही होता है, 'कर्तरि कृत्' इस अनुशासन से।

यहां 'क्रियायाम्' सप्तम्या निर्दिष्ट से तद्वाच्य वाचक 'याति' इत्यादि की 'तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्' से उपपद संज्ञा हुए। 'कृष्णकर्मकं यद्भविष्यद् दर्शनं तत्प्रयोजकं यानम्'। कृष्णं दर्शकः—कृष्णकर्मकभविष्यद्दर्शनकर्तृकर्तृकं दर्शनप्रयोजकं च यानम्। 'क्रियायाम्' कहने से सूत्र में 'भिक्षिष्ये जटा' यहां जटा द्रव्य है क्रिया नहीं है भिक्षा के लिए जटा यह अर्थ है। यहां भिक्षितुं जटा यह नहीं होता है। अथवा 'धारयति' का अध्याहार करके यहां तुमुन् की उपपत्ति करनी चाहिए। सूत्र में 'क्रियार्थायाम्' यह न कहते तो दौड़ते हुए तुम्हारा दण्ड गिर पड़ेगा इस अर्थ में पतन में धावन क्रिया हेतु है यहां तुमुन् आदि न हुआ। यथा धावतस्ते दण्डः पतिष्यति।

३१७६ समानकर्तृकेषु तुमुन् ३।३।१५८।

अक्रियार्थोपपदार्थमेतत्। इच्छार्थेष्वेककर्तृकेषूपपदेषु धातोस्तुमुन्स्यात्। इच्छति भोक्तुम्। वष्टि वाञ्छति वा।

यहां क्रियार्थक क्रिया उपपद में न रहें वहां भी तुमुन् प्रत्यय के विधानार्थ यह सूत्र है। जिस धातु से तुमुन् प्रत्यय करना है उस तुमुन् प्रत्यय की प्रकृतिवाच्य क्रिया का कर्ता एवं उपपद में रहने वाले धातु जो इच्छार्थक उसकी वाच्य क्रिया का कर्ता एक जहां रहें वहां इच्छार्थक धातु उपपद में रहते धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है। यहां 'स इच्छति भोक्तुम्' यहां इच्छा क्रिया कर्ता जो है वही भोजन क्रिया कर्ता है एककर्तृकत्व होने से इच्छार्थक इष् धातु उपपद में है भुज् से भाव में तुमुन् हुआ। क्रिया द्वय का एक कर्ता जहां नहीं है, वहां तुमुन् न हुआ। पुत्रस्य पठनम् इच्छति पिता यहां पठनक्रिया का कर्ता पुत्र है उससे कर्तृकर्मणोः कृति से षष्ठी है एवं इच्छाजनक व्यापार रूप क्रिया का कर्ता पिता है, विभिन्न कर्तृकत्व से इस सूत्र की यहां अप्रवृत्ति है। अतः 'पठितुम्' न हुआ भोजन विषयिणी इच्छा की यहां उदाहरणार्थ से प्रतीति है, भोजनार्थ इच्छा की प्रतीति नहीं है। अतः पूर्वसूत्र का अविषय है यहां।

यहाँ समान शब्द जो सूत्रस्थ है वह एकता वाचक है। वष्टि = इच्छति वाञ्छति वा भोक्तुम्। यहाँ तुमुन् हुआ।

३१७७ शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् ३।४।६५।

एषूपपदेषु धातोस्तुमुन्स्यात्। शक्नोति भोक्तुम्। एवं धृष्णोतीत्यादौ। अर्थग्रहणमस्तिनैव सम्बध्यते। अनन्तरत्वात्। अस्ति भवति विद्यते वा भोक्तुम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह सूत्र भी अक्रियार्थोपपदार्थ किया है। शक, धृष, ज्ञा, श्लाघ, घट, रभ, लभ, क्रम सह, अर्ह, एवं अस्त्यर्थक धातु उपपद में रहने पर धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है, भोजनविषयिणी शक्ति रूपार्थ की प्रतीति में शक्नोति भोक्तुम्। भोजन विषय में वह प्रगल्भ है धिष्णोति भोक्तुम्। श्लाघते भोक्तुम् = भोजनविषयिणी अशक्ति में प्रतीति यहाँ है भोक्तुं घटते = भोक्तुम् अर्हति यहाँ योग्यता की प्रतीति है। भोक्तुं आरभते, भोक्तुं प्रक्रमते = उत्सहते। एवं अस्ति भवति, विद्यते इनके योग में भुज् से तुमुन् कर भोक्तुम्। अर्थ ग्रहण का केवल अस् के साथ ही अन्वय सामीप्य मूलक सम्बन्ध से है, अन्य से नहीं है।

३१७८ पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ३।४।६६।

पर्याप्तिः पूर्णता। तद्वाचिषु सामर्थ्यवचनेषूपपदेषु तुमुन्स्यात्। पर्याप्तो भोक्तुं, प्रवीणः कुशलः पटुरित्यादि। पर्याप्तिवचनेषु किम्? अलं भुक्त्वा। अलमर्थेषु किम्? पर्याप्तं भुङ्क्ते। प्रभूततेह गम्यते, न तु भोक्तुः सामर्थ्यम्।

यहाँ पर्याप्ति का अर्थ पूर्णता है। पूर्णतावाचक एवं अलम् का अर्थ जो सामर्थ्य तद्वाचक शब्द उपपद में रहते तुमुन् प्रत्यय होता है। भोजन करने में समर्थ अर्थ में पर्याप्तो भोक्तुम्। इसी प्रकार प्रवीण-कुशल-पटु इत्यादि शब्दों के उपपद में रहते भी धातु से तुमुन् हुआ। जहाँ सामर्थ्य की प्रतीति नहीं किन्तु प्राचुर्य्य = प्रभूतता की प्रतीति है वहाँ तुमुन् न हुआ। यथा 'पर्याप्तं भुङ्क्ते' यहाँ भोजन क्रिया कर्ता का सामर्थ्य नहीं है।

३१७९ कालसमयवेलासु तुमुन् ३।३।१६७।

पर्यायोपादानमर्थोपलक्षणार्थम्। कालार्थेषूपपदेषु तुमुन्स्यात्। कालः समयो वेला अनेहा वा भोक्तुम्। प्रैषादिग्रहणमिहानुवर्तते। तेनेह न। 'भूतानि कालः पचतीति वार्ता'।

यहाँ 'कालादिषु तुमुन्' इतना कहते पुनः पर्यायवाचक शब्दों का सूत्र में उच्चारण करने से वे शब्द अपने समानार्थक शब्दों के योग में अर्थात् इनके पर्य्याय वाचक शब्दों के योग में भी तुमुन् प्रत्यय की धातु से उत्पत्ति के लिए है। कालवाचक समयवाचक वेलावाचक शब्द उपपद में रहते धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है। कालवाचक अनेहा के योग में भी तुमुन्, "कालो दिष्टोऽप्यनेहापि" इत्यमरः। यहाँ प्रैषादि की अनुवृत्ति से अनुवाद में तुमुन् नहीं होता है। यथा 'भूतानि कालः पचति' इति वार्ता। महाभारत वनपर्व में युधिष्ठिर धर्मराज का यह उत्तर है।

"का वार्ता किमाश्चर्यं कः पन्थाः कश्च मोदते।
इति मे चतुरः प्रश्नान् पूरयित्वा जलं पिब"॥

यह यक्षोक्ति है। उसके प्रश्नों का समाधान इस प्रकार श्लोकबद्ध है। महाभारत में—

१—"अस्मिन् महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
मासर्तुदर्वीपरिघट्टनेन भूतानि कालः पचतीति वार्ता"॥

इस महान् अविवेक रूप संसारस्वरूप कड़ाई में सूर्यरूप अग्नि से, रात एवं दिनरूप लकड़ी से एवं मास तथा ऋतुरूप करछुल चलन क्रिया से कालरूपवाचक भूतों को (प्राणियोंको) पकाता है। यही वार्ता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२—"अहन्यहनि गच्छन्ति भूतानि यममन्दिरम्।
शेषाश्च स्थातुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्" ॥

प्रतिदिन मृतजन यममवन में जाते हैं। अवशिष्टजन इस संसार में रहने की इच्छा करते हैं, इससे बढ़कर आश्चर्य क्या है ? (अर्थात् यह आश्चर्य है)।

३—"श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः" ॥

धर्मप्रतिपादक वेद ग्रन्थ भिन्न भिन्न है, वेद-मूलक स्मृति ग्रन्थ भिन्न-भिन्न हैं। एवं ऐसा कोई मुनिजन नहीं जिसका मत भिन्न न हो अतः धर्म का वास्तविक तत्त्व अज्ञान रूप गुफा में स्थित है ऐसी परिस्थिति में श्रेष्ठ सदाचारी मानवगण जिस मार्ग का अनुगमन करते हैं उसी मार्ग का आश्रय करना चाहिये, वही मार्ग श्रेयस्कर है।

४—"दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति यो नरः।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते ॥"

हे यक्ष ! दिन के आठवें भाग में जो मनुष्य शाक को केवल पकाता है अपने भोजनार्थ एवं कर्ज रहित तथा प्रवास रहित है वह व्यक्ति प्रसन्नता की अनुभूति करता है।

इन चार श्लोकों को छात्रगण ! कण्ठस्थ करो। एवं सम्पूर्ण महाभारत को कम से कम एक बार अवश्य ज्ञानार्थ पढ़ो।

वेद व्यास की प्रतिज्ञा है कि जो विषय महाभारत में नहीं वह अन्यत्र नहीं है एवं जो महाभारत में वर्णित विषय है वह अन्यत्र है। व्यर्थक एवं गूढार्थ श्लोक जो महाभारत में है वे अन्यत्र प्रायः दुर्लभ ही हैं। गीता पञ्चरत्न गीता आदि उस के अंग हैं।

३१८० भाववचनाश्च ३।३।११।

भाव इत्यधिकृत्य वक्ष्यमाणा घञादयः क्रियार्थायां क्रियायां भविष्यति स्युः। यागाय याति। 'तुमर्थात्' (सू ५८२) इति चतुर्थी।

'भावे' इस सूत्र के अधिकार करके घञ् आदि प्रत्यय विधान करेंगे वे प्रत्यय क्रियानिमित्तक क्रियावाचक उपपद में रहने पर भविष्यत् काल में धातु से होते हैं। यथा 'यागाय याति' यहां तुमुर्णच भाववचनात् से घञन्त याग से चतुर्थी विभक्ति है। यष्टुम् अर्थ में यज् घञ् उपधावृद्धि एवं एवं 'चजोः' सूत्र से कुत्व हुआ।

३१८१ अण्कर्मणि च ३।३।१२।

कर्मण्युपपदे क्रियार्थायां क्रियायां चाण्स्यात्। ण्वुलोऽपवादः। काण्डलावो व्रजति। परत्वादयं कादीन् बाधते। कम्बलदायो व्रजति।

कर्मसंज्ञक शब्द उपपद में रहते क्रियानिमित्तक क्रियावाचक उपपद रहते धातु से भविष्यत् काल में अण् प्रत्यय होता है। भाव में विधीयमान तुमुन् प्रत्यय की तो यहां अप्राप्ति है, केवल ण्वुल् की प्राप्ति थी उसका अण् प्रत्यय यह बाधक है। यह परत्व के कारण क आदि प्रत्ययों का भी बाधक है। यथा काण्डलावो व्रजति। काण्डम् कर्म उपपद में छेदनार्थक लूञ् से अण् उपपद समास यहां हुआ वृद्धि आवादेश। कम्बलदायो व्रजति। यहां 'आतोऽनुपसर्गे कः' से प्राप्त क प्रत्यय को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अण् ने बाध किया, युक् आगम है। उपपद समास हुआ। भविष्यत् काल में कम्बल कर्मक दानकर्ता जा रहा है।

३१८२ पदरुजविशस्पृशो घञ् ३।३।१६।

भविष्यतीति निवृत्तम्। पद्यतेऽसौ पादः। रुजतीति रोगः। विशतीति वेशः। स्पृशतीति स्पर्शः।

यहां से 'भविष्यति' की निवृत्ति है। पद, रुज, विश, स्पृश इनसे घञ् प्रत्यय होता है। चलन क्रियाजन्य फलसिद्धि में चरणार्थ पादादि शब्द प्रकृत्योपकारक होने से करण यद्यपि है किन्तु करण में "विवक्षातः कारकाणि भवन्ति" से कर्तृत्व-विवक्षा से पद्यतेऽसौ पादः=गमन क्रियाकर्ता चरण यह अर्थ हुआ। पीडाजनक व्यापारकर्ता अर्थ में घञ् कुत्व से रुज् का रोगः हुआ। प्रवेशन क्रिया-कर्ता में वेशः। स्पर्शजनक क्रियाकर्ता में स्पर्शः। इन चार स्थलों में कर्ता में घञ् प्रत्यय हुआ। कुत्वार्थ घकार है, स्वरितार्थ ञकार है।

३१८३ सृ स्थिरे ३।३।१७।

'सृ' इति लुप्तविभक्तिकम्। स्थिरे कर्तरि सर्तेः घञ्स्यात्। सरति कालान्तरमिति सारः। 'व्याधिमत्स्यबलेषु चेति वाच्यम्' (वा २१७४)। अतीसारो व्याधिः। 'उपसर्गस्य' इति दीर्घः अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र सरतिः। रुधिरादिकमतिशयेन सारयतीत्यर्थः। विसारो मत्स्यः। 'सारो बले दृढांशे च'।

सूत्र में 'सृ' यह लुप्तपञ्चमीक पद है 'सुपां सुलुक्' से पञ्चमी का लुक् है। स्थिरकर्ता अर्थ में 'सृ' धातु से घञ् प्रत्यय होता है। भ्वादि एवं जुहोत्यादि उभय 'सृ' का यहां ग्रहण है। भिन्न काल में गमनक्रियाकर्ता सारः।

अध्रुवार्थ वचन है—व्याधि, मत्स्य एवं बल अर्थ में सृ से घञ् होता है।

अतीसारो व्याधिः—अति सृ×घञ्=अ वृद्धि समास 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये' से दीर्घ हुआ। विविधं सरति विसारी मत्स्यः। सारो बलम्। सृ धातु अन्तर्भावितण्यर्थपरक है। अधिक रुधिरादिक को स्राव करवाने वाला रोग यह अर्थ है। सारशब्द से बल एवं दृढांश समझना। बलवान् ही चेष्टा करता है=सारयति=चेष्टयति इस अर्थ के अनुरोध से=बलवान् हि चेष्टते।

३१८४ भावे ३।३।१८।

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ्स्यात्। पाकः पाकौ।

सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ होने पर धातु से घञ् प्रत्यय होता है। यथा पाकः।

विमर्श—क्रिया दो प्रकार की है सिद्धा एवं साध्या, आख्यात=तिङन्त प्रकृतिभूत सर्वा क्रिया साध्या है एवं घञादि प्रत्यय प्रकृतिभूत धातुवाच्या क्रिया सिद्धा है। क्रियात्व का लक्षण—गुणत्वानाश्रयत्वे सति विभागासमवायिकारणत्वम्। संयोगज संयोग एवं विभागज विभाग में क्रिया का लक्षण न जाय अतिव्याप्ति दोष न प्रसक्त हो एतदर्थ सत्यन्त विशेषण है। विभाग का कारण क्रिया ही है। क्रिया से विभाग पूर्व संयोग-नाश उत्तर देश-संयोग होता है। क्रियात्व व्यापक धर्म, उसका व्याप्य धर्म साध्यत्व एवं साधनत्व है। साध्यत्व का स्वरूप—क्रियान्तरा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काङ्क्षानुत्थापकतावच्छेदकधर्मवत्त्वम् साध्यत्वम् । सिद्धत्व का स्वरूप—क्रियान्तराकाङ्क्षोत्थापकतावच्छेदकत्वम् । तात्पर्य यह है कि पचति आदि में क्रिया में एक एक धर्म है जो अन्य-क्रियाविषयक आकाङ्क्षा, उत्पन्न करती है । पचति कहने से साधनविषयिणी आकांक्षा उदित होती है यथा कः पचति, किम् केन कस्मै कस्मात् कस्मिन् । पाकः कहने से पाकः जातः, नष्टः भविष्यति आदि अन्यान्य क्रियाविषयक आकांक्षा उदित होती है। पाकः में धातुवाच्य एक क्रिया है जो विक्लित्त्यनुकूलव्यापाररूपा एवं घञ् से भी वही क्रिया वाच्य है इतना भेद है प्रकृतिवाच्य साध्या है प्रत्ययवाच्य सिद्धा है। यहां प्रकृत्यर्थ, प्रत्ययार्थ का किस सम्बन्ध से अन्वय है ? यह शङ्का हुई । प्रकारतावच्छेदक एवं विशेष्यतावच्छेदक धर्म जहां भिन्न रहें वहां ही अभेदान्वय सम्भव है । नीलो घटः यहां नीलत्व घटत्व भिन्न है । पाकः यहां विक्लित्त्यनुकूल व्यापार प्रकृत्यर्थ एवं वही प्रत्ययार्थ है अतः अभेदान्वय सम्भव नहीं है ।

अतः सिद्ध यह हुआ है कि स्ववृत्तिक्रियात्ववत्त्व सम्बन्ध से प्रकृत्यर्थ क्रिया का प्रत्ययार्थ = घञर्थ क्रिया में अन्वय है। यह सूक्ष्म विचार श्रीपञ्चोलि-विरचित वैयाकरणभूषण की 'प्रभा' व्याख्या के सिवाय अन्यत्र कहीं भी नहीं है । यह अन्वय प्रकार कह किया गया है ।

३१८५ स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि ६।१।४७।

अनयोरेच आत्त्वं स्याद्घञि । स्फारः । स्फालः । 'उपसर्गस्य घञि–'(सू० १०४४) इति दीर्घः । परीहारः । 'इकः काशे' (सू १०४५) । काशे उत्तरपदे इगन्तस्यैव प्रादेर्दीर्घः स्यात् । नीकाशः । अनूकाशः । इकः किम् ? प्रकाशः । 'नोदात्तोपदेश–' (सू २७६३) इति न वृद्धिः । शमः । आचमादेस्तु आचामः । कामः । वामः । विश्राम इति त्वपाणिनीयम् ।

घञ् प्रत्यय पर रहते स्फुर् एवं स्फुल धातु के एच् का आकारादेश होता है । स्फारः । स्फालः । परि ह+घञ् वृद्धि एवं उपसर्ग के इकार का दीर्घ 'उपसर्गस्य घञि' से हुआ , परीसारः । नीकाशः यहां 'इकः काशे' सूत्र से काश उत्तर में रहते इगन्त उपसर्ग के अन्त्याच् का दीर्घ होता है । इससे दीर्घ हुआ । इगन्त न होने से प्रकाशः यहां दीर्घ न हुआ । शमः यह घञन्त है 'अत उपधायाः' से प्राप्त वृद्धि का निषेध हुआ 'नोदात्तोपदेशस्य' सूत्र से वृद्धिनिषेधक सूत्र में 'अनाचमेः' कथन से आचामः, कामः, वामः यहां वृद्धि हुई । विश्रमः यही पाणिनि-सम्मत है। वृद्धि निषेध से विश्रामः यह पाणिनि मत विरुद्ध है । श्रम उदात्तोपदेश है ।

विमर्शः—'धुर्यान् विश्रामयन्' इति तु ण्यन्तात् अच् प्रत्यय से समाधेय वह है । नोदात्तोपदेश सूत्र णिच् में वृद्धि निषेधक नहीं है । वह कृत पर में ही निषेधक है । 'वा' से व्यवस्थित विभाषा मानकर ह्रस्व 'मितां ह्रस्वः' से न हुआ । किन्तु णिजन्तत्व कल्पना में अर्थ भेद प्रसङ्ग होने लगेगा । यह केवल आपत्ति है । प्रयोग सिद्धि अनुकूल अभिप्रेतार्थ के लिए है । वस्तुतस्तु धात्वर्थव्यापाररूप प्रेषणार्थ की निवृत्ति कर अर्थात् केवल फलमात्र वाचकत्व स्वीकार कर णिच् कर ण्यन्त का अर्थ प्रकृत में शुद्ध धात्वर्थ ही होगा । अतः दोष नहीं । शुद्धधात्वर्थ व्यापार विषयक बोधजनकत्व या वाच्यवाचकभाव रूपा शक्ति का 'भोग' यहां हुआ । यही तात्पर्यार्थ महाकवि का है विश्रामयन् प्रयोग सुसङ्गत हुआ । इसी प्रकार वक्ष्यमाण प्रयोग भी हुआ ।

"रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी ।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः" ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३१८६ स्यदो जवे ६।४।२८।

स्यन्देर्घञि नलोपो वृद्ध्यभावश्च निपात्यते । स्यदो वेगः । अन्यत्र स्यन्दः ।

जव अर्थ में स्यन्द का नकार लोप एवं वृद्धि का अभाव घञ् से निपातित होता है । प्रस्रवण अर्थ में नकार लोपाभाव है । टपकना अर्थ में स्यन्दः । वेग में स्यदः ।

३१८७ अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः ६।४।२९।

अवोदः अवक्लेदनम् । एध इन्धनम् । ओद्म उन्दनम् । अन्येनैलोपो वृद्ध्यभावश्च । प्रश्रथः । हिमश्रथः ।

अवोद, एध, ओद्म, प्रश्रथ, हिम, श्रथ ये निपातन से सिद्ध होते हैं । अवक्लेदन अर्थ में अवोदः, 'उन्दी क्लेदने' अवपूर्वक घञ् में न-लोप निपातन है । एधः—इन्ध् से घञ् में न-लोप एवं गुण निपातित है, 'न धातुलोपे' से गुण निषेध यहां प्राप्त था अतः गुण का निपातन हुआ । इन्धन अर्थ में एधः है । ओद्म = उन्दन में । उन्द × औणादिक मन् प्रत्यय, नलोप एवं गुण । प्रश्रथः । हिमः । प्रपूर्वक हिम पूर्वक श्रन्थ से घञ् में न लोप निपातित है एवं वृद्धि का अभाव भी है ।

३१८८ अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ३।३।१९।

कर्तृभिन्ने कारके घञ् स्यात् ।

कर्तृभिन्न कारक में संज्ञा में धातु से घञ् प्रत्यय होता है ।

३१८९ घञि च भावकरणयोः ६।४।२७।

रञ्जेर्नलोपः स्यात् रागः । अनयोः किम् ? रज्यत्यस्मिन् रङ्गः । प्रास्यत इति प्रासः । सञ्ज्ञायाम् इति प्रायिकम् । को भवता लाभो लब्धः । इत उत्तरं 'भावे' 'अकर्तरि कारके' इति 'कृत्यल्युटो बहुलम्' (सू २८४१) इति यावद् द्वयमप्यनुवर्तते ।

भाव एवं करण में घञ् प्रत्यय पर में रहते रञ्ज् धातु के नकार का लोप होता है । रञ्जनम् रागः । अथवा रज्यतेऽनेनेति रागः । रञ्ज् × घञ्—अ, न लोप, वृद्धि 'चजोः' से कुत्व । नाटक में सामाजिक जनता को बैठने की भूमि जो रङ्गशाला नाम से प्रसिद्ध है । उसमें अधिकरण में घञ् होने से नलोपाभाव हुआ = रङ्गः । प्रासः में घञ् प्रत्यय कर्म में है । 'संज्ञायाम्' ग्रहण प्रायिक है संज्ञा में 'प्रायः घञ्' इससे अन्य प्रत्यय भी संज्ञा में धातु से घञ् के विषय में होते हैं । प्रायः का संज्ञा में अन्वय नहीं है किन्तु प्रधान विधीयमान न प्रत्यय में अन्वय है "गुणानाञ्च परार्थत्वादसम्बन्धः समत्वात्" यह मीमांसा सम्मत न्याय है । विशेष्य को विशेषण का विशेषण बनाना अनुचित है जबकि प्रधान विशेष्य का वह विशेषण हो सकता है । अभिक्षुक अन्य के रहते भिक्षुक भिक्षुक से याच्ञावृत्ति नहीं करता है, यह न्याय का तात्पर्य है । प्रकृत में प्रायः का संज्ञा में अन्वय कर असंज्ञा में भी घञ् होता है यह व्याख्यान जो किया गया है एवं 'लाभो भवता लब्धः' यह उदाहरण असंज्ञा का दिया गया वह प्राचीनानुरोध से । वस्तुतः यह व्याख्यान जो 'प्रायः संज्ञायाम्' असङ्गत सर्वथा है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यहां से परस्थित सूत्रों में 'भावे' एवं 'अकर्तरि च कारके' ये दोनों 'कृत्यल्युटो बहुलम्' तक अनुवृत्त हैं।

३१९० परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः ३।३।२०।

घञ्। अजपोर्बाधनार्थमिदम्। एकस्तण्डुलनिचायः। तण्डुलानां निचायः राशिः परिच्छिद्यते। द्वौ शूर्पनिष्पावौ। शूर्पेण निष्पावौ। द्वौ कारौ (अत्र विक्षिप्यमाणो धान्यादिः परिच्छिद्यते)। 'दारजारौ कर्तरि णिलुकच' (वा २१८२)। दारयन्तीति दाराः। जरयन्तीति जाराः। (उपपतयः)।

परिमाण अर्थ में भाव एवं कर्तृभिन्न कारक में सभी धातुओं से अच् एवं अप् को बाध कर घञ् प्रत्यय होता है। अर्थात् इसके विषय में अच् प्रत्यय एवं अप् प्रत्यय नहीं होते हैं, वे बाध्य एवं यह बाधक है। परिमाणं = परिच्छित्तिः, आख्या = उक्तिः। परिच्छित्ति की उक्ति रहने पर इसकी प्रवृत्ति होती है। प्रत्ययार्थ की ही परिच्छित्ति यहां है। यहां रूढिनिरासार्थ आख्या ग्रहण है। यहां परिमाण शब्द से संख्या का ग्रहण है। यहां 'पुरस्तादपवादाः' न्याय की प्रवृत्ति नहीं है अतः अनन्तर अच् एवं दूरस्थ घञ् को 'सर्वेभ्यः' ग्रहणसामर्थ्य से यह बाध्यसामान्य चिन्तापक्ष का आश्रय पाकर के बाध करता है। 'एरच्' से अच् एवं 'ऋदोरप्' से अप् को बाध यह करता है।

एकः तण्डुलनिचायः। निचीयते = राशीक्रियते इति निचायः। यहां राशिगत एकत्व से = राश्येकत्वेन समुदाय से = समुदायेन अपरिच्छिन्न यह अर्थ अर्थात् प्रतीयमान है। यहां एरच् प्राप्त था घञ् से वह बाधित हुआ। तण्डुलों का राशीकरण अर्थ प्रतीयमान हुआ। द्वौ शूर्पनिष्पावौ। तुषादि के अपनयन = दूरीकरण से शोधित जो तण्डुलादि उसको 'निष्पावः' कहते हैं। उसमें शूर्प प्रकृष्टोपकारत्व से करण है। करण तृतीयान्त के साथ द्वित्वसंख्यायुक्त निष्पाव का 'कर्तृकरणे' से समास है। ऋदोरप् से अप् को बाधकर घञ् हुआ।

निष्पावगत द्वित्व शाब्द है, शूर्पगत द्वित्व तो शाब्द नहीं किन्तु आर्थिक है। यहां "निरभ्रो दृक्वोः" से घञ् प्राप्त था किन्तु सर्वग्रहण से इससे घञ् किया। अप् प्रत्यय का प्रधानोदाहरण— "द्वौ कारौ" यह है। कॄ विक्षेपे कर्म में घञ् प्रत्यय। सूर्प से संशोधित पृथ्वी पर = खरिहान पर पड़ा हुआ धान्य का समूह को कार कहते हैं = "शूर्पादिना विक्षिप्तो धान्यराशिः कारः"। यहां सर्वेभ्यः यह पञ्चमीनिर्देश सामर्थ्य से प्रकृत्याश्रय ही अपवाद है, अर्थाश्रय नहीं, स्त्रियां क्तिन् तो अर्थाश्रय है अतः क्तिन् घञ् का बाध्य नहीं है, अतः "एका तिथेरुच्छ्रितिः" यह हुआ। यहां कर्म में या भाव में क्तिन् है। ऊर्ध्वीकृत या राशिकृत अर्थ है।

ण्यन्त दॄ धातु से एवं जॄ धातु से कर्ता में घञ् प्रत्यय होता है एवं णिच् का लोप न होकर लुक् होता है। दारयन्ति दाराः घञ् णिलुक् वृद्धि रपरत्व दारशब्द घुंलिङ्ग स्त्री अर्थ में नित्यबहुवचनान्त है। णिच् लोप यदि होता तो उसका स्थानिवद्भाव से वृद्धि न होती, लुक् में स्थानिवद्भाव न हुआ 'क्ङिति च' से निषेध हुआ। णिच् निमित्तक यद्यपि वृद्धि हो सकती थी किन्तु जार शब्द में मित्त्वप्रयुक्त ह्रस्व की आपत्ति होती, 'जनीजॄष्' से जॄ धातु णिच् में मित् है। जीर्ण करने वाले को 'जारः' कहते हैं = 'परस्त्रीगमनकर्ता व्यभिचारिणी का प्रेमपात्र'। भाषा में 'यार' शब्द से वह व्यवहृत होता है। परक्षेत्र में बीजवपन सर्वथा निषिद्ध है।

३१९१ इङश्च ३।३।२१।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घञ्। अचोऽपवादः। उपेत्यास्मादधीयते उपाध्यायः। 'अपादाने स्त्रियामुपसङ्ख्यानं तदन्ताच्च वा ङीष्' (वा २१८४) उपाध्याया। उपाध्यायी। 'शॄ वायुवर्णनिवृत्तेषु' (वा २१८५)। 'शॄ' इत्यविभक्तिको निर्देशः। शारो वायुः। करणे घञ्। शारो वर्णः। चित्रीकरणमिह धात्वर्थः। निव्रियते आव्रियतेऽनेनेति निवृतमावरणम्। बाहुलकात्करणे क्तः। 'गौरिवाऽकृतनीशारः प्रायेण शिशिरे कृशः'। अकृतप्रावरण इत्यर्थः। 'प्रदक्षिणप्रसव्यगामिनां शाराणाम्' इति वार्तिककारप्रयोगादन्येष्वपि शार इति भवति।

कर्तृभिन्न कारक में इङ् से घञ् होता है। यह अच् प्रत्यय का बाधक है। गुरुकुल में गुरु के समीप जाकर जिससे अध्ययन क्रिया सम्पादित हो उसे 'उपाध्याय' कहते हैं। अपादान कारक में स्त्रीलिङ्ग में इङ् से घञ् प्रत्यय होता है, एवं घञन्त से ङीष् विकल्प से होता है, पक्ष में टाप्, दीर्घ 'उपाध्यायी' 'उपाध्याया' स्त्री अर्थ में क्तिन् बाधनार्थ यह वचन है। वायु, वर्ण, निवृत्त अर्थ में शॄ से घञ् प्रत्यय होता है। शॄ में विभक्ति लुक् करके निर्देश है। शारः = वायुः। करण में घञ् है, वर्ण अर्थ में शारः। चित्रीकरण यहाँ धातुवाच्य अर्थ है। आवरणरूप निवृत्त अर्थ में निवृत करण में क्त प्रत्यय निवृतं = आवरणम्। शीत में ठण्ड न लगने के लिए गौ की तरह उपरि भाग में आच्छादन से रहित = अकृतप्रावरणः।

३१९२ उपसर्गे रुवः ३।३।२२।

घञ्। संरावः। उपसर्गे किम्? रवः।

भाव में एवं कर्तृभिन्न कारक में उपसर्गपूर्वक रु धातु से घञ् प्रत्यय होता है। संरावः। रवः यहाँ अच् प्रत्यय ही हुआ। उपसर्गपूर्वक न होने से घञ् की यहाँ अप्राप्ति है।

३१९३ अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम् ८।३।८६।

अस्मात्स्तनः सस्य मूर्धन्यः। अभिनिष्टानो वर्णः। शब्दसञ्ज्ञायां किम्? अभिनिःस्तनति मृदङ्गः।

शब्द संज्ञा होने पर अभि एवं निस् पूर्वक स्तन् धातु के सकार को षकार रूप मूर्धन्य आदेश होता है। अभिनिष्टानो वर्णः। शब्द संज्ञा से भिन्न में अभिनिःस्तनति मृदङ्गः।

३१९४ समि युद्रुदुवः ३।३।२३।

संयूयते मिश्रीक्रियते गुडादिभिरिति संयावः। पिष्टविकारोऽपूपविशेषः। सन्द्रावः। सन्दावः।

सम्पूर्वक यु, द्रु, दु इनसे भाव में एवं कर्तृभिन्न कारक में घञ् प्रत्यय होता है। संयावः = गुडादि संमिश्रण कर निर्मित जो पूँआ। संद्रावः। संदावः।

३१९५ श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे ३।३।२४।

आयः। नायः। भावः। अनुपसर्गे किम्? प्रश्रयः। प्रणयः। प्रभवः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कथम् 'प्रभावो राज्ञः' इति। प्रकृष्टो भाव इति प्रादिसमासः। कथम् 'राज्ञो नयः' इति ? बाहुलकात्।

पूर्व में उपसर्ग न रहते श्रि, नी, भू, इनसे भाव में एवं कर्तृभिन्न कारक में घञ् प्रत्यय होता है। श्रायः। नायः। भावः। उपसर्ग पूर्वक इनसे अच् प्रत्यय करना। प्रभवः होना चाहिये प्रभाव कैसे हुआ ? समाधान करते हैं कि प्रकृष्टो भावः प्रभावः घञन्तभाव का प्र के साथ प्रादि समास है, प्रगतो भावः 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया' वार्तिक से। 'राज्ञो नयः' यहां 'नायः' क्यों न हुआ ? बाहुलक बल से अच् ही हुआ, घञ् नहीं।

३१९६ वौ क्षुश्रुवः ३।३।२५।

विक्षावः। विश्रावः। वौ किम् ? क्षवः। श्रवः।

वि पूर्वक क्षु एवं श्रु से भाव में एवं कर्तृभिन्न कारक में घञ् प्रत्यय होता है। विक्षावः। विश्रावः। श्रवः=कान। यहां अच् प्रत्यय हुआ वि पूर्वक श्रु न होने से।

३१९७ अवोदोर्नियः ३।३।२६।

अवनायोऽधोनयनम्। उन्नायः ऊर्ध्वनयनम्। कथम् 'उन्नयः उत्प्रेक्षा' इति ? बाहुलकात्।

अव एवं उत् इन से पर नी से भाव में एवं कर्तृभिन्न कारक में घञ् प्रत्यय होता है। अवनति या अधोनयन में अवनायः। ऊर्ध्वनयन में उन्नायः। बाहुलक से उन्नयः।

३१९८ प्रे द्रुस्तुस्रुवः ३।२।२७।

प्रद्रावः। प्रस्तावः। प्रस्रावः। प्रे इति किम् ? द्रवः। स्तवः। स्रवः।

प्र पूर्वक द्रु, स्तु, स्रु से भाव में एवं कर्तृभिन्न कारक में घञ् प्रत्यय होता है। प्रद्राव आदि। प्र उपसर्ग रहित में द्रवः इत्यादि।

३१९९ निरभ्योः पूल्वोः ३।३।२८।

निष्पूयते शूर्पादिभिरिति निष्पावो धान्यविशेषः। अभिलावः। निरभ्योः किम् ? पवः। लवः।

नि पूर्वक पूञ्, अभि पूर्वक लू इनसे भाव में अकर्तृकारक में घञ् होता है। निष्पावः=धान्यविशेष। निष्पूयते शूर्पादिभिरिति निष्पावः। अभिलावः। केवल में पवः अच् प्रत्यय लवः में भी अच्।

३२०० उन्न्योर्ग्रः ३।२।२९।

उद्गारः। निगारः। उन्न्योः किम् ? गरः।

भाव में कर्तृभिन्न कारक में उत्पूर्वक एवं नी पूर्वक गृ से घञ् प्रत्यय होता है। उद्गारः। निगारः। केवल में गरः यहां अच् प्रत्यय हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३२०१ कॄ धान्ये ३।३।३०।

'कॄ' इत्यस्माद्धान्यविषयकादुन्योर्घञ्स्यात्। उत्कारो निकारो धान्यस्य विक्षेप इत्यर्थः। धान्ये किम्? भिक्षोत्करः। पुष्पनिकरः।

धान्य अर्थ में भाव एवं अकर्तृकारक में उत्पूर्वक एवं नि पूर्वक कॄ धातु से घञ् प्रत्यय होता है। धान्य का विक्षेप में उत्कारः, निकारः। धान्यभिन्न में उत्करः। निकरः। अच्।

३२०२ यज्ञे समि स्तुवः ३।३।३१।

समेत्य स्तुवन्ति यस्मिन्देशे छन्दोगाः, स देशः संस्तावः। यज्ञे किम्? संस्तवः परिचयः।

यज्ञ अर्थ में भाव में एवं कर्तृभिन्न कारक में सम्पूर्वक स्तु से घञ् होता है। संस्तावः = जिस देश में सामवेद को जाननेवाले मिलकर स्तुति करते हैं। यज्ञ से भिन्न = परिचय अर्थ में संस्तवः यहां अच् प्रत्यय हुआ।

३२०३ प्रे स्त्रोऽयज्ञे ३।३।३२।

अयज्ञे इतिच्छेदः। 'यज्ञे' इति प्रकृतत्वात्। प्रस्तारः। अयज्ञे किम्? बर्हिषः प्रस्तरो मुष्टिविशेषः।

यज्ञ भिन्न अर्थ में प्रपूर्वक स्तृ धातु से भाव में एवं कर्तृभिन्नकारक में घञ् प्रत्यय होता है। पूर्व में 'यज्ञे' है यहां 'अयज्ञे' पदच्छेद है। यदि यह भी यज्ञ में होता तो अनुवृत्तिमात्र होती यहां अयज्ञे पदच्छेद जब किया तब वह सार्थक हुआ। यज्ञ में प्रस्तरः = मुष्टिविशेष अर्थ है।

३२०४ प्रथने वावशब्दे ३।३।३३।

विपूर्वात्स्तृणातेर्घञ्स्यादशब्दविषये प्रथने। पटस्य विस्तारः। प्रथने किम्? तृणविस्तरः। अशब्दे किम्? ग्रन्थविस्तरः।

शब्द भिन्न आख्यान में भाव में एवं अकर्तृकारक में विपूर्वक स्तृ से घञ् होता है। विस्तारः परस्य। आख्यान अर्थ की जहां अप्रतीति है वहां तृणावस्तरः। शब्द अर्थ में ग्रन्थविस्तरः।

३२०५ छन्दोनाम्नि च ३।३।३४।

'स्त्रः' इत्यनुवर्तते। विष्टारः पङ्क्तिश्छन्दः। विस्तीर्यन्तेऽस्मिन्नक्षराणीत्यधिकरणे घञ्। ततः कर्मधारयः।

छन्द का नाम में वि पूर्वक स्तृ से भाव एव कर्तृभिन्न कारक में घञ् होता है। विष्टारपङ्क्ति नाम का छन्द, जिसमें वर्णों का विस्तार हो, यहां अधिकरण में घञ् प्रत्यय है। बाद में कर्मधारय समास हुआ है।

३२०६ छन्दोनाम्नि च ८।३।९४।

विपूर्वस्य स्तृणातेर्घञन्तस्य सस्य षत्वं स्याच्छन्दोनाम्नि। इति षत्वम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छन्द का नाम में वि पूर्वक घञन्त सृ का सकार का षकार होता है। यह षत्व विधायक सूत्र से षत्व हुआ।

३२०७ उदि ग्रहः ३।३।३५।

उद्ग्राहः।

उत् उपसर्गक पूर्वक ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय होता है।

३२०८ समि मुष्टौ ३।३।३६।

मल्लस्य सङ्ग्राहः। मुष्टौ किम्? द्रव्यस्य सङ्ग्रहः।

मुष्टि विषयक धात्वर्थ प्रतीयमान रहते सम् पूर्वक ग्रह से घञ् प्रत्यय होता है। मल्लस्य संग्राहः। दृढता पूर्वक ग्रहण मुष्टि से होता है। मुष्टि विषयक जहां धात्वर्थ नहीं है वहां तो संग्रहो द्रव्यस्य यही हुआ। अच् प्रत्यय यहां है।

३२०९ परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः ३।३।३७।

परिपूर्वान्नयतेर्निपूर्वादिणश्च घञ्स्यात्क्रमेण द्यूते अभ्रेषे च विषये। परिणायेन शारान्हन्ति। समन्तान्नयनेनेत्यर्थः। एषोऽत्र न्यायः। उचितमित्यर्थः। द्यूताऽभ्रेषयोः किम्? परिणयो विवाहः। न्ययो नाशः।

परिपूर्वक नी से द्यूत विषय अर्थ गम्यमान रहते एवं नि पूर्वक इण् से अभ्रेष विषयक गमन में घञ् प्रत्यय होता है। परिणायेन शारान् हन्ति समन्तान्नयनेन। यहां यही क्रम अनुष्ठेय एवं उचित है। यथाक्रम प्राप्त का अनुष्ठान को 'अभ्रेष' कहते हैं। द्यूत विषयक नयन एवं अभ्रेष विषयक गमन अर्थ जहां नहीं वहां परिणयः = विवाह, एवं न्ययः = नाश। यहां उभयत्र अच् प्रत्यय है।

३२१० परावनुपात्यय इणः ३।३।३८।

क्रमप्राप्तस्यानतिपातोऽनुपात्ययः। तव पर्यायः। अनुपात्यये किम्? कालस्य पर्ययः, अतिपात इत्यर्थः।

अविच्छेद = क्रम प्राप्ति का अभाव में परिपूर्वक इण् से घञ् प्रत्यय होता है। तुम्हारी पारी है = तव पर्य्यायः। जहां क्रम प्राप्ति का अतिपात = विच्छेद रहेगा वहां अतिपात—यथा कालस्य पर्य्ययः।

३२११ व्युपयोः शेतेः पर्याये ३।३।३९।

तव विशायः। तव राजोपशायः। पर्याये किम्? विशयः। संशयः। उपशयः समीपशयनम्।

पर्याय गम्यमान होने पर वि पूर्वक एवं उप पूर्वक शीङ् से घञ् प्रत्यय होता है। तव विशायः। तव राजोपशायः। तुम्हारी सोने की पारी है। तुम्हारी राजा के समीप शयन क्रिया की पारी है। पर्याय से भिन्न में विशयः आदि।

३२१२ हस्तादाने चेरस्तेये ३।३।४०।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(चिनोतेर्घञ् हस्तादाने गम्ये)। हस्तादान इत्यनेन प्रत्यासत्तिरादेयस्य लक्ष्यते। पुष्पप्रचायः। हस्तादाने किम्? वृक्षाग्रस्थानां फलानां यष्ट्या प्रचयं करोति। अस्तेये किम्? पुष्पप्रचयः चौर्येण।

स्तेय + चौर्यकर्म इससे भिन्न हस्तादान अर्थ गम्यमान रहे तब चिञ् से घञ् प्रत्यय होता है। आदेय वस्तु का सम्बन्ध हस्त दान से समझना चाहिये। घञ् वृद्धि से पुष्पप्रचायः। वृक्ष के अग्रभाग में रहने वाले फलों को लाठी से ताडन कर फलों का संचय करता है वहां प्रचय होता है। स्तेय अर्थ में पुष्प प्रचयः यही हुआ।

३२१३ निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ३।३।४१।

एषु चिनोतेर्घञ् स्यात्। आदेश्च ककारः। उपसमाधानं राशीकरणम्, तच्चार्थः। अन्ये प्रत्ययार्थस्य ककारस्योपाधिभूताः। निवासे—काशीनिकायः। चितौ—आकायमग्निं चिन्वीत। शरीरे—चीयतेऽस्मिन्नस्थ्यादिकमिति कायः। समूहे—गोमयनिकायः। एषु किम्? चयः। 'चः कः' इति वक्तव्ये आदेरित्युक्तेर्यङ्लुक्यादेरेव यथा स्यादिति। गोमयानां निकेचायः। पुनःपुना राशीकरणमित्यर्थः।

निवास, चिति, शरीर, उपसमाधान इन अर्थों में चि धातु से घञ् प्रत्यय होता है एवं आदिवर्ण के स्थान में आदेश होता है। राशीकरण को उपसमाधान कहते हैं। यही चार्त्वर्थ है। अन्य अर्थ प्रत्ययार्थ कारक के उपाधिभूत है। निवासार्थ में काशीनिकायः। चिति में—आकायम्। शरीर में कायः अस्थि आदि का संचय जिसमें रहे उसे कायः कहते हैं। समूहार्थ में गोनिकायः इन चारों से भिन्न में 'चयः'। यहां सूत्र में 'चः कः' चकार को ककारादेश होता है। इससे ही कार्य निर्वाह होता है पुनः आदि ग्रहण यङ् लुक् में आदि के स्थान में ककार आदेशार्थ है। गोबर के कण्डों का बार बार या अतिशय संचय करने वाला वह यहां 'निचेकायः गोमयानाम्' हुआ।

३२१४ सङ्घे चानौत्तराधर्ये ३।३।४२।

चेर्घञ्, आदेश्च कः। भिक्षुनिकायः। प्राणिनां समूहः सङ्घः। अनौत्तराधर्ये किम्? सूकरनिचयः। स्तन्यपानादौ उत्तराधरभावेन शेरते। सङ्घे किम्? ज्ञानकर्मसमुच्चयः।

उत्तराधरभाव से भिन्न अर्थ में चि से घञ् प्रत्यय होता है, आदि वर्ण का ककारादेश होता है। भिक्षुनिकायः। प्राणिसमूह को सङ्घ कहते हैं। जहाँ उत्तराधरभाव है वहां सूकरनिचयः। स्तन्यपानार्थ सूकर उत्तराधरभाव से शयन करते है।

जहां समूह नहीं है वहां ज्ञानकर्मसमुच्चयः। ज्ञान एवं कर्म का एकत्रीकरण अर्थ यहां है।

३२१५ कर्मव्यतिहारे णच्स्त्रियाम् ३।३।४३।

स्त्रीलिङ्गे भावे णच्।

क्रिया के व्यत्यास अर्थ में धातु से णच् प्रत्यय होता है स्त्रीलिङ्ग में भाव में।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३२१६ णचः स्त्रियामञ् ५।४।१४।

(णजन्तात्स्त्रियामञ्)

स्त्री लिङ्ग में विहित णच् प्रत्ययान्त से अञ् होता है।

३२१७ न कर्मव्यतिहारे ७।३।६।

अत्र ऐच्न स्यात्। व्यावक्रोशी। व्यावहासी।

कर्मव्यतिहार अर्थ में ऐच् आगम नहीं होता है। कृद्ग्रहण परिभाषा से उपसर्ग विशिष्ट णजन्त धातु ने अञ् प्रत्यय तत्प्रयुक्त आदि वृद्धि उपसर्ग की हुई ऐच् नञ्वाभ्याम् से हुआ—व्यावक्रोशी। क्रुश आह्वाने। व्यावहासी, हसे हसने।

३२१८ अभिविधौ भाव इनुण् ३।३।४४।

अभिविधि में भाव में धातु से इनुण् प्रत्यय होता है।

३२१९ अणिनुणः ५।४।१५।

(इनुणन्तादण् स्यात्स्वार्थे) आदिवृद्धिः। 'इनण्यनपत्ये' (सू १२४५)। (अनपत्यार्थेऽणि परे इन् प्रकृत्या स्यात्)। सांराविणं वर्तते।

इनुण् प्रत्ययान्त से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है। आदि पद की वृद्धि होती है। 'इनण्यनपत्ये' से प्रकृति भाव होता है। सांराविणम्। संशब्द अभिविधि द्योतक है। गतिसंज्ञा विशिष्ट से अण् प्रत्यय हुआ, आदि वृद्धि, प्रकृतिभाव 'इनण्यनपत्ये' से हुआ 'नस्तद्धिते' से टिलोप हुआ, शब्द शक्ति स्वभाव से यह नपुंसक है।

३२२० आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः ३।३।४५।

अव, नि, एतयोर्ग्रहेर्घञ्स्याद् शापे। अवग्राहस्ते भूयात्। अभिभव इत्यर्थः। निग्राहस्ते भूयात्। बाध इत्यर्थः। आक्रोशे किम्? अवग्रहः पदस्य। (छेदः पदस्येत्यर्थः)। निग्रहश्चोरस्य। (निरोधश्चोरस्येत्यर्थः)।

अवपूर्वक एवं निपूर्वक ग्रह् से शाप अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है। तुम्हारा परजय हो जाय इस अर्थ में 'अवग्राहस्ते भूयात्'। तुम्हारा बाध हो जाय यहां निग्राहः हुआ। पदच्छेद रूप अवग्रहः। यहां शाप नहीं है। निग्रहः चोरस्य।

३२२१ प्रे लिप्सायाम् ३।३।४६।

पात्रप्रग्राहेण चरति भिक्षुः। अन्यत्र पात्रप्रग्रहः।

लाभविषयिणी इच्छा गम्यमान रहने प्रपूर्वक ग्रह से घञ् प्रत्यय होता है। वस्तु प्राप्ति की अभिलाषा से भिक्षुक पात्र लेकर गमन करता है भोज्य सामग्री रखने के लिए। पात्रप्रग्राहेण चरति भिक्षुः। लिप्सा भिन्न में प्रग्रह होता है अच् प्रत्यय से।

३२२२ परौ यज्ञे ३।३।४७।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तरः परिग्राहः । स्फ्येन वेदेः स्वीकरणम् ।

प्रयुज्यमान अर्थ में परि उपपद रहते ग्रह से घञ् होता है। उत्तरः परिग्राहः = स्फ्येन विदेः स्वीकरणम् ।

३२२३ नौ वृ धान्ये ३।३।४८।

वृ इति लुप्तपञ्चमीकम् । नीवाराः । धान्ये किम् ? निवरा कन्या । क्तिन्विषयेऽपि बाहुलकादप् । प्रवरा सेना, प्रवरा गौरितिवत् । एवं च स्त्रीलिङ्गेऽपि ।

सूत्र 'वृ' यह लुप्त पञ्चम्यन्त पद है। धान्य अर्थ में निपूर्वक वृ से घञ् प्रत्यय होता है। मुनि अन्न को नीवारः कहते हैं, उपसर्गस्थ घञ् से दीर्घ हुआ। यहां धान्य नहीं वहां निवरा कन्या। बाहुलक बल से क्तिन् विषय में भी अप् प्रत्यय होगा 'प्रवरा सा' यह हुआ।

३२२४ उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः ३।३।४९।

उच्छ्रायः । उद्यावः । उत्पावः । उद्द्रावः । कथं 'पतनान्ताः समुच्छ्रयाः' इति । बाहुलकात् ।

उद् उपपद रहते श्रि, यु, पू, द्रु इनसे घञ् प्रत्यय होता है। उच्छ्रायः = उन्नतिः। अपात्र की उन्नति अन्त में पतनरूप से परिणत होती है, यहां समुच्छ्रयाः बाहुलक से हुआ अर्थात् घञ् न हुआ।

३२२५ विभाषाऽङि रुप्लुवोः ३।३।५०।

आरावः । आरवः । आप्लावः । आप्लवः ।

आङ् उपपद में रहते रु एवं प्लु से विकल्प घञ् होता है, आरावः, आरवः। आप्लावः। आप्लवः।

३२२६ अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे ३।३।५१।

विभाषेति वर्तते । देवस्य अवग्रहः । अवग्राहः । देवकर्तृकमवर्षणमित्यर्थः । वर्षप्रतिबन्धे किम् ? अवग्रहः पदस्य ।

यहां विभाषा की अनुवृत्ति है। वर्षा का प्रतिबन्ध = न होना अर्थ में अवपूर्वक ग्रह् से विकल्प घञ् होता है। अवग्राहः। अवग्रहः। पदच्छेद अर्थ में अवग्रहः पदस्य यही हुआ।

३२२७ प्रे वणिजाम् ३।३।५२।

प्रे ग्रहेर्घञ्वा वणिजां सम्बन्धी चेत्प्रत्ययार्थः । तुलासूत्रमिति यावत् । तुलाप्रग्राहेण चरति । तुलाप्रग्रहेण ।

यदि प्रत्ययार्थ वणिक् सम्बन्धी तुलासूत्र हो तो प्रपूर्वक ग्रह से विकल्प घञ् प्रत्यय होता है। वैश्य व्यापार के लिए अपने साथ तराजूँ लेकर चलता है। यहां तुलाप्रग्राहेण, तुलाप्रग्रहेण चरति वैश्यः। घञ् पक्ष में अच् प्रत्यय हुआ।

३२२८ रश्मौ च ३।३।५३।

प्रग्रहः । प्रग्राहः ।

रश्मि अर्थ में प्रपूर्वक ग्रह से विकल्प घञ् प्रत्यय होता है। प्रग्राहः। प्रग्रहः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३२२९ वृणोतेराच्छादने ३।३।५४।

विभाषा प्र इत्येव। प्रावारः। प्रवरः।

आच्छादन अर्थ में प्रपूर्वक वृ से विकल्प घञ् होता है। प्रवारः। प्रवरः।

३२३० परौ भुवोऽवज्ञाने ३।३।५५।

परिभावः। परिभवः। अवज्ञाने किम्? सर्वतो भवनं परिभवः।

अवज्ञा = अपमान = तिरस्कार अर्थ में परिपूर्वक भू धातु से विकल्प घञ् होता है। परिभावः। परिभवः। सर्वतो भवनम् परिभवः, यहां अवज्ञा नहीं अतः अच् प्रत्यय हुआ। परिपूर्वक भू का अवज्ञा अर्थ है। पुनः सूत्र में क्रियमाण 'अवज्ञाने' व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि धातुओं का अनेक अर्थ है = 'धातूनामनेकार्थत्वम्' इति। "अनादरः परिभवः परिभावस्तिरस्क्रिया"। यह कोश है। अत एव परिभाव्य का तिरस्कृत्य एवं विचार्य्य अर्थ = द्वय हुआ। भाष्यकार ने भी कहा है कि 'अनेकार्था धातवः' इति।

३२३१ एरच् ३।३।५६।

चयः। जयः। 'भयादीनामुपसङ्ख्यानं नपुंसके क्तादिनिवृत्त्यर्थम्' (वा २१९७-९८)। भयम्। वर्षम्।

इवर्णान्त धातुओं से अच् प्रत्यय होता है। चयः। जयः। संचय करने वाला। यहां विजय-प्राप्ति कर्ता, अच् प्रत्यय कर्ता में हुआ। भी आदि धातुओं से अच् प्रत्यय होता है। भयम्। वर्षम्।

३२३२ ऋदोरप् ३।३।५७।

ऋवर्णान्तादुवर्णान्तादप्। करः। गरः। शरः। यवः। लवः। स्तवः। पवः।

ऋवर्णान्त एवं उवर्णान्त धातुओं से अप् प्रत्यय होता है। करः = उत्पत्तिजनक व्यापारकर्ता। गिलनेवाला-गरः। शरः। यवः। लवः। स्तवः। पवः। यहां सर्वत्र कर्ता में प्रत्यय है।

३२३३ वृक्षासनयोर्विष्टरः ८।३।९३।

अनयोर्विपूर्वस्य सः षत्वं निपात्यते। विष्टरो वृक्ष आसनं च। वृक्ष-इति किम्? वाक्यस्य विस्तरः।

वृक्ष एवं आसन अर्थ में विपूर्वक स्तृ धातु के सकार को षकार होता है। विष्टरः = वृक्ष या आसन। विवाह में विष्टरो विष्टरो विष्टरः, विष्टरं प्रतिगृह्यताम्—यह कन्यादाता कहता है कि यह आसन ३ है उसको आप ग्रहण करें। वर कहता है कि—विष्टरं प्रतिगृह्णामि = मैं आपके द्वारा दत्त आसन को ग्रहण करता हूँ। वृक्ष एवं आसन से भिन्न में वाक्यार्थ का विस्तार अर्थ में विस्तरः यही हुआ।

३२३४ ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च ३।३।५८।

अप्स्यात्। घञ्चोरपवादः। ग्रहः। वरः। दरः। निश्चयः। गमः। 'वशि-रण्योरुपसङ्ख्यानम्' (वा २२०३)। वशः। रणः। 'घञर्थे कविधानम्' (वा २२०४) प्रस्थः। विघ्नः। 'द्वित्वप्रकरणे के कृञादीनामिति वाच्यम्' (वा ३४२९)। चक्रप्। चिक्लिदप्। चङ्क्रमः। (चक्रमसः)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्रह, वृ, दृ, निर् पूर्वक चि, गम्, इनसे अप् प्रत्यय होता है। यह घञ् एवं अच् का वाचक है। ग्रहण करने वाला = ग्रहः। स्वीकारकर्ता = वरः। विदारणकर्ता = दरः। निश्चय करने वाला = निश्चयः। गमनकर्ता = गमः। वश् एवं रण् से अप् होता है। इच्छा करने वाला = वशः। शब्दकर्ता रणः। घञ् प्रत्यय के अर्थ में कप् प्रत्यय होता है। प्रस्थः। विघ्नः। प्रस्था + क 'आतश्चोपसर्गे' से ड हुआ। आकार का लोप, उपपद समास प्रस्थः। विहन् + क 'गमहन' से उपधा लोप, कुत्व 'हो हन्तेः' से हुआ विघ्नः। 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' इस द्वित्वप्रकरण में कप्रत्यय पर में रहते कृञ् आदि धातुओं के एकाच् प्रथम अवयव का द्वित्व होता है। चक्रम्। चिक्लिदम्। चक्वनसः।

३२३५ उपसर्गेऽदः ३।३।५९।

अप्स्यात्।

उपसर्ग उपपद में रहते अद् धातु से अप् प्रत्यय होता है।

३२३६ घञपोश्च २।४।३८।

अदेर्घस्लृ स्याद्घञ्यपि च। प्रघसः। विघसः। उपसर्गे किम्? घासः।

घञ् एवं अप् प्रत्यय पर में रहते अद् को घस्लृ आदेश होता है। प्रघसः। विघसः। केवल में घासः।

३२३७ नौ ण च ३।३।६०।

नौ उपपदे अदेर्णः स्यादप् च। न्यादः। निघसः।

नि उपपद रहते अद् से ण प्रत्यय होता है एवं अप् प्रत्यय भी होता है। न्यादः। निघसः।

३२३८ व्यधजपोरनुपसर्गे ३।३।६१।

अप्स्यात्। व्यधः। जपः। उपसर्गे तु, आव्याधः। उपजापः मन्त्रभेदः।

उपसर्ग पूर्व में न रहते ताडनार्थक व्यध् एवं जप् से अप् प्रत्यय होता है। व्यधः। जपः। उपसर्गपूर्वक व्यध से आव्याधः घञ्। उपजापः।

३२३९ स्वनहसोर्वा ३।३।६२।

अप्। पक्षे घञ्। स्वनः। स्वानः। हसः। हासः। अनुपसर्ग इत्येव। प्रस्वानः। प्रहासः।

अनुपसर्गक स्वन् एवं हस् से विकल्प अप् प्रत्यय, पक्ष में घञ् प्रत्यय होता है। स्वनः। स्वानः। हसः। हासः। प्रस्वानः यहां घञ्। प्रहासः। स्वानः।

३२४० यमः समुपनिविषु च ३।३।६३।

एष्वनुपसर्गे च यमेरब्वा। संयमः। संयामः। उपयमः। उपयामः। नियमः। नियामः। वियमः। वियामः। यमः। यामः।

सम्, उप, नि, वि इन उपपद में रहते यम् से विकल्प अप् प्रत्यय होता है, एवं अनुपसर्गक यम् से भी विकल्प करके अप् प्रत्यय होता है। उदाहरण मूल में स्पष्ट है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३२४१ नौ गदनदपठस्वनः ३।३।६४।

अव्वा स्यात्। निगदः। निगादः। निनदः। निनादः। निपठः। निपाठः। निस्वनः। निस्वानः।

निपूर्वक गद, नद, पठ, स्वन् इनसे विकल्प अप् प्रत्यय होता है, पक्ष में घञ्।

३२४२ क्वणो वीणायां च ३।३।६५।

नावनुपसर्गे च वीणाविषयाच्च क्वणविषयाच्च क्वणतेरव्वा स्यात्। वीणाग्रहणं प्राचुर्यार्थम्। निक्वणः। निक्वाणः। क्वणः। क्वाणः। वीणायां तु-प्रक्वणः। प्रक्वाणः।

निपूर्वक एवं अनुपसर्गपूर्वक वीणाविषयक क्वण् से विकल्प अप् प्रत्यय होता है। वीणा ग्रहण में प्रादि उपसर्गार्थ है।

३२४३ नित्यं पणः परिमाणे ३।३।६६।

अप् स्यात्। मूलकपणः। शाकपणः। व्यवहारार्थं मूलकादीनां परिमितो मुष्टिर्बध्यते सोऽस्य विषयः। परिमाणे किम्? पाणः।

परिमाण विशेष अर्थ गम्य रहते पण् धातु से नित्य अप् प्रत्यय होता है—मूलकपणः। शाकपणः। व्यवहार के लिए मूलक = मूली आदि की जो मुट्ठी बांधी जाती है, वह परिमाण शब्दार्थ है। परिमाण भिन्न में घञ् से पाणः।

३२४४ मदोऽनुपसर्गे ३।३।६७।

घनमदः। उपसर्गे तु, उन्मादः।

अनुपसर्गक मद से अप् प्रत्यय होता है। घनमदः। मद अनेक प्रकार के होते हैं धन से मद = अहङ्कार = गर्व, युवावस्थाजन्य मद, विद्याजन्य मद, पदोन्नति से भी अधमजनों को अहङ्कार से वे संसार को तृणवत् मूर्ख अधिकारी समझते हैं, विद्या एवं अक्षरों के वे शत्रु हैं, केवल कुत्सित राजनीति से जातिवाद, भाई-भतीजा वाद, जिला = मण्डल वाद आदि फैलाकर देश के प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियों के अधिकारों का अन्याय से अपहरण करते हैं। प्रायः ऐसे पद से गर्वयुक्त वे पवित्र विद्यामन्दिरादि का वातावरण अन्याययुक्त कलुषित करते हैं। एवं वे स्वार्थवश जातियों में भी अवान्तर व्याप्य जातिवाद उसमें भी मण्डलवाद फैलाते हैं, उसका प्रत्यक्ष अनुभव लेखक को भी अनेक बार हुआ है। यही स्थिति अन्य क्षेत्रों में भी देखी जाती है। ईमानदार, सज्जन, नैतिक पतन-रहित भी कुछ महानुभाव देखे गये हैं किन्तु वे स्वल्पतम ही। स्वतन्त्र भारत के इन शत्रुओं से प्रभु राष्ट्र की रक्षा करें। ओं शान्तिः ३।

३२४५ प्रमदसंमदौ हर्षे ३।३।६८।

हर्षे किम्? प्रमादः। संमादः।

हर्ष अर्थ होने पर 'प्रमदः' 'संमदः' यह दो पद निपातन से सिद्ध होते है। हर्ष से भिन्न में घञ् हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३२४६ समुदोरजः पशुषु ३।३।६९।

सम्पूर्वोऽजिः समुदाये, उत्पूर्वश्च प्रेरणे तस्मात् पशुविषयकादप्स्यात्। 'अचञपोः' इत्युक्तेर्वीभावो न। समजः पशूनां संघः। उदजः पशूनां प्रेरणम्। पशुषु किम्? समाजो ब्राह्मणानाम्। उदाजः क्षत्रियाणाम्।

सम् एवं उद् उपसर्ग उपपद में रहते पशुविषयक अज् धातु से उत्तर अप् प्रत्यय होता है, आदेश विधायक सूत्र में 'अचञपोः' ऐसा पाठ होने से विभाव नहीं होगा। पशुसमूहः = समजः। पशुओं के प्रेरक को उदजः कहते हैं। पशुविषयक न होने पर अर्थात् पशुभिन्न अन्य जाति विषयक में 'समाजः ब्राह्मणानाम्', यह हुआ। यहां अप् न हुआ एवं घञ् हुआ। उदाजः क्षत्रियाणाम्।

३२४७ अक्षेषु ग्लहः ३।३।७०।

अक्षशब्देन देवनं लक्ष्यते, तत्र यत्पणरूपेण ग्राह्यं तत्र 'ग्लहः' इति निपात्यते। अक्षस्य ग्लहः। 'व्यात्युक्षीमभिसरणग्लहाददीव्यन्'। अक्षेषु किम्? पादस्य ग्रहः।

अक्ष शब्द से पाशक्रीडा का ज्ञान करना। इस क्रीड़ा में पणरूप से जो गृहीत होता है उसमें 'ग्लहः' निपातन से सिद्ध होता है। ग्रह धातु से अप् प्रत्यय एवं रेफ को लकार आदेश हुआ। यथा—अक्षस्य ग्लहः। अक्ष से भिन्न में पादस्य ग्रहः, यहां 'ग्रहवृदृ' से अप् प्रत्यय हुआ। लकारादेश का अभाव यहां है।

३२४८ प्रजने सर्तेः ३।३।७१।

प्रजनं प्रथमगर्भग्रहणम्। गवामुपसरः। कथम् अवसरः प्रसर इति। अधिकरणे 'पुंसि संज्ञायाम्—' (सू ३२९६) इति घः।

गर्भग्रहण अर्थ में सृ से अप् प्रत्यय होता है। गवामुपसरः। अवसरः। प्रसरः। यहां अधिकरण में 'पुंसि संज्ञायाम्' से घ प्रत्यय हुआ।

३२४९ ह्वः सम्प्रसारणं च न्यभ्युपविषु ३।३।७२।

निह्वः। अभिह्वः। उपह्वः। विह्वः। एषु किम्? प्रह्वायः।

नि, अभि, उप वि, इन उपसर्गों के उपपद में रहते ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय होता है, एवं सम्प्रसारण भी होता है। यथा—निह्व इत्यादि। सूत्र में वर्णित उपसर्ग से भिन्न पूर्व में रहते घञ् होता है। प्रह्वायः।

३२५० आङि युद्धे ३।३।७३।

आहूयन्तेऽस्मिन्नित्याह्वः। युद्धे किम्? आह्वायः।

युद्ध में आङ्पूर्वक ह्वेञ् से अप् प्रत्यय होता है, एवं सम्प्रसारण, योद्धाओं का आह्वान किया जाय जहां आह्वः युद्ध। युद्ध भिन्न घञ् में आह्वायः। घञ्, आस्व, युक्।

३२५१ निपानमाहावः ३।३।७४।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आङ्पूर्वस्य ह्वयतेः सम्प्रसारणमन्वृद्धिश्चोदकाधारश्चेद्वाच्यः। 'आहावस्तु निपानं स्यादुपकूपजलाशये'।

उदक = जल उसका आधार अर्थ में आङ् पूर्वक हेञ् से अप् प्रत्यय, संप्रसारण एवं वृद्धि होकर निपातन से आहावः हुआ। जल रखने का स्थान = आधार को आहाव कहते हैं एवं कुवें के समीप जलाशय को भी आहाव कहते हैं। यहां निपान का अर्थ उदकाधार है।

३२५२ भावेऽनुपसर्गस्य ३।३।७५।

अनुपसर्गस्य ह्वयतेः सम्प्रसारणम् अप् च स्याद्भावे। हवः।

उपसर्ग पूर्व में न रहते भाव में हेञ् से अप् प्रत्यय होता है एवं सम्प्रसारण भी होता है। हवः।

३२५३ हनश्च वधः ३।३।७६।

अनुपसर्गाद्धन्तेर्भावे अप्स्यात्। वधादेशश्चान्तोदात्तः। 'वधेन दस्युम्'। चाद् घञ्। घातः।

अनुपसर्ग पूर्वक हन् से भाव में अप् प्रत्यय होता है, एवं हन् के स्थान में वधादेश, उसके अन्तवर्ण को उदात्त स्वर होता है। वधेन दस्युम्। चकार से घञ् भी होता है। घातः।

३२५४ मूर्तौ घनः ३।३।७७।

मूर्तिः काठिन्यं, तस्मिन्नभिधेये हन्तेरप्स्यात्, घनश्चादेशः। अभ्रघनः। कथम्? 'सैन्धवघनमानय' इति। धर्मशब्देन धर्मी लक्ष्यते।

मूर्ति का अर्थ काठिन्य एवं कठोरता। काठिन्य अर्थ में हन् से अप् होता है। हन् को घनादेश होता है। अभ्रघनः। सैन्धवघनम् आनय, यहां लक्षणावृत्ति से धर्मवान् लक्षित है। धर्म से धर्मी अर्थात् धर्मवान् है।

३२५५ अन्तर्घनो देशे ३।३।७८।

वाहीकग्रामविशेषस्य संज्ञेयम्। अन्तर्घणः इति पाठान्तरम्।

देश में अन्तर्घन निपातन से सिद्ध होता है, हन् अप् घनादेश यह वाहीकदेशस्थ ग्राम विशेष की संज्ञा है। क्वचित् 'अन्तर्घणः' ऐसा भी पाठ है।

३२५६ अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च ३।३।७९।

द्वारैकदेशे द्वौ प्रकोष्ठावलिन्दौ आभ्यन्तरो बाह्यश्च। तत्र बाह्ये प्रकोष्ठे निपातनमिदम्। प्रविशद्भिर्जनैः पादैः प्रकर्षेण हन्यते इति प्रघणः। प्रघाणः। कर्मण्यप्। पक्षे वृद्धिः।

गृह का एक अवयव अर्थ भी जहां प्रतीति हो वहां प्रघणः प्रघाण ये निपातित हैं। द्वारप्रदेश में दो प्रकोष्ठ होते हैं, आभ्यन्तर एवं बाह्य। उसमें बाह्य प्रकोष्ठ होने पर यह निपातन है। गृह-प्रवेश समय प्रवेशकर्ताओं से पादों (चरणों) से प्रकर्ष हनन क्रिया-जन्य फलाश्रय रूप कर्म में प्रघणः। प्रघाणः। यहां कर्म रूप अर्थ में अप् प्रत्यय हुआ। एवं विकल्प से वृद्धि हुई।

३२५७ उद्घनोऽत्याधानम् ३।३।८०।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्याधानमुपरि स्थापनम् । यस्मिन् काष्ठेऽन्यानि काष्ठानि स्थापयित्वा तद्यन्ते तदुद्धनः । अधिकरणेऽप् ।

अत्याधान = उपरिस्थापन अर्थ में 'उद्धनः' निपातित है । जिस लकड़ी पर दूसरी लकड़ी रख कर छेदन किया जाय उसको 'उद्धनः' कहते हैं । हन् से अधिकरण में अप् प्रत्यय हुआ ।

३२५८ अपघनोऽङ्गम् ३।३।८१।

अङ्गं शरीरावयवः । स चेह न सर्वः, किं तु पाणिः पादश्चेत्याहुः । करणेऽप् अपघातोऽन्यः ।

शरीर का अवयव अभिधेय रहते 'अपघनः' निपातित है । यहां अङ्ग से सम्पूर्ण शरीरावयव नहीं किन्तु पाणि या पाद = चरण लेना ऐसा प्राचीनों ने कहा है । अप् प्रत्यय इससे करण में हुआ । अर्थान्तर घञ् अपघातः । वृद्धि एवं नकार को तकार ।

३२५९ करणेऽयोविद्रुषु ३।३।८२।

एषु हन्तेः करणेऽप्स्याद् घनादेशश्च । अयो हन्यतेऽनेनेत्ययोघनः । विघनः । द्रुघणः । द्रुघनः इत्येके । 'पूर्वपदात् संज्ञायाम्–' (सू ८५७) इति णत्वम् । संज्ञैषा कुठारस्य । द्रुर्वृक्षः ।

अयस्, वि, द्रु उपपद में रहते करण अर्थ में हन् से अप् प्रत्यय होता है । लोहा ताडित किया जाय जिससे = अयोघनः । यह कुठार की संज्ञा है । योगरूढ है । विघनः । द्रुघणः । यहां 'पूर्वपदात्' से णकार हुआ । द्रुः वृक्ष में है, कचित् शाखा में भी द्रु शब्द है ।

३२६० स्तम्बे क च ३।३।८३।

स्तम्बे उपपदे हन्तेः करणे कः स्यादप्च, पक्षे घनादेशश्च । स्तम्बघनः । करण इत्येव । स्तम्बघातः ।

स्तम्ब उपपद रहते हन् से करण में क प्रत्यय एवं अप् प्रत्यय होते हैं । क प्रत्यय में 'गम हन्' से उपधास्थ अकार लोपकर 'हो हन्तेः' से कुत्व, उपपद समास स्तम्बघनः अप् एवं घनादेश हन् को । करण भिन्न में घञ्, वृद्धि तत्व स्तम्बघातः ।

३२६१ परौ घः ३।३।८४।

परौ हन्तेरप्स्यात् करणे घशब्दश्चादेशः । परिहन्यतेऽनेनेति परिघः ।

परिपूर्वक हन् से करण में अप् प्रत्यय होता है, एवं धातु के स्थान में घ आदेश होता है । जिससे ताडित हो उसको परिघः—परिहन् अप् घादेश परिघः ।

३२६२ परेश्च घाङ्कयोः ८।२।२२।

परेः रेफस्य लो वा स्याद् घशब्देऽङ्कशब्दे च । पलिघः । परिघः । पर्यङ्कः । पल्यङ्कः । इह 'तरप्तमपौ घः' (सू २००३) इति कृत्रिमस्य न ग्रहणं, व्याख्यानात् ।

घ शब्द एवं अङ्क शब्द पर में रहते परि उपसर्ग का अवयव रेफ को विकल्प से लकार आदेश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होता है। यहाँ 'घ' पद से तरप् तमप् का ग्रहण नहीं है संकेतितार्थ ज्ञान विलम्बजन्य से बहिरङ्ग है, शब्द स्वरूप ज्ञान अन्तरङ्ग शीघ्रोपस्थितिमूलक है। यह शिष्टोक्त व्याख्यान है।

३२६३ उपघ्न आश्रये ३।३।८५।

उपपूर्वाद्धन्तेरप्स्याद्युपधालोपश्च। आश्रयशब्देन सामीप्यं लक्ष्यते। पर्वतेनोपहन्यते। सामीप्येन गम्यत इति पर्वतोपघ्नः।

आश्रय अर्थ में उपपूर्वक हन् से अप् प्रत्यय एवं उपधा लोप होता है। आश्रय शब्द समीपार्थक लक्षणा वृत्ति से है। सामीप्य से प्रतीयमान अर्थ में पर्वतोपघ्नः। पर्वत करण है।

३२६४ संघोद्धौ गणप्रशंसयोः ३।३।८६।

संहननं संघः। भावेऽप्। उद्धन्यते उत्कृष्टो ज्ञाप्यत उद्युद्धः। कर्मण्यप्। गत्यर्थानां बुद्ध्यर्थत्वाद्धन्तिर्ज्ञाने।

गण अर्थ में संघ एवं प्रशंसा अर्थ में उद्ध वे दोनों निपातन से सिद्ध होते हैं। संहनन अर्थ में भाव में अप् प्रत्यय हुआ एवं हन् को घ आदेश। कर्म में अ_ उत्कृष्ट ज्ञानकर्म में उद्धः। गत्यर्थक धातु बुद्धि अर्थ प्रतिपादक है, अतः यहाँ हन् धातु ज्ञान में है। ज्ञानजनक व्यापारार्थक है।

३२६५ निघो निमितम् ३।३।८७।

समन्तान्मितं निमितम् निर्विशेषं हन्यन्ते ज्ञाप्यन्ते इति निघाः वृक्षाः। समारोहपरिणाहाः इत्यर्थः।

निमित्त अर्थ में 'निघः' निपातन से सिद्ध होते हैं। समन्तात् मित को निमित कहते हैं। समारोहण से विस्तार युक्त अर्थ में निघाः वृक्षाः निर्विशेष ज्ञानकर्म।

३२६६ ड्वितः क्त्रिः ३।३।८८।

अयं भाव एव स्वभावात्। 'क्त्रेर्मञ्नित्यम्' (सू १५७०) क्त्रिप्रत्ययान्तान्मप् निर्वृत्तेऽर्थे। नित्यग्रहणात्क्त्रिर्मञ्विषयः। अत एव कृञन्तेन न विग्रहः। डुपचष्, पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम्। डुवप्, उप्त्रिमम्।

'ड्' की इत् संज्ञा युक्त धातु से क्त्रि प्रत्यय होता है। यह प्रत्यय शब्द समवेत शक्ति से भाव अर्थ जहाँ प्रतीयमान रहें वहाँ ही होता है। क्त्रि प्रत्ययान्त से निवृत्तार्थ में मप् होता है। इसीलिए क्त्रि प्रत्ययान्त से विग्रह न हुआ। पाकेन निर्वृत्तम् = सम्पादितम्। डु पचप् पाके 'आदिर्ञि। टुडवः' से 'ड्' की इत् संज्ञा लोप, क्त्रि प्रत्यय उससे मप् चकार को ककार 'पक्त्रिमम्' = विलक्षण तेजःसंयोगरूप पाकक्रिया से सम्पादित रक्तादि घट का रूप। बीजसन्तानार्थक डुवप् धातु से क्त्रि प्रत्यय सम्प्रसारण, पूर्वरूप मप् उप्त्रिमम्।

३२६७ ट्वितोऽथुच् ३।३।८९।

अयमपि स्वभावाद्भाव एव। टुवेपृ, वेपथुः। श्वयथुः।

ट् की इत् संज्ञा युक्त धातु से अथुच् प्रत्यय होता है। यह भी भाव में होता है, शब्द शक्ति स्वभाव से। वेपथुः। श्वयथुः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३२६८ यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ३।३।९०।

यज्ञः। याच्ञा। यत्नः। विश्नः। प्रश्नः। 'प्रश्ने चासन्न०' (सू० ७७७) इति ज्ञापकान्न सम्प्रसारणम्। ङित्त्वं तु विश्न इत्यत्र गुणनिषेधाय। रक्ष्णः।

यज्, याच्, यत, विच्छ्, प्रच्छ्, रक्ष्, इनसे नङ् प्रत्यय होता है। यज्+न चुत्व यज्ञः। याच्+न चुत्व टाप् दीर्घ याच्ञा। प्रश्नः यहाँ सम्प्रसारण 'प्रहिज्या' से होना चाहिये, किन्तु 'प्रश्ने चासन्नकाले' निर्देश से सम्प्रसारण भाव हुआ। नङ् में ङित्त्व गुणनिषेधार्थ है यथा विश्नः यहाँ शत्व से चुत्व निषेध है।

३२६९ स्वपो नन् ३।३।९१।

स्वप्नः।

स्वप् धातु से नन् प्रत्यय होता है। स्वप्नः।

३२७० उपसर्गे घोः किः ३।३।९२।

प्रधिः। अन्तर्धिः। उपाधीयतेऽनेनेत्युपाधिः।

उपसर्ग पूर्व में रहते धु संज्ञक दा एवं धा से कि प्रत्यय होता है। आकार लोप 'आतो लोप इटि च' से होकर प्रधिः। कि प्रत्यय विधान में अन्तर् शब्द को उपसर्गत्व बोधन कर चुके हैं, अन्तर्धिः। उपाधिः। उप आ पूर्वक धा से भाववमत में कर्ता में कि प्रत्यय हुआ। उप=समीपे स्वधर्ममादधाति इति उपाधिः।

३२७१ कर्मण्यधिकरणे च ३।३।९३।

कर्मण्युपपदे घोः किः स्यादधिकरणेऽर्थे। जलानि धीयन्तेऽस्मिन्निति जलधिः।

कर्म उपपद रहते अधिकरण में धु संज्ञक धातु से कि प्रत्यय होता है। समुद्र अर्थ में जल धारण का आश्रय जलधिः।

३२७२ स्त्रियां क्तिन् ३।३।९४।

स्त्रीलिङ्गे भावादौ क्तिन्स्यात्। घञोऽपवादः। अजपौ तु परत्वाद् बाधते। कृतिः। चितिः। स्तुतिः। स्फायी—स्फातिः। 'स्फीतिकामः' इति तु प्रामादिकम्। क्तान्ताद्धात्वर्थे णिचि 'अच इः' इति वा समाधेयम्। 'श्रुयजीषिस्तुभ्यः करणे' (वा २२११)। श्रूयतेऽनया श्रुतिः। यजेरिषेश्च इष्टिः। स्तुतिः। 'ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः (वा ४८२६)। तेन नत्वम्। कीर्णिः। गीर्णिः। लूनिः। धूनिः। पूनिः। 'ह्लादः' (सू ३०७३) इति योगविभागात् क्तिनि ह्रस्वः। प्रह्लन्निः। 'ति च' (सू० ३०३७)। चूर्तिः। फुल्तिः। 'चायतेः क्तिनि चिभावो वाच्यः' (वा ४४१८)। अपचितिः। 'सम्पदादिभ्यः किप्' (वा २२३३) सम्पत्। विपत्। 'क्तिन्नपीष्यते'। सम्पत्तिः। विपत्तिः।

स्त्रीलिङ्ग में भावादि वाच्य रहने पर घञ् को बाधकर धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है। यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूत्र परत्व के कारण अच् एवं अप् का भी बाधक है। कृतिः, चितिः, स्तुतिः, स्फायी-स्फातिः। स्फीतिकामः यह असन्नत रूप है। अथवा क्त प्रत्ययान्त स्फीत से णिच् प्रत्यय कर 'अच इः' से इस प्रयोग की उपपत्ति हुई।* श्रु, यज्, इष्, स्तु, इनसे करण अर्थ में क्तिन् प्रत्यय होता है। श्रूयते अनया इति श्रुतिः = वेदः। यज् या इष् से क्तिन् प्रत्यय सम्प्रसारण यज् की इष्टि।* ऋ एवं लू से क्तिन् प्रत्यय निष्ठा के समान होता है। अतः नकारादेश तकार को होगा। कीर्णिः। गीर्णिः। लूनिः। धूनिः। पूनिः। ह्लादः। ३०७३ ऐसा योगविभाग कर क्तिन् प्रत्यय उससे कर ह्रस्व से प्रवृत्तिः। ति च ३०६७ से उत्व कर चूर्तिः। फुल्लतिः। चाय से क्तिन् एवं धातु को चि आदेश होता है—अपचितिः।* पद् आदि धातुओं से क्विप् होता है। सम्पत्। विपत्। सम् पूर्वक पद आदि धातुओं से क्तिन् भी होता है। सम्पत्तिः, विपत्तिः।

३२७३ स्थागापापचो भावे ३।३।९५।

क्तिन् स्यादङोऽपवादः। प्रस्थितिः। उपस्थितिः। सङ्गीतिः। सम्पीतिः। पक्तिः। कथम् अवस्था, संस्था, इति। 'व्यवस्थायाम्' इति ज्ञापकात्।

स्था, गा, पा, पच्, इनसे भाव में क्तिन् प्रत्यय होता है। यह अङ् प्रत्यय का बोधक है। व्यवस्थायाम् इस ज्ञापन से क्वचित् अङ् भी होता है। वहां बाधक की प्रवृत्ति नहीं। यथा—अवस्था, संस्था।

३२७४ ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च ३।३।९७।

अवतेः 'ज्वरत्वर' (सू २६५४) इत्यूठ्। ऊतिः। स्वरार्थं वचनम्। उदात्त इति हि वर्तते। यूतिः। जूतिः। अनयोर्दीर्घत्वं च निपात्यते। स्यतेः सातिः। 'यतिस्यति' (सू० ३०७४) इतीत्त्वे प्राप्ते इह इत्त्वाऽभावो निपात्यते। सनो तेर्वा 'जनसन' (सू० २५०४) इत्यात्त्वे कृते स्वरार्थं निपातनम्। हन्तेर्हिनोतेर्वा हेतिः। कीर्तिः।

ऊति, यूति, जूति, साति, हेति, एवं कीर्ति ये क्तिन् प्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध होते हैं। रक्षणार्थक अव् से क्तिन्, 'ज्वरत्वर' से ऊठ् से ऊतिः। यह सूत्र स्वरार्थ है। यहां उदात्त की अनुवृत्ति है। यूतिः। जूतिः। यहां दीर्घत्व निपातन अञ्च है। सा+ति सातिः। यहां 'यतिस्यति-मास्था' से प्राप्त इकारादेशाभाव है। यद्वा, सन् से 'जनसन' से आकार होने पर निपातन केवल स्वरार्थ है। हन् या हि से हेतिः। कृ से क्तिन् इत्व रपरत्व एवं दीर्घ कीर्तिः।

३२७५ व्रजयजोर्भावे क्यप् ३।३।९८।

व्रज्या। इज्या।

व्रज् एवं यज् से भाव में क्यप् प्रत्यय होता है। व्रज्या। इज्या।

३२७६ संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः ३।३।९९।

समजादिभ्यः स्त्रियां भावादौ क्यप् स्यात्स चोदात्तः संज्ञायाम्। 'अजेः क्यपि वीभावो नेति वाच्यम्' (वा १५६६) समजन्त्यस्यामिति समज्या सभा। निषीदन्त्यस्यामिति निषद्या आपणः। निपतन्त्यस्यामिति निपत्या पिच्छिला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूमिः। मन्यतेऽनयेति मन्या गलपार्श्वशिरा। विदन्त्यनया विद्या। सुत्या अभिषवः। शय्या। भृत्या। ईयतेऽनया इत्या शिविका।

संज्ञा में संपूर्वक अज् निपूर्वक सद्, निपूर्वक पद, मन्, विद्, पुञ्, शीङ्, भृञ्, इण् इनसे स्त्रीलिङ्ग में भाव में क्यप् होता है, वह उदात्त है। अज् को क्यप् में वी आदेश नहीं होता है। सभा अर्थ में समज्या। निषद्या = आपण। पिच्छिला भूमि में निपत्या। गल-पार्श्वसिरा में मन्या। ज्ञानसाधन में विद्या। अभिषव अर्थ में सुत्या। शयन का अधिकरण स्थान में शय्या। भृत्या। शिविका में इत्या। तुक् भी हुआ 'ह्रस्वस्य' से।

३२७७ कृञः श च ३।३।१००।

कृञः इति योगविभागः। कृञः क्यप्स्यात्। कृत्या। 'श च'। चात् क्तिन्। क्रिया। कृतिः।

यहां 'कृञः' ऐसा पृथक् सूत्र कर क्यप् प्रत्यय कृञ् से होता है। ततः 'श च' यह अंश है—कृञ् से श प्रत्यय होता है, चकार से क्तिन् भी होता है। क्रिया। कृतिः।

३२७८ इच्छा ३।३।१०१।

इषेर्भावे शो यगभावश्च निपात्यते। इच्छा। 'परिचर्यापरिसर्यामृगयाटाट्या-नामुपसङ्ख्यानम्' (वा २२१५)। शो यक्च निपात्यते। परिचर्या पूजा। परि-सर्या परिसरणम्। अत्र गुणोऽपि। मृग अन्वेषणे चुरादावदन्तः। अतो लोपाऽभावोऽपि। शे यकि णिलोपः। मृगया। अटतेः शे यकि ट्यशब्दस्य द्वित्वम्। पूर्वभागे यकारनिवृत्तिर्दीर्घश्च। अटाट्या। 'जागर्तेरकारो वा' (२२१६) पक्षे शः। जागरा जागर्या।

निपातन से इच्छा रूप की सिद्धि होती है अर्थात् इष् से भाव में श प्रत्यय यक् का अभाव। परिचर्या, परिसर्या, मृगया, अटाट्या-ये भी निपातन से सिद्ध होते हैं। परिपूर्वक चर् आदि धातुओं से शप्रत्यय एवं यक् होता है। परिचर्या = पूजा। परिसर्या = परिसरण। यहाँ निपातन से गुण हुआ। अन्वेषणार्थक मृगधातु अदन्त है, चुरादि में उसे अकार का लोपाभाव, शप्रत्यय, यक्, णिलोप मृगया। अट् से शप्रत्यय, यक् 'ट्य' का द्वित्व, पूर्वभाग में यकार की निवृत्ति, दीर्घ अटाट्या। * जागृ से विकल्प अ प्रत्यय पक्षमें श प्रत्यय जागरा। जागर्या।

३२७९ अप्रत्ययात् ३।३।१०२।

प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारप्रत्ययः स्यात्। चिकीर्षा। पुत्रकाम्या।

प्रत्ययान्त धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अकार प्रत्यय होता है। चिकीर्षा। पुत्रकाम्या।

३२८० गुरोश्च हलः ३।३।१०३।

गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियामकारः स्यात्। ईहा। ऊहा। गुरोः किम्? भक्तिः। हलः किम्; नीतिः। 'निष्ठायां सेट इति वक्तव्यम्' (वा २१०८)। नेह। आप्तिः। 'तितुत्र—' (सू ३१६३) इति नेट्। दीप्तिः। 'तितुत्रेष्वग्रहादीनामिति वाच्यम्' (४३६१)। निगृहीतिः। निपठितिः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुरुसंज्ञक वर्ण घटित हलन्त धातु से स्त्रीलिङ्ग में अकार होता है। ईहा। ऊहा। भक्तिः—यहां गुरुमान् नहीं अतः क्तिन् हुआ। नीतिः यहां हलन्त नहीं अतः क्तिन् हुआ। निष्ठा प्रत्यय में सेट् जो गुरुमान् हलन्त उससे पर अ प्रत्यय होता है, ऐसा कहना चाहिये। आप्तिः में अकार प्रत्यय इस कथन से न हुआ। वहां 'तितुत्र' से इट् का निषेध है। दीप्तिः। 'तितुत्र' सूत्र ग्रहादि भिन्न धातुओं में इडागम का निषेध करता है, ऐसा कहना चाहिये। निगृहीतिः। निपठितिः।

३२८१ षिद्भिदादिभ्योऽङ् ३।३।१०४।

षिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च स्त्रियामङ्। जृष्—जरा। त्रपूष्—त्रपा। भिदा—विदारण एवायम्। भित्तिरन्या ['छिदा द्वैधीकरणे'। अन्यत्र छित्तिः छिद्रम्। गुहा गिर्योषध्योः। अत्र गिरेरेकदेशो गिरिशब्देन विवक्षितः। अन्यत्र गूढिः। आरा हारा कारा तारा धारा। अत्र दीर्घत्वं निपात्यते। आरा शस्त्र्यामिति वक्तव्यम्। आर्तिरन्या। आङोऽर्तेश्च क्तिन्। रेखा लेखा। अत्र गुणः। चूडा। धारा प्रपात इति वक्तव्यम्। धृतिरन्या] छिदा। मृजा। 'क्रपेः सम्प्रसारणं च' (गण ३२) कृपा।

षित् धातु एवं भिदादि धातु इनसे पर स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय होता है। एवं अङ् प्रत्यय पर में रहते 'ऋदृशोऽङि' से गुण कर—अरा। त्रपा। भिदा। विदारण अर्थ में ही यह हुआ, अन्यार्थ में भित्तिः = दिवाल। छिदा। मृजा। (कोष्ठान्तर्गत मूलपाठ बालमनोरमा टीका के साथ उपलब्ध होता है)।

३२८२ चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च ३।३।१०५।

अङ् स्यात्। युचोऽपवादः। चिन्ता। पूजा। कथा। कुम्बा। चर्चा। (चात्तुला)।

चिन्त्, पूज्, कथ्, कुम्ब्, चर्च्, इनसे अङ् होता है। यह युच् का बाधक है। चिन्ता। पूजा। कथा। कुम्बा। चर्चा। चकार से तुला।

३२८३ आतश्चोपसर्गे ३।३।१०६।

अङ् स्यात्। क्तिनोऽपवादः। प्रदा। उपदा। 'अदन्तरोरुपसर्गवद् वृत्तिः' (वा ११३१—११४७)। श्रद्धा। अन्तर्धा। 'उपसर्गे घोः किः' (सू ३२७०) इत्यनेन किः। अन्तर्धिः।

उपसर्ग पूर्वक आकारान्त धातु से अङ् होता है। यह क्तिन् का बाधक है—प्रदा। उपदा। अत एवं अन्तर् उपसर्ग समान कार्यसाधक है। अतः अत् एवं अन्तर् उपपद में रहते आकारान्त धातु से अङ् होता है। कि प्रत्यय करके अन्तर्धिः।

३२८४ ण्यासश्रन्थो युच् ३।३।१०७।

अकारस्याऽपवादः। कारणा। हारणा। आसना। श्रन्थना। 'घट्टिवन्दि-विदिभ्यश्चेति वाच्यम्' (वा २२२२) घट्टना। वन्दना। वेदना। 'इषेरनिच्छार्थस्य' (वा २२२३)। अन्वेषणा। 'परेर्वा' (वा २२२४)। पर्येषणा। परीष्टिः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ण्यन्त धातु आस्, अन्थ् इनसे युच् होता है। यह अप्रत्यय का बाधक है। कारणा। हारणा। वद्, वन्द्, विद् इनसे भी युच् होता है। अनिच्छार्थक इष् से युच् होता है। परिपूर्वक इष् से युच् होता है, विकल्प से।

३२८५ रोगाख्यायां ण्वुल्बहुलम् ३।३।१०८।

प्रच्छर्दिका वमिः। प्रवाहिका-प्रहणी। विचर्चिका-पामा। कचिन्न। अर्द, शिरोऽर्तिः। 'धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल्वक्तव्यः' (वा २२२५)। आसिका। शायिका। 'इक्शितौ धातुनिर्देशे' (वा २२२६)। पचिः। पचतिः। 'वर्णात्कारः' (वा २२२७)। निर्देश इत्येव। अकारः। ककारः। 'रादिफः' (वा २२२८)। रेफः। 'मत्वर्थाच्छः' (वा २२२९)। बहुलवचनादकारलोपः। मत्वर्थीयः। 'इणजादिभ्य' (वा २२३०)। आजिः। आतिः। 'इञ् वपादिभ्यः' (वा २२३१)। वापिः। वासिः। स्वरे भेदः। 'इक् कृष्यादिभ्यः' (वा २२३२)। कृषिः। गिरिः।

रोग की संज्ञा रूप अर्थ की प्रतीति से धातुओं से बहुल ण्वुल् होता है। प्रच्छर्दिका कहीं ण्वुल् नहीं होता है। शिरोऽर्तिः। धातु के अर्थ निर्देश में ण्वुल् होता है। आसिका, शायिका। धातु निर्देश में इक् एवं क्तितप् प्रत्यय होते हैं। पचिः। पचतिः। वर्ण निर्देश में वर्ण से कार प्रत्यय होता है। क्वचित् वर्ण समुदाय से भी कार प्रत्यय, 'वषट्कारः' रवर्ण से फ प्रत्यय होता है। रेफः। मत्वर्थ शब्द से अप्रत्यय होता है। बाहुलक से अकार का लोप होता है। मत्वर्थीयः। अजादि धातुओं से इण् प्रत्यय होता। आजिः। आतिः। वपादि से इञ् प्रत्यय। वापिः। वासिः। स्वर विशेष इण् एवं इञ् में है। कृष्यादि से इक् प्रत्यय। कृषिः। गिरिः।

३२८६ संज्ञायाम् ३।३।१०९।

अत्र धातोर्ण्वुल्। उद्दालकपुष्पमञ्जिका। (वरणपुष्पप्रवाहिका। अभ्यूषखादिका। अभ्यूषः पूरिका अपूपविशेषः)।

संज्ञा में धातु से ण्वुल् होता है। श्लेष्मातक पुष्पों की मज्जन क्रीडा जिसमें होती है, यहां उद्दालकपुष्पमञ्जिका।

३२८७ विभाषाख्यानपरिप्रश्नयोरिञ्च ३।३।११०।

परिप्रश्ने आख्याने च गम्ये इञ् स्यात्। चात् ण्वुल्। विभाषोक्तेर्यथाप्राप्तमन्येऽपि। कां त्वं कारिं-कारिकां-क्रियां-कृत्यां-कृतिं वा अकार्षीः। सर्वां कारिं-कारिकां-क्रियां-कृत्यां-कृतिं वा अकार्षम्। एवं गणिं—गणिकां-गणनाम्। पाचिं—पाचिकां-पचां-पक्तिम्। इज्यां-इष्टिम्।

आख्यान परिप्रश्न में धातु से विकल्प इञ् प्रत्यय एवं चकार से ण्वुल् प्रत्यय होता है। विभाषा के सम्बन्ध से अन्य प्रत्यय यथाप्राप्त होते हैं। कारिं, कारिकां, क्रियां, कृतिं वा। एवं गणिम्, गणिकाम्, गणनाम् आदि।

३२८८ पर्यायार्हणोत्पत्तिषु ण्वुच् ३।३।१११।

पर्यायः परिपाटी क्रमः। अर्हणमर्हः योग्यता। पर्यायादिषु द्योत्येषु ण्वुच्वा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्यात्। भवत आसिका। शायिका। अग्रगामिका। भवानिक्षुभक्षिकामर्हति। ऋणे—इक्षुभक्षिकां मे धारयसि। उत्पत्तौ—इक्षुभक्षिका उदपादि।

पर्याय, अर्ह, ऋण, उत्पत्ति गम्य रहते धातु से विकल्प ण्वुच् होता है। पर्याय से क्रम ज्ञान करना। अर्हः = योग्यता। ऋण में इक्षुभक्षिकाम्। उत्पत्ति में इक्षुभक्षिका उदपादि।

३२८९ आक्रोशे नञ्यनिः ३।३।११२।

विभाषेति निवृत्तम्। नञ्युपपदेऽनिः स्यादाक्रोशे। अजीवनिस्ते शठ भूयात्। अप्रयाणिः। 'कृत्यल्युटो बहुलम्' (सू २८४१)। भावेऽकर्तरि च कारके संज्ञायामिति च निवृत्तम्। राज्ञा भुज्यन्ते राजभोजनाः शालयः। 'नपुंसके भावे क्तः' (सू ३०६०)।

इसमें विभाषा की अनुवृत्ति है। नञ् उपपद में रहते आक्रोशार्थ में धातु से अनि प्रत्यय होता है—अजीवनिः। अप्रयाणिः। कृत्यप्रत्यय एवं ल्युट् प्रत्यय बहुल होते हैं। "भावेऽकर्तरि च कारके संज्ञायाम्" इन दोनों की निवृत्ति हुई। राजभोजनाः शालयः। भाव में नपुंसकलिङ्ग में धातु से क्त प्रत्यय होता है।

३२९० ल्युट् च ३।३।११५।

हसितम्। हसनम्। योगविभाग उत्तरार्थः।

भाववाच्य रहते नपुंसक में धातु से ल्युट् प्रत्यय होता है। हसितम्। हसनम्। यह योग विभाग उत्तरार्थ है।

३२९१ कर्मणि च येन संस्पर्शात् कर्तुः शरीरसुखम् ३।३।११६।

येन कर्मणा संस्पृश्यमानस्य कर्तुः शरीरस्य सुखमुत्पद्यते तस्मिन् कर्मण्युपपदे ल्युट् स्यात्। पूर्वेण सिद्धे नित्यसमासार्थं वचनम्। पयःपानं सुखम्। (ओदनभोजनं सुखम्। नन्वत्र पानादेव सुखम्। चन्दनानुलेपनं सुखमितिवत्। सत्यम्। यत्र संस्पर्शं विना सुखाभावस्तदर्थकत्वात्। यत्र साक्षात्परम्परया वा सुखं तत्रेति यावत्)। कर्तुरिति किम्? गुरोः स्नापनं सुखम्, नेह गुरुः कर्ता, किन्तु कर्म। (कर्मणीति किम्? तूलिकाया उत्थानं सुखम्। अग्निकुण्डस्य सेवनं सुखम्। प्रत्युदाहरणेष्वसमासः)।

जिस कर्म से स्पृश्यमान कर्ता के शरीर का सुख उत्पन्न हो वह कर्म उपपद होने पर धातु से ल्युट् प्रत्यय होता है। पूर्वसूत्र से सिद्ध था यह नित्य समासार्थ है। पयःपानम् सुखम्। गुरोः स्थापनं सुखम्—यहां कर्ता नहीं किन्तु कर्म है, अतः ल्युट् न हुआ।

३२९२ वा यौ २।४।५७।

अजेर्वी वा स्याद्यौ। प्रवयणम्। प्राजनम्।

यु प्रत्यय पर में अज् को विकल्प से वी आदेश होता है। प्रवयणम्। प्राजनम्।

३२९३ करणाधिकरणयोश्च ३।३।११७।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ल्युट् स्यात्। इध्मप्रव्रश्चनः कुठारः। गोदोहनी स्थाली। खलः प्राक्करणाधिकरणयोरित्यधिकारः।

करण एवं अधिकरण में धातु से ल्युट् होता है। इध्मप्रव्रश्चनः कुठारः। काष्ठ काटने का साधन। गाय के दुहने के पात्र में गोदोहनी स्थाली = बटुवी। खल् के पूर्वतक 'करणाधिकरणयोः' का अधिकार होता है।

३२९४ अन्तरदेशे ८।४।२४।

अन्तःशब्दाद्धन्तेर्नस्य णः स्यात्। अन्तर्हणनम्। देशे तु अन्तर्हननो देशः। अत्पूर्वस्येत्येव। अन्तर्घ्नन्ति। तपरः किम्? अन्तरघानि।

देशभिन्न में अन्तः शब्द से परवर्ती हन् उसके नकार को णकार आदेश होता है। अन्तर्हणनम्। देश अर्थ में अन्तर्हननो देशः यहां णत्वाभाव। ह्रस्व अकारपूर्वक हन् अवयव नकार को णत्व होता है, लुप्त अकारक हन् के नकार को णत्वाभाव से अन्तर्घ्नन्ति। अत् में तपरत्व के कारण दीर्घ आकारपरक नकार को णत्वाभाव है। यथा अन्तरघानि।

३२९५ अयनं च ८।४।२५।

अयनस्य णोऽन्तःशब्दात् परस्य। अन्तरयणम्। आदेश इत्येव। अन्तरयनो देशः।

देशभिन्न में अन्तः शब्द से पर अयन के नकार को णकार होता है। अन्तरयणम्। देश में अन्तरयने देशः।

३२९६ पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ३।३।११८।

संज्ञा होने पर पुंलिङ्ग में प्रायः घ प्रत्यय होता है। यहां प्रायः पदार्थ का संज्ञा में अन्वय नहीं है किन्तु प्रधान विधेय घ प्रत्यय में वह विशेषणतया अन्वित है, गुणानाञ्च परार्थत्वादसम्बन्धः समत्वात् न्याय से।

३२९७ छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ६।४।९६।

द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वः स्याद् घे परे। दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेन दन्तच्छदः। प्रच्छदः। अद्वीति किम्? समुपच्छादः। आकुर्वन्त्यस्मिन्नाकरः।

द्वि प्रभृति उपसर्ग से हीन छादि धातु का ह्रस्व घ प्रत्यय पर रहते होता है। दांत आच्छादित जिससे हो उसे दन्तच्छदः कहते हैं। प्रच्छदः। 'समुपच्छादः'। द्विप्रभृति उपसर्ग यहाँ है। आकरः।

३२९८ गोचरसञ्चरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च ३।३।११९।

घान्ता निपात्यन्ते। 'हलश्च' (सू ३१००) इति वक्ष्यमाणस्य घञोऽपवादः। गावश्चरन्त्यस्मिन्निति गोचरो देशः। सञ्चरन्त्यनेन सञ्चरो मार्गः। वहन्त्यनेन वहः स्कन्धः। व्रजः। व्यजस्तालवृन्तम्। निपातनाद्वीभावो न। आपणः पण्यस्थानम्। निगच्छन्त्यनेन निगमः छन्दः। चात्कषः। निकषः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोचर, सञ्चर, वह, व्रज, व्यज, आपण, निगम यह घ प्रत्ययान्त पद निपातन से सिद्ध होते हैं। वह इलश्च सूत्र से प्राप्त घञ् का बाधक है। गायें परिभ्रमण या घास खाने के लिए जहां जांय वह देश गोचरः। गमन किया जाय जिससे वह सञ्चरः मार्ग है। वहन क्रिया का साधन स्कन्ध में वहः। व्रजः। व्यजः = तालवृन्त। यहां निपातन के कारण अज को वी नहीं है। आपणः = पण्यस्थानम्। निगमः = छन्द। चकार से कषः। निकषः। ये भी निपातन से सिद्ध हैं।

३२९९ अवे तॄस्त्रोर्घञ् ३।३।११९।

अवतारः कूपादेः। अवस्तारो जवनिका।

अवपूर्वक तॄ एवं स्तृ से संज्ञा में करण एवं अधिकरण में घञ् प्रत्यय पुंल्लिङ्ग में होता है। अवस्तारः कूपादेः। अवस्तारः जवनिका।

३३०० हलश्च ३।३।१२१।

हलन्ताद् घञ् स्यात्। घापवादः। रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः। अप॰ मृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्गः। विमार्गः समूहनी।

करण या अधिकरण में पुंल्लिङ्ग में संज्ञा प्रतीति में हलन्त धातु से घञ् प्रत्यय होता है। यह घ प्रत्यय का अपवाद है। रामः। अपामार्गः। विमार्गः समूहनी। १—चित्तवृत्तिनिरोध करने वाले योगिगण समाधि में जिन उपास्यदेव भगवान् रामचन्द्र महाप्रभु का ध्यान करते हैं, वह पूर्ण पुरुषोत्तम मर्यादा—पुरुष, श्री रामचन्द्र हैं। २—रोग जिससे पृथक् होता है वह अपामार्ग है, घञ् वृद्धि कुत्व 'उपसर्गस्य' से पूर्वपदस्थ अकार का दीर्घ हुआ। ३—समूहनी को विमार्ग कहते हैं।

टिप्पणी—साम्प्रदायिक आचार्य ने पक्षपात से अंशावतार श्री राम को माना है एवं कृष्ण को पूर्णावतार माना है, यह उचित नहीं।

३३०१ अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च ३।३।१२२।

अधीयतेऽस्मिन्नध्यायः। नियन्त्युद्युवन्ति संहरन्त्यनेनेति विग्रहः 'अवहारा-धारावायानामुपसंख्यानम्' (वा २२३६)

अध्याय, न्याय, उद्याव, संहार, ये घञ् प्रत्ययान्त निपातित हैं। अधि इङ् अधिकरण में घञ् अध्यायः। करण में घञ् न्यायः। करणे घञ् उद्यावः। संहारः। घञ् प्रत्ययान्त अवहारः, आधारः, आवायः—ये निपातन से सिद्ध होते हैं।

३३०२ उदङ्कोऽनुदके ३।३।१२३।

उत्पूर्वादञ्चतेर्घञ् स्यात् न तूदके। घृतमुदच्यते उद्ध्रियतेऽस्मिन्निति घृतोदङ्कश्चर्ममयं भाण्डम्। अनुदके किम्? उदकोदञ्चनः।

'उदङ्कः' घञ् प्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध होता है। उदक भिन्न अर्थ में घी जिससे निकाला जाय वह चर्म-निर्मित कुप्पा इसमें उदङ्कः। उत्पूर्वक अञ्च् से घञ् प्रत्यय नहीं है। उदकोदञ्चनः।

३३०३ जालमानायः ३।३।१२४।

आनीयन्ते मत्स्यादयोऽनेनेत्यानायः। जालम् इति किम्? आनयः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाल अर्थ में 'आनायः' यह घञ् प्रत्ययान्तपद निपातन से सिद्ध होता है। मत्स्य आदि का आनयन साधन जाल में आनायः हुआ। जाल अर्थ जहां नहीं वहां ल्युट् से आनयनः।

३३०४ खनो घ च ३।३।१२५।

चाद्घञ्। आखनः। आखानः। घित्करणमन्यतोऽप्ययमिति ज्ञापनार्थम्। तेन भजेः भगः पदम्। करणे घः। खल सञ्चये। अधिकरणे घः। खल इत्यादि। 'खनेर्डडरेकेकवका वाच्याः' (वा २२३८) आखः। आखरः। आखनिकः। आखनिकवकः। एते खनित्रवचनाः।

खन् धातु से घप्रत्यय एवं चकार घञ् प्रत्यय होता है। आखनः, आखानः। खन् में घित्त्व फल न होने से वह व्यर्थ होकर जहां कुत्व हो कर वह चरितार्थ हो सके ऐसा धातु से भी यह प्रत्यय होता है। यथा—भगः। यहां घ प्रत्यय हुआ। पदम् में क प्रत्यय है। क्वाचित्क वाक्य है, भगः पदम्—यहां पदम् में तात्पर्य नहीं केवल भगः में ही घित् फल है। खन् धातु से ड, डर, इक, इकवक ये चार प्रत्यय होते हैं। यथा—आखः। आखरः। आखनिकः। आखनिकवकः। ये चार खोदने के साधन वाचक अर्थात् खनित्र-वाचक हैं।

३३०५ ईषदुःसुषु कृच्छ्राऽकृच्छ्रार्थेषु खल् ३।३।१२६।

करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम्। एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल् स्यात्। 'तयोरेव—' (सू २८३६) इति भावे कर्मणि च। कृच्छ्रे—दुष्करः कटो भवता। अकृच्छ्रे—भवता ईषत्करः। सुकरः। 'निमिमीलियां खलचोरात्वं नेति वाच्यम्' (वा ३४८७) ईषन्निमयः। दुष्प्रमयः। सुविलयः। निमयः। मयः। लयः।

इस सूत्र में अधिकार प्राप्त या अनुवृत्ति से प्राप्त करण एवं अधिकरण की निवृत्ति हुई। दुःख या सुख वाचक ईषत्, दुस्, सु वे उपपद में रहते धातु से खल् प्रत्यय होता है। 'तयोरेव' सूत्र से अकर्मक धातु से भाव में एवं सकर्मक धातु से कर्म में प्रत्यय यह होगा। तुमसे चटाई बननी कठिन है—अर्थ में दुष्करः कटो भवता। यहां कृञ् धातु सकर्मक है, कटरूप कर्म में प्रत्यय से कट कर्म उक्त होने से कर्मवाचक कट से प्रथमा, भवदर्थ कर्ता अनुक्त होने से तृतीया उससे हुई है, कर्मणि प्रत्यय का यह उदाहरण दुःखार्थक का है। सुखार्थक का उदाहरण—ईषत्करः, सुकरः है। निमिपूर्वक मि धातु, या मी धातु, एवं ली धातु इनको खल् या अच् पर में रहते आत्व नहीं होता है। ईषन्निमयः। दुष्प्रमयः। सुविलयः। निमयः। मयः। लयः।

३३०६ उपसर्गात्खलघञोः ७।१।६७।

उपसर्गादेव लभेर्नुम् स्यात् ईषत्प्रलम्भः। दुष्प्रलम्भः। सुप्रलम्भः। उपालम्भः। उपसर्गात् किम्? ईषल्लाभः। लाभः।

खल् एवं घञ् परक लभ यदि उपसर्ग पूर्वक रहे तो नुम् आगम होता है। ईषत्प्रलम्भः। दुष्प्रलम्भः। उपसर्ग रहित लभ् से खल् हुआ एवं नुम् का अभाव से ईषल्लाभः। लाभः।

३३०७ न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम् ७।१।६८।

उपसर्गान्तररहिताभ्यां सुदुर्भ्यां लुभेर्नुम्न स्यात्खलघञोः। सुलभम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुर्लभम्। केवलाभ्याम् किम्? सुप्रलम्भः। अतिदुर्लम्भः। कथं तर्हि अतिसुलभमतिदुर्लभमिति। यदा स्वती कर्मप्रवचनीयौ तदा भविष्यति।

खल् या खञ् प्रत्यय पर रहते उपसर्गान्तर रहित एवं दुर् उपसर्ग से पर लभ् को नुम् आगम नहीं होता है। सुलभ्। दुर्लभम्। उपसर्गान्तर से युक्त लभ् को नुम् होता है। सुप्रलम्भः। अतिसुलम्भम् यही क्यों नहीं हुआ, यहां अति की उपसर्ग संज्ञा नहीं है किन्तु कर्म प्रवचनीय अति है, एवं सु है। कर्मप्रवचनीय द्योत्य सम्बन्ध बोधक होने से वे उपसर्ग नहीं क्रियागत विशेषार्थ के अप्रत्यायक होने से।

"क्रियाया द्योतको नायं सम्बन्धस्य न वाचकः।
नापि क्रियापदाक्षेपी सम्बन्धस्य तु द्योतकः॥"

अप्राप्त लक्षण अपवाद कर्मप्रवचनीय संज्ञक उपसर्ग संज्ञा बाधक में है, प्राप्ति मूलक बाध नहीं है। अपवाद सदृश में लक्षणया अपवादत्व व्यवहार से गत्युपसर्ग संज्ञा की कर्मप्रवचनीय संज्ञा-बाधक यह कथन है। कर्म = 'क्रियां प्रोक्तवन्तो ये ते कर्मप्रवचनीयाः भूते अनीयर्' है।

३३०८ कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः ३।३।१२७।

कर्तृकर्मणोरीषदादिषु चोपपदेषु भूकृञोः खल्स्यात्। 'यथासंख्यं नेष्यते'। कर्तृकर्मणी च धातोरव्यवधानेन प्रयोज्ये। ईषदादयस्तु ततः प्राक्। 'कर्तृकर्मणोश्च्व्यर्थयोरिति वाच्यम्' (वा २२४१)। खित्त्वान्मुम्। अनाढ्येन आढ्येन दुःखेन भूयते दुराढ्यम्भवम्। ईषदाढ्यम्भवम्। स्वाढ्यम्भवम्। ईषदाढ्यङ्करः। दुराढ्यङ्करः। स्वाढ्यङ्करः। च्व्यर्थयोः किम्? आढ्येन सुभूयते।

कर्ता, कर्म, ईषत्, दुस्, सु वे उपपद में रहने पर भू धातु एवं कृञ् धातु से खल् प्रत्यय होता है। यहां यथासंख्य नहीं है। यह आचार्य की इच्छा है, वह आदरणीय है। कर्तृवाचक या कर्म वाचक शब्द धातु से अव्यवहित अर्थात् व्यवधान रहित से प्रयुक्त होना आवश्यक है। ईषदादि शब्द को तो उसके पश्चात् प्रयोग अपेक्षित है। कर्ता एवं कर्म अभूततद्भाव में च्वि प्रत्ययान्त रहने पर यह कार्य होता है, ऐसा कथन उचित है। खित्त्व के कारण मुम् का आगम 'खित्यनव्ययस्य से होता है, दरिद्रपुरुष महान् कष्ट से धनादि युक्त होता है, इस विवक्षा में दुराढ्यम्भवम्। ईषदाढ्यम्भवम् प्रभृति हुआ। जहां च्विप्रत्ययान्त कर्ता या कर्म नहीं वहां 'आढ्येन सुभूयते'।

३३०९ आतो युच् ३।३।१२८।

खलोऽपवादः। ईषत्पानः सोमो भवता। दुष्पानः। सुपानः। 'भाषायां शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युञ्वाच्यः' (वा २२४३)। दुःशासनः। दुर्योधन इत्यादि।

आकारान्त धातु से युच् प्रत्यय होता है। खल् का यह बाधक है। भाषा में शास्, युध्, दृश्, धृष्, मृष्, इनसे युच् प्रत्यय होता है। अन्य जनों से जिस पर दुःख पूर्वक शासन किया जाय वह = दुःशासनः। दुर्योधनः = दुःखपूर्वक जिससे युद्ध किया जाय वह। योगरूढ वे शब्द हैं।

३३१० पात्पदान्तात् ८।४।३५।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नस्य णो न। निष्पानम्। सर्पिष्पानम्। घात् किम्? निर्णयः। पदान्तात् किम्? पुष्णाति। पदे अन्तः पदान्तः इति सप्तमीसमासोऽयम्। तेनेह न। सुसर्पिष्केण।

अडादि कर्तृक व्यवधान रहते भी पदान्त षकार से पर स्थित नकार को णकार नहीं होता है। निष्पानम्। सर्पिष्पानम्। निर्णयः यहां षकार से पर नहीं अतः णकार हुआ। पदे अन्तः पदान्तः, यह सप्तमी तत्पुरुष समास है = पद है पर में जिसको ऐसा षकार उससे पर नकार को णत्व नहीं, इस अर्थ से 'सुसर्पिष्केण' यहां पद पर में नहीं अतः निषेध नहीं, णकार हुआ।

३३११ आवश्यकाऽऽधमर्ण्ययोर्णिनिः ३।३।१७०।

अवश्यङ्कारी। शतंदायी।

आवश्यक एवं अधमर्ण अर्थ में धातु से णिनि प्रत्यय होता है। अवश्यङ्कारी। शतन्दायी।

३३१२ कृत्याश्च ३।३।१७१।

आवश्यकाऽऽधमर्ण्ययोरित्येव। अवश्यं हरिः सेव्यः। शतं देयम्।

आवश्यक एवं अधमर्ण में धातु से कृत्य प्रत्यय होता है। अवश्यं हरिः सेव्यः कर्म में प्रत्यय। शतन्देयम् यहां भी कर्म में यत् है।

३३१३ क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् ३।३।१७४।

धातोः क्तिच्क्तश्च स्यादाशिषि संज्ञायाम्। 'तितुत्र—' (सू ३१६३) इति नेट्। भवताद् भूतिः।

आशीर्वादार्थ में संज्ञा में धातु से क्तिच् एवं क्तप्रत्यय होता है। भूतिः भवतात् अर्थ में 'तितुत्र' से इडागम का अभाव हुआ। शुभाशंसनम् = आशीः।

३३१४ न क्तिचि दीर्घश्च ६।४।३९।

अनिटां वनतितनोत्यादीनां च दीर्घानुनासिकलोपौ न स्तः क्तिचि परे। यन्तिः। रन्तिः। वन्ति। तन्तिः।

क्तिच् प्रत्यय पर में रहते अनिट् धातु एवं वन् धातु एवं तनादि धातुओं का दीर्घ एवं अनुनासिक वर्ण का लोप, ये दोनों कार्य नहीं होते हैं। 'अनुनासिकस्य' दीर्घ प्राप्त था, एवं 'अनुदात्तोपदेश' सूत्र से अनुनासिक लोप प्राप्त था उभय कार्य का इसने निषेध किया। यन्तिः रन्तिः आदि।

३३१५ सनः क्तिचि लोपश्चास्यान्यतरस्याम् ६।४।४५।

सनोतेः क्तिच्यात्वं वा स्याल्लोपश्च वा सनुतात्। सातिः। सतिः। सन्तिः। देवा एनं देयासुः देवदत्तः।

क्तिच् प्रत्यय पर में रहते सन् को आकार विकल्प से एवं धातु के नकार का लोप विकल्प से होता है। सातिः, सतिः। सन्तिः। देवा एनं देयासुः देवदत्तः।

३३१६ अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ३।४।१८।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिषेधार्थयोरलंखल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात्। प्राचां ग्रहणं पूजार्थम्। 'अमैवाव्ययेन' (सू ७८३) इति नियमान्नोपपदसमासः। 'दो दद्घोः' (३०७७) अलं दत्त्वा। 'घुमास्था—' (सू २४६२)। पीत्वा खलु। अलंखल्वोः किम्? मा कार्षीद्। प्रतिषेधयोः किम्? अलङ्कारः।

प्रतिषेधार्थक 'अलम्' एवं 'खलु' शब्द पूर्व में रहते धातु से पर क्त्वा प्रत्यय होता है। सूत्र में 'प्राचाम्' पद प्रशंसार्थ में है। 'अमैवाव्ययेन' इस नियम से उपपद समास का अभाव है। घु संज्ञक दा को दथ् आदेश होता है तादि कित् प्रत्यय पर रहते एतदर्थक जो सूत्र 'दो दद्घोः' है। अलं दत्त्वा क्त्वा प्रत्ययान्त अव्यय से आगत विभक्ति का लुक् है। पीत्वा खलु यहां 'घुमास्था' सूत्र से ईकारादेश आकार को हुआ। अलं या खलु निषेधार्थक नहीं, किन्तु निषेधार्थक माङ् के योग में क्त्वा न हुआ, माङ् योग में लुङ् होता है एवं अट् या आट् आगम नहीं होता है। मा कार्षीत्। अलंकारः में अलम् = भूषणार्थक है अतः क्त्वा प्रत्यय न हुआ। किन्तु अण् प्रत्यय उपपद समास है।

३३१७ उदीचां माङो व्यतीहारे ३।४।१९।

व्यतीहारेऽर्थे माङः क्त्वा स्यात्। अपूर्वकालार्थमिदम्।

व्यतिहार अर्थ में माङ् धातु से उत्तर क्त्वा प्रत्यय होता है। यह पूर्वकालार्थक नहीं है।

३३१८ मयतेरिदन्यतरस्याम् ६।४।७०।

मेङ इकारोऽन्तादेशः स्याद्वा ल्यपि। अपमित्य याचते। अपमाय। उदीचां ग्रहणाद्यथाप्राप्तमपि। याचित्वा अपमयते।

मेङ् धातुका अवयव जो एकार उसके स्थान में इकार आदेश होता है विकल्प से ल्यप् पर रहते। अपमित्य याचते। अपमाय यहां 'उदीचाम्' के ग्रहण के कारण पक्ष में यथाप्राप्त कार्य भी होता है। याचित्वा अपमयते।

३३१९ परावरयोगे च ३।४।२०।

परेण पूर्वस्याऽवरेण परस्य योगे गम्ये धातोः क्त्वा स्यात्। अप्राप्य नदीं पर्वतः। परनदीयोगोऽत्र पर्वतस्य। अतिक्रम्य पर्वतं स्थिता नदी। अवरपर्वतयोगोऽत्र नद्याः।

परसे पूर्व का योग एवं अवर के साथ पर का योगगम्य रहते धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है। अप्राप्य नदीं पर्वतः यहां पर्वत का पर नदी के साथ योग है। अतिक्रम्य पर्वतं स्थिता नदी-यहां नदी का अवर पर्वत के साथ योग है।

३३२० समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३।४।२१।

समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात्। भुक्त्वा व्रजति। द्वित्वमतन्त्रम्। स्नात्वा भुक्त्वा पीत्वा व्रजति। 'अनुदात्त—' (सू २४२८) इत्यनुनासिकलोपः। विष्णुं नत्वा स्तौति। स्वरत्यादेः 'श्रयुकः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किति' (सू २३८१) इति नित्यमिडभावः पूर्वविप्रतिषेधेन। स्वृत्वा। सूत्वा। धूत्वा।

दो या अनेक जो धातु तदर्थक क्रिया जनक एक कर्ता रहते पूर्वकालोद्भव क्रिया उसका वाचक जो धातु उससे क्त्वा प्रत्यय होता है। वह क्त्वा प्रत्यय अव्ययसंज्ञा में कारण होने से 'अव्ययकृतो भावे' से भाव में = धात्वर्थ क्रिया में होता है धातु प्रकृतिभूत क्रिया का वाचक एवं क्त्वा प्रत्यय उसी क्रिया का अनुवादक है, अतः क्रिया का दो बार भान न हुआ। पूर्वकालिकत्व एवं उत्तरकालिकत्व का मानस बोधमात्र है वह शाब्दबोध में प्रविष्ट नहीं वह बोध्य है, वाच्य नहीं। सूत्र में 'समानकर्तृकयोः' में द्वित्व अविवक्षित है, अर्थात् अनेक क्रियाओं का एक कर्ता रहे यही बोधन करता है द्वित्व अविवक्षित है। सूत्रे 'लिङ्गवचनमतन्त्रम्' 'अर्थे नपुंसकम्' यहां समांशवाचक अर्थ नित्य नपुंसक है। पुनः नपुंसक ग्रहण व्यर्थ होकर स्थालीपुलाक न्याय से पूर्व अंशद्वय विशिष्ट परिभाषा में ज्ञापक है, अथवा एकदेशानुगत्या ज्ञापक है। भुक्त्वा व्रजति यहां भोजन कर्ता वही गमनक्रियाकर्ता है पूर्वकालोद्भव भोजन क्रिया तद्वाचक धातु से क्त्वा प्रत्यय कित् से गुणाभाव है। भोजनकर्तृकं वर्तमानकालिकं गमनम् यह संक्षिप्तार्थ-बोध है। स्नानक्रियाकर्ता, भोजन-क्रियाकर्ता, पानक्रिया कर्ता एवं गमनक्रियाकर्ता एक है वह पूर्वकालिक क्रिया वाचक अनेक धातुओं से भाव में क्त्वा प्रत्यय हुआ, स्नात्वा, भुक्त्वा, पीत्वा स गच्छति = व्रजति। विष्णु-कर्मकनमनपूर्वक उत्कर्षगुणबोधन रूप वह स्तुति करता है वहां = विष्णुं नत्वा स्तौति नम् धातु से क्त्वा प्रत्यय कर अनुदात्तोपदेश से मकार का लोप हुआ। स्वृ आदि धातुओं से पर वलादि आर्धधातुक को पूर्वविप्रतिषेध प्रयुक्त इट् का अभाव हुआ। यथा—स्वृत्वा, सूत्वा, धूत्वा।

३३२१ क्त्वि स्कन्दिस्यन्दोः ६।४।३१।

एतयोर्नलोपो न स्यात्क्त्वि परे। स्कन्त्वा। उदित्त्वादिड्वा। स्यन्त्वा—स्यन्दित्वा।

क्त्वा प्रत्यय पर रहते स्कन्द एवं स्यन्द का अवयव नकार का लोप नहीं होता है, स्कन्त्वा। दीर्घ ऊकार इत् के कारण 'स्वरतिसूति' सूत्र से इडागम विकल्प से हुआ। स्यन्दित्वा। स्यन्त्वा।

३३२२ न क्त्वा सेट् १।२।१७।

सेट् क्त्वा किन्न स्यात्। शयित्वा। सेट् किम्? कृत्वा।

सेट् क्त्वा प्रत्यय कित् नहीं माना जाता। अतः गुणादिकार्य में कित्त्व यहां प्रतिबन्धक नहीं अर्थात् 'क्ङिति च' सूत्र की अप्रवृत्ति से 'शयित्वा' हुआ। जहां अनिट् क्त्वा है वहां कित्त्व अक्षुण्ण है, गुण निषेध 'कृत्वा' यहां।

३३२३ मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा १।२।७।

एभ्यः सेट् क्त्वा कित्। मृडित्वा। 'क्लिशः क्त्वा—' (सू ३०४६) इति वेट्। क्लिशित्वा। क्लिष्ट्वा। उदित्वा। उषित्वा। 'रुदविद—' (सू २६०६) इति कित्त्वम्। रुदित्वा। विदित्वा। मुषित्वा। गृहीत्वा।

मृड्, मृद्, गुध्, कुष्, क्लिश्, वद् एवं वस् इनसे पर 'सेट् क्त्वा' कित् होता है। यह पूर्व सूत्र का अपवाद है। मृडित्वा। क्लिशित्वा, क्लिष्ट्वा, यहां 'क्लिशः क्त्वा' सूत्र से विकल्प इडागम हुआ। उषित्वा। उदित्वा। विदित्वा, यहां 'रुदविद' सूत्र से कित्त्व हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३३२४ नोपधात्थफान्ताद्वा १।२।२३।

सेट् क्त्वा कित्स्याद्वा। श्रथित्वा। श्रन्थित्वा। गुफित्वा। गुम्फित्वा। नोपधात् किम्? कोथित्वा। रेफित्वा।

नकारोपध, थकारान्त, फकारान्त इनसे पर सेट् क्त्वा कित् विकल्प से होता है। कित् पक्ष में 'अनिदिताम्' से नकार लोप हुआ। श्रथित्वा, श्रन्थित्वा। गुफित्वा, गुम्फित्वा। कोथित्वा। रेफित्वा।

३३२५ वञ्चिलुञ्च्यृतश्च १।२।२४।

सेट् क्त्वा किद्वा। वचित्वा। वञ्चित्वा। लुचित्वा। लुञ्चित्वा। ऋतित्वा। अर्तित्वा।

वञ्च्, लुञ्च्, ऋत इनसे उत्तर सेट् क्त्वा प्रत्यय विकल्प कित् होता है। कित् पक्ष में नकार लोप वचित्वा। वञ्चित्वा। लुचित्वा। लुञ्चित्वा। ऋतित्वा, अर्तित्वा।

३३२६ तृषिमृषिकृषेः काश्यपस्य १।२।२५।

एभ्यः सेट् क्त्वा किद्वा। तृषित्वा तर्षित्वा। मृषित्वा। कृषित्वा। 'रलो व्युपधात्—' (सू २६१७) इति वा कित्त्वम्। द्युतित्वा। लिखित्वा-लेखित्वा। रलः किम्? सेवित्वा। व्युपधात् किम्? वर्तित्वा। हलादेः किम्? एषित्वा। सेट् किम्? भुक्त्वा। 'वसतिक्षुधोरिट्' (सू ३०४६)। उषित्वा। क्षुधित्वा क्षोधित्वा। 'अञ्चेः पूजायाम्' (सू ३०४७)। इति नित्यमिट्। अञ्चित्वा। गतौ तु अक्त्वेत्यपि। लुभित्वा। लोभित्वा। 'लुभो विमोहने' (सू ३०४८) इतीट्। अविमोहने तु लुब्ध्वा।

काश्यप ऋषि के मत से तृप्, मृप्, कृप्, इनसे पर सेट् क्त्वा विकल्प से कित् होता है। तृषित्वा तर्षित्वा प्रभृति। सेवित्वा यहां रलोव्युपधात् की प्रवृत्ति नहीं अतः विकल्प करके कित्त्व न हुआ। द्युतित्वा द्योतित्वा लिखित्वा लेखित्वा में विकल्प से 'रलोः' सूत्र से कित्त्व हुआ व्युपधात् कहने से वर्तित्वा में विकल्प कित्त्वाभाव हुआ। एत्वादि कहने से एषित्वा में वि० कित्त्व न हुआ। भुक्त्वा में सेट् क्त्वा नहीं है। वस् एवं क्षुध् से पर क्त्वा को इट् होता है। यथा उषित्वा, क्षुधित्वा। अञ्चित्वा में अञ्चेः पूजायाम् से नित्य इडागम हुआ, 'नाञ्चेः' से नलोपाभाव हुआ। गति में नलोप, यथा अक्त्वा। 'लुभोऽविमोहने' से इट् लुभित्वा लोभित्वा। विमोहन में इडागमाभाव से लुब्ध्वा।

३३२७ जॄव्रश्च्योः क्ति च ७।२।५५।

आभ्यां परस्य क्त्वा इट् स्यात्। जरीत्वा-जरित्वा। व्रश्चित्वा।

जॄ एवं व्रश्च् से क्त्वा प्रत्यय को इडागम होता है। जरीत्वा। जरित्वा। यहां वृतो वा से विकल्प इट् को दीर्घ हुआ।

३३२८ उदितो वा ७।२।५६।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदितः परस्य क्त्व इड्वा। शमित्वा। 'अनुनासिकस्य क्वि—' (सू२६६६) इति दीर्घः। शान्त्वा। द्यूत्वा। देवित्वा।

उदित से पर क्त्वा को इडागम विकल्प से होता है। शमित्वा। इडागम के अभाव में 'अनुनासिकस्य' सूत्र से दीर्घ अनुस्वार परसवर्ण शान्त्वा। देवित्वा। पक्ष में ऊठ् से यण् ऊत्वा।

३३२९ क्रमश्च क्त्वि ६।४।१८।

क्रम उपधाया वा दीर्घः स्यात् झलादौ क्त्वि परे। क्रान्त्वा। क्रन्त्वा। झलि किम्? क्रमित्वा। 'पूङश्च' (सू ३०५०) इति वेट्। पवित्वा-पूत्वा।

झलादि क्त्वा प्रत्यय परक क्रम धातु उसकी जो उपधा उसका दीर्घ विकल्प से होता है। क्रान्त्वा। क्रन्त्वा। क्रमित्वा यहां झलादित्व नहीं है। पूङ् से पर क्त्वा को विकल्प इट् होता है। पवित्वा। पूत्वा।

३३३० जान्तनशां विभाषा ६।४।३२।

जान्तानां नशेश्च नलोपो वा स्यात् क्त्वि परे। भक्त्वा। भङ्क्त्वा। रक्त्वा। रङ्क्त्वा। 'मस्जिनशोः—' (सू२५१७) इति नुम्। तस्य पक्षे लोपः। नष्ट्वा। नंष्ट्वा। 'रधादिभ्यश्च' (सू २५१५) इतीट्पक्षे नशित्वा। 'झलादाविति वाच्यम्' (वा ५०६६)। नेह। अश्नित्वा। ऊदित्त्वाद्वेट्। पक्षे अक्त्वा, अङ्क्त्वा। 'जनसन-' (सू २५०४) इत्यात्त्वम्। खात्वा, खनित्वा। 'घतिस्यति' (सू ३०७४) इतीत्त्वम्। दित्वा। सित्वा। स्थित्वा। 'दधातेर्हिः' (सू ३०७६)। हित्वा।

क्त्वा प्रत्यय पर रहते जकारान्त धातु, नश् धातु, इनके नकार का विकल्प लोप होता है। भक्त्वा। कित् पक्ष में नकार लोप पक्ष में भङ्क्त्वा। नश् त्वा यहां 'मस्जिनशोः' से नुम् इसका पक्ष में लोप होता है, नष्ट्वा, नंष्ट्वा। रधादिभ्यश्च से इट् पक्ष में नशित्वा। अश्नित्वा में त्वा झलादि नहीं है। स्वरति सूत्र से ऊदित् लक्षण विकल्प इडागम है। अक्त्वा यहां कित्व नलोप हुआ। कित्त्वाभाव में अङ्क्त्वा। खात्वा, खनित्वा यहां 'जनसन' से आत्व। दित्वा, सित्वा, मित्वा, स्थित्वा। धा+त्वा हि आदेश 'दधातेर्हिः' से हुआ। हित्वा = धारण करके 'गतः' आदि अध्याहार करना।

३३३१ जहातेश्च क्त्वि ७।४।४३।

हित्वा। हाङ्स्तु हात्वा। 'अदो जग्धि—' (सू ३०८०)। जग्ध्वा।

ओहाक् को त्वा प्रत्यय पर रहते हि आदेश होता है। हित्वा। हाङ्का हात्वा। जग्ध्वा यहां अदो जग्धिः सूत्र से जग्धि आदेश हुआ।

३३३२ समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।१।३७।

अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेशः स्यात्। तुक्। प्रकृत्यं। अनञ् किम्? अकृत्वा। पर्युदासाश्रयणान्नेह। परमकृत्वा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अव्यय पूर्वपदक नञ् भिन्न तत्पुरुष समास होने पर क्त्वा प्रत्यय के स्थान में ल्यप् आदेश होता है। तुक् आगम से प्रकृत्य। नञ् तत्पुरुष समास होने पर ल्यप् नहीं होगा। यथा—अकृत्वा। नञ् भिन्न नञ् सदृश अव्यय पूर्वक धातु से पर क्त्वा को ल्यप् विधान से परमकृत्वा यहां ल्यबादेश न हुआ।

३३३३ षत्वतुकोरसिद्धः ६।१।८६।

षत्वे तुकि च कर्तव्ये एकादेशशास्त्रमसिद्धं स्यात्। कोऽसिचत्, इह षत्वं न। अधीत्य। प्रेत्य। 'ह्रस्वस्य—' (सू २७५८) इति तुक्।

षकार एवं तुक् कर्तव्य होने पर एकादेश शास्त्र विहित कार्य असिद्ध होता है अर्थात् शास्त्रासिद्धत्व वशतः सिद्ध हुआ। या शास्त्र असिद्ध यहीं मुख्य पक्ष में शास्त्र के असिद्ध से तद्बाध्य कार्य अर्थतः असिद्ध हुआ। 'शकहूषु' यह माष्य प्रयोग से पदान्त एवं पदादि का ही एकादेश षत्व या तुक् कर्तव्य में असिद्ध होता है, 'मातुष्पुत्रः' यहां असिद्धत्व न हुआ। षत्व हो गया। कोऽसिचत् यहां एकादेश शास्त्र असिद्ध होने से षत्व न हुआ। अधीत्य। प्रेत्य यहां दीर्घ एवं गुण के असिद्धत्व प्रयुक्त ह्रस्वत्व निमित्तक तुक् हुआ।

३३३४ वा ल्यपि ६।३।३८।

अनुदात्तोपदेशानां वनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो वा स्याल्ल्यपि। व्यवस्थितविभाषेयम्। तेन मान्तानिटां वा, नान्तानिटां वनादीनां च नित्यम्। आगत्य आगम्य। प्रणत्य प्रणम्य। प्रहत्य। प्रमत्य। प्रवत्य। वितत्य। 'अदो जग्धिः—' (सू २०८०) 'अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो ल्यब्बाधते'। जग्धिविधौ ल्यब्ग्रहणात्। तेन हित्वदत्वात्त्वेत्त्वदीर्घत्वशूठिटो ल्यपि न। विधाय। प्रदाय। प्रखन्य। प्रस्थाय। प्रक्रम्य। आपृच्छ्य। प्रदीव्य। प्रपठ्य।

ल्यप् पर रहते अनुदात्तोपदेश धातु एवं वन् धातु, तथा तन् आदि धातुओं के अनुनासिक वर्ण का लोप विकल्प से होता है। यह व्यवस्थित विभाषा है। इससे यह निष्कर्ष सम्प्राप्त हुआ कि मकारान्त अनिट् धातुओं के अनुनासिक लोप विकल्प हुआ, एवं नान्त अनिट् धातुओं का अनुनासिक लोप नित्य हुआ। लोप में तुक् आगत्य। आ गम् क्त्वा कुगति से समास त्वा को ल्यप् आदेश मकार लोप तुक् आगत्य। पक्ष में आगम्य। प्रणत्य। प्रणम्य। 'अदो जग्धि' सूत्र में ल्यप् ग्रहण से ज्ञापित यह परिभाषा है कि अन्तरङ्ग विधियों को बाधकर बहिरङ्ग ल्यप् ही होता है। अतः ल्यप् में हि आदेश, दध् आदेश, आत्व, इत्व, दीर्घ, शूठ्, इट् वे कार्य नहीं होगें। विधाय यहां दधातेर्हि से हि आदेश न हुआ। प्रदाय—दो दद्घोः न हुआ। प्रखन्य यहां 'जनसन्' से आत्व न हुआ। प्रस्थाय यहां धतिस्थमि से इत्व न हुआ। प्रक्रम्य यहां 'क्रमश्त्वा' से दीर्घ न हुआ। आपृच्छ्य एवं प्रदीव्य यहां छकार एवं वकार को क्रमशः शकार एवं ऊठ् न हुआ। इडभाव का उदाहरण प्रखन्य एवं प्रदीव्य है।

३३३५ न ल्यपि ६।४।६९।

ल्यपि परे घुमास्थादेरीत्त्व न। धेट्। प्रधाय। प्रमाय। प्रगाय। प्रपाय। प्रहाय। प्रसाय। 'मीनातिमिनोति—' (सू २५०८) इत्यात्त्वम्। प्रमाय।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निमाय। उपदाय। 'विभाषा लीयतेः' (सू २५०६)। विलाय। णिलोपः। उत्तार्य। विचार्य।

ल्यप् पर रहते घुसंज्ञक एवं मा एवं स्था आदि धातुओं को ईकार आदेश नहीं होता है। धेट् प्रधाय। प्रमाय। प्रगाय। प्रपाय। प्रहाय। प्रसाय। मीनाति मिनोति से आकारादेश से प्रमाय निमाय हुआ विभाषा लीयतेः से विकल्प आत्व से विलाय, विलीय हुआ। णि का लोप से उत्तार्य। विचार्य हुआ।

३३३६ ल्यपि लघुपूर्वात् ६।४।५६।

लघुपूर्वात्परस्य णेरयादेशः स्याल्ल्यपि। विगणय्य। प्रणमय्य। प्रवेभिदय्य। लघुपूर्वात् किम्? सम्प्रधार्य।

लघु संज्ञक वर्ण है पूर्व में जिसको ऐसा जो वर्ण उससे पर जो णि उसका अयादेश होता है ल्यप् पर रहते। प्रविगणय्य। प्र वि गण इस्वा यहां आर्धधातुक संज्ञक णिच् का इकार परमें रहते अतो लोपः से अकार का लोप करके गतिसमास त्वा को ल्यप् आदेश होकर लघुवर्ण गकारोत्तरवर्ती अकार उसकी 'ह्रस्वं लघु से लघु संज्ञा है, लघुपूर्वक णकार उससे पर इकार को इससे अयादेश कर प्रविगणय्य हुआ। यहां पूर्वविधौ में पूर्वस्माद् विधिः यह पञ्च भी समास का आश्रयण करके परनिमित्तकोऽजादेशः स्थानिवत् स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टात् परस्य कार्ये कर्तव्ये यह 'अचः परस्मिन्' का अर्थ कर लुप्त अकार का स्थानिवद्भाव से व्यञ्जन णकार पूर्वक अकार ज्ञान से णि के इकार को अयादेश की अप्राप्ति है, यह हुई शङ्का। समाधान यह है कि 'प्रविगणय्य' भाष्य प्रयोग से पञ्चमी समास अनित्य है 'निष्ठायां सेटि' में सेट् ग्रहण से भी पञ्चमी समास अनित्य है अतः स्थानिवद्भाव न हुआ। प्रणमय्य, प्रवेभिदय्य आदि में इकार को अयादेश इससे हुआ। सम् प्र धार् इ य यहां लघुपूर्वक रेफ नहीं अतः यहां इकार को अयादेश अप्राप्त है णेरनिटि से इकारलोप संप्रधार्य हुआ।

३३३७ विभाषाऽऽपः ६।४।५७।

आप्नोतेर्णेरयादेशो वा स्याल्ल्यपि। प्रापय्य। प्राप्य।

ल्यप् पर रहते आप् से पर णिको विकल्प से अय् आदेश होता है। प्रापय्य। प्राप्य।

३३३८ क्षियः ६।४।५९।

क्षियो ल्यपि दीर्घः स्यात्। प्रक्षीय।

ल्यप् प्रत्यय पर में रहते क्षि धातु के इकार को दीर्घ होता है। प्रक्षित्वा समास ल्यप् दीर्घ प्रक्षीय।

३३३९ ल्यपि च ६।१।४१।

वेञो ल्यपि सम्प्रसारणं न स्यात्। प्रवाय।

ल्यप् पर में रहते ञेञ् को सम्प्रसारण नहीं होता है। प्रवाय। 'आदेश उपदेशे' से आत्व हुआ है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३३४० ज्यश्च ६।१।४२।

प्रज्याय।

ल्यप् पर में रहते ज्या धातु को सम्प्रसारण नहीं होता है। प्रज्याय। ज्या वयोहानौ। ग्रहिज्या से प्राप्त सम्प्रसारणाभाव।

३३४१ व्यश्च ६।१।४३।

उपव्याय।

ल्यप् पर में रहते व्येञ् को सम्प्रसारण नहीं होता है। उपव्याय।

३३४२ विभाषा परेः ६।१।४४।

परेर्व्येञो वा सम्प्रसारणं स्याल्ल्यपि। तुकं बाधित्वा परत्वात् 'हलः' (सू २५५६) इति दीर्घः। परिवीय। परिव्याय। कथम् 'मुखं व्यादाय स्वपिति' 'नेत्रे निमील्य हसति' इति। व्यादाननिमीलनोत्तरकालेऽपि स्वापहासयोरनुवृत्तेस्तदंशविवक्षया भविष्यति।

ल्यप् पर में रहते परि उपसर्ग पूर्वक व्येञ् को विकल्प सम्प्रसारण होता है। तुक् को परत्व के कारण बाधकर 'हलः' सूत्र से दीर्घ होकर परिवीय हुआ। पक्ष में परिव्याय है। शयनरूप = स्वाप एवं हसन क्रिया इनके उत्तर काल में मुख विकास एवं नेत्रों का संकोच अर्थात् निमीलन है, पूर्वकालिक क्रियात्वाभाव से मुखं व्यादाय यहां एवं नेत्रे निमील्य उभयत्र त्वा प्रत्यय की अप्राप्ति से वह नहीं होगा, गति समास नहीं करवा के अभाव में ल्यप् नहीं वे प्रयोग किस प्रकार सिद्ध हुए मुखं व्यादाय नेत्रे निमील्य यह शङ्का है, समाधान—व्यादान एवं संमीलन के बाद में भी निद्रा एवं हास का सम्बन्ध के कारण उस अंश की विवक्षा से पूर्वकालिक क्रियात्व की विवक्षा से त्वा एवं समास ल्यप् से पूर्वोक्त प्रयोगद्वय की सिद्धि होगी, अनुपपत्ति नहीं है।

३३४३ आभीक्ष्ण्ये णमुल्च ३।४।२२।

पौनःपुन्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल्स्यात् क्त्वा च। द्वित्वम्। स्मारं स्मारं नमति शिवम्। स्मृत्वा स्मृत्वा। पायं पायम्। श्रावं श्रावम्। 'चिण्णमुलोः–'(सू २७६२) इति णमुल्परे णौ वा दीर्घः। गामं गामम्। गमं गमम्। 'विभाषा चिण्णमुलोः' (२७६५) इति नुम्वा। लम्भं लम्भम्। लाभं लाभम्। व्यवस्थितविभाषयोपसृष्टस्य नित्यं नुम्। प्रलम्भं प्रलम्भम्। 'जाग्रोऽविचिण्णल्' (सू २४८०) इति गुणः। जागरं जागरम्। ण्यन्तस्याप्येवम्।

पौनः पुन्य में पूर्व विषय में णमुल् प्रत्यय एवं क्त्वा भाव में होते हैं। द्वित्व करके स्मारं स्मारं नमति शिवम्। नित्यवीप्सयोः से द्वित्व यहां हुआ। अव्यय से संज्ञा है।

त्वा करने पर द्वित्व से स्मृत्वा स्मृत्वा हुआ। पा से णमुल् युक् द्वित्व पायं पायम्। भोजं भोजम्। श्रावं श्रावम्। 'चिण् णमुलोः' से विकल्प दीर्घ होता है। गामं गामम्। पक्ष में गमं गमम्। 'विभाषा चि णमुलोः' से विकल्प नुम्। लम्भं लम्भम्। लाभं लाभम्। व्यवस्थित विभाषा के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारण उपसर्ग विशिष्ट लभ् को नित्य नुम् प्रलम्भं प्रलम्भम्। 'जाग्रोऽवि चिण्' से गुणकर जागरं जागरम्। णिजन्त के भी इस तरह रूप होंगे।

३३४४ न यद्यनाकाङ्क्षे ३।४।२३।

यच्छब्द उपपदे पूर्वकाले यत्प्राप्तं तन्न, यत्र पूर्वोत्तरे क्रिये तद्वाक्यमपरं नाकाङ्क्षति चेत्। यदयं भुङ्क्ते ततः पठति। इह क्त्वाणमुलौ न। अनाकाङ्क्षे किम्? यदयं भुक्त्वा व्रजति ततोऽधीते।

जिस वाक्य में पूर्व एवं पर कालाभिधायिनी क्रिया है वह वाक्य यदि अपर वाक्य की आकाङ्क्षा न करे तब यत् शब्द उपपद में रहते पूर्वकाल में प्राप्त क्त्वा एवं णमुल् प्रत्यय नहीं होता है। यदयं भुङ्क्ते ततः पठति यहां क्त्वा एवं णमुल् न हुआ। अनाकाङ्क्षे कहने से यहां साकाङ्क्ष है अतः निषेध नहीं, यथा भुक्त्वा व्रजति ततोऽधीते।

३३४५ विभाषाऽग्रेप्रथमपूर्वेषु ३।४।२४।

आभीक्ष्ण्य इति नानुवर्तते। एषूपपदेषु समानकर्तृकयोः पूर्वकाले क्त्वाणमुलौ वा स्तः। अग्रे भोजं व्रजति। अग्रे भुक्त्वा। प्रथमं भोजम्। प्रथमं भुक्त्वा। पूर्वं भोजम्। पूर्वं भुक्त्वा। पक्षे लडादयः। अग्रे भुङ्क्ते ततो व्रजति। आभीक्ष्ण्ये तु पूर्वविप्रतिषेधेन नित्यमेव विधिः। अग्रे भोजं—भोजं व्रजति। भुक्त्वा-भुक्त्वा व्रजति।

इस सूत्र में पौनःपुन्य की अनुवृत्ति नहीं है। अग्रे, प्रथम, पूर्व वे उपपद में रहे एककर्तृक धातु से पूर्वकाल में विकल्प से क्त्वा प्रत्यय एवं णमुल् प्रत्यय होता है। अग्रेभोजम्। अग्रेभुक्त्वा। प्रथमें लट् होता है। अग्रे भुङ्क्ते ततो व्रजति। पौनः पुन्य में पूर्वविप्रतिषेध से नित्यविधि ही होती है। यथा-अग्रे भोजं भोजं व्रजति। भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति।

३३४६ कर्मण्याक्रोशे कुञः खमुञ् ३।४।२५।

कर्मण्युपपदे आक्रोशे गम्ये कृञः खमुञ् स्यात्। चौरङ्कारमाक्रोशति। करोतिरुच्चारणे। चौरशब्दमुच्चार्येत्यर्थः।

कर्म उपपद रहते निन्दा अर्थ गम्य रहते कृञ् धातु से खमुञ् होता है चौरंकारमाक्रोशति। यहां कृञ् धात्वर्थ कण्ठताल्वाद्यभिघातपूर्वक शब्दकर्मक उच्चारण जनक व्यापारार्थक है, उत्पत्ति-जनक व्यापारार्थ नहीं है। चौर शब्द उच्चारण करके आक्रोश वह करता है।

३३४७ स्वादुमि णमुल् ३।४।२६।

स्वाद्वर्थेषु कृञो णमुल्स्यादेककर्तृकयोः पूर्वकाले। स्वादुशब्दस्य मान्तत्वं निपात्यते। अस्वाद्वीं स्वाद्वीं कृत्वा भुङ्क्ते। सम्पन्नङ्कारम्। लवणं कारम्। सम्पन्नलवणशब्दौ स्वादुपर्यायौ। वाऽसरूपेण क्त्वापि। स्वादुं कृत्वा भुङ्क्ते।

स्वादु अर्थ बोधक शब्द उपपद में रहते एककर्तृक धात्वर्थ के पूर्वकालिक क्रियावाचक धातु से णमुल् प्रत्यय भाव में होता है एवं पूर्वपद को मान्तत्व निपातन से सिद्ध होता है। अभूत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तद्भाव की विवक्षाकर जो स्वादु नहीं उसको स्वादु कर वह भोजन करता है = स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते। सम्पन्नंकारम्, लवणङ्कारं भुङ्क्ते। सम्पन्न एवं लवण वे दोनों स्वादुपर्याय है। वा सरूप न्याय से पक्ष में क्त्वा प्रत्यय भी हुआ = स्वादुङ्कृत्वा भुङ्क्ते।

३३४८ अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ३।४।२७।

एषु कृञ्णो णमुल्स्यात् सिद्धोऽप्रयोगोऽस्यैवंभूतश्चेत्कृञ्। व्यर्थत्वात्प्रयोगानर्ह इत्यर्थः। अन्यथाकारम्। एवङ्कारम्। कथङ्कारम्। इत्थङ्कारम् भुङ्क्ते। इत्थं भुङ्क्ष इत्यर्थः। सिद्ध-इति किम्? शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते।

अन्यथा, एवं, कथम्, इत्थम् वे चार शब्द उपपद रहते कृञ् से णमुल् होता है, यदि कृञ् का प्रयोग व्यर्थत्व प्रयुक्त प्रयोजन शून्य रहें। इत्थंकारं भुङ्क्ते = वह इस प्रकार भोजन करता है यहां एवं पूर्वोक्त इस सूत्र के उदाहरण में कृञ् व्यर्थ है। जहां अर्थ विशेष बोधनार्थ कृञ् सार्थक है वहां यथा शिर का अन्यथा कर वह भोजन करता है वहां क्त्वा प्रत्यय हुआ, णमुल् नहीं = शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते।

३३४९ यथातथयोरसूयाप्रतिवचने ३।४।२८।

कृञः सिद्धाप्रयोग इत्येव, असूयया प्रतिवचने। यथाकारमहं भोक्ष्ये, तथाकारं भोक्ष्ये, किं तवानेन।

यथा एवं तथा उपपद रहते असूया से प्रतिवचन गम्य रहते व्यर्थ प्रयुक्त कृञ् से णमुल् प्रत्यय होता है। मैं जिस प्रकार चाहूँ उस प्रकार भोजन करूँ इसमें तुम्हारा क्या दखल = यथाकारमहं भोक्ष्ये तथाकारं भोक्ष्ये किं तवानेन।

३३५० कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये ३।४।२९।

कर्मण्युपपदे णमुल्स्यात्। कन्यादृश वरयति। सर्वाः कन्या इत्यर्थः। ब्राह्मणवेदं भोजयति। यं यं ब्राह्मणं जानाति लयते विचारयति वा तं सर्वं भोजयतीत्यर्थः।

कर्म उपपद रहते दृश् एवं विद् से साकल्य अर्थ में णमुल् होता है। सम्पूर्ण कन्याओं को देख कर वह वरण करता है = कन्यादर्शं वरयति। समस्त कन्या यही अर्थ है। जिन जिन ब्राह्मणों को जानता वह है उन उनको वह भोजन करवाता है = ब्राह्मणवेदं भोजयति।

३३५१ यावति विन्दजीवोः ३।४।३०।

यावद्वेदं भुङ्क्ते। यावल्लभते तावदित्यर्थः। यावज्जीवमधीते।

यावत् शब्द उपपद में रहते विन्द्, एवं जीव् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है। जितना पाता उतना वह भोजन करता है = यावद्वेदं भुङ्क्ते। जब तक प्राणधारण वह करता है तब तक अध्ययन करता है = यावज्जीवमधीते।

३३५२ चर्मोदरयोः पूरेः ३।४।३१।

कर्मणीत्येव। चर्मपूरं स्तृणाति। उदरपूरं भुङ्क्ते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चर्म एवं उदर शब्द उपपद में रहते पूर् से णमुल् होता है। चर्मपूरं स्तृणाति। उदरपूरं भुङ्क्ते।

३३५३ वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम् ३।४।३८।

कर्मण्युपपदे पूरेर्णमुल्स्यादूकारलोपश्च वा, समुदायेन वर्षप्रमाणे गम्ये। गोष्पदपूरं वृष्टो देवः। गोष्पदप्रवृष्टो देवः। अस्य इति किम्? उपपदस्य मा भूत्। मूषिकाबिलप्रम्।

कर्म उपपद होने पर पूर् से णमुल् होता है एवं धातु के ऊकार का विकल्प से लोप होता है यदि समुदाय से वर्ष प्रमाण की प्रतीति होती है तो। गोष्पदपूरं वृष्टो देवः। गोष्पदप्रम्। उपपद के ऊकार लोप वारणार्थ सूत्र में 'अस्य' कहा है। मूषिकाबिलप्रम्।

३३५४ चेले क्नोपेः ३।४।३३।

चेलार्थेषु कर्मसूपपदेषु क्नोपेर्णमुल्स्याद्वर्षप्रमाणे। चेलक्नोपं (शब्दाययन्) वृष्टो देवः। वस्त्रक्नोपम्। वसनक्नोपम्। (यथा वर्षणे वस्त्रं शब्दायते तथाऽवर्षदित्यर्थः।)

वर्षा का प्रमाण होने पर चेल अर्थ बोधक कर्म उपपद में रहते क्नुप् धातु से णमुल् होता है। चैलक्नोपं वृष्टो देवः। वसनक्नोपम्। वस्त्रक्नोपम् वा।

३३५५ निमूलसमूलयोः कषः ३।४।३४।

कर्मणीत्येव। कषादिष्वनुप्रयोगं वक्ष्यति। अत्र प्रकरणे पूर्वकाले इति न सम्बध्यते। निमूलकाषं कषति। समूलकाषं कषति। निमूलं समूलं कषतीत्यर्थः। एकस्यापि धात्वर्थस्य निमूलादिविशेषणसम्बन्धाद् भेदः। तेन सामान्यविशेषभावेन विशेषणविशेष्यभावः।

निमूल एवं समूल यह दो कर्म उपपद होने पर कष् से णमुल् होता है, कषादि विषय में अनुप्रयोग वक्ष्यमाण है। इस प्रकरण में पूर्वकाल का सम्बन्ध नहीं है। निमूलकाषं कषति। समूलकाषं कषति। निमूल या समूल कर्षण वह करता है। धात्वर्थ एक होने पर भी विशेषण निमूलादि से विशिष्ट से भेद है। अतः विशेषार्थक का सामान्यार्थक का अभेदान्वय हुआ = निमूलत्व विशिष्ट कषणाभिन्न कषण आदि।

३३५६ शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः ३।४।३५।

एषु कर्मसु पिषेर्णमुल्। शुष्कपेषं पिनष्टि। शुष्कं पिनष्टीत्यर्थः। चूर्णपेषम्। रूक्षपेषम्।

शुष्क, चूर्ण, रूक्ष, वे उपपद में रहे तब पिष् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है। शुष्कपेषं पिनष्टि = शुष्कं पिनष्टि। चूर्णपेषम्। रूक्षपेषं पिनष्टि। अवयवों का चूर्ण करना पिष् धात्वर्थ है।

३३५७ समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः ३।४।३६।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्मणीत्येव। समूलघातं हन्ति। अकृतकारं करोति। जीवग्राहं गृह्णाति। जीवतीति जीवः। इगुपधलक्षणः कः। जीवन्तं गृह्णातीत्यर्थः।

समूल, अकृत, जीव ये कर्म उपपद में रहते क्रमशः हन्, कृञ्, ग्रह इनसे णमुल् प्रत्यय होता है। समूलघातं हन्ति। अकृतकारं करोति। जीवग्राहं गृह्णाति। जिन्दा उसको वह ग्रहण करता है। इगुपध लक्षण कप्रत्ययान्त जीव है।

३३५८ करणे हनः ३।४।३७।

पादघातं हन्ति। पादेन हन्तीत्यर्थः। यथाविध्यनुप्रयोगार्थः सन्नित्यसमासार्थोऽयं योगः। भिन्नधातुसम्बन्धे तु 'हिंसार्थानां च—' (सू ३३६६) इति वक्ष्यते।

करण वाचक शब्द उपपद में रहते हन् से णमुल् होता है। चरण से वह हनन करता है= पादघातं हन्ति। यथाविधि अनुप्रयोग करके नित्यसमासार्थ यह पृथक् सूत्र है। इनसे भिन्न धातु सम्बन्ध में 'हिंसार्थानाञ्च' इस सूत्र के वक्ष्यमाण है।

३३५९ स्नेहने पिषः ३।४।३८।

स्निह्यते येन तस्मिन्करणे पिषेर्णमुल्। उदपेषं पिनष्टि। उदकेन पिनष्टीत्यर्थः।

स्निग्ध क्रिया में जो प्रकृष्टोपकारक=करण वह उपपद रहते पिष् से णमुल् होता है। उदपेषं पिनष्टि।

३३६० हस्ते वर्तिग्रहोः ३।४।३९।

हस्तार्थे करणे। हस्तवर्तं वर्तयति। करवर्तम्। हस्तेन गुलिकां करोतीत्यर्थः। हस्तग्राहं गृह्णाति। करग्राहम्। पाणिग्राहम्।

हस्तरूप करण उपपद में रहते वृत् एवं ग्रह से णमुल् होता है। हस्तग्राहं गृह्णाति। यहां ग्रहण क्रिया में हस्त प्रकृष्टोपकारक रूप करण है।

३३६१ स्वे पुषः ३।४।४०।

करण इत्येव। स्व इत्यर्थग्रहणम्। तेन स्वरूपे पर्याये विशेषे च णमुल्। स्वपोषं पुष्णाति। धनपोषम्। गोपोषम्।

स्व से स्वरूप पर्य्याय एवं विशेष का ग्रहण करना। स्वार्थ करण उपपदक पुष् से णमुल् प्रत्यय होता है। स्वपोषं पुष्णाति। धनपोषम्, गोपोषम्।

३३६२ अधिकरणे बन्धः ३।४।४१।

चक्रबन्धं बध्नाति। चक्रे बध्नातीत्यर्थः।

अधिकरण वाचक शब्द उपपद में रहते बन्ध से णमुल् होता है। वह चक्र में बांधता है= चक्रबन्धं बध्नाति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३३६३ संज्ञायाम् ३।४।४२।

बध्नातेर्णमुल्संज्ञायाम्। क्रौञ्चबन्धं बद्धः। मयूरिकाबन्धम्। अट्टालिकाबन्धम्। बन्धविशेषाणां संज्ञा एताः।

संज्ञा अर्थ में बन्ध से णमुल्। बन्ध विशेष की संज्ञा में क्रौञ्चबन्धं बद्धः। मयूरिकाबन्धम्। अट्टालिकाबन्धम्।

३३६४ कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः ३।४।४३।

जीवनाशं नश्यति। जीवो नश्यतीत्यर्थः। पुरुषवाहं वहति। पुरुषो वहतीत्यर्थः।

कर्तृवाचक जीव एवं पुरुष उपपद रहते क्रमशः नश् एवं वह् से णमुल् होता है। जीवनाशं नश्यति = जीव नष्ट होता है। पुरुष भार को ढोता है = पुरुषवाहं वहति।

३३६५ ऊर्ध्वे शुषिपूरोः ३।४।४४।

ऊर्ध्वे कर्तरि। ऊर्ध्वशोषं शुष्यति। वृक्षादिरूर्ध्व एव तिष्ठन्छुष्यतीत्यर्थः। ऊर्ध्वपूरं पूर्यते। ऊर्ध्वमुख एव घटादिर्वर्षोदकादिना पूर्णो भवतीत्यर्थः।

ऊर्ध्वरूप कर्ता उपपद में रहते शुष् एवं पूर् से णमुल् होता है। वृक्ष आदि के उपरि भाग में रहते हुए वह शुष्यति अर्थ में ऊर्ध्वशोषं शुष्यति। उपरि मुख वाला घट आदि वर्षा आदि के जल से वह पूर्ण होता है = ऊर्ध्वपूरं पूर्य्यते।

३३६६ उपमाने कर्मणि च ३।४।४५।

चात्कर्तरि। घृतनिधायं निहितं जलम्। घृतमिव सुरक्षितमित्यर्थः। अजकनाशं नष्टः। अजक इव नष्ट इत्यर्थः।

उपमानवाचक कर्म एवं चकार निर्देश से उपमानवाचक कर्ता उपपद में रहते धातु से णमुल् होता है। घी की तरह सुरक्षित रक्खा हुआ जल इस अर्थ में = घृतनिधायं विहितं जलम्। अजक की तरह वह नष्ट है अजकनाशं नष्टः।

३३६७ कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ३।४।४६।

यस्माण्णमुलुक्तः स एवानुप्रयोक्तव्य इत्यर्थः। तथैवोदाहृतम्।

कषादि विषय में जिस धातु से णमुल् होता है उसी धातु का अनुप्रयोग करना चाहिये। अन्य का नहीं।

३३६८ उपदंशस्तृतीयायाम् ३।४।४७।

इतः प्रभृति पूर्वकाल इति सम्बध्यते। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (सू ७८४) इति वा समासः। मूलकोपदंशं भुङ्क्ते। मूलकेनोपदंशम्। दृश्यमानस्य मूलकस्य भुजिं प्रति करणत्वात्तृतीया। यद्यप्युपदंशिना सह न शाब्दः सम्ब-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्वस्तथाप्यर्थोऽस्त्येव, कर्मत्वात्। एतावतैव सामर्थ्येन प्रत्ययः समासश्च। 'तृतीयायामि'ति वचनसामर्थ्यात्। (ततश्चायमर्थः। मूलकेन भुङ्क्ते इति शाब्दान्वये किं कृत्वेत्याकाङ्क्षया उपदृश्येति तदेव कर्मत्वेनान्वेति)।

इस सूत्र में पूर्वकाल की मण्डुकप्लुति से अनुवृत्ति है। 'तृतीया प्रभृति' सूत्र से विकल्प समास होता है। तृतीयान्त तदादि उपपद में रहते समानकर्तृक धात्वर्थ के मध्य में पूर्वकाल में स्थित जो उपपूर्वक दंश् धातु उससे णमुल् प्रत्यय होता है। यथा मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते। मूलकोपदंशं भुङ्क्ते। वह खाता है क्या कर? काट कर, किसको काट कर मूलक (मूली) को उपदंशन क्रिया का मूलक कर्म है एवं भोजन क्रिया में मूलक प्रकृष्टोपकारक होने से करण है पूर्वकालिक क्रिया उपदंशन है, उत्तर कालिक क्रिया भोजनरूपा है। दंश धातु का दंष्ट्रा व्यापार अर्थ है। दंश्यमान मूलक है अर्थात् दंशन जनक व्यापार जो दंश धात्वर्थ उसका मूलक फलाश्रयत्व के कारण कर्म है तथापि प्रधानीभूत (इतरविशेषणता अनापन्न) भोजन क्रिया में मूलक करण है अतः प्रधानानुरोध से समस्त कार्यजात होता है मूलक से द्वितीया न हुई किन्तु तृतीया विभक्ति की उत्पत्ति हुई। यहां यद्यपि उपदंशन से मूलक का साक्षात् सम्बन्ध शब्दप्रयोज्य नहीं है तो भी उपदंशन क्रिया में मूलक कर्म होने से आर्थ अर्थात् अर्थकृत सम्बन्ध मूलक का उपदंशन क्रिया के साथ है ही। 'तृतीयायाम्' वैकल्पिक समास विधान सामर्थ्य से प्रत्यय एवं समास ऐसी परिस्थिति में भी करना। अर्थात् शाब्दान्वयाभावेऽपि आर्थिकान्वयमात्रेण प्रत्ययः समासश्च करणीय एव। वचनसामर्थ्यात्—तृतीयान्त से शाब्दान्वय होने पर ही यदि प्रत्यय होता तो 'करणे हनः' की तरह 'उपदंशः करणे' यही कहना उचित होता। अतः क्रियान्तर के प्रति मूलक को करणत्व इष्ट होने से तृतीयान्त प्रयोग हुआ 'मूलकेन' इति। यह मनोरमा कारमत है।

यहां अन्यमत से भी विचार करते है कि "उपदंशः कर्मणि" ऐसा सूत्र करें या 'उपदंशः' इतना ही सूत्र करें 'उपमाने कर्मणि' से कर्म की अनुवृत्ति करके कर्म उपपदक उपपूर्वक दंश् से णमुल् यह व्याख्या करेंगें, यह कुसृष्टि क्यों की गई? नित्यसमास इस पक्ष में होगा यह कथन तो अनुचित सा है क्योंकि 'तृतीया प्रभृति' में प्रभृति से कर्म संज्ञक का भी ग्रहण होकर विकल्प समास होगा कोई दोष नहीं है। अथवा 'तृतीया प्रभृति' वै० समास विधायक में 'कर्मणिप्रभृति' कहने से दोषाभाव है, अतः 'उपदंशः करणे' यह मनोरमोक्त चिन्त्य है विस्तार इसका अन्यत्र है। प्रधान क्रिया निरूपित करणत्व से मूलकेन यहां तृतीया है प्रधान क्रिया में विशेषणीभूत उपदंशन क्रिया तन्निरूपित कर्मत्व प्रयुक्त द्वितीया न हुई। सर्वे सेवका राजानमिव 'प्रधानमनुरुध्यन्ते' न्याय से।

३३६९ हिंसार्थानां च समानकर्मणाम् ३।४।४९

तृतीयान्ते उपपदेऽनुप्रयोगधातुना समानकर्मकाद्धिंसार्थात् णमुल् स्यात्। घातङ्काः कालयति—दण्डेनोपघातम्। दण्डताडम्। 'समानकर्मकाणाम्' दण्डेन चोरमाहत्य गाः कालयति।

तृतीयान्त उपपद रहते अनु प्रयुज्यमान जो धातु तद्वाच्य व्यापार प्रयोज्य जो फल तदाश्रय जो कर्म वही कर्मयुक्त जो हिंसार्थक धातु उससे णमुल् प्रत्यय होता है। दण्डोपघातं गाः कालयति = प्रेरयति = यहां ताडना क्रिया में दण्ड करण है अतः उससे करण में तृतीया है, ताडन क्रिया का कर्म गो है वह प्रेरणार्थक अनुप्रयुज्यमान कल प्रेरणे वाच्य क्रिया कर्म है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

णमुल् अम्, वृद्धि कुत्व, तत्व हुआ, णमुल् भाव में। वै० समास पक्ष में समासाभाव। उभय वाच्य एक कर्म जहां नहीं है वहां इसकी प्रवृत्ति नहीं है। यथा दण्ड से चोर का ताडन करके वह गायों को प्रेरणा करता है यहां आहनन क्रिया का कर्म चोर है एवं प्रेरणारूप क्रिया का कर्म गायें है विभिन्नकर्मक होने से पूर्वकालिक क्रियावाचक धातु आङ् पूर्वक हन् से क्त्वा प्रत्यय समास ल्यप् नकार लोप तुक् से आहत्य है।

३३७० सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ३।४।४९।

उपपूर्वेभ्यः पीडादिभ्यः सप्तम्यन्ते तृतीयान्ते चोपपदे णमुल्स्यात्। पार्श्वोपपीडं शेते, पार्श्वयोरुपपीडम्, पार्श्वाभ्यामुपपीडम्। व्रजोपरोधं गाः स्थापयति। व्रजेन व्रजे उपरोधं वा। पाण्युपकर्षं घानाः सङ्गृह्णाति। पाणावुपकर्षम्। पाणिनोपकर्षम्।

सप्तम्यन्त या तृतीयान्त उपपद रहते उत्पूर्वक पीड्, रुध्, कृष् इनसे णमुल् प्रत्यय होता है। पार्श्वद्वय को पीडा हो इतने अधिक काल तक वह शयन क्रिया करता है। पार्श्वोपपीडं शेते। पार्श्वयोरुपपीडम्। विकल्प समास है। व्रजोपरोधम्। व्रजेन उपरोधम्।

३३७१ समासत्तौ ३।४।५०।

तृतीयासप्तम्योर्घातोर्णमुल्स्यात्सन्निकर्षे गम्यमाने। केशग्राहं युध्यन्ते (युद्धसंरम्भात्)। केशेषु गृहीत्वा। हस्तग्राहम्। हस्तेन गृहीत्वा।

तृतीयान्त या सप्तम्यन्त उपपद में रहते सामीप्य अर्थ प्रतीयमान रहे तब धातु से णमुल् होता है। परस्पर बालों में पकड़ कर वे युद्ध करते हैं = केशग्राहं युध्यन्ते। पक्ष में केशेषु गृहीत्वा। हस्तग्राहम्, हस्तेन गृहीत्वा।

३३७२ प्रमाणे च ३।४।५१।

तृतीयासप्तम्योरित्येव। द्व्यङ्गुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति। द्व्यङ्गुलेन द्व्यङ्गुले वोत्कर्षम्।

तृतीयान्त या सप्तम्यन्त उपपद में रहने पर प्रमाण में धातु से णमुल् होता है। द्वयोरङ्गुल्योः समाहारो द्व्यङ्गुलम्। यहां 'तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः' से अच् समासान्त प्रत्यय हुआ। द्व्यङ्गुलेन उत्कृष्य = परिच्छिद्य द्व्यङ्गुलोत्कर्षम्। स्वल्पः खण्डः अर्थ में खण्डिका शब्द है। यहां का मनोरमा ग्रन्थ ठीक नहीं है।

३३७३ अपादाने परीप्सायाम् ३।४।५२।

परीप्सा त्वरा। शय्योत्थायं धावति। एवं नाम त्वरते यदवश्यकर्तव्यमपि नापेक्षते। शय्योत्थानमात्रमपेक्षते।

अपादान में विहित जो पञ्चमी तदन्त तदादि उपपद में रहते परीप्सा = त्वरा अर्थ में धातु से णमुल् होता है। शय्या से वह उठते ही दौड़ता है शय्योत्थायं धावति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३३७४ द्वितीयायां च ३।४।५३।

परीप्सायामित्येव । यष्टिग्राहं युध्यन्ते । लोष्टग्राहम् ।

द्वितीयान्त उपपद में रहते धातु से त्वरा अर्थ में धातु से णमुल् होता है । यष्टिग्राहं युध्यन्ते = शीघ्रता से लाठी लेकर वे लड़ने जाते हैं । इसी प्रकार लोष्टग्राहं युध्यन्ते ।

३३७५ अपगुरोणमुलि ६।१।५३।

'गुरी उद्यमने' इत्यस्यैचो वा आत्स्याण्णमुलि । असपगारं युध्यन्ते । असपगोरम् ।

उद्यमनार्थक अपपूर्वक गुरी धातु का अवयव एच् को विकल्प से आकार आदेश होता है णमुल् प्रत्यय पर में रहते । असपगारं युध्यन्ते = तलवार को उपरिभाग में उठाकर वे युद्ध करते हैं । असपगोरम् युध्यन्ते वा ।

३३७६ स्वाङ्गेऽध्रुवे ३।४।५४।

द्वितीयायामित्येव । अध्रुवे स्वाङ्गे द्वितीयान्ते धातोर्णमुल् । भ्रूविक्षेपं कथयति । भ्रुवं विक्षेपम् । किम् ? शिर उत्क्षिप्य । येनाङ्गेन विना न जीवनं तद् ध्रुवम् ।

द्वितीयान्त अध्रुववाचक स्वाङ्गवाचक शब्द उपपद में रहते धातु से णमुल् प्रत्यय होता है । वह भ्रुकुटि के इशारा से कहता है = भ्रूविक्षेपं कथयति । भ्रुवं विक्षेपम् । स्वाङ्ग जहां ध्रुव रहे वहां 'शिरः उत्क्षिप्य' क्त्वा समास ल्यप् हुआ । ध्रुव शब्द का अर्थ यह है "जिसके बिना जो जीवित नहीं रह सकता वह है" ।

३३७७ परिक्लिश्यमाने च ३।४।५५।

सर्वतो विबाध्यमाने स्वाङ्गे द्वितीयान्ते णमुल्स्यात् । उरःप्रतिपेषं युध्यन्ते । कृत्स्नमुरः पीडयन्त इत्यर्थः । 'उरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः' । ध्रुवार्थमिदम् ।

सर्व प्रकार से कष्ट युक्त अर्थ में द्वितीयान्त स्वाङ्गवाचक शब्द उपपद में रहते धातु से णमुल् होता है । उरःप्रतिपेषं युध्यन्ते । सम्पूर्ण वक्षः स्थल प्रपीडित हो वैसा वे युद्ध करते हैं । उरोविदारम् । ध्रुवार्थ यह सूत्र है ।

३३७८ विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः ३।४।५६।

द्वितीयायामित्येव । द्वितीयान्ते उपपदे विश्यादिभ्यो णमुल्स्याद्व्याप्यमाने, आसेव्यमाने चार्थे गम्ये । गेहादिद्रव्याणां विश्यादिक्रियाभिः साकल्येन सम्बन्धो व्याप्तिः । 'क्रियायाः पौनःपुन्यमासेवा । 'नित्यवीप्सयोः' (सू २१४०) इति द्वित्वं तु न भवति । समासेनैव स्वभावतस्तयोरुक्तत्वात् । यद्यप्याभीक्ष्ण्ये णमुलुक्त एव, तथापि असति ह्यासेवार्थकणमुलि आभीक्ष्ण्यणमुलः 'तृतीयाप्रभृतीनि' इत्यत्र सङ्ग्रहाभावात् उपपदसंज्ञार्थमासेवायामिह पुनर्विधिः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गेहानुप्रवेशमास्ते । गेहंगेहमनुप्रवेशम् । गेहमनुप्रवेशम् । एवं गेहानुप्रपातम् । गेहानुप्रपादम् । गेहानुस्कन्दम् । असमासे तु गेहस्य णमुलन्तस्य च पर्यायेण द्वित्वम् ।

व्याप्यमान एवं आसेव्यमान अर्थ में द्वितीयान्त पद उपपद में रहते विश्, पद्, पद्, स्कन्द् इनसे णमुल् होता है । गृह आदि का विश् आदि धातुओं से वाच्य क्रियाओं के साथ साकल्य करके सम्बन्ध उसको व्याप्ति कहते हैं । क्रिया का पौनःपुन्य को आसेवा कहते हैं । यहां 'नित्यवीप्सयोः' से द्वित्व इसलिए न हुआ कि समास के द्वारा ही शब्दशक्ति स्वभावतः नित्य एवं वीप्सा उक्त है । आभीक्ष्ण्य में णमुल् यद्यपि प्रथम कथित है तो भी उपपदसंज्ञा निमित्त आसेवा अर्थ में पुनः विधान है । गेहानुप्रवेशमास्ते । गेहं गेहमनुप्रवेशम् । गेहानुप्रपातम् । असमास में णमुल् प्रत्ययान्त पर्याय से द्वित्व ।

३३७९ अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु ३।४।५७।

क्रियामन्तरयति व्यवधत्ते इति क्रियाऽन्तरः । तस्मिन्धात्वर्थे वर्तमानादस्यतेस्तृष्यतेश्च कालवाचिषु द्वितीयान्तेषूपपदेषु णमुल्स्यात् । द्व्यहात्यासं गाः पाययति द्व्यहमत्यासम् । द्व्यहतर्षम् । द्व्यहं तर्षम् । अत्यसनेन तर्षणेन च गवां पानक्रिया व्यवधीयते । अद्य पाययित्वा द्व्यहमतिक्रम्य पुनः पाययतीत्यर्थः ।

क्रिया व्यवधान करने वाली जो क्रिया वह क्रियान्तर पद-व्यपदेश्य है क्रियान्तर धात्वर्थ होने पर कालवाचक द्वितीयान्त पद उपपद में रहते अस् एवं तृष् से णमुल् प्रत्यय होता है । दो दिन का व्यवधान करके वह गायों को जल का पान करवाता है अर्थ में = द्व्यहात्यासं गाः पाययति । द्व्यहम् अत्यासम् । आदि । यहां अत्यसन एवं तर्पण से गायों की पान क्रिया का व्यवधान है । आज जल पिलाकर दो दिन के बाद जल वह पिलाता है ।

३३८० नाम्न्यादिशिग्रहोः ३।४।५८।

द्वितीयायामित्येव । नामादेशमाचष्टे । नामग्राहमाह्वयति ।

द्वितीयान्त नामन् उपपद में रहते आङ् पूर्वक दिश् एवं आङ् पूर्वक ग्रह् से णमुल् प्रत्यय होता है । नामादेशमाचष्टे । नामग्राहमाह्वयति ।

३३८१ अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ ३।४।५९।

अयथाभिप्रेताख्यानं नाम अप्रियस्योच्चैः प्रियस्य च नीचैः कथनम् । उच्चैःकृत्य, उच्चैःकृत्वा, उच्चैःकारमप्रियमाचष्टे । नीचैः कृत्य, नीचैःकृत्वा नीचैःकारं प्रियं ब्रूते ।

अव्ययशब्द उपपद में रहने पर अयथाभिप्रेत आख्यान में कृञ् से क्त्वा एवं णमुल् होता है । अप्रिय को उच्च स्वर से एवं प्रिय घटना को नीच स्वर से कथन को अयथाभिप्रेत कहते हैं । उच्चैः कृत्य, उच्चैः कृत्वा । उच्चैः कारम् अप्रियमाचष्टे । नीचैः कृत्य-नीचैः कृत्वा ।

३३८२ तिर्यच्यपवर्गे ३।४।६०।

तिर्यक्छब्द उपपदे कृञः क्त्वाणमुलौ स्तः समाप्तौ गम्यायाम् । तिर्यक्कृत्य गतः । तिर्यक्कारम् । समाप्य गत इत्यर्थः । 'अपवर्गे' किम् ? तिर्यक् कृत्वा काष्ठं गतः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समाप्ति अर्थ में तिर्यक् शब्द उपपद रहते कृञ् धातु से क्त्वा एवं णमुल् होता है। तिर्यक् कृत्य। तिर्यक् कृत्वा। तिर्यक्कारं गतः = कार्य समाप्त कर वह गया।

३३८३ स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः ३।४।६१।

मुखतःकृत्य गतः, मुखतः कृत्वा, मुखतःकारम्। मुखतो भूय, मुखतो भूत्वा, मुखतो भावम्।

तस् प्रत्ययान्त स्वाङ्गवाचक उपपद रहते भू धातु से क्त्वा एवं णमुल् होता है। मुखतः कृत्य। मुखतः कृत्वा। मुखतः कारम्। मुखतोभूय। मुखतो भूत्वा। मुखतोभावम्।

३३८४ नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे ३।४।६२।

नाधार्थप्रत्ययान्ते च्व्यर्थविषये उपपदे कृभुवोः क्त्वाणमुलौ स्तः। अनाना नाना कृत्वा नानाकृत्य, नानाकृत्वा, नानाकारम्। विनाकृत्य, विनाकृत्वा विनाकारम्। नानाभूय, नानाभूत्वा, नानाभावम्। अनेकं द्रव्यमेकं भूत्वा एकधाभूय, एकधाभूत्वा, एकधाभावम्। एकधाकृत्य, एकधाकृत्वा, एकधाकारम्। प्रत्ययग्रहणं किम्? हिरुक्कृत्वा। पृथग्भूत्वा।

अभूत तद्भावरूप च्व्यर्थ विषय में ना धा प्रत्यान्त पद उपपद रहते एवं भू से क्त्वा एवं णमुल् होता है। नानाकृत्य। नानाकृत्वा। नानाकारम्। एकधाकृत्य एकधाकृत्वा। एकधाकारम् नानाभूय। नानाभूत्वा। नानाभावम्। हिरुक् कृत्वा यहां वर्जनार्थ हिरुक् है किन्तु नानार्थ प्रत्यय नहीं अतः इसकी प्रवृत्ति न हुई।

३३८५ तूष्णीमि भुवः ३।४।६३।

तूष्णींशब्दे उपपदे भुवः क्त्वाणमुलौ स्तः। तूष्णींभूय। तूष्णींभूत्वा। तूष्णींभावम्। भूग्रहणं कृञो निवृत्त्यर्थम्।

'तूष्णीम्' शब्द उपपद रहते भू धातु से क्त्वा एवं णमुल् होता है। कृञ् की निवृत्ति के लिए 'भू' ग्रहण यहां है। तूष्णीं भूय। तूष्णीं भूत्वा। तूष्णींभावम्।

३३८६ अन्वच्यानुलोम्ये ३।४।६४।

अन्वक्छब्दे उपपदे भुवः क्त्वाणमुलौ स्त आनुकूल्ये गम्यमाने। अन्वग्भूय आस्ते। अन्वग्भूत्वा, अन्वग्भावम्। अग्रतः पार्श्वतः पृष्ठतो वाऽनुकूलो भूत्वा आस्त इत्यर्थः। आनुलोम्ये किम्? अन्वग्भूत्वा तिष्ठति। पृष्ठतो भूत्वेत्यर्थः।

इत्युत्तरकृदन्तप्रकरणम्।

इत्थं लौकिकशब्दानां दिङ्मात्रमिह दर्शितम्।
विस्तरस्तु यथाशास्त्रं दर्शितः शब्दकौस्तुभे॥
भट्टोजिदीक्षितकृतिः सैषा सिद्धान्तकौमुदी।
प्रीत्यै भूयाद्भगवतोर्भवानीविश्वनाथयोः॥

इति श्रीभट्टोजिदीक्षितविरचितायां सिद्धान्तकौमुद्यामुत्तरार्धं समाप्तम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वक् शब्द उपपद रहते आनुकूल्य अर्थ में भू धातु से क्वा एवं णमुल् होता है। यहां 'अचः' से अकार लोप कर 'चौ' से दीर्घ में 'अनूचि' यही निर्देश उचित था। एवं पूर्व सूत्र में 'तिरश्चि' उचित था तथा 'प्रतीच' इति यत् विधायक सूत्र में निर्देश की तरह, शास्त्रोक्त कार्य अर्थवत् में होता है वह अर्थ लोक में प्रसिद्ध ही गृहीत होता है।

"अभिव्यक्तपदार्था ये स्वतन्त्रा लोकविश्रुताः। शास्त्रार्थस्तेषु कर्तव्यो न शब्देषु"।

इस न्याय से प्रसिद्धार्थक में शास्त्र-प्रवृत्ति होती है। अतः अनुकरण में प्रवृत्ति हुई अन्वचि ठीक ही है। यह किसी का मत है। इसको स्वीकार करने पर अनुकरण में इयङादि कार्य की अप्रवृत्ति होने से 'क्षियो दीर्घात्' यह निर्देश अनुपपन्न होगा, अतः-प्रकृतिवदनुकरणं भवति, न भवति यहां-न-भवति-पक्षावलम्बन से सूत्र निर्देश उपपन्न होता है यही समाधान उचित है। वह अग्रतः, पार्श्वतः एवं पृष्ठतः अनुकूल होकर रहता है इस अर्थ में अन्वग्भूय आस्ते। अन्वग्भूत्वा। अनुकूलता की अप्रतीति में अन्वग् भूत्वा तिष्ठति = पृष्ठतः भूत्वा स्थित वह रहता है।

इस प्रकार इस वैयाकरण-सिद्धान्त-कौमुदी रूप ग्रन्थ में लौकिक शब्दों का दिङ्मात्र प्रदर्शन दिखाया है, इनका विस्तार पूर्वक विवेचन शब्दकौस्तुभ में देखना चाहिए। यह वैयाकरण-सिद्धान्त-कौमुदी महा वैयाकरण श्री भट्टोजिदीक्षित की कृति है। यह भवानी एवं श्री विश्वनाथ की प्रीति के निमित्त हो जाय यह प्रार्थना है।

इस प्रकार श्री बालकृष्ण पञ्चोली विरचित सविमर्श रत्नप्रभा
हिन्दी व्याख्या में कृदन्त प्रकरण समाप्त।

* उत्तरार्ध समाप्त *

शुभम् भूयात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ वैदिक-प्रकरणम्

प्रथमोऽध्यायः

३३८७ छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम् १।२।६१।

द्वयोरेकवचनं वा स्यात्। पुनर्वसु नक्षत्रं, पुनर्वसू वा। लोके तु द्विवचनमेव।

छन्द में उद्भूत अवयव ज्योतिःसमुदाय बोधक पुनर्वसु से प्राप्त द्विवचन विषय में एकवचन विकल्प से होता है। लोक में तो द्वित्वसंख्याविशिष्ट संख्येयार्थ-प्रतिपादक पुनर्वसु से नित्य द्विवचनान्त ही प्रयोग रहता है। इस सूत्र में 'जात्याख्यायाम्' सूत्र से अन्यतरस्याम् की अनुवृत्ति है। "गां गताविव दिवः पुनर्वसू" यहाँ द्विवचन ही लोक में हुआ।

३३८८ विशाखयोश्च १।२।६२।

प्राग्वत्। विशाखा नक्षत्रम्। विशाखे वा।

वेद में विशाखा शब्द से द्विवचन में एकवचन विकल्प से होता है। विशाखा नक्षत्रम् विशाखे वा। अमरकोषकार तो 'राधा विशाखा' यह प्रयोक्ता द्विवचन की इच्छा नहीं करता है उस मत में सूत्र उदासीन ही है।

३३८९ षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा १।४।९।

षष्ठ्यन्तेन युक्तः पतिशब्दश्छन्दसि घिसंज्ञो वा स्यात्। क्षेत्रस्य॒ पतिना॒ व॒यम्। इह वेति योगं विभज्य छन्दसीत्यनुवर्तते। सर्वे विधयश्छन्दसि वैकल्पिकाः। तेन 'बहुलं छन्दसि' (सू० ३४०१) इत्यादिरस्यैव प्रपञ्चः। 'यचि भम्' (२३१)। नभोङ्गिरोमनुषां वत्युपसंख्यानम् (वा० १०५८)। नभसा तुल्यं नभस्वत्। भत्वाद्रुत्वाभावः। अङ्गिर॒स्वद॑ङ्गिरः। मनु॒ष्वद॑ग्ने। (उ०) 'जनेरुसिः' इति विहित उसिप्रत्ययो मनेरपि, बाहुलकात्। वृषण्वस्वश्वयोः (वा० १०५६)। वृष वर्षुकं वसु यस्य स वृषण्वसुः। वृषा अश्वो यस्यासौ वृषणश्वः। इहान्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य पदत्वे सति नलोपः प्राप्तो भत्वाद्वार्यते। अत एव 'पदान्तस्य' (१६८) इति णत्वनिषेधोऽपि न। 'अल्लोपोऽनः' (सू २३४) इत्यल्लोपो न। अनङ्क्त्वात्।

वेद में षष्ठी विभक्त्यन्त पद के साथ युक्त पतिशब्द की विकल्प घिसंज्ञा होती है। 'क्षेत्रस्य पतिना वयम्' यहां घित्व प्रयुक्त नाभाव 'आडो नाऽस्त्रियाम्' से हुआ। 'पतिः समास एव' से घिसंज्ञा समासाभाव से अप्राप्त थी इसने विकल्प से घिसंज्ञा की, जहां षष्ठ्यन्तयुक्त पति नहीं वहां इसकी अप्रवृत्ति है, यथा "मया पत्याजरदष्टिर्यथासः"। लोक में 'ग्रामस्य पत्ये' यही हुआ। यहां 'वा' यह विभक्त अंशकर इसमें छन्दसि की अनुवृत्तिकर सभी विधियाँ वेद में विकल्प होती है, बहुलं छन्दसि' वह 'वा' योग विभाग कृत्स्नार्थ का अनुवादक मात्र ही है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यचि मम्—कप् प्रत्ययावयिक सर्वनाम स्थान भिन्न अजादि प्रत्यय या यकारादिप्रत्यय उनके परमें रहते पूर्व प्रकृति की मसंज्ञा होती है।

इसी सूत्र पर वार्तिक यह है नमस्, अङ्गिरस्, मनुष् इनकी मसंज्ञा होती है वति प्रत्यय पर में रहते। नमसा तुल्यं नमस्वत् यहां 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' से वति प्रत्यय कर तदिदान्त तदादिनिमित्तक प्रातिपदिक संज्ञा तत्प्रयुक्त 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से तृतीया विभक्ति का लुक् हुआ उसका प्रत्ययलक्षणप्रयुक्त पदत्वनिमित्तक सकारको रुत्वनिषेधार्थ इसने पदसंज्ञा को बाधकर मसंज्ञा की मत्वात् रुत्व का अभाव हुआ। नमस्वत्। अङ्गिरसा तुल्यम् अधीते अङ्गिरस्वदङ्गिरः। यहां भी मसंज्ञा एवं रुत्वाभाव। मनुषा तुल्यं 'मनुष्वत् अग्ने' यहां मसंज्ञा से 'आदेशप्रत्यययोः' से षकार हुआ, पद संज्ञा में रुत्व प्राप्त था। बहून् अर्थांछाति पतदर्थक बहुच् ग्रहण से 'जनेरुसिः' से विहित उसि प्रत्यय मन् से भी हुआ मनुस् पत्व मनुष्वत्।

वसु वर्व अश्व शब्द पर में वृषन् की मसंज्ञा होती है। "वसु तोये धने मणौ" यह कोष है वृष = वर्षकं वसु = धनं यस्य स वृषन् = वसु यहां अन्तर्वर्तिनी विभक्ति का प्रत्यय-लक्षण से आश्रय कर पद संज्ञा कर नकार लोप प्राप्त था किन्तु इसने मसंज्ञा की अतः नलोप न हुआ। एवं यह नकार पदचरमावयव नहीं है अतः 'पदान्तस्य' सूत्र से णत्व निषेध न हुआ। वृषण्वसुः। वृषा अश्वो यस्य सः यहां भत्व से नलोपाभावः। 'अल्लोपोऽनः' सूत्र अङ्गाधिकारीय है, यहां अङ्ग संज्ञा के अभाव से अल्लोपोऽनः से अकार का अभाव हुआ।

३३९० अयस्मयादीनि छन्दसि १।४।२०।

एतानि छन्दसि साधूनि। भपदसंज्ञाधिकाराद्यथायोग्यं संज्ञाद्वयं बोध्यम्। तथा च वार्तिकम्—उभयसंज्ञान्यपीति वक्तव्यमिति (वा १०६०)। स सुष्ठुभा स ऋक्वता गणेन, यहां ऋच् के चकार को पदत्व निबन्धन कुत्व 'चोः कुः' से एवं मसंज्ञा प्रयुक्त जश्त्व का अभाव हुआ। जश्त्व के लिए प्राप्त पद संज्ञा का मसंज्ञा ने बाध किया, मसंज्ञा विधान सामर्थ्य से। "नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु" वाचाम् इवाः = प्रभवस्तेभ्यनेनं विद्वांसं न हिन्वन्ति = विवदितुं न गच्छन्ति। यहां पदसंज्ञानिमित्तक चकार का जश्त्व से तकार हुआ, एवं मसंज्ञाप्रयुक्त 'चोः कुः' से कुत्वाभाव से गकार न हुआ।

ते प्राग्धातोः—गतिसंज्ञक एवं उपसर्ग संज्ञक का धातु के पूर्व प्रयोग करना चाहिये।

३३९१ छन्दसि परेऽपि १।४।८१।

वेद में गतिसंज्ञक एवं उपसर्ग संज्ञक शब्द धातु से पर भी प्रयुक्त होते हैं।

३३९२ व्यवहिताश्च १।४।८२।

हरिभ्यां याह्योक आ। आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धातु से व्यवहित भी गतिसंज्ञक एवं उपसर्गसंज्ञक शब्द प्रयुक्त होते हैं। हरिभ्यां याह्योक आ। आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि। यहां 'आयाहि' प्राप्त था क्योंकि 'ते प्राग्धातोः' सूत्र में संज्ञा नियम पक्ष है—धातु के पूर्व रहने पर ही गति एवं उपसर्ग संज्ञा होती है। प्रयोगनियम पक्ष में गति संज्ञा उपसर्ग संज्ञा नियम्य नहीं, वे स्वतन्त्र है केवल गति संज्ञक एवं उपसर्ग संज्ञक शब्दों का धातु से पूर्व ही प्रयोग होता है।

३३९३ इन्धिभवतिभ्यां च १।२।६।

आभ्यां परोऽपिल्लिट् कित् स्यात्। समीधे दस्युहन्तमम्। पुत्र इधे अथर्वणः। बभूव। इदं प्रत्याख्यातम्। इन्धेश्छन्दोविषयत्वाद् भुवो वुक्लो नित्यत्वात्ताभ्यां लिटः किद्वचनानर्थक्यमिति वा। इति प्रथमोऽध्यायः।

वेद इन्ध् एवं भू धातु से पर लिट् कित् होता है। समीधे दस्यु इन्तमम्। ञि इन्धी दीप्तौ लिट् कित् होने से 'अनिदिताम्' सूत्र से नकार लोप हुआ। संयोग से पर होने से 'असंयोगात्' सूत्र से 'असंयोगात्' सूत्र से अप्राप्त कित्त्व का इसने बोधन किया। बभूव में कित्त्व से वृद्धि का अभाव है अतः वुक् हुआ। पित्त्व के कारण 'असंयोगात्' से अप्राप्त कित्त्व का इसने बोधन किया।

इस सूत्र का खण्डन प्रकार—इन्धि धातु छन्दोविषयक ही है इस कारण छन्दसि दृष्टानुविधिः से कार्य निर्वाह होगा। एवं भू धातु को नित्यत्व के कारण वुक् होगा ही पुनः कित्त्वबोधन इन दोनों से पर लिट् को व्यर्थ है अर्थात् इस सूत्र की आवश्यकता नहीं है।

* वैदिक प्रक्रिया में प्रथम अध्याय समाप्त *

द्वितीयोऽध्यायः

३३९४ तृतीया च होश्छन्दसि २।३।३।

जुहोतेः कर्मणि तृतीया स्याद् द्वितीया च। यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति। अग्निहोत्रशब्दोऽत्र हविषि वर्तते। 'यस्याग्निहोत्रमधिश्रितममेध्यमापद्येत' इत्यादि प्रयोगदर्शनात्। अग्नये हूयत इति व्युत्पत्तेश्च। यवाग्वाख्यं हविर्देवतोद्देशेन त्यक्त्वा प्रक्षिपतीत्यर्थः।

वेद में हु धातु वाच्य क्रियाजन्य फलाश्रय रूप जो कर्म तद्वाचक शब्द से तृतीया एवं द्वितीया विभक्ति आती है। यवागू शब्द से तृतीया, अग्निहोत्र से द्वितीया, अग्निहोत्र शब्द हविः वाचक है। यवागू से अभिन्न हविः को वह अग्नि में प्रक्षेप करता है। यहां दोनों शब्द तृतीया एवं द्वितीया विभिन्न विभिन्न विभक्तियों से अवरुद्ध है किन्तु भिन्नार्थक विभक्तियों से अवरुद्ध नहीं है है अतः "नामार्थयोरभेदान्वयः" से अभेदान्वय हुआ। भाष्यकार ने इस सूत्र का प्रत्याख्यान किया है। अग्निहोत्र शब्द अग्नि में भी है।

"यस्य अग्निहोत्रं प्रज्वलितम्" यहां अग्नि अर्थ है। हूयतेऽस्मिन् इस व्युत्पत्ति से। जब यवागू शब्द से तृतीया तब अग्निहोत्र शब्द अग्नि में है। एवं हु धातु प्रीणन में है। अर्थ यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुआ कि-यवागू से अग्नि को वह प्रसन्न करता है। यवागू शब्द का जब द्वितीया तब अग्निहोत्र शब्द हविःपरक ही है, एवं जुहोति प्रक्षेपणार्थक है—यवागूरूप हवि को वह अग्नि में प्रक्षेप करता है। यस्य अग्निहोत्रम् = अग्नि पर पाकार्थ रक्खा हुआ। हविः जब अपवित्र हो जाय यहां अग्निहोत्र हविःपरक हैं। अग्नि देवता को उद्देश्य कर जो दिया जाय उसे अग्निहोत्र कहते हैं यह अग्निहोत्र शब्द की व्युत्पत्ति है।

३३९५ द्वितीया ब्राह्मणे २।३।६०।

ब्राह्मणविषये प्रयोगे दिवस्तदर्थस्य कर्मणि द्वितीया स्यात्। षष्ठ्यपवादः। गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः।

ब्राह्मण विषय में = मन्त्रभिन्न वैदिक प्रयोगों में द्यूतार्थक एवं क्रयविक्रय-व्यवहारार्थक दिवधातु-वाच्य क्रियाजन्य फलाश्रय रूप जो कर्म तद्वाचक शब्द से द्वितीया विभक्ति होती है। यह 'दिवस्तदर्थस्य' सूत्रप्राप्त षष्ठी का अपवाद है। सोपसर्ग दिव को वेद में 'विभाषोपसर्गे' से व्यवस्थित विभाषा से भी सिद्ध है किन्तु यह सूत्र निरुपसर्गक दिव के कर्म से द्वितीयार्थ है। गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः।

३३९६ चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि २।३।६२।

षष्ठी स्यात्। 'पुरुषमृगश्चन्द्रमसः। गोघाकालकादार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्' वनस्पतिभ्य इत्यर्थः। षष्ठ्यर्थे चतुर्थीति वाच्यम् (वा १५०६) या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः।

वेद में चतुर्थ्य में बहुल करके षष्ठी विभक्ति होती है। 'वनस्पतिभ्यः' प्राप्त या षष्ठी से 'वनस्पतीनाम्' हुआ। * षष्ठ्यर्थ में चतुर्थी होती है। 'तस्याः' यहां 'तस्यै' हुआ। "खर्वो ह्रस्वश्च वामनः" अमरकोषकारोक्तिः।

३३९७ यजेश्च करणे २।३।६३।

इह छन्दसि बहुलं षष्ठी। घृतस्य घृतेन वा यजते।

वेद में यह धातु के करण में विकल्प षष्ठी होती। घृतस्य घृतेन वा यजते।

३३९८ बहुलं छन्दसि २।४।३९।

अदो घस्लादेशः स्यात्। घस्तान्नूनम्। लुङि 'मन्त्रे घस' (सू० ३४०२) इति च्लेर्लुक्। अडभावः। सग्धिश्च मे।

वेद में अद्धातु से विकल्प घस्लृ आदेश होता है। घस्तात्-लुङ् में 'मन्त्रे घसह्वर' से च्लि का लुक् एवं अडागम का अभाव हुआ। सग्धिश्च मे। अद्धातु से क्विन् प्रत्यय, घस्लादेश, "घसिभसोर्हलि च" से उपधालोप, 'झलो झलि' से सकार लोप, 'झषस्तथोः' सूत्र से धकार, धकार के स्थान में गकार, समान शब्द से सधि का समास, समान को स आदेश हुआ। यहां जश्त्व कर्तव्य में अकार लोप की प्राप्ति स्थानिवद्भाव का 'न पदान्त' से निषेध हुआ। सग्धिशब्द खीलिङ्ग है सहभोजन में यह प्रयुक्त है। "सग्धिः स्त्री, सहभोजनम्" यह कोष है।

३३९९ हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च छन्दसि २।४।२८।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वन्द्वः पूर्ववल्लिङ्गः। हेमन्तश्च शिशिरश्च हेमन्तशिशिरौ। अहोरात्रे। 'अदि-प्रभृतिभ्यः शपः' (सू० २४२३)।

वेद में 'हेमन्तशिशिरौ' एवं 'अहोरात्रे' ये द्वन्द्व समास में पूर्ववत् लिङ्गयुक्त होते हैं। यह 'परवत्' सूत्र का बाधक है। हेमन्तश्च शिशिरश्च हेमन्तशिशिरौ। अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रे।

अदादि गणपठित धातुओं से विहित कर्त्रर्थक शप् का लुक् होता है। इसी सूत्र पर वक्ष्यमाण सूत्र है—

३४०० बहुलं छन्दसि २।४।७३।

वृत्रं हनति वृत्रहा। अहिः शयतिः शयत उप पृक्पृथिव्याः। अत्र लुक् न। अदादिभिन्नेऽपि क्वचिल्लुक्। त्राध्वं नो देवाः। 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (सू० २४८६)।

वेद में बहुल करके अदादिगणस्थित धातुओं से पर शप् का लुक् होता है। वृत्रं हन्ति वृत्रहा यहां शप् का लुक् हुआ। "अहिः शयत उपपृक् पृथिकाः" यहां शप् का लुक् न हुआ। अदादि भिन्न में भी लुक् क्वचित् होता है, यथा त्राध्वं नो देवाः।

जुहोत्यादि गणपठित धातुओं से शप् का श्लु होता है।

३४०१ बहुलं छन्दसि २।४।७६।

दाति प्रियाणि चिद्वसु। अन्यत्रापि। पूर्णां विवष्टि।

वेद में जुहोत्यादि गणीय धातु से पर शप् का श्लु होता है बहुल करके। 'दाति प्रियाणि चिद्वसु' लोक में 'ददाति' होता है। जुहोत्यादि भिन्न में भी श्लु होता है। पूर्णां विवष्टि। यहां अदादिस्थ वश् धातु से श्लु एवं द्वित्व भूलामित सूत्रस्थ 'बहुलं छन्दसि' से अभ्यास को इकार एवं 'त्रश्च' से षकार, तकार को टकार हुआ।

३४०२ मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः २।४।८०।

एभ्यो लेर्लुक् स्यान्मन्त्रे। अक्षन्नमीमदन्त हि। घस्लादेशस्य 'गमहन' (सू० २३६३) इत्युपधालोपे 'शासिवसि' (२४१०) इति षः। मोह्लर्मित्रस्य। धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य। 'नशेर्वा' (सू ४११) इति कुत्वम्। सुरुचो वेन आवः। मा न आधक्। आदित्याकारान्तग्रहणम्। आ प्रा वावापृथिवी। परावर्भारु-भृद्यथा। अक्रन्नुषासः। त्वे रयिं जागृवांसो अनुग्मन्। मन्त्रग्रहणं ब्राह्मण स्याप्युपलक्षणम्। अज्ञत वा अस्य दन्ताः। विभाषानुवृत्तेर्नेह। न ता अगृभ्णन्नजनिष्ट हि षः।

इति द्वितीयोऽध्यायः

मन्त्र में अदस्थानिक घस्, कौटिल्यार्थक ह्वर, अदर्शनार्थक नश्, वरणार्थक वृञ्, एवं संभक्ति अर्थबोधक वृक्, भस्मीकरणार्थक दह्, आकारान्त धातु, वर्जनार्थक वृजी, डुकृञ् करणे गत्यर्थक गम्लृ, प्रादुर्भावार्थक जन् इन धातुओं से पर च्लि प्रत्यय का लुक् होता है। अक्षन्—अद्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से लुङ् झि, अन्तादेश वस् आदेश, अडागम, 'गमहन' से उपधास्थ अकार का लोप, 'शासिवसि' से षकारादेश च्लि का लुक्। माङ्क्षः—इति—माङ् उपपदक हृ से लुङ् तिप्, 'हृतश्च' से इकार लोप, च्लि लुक्, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण, रपर, 'इलश्यार्प्' से तकार लोप माङ्योग में अडागमाभाव है। प्रणगिति—प्रपूर्वक नश् से लुङ् तिप् इकार लोप तकार लोप च्लि लुक् 'उपसर्गादसमासे' से णत्व, न शेर्वा से कुत्व पक्ष में। षत्व, जश्त्व से डकार है। नड् इति। आधः वृञ् का रूप है। आधृ लुङ् सिप् च्लि लुक् गुण रपर विसर्ग हुआ। आधग् इति—आङ् पूर्वक दृङ् लुङ् च्लि लुक्, 'दादेर्धातोर्धः' से धकार 'एलाचो वशो' से भष्भाव। आत से आकारान्त धातुओं का यहां ग्रहण है। आप्रा इति—आङ् पूर्वक प्रा लुङ् सिप् च्लि लुक् यत्व यकारलोप। परापूर्वक वृज् लुङ् तिप्, त, च्लि, लुक् उपधागुण, 'चोः कुः' से कुत्व—परावर्ग् इति। अक्रन् कृञ् लुङ् अडागम, झि स्थिरप्रयुक्त गुणाभाव अन्तादेश संयोगान्तलोप रुत्व। अनुग्मन्—अनुपूर्वक गम् लुङ्, झि, 'गमहन' से उपधालोप, च्लि लुक् अडागमाभाव। मन्त्रग्रहण, ब्राह्मण का भी उपलक्षण है, संहिता में रूढ यहां नहीं है। अज्ञत—अन् लुङ् त च्लि लुक् अडागम 'गमहन' से उपधालोप चुत्व 'ज्ञ'। पूर्वोक्त प्रयोग वेद में ही हुए।

लोक में अघसत्, अहार्षीत्, अनशत्, अवारीत्, अधाक्षीत्, अप्रासीः, अवर्षीत्, अकार्षीत्, अगमत्, अजनि, अजनिष्ट इति।

वैदिक प्रकरण में द्वितीयाध्याय समाप्त

तृतीयोऽध्यायः

३४०३ अभ्युत्सादयां प्रजनयां चिकयां रमयामकः पावयांक्रियाद्विदामक्रन्निति च्छन्दसि ३।१।४२।

आद्येषु चतुर्षु लुङि आम् अक इत्यनुप्रयोगश्च। अभ्युत्सादयामकः। अभ्युदसीषददिति लोके। प्रजनयामकः। प्राजीजनदित्यर्थः। चिकयामकः। अचैषीदित्यर्थे चिनोते राम् द्विर्वचनं कुत्वं च। रमयामकः। अरीरमत्। पावयांक्रियात्। पाव्यादिति लोके। विदामक्रन्। अवेदिषुः।

वेद में अभ्युत्सादयामकः, प्रजनयामकः, चिकयामकः, रमयामकः, पावयांक्रियात्, विदामक्रन् ये निपातन से सिद्ध होते हैं। 'षदॢ विशरणगत्यवसादनेषु' 'जनी प्रादुर्भावे' 'रमु क्रीडायाम्' इन ण्यन्त धातुओं से लुङ् में आम् प्रत्यय निपातन से लब्ध है, चिञ् चयने शुद्ध धातु से आम् प्रत्यय, कुत्व निपातित है। अक का तो इन चारों से अनुप्रयोग है लुङ् में। कृञ् से लुङ्, तिप्, च्लि, 'मन्त्रे' से लुक्, गुण, इलश्यार्प् से तकारलोप अडागम से 'अकः' है। आमः से लुङ् का लुक् अभ्युत्सादयामकः लोक में सद् णिच् लुङ् च्लि, चङ् उपधावृद्धि 'णौचङ्युपधायाः' से ह्रस्व, चङि से द्वित्व, इकादिशेष, सन्वद्भाव, इकार, दीर्घ अभ्युदसीषद् इति। इस सूत्र में 'विदाकुर्वन्तु' सूत्र से 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति है, अतः पूर्वोक्त निपातन विकल्प से होते हैं। अतः लोकवत् वेद में भी पाक्षिक रूप होते ही हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रजनयामकः वेद में वैकल्पिक रूप पक्ष में एवं लोक में प्राजीजनत्। चिकथामकः—पक्ष में अचैषीत्। वेद में चिष् से आम्, द्विर्वचन, कुत्व निपातन से हुआ। रमयामकः। अरीरमत् लोक एवं वेद में पक्ष में। पावयांक्रियात् यहां पूधातु ण्यन्त से आशीर्वाद में लिङ् आम् क्रियात् का अनुप्रयोग है, पाव्यात् पक्ष में। 'क्रियात्' की साधनिका प्रसिद्ध ही है रिङ् इयङ् आदि। विदामकन् विद् लुङ् आम्, लुङन्त कृ का अनुप्रयोग है। अवेदिषुः पक्ष में एवं लोक में।

३४०४ गुपेश्छन्दसि ३।१।५०।

च्लेश्चङ्वा। गूहा॑नजूगुपतं युवम्। अगौप्तमित्यर्थः।

गुप् धातु से च्लि के स्थान में विकल्प चङ् आदेश होता है। अजूगुपतम् गुप् रक्षणे 'तस्थस्थमिपाम्' से थस् को तम्, तुजादीनां 'दीर्घोऽभ्यासस्य' से अभ्यास को दीर्घ पक्ष में अगौप्तम्, ऋदित् से इडभावपक्ष में हलन्तलक्षणा वृद्धि कर 'झलो झलि' से सकार लोप। इट् पक्ष में 'अगोपिष्टम्', आय प्रत्यय पक्ष में अगोपायिष्टम्, चार रूप वेद में लोक में चङ् रहित तीन रूप हुए।

३४०५ नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः ३।१।५१।

च्लेश्चङ् न। मा त्वा॑यतो जरि॒तुः काम॑नूनयीः। मा त्वाऽग्निर्ध्व॑नयीत्।

ऊन परिहाणे, ध्वन शब्दे, इल प्रेरणे, अर्द गतौ याचने च, इन ण्यन्त धातुओं से पर च्लि प्रत्यय को चङ् नहीं होता है। 'णिश्रिद्रु' सूत्र से प्राप्त चङादेश का यह अपवाद है इनमें ऊन एवं इल चुरादि ण्यन्त ये दोनों है। ध्वन भी अदन्त चुरादि एवं नान्त घटादिक है अर्द धातु 'हेतुमति च' से णिच् प्रत्ययान्त है। मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः = स्तुतिपूर्वक आप की इच्छा करने वाला जो मैं हूँ मेरी इच्छा को आप न्यून न करें। त्वामायतः = त्वामिच्छतः जरितुः = स्तोतुः मम कामम् = अभिलाषं मा ऊनयीः ऊनं मा कार्षीरित्यर्थः। लोप को एकवचन प्र० पु० औनिनत् या सिद्धान्त पक्ष में औनिनत् भाषा में मध्यम पु० ए० व० में औनः या औनिः। मा त्वाग्निर्ध्वनयीत्। ध्वनयीत्—तिप्, 'न माङ्' से अट् का प्रतिषेध है। लोक में घटादि यह है, अदिध्वनत्। चुरादि का अदध्वनत्, या अदिध्वनीत् सिद्धान्त पक्ष में इस पक्ष का विस्तृत व्याख्यान 'ऊन परिहाणे' चुरादि की व्याख्या में स्पष्ट कर चुके हैं उसे देखिए, कौमुदीकार का खण्डनपूर्वक माण्यादि प्रामाण्य से सिद्ध पक्ष सिद्धान्त है। लोक में एलयीत्। आर्दयीत्। आर्दिदत्। ऐलिलत् लोक में।

३४०६ कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि ३।१।५९।

च्लेरङ् वा। इदं तेभ्यो॑ऽकरं॑ नमः। अमरत्। अदरत्। यत्सानो॒ः सानु॒मारु॑हत्।

वेद में कृ, मृ, दृ, रुह, इनसे उत्तर च्लि प्रत्यय को विकल्प अङ् होता है। इदं तेभ्योऽकरं नमः। इसमें 'च्लि लुङि' से च्लि की, 'अस्यतिवक्ति' से अङ् की एवं 'हरितो वा' से अङ् की अनुवृत्ति है। अकरम्—डुकृञ् करणे, मिप् ङ्, 'ऋदृशोऽङि' से गुण हुआ। अमरत्—, 'मृङ् प्राणत्यागे' व्यत्यय से परस्मैपदी हुआ। अदरत्—दृ विदारणे। अरुहत्—रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च। लोक में अकार्षीत्। अभूत। अदारीत्। अरुक्षत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३४०७ छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्या-ध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृ-डानि ३।१।१२३।

कृन्ततेर्निस्पूर्वात्क्यपि प्राप्ते ण्यत्। आद्यन्तयोर्विपर्यासो, निसः षत्वं च। निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः। देवशब्दे उपपदे ह्वयतेर्जुहोतेर्वा क्यप्, दीर्घश्च। स्पर्धन्ते वा ऽ देवहूये। प्र उत् आभ्यां नयतेः। क्यप्। प्रणीयः। उन्नीयः। उत्पूर्वाच्छिषेः क्यप्। उच्छिष्यः। मृङ्स्तृञ्धृभ्यो यत्। मर्यः। स्तर्यो। स्त्रिया-मेवायम्। ध्वर्यः। खनेर्यण्यतौ। खन्यः। खान्यः। यजेर्यः। शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे देवयज्यायै। आङ्पूर्वात्पृच्छेः। क्यप्। आपृच्छ्यं घृतं वाज्यर्षति। सीव्यतेः। क्यप् षत्वं च। प्रतिषीव्यः। ब्रह्मणि वदेर्ण्यत्। ब्रह्मवाद्यम्। लोके तु 'वदः सुपि क्यप् च' (सू० २८५४) इति क्यब्ण्यतौ। भवतेः स्तौतेश्च ण्यत्। भाव्यः। स्ताव्यः। उपपूर्वाच्चिनोतेर्ण्यत्, आयादेशश्च पृडे उत्तरपदे। उपचाय्यपृडम्। हिरण्य इति वक्तव्यम्। (वा १।४५) उपचेयपृडमन्यत्। 'मृड सुखने' 'पृड चे'त्यस्मादिगुपधलक्षणः कः।

वेद में निष्टर्क्य, देवहूय, प्रणीय, उन्नीय, उच्छिष्य, मर्य्य, स्तर्य्या, ध्वर्य्य, खन्य, खान्य, देवयज्य, आपृच्छ्य, प्रतिषीव्य, ब्रह्मवाद्य, भाव्य, स्तव्य, उपचाय्य, पृड ये निपातन से सिद्ध होते हैं।

निपूर्वक कृन्त से क्यप् प्राप्त था उसको बाध कर ण्यत् हुआ, एवं आदि वर्ण तथा अन्त्यवर्ण का विपर्यास हुआ, तथा निस् के सकार को षकार हुआ—पशुकर्मक इच्छाजनक व्यापारकर्ता पुरुष निष्टर्क्य का चयन करें यह वाक्यार्थ है। यहां क्यप् प्रत्यय 'ऋदुपधाच्च' सूत्र से प्राप्त था। स्पर्धन्ते वा ऽ देवहूये। देवपूर्वक ह्वे या हु से क्यप्, पूर्व स्वर का दीर्घ हुआ। प्रपूर्वक नी धातु से क्यप् प्रणीयः उन्नीयः उत् पूर्वक नी से क्यप्। उच्छिष्यः—उत्पूर्वक शिष् से क्यप्। मृङ् से यत् मर्य्यः स्तृञ् से यत्, टाप् स्तर्या ध्व से यत् ध्वर्य्यः। खन् यत्—खन्यः। खन् में ण्यत्—खान्यः। देवपूर्वक यज् से यत् टाप् देवयज्यायै। आङ् पूर्वक प्रच्छ् से क्यप्, सम्प्रसारण पूर्वरूप आपृच्छ्यम्। प्रतिसिव् से क्यप्, षकार प्रतिषीव्यः। ब्रह्मपूर्वक वद् से ण्यत्—ब्रह्मवाद्यम्। लोक में तो 'वदः सुपि क्यप् च' क्यप् एवं यत् होता है। भू से ण्यत्—भाव्यः। स्तु से ण्यत् स्ताव्यः। उत्पूर्वक चि से ण्यत आयादेश होता है पृड शब्द उत्तरपद में रहते। उपचाय्य पृडम्, यह स्वर्ण-वाच्य रहने पर ही होता है। सुवर्णभिन्न वाच्यार्थ में 'उपचेयपृडम्' होता है। 'मृड सुखने पृड च'। इनसे 'इगुपधज्ञा' से कप्रत्यय कित्त्वात् लघूपधगुण का अभाव।

३४०८ छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् ३।२।२७।

एभ्यः कर्मण्युपपदे इन् स्यात्। ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिम्। उत नो गोषणिं धियम् ये पथां पथिरक्षयः। चतुरक्षो पथिरक्षी। हविर्मथीनामभि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेद में कर्मवाचक शब्द उपपद में रहने पर वन, षण, रक्ष, मन्थ् इनसे इन् प्रत्यय होता है। ब्रह्मवनिम्। क्षत्रवनिम्। गोषणिम्। पथिरक्षयः। हविर्मथीनाम्। वन षण संभक्तौ। रक्ष पालने। मन्थ विलोडने। क्रमेण—ब्रह्म वनति, क्षत्रं वनक्ति, गां सनति, पन्थानं रक्षयति, पन्थानं रक्षते वा, हविर्मन्थति यह विग्रह है। इस सूत्र में 'स्तम्बशकृतोरिन्' से इन् की यहां अनुवृत्ति है। यहां भ्वादि ही वन् एवं षण् का ग्रहण है, सानुबन्धक वनु, षणु याचन एवं दानार्थक क्रमशः है उनका ग्रहण नहीं है।

३४०९ छन्दसि सहः ३।२।६३।

सुप्युपपदे सहेर्ण्विः स्यात्। पृतनाषाट्।

कर्मवाचक उपपदक सह् से वेद में ण्वि प्रत्यय होता है। 'मन्त्रे ण्विः' से ण्वि की अनुवृत्ति यहां है, यह मर्षणे धातु है। तुरासाहम् लोक में प्रयोग जो दीख पड़ता है, वह ण्यन्त सह धातु से क्विप् प्रत्ययान्त है। पृतनाषाट् में सकार को षकारादेश 'सहेः साडः सः', से हुआ।

३४१० वहश्च ३।२।६४।

प्राग्वत्। दित्यवाट्। योगविभाग उत्तरार्थः।

कर्मवाचक शब्दोपपदक वह् से णिप्रत्यय होता है। दित्यवाट्। यह योगविभाग उत्तरसूत्रार्थ है। अर्थात् भिन्न सूत्रकरण केवल उत्तर सूत्रों में वह् मात्र की अनुवृत्यर्थ है।

३४११ कव्यपुरीषपुरीष्येषु ण्युट् ३।२।६५।

एषु वहेर्ण्युट् स्याच्छन्दसि। कव्यवाहनः। पुरीषवाहनः। पुरीष्यवाहनः।

वेद में कव्य, पुरीष, पुरीष्य इनसे पर वह् से ण्युट् होता है। कव्यवाहनः। पुरीषवाहनः। पुरीष्यवाहनः।

३४१२ हव्येऽनन्तःपादम् ३।२।६६।

अग्निश्च हव्यवाहनः। पादमध्ये तु 'वहश्च' (सू ३४१०) इति ण्विरेव। हव्यवाळग्निरजरः पिता नः। यदि पाद के मध्य में न हो तो वेद में हव्य से पर वह् से ण्युट् प्रत्यय होता है। हव्य वाहनः। पाद मध्य में तो 'वहश्च' से ण्विप्रत्यय ही होता है। यथा हव्यवाळग्निरजरः पिता नः। दो स्वरों के मध्य में प्राप्त हो तो डकार को ळ होता है ऐसा वेद व्याकरण = प्रातिशाख्य में प्रसिद्ध है।

३४१३ जनसनखनक्रमगमो विट् ३।२।६७।

'विड्वनोः' (सू २९८२) इत्यात्त्वम्। अब्जाः। गोजाः। गोषा इन्दो नृषा असि। 'सनोतेरनः' (सू ३६४५)। इति षत्वम्। इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्। आ दधिक्राः शवसा पञ्चकृष्टीः। अग्रेगाः।

वेद में उपसर्गपूर्वक जन्, सन्, खन्, क्रम्, गम् इनसे विट् प्रत्यय होता है। 'विड्वनोः' सूत्र से आकार कर के अब्जाः। गोजाः। गोषाः। यहां 'सनोतेरनः' से षकारादेश हुआ।

बिसखाः। दधिक्राः। अग्रेगाः। यहां 'इकन्ताः संज्ञायाम्' से सप्तमी का अलुक् हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३४१४ मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् ३।२।७१।

श्वेतवहादीनां डस्पदस्येति वक्तव्यम् । (वा २०३५-३६) यत्र पदत्वं भावि तत्र ण्विनोऽपवादो डस् वक्तव्य इत्यर्थः । श्वेतवाः । श्वेतवाहौ । श्वेतवाहः । उक्थानि उक्थैर्वा शंसति उक्थशा यजमानः । उक्थशासः । पुरो दाश्यते दीयते पुरोडाः ।

मन्त्र में श्वेत उक्थ, पुरस्, पूर्व में रहते क्रम से वह्, शंस धातु, दाश्, इनसे पर ण्विन् प्रत्यय होता है, तात्पर्य यह है कि कर्तृवाचक श्वेत पूर्वक वह् से कर्म कारक में ण्विन् प्रत्यय । कर्म या कारक वाचक उक्थ से पर शंस् से ण्विन् प्रत्यय तथा धातु के नकार का लोप होता है । पुरस् शब्द उपपद में रहते दाश् धातु से कर्मकारक में ण्विन् प्रत्यय एवं दकार को डकार आदेश होता है । श्वेतवाहादि शब्दों को जहां पदत्व होने वाला हो वहां ण्विन् को बाधकर डस् प्रत्यय होता है । यथा श्वेताः एनं वहन्ति = श्वेतवाः । यजमानः—उक्थानि या उक्थैः शंसति यहां उक्थशाः । दानकर्म हविः अर्थ में पुरो दाश्यते = दीयते पुरोडाः ।

३४१५ अवे यजः ३।२।७२।

अवयाः । अवयाजौ । अवयाजः ।

अवपूर्वक यज् से ण्विन् प्रत्यय मन्त्र में होता है । अवयाः । ण्विन् को बाधकर पदान्तत्वभावी में डस् अन्यत्र ण्विन् ।

३४१६ अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च ८।२।६७।

एते सम्बुद्धौ कृतदीर्घा निपात्यन्ते । चादुक्थशाः ।

मन्त्र में अवयाः, श्वेतवाः, पुरोडाः ये तीन सम्बुद्धि में कृतदीर्घत्वविशिष्ट निपातित है । सूत्रस्थ चकार से उक्थशाः यह भी होता है । 'अत्वसन्तस्य' सूत्र सम्बोधन में अप्रवृत्त है, अतः दीर्घ निपातन वेद में है ।

३४१७ त्रिजुपे छन्दसि ३।२।७३।

उपे उपपदे यजेर्विच् । उपयट् ।

उप उपपद रहते यज् धातु से विच् प्रत्यय मन्त्र में होता है । उपयट् ।

३४१८ आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च ३।२।७४।

सुप्युपसर्गे चोपपदे आदन्तेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये मनिनादयस्त्रयः प्रत्ययाः स्युः । चाद्विच् । सुदामा । सुधीवा । सुपीवा । भूरिदावा । घृतपावा । विच् । क्रीलालपाः । 'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्' (२६८) ।

सुबन्त या उपसर्ग उपपद रहते वेद में आकारान्त धातु से उत्तर मनिन् क्वनिप्, वनिप्, एवं चकार से विच् प्रत्यय होता है । सुदा मनिन्-मन् सुदामन् = सुदामा । सुधीवा, सुपीवा यहां क्वनिप् एवं 'घुमास्था' से ईकारादेश है वनिप्—घृतपावा । विच् में—क्रीलालम् = अमृतम् ।

"पयः क्रीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्" ।

यह अमरकारोक्ति है । क्रीलालं पिबति यहां पा से विच् प्रत्यय हुआ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३४१९ बहुलं छन्दसि ३।२।८८।

उपपदान्तरेऽपि हन्तेर्बहुलं किप् स्यात्। मातृहा। पितृहा। 'छन्दसि लिट्' (सू ३०६३)। भूतसामान्ये। अहं द्यावापृथिवी आ ततान। 'लिटः कानज्वा' (सू ३०६४)। 'कसुश्च' (सू ३०६५)। छन्दसि लिटः कानच्क्वसू वा स्तः। चक्राणा वृष्णि। यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुः। 'णेश्छन्दसि' (सू ३११७)। ण्यन्ताद्धातोश्छन्दसि इष्णुच् स्यात्तच्छीलादौ। वीरुधः पारयिष्णवः। 'भुवश्च' (सू ३११८)। अस्मात् केवलात्प्राग्वत्। भविष्णुः। छन्दसि अघशब्दात् परेच्छायां कयच उपसंख्यानम् (वा १६११)। 'क्याच्छन्दसि' (सू ३१५०)। उप्रत्ययः स्यात्। अघायुः। परजधिकारे जवसवौ छन्दसि वाच्यौ। (वा २२००)। जुवे याभिर्यूनः। ऊर्वोर्मे जवः। दुवस्य सवितुः सुवे।

ब्रह्म, भ्रूण, वृत्र इनसे भिन्न भी उपपद रहते वेद में हन् से किप् प्रत्यय होता है। भूतकालिक मातृकर्मक हनन क्रिया = प्राणवियोगजनक व्यापाररूपक्रियायाः कर्ता इस अर्थ में इससे किप् मातृहा। एवम् पितृहा। वेद में भूत सामान्य में लिट् होता है। यथा आ ततान। वेद में धातुओं से पर लिट् को विकल्प कानच् एवं कसु होता है। यथा चक्राणा वृष्णिम्। 'यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुः। यहां रा दाने, लिट् को कसु, 'वस्वेकाजाद्घसाम्' से इट् नञ् समास 'दीर्घादटि' वक्ष्यमाण सूत्र से नकार को रुत्व, 'आटोऽटि नित्यम्' से र से पूर्व अकार को अनुनासिकत्वविधान है। प्रसङ्ग में अघायुः परस्य अघम् = पापम् इच्छति दूसरे का अनिष्ट चिन्तनकर्ता में क्यच् प्रत्यय एवं 'क्याच्छन्दसि' से उकारादेश हुआ। वेद में परकी इच्छा में भी क्यच् प्रत्यय होता है। छन्द में लिट् कानच् एवं कसु होता है विकल्प से। परच् के अधिकार में जव एवं सव ये दो पद सिद्ध होते हैं, अर्थात् जु एवं सू धातु से 'ऋदोरप्' सूत्र से अप् प्रत्यय प्राप्त था उसको बाध कर अच् प्रत्यय हुआ। जवः। सवे।

३४२० मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः ३।३।९६।

वृषादिभ्यः क्तिन्स्यात्स चोदातः। वृष्टिं दिवः। सुम्नमिष्टये पचात्पक्तीरुत। इयं ते नव्यसी मतिः। वित्तिः। भूतिः। अग्न आ याहि वीतये। रातौ स्यामोभयासः।

वेदमन्त्र में वृष्, इष्, पच्, मन्, विद्, भू, वी, रा, इनसे क्तिन् प्रत्यय होता है वह उदात्त है। वृष्टिम्, इष्टये, पक्तिः, मतिः। वित्तिः। भूतिः। वित्तिः। रातिः।

३४२१ छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ३।३।१२९।

ईषदादिषूपपदेषु गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि युच् स्यात्। खलोऽपवादः। सूपसदनोऽग्निः।

वेद में ईषत् आदि पूर्वक गत्यर्थक धातुओं से युच् प्रत्यय होता है। यह खल् का बाधक है। यु को अनादेश होता है। यथा सूपसदनः = अग्निः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३४२२ अन्येभ्योऽपि दृश्यते ३।३।१३०।

गत्यर्थेभ्योयेऽन्ये धातवस्तेभ्योऽपि छन्दसि युच् स्यात्। सुवेदनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम्।

गत्यर्थक से भिन्नार्थक धातुओं से वेद में युच् होता है। सुवेदनाम्।

३४२३ छन्दसि लुङ्लङ्लिटः ३।४।६।

धात्वर्थानां सम्बन्धे सर्वकालेष्वेते वा स्युः। पक्षे यथास्वं प्रत्ययाः। देवो देवेभिरागमत्। लोडर्थे लुङ्। इदं तेभ्योकरं नमः। लङ्। अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः। लिट्। अद्या ममार। अद्य म्रियत इत्यर्थः।

वेद में धात्वर्थ सम्बन्ध में भूत, भविष्यत, एवं वर्तमान में धात्वर्थ सम्बन्ध में विकल्प लुङ्, लङ्, लिट् होता है, एवं विकल्प पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं। लोट् के अर्थ में 'आगच्छन्तु' अर्थ में लुङ् होकर 'आगमयत्' हुआ। अकरत्—यहां 'कृमृदृरुहिभ्यः' से च्लि को अङ् 'ऋदृशोऽङि' से गुण है। लङ्—अवृणीत। लिट्—ममार 'अद्य म्रियते' में यह हुआ।

३४२४ लिङर्थे लेट् ३।४।७।

विध्यादौ हेतुहेतुमद्भावादौ च धातोर्लेट् स्याच्छन्दसि।

वेद में लिङर्थ जो विध्यादि इसमें एवं हेतुहेतुमद्भाव में विकल्प धातु से लेट् होता है।

३४२५ सिब्बहुलं लेटि ३।४।३४।

लेट् पर में रहते धातु से सिप् विकल्प से होता है।

३४२६ इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ३।४।९७।

लेटस्तिङामितो लोपो वा स्यात्परस्मैपदेषु।

छन्द में परस्मैपदसंज्ञक धातुओं से लेट् सम्बन्धी तिङ् के इकार का विकल्प से लोप होता है।

३४२७ लेटोऽडाटौ ३।४।९४।

लेटः अट् आट् एतावागमौ स्तस्तौ च पितौ। सिब्बहुलं णिद्वक्तव्यः। (वा १७२४)। वृद्धिः। प्रणो अयूंषि तारिषत्। सुपेशसस्करति जोषिषद्धि। आ सावीषदर्शसानाय। सिप इलोपस्य चाऽभावे। पतातिं दिद्युत्। प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति।

वेद में लेट् प्रत्यय को अट् एवं आट् ये दो आगम होते हैं एवं वे आगम पित् हैं। सिप् प्रत्यय बहुल णित् होता है। अतः सिप् पर में रहते वृद्धि होगी। तारिषत्— तॄ से लेट् उसको तिप्, इकार लोप, तिप् प्रत्यय पर में रहते धातु से सिप्, इट्, वृद्धि, एवं अट् का आगम यहां हुआ है। तॄ प्लवनतरणयोः। जोषिषत्—जुषी प्रीतिसेवनयोः' यह अनुदात्तेत है, व्यत्यय से परस्मैदी है। आ सावीषत्—आङ्पूर्वक षु प्रसवैश्वर्ययोः से लेट् है। पतातिं— पत्लृ पतने तिप्, आडागम हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३४२८ स उत्तमस्य ३।४।९८।

लेडुत्तमसकारस्य वा लोपः स्यात्। करवाव। करवावः। टेरेत्वम्।

लेट् उकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का विकल्प से लोप होता है। करवाव; करवावः—कृञ् लेट्, वस्, उविकरण, गुण, रपर, 'लेटोऽडाटौ' से आट् गुण, 'अत उत्' से उत्वाभाव है।

३४२९ आत ऐ ३।४।९५।

लेट आकारस्य ऐ स्यात्। सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते। आताम्त्याकारस्य ऐकारः। विधिसामर्थ्यादाट ऐत्त्वं न। अन्यथा हि ऐटमेव विदध्यात्। यो यजाति यजातु इत्।

लेट् लकारसम्बन्धी आकार के स्थान में ऐकार आदेश होता है। मादयैते—मदी हर्षे णिच्, तदन्त से लेट् आताम् कर के 'टित आत्मनेपदानाम्' से एकार। आताम् के प्रथमाकार को ऐकार हुआ, विधान सामर्थ्य से आट् आगम के आकार को ऐकार नहीं होता है, यदि होता तो आट् न कह कर 'ऐट्' ही आगम का विधान करते। आट् के आकार को एत्वाभाव बोधन का फल यह है—यजाति यजात इति। लेट् आडागम का रूप है।

३४३० वैतोऽन्यत्र ३।४।९६।

लेट एकारस्य ऐ स्याद्वा 'आत ऐ' (सू ३५२६)। इत्यस्य विषयं विना। पशूनामीशै। ग्रहा गृह्यन्तै। अन्यत्र किम्? सुप्रयसा मादयैते।

लेट् सम्बन्धी एकार को विकल्प ऐकार होता है, 'आत ऐ' सूत्र के विषय न होने पर। पशूनामीशै। अन्यत्र कथन से 'मादयैते' ऐत्व विषय न हुआ।

३४३१ उपसंवादाऽऽशङ्कयोश्च ३।४।८।

पणबन्धे आशङ्कायां च लेट् स्यात्। अहमेव पशूनामीशै। नेजिज्ह्मायन्त्यो नरकं पताम। 'हलः श्नः शानज्झौ' (२५५७)।

पणबन्ध एवं आशङ्का में धातु से लेट् होता है। यथा अहमेव पशूनामीशे यह त्रिपुर-विजय के समय देवताओं से प्रार्थित रुद्र का वाक्य है—मैं समस्त पशुओं के जीवों का अधिपति हूँ। न इत् जिह्मायन्तो नरकं पताम। 'इत्' शब्द आशङ्का में है कुटिल आचरण से नरकपात न हो जाय। ताम यहां स उत्तमस्य से स लोप है। हल् से पर श्ना के स्थान में शानच् होता है हि पर में रहते। इस सूत्र के बाद सूत्र वक्ष्यमाण है।

३४३२ छन्दसि शायजपि ३।१।८४।

अपिशब्दाच्छानच्। 'हृग्रहोर्भश्छन्दसि' (वा ४८२३) इति हस्य भः। गृभाय चिह्वया मधु। बधान देव सवितः। 'अनिदिताम्' (सू ४१५) इति बधनातेर्नलोपः गृभ्णामि ते। मध्वा जभार।

छन्द में हि पर में रहते श्ना को शायच् शानच् आदेश होते है। 'हृग्रहोः से वेद में ह एवं ग्रह् धातु के अवयव हकार को भकार होता है। जीभ से तुम शहद को ग्रहण करो यहां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गृभाण। हे सूर्य देव आप बन्धन क्रिया कीजिये अर्थ में वधान। यहां 'अनिदिताम्' से नकार का लोप हुआ है। एवं गृभ्णामि ते। मध्वा जभार।

३४३३ व्यत्ययो बहुलम् ३।१।८५।

विकरणानां बहुलं व्यत्ययः स्यात् छन्दसि। आण्डा शुष्मस्य भेदति। भिनत्तीति प्राप्ते। जरसा मरते पतिः। म्रियत इति प्राप्ते। इन्दो वस्तेन नेषतु। नयतेर्लोट् शप्सिपौ द्वौ विकरणौ। इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम्। तरेमेत्यर्थः। तरतेर्विध्यादौ लिङ्। उः शप् सिप् चेति त्रयो विकरणाः।

सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च।
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोऽपि च सिध्यति बाहुलकेन॥ १॥

धुरि दक्षिणायाः। दक्षिणस्यामिति प्राप्ते। चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति। तक्षन्तीति प्राप्ते। उपग्रहः परस्मैपदात्मने पदे। ब्रह्मचारिणमिच्छते। इच्छतीति प्राप्ते। प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युध्यति युध्यत इति प्राप्ते। मघोस्तृप्ता ईवासते। मघुन इति प्राप्ते। नरः पुरुषः। अधा स वीरैर्दशभिर्वियूयाः। वियूयादिति प्राप्ते। कालः कालवाची प्रत्ययः। श्वोऽग्नीनाधास्यमानेन। लुटो विषये लृट्। तमसो गा अदुक्षत्। अघुक्षदिति प्राप्ते। मित्र वयं च सूरयः। मित्रा वयमिति प्राप्ते। स्वरव्यत्ययस्तु वक्ष्यते। कर्तृशब्दः कारकमात्रपरः। तथा च तद्वाचिनां कृत्तद्धितानां व्यत्ययः। अन्नादाय। अण्विषये अच्। अवग्रहे विशेषः। यङो यशब्दादारभ्य 'लिङ्याशिष्यङ्' (सू २४३४) इति ङकारेण प्रत्याहारः। तेषां व्यत्ययो भेदतीत्यादिरुक्त एव।

वेद में विकरण प्रत्ययों का बहुल करके व्यत्यय होता है। सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्ययशबादि एवं आर्धधातुकसंज्ञक स्य, तास् आदि का व्यत्यय होता है, सार्वधातुक प्रत्यय जहां विहित है उससे भिन्न विषय में एवं आर्धधातुक प्रत्यय शास्त्रतः जहां विहित है उससे अन्यत्र होता है, उदाहरणों में स्पष्ट ज्ञान होगा।

भिनत्ति—न्यायतः प्राप्त था यहां इनम् विकरण रुधादित्व प्रयुक्त न होकर व्यत्यय से शप् विकरण जो बाध्य है वह हुआ, बाधक इनम् न हुआ। मरते—यहाँ म्रियते प्राप्त था तुदादित्व प्रयुक्त शीवकरण एवं रिङ् श्यङ् से, किन्तु शप् विकरण हुआ। नेषतु—नी धातु से लोट् एवं शप् सिप् दो विकरण हुए। तरुषेम—तृधातु से विध्यादर्थ में लिङ्, उविकरण, सिप्, एवं शप् तीन विकरण हुए। 'तरेम' प्राप्त था।

कारिकार्थ—बाहुलक के सामर्थ्यरूप बल से शब्द शास्त्र के प्रवर्तकाचार्य महावैयाकरण श्रीपाणिनि आचार्य इन वक्ष्यमाणों के व्यत्यय की वे इच्छा करते हैं—सुप्, तिङ्, उपग्रह = आत्मनेपद—परस्मैपद, लिङ्ग, पुरुष, काल, व्यञ्जनवर्ण, स्वरवर्ण, कारक समस्त, तद्वाचक प्रत्यय कृत एवं तद्धित, यङ् प्रत्याहार बोध्य अर्थात् यङ् के यकार से आरम्भ कर "लिङ्याशिष्यङ्" सूत्र के ङकारतक के प्रत्याहार हैं।

सुप् के व्यत्यय—यथा—दक्षिणायाः यहां दक्षिणस्याम् प्राप्त था। तिङ् व्यत्यय—तक्षति यहां, तक्षन्ति' प्राप्त था। आत्मनेपद एवं परस्मैपद इनको उपग्रह कहते हैं उसका व्यत्यय यथा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इच्छते यहां इच्छति प्राप्त था। युध्यति यहां आत्मनेपदित्व से 'युध्यते' प्राप्त था। लिङ्ग्यत्यय 'मधोः' यहां मधुनः प्राप्त था। नर=पुरुष व्यत्यय यथा—विभूयाः, यहां विभूयात् प्राप्त था। काल= कालवाचक प्रत्यय यथा = आघास्यमानेन यहाँ लुट् के विषय में लट् हुआ। व्यञ्जनवर्ण व्यत्यय यथा—अदुक्षत। अधुक्षत प्राप्त था। स्वरवर्णव्यत्यय यथा—मित्र वयम्। यहां मित्रा वयम् प्राप्त था। स्वरों का व्यत्यय वक्ष्यमाण है। कर्तृशब्द कारकमात्र परक है—कारकवाचक कृत् प्रत्यय एवं तद्धित प्रत्ययों का व्यत्यय—अन्नादाय—यहां अण् के विषय में अच् प्रत्यय हुआ। अवग्रह = पदच्छेद में अण् अच् कृत विशेषता प्रतीयमान है। यङ् प्रत्याहार यङ् के यकार से लेकर 'लिङ् या शिष्यङ्' के ङकार तक है उसका व्यत्यय का उदाहरण भिनत्ति प्राप्त था भेदति हुआ यह कह चुके हैं पूर्व।

३४३४ लिङ्याशिष्यङ् ३।१।८६।

आशीर्लिङि परे धातोरङ् स्याच्छन्दसि। 'वच उम्' (सू २४५३)। मन्त्रं वोचेमाग्नये। दृशेरग्वक्तव्यः (वा १८७२)। पितरं च दृशेयं मातरं च। अङि तु 'ऋदृशोऽङि' (सू २४०६) इति गुणः स्यात्।

वेद में आशीर्लिङ् पर रहते धातु से अङ् प्रत्यय होता है। 'वच उम्' सूत्र से वच् को उम् होता है। यथा—वोचेम। * आशीर्लिङ् पद में रहते दृश् धातु से अक् प्रत्यय होता है। यथा दृशेयम्। अङ् करने पर तो 'ऋदृशोऽङि' से गुण होता है। वह न हो एतदर्थ अक् किया।

३४३५ छन्दस्युभयथा ३।४।११७।

धात्वधिकारे उक्तः प्रत्ययः सार्वधातुकार्धधातुकोभयसंज्ञः स्यात्। वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयः। वर्धयन्त्वित्यर्थः। आर्धधातुकत्वाण्णिलोपः। विश्रीण्विरे। सार्वधातुकत्वात् श्नुः श्रृभावश्च। 'हुश्नुवोः' (२३८७) इति यण्। 'आहगमहनजनः किकिनौ लिट् च' (सू ३१५१)। आदन्ताहृवर्णान्ताद्गमादेश्च किकिनौ स्तस्तौ च लिड्वत्। बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः। जग्मिर्युधा। जघ्निर्वृत्रमभित्रियम्। जक्षिः। लिड्वद्भावादेव सिद्धे 'ऋच्छत्यृताम्' (सू० २३८२) इति गुणबाधनार्थं कित्त्वम्। बहुलं छन्दसि (सू ३५७८) इत्युत्त्वम्। ततुरिः। जगुरिः।

आर्धधातुक एवं सार्वधातुक संज्ञा धातु के अधिकार से विहित प्रत्ययों की वेद में होती है। यथा वर्धन्तु यहां वर्धयन्तु प्राप्त था, यहां आर्धधातुकत्व के कारण णि का लोप हुआ। 'विश्रीण्विरे' यहां सार्वधातुकत्व-प्रयुक्त श्नु प्रत्यय हुआ। एवं श्रु आदेश भी तथा 'हुश्नुवोः' से यणादेश, हुआ। * वेद में आकारान्त, ऋवर्णान्त, गम्, हन्, जन्, इनसे कि किन् प्रत्यय होता है एवं वह किन् प्रत्यय लिट् ककार के समान होता है। बभ्रिः। पपिः, कि ददिः, जग्मिः। जक्षिः। 'ऋच्छत्यृताम्' से प्राप्त गुण-बाधनार्थ कित्त्व है, अन्यथा लिट्वद् भाव से ही गतार्थता रही बहुलं छन्दसि से उत्व ततुरिः जगुरिः में हुआ है।

३४३६ तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन् शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः ३।४।९।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से। वक्षे रायः। सेन्। ता वामेषे। असे। शरदो जीवसे धाः। असेन्। नित्त्वादाद्युदात्तः। क्से। प्रेषे। क्सेन्। गवामिव श्रियसे। अध्यै। अध्यैन्। जठरं पृणध्यै। पक्षे आद्युदात्तम्। कध्यै। कध्यैन्। आहुवध्यै। पक्षे नित्स्वरः। शध्यै। राधसः सह मादयध्यै। शध्यैन्। वायवे पिबध्यै। तवै। दातवा-उ। तवेङ्। सूतवै। तवेन्। कर्तवे।

वेद में अव्ययकृतो भावे से भाव में विहित जो तुमुन् उसके अर्थ में अर्थात् भाव में धातु से पर से, सेन्, असे, असेन्, क्से, क्सेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवेङ्, तवेन्, ये पञ्चदश प्रत्यय होते हैं। यथा वक्षे रायः यहां वच् से, से प्रत्यय कुत्व एवं षत्व हुआ, लोक में 'वक्तुम्'। सेन्—एषे लोक में एतुम्। असे—जीवसे लोक में जीवितुम्। असेन्—प्रत्यय में आदि उदात्त है, नित् प्रत्ययान्त तदादि का आदि उदात्त होता है। क्से—प्रेषे लोक में प्रेतुम्। क्सेन्—श्रियसे, लोक में श्रयितुम्। अध्यै एवं अध्यैन् में स्वरभेद मात्र है रूप में विशेषता नहीं है यथा—पृणध्यै। लोक में पृणितुम्। नित् प्रत्यय तदादि में पक्ष में आद्युदात्तत्वमात्र भेदक है। कध्यै, कध्यैन्। आहोतुम् में आहुवध्यै यहां उवङ् हुआ। नित्स्वर एकत्र। शध्यै—ण्यन्त मादि से शध्यैः, मादयध्यै। लोक में मादयितुम्। शध्यैन् पिबध्यै पा से प्रत्यय शविकरण। लोकमें पातुम्। दातवै यहां तवै प्रत्यय है एवं दातवै उ यहाँ आय् आदेश, यकार का 'लोपः शाकल्यस्य' से लोप है। दातुम् इति लोक में। तवेङ् सूतवे। लोक में सोतुम्। कर्तुम् लोक में वेद में तवेन् से कर्त्तवे रूप है।

३४३७ प्रयैरोहिष्यै अव्यथिष्यै ३।४।१०।

एते तुमर्थे निपात्यन्ते। प्रयातुं रोढुमव्यथितुमित्यर्थः।

वेद में प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै ये रूप निपातन से सिद्ध होते हैं।

प्र पूर्वक या से के प्रत्यय से सिद्ध प्रयै। रुह् से इष्यै, रोहिष्यै। नञ्पूर्वक व्यथ् से इष्यै, अव्यथिष्यै।

३४३८ दृशे विख्ये च ३।४।११।

द्रष्टुं विख्यातुमित्यर्थः।

तुमनर्थ में वेदमें दृशे एवं विख्ये ये रूप निपातन से सिद्ध होते हैं। के प्रत्यय उभयत्र है। कित्त्व से गुणाभाव, एवं विख्ये में आकार लोप है।

३४३९ शकि णमुल्कमुलौ ३।४।१२।

शक्नोतावुपपदे तुमर्थे एतौ स्तः। विभाजं नाशकत्। अवलुपं नाशकत्। विभक्तुमवलोप्तुमित्यर्थः।

वेद में शकधातु उपपद में रहते तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में धातु से णमुल् और कमुल् प्रत्यय होते हैं। कमुल् प्रत्यय कित् सगुण निषेध होता है। विभाजं नाशकत्। अवलुपं नाशकत्। लोक में विभक्तुम्। अवलोप्तुम्।

३४४० ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ३।४।१३।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ईश्वरो विचरितोः । ईश्वरो विलिखः । विचारितुं विलेखितुमित्यर्थः ।

वेद में ईश्वर शब्द उपपद में रहते तुमन् प्रत्यय के अर्थ में धातु से तोसुन् एवं कसुन् प्रत्यय होता है । विचरितो । विलिखः । लोक में विचरितुम् । विलेखितुम् ।

कसुन् प्रत्यय कित् से गुण निषेध एवं 'क्त्वातो' से अव्यय संज्ञा-प्रयुक्त विभक्ति लुक् । उसका प्रत्यय लक्षण का अभाव से अत्वसन्तस्य से दीर्घाभाव है, निषेधक वचन 'न लुगता' है ।

३४४१ कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यनत्वनः ३।४।१४।

न म्लेच्छितवै । अवगाहे । दिदृक्षेण्यष्टकर्त्वम् ।

वेद में कृत्य प्रत्यय के अर्थ में = भाव एवं कर्म में धातु से तवै, केन्, केन्य, त्वन्, होता है । म्लेच्छितव्यम् अर्थ में । म्लेच्छितवै । अवगाह्यम् में अवगाहे । केन्य—दिदृक्षेण्यः । कार्य्यम् में त्वन् से कर्त्वम् ।

३४४२ अवचक्षे च ३।४।१५।

रिपुणा नावचक्षे । अवख्यातव्यमित्यर्थः ।

भाव एवं कर्म में अवपूर्वक चक्ष से एश् प्रत्यय होता है । शकार को इत्संज्ञा से सार्वधातुक संज्ञा होने से ख्याञ् आदेश न हुआ । लोक में अवख्यातुम् । वेद में अवचक्षे ।

३४४३ भावलक्षणे स्थेणकृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन् ३।४।१६।

आसंस्थातोः सीदन्ति । आसमाप्तेः सीदन्तीत्यर्थः । उदेतोः । अपकर्तोः । प्रवदितोः । प्रचरितोः । होतोः । आतमितोः । 'काममाविजनितोः सम्भवामः' इति श्रुतिः ।

यहां कृत्योऽर्थ की निवृत्ति है । भावलक्षण में विद्यमान स्था, इण्, कृञ्, वद, चर, हु, तम्, जन् इससे तुमुनर्थ में तोसुन् होता है । आसंस्थातोः । लोक में आसंस्थातुम् । उदेतुम् लोके, वेद में उदेतोः । अपकर्त्तोः । अपकर्तुम् । प्रवदितोः । प्रवदितुम् । प्रचरितोः । प्रचरितुम् । होतोः । होतुम् लोक में । आतमितोः । आतमितुम् । आविजनितोः । जनयितुम् ।

३४४४ सृषिदृदोः कसुन् ३।१।१७।

भावलक्षण इत्येव । पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् । पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।

इति तृतीयोऽध्यायः ।

भावलक्षण में विद्यमान गत्यर्थक सृप् एवं हिंसार्थक तृद् से तुमुनर्थ में कसुन् प्रत्यय होता है । विसृपः । विसर्प्तुम् । आतृदः । आतर्त्तुम् ।

पं० श्री वा० कृ० पञ्चोलिविरचित रत्नप्रभा में वैदिक प्रक्रिया में तृतीयाध्याय समाप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्थोऽध्यायः

३४४५ रात्रेश्चाजसौ ४।१।३१।

रात्रिशब्दान्ङीप्स्यात् अजस्विषये छन्दसि। रात्री व्यख्यदायती। लोके तु (ग.) क्षुद्रिकादिति ङीष्यन्तोदात्तः।

वेद में प्रथमा बहुवचन जो जस् विषय है उससे भिन्न प्रथमा विभक्ति विषय में रात्रि शब्द से ङीप् होता है। यथा रात्री। लोक में ङीष् होने से अन्तोदात्त रात्री है।

३४४६ नित्यं छन्दसि ४।१।४६।

बह्वादिभ्यश्छन्दसि विषये नित्यं ङीप्। बह्वीषु हि त्वा। नित्यग्रहणमुत्तरार्थम्।

वेद में बहु आदि शब्दों से नित्य ङीप् होता है। यथा—बह्वीषु। उत्तरार्थ अनुवृत्यर्थ यहां नित्य ग्रहण किया है।

३४४७ भुवश्च ४।१।४७।

ङीष् स्यात् छन्दसि। विभ्वो। प्रभ्वो। 'विप्रसंभ्यः' (सू ३१६०) इति डुप्रत्ययान्तं सूत्रेऽनुक्रियते। उत इत्यनुवृत्तेः। उवङादेशस्तु सौत्रः। मुद्गलाच्छन्दसि लित्च। (वा २४९६) ङीषो लित्त्वमानुक् चागमः। लित्स्वरः। स्थीरंभून्मुद्गलानी।

वेद में भू धातु से निष्पन्न शब्द से उत्तर ङीप् नित्य होता है। विभ्वी, प्रभ्वी। वि, प्र, सम्पूर्वक भू धातु से डु प्रत्यय होता है वह डु प्रत्ययान्त 'भु' का सूत्र में अनुकरण है। यहां 'वोतो गुणवचनात्' से 'उतः' की अनुवृत्ति है, सौत्रत्वात् उवङादेश हुआ। मुद्गल शब्द से वेद में नित्य ङीष् होता है वह लित्, लित् एवं आनुक् आगम होता है। मुद्गलानी यहां 'लिति'से लित्स्वर हुआ। अर्थात् आकार उदात्त है।

३४४८ दीर्घजिह्वी च छन्दसि ४।१।५९।

संयोगोपधत्वादप्राप्तो ङीष् विधीयते। 'आसुरी वै दीर्घजिह्वी देवानां यज्ञवाट्'।

वेद में 'दीर्घजिह्वी' निपातन से सिद्ध होता है। यह उपधा में संयोग युक्त होने से ङीप् की अप्राप्ति थी। इसने ङीप् विधान किया। दीर्घजिह्वी।

३४४९ कद्रुकमण्डलूवोश्छन्दसि ४।१।७१।

ऊङ् स्यात्। कद्रूश्च वै कमण्डलूः। गुग्गुलुमधुजतुपतयालूनामिति वक्तव्यम्। (वा० २५०४) गुग्गुलूः। मधूः। जतूः। पतयालूः। 'अव्ययात्स्यप्'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(सू १३२६)। आविष्ट्यस्योपसंख्यानं छन्दसि। (वा २७८५)। आविष्ट्यो वर्धते।

वेद में कद्रु एवं कमण्डलु से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् होता है। * गुग्गुलु, मधु, जतु पतयालु इनसे स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् होता है। @ वेद में आविष्ट्य पद का उपसंख्यान है। आविर्भूतः = आविष्ट्यः—'अव्ययात् त्यप्' सूत्र से विधीयमान त्यप् सर्व अव्यय से नहीं होता है किन्तु अमा, इह, क, तस् प्रत्ययान्ततदादि, एवं त्रल् प्रत्ययान्त से ही त्यप् होता है। अतः यहां अप्राप्त त्यप् शेष अर्थ में विधीयमान है। आविष्ट्यम्—'इस्वात्तादौ' से षत्व एवं तकार को ष्टुत्व हुआ।

३४५० छन्दसि ठञ् ४।३।१९।

वर्षाभ्यष्ठक्ठञोऽपवादः। स्वरे भेदः। वार्षिकम्।

वेद में वर्षादि शब्दों से ठञ् होता है यह ठञ् ठक् का बाधक है। ठजन्त आद्युदात्त। एवं ठगन्त अन्तोदात्त होता है, यह स्वरभेदमात्र है। रूप में तो उभयत्र साम्य है यथा वार्षिकम्।

३४५१ वसन्ताच्च ४।३।२०।

ठञ् स्यात् छन्दसि। वासन्तिकम्।

वेद में वसन्त से ठञ् प्रत्यय होता है। वासन्तिकम्।

३४५२ हेमन्ताच्च ४।३।२१।

छन्दसि ठञ्। हैमन्तिकम्। योगविभाग उत्तरार्थः। 'शौनकादिभ्यश्छन्दसि' (१४८८) णिनिः प्रोक्तेऽर्थे। छाणोरपवादः। शौनकेन प्रोक्तमधीयते शौनकिनः। वाजसनेयिनः। छन्दसि किम्? शौनकीया शिक्षा।

वेद में हेमन्त से ठञ् प्रत्यय होता है। योगविभाग उत्तरार्थ = अनुवृत्त्यर्थ है।* वेद में प्रोक्त अर्थ में शौनकादि शब्दों से पर नित्य णिनि प्रत्यय होता है। यह अण् एवं छ प्रत्यय का बाधक है। शौनकिनः। वाजसनेयिनः। लोक में छ प्रत्यय—शौनकीया शिक्षा।

३४५३ द्व्यचश्छन्दसि ४।३।१५०।

विकारे मयट् स्यात्। शरमयं बर्हिः। यस्य पर्णमयी जुहूः।

दो स्वर युक्त शब्दों से वेद में मयट् प्रत्यय होता है। शरमयम्। पर्णमयी।

३४५४ नोत्वद्वर्ध्रबिल्वात् ४।४।१५१।

उत्वान् उकारवान्। मौञ्जं शिक्यम्। वर्ध्र चर्म, तस्य विकारो वार्ध्री रज्जुः। बैल्वा पः। 'सभाया यः' (सू १६५७)।

वेद में उकार युक्त प्रातिपादिक एवं वर्ध्र, बिल्व से मयट् प्रत्यय पूर्व सूत्र से प्राप्त नहीं होता है। विकार में अण् से मौञ्जम्। शिका = शिक्यम्। चर्मार्थक वर्ध्र से अण् ङीप् वार्ध्री = रज्जुः। बैल्वः = यूपः। सभा शब्द से य प्रत्यय होता है।

३४५५ ढश्छन्दसि ४।४।१०६।

सभेयो युवा।

वेद में सप्तम्यन्त सभा से ढक् प्रत्यय होता है। सभेयो युवा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३४५६ भवे छन्दसि ४।४।११०।

सप्तम्यन्ताद्भवार्थे यत्। मेध्याय च विद्युत्याय च। यथायथं शैषिकाणामणादीनां घादीनां चापवादोऽयं यत्। पक्षे तेऽपि भवन्ति। सर्वविधीनां छन्दसि वैकल्पिकत्वात्। तद्यथा। मुञ्जवान्नाम पर्वतः। तत्र भवो मौञ्जवतः। सोमस्येव मौञ्जवतस्य भक्षः। आ चतुर्थसमाप्तेश्छन्दोऽधिकारः।

सप्तम्यन्त शब्द से वेद में भव अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। यह यत् शैषिक प्रत्यय, अणादिप्रत्यय तथा घादिप्रत्यय का बाधक यथाप्राप्त स्थल में होता है। विकल्प पक्ष में वे प्रत्यय भी यथाप्राप्त होते हैं। वेद में सब कार्य वैकल्पिक है। मौञ्जवतः। चतुर्थ अध्याय तक छन्दसि का अधिकार है।

३४५७ पाथोनदीभ्यां ड्यण् ४।४।१११।

तमुत्वा पाथ्यो वृषा। चनो दधीत नाद्यो गिरो मे। पाथसि भवः पाथ्यः। नद्यां भवो नाद्यः।

वेद में सप्तम्यन्त पाथस् एवं नदी के उत्तर भवार्थ ड्यण् प्रत्यय होता है।

३४५८ वेशन्तहिमवद्ध्यामण् ४।४।११२।

भवे। वैशन्तीभ्यः स्वाहा। हैमवतीभ्यः स्वाहा।

वेशन्त एवं हेमन्त से भवार्थ में वेद में अण् प्रत्यय होता है। वेशन्त का अर्थ = पल्वल है तत्र भवाः = आपः वैशन्त्यः।

३४५९ स्रोतसो विभाषाऽयड्ड्यौ ४।४।११३।

पक्षे यत्। ड्यड्ड्ययोस्तु स्वरे भेदः। स्रोतसि भवः स्रोत्यः। स्रोतस्यः।

वेद में सप्तम्यन्त स्रोतस् से भवार्थ में विकल्प से ड्यत् एवं ड्य होता है पक्ष में यत् प्रत्यय। ड्यत् एवं ड्य में आद्युदात्त अन्तोदात्त स्वर प्रयुक्त दोष है।

३४६० सगर्भसयूथसनुताद्यन् ४।४।११४।

अनुभ्राता सगर्भ्यः। अनुसखा सयूथ्यः। यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुः। नुतिर्नुतम्। 'नपुंसके भावे क्तः' (सू० ३०१०)। सगर्भादयश्चयोऽपि कर्मधारयाः। 'समानस्य छन्दसि' (सू० १०१२) इति सः। ततो भवार्थे यन्। यतोऽपवादः।

वेद में सप्तम्यन्त सगर्भ, सयूथ, सनुत इनसे भवार्थ में यन् प्रत्यय होता है। सगर्भादि तीनों कर्मधारय हैं, समान को वेद में स आदेश हुआ। ततः यत् का बाध कर यन् हुआ। समानस्य छन्दसि सकारादेश करता है। इनसे भवार्थ में यन्। समानश्चासौ गर्भश्च तत्र भवः सगर्भ्यं इत्यादि।

३४६१ तुग्रादन् ४।४।११५।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवेऽर्थे। पक्षे यदपि। आ वः शर्म वृषभं तुग्र्यासु। इति बह्वृचाः। 'तुग्रियास्वि'ति शाखान्तरे। धनाकाशयज्ञवरिष्ठेषु तुग्रशब्द इति वृत्तिः।

वेद में तुग्र से भवार्थ में विकल्प घन् पक्ष में यत्। तुग्र = धन में ध, आकाश में, यज्ञ में, एवं वरिष्ठ में है। यह वृत्तिमत है।

३४६२ अग्राद्यत् ४।४।११६।

अग्र से भवार्थ में यत् प्रत्यय होता है वेद में।

३४६३ घच्छौ च ४।४।११७।

चाद्यत्। अग्रे भवोऽग्र्यः। अग्रियः। अग्रीयः।

अग्र से भवार्थ में घ, छ, एवं यत् प्रत्यय होता है वेद में।

३४६४ समुद्राभ्राद्धः ४।४।११८।

समुद्रिया अप्सरसो मनोषिणम्। नानदतो अभ्रियस्येव घोषाः।

समुद्र एवं अभ्र से भवार्थ में घ प्रत्यय होता है।

३४६५ बर्हिषि दत्तम् ४।४।११९।

'प्राग्धिताद्यत्' (सू० १६२६) इत्येव। बर्हिष्येषु निनिषुप्रियेषु।

वेद में समर्पित = दत्त अर्थ में बर्हिस् से यत् प्रत्यय होता है। प्राग्धिताद्यत् से हित शब्द से पूर्व तक समस्तसूत्रों से यत् प्रत्यय होता है।

३४६६ दूतस्य भागकर्मणी ४।४।१२०।

भागोऽशः। दूत्यम्।

षष्ठ्यन्त दूत से भाग = अंश अर्थ में एवं कर्म अर्थ में यत् प्रत्यय होता है, भाग में 'तस्येदम्' से अण् की प्राप्ति थी। एवं कर्म में 'दूतव णिग्ण्याञ्च' से ण्य प्रत्यय प्राप्त था उसका यह बाधक है। दूत्यः। दूत्यम्।

३४६७ रक्षोयातूनां हननी ४।४।१२१।

या ते अग्ने रक्षस्या तनूः।

'हननी' अर्थ में रक्षस् एवं यातु से यत् प्रत्यय होता है। रक्ष् धातु से उ० असुन् प्रत्यय से रक्षस् से यत् स्त्रीलिङ्ग में टाप् रक्षस्या तनूः। यातूनां हननी यातव्या=राक्षसों की नाशकर्त्री।

३४६८ रेवतीजगतीहविष्याभ्यः प्रशस्ये ४।४।१२२।

प्रशंसने यत्स्यात्। रेवत्यादीनां प्रशंसनं रेवत्यम्। जगत्यम्। हविष्यम्।

प्रशंसा अर्थ गम्य रहते रेवती, जगती हविष्या इनसे यत् प्रत्यय होता है। रे+मतुप् ङीष् रेवती मकार को वकार इससे यत्। हविषे हिता हविष्या। प्रशंसनं रेवत्यादीनाम् रेवत्यम्। जगत्यम्। हविष्यम्। अग्निकुण्ड में होम के मन्त्रों द्वारा आहुतियों का परिगणन इस प्रकार वेदों में है—ऋग्वेद, यजुः, साम, अथर्व मिलाकर २०३ आ० का योग है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३४६९ असुरस्य स्वम् ४।४।१२३।

असुर्यां देवेभिर्धायि विश्वम् ।

वेद में धन रूप स्व अर्थ में असुर से यत् प्रत्यय असुर्य्यम् ।

३४७० मायायामण् ४।१।१२४।

आसुरी माया ।

माङ् से उ० य प्रत्यय से मीयतेऽनया इति माया । असुर की माया अर्थ गम्य रहते असुर से अण् प्रत्यय होता है । यह पूर्व सूत्र का निषेधक है । अणन्त से ङीप् आसुरी = माया ।

३४७१ तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकासु लुक् च् मतोः ४।४।१२५।

वर्चस्वानुपधानो मन्त्र आसामिष्टकानां वर्चस्याः । ऋतव्याः ।

मतुप् प्रत्ययान्त प्रथमान्त में 'आसाम्' इस षष्ठ्यर्थ में यत् प्रत्यय होता है वह प्रथमान्त वाच्य अर्थ उपधान मन्त्र यदि हो तो एवं 'आसाम्' इस षष्ठ्यन्तार्थ बोध्य अर्थ इष्टका (ईंट्टे) हो, एवं मतुप् का लुक् होता है । वर्चस्याः । ऋतव्याः । वर्चस् शब्द विशिष्ट कुम्भादिके आरोपणमन्त्र विशेष । 'मधुश्च माधवश्च' इस ऋतु शब्द युक्त है जिसमें = मन्त्र में वह ऋतुमान् उससे यत् मतुप् लुक् ओर्गुण; से गुण अवादेश ऋतव्याः । उपधान में करण अर्थ में ल्युट् कर अनादेश है । उपधीयतेऽनेन उपधानम् । इस सूत्र की वृत्ति संस्कृत में इस प्रकार मन्वन्तारप्रथमासमर्थादासामिति षष्ठ्यर्थे यत् प्रथमासमर्थमुपधानो मन्त्रश्चेत्स भवति, यत् तदासामिति निर्दिष्टमिष्टकाश्चेत्ता भवन्ति, मतोश्च लुक् । वर्चः शब्दो यस्मिन् मन्त्रेऽस्ति स वर्चस्वान् । कुम्भेष्टकोपधानमन्त्रः—

"भूतञ्च स्थ भव्यं च स्थ देवस्य वः सवितुः प्रसवे"

इत्यादिक । चयनम् = रचनम् । सूत्र में तद्वान् न कहते तो 'मन्त्रादेव समुदायान्मा भूत्' यह काशिकाकार ने कहा है । हरदत्ताचार्य ने तद्वान् न रहने पर 'समर्थानां प्रथमाद्वा' इस वचन से 'आसाम्' यह प्रथमानिर्दिष्टत्व के कारण षष्ठ्यन्त जो इष्ट का वाचक है उससे उपधान मन्त्र में प्रत्यय होने लगेगा तब समुदाय से प्राप्त नहीं है । इस हरदत्तमत के उपरि आलोचना विस्तृत अन्यत्र वर्णित है लेखविस्तार से यहां इसका उपन्यास नहीं किया है, केवल जिज्ञासा उत्पादनार्थ यह यत्न लेखक का है । यह सूत्रार्थ एवं इसका विषय प्रसिद्ध एवं प्रष्टव्य है ।

३४७२ अश्विमानण् ४।४।१२६।

आश्विनीरुपदधाति ।

अश्वि शब्द जिस मन्त्र में रहे वह मन्त्र अश्विमान् कहा जाता है । वह मन्त्र 'ध्रुवक्षितिः' इत्यादिक है । प्रथमान्त अश्विमत् से 'आसाम्' यह षष्ठ्यर्थ में अण् प्रत्यय होता है जो प्रथमान्त-निर्दिष्ट है वह उपधान मन्त्र रहते, 'आसाम्' से निर्दिष्ट इष्टका रहे हैं, एवं मतुप् प्रत्यय का लुक् होता है । आश्विनीः अश्व से 'अत इनिठनौ' से अस्त्यर्थ में इनि प्रत्यय तदन्त से मतुप् हुआ । अश्विमान् स उपधानो मन्त्र आसाम् इष्टकानाम् यहां अण् मतुप्का लुक् 'इनण्यनपत्ये' प्रकृतिभाव से टिलोपाभाव है ।

३४७३ वयस्यासु मूर्ध्नो मतुप् ४।४।१२७।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'तद्वानासा'मिति सूत्रं सर्वमनुवर्तते। मतोरिति पदमावर्त्य पञ्चम्यन्तं बोध्यम्। मतुबन्तो यो मूर्धशब्दस्ततो मतुप्स्यात्प्रथमस्य मतोर्लुकच वयः शब्दवन्मन्त्रोपधेयास्विष्टकासु। यस्मिन्मन्त्रे मूर्धन्वतीरुपदधातीति प्रयोगः।

यहां 'तद्वानासाम्' सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति है। 'मतोः' की आवृत्तिकर षष्ठ्यन्त 'मतोः' का अर्थवश पञ्चम्यन्तत्व से विपरिणाम करना। वयः शब्दविशिष्ट मन्त्र से उपधेय = आरोप्य इष्टकादि विषय में मतुप् प्रत्ययान्त जो मूर्धन् शब्द उससे उत्तर मतुप् प्रत्यय होता है एवं प्रथम मतुप् प्रत्यय का लुक् होता है, जिसमें मूर्धन् एवं वयस् शब्द है उस मन्त्र द्वारा आरोपित इष्टकादि विषय में मतुप् प्रत्यय अर्थात् हुआ प्रथम प्रकृतिघटक मतुप् का लुक् हुआ यही भावार्थ है। यह यत् प्रत्यय को बाधकर मतुप् विधानार्थ है। मूर्धन्वतीः 'अनो नुट्' से नुडागम हुआ, सूत्र में 'मूर्धवतः' कहना चाहता था किन्तु लुक् जो भविष्यत् काल में होने वाला है उसको प्रथमतः हृदय में रखकर यह निर्देश आचार्य ने किया है मूर्ध्न इति।

३४७४ मत्वर्थे मासतन्वोः ४।४।१२८।

नभोऽभ्रम्। तदस्मिन्नस्तीति नभस्यो मासः। ओजस्या तनूः।

वेद में मास एवं तनु अर्थ में जिस अर्थ में मतुप् विहित है उसी अर्थ में प्रथमान्त से यत् प्रत्यय होता है। यथा अभ्रवाचक नभस् प्रथमान्त से 'अस्मिन् अस्ति' अर्थ में मतुप् को बाधकर इसने यत् प्रत्यय किया। ओजः अस्ति अस्याम् अस्याः वा ओजस्या = तनूः।

३४७५ मधोर्ञ च ४।४।१२९।

माधवः। मधव्यः।

वेद में प्रथमान्त मधु से मत्वर्थ में ञ प्रत्यय एवं यत् होता है। मधु अस्य अस्ति इति माधवः। मधव्यः।

३४७६ ओजसोऽहनि यत्खौ ४।४।१३०।

ओजस्यमहः। ओजसीनां वा।

वेद में दिन अर्थ में मत्वर्थ में ओजस् से यत् एवं ख होता है।

३४७७ वेशोयशआदेर्भगाद्यल् ४।४।१३१।

यथासंख्यं नेष्यते। वेशो बलं तदेव भगः। वेशोभग्यः। वेशोभगीनः। यशोभग्यः। यशोभगीनः।

वेद में वेशस्, यशस् शब्दों से पर भगशब्द को यल् प्रत्यय होता है। प्रत्यय का लकार स्वरार्थ है। वेशस् शब्दार्थ बल है, भगशब्द अनेकार्थक है यहां भग से भाग्य अर्थ गृहीत है। वेशस् एवं भग सुबन्त द्वय का कर्मधारय समास है वेशोभग से यत्। एवं यशोभग से यत्।

३४७८ ख च ४।४।१३२।

योगविभाग उत्तरार्थः क्रमनिरासार्थश्च।

वेद में वेशस् एवं यशस् से पर भग शब्द से ख प्रत्यय होता है। योगविभाग यथासङ्ख्य निवृत्ति के लिए है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३४७९ पूर्वैः कृतमिनयौ च ४।४।१३३।

गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासः।

वेद में तृतीयान्त पूर्वशब्द से 'कृतम्' अर्थ में इन एवं य प्रत्यय होता है चकार से यत् भी हुआ।

३४८० अद्भिः संस्कृतम् ४।४।१३४।

यस्येदमप्यं हविः।

वेद में तृतीयान्त तदादि अप् से 'संस्कृतम्' अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

३४८१ सहस्रेण संमितौ घः ४।४।१३५।

सहस्रियासो अपां नोर्मयः। सहस्रेण तुल्या इत्यर्थः।

सम्मित अर्थ में वेद में तृतीयान्त सहस्र शब्द से घ प्रत्यय होता है। सम्मित का अर्थ तुल्य है।

३४८२ मतौ च ४।४।१३६।

सहस्रशब्दान्मत्वर्थे घः स्यात्। सहस्रमस्तीति सहस्रियः।

सहस्र शब्द से मत्वर्थ में घ प्रत्यय होता है।

३४८३ सोममर्हति यः ४।४।१३७।

सोम्यो ब्राह्मणः। यज्ञार्ह इत्यर्थः।

द्वितीया विभक्त्यन्त सोम से 'अर्हति' अर्थ से य प्रत्यय होता है।

३४८४ मये च ४।४।१३८।

सोमशब्दाद्यः स्यान्मयडर्थे। सौम्यं मधु। सोममयमित्यर्थः।

वेद में सोम शब्द से मयट् प्रत्ययार्थ में य प्रत्यय होता है।

३४८५ मधोः ४।४।१३९।

मधुशब्दान्मयडर्थे यत्स्यात्। मधव्यः। मधुमय इत्यर्थः।

छन्द में मयट् प्रत्यय के अर्थ में मधु से यत् प्रत्यय होता है।

३४८६ वसोः समूहे च ४।४।१४०।

चान्मयडर्थे यत्। वसव्यः। अक्षरसमूहे छन्दस उपसंख्यानम् (वा २६८०) छन्दःशब्दादक्षरसमूहे वर्तमानात्स्वार्थे यदित्यर्थः। आश्रावयेति चतुरक्षरम्, अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरं, ये यजामह इति पञ्चाक्षरं, यजेति द्व्यक्षरं, द्व्यक्षरो वषट्कार एष वै सप्तदशाक्षरश्छन्दस्यः।

वसु शब्द से समूह एवं मयट् प्रत्यय के अर्थ में यत् होता है। अक्षरसमूह में विद्यमान छन्दस् से स्वार्थ में यत् प्रत्यय होता है। यथा 'आश्रावय' यहां चार स्वर वर्ण है, एवं 'अस्तु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

औषट्' यह चार अक्षर युक्त है। 'यज' यह दो स्वर युक्त है। 'ये यजामहे' यह पाँच अक्षरों से युक्त है। 'यज' यह द्व्यक्षर है, द्व्यक्षरो वषट्कारः। यह सतरह वर्ण समूह से युक्त मन्त्र को छान्दस्य कहते हैं। यह सतरह अक्षर-स्वर युक्त मन्त्र प्रजापति यज्ञ में विहित हुआ है।

महाभारत में 'भीष्मस्तवराज' स्तोत्र में इस मन्त्र का इस प्रकार श्लोक रूप से वर्णन किया है—

"चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै होमात्मने नमः॥ ४६॥"

३४८७ नक्षत्राद्घः ४।४।१४१।

स्वार्थे। नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा।

वेद में नक्षत्र से स्वार्थ में घ प्रत्यय होता है।

३४८८ सर्वदेवात्तातिल् ४।४।१४२।

स्वार्थे। सविताः नः सुवतु सर्वतातिम्। प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः।

सर्व एवं देव शब्द से तातिल् प्रत्यय होता है।

३४८९ शिवशमरिष्टस्य करे ४।४।१४३।

करोतीति करः। पचाद्यच्। शिवं करोतीति शिवतातिः। याभिः शन्तान्ती भवथो ददाशुषे। अथो अरिष्टतातये।

शिव एवं शम् तथा अरिष्ट से तातिल् प्रत्यय होता है वेद में करोति अर्थ में। सूत्रस्थ 'कर' शब्द अच् प्रत्ययान्त उत्पत्ति जनक व्यापारार्थक है।

३४९० भावे च ४।४।१४४।

शिवादिभ्यो भावे तातिः स्याच्छन्दसि। शिवस्य भावः शिवतातिः। शन्तातिः। अरिष्टतातिः।

इति चतुर्थोऽध्यायः

वेद में शिवादि से भाव अर्थ में तातिं प्रत्यय होता है। शिव का भाव में शिवतातिः। शन्तातिः। अरिष्टतातिः।

पं० श्री वा० कृ० पञ्चोलिविरचित रत्नप्रभा में चतुर्थ अध्याय समाप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ पञ्चमोऽध्यायः

३४९१ सप्तनोऽञ्छन्दसि ५।१।६०।

'तदस्य परिमाणम्' (सू १७२३) इति वर्ग इति च। सप्त साप्तानि असृजत्। शन्शतोर्डिनिश्छन्दसि तदस्य परिमाणमित्यर्थे वाच्यः (वा ३१३१) पञ्चदशिनोऽर्धमासाः त्रिंशिनो मासाः। विंशतेश्चेति वाच्यम् (वा ३१३२) विंशिनोऽङ्गिरसः। युष्मदस्मदोः सादृश्ये मतुब्वाच्यः (वा ३१३८)। त्वावतः पुरूवसो। न त्वावाँ अन्यः। यज्ञं विप्रस्य मावतः।

प्रथमान्त सप्तन् शब्द से 'अस्य परिमाणम्' इस अर्थ में वर्ग अर्थ होने पर वेद में अञ् प्रत्यय होता है। सप्तन् से अञ् आदि वृद्धि 'नस्तद्धिते' से टिलोप तद्धितान्त तदादि प्रयुक्त प्रातिपदिक संज्ञा होने से जस् उसको शि आदेश 'नपुंसकस्य' से नुम् एवं उपधा दीर्घ से साप्तानि। सात वर्गों की रचना की गई। * वेद में 'अस्य परिमाणम्' अर्थ में शन् एवं शत ये हैं अन्त में जिनको ऐसे शब्दों से डिनि प्रत्यय होता है। पञ्चदशन्+डिनि—अन् टिलोप बहुवचन में पञ्चदशिनः = अर्धमास। एवं त्रिंशिनः = पूर्णमास। * विंशति से उत्तर भी डिनि प्रत्यय होता है। विंशनः यहां ति विंशतेर्डिति' से 'ति' का लोप कर 'यस्येति' से अकार का लोप से विंशिन् के बहुवचन में विंशिनः। * सादृश्य अर्थ में युष्मद् एवं अस्मद् से वतुप् होता है। त्वमिव त्वावान् तस्य त्वावतः। अहमिव मावान् तस्य मावतः। यहां प्रत्ययोत्तरपदयोश्च से मपर्यन्त युष्म् एवं अस्म् को क्रमसे त्व एवं म आदेश हुए 'आ सर्वनाम्नः' से आत्व हुआ।

३४९२ छन्दसि च ५।१।६७।

प्रातिपदिकमात्रात्तदर्हतीति यत्। सादन्यं विदथ्यम्।

प्रातिपदिक मात्र से वेद में 'तदर्हति' अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। सादन्यम्। सदनम् = गृहम् अर्हति सादन्यः। विदथ्यः=यज्ञ के लिए योग्य। सादन्य में 'अन्येषामपि' से दीर्घ हुआ। विदथः = यज्ञः तं अर्हति।

३४९३ वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि ५।१।९१।

निर्वृत्तादिष्वर्थेषु। इद्वत्सरीयः।

वेद में निर्वृत्त, अधीष्ट, भूत, भावी, इन अर्थों में वत्सरान्त शब्दों से छ प्रत्यय होता है। इद्वत्सर, इदावत्सर संवत्सर, परिवत्सर ये वत्सरान्तशब्द हैं। इद्वत्सर से निर्वृत्त में या इद्वत्सर को अधीष्ट में, भूत में, भावी में तृतीयान्त या द्वितीयान्त से छ प्रत्यय करके इद्वत्सरीयः। इदावत्सरीयः। इदवत्सर एवं इदावत्सर शब्द पञ्चवर्ष के युग के दो वर्ष इसकी संज्ञा का वाचक है इससे बोध्य अर्थ दो वर्ष अर्थ हुआ। पञ्चवर्षीय-युगान्तर्गत-वर्षद्वयम् यह अर्थ है।

३४९४ संपरिपूर्वात्ख च ५।१।९२।

छाच्छः। संवत्सरीणः। संवत्सरीयः। परिवत्सरीणः। परिवत्सरीयः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्, एवं परिपूर्वक वत्सरान्त से ख एवं छ प्रत्यय होता है। संवत्सरीयः। संवत्सरीणः। परिवत्सरीणः। परिवत्सरीयः।

३४९५ छन्दसि घस् ५।१।११६।

ऋतुशब्दात्तदस्य प्राप्तमित्यर्थे। भाव ऋत्वियः।

वेद में 'तदस्य परिमाणम्' अर्थ में ऋतु शब्दान्त से घस् प्रत्यय होता है। सित् से 'सिति च' से पदत्व से भत्वाभाव-प्रयुक्त 'ओर्गुणः' न होकर यण् से ऋत्वियः। भाव ऋत्वियः।

३४९६ उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे ५।१।११८।

धात्वर्थविशिष्टे साधने वर्तमानात्स्वार्थे वतिः स्यात्। यदुद्वतो निवतः। उद्वतान्निर्गतादित्यर्थः।

धात्वर्थविशिष्ट साधन में वेद में उपसर्ग से वति प्रत्यय होता है। उपरि भाग में गमन-कर्ता अर्थ में उत् उपसर्ग है। एवं निर्गत अर्थ में निर् उपसर्ग है नितरां गमनकर्ता उभयत्र गमन-क्रिया = संयोगजनक-व्यापाररूपा है उसका कर्ता में गत्यर्थ सूत्रसे क्त प्रत्यय है। इस विशिष्टार्थ-बाधक उद् या निर् है अतः धात्वर्थ = क्रिया तज्जनक साधन = कर्ता की प्रतीति है अतः सूत्रार्थ समन्वय हुआ वति प्रत्यय उद् एवं निर् से हुआ। उद्वत् निर्वत् द्वि० ब० में उद्वतः। निवतः।

३४९७ थट् च छन्दसि ५।२।५०।

नान्तादसंख्यादेः परस्य डटस्थट् स्यान्मट् च। पञ्चथम्। पञ्चमम्। 'छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि' (सू १८८६)। पर्यवस्थाता शत्रुः। अपत्यं परिपन्थिनम्। मात्वा परिपरिणौ विदन्।

संख्यावाचक शब्द पूर्व में न रहने पर नकारान्त संख्यावाचक शब्द से पर जो डट् उसको थट् एवं मट् आगम होता है। पञ्चथम्। पञ्चमम्।* वेद में शत्रु अर्थ में परिपन्थिन्, परि-परिवान् निपातन से सिद्ध होते हैं। शत्रुभूत-पुत्र-परिपन्थिनम्। पर्यवस्थातृ शब्द से स्वार्थ में इनि प्रत्यय अवस्थातृ शब्द को पन्थि एवं परि ये आदेश होते हैं।

३४९८ बहुलं छन्दसि ५।२।१२२।

मत्वर्थे विनिः स्यात्। छन्दोविन्प्रकरणेऽष्ट्रामेखलाद्वयोभयरुजाहृदयानां दीर्घश्चेति वक्तव्यम्। (वा० ३२११)। इति दीर्घः। संहिष्ठमुभयाविनम्। छन्दसीवनिपौ च वक्तव्यौ। (वा० ३२०२)। ईरथीरभूत्। सुमङ्गलीरियं वधूः। मघवानमीमहे।

छन्द में मत्वर्थ में बहुल करके विनि प्रत्यय होता है। विन् प्रकरण में अष्ट्रामेखला, द्वय, उभय, रुजा, हृदय, इनसे विनि प्रत्यय होता है एवं पूर्व अच् का दीर्घ भी होता है।* वेद में मत्वर्थ में वनिप् प्रत्यय होता है। रथोऽस्य अस्ति इति रथी। सुष्ठु मङ्गलम् यहां 'मङ पूजायाम्' से समास तब मत्वर्थीय ईकार। मघवानम्—वनिप्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३४९९ तयोर्दार्हिलौ च छन्दसि ५।३।२०।

इदन्तदोर्यथासंख्यं स्तः। इ॒दा हि व॒ उप॑स्तुतिम्। तर्हि।

वेद में इदम् से दा एवं तद् से उत्तर हिल् होता है। इदा तर्हि।

३५०० था हेतौ च छन्दसि ५।३।२६।

किमस्था स्याद्धेतौ प्रकारे च। क॒था ग्राम॑ं न पृ॑च्छसि। क॒था दा॑शे॑म।

हेतु अर्थ में एवं प्रकार अर्थ में किम् से थाल् प्रत्यय होता है। कथा।

३५०१ पश्च पश्चा च छन्दसि ५।३।३३।

अवरस्य अस्तात्यर्थे निपातौ। पश्च हि सः। नो ते पश्चा। 'तुश्छन्दसि' (सू २०७) तृजन्तात्तृन्नन्ताच्च इष्टन्नीयसुनौ स्तः। आसु॒तिं करिष्ठः। दोहीयसी धेनुः।

छन्द में अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में अवर को पश्च एवं पश्चा आदेश होता है।* इष्टन् एवं ईयसुन् प्रत्यय तृजन्त एवं तृन्नन्त से वेद में होता है। कर्तृ इष्टन् दोग्धृ इष्टन् 'तुरिष्ठेमेयःसु' से तृ का लोप हुआ। अतिशयेन दोग्ध्री, क्रियाविशिष्टपरिभाषा से दोग्ध्री से प्रत्यय 'अस्याढे' से पुंवद्भाव से ङीष् की निवृत्ति हुई। तृच् की निवृत्ति से निमित्त के अभाव से घत्व एवं कुत्व की निवृत्ति हुई। दोहीयसी।

३५०२ प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल्छन्दसि ५।३।१११।

इवार्थे। तं प्र॒त्नथा॑ पू॒र्वथा॑ विश्वथेमथो।

इवार्थ सादृश्य अर्थ में प्रत्न, पूर्व, विश्व इनसे थाल् प्रत्यय होता है।

३५०३ अमु च छन्दसि ५।४।१२।

किमेत्तिङव्ययघादित्येव। प्र तं न॑य प्रत॒रम्।

सत्त्वगतप्रकर्ष में किम् से, एदन्त शब्द से, तिङन्त से एवं अव्यय से तथा तरप् एवं तमप् प्रत्ययान्त तदादि से अमु होता है वेद में। सत्त्वम् = द्रव्यम्।

३५०४ वृकज्येष्ठाभ्यां तिल्तातिलौ च छन्दसि ५।४।४१।

स्वार्थे। यो नो॑ दु॒रेवो॑ वृ॒कति॑ः ज्ये॒ष्ठता॑ति॑ बर्हि॒षद॑म्।

वृक से तिल् एवं ज्येष्ठ से तातिल् प्रत्यय वेद में होता है स्वार्थ में = प्रकृत्यर्थ में। "अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति।"

३५०५ अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि ५।४।१०३।

तत्पुरुषाट्टच् स्यात्समासान्तः। ब्रह्मसामं भवति। देवच्छन्दसानि।

नपुंसक अनन्त शब्द एवं असन्त शब्दान्त तत्पुरुष से वेद में टच् प्रत्यय होता है। ब्रह्मसामम्। देवच्छान्दसानि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३५०६ बहुप्रजाश्छन्दसि ५।४।१२३।

बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश।

'बहुप्रजाः' वेद में निपातन से सिद्ध होता है। अधिक सन्ततियुक्त अर्थ में बहुव्रीहि समास में असिच् प्रत्यय एवं प्रजा के आकार का 'यस्येति च' से लोप 'अत्वसन्तस्य' से दीर्घ बह्व्यः प्रजाः यस्य असौ बहुप्रजाः।

३५०७ छन्दसि च ५।४।१४२।

दन्तस्य दतृशब्दः स्याद् बहुव्रीहौ। उभयतो दतः प्रतिगृह्णाति।

छन्द में बहुव्रीहि समास में दन्त को दतृ आदेश होता है। दोनों ओर दांत वाला अर्थमें = उभयतः दन्ताः यस्य यहां उभयोदतः।

३५०८ ऋतश्छन्दसि ५।४।१५८।

ऋदन्ताद् बहुव्रीहेर्न कप्। हता माता यस्य हतमाता।

इति पञ्चमोऽध्यायः।

ह्रस्व ऋकार है अन्त में जिसको ऐसे बहुव्रीहि से कप् प्रत्यय नहीं होता है। हता माता यस्य यहां समासोत्तर 'नधृतश्च' से प्राप्त कप् का इसने निषेध किया 'हतमाता' यही रूप हुआ।

पं० श्रीबालकृष्ण पञ्चोलिविरचित रत्नप्रभा में वैदिक प्रकरण का पञ्चमाध्याय समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ षष्ठोऽध्यायः

'एकाचो द्वे प्रथमस्य' (सू २१७५) छन्दसि वेति वक्तव्यम् (वा ३४१४)। यो जागार। दाति प्रियाणि।

धातु के अवयय प्रथम जो अच् उसका द्वित्व होता है, यदि अजादि धातु द्वित्व संख्या = युक्त अच्वान् रहे तो द्वितीय अच् का द्वित्व होता है। अर्थात् हलादि एक अच् घटित में प्रथम एकाच् का द्वित्व वृक्षप्रलचनन्याय से व्यञ्जन घटित का होता है। एवं धातु यदि अजादि है किन्तु एकाच् घटित केवल है तो वहां भी प्रथमैकाच् का ही द्वित्व होता है। बभूव, आट, ऊर्णुनाव आदि में। इसका व्याख्यान प्रथम कर चुके हैं। वेद में धातुका द्वित्व विकल्प करके होता है। यथा—जागार। दाति।

३५०९ तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य ६।१।७।

तुजादिराकृतिगणः। प्रभर्ता तूतुजानः। सूर्यो मामहानम्। दाधार यः पृथिवीम्। स तूताव।

तुज् प्रभृति धातुओं का जो अभ्यास उसको दीर्घ होता है। तुज् लिट् कानच् द्वित्वादि तूतुजानः। धृ से लिट् द्वित्वादि दाधार। तु लिट् तूताव। ये रूप वेद में ही। लोक में ह्रस्व अभ्यासका अच् रहेगा यथा तुतुजानः। दधार। तुताव।

३५१०. बहुलं छन्दसि ६।१।३४।

ह्वः सम्प्रसारणं स्यात्। इन्द्रमाहुवे ऊतये। ऋचि त्रेरुत्तरपदादिलोपश्च छन्दसि (वा २४७२)। ऋच्शब्दे परे त्रेः सम्प्रसारणमुत्तरपदादेर्लोपश्चेति वक्तव्यम्। तृचं सूक्तम्। छन्दसि किम्? त्र्यृचानि। रयेर्मतौ बहुलम् (वा. ३४७३) रेवान्। रयिमान्पुष्टिवर्धनः।

वेद में आङ्पूर्वक ह्वेञ् धातु का सम्प्रसारण होता है। आहुवे—लट् उत्तम पुरुष एकवचन शप्विकरण उसका 'बहुलं छन्दसि' से लुक्, सम्प्रसारण, उवङ् हुआ। वेद में ऋच् शब्द परमें रहते त्रिशब्दावयव रेफ रूप यण् का सम्प्रसारण होता है एवं उत्तर पदके आदि वर्ण का लोप होता है। तिस्रः ऋचः यस्मिन् तत् तृचम्—ऋक्पूर० से समासान्त अप्रत्यय हुआ, सम्प्रसारण पूर्वरूप 'ऋ' का लोप। लोकमें 'त्र्यृचानि' शब्द में मतुप् पर रहते रयि का सम्प्रसारण बहुल होता है। रेवान् 'छन्दसीरः' के वकारादेश हुआ। संप्रसारणाभाव में रयिमान्।

३५११ चायः की ६।१।३५।

न्यन्यं चिक्युर्न निचिक्युरन्यम्। लिटि उसि रूपम्। बहुलग्रहणानुवृत्तेर्नेह। अग्निं ज्योतिर्निचाय्य।

छन्द में चाय् को विकल्प की आदेश होता है। चिक्युः। कुहोश्चुः से चु। लिट् उसका यह रूप है। निचाय्य यहां कि आदेश नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३५१२ अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषेतित्याजश्राताश्रितमाशीराशीर्ताः ६।१।३६।

एते छन्दसि निपात्यन्ते। इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथाम्। स्पर्धेर्लेङि आथाम्। अर्कमानृचुः। वसून्यानृहुः। अर्चेर्हेश्च लिटथुसि। चिच्युषे। च्युङो लिटि थासि। यस्तित्याज। त्यजेर्णलि। श्रातास्त इन्द्र सोमाः। श्रिता नो ग्रहाः। श्रीञ् पाके निष्ठायाम्। आशिरं दुह्रे। मध्यत आशीर्तः। श्रीञ् एव किपि निष्ठायां च।

अपस्पृधेथाम्, आनृचुः, आनृहुः, चिच्युषे, तित्याज, श्राता, श्रिताम्, अशीर, आशीर्त ये ये निपातन से सिद्ध होते है। १—स्पृध् ल आथाम्। २—अर्च, लिट् उस्। ३—अर्ह लिट् उस्। ४—च्युङ् लिट् थास्। ५—त्यज् लिट् णल्। ६—पाकार्थक श्रै+क्त आत्व। ७—आङ् श्री किप् क्त। धातुको शिर आदेश। ८—आङ् श्री क्त शिरादेश निपातन से नत्वाभाव है।

३५१३ खिदेश्छन्दसि ६।१।५२।

खिद दैन्ये। अस्यैच आद्वा स्याद्वा। चिखाद। चिखेदेत्यर्थः।

दैन्य अर्थवाचक खिद् अवयव जो एकार उसको आकारादेश होता है। चिखेद लोक में, वेद में चिखाद।

३५१४ शीर्षश्छन्दसि ६।१।६०।

शिरःशब्दस्य शीर्षन् स्यात्। शीष्णः शीर्ष्णो जगतः।

वेद में शिरस के स्थान में शीर्षन् आदेश होता है।

३५१५ वा छन्दसि ६।१।१०६।

दीर्घाज्जसि इचि पूर्वसवर्णदीर्घो वा स्यात्। वाराही। वाराह्यौ। मानुषीरीळते विशः। उत्तरसूत्रद्वयेऽपीदं वाक्यभेदेन सम्बध्यते। तेनामि पूर्वत्वं वा स्यात्। शमीं च शम्यं च। सूर्यं सुषिराभिव। 'सम्प्रसारणाच्च' (सू ३३०) इति पूर्वरूपमपि वा। इज्यमानः। यज्यमानः।

वेद में दीर्घ से पर जस् या इच् पर रहते पूर्वसवर्ण दीर्घ विकल्प से होता है। वाराही वाराह्यौ। वराहस्य विकार अर्थ में 'प्राणिरजतादिभ्यः' से अञ् एवं स्त्रीलिङ्ग में ङीप्। द्विवचन में पूर्वसवर्ण दीर्घके अभाव में यण्। मानुषी प्रथमैकवचन में है मनु से अञ् जातार्थ में षुक् आगम। उत्तर दो सूत्रों में भी यह वाक्यभेद से सम्बद्ध है। अम् में पूर्वसवर्ण दीर्घ विकल्प से होता है—शमीम् शम्यम्। 'सम्प्रसारणाच्च' से पूर्वरूप भी विकल्प से होता है—इज्यमानः। यज्यमानः। यज् लिङ् शानच् यक्, 'ग्रहिज्या' सूत्र से सम्प्रसारण हुआ। पूर्वरूपाभाव में यण्।

३५१६ शेश्छन्दसि बहुलम् ६।१।७०।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोपः स्यात्। या ते गात्राणाम्। ता ता पिण्डानाम्। एमन्नादिषु छन्दसि पररूपम् (वा० ३६६५)। अपां त्वेमन्। अपां त्वोद्यम्।

वेद में शि का विकल्प लोप होता है। यानि में 'या', तानि में 'ता' हुआ वेद में। एमन् आदि पर रहते छन्द में पररूप होता है। त्वेमन्। त्वोधन्।

३५१७ भय्यप्रवय्ये च छन्दसि ६।१।८३।

बिभेत्यस्मादिति भय्यः। एतेः-प्रवय्या। इति स्त्रियामेव निपातनम्। प्रवेमित्यन्यत्र। छन्दसि किम्? भेयम्। प्रवेयम्। ह्रदय्या उपसंख्यानम् (वा० ३४४५)। ह्रदे भवा ह्रदय्या आपः। भवे छन्दसि यत्।

वेद में यत् प्रत्ययपरक भी एवं प्रपूर्वक वी से निपातन-प्रयुक्त य आदेश होता है। जिससे भय प्रतीयमान रहे वहां भय्यः—बिभेति अस्मात् इति भय्यः। प्रपूर्वक वी से स्त्रीलिङ्ग में में ही निपातन होता है। अन्यत्र प्रवेयम् यही वेद में प्रवय्या। वेदभिन्न में भेयम्। प्रवेयम्। ह्रदय्या निपातन सिद्ध होता है। यादेश होता है। ह्रदे भवा ह्रदय्याः। भवार्थ में यत् प्रत्यय।

३५१८ प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे ६।१।१५।

ऋक्पादमध्यस्थ एङ् प्रकृत्या स्यादति परे न तु वकारयकारपरेऽति। उपप्रयन्तो अध्वरम्। सुजाते अश्वसूनृते। अन्तःपादं किम्? एतासं एतेऽर्चन्ति। अव्यपरे किम्? तेऽवदन्।

यकार या वकार पर में न रहे ऐसा जो ह्रस्व अकार वह पर में रहने पर ऋक् पाद मध्यस्थ एकार एवं ओकार को प्रकृति भाव होता है अर्थात् स्वभाव से अवस्थिति उनकी रहती है सन्धिरूप विकारात्मक कार्य का अभाव इस सूत्र ने बोधन किया। उदाहरण में 'एङः पदान्तादति' से पूर्वरूप न हुआ। उपयन्तो अध्वरम्। पादमध्यस्थ के अभाव में सन्धि—एतेऽर्चन्ति। 'अव्यपरे' से तेऽवदन्। तेऽयजन्।

३५१९ अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च ६।१।११६।

एषु व्यपरेऽप्यति एङ् प्रकृत्या। वसुभिर्नो अव्यात्। मित्रमहो अवद्यात्। मा शिवासो अवक्रमुः। ते नो अव्रत। शतधारो अयं मणिः। ते नो अवन्तु। कुशिकासो अवस्यवः। यद्यपि बहृचैस्तेनोऽवन्तु रथतूः, सोऽयमागात्, तेऽरुणेभिरित्यादौ प्रकृतिभावो न क्रियते तथापि बाहुलकात्समाधेयम्। प्रातिशाख्ये तु वाचनिक एवायमर्थः।

वेद में अव्यात्, अवद्यात्, अवक्रमुः, अव्रत, अयम्, अवन्तु, अवस्यु इनका अवयव यकार या वकार परक अत् पर रहते एङ् का प्रकृतिभाव होता है जहां प्रकृतिभाव का अभाव है वहां बाहुलक समाधान का समाश्रयण करना चाहिए वेद व्याकरण में तो यह अर्थ वाचनिक है।

अव्यात् आदि में इनका अनुकरण के कारण सुबन्त से समास है। अवरक्षणे आशीर्लिङ्। अवद्यात् पञ्चमी का एकवचन है। अवक्रमुः—अवपूर्वक क्रम् से लिट् उस् में द्विवचन-विकल्प

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छन्द में होने से द्वित्वाभाव यहां है। कोई 'अवचक्रमुः' कहते हैं। किन्तु इस कृतद्वित्व का उदाहरण का अत्यन्ताभाव ही है। अवक्रमुः यही प्रयोग उपलब्ध है। अव्रत इति—वृङ् या वृञ् 'मन्त्रे घस' से च्लिका लुक्। आत्मनेपद में झ को अदादेश। इदम् का सु में 'इदोऽय् पुंसि' से अय् आदेश अवन्तु अव से लोट्। अवस्यवः—अव् से असुन् कर क्यच् प्रत्यय कर 'क्याच्छन्दसि' से उकारादेश है।

३५२० यजुष्युरः ६।१।११७।

उरःशब्द एङन्तोऽति प्रकृत्या यजुषि। उरो अन्तरिक्षम्। यजुषि पादाभावादनन्तःपादार्थं वचनम्।

यजुर्वेद में अकार पर रहते एङन्त उरस् शब्द प्रकृतिभाव को प्राप्त करता है। उसे अन्तरिक्षम्। 'प्रकृत्यान्तः पादम्' से कार्यनिर्वाह यजुः में पाद न होने से सम्भव न था अतः सूत्र यह किया है।

३५२१ आपो जुषाणो वृष्णो वर्षिष्ठेऽम्बेम्बालेऽम्बिके पूर्वे ६।१।११८।

यजुषि अति प्रकृत्या। आपो अस्मान्मातरः। जुषाणो अग्निराज्यस्य। वृष्णो अंशुभ्याम्। वर्षिष्ठे अधि नाके। अम्बे अम्बाले अम्बिके। अस्मादेव वचनात्। 'अम्बार्थ' (सू २६७) इति ह्रस्वो न।

यजुः वेद में ह्रस्वाकार पर रहते आपो, जुषाणो, वृष्णो, वर्षिष्ठे, अम्बे, अम्बाले, अम्बिके इनका अवयव जो एङ् उसका प्रकृतिभाव होता है। यहां 'अम्बे', 'अम्बाले' एवं 'अम्बिके' इनका प्रकृतिभाव विधान सामर्थ्य से ह्रस्व आदेश नहीं होता है। आपः जसन्त, जुषाणः सुविभक्त्यन्त, वृष्णः शस् प्रत्ययान्त है।

३५२२ अङ्ग इत्यादौ च ६।१।११९।

अङ्गशब्दे य एङ् तदादौ च अकारे एङ्पूर्वः सोऽति प्रकृत्या यजुषि। 'प्राणो अङ्गे अङ्गे अदीव्यत्'।

यजुर्वेद में अकार पर रहते अङ्ग का जो एङ् उसका प्रकृतिभाव होता है, एवं अङ्गे पर रहते उससे पूर्व जो एङ् उसका भी प्रकृतिभाव होता है। यथा—प्राणो अङ्गे अङ्गे अदीव्यत्।

३५२३ अनुदात्ते च कुधपरे ६।१।१२०।

कवर्गधकारपरे अनुदात्तेऽति परे एङ् प्रकृत्या यजुषि। अयं सो अग्निः। अयं सो अध्वरः। अनुदात्ते किम्? अथोऽग्रे रुद्रे। अग्रशब्द आद्युदात्तः। कुधपरे किम्? सोऽयमग्निमतः।

कवर्ग या धकार परक अनुदात्त अत् परक एङ् का प्रकृतिभाव होता है। अग्नि का अकार अनुदात्त है। अग्र का अकार आदि उदात्त है। अयं सो अग्निः। अथोऽग्रे रुद्रे। सोऽयम् यहां यकारपरक अकार होने से प्रकृतिभाव न हुआ। 'एङः' से पूर्वरूप हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३५२४ अवपथासि च ६।१।१२१।

अनुदात्ते अकारादौ अवपथाःशब्दे यजुषि एङ् प्रकृत्या। त्री रुद्रेभ्यो अवपथाः। वपेस्थासि लङि 'तिङ्ङतिङः' (सू ३६३५) इत्यनुदात्तत्वम्। अनुदात्ते किम्? यद्रुद्रेभ्यो वपथाः। 'निपातैर्यद्यदि' (सू ६६३७) इति निघातो न।

अनुदात्त अकार है आदि में जिसको ऐसा जो अवपथाः शब्द उसके पर में रहते एङ् का प्रकृतिभाव होता है। त्रीरुद्रेभ्यो अवपथाः। वप् लङ् थास् 'तिङ्ङतिङः' से निघात हुआ है। जहां अनुदात्त नहीं अकार है वहां सन्धि होती ही है। यद् योग में निपातैर्यद् यदि से निघात प्रतिषेध होता है—यद् रुद्रेभ्योऽवपथाः।

३५२५ आङोऽनुनासिकश्छन्दसि ६।१।१२६।

आङोऽचि परेऽनुनासिकः स्यात् स च प्रकृत्या। अभ्र आँ अपः। गभीर आँ उग्रपुत्रे। ईषाअक्षादीनां छन्दसि प्रकृतिभावो वक्तव्यः। (वा० ३६८५)। ईषाअक्षो हिरण्ययः। ज्या इयम्। पूषा अविष्टु।

वेद में अच् पर रहते आङ् अनुनासिक होता है एवं वह प्रकृतिभाव युक्त है। अभ्र आँ अपः। यहां आङ् सप्तम्यर्थद्योतक है। वेद में ईषा, अक्षादि का प्रकृतिभाव होता है।

३५२६ स्यश्छन्दसि बहुलम् ६।१।१३३।

स्य इत्यस्य सोर्लोपः स्याद्वलि। एष स्य भानुः।

स्य का सु का वेद में व्यञ्जन पर रहते लुक् होता है। स्य भानुः।

३५२७ ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे ६।१।१५१।

ह्रस्वात्परस्य चन्द्रशब्दस्योत्तरपदस्य सुडागमः स्यान्मन्त्रे। हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः। सुश्चन्द्र दस्म।

मन्त्र में ह्रस्व के उत्तर चन्द्र को सुट् का आगम होता है। हरिश्चन्द्रः। सुश्चन्द्रः।

३५२८ पितरामातरा च छन्दसि ६।३।३३।

द्वन्द्वे निपातः। आ मा गन्तां पितरामातरा च। चाद्विपरीतमपि। न मातरापितरा नू चिदिष्टौ। 'समानस्य छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु' (१०१२) समानस्य सः स्यान्मूर्धादिभिन्ने उत्तरपदे। सगर्भ्यः। छन्दसि स्त्रियां बहुलम् (वा० ३६६४)। विष्वग्देवयोरद्रयादेशः। विश्वाची च घृताची च। देवद्रीचीं नयत देवयन्तः। कद्रीची।

द्वन्द्व समास में छन्द में 'पितरामातरा' निपातन से सिद्ध होता है। अनेकार्थक निपात जो च शब्द सूत्रस्थ है उससे यहां विपरीत बोधन भी होता है। पूर्वपद को अरङ् आदेश एवं उत्तर पद से पर विभक्ति को आकार आदेश कर 'ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः' से गुण होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेद में मूर्ध आदि से भिन्न उत्तर पद में रहने पर समान को स आदेश होता है। सगर्भ्यः—समानो गर्भः सगर्भः, तत्र भवः सगर्भ्यः। 'सगर्भसयूथसनुताद्यत्' से यत् प्रत्यय होता है। मूर्धादि उत्तरपदक जहां समान है वहां समानमूर्धा, समानप्रभृतयः, समानोदर्काः।

वेद में स्त्रीलिङ्ग में अद्रि आदेश विकल्प करके होता है। 'विष्वग्देवयोः' से अद्रि आदेश न हुआ—विष्वाची आदि में।

३५२९ सधमादस्थयोश्छन्दसि ६।३।९६।

सहस्य सधादेशः स्यात्। इन्द्रं त्वास्मिन्त्सधमादे। सोमः सधस्थम्।

सह को सध आदेश वेद में माद एवं स्थ पर में रहते होता है।

३५३० पथि च छन्दसि ६।३।१०८।

पथिशब्दे उत्तरपदे कोः कवं कादेशश्च। कवपथः। कापथः। कुपथः।

पथिन् शब्द उत्तरपद में रहते कु को कव एवं कादेश विकल्प से होता है। कवपथः। कापथः। कुपथः।

३५३१ साढ्यै साढ्वा साढेति निगमे ६।३।११३।

सहेः क्त्वाप्रत्यये आद्यं द्वयं, तृनि तृतीयं निपात्यते। मुरुद्भिरुग्रः। पृतनासु साळ्हा। अचोर्मध्यस्थस्य डस्य ळः ढस्य ल्हश्च प्रातिशाख्ये विहितः। आह हि—द्व्योश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य सम्पद्यते स डकारो ळकारः ल्हकारतामेति स एव चास्य ढकारः सन्नूष्मणा संप्रयुक्त इति।

सह धातु से क्त्वा प्रत्यय करके निपातन से साढ्यै, साढ्वा ये दो रूप निपातन से सिद्ध होते हैं। एवं तृन् प्रत्ययान्त साढा रूप निपातन से सिद्ध होता है वेद में।

सह् क्त्वा उसको ध्यै, ढकार, ष्टुत्व, ढलोप, दीर्घ साढ्यै। सह् क्त्वा ढत्वादि पूर्ववत् साढ्वा। तृन् में साढा। वेद व्याकरण में दो स्वर के मध्यस्थ डकार ळकार रूप को प्राप्त करता है यही डकार ऊष्मवर्ण संयुक्त होने से ढकार होकर दो अचों के मध्यवर्ती होकर 'ह्ल' कार रूप सम्पन्न होता है।

३५३२ छन्दसि च ६।३।१२६।

अष्टन आत्वं स्यादुत्तरपदे। अष्टापदी।

उत्तरपदपरक अष्टन् को आकार होता है वेद में। अष्टपाद है जिस में बहुव्रीहि कर के संख्यासुपूर्वस्य से पाद के अन्त्य का लोप, 'पादोऽन्यतरस्याम्' से ङीप् पाद् को पद अष्टपदी।

३५३३ मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ ६।३।१३१।

दीर्घः स्यान्मन्त्रे। अश्वावतीं सोमावतीम्। इन्द्रियावान्मदिन्तमः। विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावत।

मन्त्र में मतुप् प्रत्यय पर रहते सोम, अश्व, इन्द्रिय, विश्व, देव्य, इनके अन्त्य अच् का दीर्घ होता है। अश्वावतीम् प्रभृति में।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३५३४ ओषधेश्च विभक्तावप्रथमायाम् ६।३।१३२।

दीर्घः स्यान्मन्त्रे। यदोषधीभ्यः। अदुघात्योषधीषुः।

वेदमन्त्र में प्रथमा से इतर विभक्ति पर रहते ओषधि के अन्त्याच् का दीर्घ होता है। ओषधीभ्यः।

३५३५ ऋचितुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम् ६।३।१३३।

दीर्घः स्यात्। आ तू न इन्द्र। नू मर्तः। उत वा घा स्यालात्। मक्षू गोमन्तमीमहे। भरता जातवेदसम्। तङिति थादेशस्य ङित्त्वपक्षे ग्रहणम्। तेनेह न। शृणोत ग्रावाणः। कूर्मनाः। अत्रा ते भद्रा। यत्रा नश्चक्रा। उरुष्याणः।

ऋक् के विषय में तु, नु, घ, मक्षु, तङ्, कु, त्र, उरुष्य, इनका जो अन्त्य अच् उसका दीर्घ होता है। तङ् से थादेश ङित् का ग्रहण है। घ शब्द का ही वेद में दीर्घ दर्शन से घ शब्द का ग्रहण यहां है, तरप् तमप् का नहीं। था देश तङ् का ग्रहण से 'शृणोत' यहां दीर्घभाव हुआ। भरत लोट् मध्यम पुरुष बहुवचन का धकार को 'लोटो लङ्वत्' अतिदेश से थ को तादेश 'तस्थस्थमिपाम्' से हुआ। शृणोत यहां 'तप्तनप्तनथनाश्च' तप् आदेश है, वह पित् है अतः गुण हुआ। उरुष्याण इति—उरुष्य कण्वादियगन्त है उसका रक्षण अर्थ है। लोट् के सिप् को हि आदेश है, 'अतो हेः' से हि का लुक् है। नकार को 'नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः' से णकार हुआ।

३५३६ इकः सुञि ६।३।१३४।

ऋचि दीर्घ इत्येव। अभीषुणः सखीनाम्। 'सुञः' (३६४४) इति षः। 'नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः (३६४६) इति णः।

ऋक् में सुञ् पर रहते इगन्त का जो अन्त्य अच् उसको दीर्घ आदेश होता है। अभीषुणः—'सुञः' सूत्र से षकारादेश 'नश्चधातुस्थ' से णकारादेश नकार को हुआ।

३५३७ द्व्यचोऽतस्तिङः ६।३।१३५।

मन्त्रे दीर्घः। विद्मा हि चक्राजरसम्।

तिङन्त तदादि जो दो अच्युक्त उसके अन्त्य अकार का दीर्घ होता है ऋग् विषय में। विद्मा—विद ज्ञाने लङ् 'विदो लटो वा' से मस् के स्थान में मकार आदेश हुआ, दीर्घ विद्मा। चक्रा—लिट् के मध्यम पुरुष बहुवचन का यह रूप है।

३५३८ निपातस्य च ६।३।१३६।

एवा हि ते।

ऋग् विषय में निपात का दीर्घ होता है। यथा एवा—चादित्वप्रयुक्त निपात है।

३५३९ अन्येषामपि दृश्यते ६।३।१३७।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्येषामपि पूर्वपदस्थानां दीर्घः स्यात्। पूरुषः। दण्डादण्डि।

अन्य का भी पूर्वपदस्थ का दीर्घ होता है। यथा पूरुषः। दण्डादण्डि। इस सूत्र की व्याख्या प्रथम कर चुके हैं—६-३-१३७ अ० सू०।

३५४० छन्दस्युभयथा ६।४।५।

नामि दीर्घो वा। धाता धातॄणाम्। बह्वृचाः। तैत्तिरीयास्तु ह्रस्वमेव पठन्ति।

छन्द में आम् परक पूर्व स्वर का विकल्प करके दीर्घ होता है। तैत्तिरीयों के मत में ह्रस्व भी होता है। धातॄणाम इति बह्वृच् लोग कहते हैं। तै० धातृणाम् कहते हैं।

३५४१ वा षपूर्वस्य निगमे ६।४।९।

षपूर्वस्याच उपधाया वा दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे। ऋभुक्षाणम्। ऋभुक्षणम्। निगमे किम्। तक्षा। तक्षाणौ।

निगम में सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान विभक्ति पर रहते षकारपूर्वक अन् के अकार का विकल्प दीर्घ होता है। यथा—ऋभुक्षाणम्। ऋभुक्षणम्। निगमभिन्न में नित्य दीर्घ होता है—तक्षा तक्षाणौ। ऋभुक्षिन् उणादिनिष्पन्न है। 'इतोऽत्' से इकार को अत् हुआ है।

३५४२ जनिता मन्त्रे ६।४।५३।

इडादौ तृचि णिलोपो निपात्यते। यो नः पिता जनिता।

इट् है आदि अवयव जिसका ऐसे तृच् पर में रहते 'जनिता' रूप सिद्धयर्थ णिच् का लोप होता है वेद में। लोक में जनयिता।

३५४३ शमिता यज्ञे ६।४।५४।

शमयितेत्यर्थः।

वेद में यज्ञविषय में इडादि तृच्परक णि का 'शमिता' की सिद्धि के लिए लोप होता है। शमिता। लोक में शमयिता।

३५४४ युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि ६।४।५८।

ल्यपीत्यनुवर्तते। वियूय। विप्लूय। 'आडजादीनाम्' (सू २२५४)।

वेद में ल्यप् पर में रहते यु एवं प्लु के उकार को दीर्घ होता है। वियूय विप्लूय। वेद भिन्न में आयुत्य। आप्लुत्य।

३५४५ छन्दस्यपि दृश्यते ६।४।७३।

अनजादीनामित्यर्थः। आनट्। आर्वः। 'न माङ्योगे' (सू २२२८)।

लुङादि लकारपरक अजादि धातुओं को आट् आगम होता है जिस सूत्र की व्याख्या प्रथम कर चुके हैं। खण्डन एवं समर्थन इसका कर चुके हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३५४६ बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि ६।४।७५।

अडाटौ न स्तो, माङ्योगेऽपि स्तः। जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय। मा वः क्षेत्रे परबीजान्यवाप्सुः।

आनट्—नश् लुङ् 'मन्त्रे घस' सूत्र से च्लिका लुक्, 'नशेर्वा' सूत्र की अप्रवृत्ति में 'व्रश्च' सूत्र से षकार जश्त्व से डकार उसको चर्त्व से टकार होता है। आवः—वृञ् का लङ् में च्लिका लुक् गुण रेफ का विसर्ग है।

माङ् के योग में अट् एवं आट् आगम धातुओं को लुङ्, लङ् एवं लृङ् पर में रहते नहीं होते हैं। इसकी व्याख्या प्रथम ६।४-७४ पर हो चुकी है यहां प्रसङ्ग से इसका उपन्यास है उत्तर सूत्र में अष्टाध्यायी पाठ के ज्ञानार्थ है।

वेद में माङ् का योग हो या माङ् का योग न हो अट् एवं आट् नहीं होता है। एवं क्वचित् माङ् योग में भी बहुल ग्रहण से अट् आट् होते हैं। जनिष्ठाः—जन् से लुङ् थास् अडागमाभाव है। माङ् योग में अडागम हुआ उसका उदाहरण—मा व इति तुम लोगों की स्त्रियों में अन्य पुरुषों के बीज का रोपण मत करो = वो युष्माकं क्षेत्रे=भार्य्यायां परबीजानि=अन्येषां वीर्याणि मा अवाप्सुः = उप्तानि मामवन्। वेञ् से कर्म में लुङ् व्यत्यय से परस्मैपद, च्लि को सिच्, 'वद व्रज' सूत्र से वृद्धि। यह काशिकानुरोध से उदाहरण कहा गया है, वस्तुतस्तु, 'वाप्सुः' यही पाठ है। माङ् योग में अट् का उदाहरण अन्वेष्य = खोजने योग्य है।

३५४७ इरयो रे ६।४।७६।

प्रथमं दध्रे आपः। रेभावस्याऽऽभीयत्वेनाऽसिद्धत्वादालोपः। अत्र रेशब्दस्येटि कृते पुनरपि रेभावस्तदर्थं च सूत्रे द्विवचनान्तं निर्दिष्टमिरयोरिति।

वेदमें धातु से पर जो 'इरे' उसको 'रे' आदेश होता है। यथा दध्रे—धाञ् से लिट् झप्रत्यय 'लिटस्तझयोः' सूत्र से इरेच कर उस को रे आदेश हुआ। आलोप से पर रे आदेश है अतः परत्व प्रयुक्त आत्व को बाध 'रे' करेगा तब अजादि परत्वाभाव से 'आतो लोप इटि च' से आकार का लोप न होना चाहिए यह शङ्का हुई, 'असिद्धवदत्राभात्' सूत्र से रे आदेश के असिद्धत्व प्रयुक्त उक्त शङ्का का निरास हुआ। अर्थात् रे के असिद्ध से इरे स्थानी है उसके ज्ञान से अजादिप्रत्यय-परत्वप्रयुक्त आकार लोप हुआ। उसके बाद रे भाव को ही क्रादिनियम-प्रयुक्त इडागम प्राप्त है, अनिट् कृ आदि धातुओं में 'चक्रे' आदि में इडागम की अप्राप्ति स्थल में 'रे' भाव चरितार्थ है अतः 'रे' का विधान-सामर्थ्य से इडागम नहीं होगा यह तो कह नहीं सकते हैं ऐसी परिस्थिति में इडागम होकर 'इरे' रूप पुनः लाक्षणिक सम्पन्न हुआ, उसको भी सूत्र में 'इरयोः' यह द्विवचनान्त-करण-सामर्थ्य से पुनः रेभाव हुआ।

विमर्श—यहा सूत्र में द्विवचन ग्रहण-सामर्थ्य से लक्षणप्रतिपदोक्त परिभाषा अनित्य है उसकी यहां अप्रवृत्ति ही है। अन्यथा सूत्रस्थ द्विवचनान्तकरण व्यर्थ होगा। 'इरयो रे' में स्वविधेय 'रे' तद्घटित 'इरे' वह 'इरे' 'इरयो रे' सूत्र का उद्देश्य नहीं हो सकता है क्योंकि 'घटवद् भूतले घटः' यह वाक्य नहीं होता, किन्तु 'भूतले घटः' यही होता है, उद्देश्य सिद्ध रहे, एवं विधेय असिद्ध रहे वहां उद्देश्यविधेय भाव होता है, अपूर्वबोध्यत्व विधेय को होता है, घटसत्ताविशिष्ट भूतलज्ञान प्रथमतः सिद्ध होने पर उसको उद्देश्य कर घटत्व में विधेयता-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बोधन करना असङ्गत है, तथैव प्रकृत में सूत्र विधेय रे-घटित 'इरे' में 'इरयोः' सूत्रस्थ उद्देश्यता सम्भव नहीं है तो भी द्विवचनग्रहण-सामर्थ्य से स्वविधेय-घटित स्व का उद्देश्य यहां है इस को बोधनार्थ यहां द्विवचन निर्देश है। "स्वविधेयघटितस्य स्वस्मिन्नुद्देश्यत्वाप्राप्त्या तत्प्राप्तये द्विवचनम्" ऐसी परिस्थिति में द्विवचनान्तनिर्देश 'लक्ष्ये लक्षणं सकृदेव प्रवर्तते' न्याय-ज्ञापनार्थ नहीं है। यह शास्त्रीय सिद्धान्त है। यत् शब्दार्थ का योग रहते जो वस्तु सिद्ध रहे उसे उद्देश्य कहते हैं। तत् शब्दार्थका योग रहते जो वस्तु असिद्ध है, उसको अपूर्वबोधनार्थ जो कहा जाय उसको विधेय=विधान कर्म कहा जाता है। सूत्र विधान में प्रकृष्टोपकारक होने से करण है, विधान क्रिया है उस विधानक्रिया का कर्ता आचार्य है। आचार्यकर्तृक तत्तत्कार्यकर्मकविधान यही सर्वत्र ज्ञान करना चाहिए। जो सूत्र जिस कार्य को बोधन करे वह कार्य विधान क्रिया का कर्म=विधेय होता है। विधा+यत् 'इद्यति' से इत्व कर गुण विधेय यहां यत् प्रत्यय कर्म रूप अर्थ में है।

३५४८ छन्दस्युभयथा ६।४।८६।

भूसुधियोर्यण् स्यादियङुवङौ च। वनेषु चित्रं विभ्वम्। विभुवं वा। सुध्यो हव्यमग्ने। सुधियो वा। तन्वादीनां छन्दसि बहुलम् (वा० ४११५) तन्वं पुषेम। तनुवं वा। त्र्यम्बकम् त्रियम्बकम्।

वेद में भू एवं सुधी को यण् आदेश एवं इयङ् आदेश दोनों होते हैं। यथा विभ्वम्। विभुवम्। सुध्यः। सुधियः। तनु आदि शब्दका वेद में इयङ् एवं यण् बाहुलक होता है। तन्वम्। तनुवम्। त्र्यम्बकम्। त्रियम्बकम्। त्रीणि अम्बकानि=नेत्राणि यस्य असौ त्र्यम्बकः शिवः।

३५४९ तनिपत्योश्छन्दसि ६।४।९९।

एतयोरुपधालोपः क्ङिति प्रत्यये। वितत्निरे कवयः। शकुना इव पप्तिम। भाषायां वितेनिरे। पेतिम।

तन् एवं पत् की उपधा का लोप वेद में होता है कित् या ङित् प्रत्यय पर में रहते यथा वितत्निरे कवयः। पप्तिम। यहां अकार लोप असिद्ध होने पर भी अकार-लोपविधान-सामर्थ्य से 'अत एकहल्मध्ये' से एत्वाभ्यास लोप नहीं हुआ। पत्। लिट् मस् म को इट्। भाषा में वितेनिरे। पेतिम।

३५५० घसिभसोर्हलि च ६।४।१००।

सग्धिश्च मे। बुध्नां ते हरी धानाः। 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' (सू २४२५)।

वेद में हलादि एवं अजादि कित् या ङित् प्रत्यय पर रहते घस् एवं भस् धातुकी उपधा का दीर्घ होता है। यथा सग्धिश्च में। अद् से क्तिन् प्रत्यय, 'बहुलं छन्दसि' से घस्लादेश, उपधालोप, 'झलो झलि' से सकार लोप तकारको 'झषस्तथोः' से धकार, धकार को जश्त्व, समाना सधिः यहां समास करके 'समानस्य छन्दसि' से स आदेश हुआ। बध्नाम्—भस् लोट्, ताम्, श्नुः, नित्य भी उपधालोप को बाधकर बाहुलक से प्रथम 'श्लौ' से द्वित्वकर उपधालोप, सलोप, धत्व, जश्त्व कार्य हुए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हु एवं झलन्त धातु से पर हि को धि आदेश होता है—६।४।१०१ इसकी प्रथम भी व्याख्या हो चुकी है। यहां अष्टाध्यायी के क्रमबोधनपूर्वक उत्तर सूत्र में सम्बन्ध-ज्ञानार्थ उपन्यास इसका किया है।

३५५१ श्रुशृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि ६।४।१०२।

श्रुधी हवम्। शृणुधी गिरः। रायस्पूर्धि। उरुणस्कृधि। अपावृधि।

वेद में श्रु शृणु, पॄ, कृ, वृ इनसे पर हि को धि आदेश होता है। श्रुधि—'बहुलं छन्दसि' से शप् का लुक्, 'अन्येषामपि' से दीर्घ हुआ। शृणुधी—'श्रुवः शृ च' से शृ आदेश विधान-सामर्थ्य से 'उतश्च' से हि लुक् का अभाव, दीर्घ, पूर्धि—पॄ पालने शप् का लुक् 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से उकार, हलि च से दीर्घ। उरुणस्कृधि—'नश्च' सूत्र से णत्व, 'कः करत्' से विसर्ग को सकार। अपावृधि—दीर्घ पूर्ववत् हुआ।

३५५२ वा छन्दसि ३।४।८८।

हिरपिद्वा।

हि विकल्प करके अपित् होता है। यह हि सिप् के स्थानिक है।

३५५३ आडितश्च ६।४।१०३।

हेर्धिः स्यात्। रारन्धि। रमेर्व्यत्ययेन परस्मैपदम्। शपः श्लुरभ्यासदीर्घश्च। अस्मे प्रयन्धि। युयोधि जातवेदः। यमेः शपो लुक्। यौतेः शपः श्लुः।

वेद में अडित् हि के स्थान में धि आदेश होता है। यथा रारन्धि—रम् का व्यत्यय से परस्मैपद, शप् का श्लु द्वित्वादि अभ्यास को दीर्घ। युयोधि—यम् से शप् का श्लु से प्रयन्धि। यु से शप् का श्लु से युयोधि।

३५५४ मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः ६।४।१४१।

आत्मन्शब्दस्याऽऽदेर्लोपः स्यादाङि। त्मना देवेषु।

आङ्संज्ञक टा परे में रहते आत्मन् शब्द के आकार का लोप होता है। यथा त्मना देवेषु। लोक में आत्मना इति।

३५५५ विभाषर्जोश्छन्दसि ६।४।१६२।

ऋजुशब्दस्य ऋतः स्थाने रः स्याद्वा इष्ठेमेयस्सु। त्वं रजिष्ठमनुनेषि। ऋजिष्ठं वा।

वेद में इष्ठ, इमन्, ईयसुन् प्रत्यय परे रहते ऋजु शब्द के ऋकार को विकल्प र आदेश होता है। रजिष्ठम्। ऋजिष्ठं वा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३५५६ ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययादि छन्दसि ६। ४।१७५।

ऋतो भवमृत्व्यम्। वास्तुनि भवं वास्त्व्यम्। वास्त्वं च। मधुशब्दस्याणि स्त्रियां यणादेशो निपात्यते। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। हिरण्यशब्दाद्विहितस्य मयटो मशब्दस्य लोपो निपात्यते। हिरण्ययेन सविता रथेन।

इति षष्ठोऽध्यायः।

ऋत्व्य, वास्त्व्य, वास्त्व, माध्वी, हिरण्यय, ये निपातन से सिद्ध होते हैं। सप्तम्यन्त ऋतु शब्द से भव अर्थ में निपातन से यत् प्रत्यय यणादेश से ऋत्व्यः। वास्तु से अण् एवं यत् यणादेश निपातन से। मधु शब्द से अण् करके स्त्रीलिङ्ग में यणादेश हुआ। हिरण्य शब्द से विहित मयट् के मकार का निपातन से लोप।

प० श्री वा० कृ० पञ्चोलि विरचित वैदिक प्रक्रिया की रत्नप्रभा में षष्ठ अध्याय समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ सप्तमोऽध्यायः

'शीङो रुट्' (सू २४४२)।

३५५७ बहुलं छन्दसि ७।१।८।

रुडागमः स्यात्। 'लोपस्त आत्मनेपदेषु' (३५६३) इति पक्षे तलोपः। धेनवो दुह्रे। लोपाभावे घृतं दुह्रते। अदभ्रमस्य। 'अतो भिस ऐस्' (२०३)।

शीङ् धातु से पर झादेश अत् को रुट् आगम होता है (७।१।६) इसकी व्याख्या प्रथम हो चुकी है 'शेरते' उदाहरण भी दे चुके हैं। उत्तर में अनुवृत्त्यर्थ यहां इसका पाठ है।

वेद में शीङ् से पर झादेश अत् को विकल्प रुट् का आगम होता है। 'लोपस्थ आत्मनेपदेषु' सूत्र से पक्ष में तकार का लोप होता है। यथा-'दुहे' इति दुह् लट् टि को एत्व, झको अत् रुट् तकार लोप, लोपाभाव में 'दुहते'। 'अदभ्रम्' यहां दृश् लुङ् व्यत्यय से प्रथम पुरुष का बहुवचन के स्थान में उत्तमपुरुष का एकवचन, कर उसको रुट् का आगम यहां हुआ। ह्रस्व अकारान्त अङ्ग से पर भिस् को ऐस् आदेश होता है इसकी व्याख्या उदाहरण 'रामैः' यहां दे चुके हैं (७।१।९।)

३५५८ बहुलं छन्दसि ७।१।१०।

अग्निर्देवेभिः।

वेद में भिस् को ऐस् विकल्प से होता है—देवेभिः यहां एकार हुआ अकार को 'बहुवचने' सूत्र से।

३५५९ नेतराच्छन्दसि ७।१।२६।

स्वमोरदड् न। वार्त्रघ्नमितरम्। छन्दसि किम्? इतरत्काष्ठम्। 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (सू ३३३२)।

वेद में इतर शब्द से पर सु को एवं अम् को अदड् आदेश नहीं होता है। यथा इतरम्। लोक में इतरत् काष्ठम् हुआ।

३५६० क्त्वापि छन्दसि ७।१।३८।

यजमानं परिधापयित्वा।

अनञ् पूर्वक समास में क्त्वा को ल्यप् आदेश होता है, व्याख्या एवं इसके उदाहरण दे चुके हैं ।७।१।३७। में।

अनञ् समास में क्त्वा भी रहता है एवं ल्यप् भी। एवं समास या असमास में भी इस सूत्र की प्रवृत्ति से क्त्वा एवं ल्यप् होता है। अप्राप्त विषय में ल्यप् की प्रवृत्ति के लिए सूत्रस्थ 'अपि' शब्द है। अन्यथा 'वा छन्दसि' सूत्रकार कहते। परिधापयित्वा—ण्यन्त परिपूर्वक दधातेः से क्त्वा उसको ल्यप् प्राप्त होने पर क्त्वादेश।

३५६१ सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः ७।१।३९।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऋजवः सन्तु पन्थाः। पन्थान इति प्राप्ते सुः। परमे व्योमन्। व्योमनि इति प्राप्ते ङेर्लुक्। धीती मती सुष्टुती। धीत्या मत्या सुष्टुत्येति प्राप्ते पूर्वसवर्णदीर्घः। या सरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा अश्विना। यौ सुरथौ दिविस्पृशावित्यादौ प्राप्ते आ। नतादब्राह्मणम्। नतमिति प्राप्ते आत्। या देव विद्या ता त्वा। यमिति प्राप्ते। न युष्मे वाजबन्धवः। अस्मे इन्द्राबृहस्पती। युष्मासु अस्मभ्यमिति प्राप्ते 'शे'। उरुया। धृष्णुया। उरुणा। धृष्णुनेति प्राप्ते या। नाभा पृथिव्याः। नाभाविति प्राप्ते डा। ता अनुष्ठ्योच्यावयतात्। अनुष्ठानमनुष्ठा व्यवस्थावदङ्। आङो ङया। साधुया। साध्विति प्राप्ते याच्। वसन्ता यजेत। वसन्ते इति प्राप्ते आल्। इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम् (वा० ४३०८)। उर्विया। दार्विया। उरुणा दारुणेति प्राप्ते इया। सुक्षेत्रिया। सुक्षेत्रिणेति प्राप्ते डियाच्। दृतिं न शुष्कं सरसी शयनम्। ङेरीकार इत्याहुः। तत्राद्युदात्ते पदे प्राप्ते व्यत्ययेनान्तोदात्तता। वस्तुतस्तु ङीषन्तात् ङेर्लुक्। ईकारादेशस्य तूदाहरणान्तरं मृग्यम्। आङ्याजयारामुपसंख्यानम् (वा० ४३०९)। प्र बाहवा सिसृतम्। बाहुनेति प्राप्ते आङादेशः। 'घेर्ङिति' (सू २४५) इति गुणः। स्वप्नया। स्वप्नेनेति प्राप्ते अयाच्। स नः सिन्धुमिव नावया। नावेति प्राप्ते अयार्, रित्स्वरः।

वेद में सुप् के स्थान में सु, सुप् का लुक्, पूर्वसवर्ण दीर्घ, आ, आत्, शे, या, डा, ड्या, याच्, आल् ये आदेश होते हैं। जस् को सु आदेश से **पन्थाः**, लोक में पन्थानः। **परमे व्योमन्** यहां ङि प्रत्यय का लुक् हुआ। लोक में व्योमनि। **धीती मती** यहां पूर्वसवर्ण दीर्घ हुआ। लोक में धीत्या, मत्या। एवं **सुष्टुती**। लोक में सुष्टुत्या। 'दविस्पृशौ' यह प्राप्त था आ आदेश से **दिविस्पृशा** हुआ। **नतात्** यहां अम् को आदादेश हुआ। नतम् प्राप्त था। 'न विभक्तौ' से इत्संज्ञाभाव है। यम् प्राप्त था, **यात्** हुआ। **युष्मे**—यहां से आदेश हुआ सप्तमी ब० व० के सुप् को। **अस्मे**—यहां भ्यस् को शे आदेश हुआ। उरु या, धृष्णु या हुआ या से। उरुणा, धृष्णुना लोक में, नामौ प्राप्त था ङि को डा आदेश। भाव अङ् प्रत्ययान्त अनुष्ठा यहां अङ के स्थान में ड्या आदेश हुआ—**अनुष्ठ्या**। यहां व्यवस्था पद के समान अङ् आङ् के स्थान में ड्या कर ङित्व प्रयुक्त टि का लोप हुआ। साधु प्राप्त था याच् कर **साधुया** वसन्ते यजेत यहां प्राप्त था ङि को आल् होकर **वसन्ता**। लित् स्वरार्थ लकार है।

सुप् के स्थान में इया, डियाच्, ईकार आदेश भी होते हैं। उरुणा, दारुणा प्राप्त था वहां इया से **उर्विया**, **दार्विया** हुआ। सुक्षेत्रिणा प्राप्त था, सुक्षेत्रिया डियाच् हुआ। 'सरसि' प्राप्त था इकार को ईकारादेश हुआ—'सरसी' यहां आद्युदात्त प्राप्त था व्यत्यय से अन्तोदात्तत्व हुआ। वस्तुतः सरसी ङीष् प्रत्ययान्त है उससे विभक्ति का लुक् मात्र यहां है। ईकार आदेश का उदाहरण खोजने योग्य है।

सुपों के स्थान में आङ्, अयाच्, अयार् आदेश होते हैं। प्रबाहुना प्राप्त था **प्रबाहवा** हुआ। यहां आङ् आदेश टा के स्थान में हुआ है एवं घेर्ङिति से गुण, अवादेश। स्वप्नेन प्राप्त था

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अयाच् से 'स्वप्नया' हुआ। नावा ऐसा प्राप्त था टा को अयार् आदेश से नावया हुआ। रेफ की इत्संज्ञा 'रिति' से स्वरार्थ है।

३५६२ अमो मश् ७।१।४०।

मिबादेशस्यामो मश् स्यात्। अकार उच्चारणार्थः। शित्त्वात्सर्वादेशः। 'अस्तिसिचः' (सू २२२५) इतीट्। वधीं वृत्रम्। अवधिषमिति प्राप्ते।

वेद में मिप् के स्थान में जायमान अम् को मश् आदेश होता है। मश् में अकार उच्चारणार्थक एवं शकारेत् सर्वादेशार्थ है। 'अवधिषम्' प्राप्त था वहां वधीम् हुआ—हन् से लुङ् 'हनो वधः' से वधादेश हन् को हुआ, सिच् को सिच्, मिप् को अम्, उसको मश् आदेश, 'अस्ति सिचः' से अपृक्त मकार को ईडागम, सकारलोप, इट ईटि से हुआ, दीर्घ, बाहुलक प्रयुक्त अडागमाभाव है।

३५६३ लोपस्त आत्मनेपदेषु ७।१।४१।

छन्दसि। देवा अदुह्र। अदुहतेति प्राप्ते। दक्षिणतः शये। शेते इति प्राप्ते। आत्मने इति किम्? उत्सं दुहन्ति।

वेद में आत्मनेपद का जो तकार उसका लोप होता है। अदुहत लोक में। वेद में अदुह्—दुह् लङ् झ अत तकार का लोप रुडागम। शये। शेते लोक में। दुहन्ति यहां आत्मनेपदाभाव से तकार लोपाभाव हुआ।

३५६४ ध्वमो ध्वात् ७।१।४२।

अन्तरेवोष्माणं वारयध्वात्। वारयध्वमिति प्राप्ते।

वेद में ध्वम् को ध्मात् आदेश होता है। वारयध्वम् प्राप्त था वेद में वारयध्मात् हुआ। वृञ्, णिच् लोट् म० पु० व० वचन।

३५६५ यजध्वैनमिति च ७।१।४३।

एनमित्यस्मिन्परे ध्वमोऽन्तलोपो निपात्यते। यर्जध्वैनं प्रियमेधाः। वकारस्य यकारो निपात्यत इति वृत्तिकारोक्तिः प्रामादिकी।

'एनम्' पर रहते ध्वम् के अन्त्य मकार का लोप होता है। यहां वकार को यकार निपातन होता है यह वृत्ति ग्रन्थ असङ्गत है। यजध्वम् एनम् लोक में। वेद में मलोपकर वृद्धि से यजध्वैनम्।

३५६६ तस्य तात् ७।१।४४।

लोटो मध्यमपुरुषबहुवचनस्य स्थाने तात्स्यात्। गात्रमस्यानूनं कृणुतात्। कृणुतेति प्राप्ते। सूर्यं चक्षुर्गमयतात्। गमयतेति प्राप्ते।

मध्यमपुरुष बहुवचन में त को तात् होता है। 'कृणुत' प्राप्त था, कृणुतात् वेद में 'गमयत' प्राप्त था 'गमयतात्' हुआ।

३५६७ तप्तनप्तनथनाश्च ७।१।४५।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्येत्येव। शृणोत॑ ग्रावाणः। शृणुतेति प्राप्ते तप्। सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे। दधातन॒ द्रवि॑णं चित्रम॒स्मे। तनप्। मरुत॒स्तज्जुजु॑ष्टन। जुषध्वमिति प्राप्ते व्यत्ययेन परस्मैपदं श्लुश्च। विश्वे॑ देवासो मरुतो यति॒ष्ठन॑। यत्संख्यकाः स्थेत्यर्थः। यच्छब्दाच्छान्दसो डतिः। अस्तेस्तस्य थनादेशः।

वेद में त के स्थान में तप्, तनप्, तन, थन आदेश होता है। शृणुत प्राप्त था वेद में शृणोत तप् यहां हुआ। सुनोतन यहां तनप् हुआ। दधातन यहां भी तनप्। जुषध्वम् प्राप्त था व्यत्यय से परस्मैपद श्नुद्रित्वादि जुजुष्टन। 'यत्संख्यकाः स्थः' अर्थ में यत् से डति टिका लोप, अस् के पर तकार को थनादेश हुआ।

३५६८ इदन्तो मसि ७।१।४६।

'मसी'त्यविभक्तिको निर्देशः। इकार उच्चारणार्थः। मस् इत्ययमिकाररूपचरमावयवविशिष्टः स्यात्। मस इगागमः स्यादिति यावत्। नमो॒ भर॑न्त॒ एम॑सि। त्वम॒स्माकं॒ तव॑ स्मसि। इमः, स्मः इति प्राप्ते।

यहां सकार को उपमर्दनकर इकारान्तत्व अभिप्रेत नहीं है यदि ऐसा होता तो 'मस इत्' ऐसा ही कहते अतः सकार मस् के रहते ही इदन्तत्व का उपसंख्यान है। अर्थात् मस् को इक् आगम होता है। सूत्र में मसि में इकार उच्चारणमात्रफलक है, एवं लुप्त विभक्त्यन्त निर्देश है। 'इमः' 'स्मः' प्राप्त था वहां एमसि एवं स्मसि हुआ।

३५६९ क्त्वो यक् ७।१।४७।

दिवं॑ सुप॒र्णो ग॒त्वाय॑।

वेद में क्त्वा को यक् आगम होता है। गत्वाय। गम्+क्त्वा 'अनुदात्तोपदेश' से नकारलोप, क्त्वा को यक् आगम।

३५७० इष्ट्वीनमिति च ७।१।४८।

क्त्वाप्रत्ययस्य ईनम् अन्तादेशो निपात्यते। इष्ट्वीनं देवान्। इष्ट्वा इति प्राप्ते।

वेद में यज् से पर क्त्वा प्रत्यय को निपातन से 'ईनम्' अन्तादेश होता है। वेद में यज्+क्त्वा सम्प्रसारण, पूर्वरूप षत्व ष्टुत्व से इष्ट्वा प्राप्त था इष्ट्वीनम् वेद में हुआ।

३५७१ स्नात्व्यादयश्च ७।१।४९।

आदिशब्दः प्रकारार्थः। आकारस्य ईकारो निपात्यते। स्विन्नः स्ना॒त्वी मला॑दिव। पी॒त्वी सोमस्य वावृधे। स्नात्वा पीत्वेति प्राप्ते।

सूत्र में सादृश्यार्थक आदि शब्द है, सादृश्य एवं प्रकार ये दोनों पर्यायवाचक शब्द हैं। वेद में स्नात्वी पीत्वी आदि शब्द निपातित हैं, अर्थात् क्त्वा के अकार को ईकार आदेश होता है। लोक में स्नात्वा एवं पीत्वा होता है।

३५७२ आज्ञसेरसुक् ७।१।५०।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवर्णान्तादङ्गात्परस्य जसोऽसुक् स्यात्। देवासः। ब्राह्मणासः।

अवर्णान्त अङ्ग से पर जस् को असुक् आगम होता है। 'देवाः' 'ब्राह्मणाः' प्राप्त था 'देवासः' 'ब्राह्मणासः' हुआ।

३५७३ श्रीग्रामण्योश्छन्दसि ७।१।५६।

आमो नुट्। श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम्। सूतग्रामणीनाम्।

वेद में श्री एवं ग्रामणी से परवर्ती आम् को नुट् आगम होता है, श्रीणाम्। ग्रामणीनाम्। वाऽऽमि से विकल्प नदीसंज्ञा होती है, नदीसंज्ञा के अभाव में यह उदाहरण इस सूत्र का पूर्वोक्त है। नदीत्व-पक्ष में आम् को नुट् 'ह्रस्वनद्यापः' से सिद्ध ही था।

३५७४ गोः पादान्ते ७।१।५७।

विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम्। पादान्ते किम्? गवां शता पृक्षयामेषु। पादान्तेऽपि क्वचिन्न। छन्दसि सर्वेषां वैकल्पिकत्वात्। विराजं गोपतिं गवाम्।

वेद में चरणान्त-स्थित जो गो-शब्द उससे पर जो आम् उसको नुट् का आगम होता है। गोनाम्। पादान्त के अभाव में 'गवाम्'। सब विधियों के वेद में वैकल्पिक होने से पाद के अन्त-स्थित गो से पर आम् को नुट् नहीं भी होता है यथा 'गोपतिं गवाम्'।

३५७५ छन्दस्यपि दृश्यते ७।१।७६।

अस्थ्यादीनामनङ्। इन्द्रो दधीचो अस्थभिः।

वेद में हलादि तृतीयादि विभक्ति पर में रहते भी अस्थ्यादि को अनङ् होता है। अस्थभिः।

३५७६ ई च द्विवचने ७।१।७७।

अस्थ्यादीनामित्येव। अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्याम्।

वेद में द्विवचन विभक्ति पर रहते अस्थ्यादि शब्दों के इकार के स्थान में दीर्घ ईकार आदेश होता है। यथा—अक्षीभ्याम्।

३५७७ दृक्स्ववस्स्वतवसां छन्दसि ७।१।८३।

एषां नुम् स्यात्सौ। कीदृङ्न्द्रः। स्ववान्। स्वतवान्। 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' (सू २४६४)।

सुविभक्ति पर रहते दृक्, स्ववस्, स्वतवस्, इनको वेद में नुम् का आगम होता है। यथा-कीदृङ्, स्ववान्, स्वतवान्। 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' यह सूत्र पूर्व व्याख्यात है यहां उपन्यास उत्तरत्र अनुवृत्ति के लिए स्मरणार्थमात्र है।

३५७८ बहुलं छन्दसि ७।१।१०३।

ततुरिः। जगुरिः पराचैः।

छन्द में अङ्ग का अवयव एवं ओष्ठ्यवर्णपूर्वक जो ऋकार तदन्त जो अङ्ग उसके अन्त्यवर्ण को बहुलकर के उकार आदेश होता है। यथा-ततुरिः। तॄ से 'आदृगम' किन् प्रत्यय, उकार, 'द्विर्वचनेऽचि' से स्थानित्व बुद्धि से तॄ का द्वित्व, उरदत्व हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३५७९ हु ह्वरेश्छन्दसि ७।२।३१।

ह्वरेर्निष्ठायां ह्व आदेशः स्यात्। अह्वृतमसि हविर्धानम्।

ह्व को निष्ठा प्रत्यय पर में 'रहते 'हु' आदेश होता है वेद में। अहुतमसि।

३५८० अपरिह्वृताश्च ७।२।३२।

पूर्वेण प्राप्तस्याऽऽदेशस्याभावो निपात्यते। अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्।

वेद में नञ् परिपूर्वक ह्व को निष्ठा प्रत्यय पर रहते निपातन से हु आदेश नहीं होता है। अपरिह्वृताः।

३५८१ सोमे ह्वरितः ७।२।३३।

इड्गुणौ निपात्येते। मा नः सोमो ह्वरितः।

वेद में सोम में ह्व धातु को निपातन से निष्ठापर रहते इट् का आगम, एवं गुण होता है। ह्वरितः।

३५८२ ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभितचत्तविकस्ताविशस्तृशंस्तृशास्तृतरुतृतरूतृवरुस्तृवरूतृवरूत्रीरुज्ज्वलितिक्षरितिक्षमित्यमितीति च ७।२।३४।

अष्टादश निपात्यन्ते। तत्र ग्रसु स्कम्भु स्तम्भु एषामुदित्त्वान्निष्ठायामिट्-प्रतिषेधे प्राप्ते इण्निपात्यते। युवं शचीभिर्ग्रसिताममुञ्चतम्। विष्कभिते अजरे। येन स्वः स्तभितम्। सत्येनोत्तभिता भूमिः। स्तभितेत्येव सिद्धे उत्पूर्वस्य पुनर्निपातनमन्योपसर्गपूर्वस्य मा भूदिति। चते याचने। कस गतौ। आभ्यां क्तस्येडभावः। चत्तो इतश्चत्तामुतः। त्रिधा हृ श्यावमश्विना विकस्तम्। उत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम्। निपातनं बहुत्वापेक्षं सूत्रे बहुवचनं 'विकस्ता' इति। तेनैकवचनान्तोऽपि प्रयोगः साधुरेव। शसु शंसु शासु एभ्यस्तृच इडभावः। एकस्त्वष्टुरश्वस्याविशस्ता। ग्रावग्राभ उत शंस्ता प्रशास्ता पोता। तरतेर्वृङ्वृञोश्च तृच उट् ऊट् एतावागमौ निपात्येते। तरुतारं रथानाम्। तरूतारम्। वरुतारं, वरूतारम्। वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु। अत्र ङीबन्त-निपातनं प्रपञ्चार्थम्। वरूतृशब्दो हि निपातितः। ततो ङीपा गतार्थत्वात्। उज्ज्वलादिभ्यश्चतुर्भ्यः शप उकारादेशो निपात्यते। ज्वल दीप्तौ। क्षर सञ्चलने। टुवम् उद्गिरणे। अम गत्यादिषु। इह क्षरितीत्यस्यानन्तरं क्षमितीत्यपि केचित्पठन्ति। तत्र 'क्षमूष् सहने' इति धातुर्बोध्यः। भाषायां तु ग्रस्तस्कब्धस्तब्धोत्तब्धचतितविकसिताः। विशसिता। शंसिता। शासिता। तरीता। तरिता। वरीता। वरिता। उज्ज्वलति। क्षरति। पाठान्तरे-क्षमति। वमति। अमति। 'बभूथाऽऽततन्थजगृम्भववर्थेति निगमे' (सू २५२७)। विभ्रा तमुत्सं यत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आबभूथ । येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ । जगृम्भा ते दक्षिणमिन्द्रहस्तम् । त्वं ज्योतिषा वितमो ववर्थ । भाषायां तु बभूविथ । आतेनिथ । जगृहिम । ववरिथेति ।

वेद में ग्रसित, स्कभित, स्तभित, उत्तभित, चत्त, विकस्त, विशस्तृ, शंस्तृ, शास्तृ, तरुतृ, तरूतृ वरुतृ, वरूतृ, वरूत्री, उज्ज्वलिति, क्षरिति, वमिति, अमिति ये निपातन से सिद्ध होते हैं। इन अठारह शब्द की प्रकृतिभूत धातुओं में जो तीन धातु ग्रसु, स्कम्भु, स्तम्भु वे उदित् हैं, इनको 'यस्य विभाषा' से निष्ठा में इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था अतः इससे इडागम् निपातन से होता है। सूत्र में स्तभितामात्र कथन करते उत्पूर्वक इसका जो निपातन किया उससे यह सिद्ध हुआ कि अन्य उपसर्गपूर्वक रहे वहां इस की प्रवृत्ति नहीं होती है। चत् एवं कंसृ से पर निष्ठा को इडभाव होता है अनेक कार्य निपातन-प्रयुक्त होते हैं तद्बोधनार्थ सूत्र में बहुवचन है। अतः एकवचनान्त में भी सूत्र की प्रवृत्ति से निपातित कार्य होते ही हैं। शसु शंसु शासु इनसे पर तृच् को इडागमाभाव है। तॄ, वृङ्, वृञ् से तृच् उट् ऊट् ये आगम होते हैं वरूत्री में ङीवन्त निपातन स्पष्टार्थ है = व्यर्थ है। वरूतृमात्र निपातित करना आवश्यक है। उज्ज्वलादि चार धातुओं से पर शप् को इकारादेश निपातित है। क्षरिति के बाद कोई क्षमिति पढ़ता है। वह क्षमूष् धातु है। भाषा में तो ग्रस्त, स्कब्ध, स्तब्ध, उत्तब्ध, चतित, विकसित रूप होते हैं एवं विशसिता, शंसिता, शासिता, तरीता, तरिता, वरीता, वरिता, उज्ज्वलति, क्षरति, क्षमति, वमति, अमति ।

वेद में बभूथ, आततन्थ, जगृम्भ, ववर्थ ये निपातन से सिद्ध होते हैं, अर्थात् इडागम का अभाव होता है। लोक में बभूविथ, आतेनिथ, जगृहिम, ववरिथ ये रूप होते हैं।

३५८३ सनिंससनिवांसम् ७।२।६९।

सनिमित्येतत्पूर्वात्सनतेः सनोतेर्वा क्वसोरिट् एत्वाभ्यासलोपाभावश्च निपात्यते। (अञ्चित्वाऽग्ने सनिंससनिवांसम्)।

सनिम् पूर्वक भ्वादि में पठित या तनादि में पठित सन् से पर क्वसु को इट् होता है एवं एत्वाभ्यास लोप का अभाव है।

पावकादीनां छन्दसि प्रत्ययस्थात्कादित्वं नेति वाच्यम् (वा ४५२७)। हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः।

छन्द में पावकादि के ककारपूर्व अकार को स्त्रीलिङ्ग में 'प्रत्ययस्थात्' से इकारादेश नहीं होता है। पावका। लोक में पाविका।

३५८४ घोर्लोपो लेटि वा ७।३।७०।

दधद्रत्नानि दाशुषे। सोमो ददद्गन्धर्वाय। यदग्निरग्नयेददात्।

घुसंज्ञक धातु के आकार का वेद में लेट् पर रहते लोप होता है। दधत्। धा लेट् शप्, दित्व 'लेटोऽडाटौ' से अडागम, 'इतश्च लोपः परस्मैपदेषु' इकारलोप है। ददत्। लोपाभाव में ददात्।

३५८५ मीनातेर्निगमे ७।३।८१।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिति ह्रस्वः। प्रमिणन्ति व्रतानि। लोके प्रमीणन्ति। 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (सू २२२५)।

वेद में शित् प्रत्यय पर रहते भी धातु के अवयव ईकार को ह्रस्व होता है। प्रमिणन्ति। लोक में प्रमीणन्ति।

'अस्तिसिचोऽपृक्ते' सूत्र यहां केवल स्मरण के लिए है इसकी व्याख्या प्रथम हो चुकी है।

३५८६ बहुलं छन्दसि ७।३।९७।

सर्वमा इदम्। आसीदिति प्राप्ते। (अस्तेर्लङ् तिप्। ईडभावः, अपृक्तत्वाद्ध्रल्ङ्यादिलोपः। रुत्वविसर्गौ। संहितायां तु 'भोभगो—' (सू १६७) इति यत्वम्। 'लोपः शाकल्यस्य' (सू ६७) इति यलोपः। गोभिरक्षाः। सिच इडभावश्छान्दसः। अट्। शेषं पूर्ववत्) 'ह्रस्वस्य गुणः' (सू २४२)। 'जसि च' (सू २४१)। जसादिषु छन्दसि वावचनं प्राङ् णौ चङ्युपधायाः (वा ४५६६)। अधा शतक्रत्वो यूयम्। शतक्रतवः। पश्वे नृभ्यो यथा गवे। पशवे। 'नाभ्यस्तस्याचि' (सू २५०३) इति निषेधे 'बहुलं छन्दसी'ति वक्तव्यम्। (वा० ४५८६)। अनुषग्जुजोषत्।

सिच् एवं अस् धातु से उत्तर अपृक्तसंज्ञक हल् को वेद में बहुल ईडागम होता है। 'आ इदम्' यहां अस् से लङ्, तिप्, 'आडजादीनाम्' से आट्, शप् का लुक्, 'अस्तिसिचः' से ईडागमाभाव में 'हल्' इति अपृक्त तकारलोप, वृद्धि सकार का रुत्व विसर्ग असंहिता में। संहिता में तो 'भोभगो' से रुको यकार उसका 'लोपः शाकल्यस्य' से लोप। जसादि प्रत्यय पर रहते वेद में 'णौ चङ्युपधायाः' सूत्रके पूर्व शास्त्रविहित कार्य विकल्प से होते हैं। शतक्रत्वः, शतक्रतवः जसि च से गुण एवं गुणाभाव। पश्वे, पशवे, गुण विकल्प से।

'नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके' सूत्र जो गुणनिषेधक पूर्व-व्याख्यात है वह वेद में विकल्प से गुणनिषेधक है। जुजोषत्। जुषी प्रीतिसेवनयोः से लेट् व्यत्यय से परस्मैपद, तिप् इकारलोप, 'लेटः' से अडागम, व्यत्यय से शप् के स्थान में श्लु, एवं द्वित्वादि कार्य हुए।

३५८७ नित्यं छन्दसि ७।४।८।

छन्दसि विषये चङ्युपधाया ऋवर्णस्य ऋन्नित्यम्। अवीवृधत्।

वेद में चङ् पर रहते उपधास्थ ऋकार को नित्य ऋकार होता है। उर्ऋत से प्राप्त विकल्प का यह बाधक है। अवीवृधत्।

३५८८ न छन्दस्यपुत्रस्य ७।४।३५।

पुत्रभिन्नस्यादन्तस्य क्यचि ईत्वदीर्घौ न। मित्रयुः 'क्याच्छन्दसि' (सू ३१५०) इति उः। अपुत्रस्य किम्? पुत्रीयन्तः सुदानवः। अपुत्रादीनामिति वाच्यम्। (वा ४६१६)। जनीयन्तोन्वग्रवः। जनमिच्छन्त इत्यर्थः।

क्यच् पर रहते पुत्र शब्द भिन्न जो अकारान्त शब्द उसको ईकार एवं दीर्घ नहीं होता है। मित्रम् इच्छति अर्थ में क्यच् धातुसंज्ञा अम् का लुक इत्व दीर्घाभाव क्याच्छन्दसि से उत्व अकार-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोप मित्रयुः । पुत्र का पुत्रीयन्तः सूत्र में 'अपुत्रस्य' के स्थान में अपुत्रादि कहने से 'जनीयन्तः' आदि की सिद्धि हुई ।

३५८९ दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यतिरिषण्यति ७।४।३६।

एते क्यचि निपात्यन्ते । भाषायां तु उप्रत्ययाभावात् । दुष्टीयति । द्रविणीयति । वृषीयति । रिष्टीयति ।

क्यच् पर रहने दुरस्युः, द्रविणस्युः, वृषण्यति, रिषण्यति, ये शब्द निपातन से होते हैं । लोक में उप्रत्ययाभाव से दुष्टीयति, द्रविणीयति । वृषीयति । रिष्टीयति । दुरस्यु में दुष्ट को दुरस्, द्रविण को द्रविणस्, वृष को वृषण्, रिष्ट को रिषण् होता है निपातन से ।

३५९० अश्वाघस्याऽऽत् ७।४।३७।

अश्वअघ एतयोः क्यचि आत्स्याच्छन्दसि । अश्वायन्तो मघवन् । मात्वा वृका अघायवः । 'न च्छन्दसि (सू ३५८८) इति निषेधो नेत्वमात्रस्य किंतु दीर्घस्यापीति । अत्रेदमेव सूत्रं ज्ञापकम् ।

वेद में अश्व एवं अघ को क्यच् पर में रहते आत् होता है अश्वायन्तः । अघायवः । न च्छन्दसि वह इत्व एवं दीर्घ उभय का निषेधक है । दीर्घ का भी निषेधक है उसमें यही सूत्र प्रमाण है अन्यथा यह व्यर्थ होता ।

३५९१ देवसुम्नयोर्यजुषि काठके ७।४।३८।

अनयोः क्यचि आत्स्याद्यजुषि कठशाखायाम् । देवायन्तो यजमानाः । सुम्नायन्तो हवामहे । इह यजुःशब्दो न मन्त्रमात्रपरः किंतु वेदोपलक्षकः । तेन ऋगात्मकेऽपि मन्त्रे यजुर्वेदस्थे भवति । किं च ऋग्वेदेऽपि भवति । स चेन्मन्त्रो यजुषि कठशाखायां दृष्टः । यजुषीति किम् ? देवाञ्जिगातिसुम्नयुः । बह्वृचानामप्यस्ति कठशाखा, ततो भवति, प्रत्युदाहरणमिति हरदत्तः ।

क्यच् प्रत्यय पर में रहते यजुर्वेद की शाखा में देव एवं सुम्न के अकार को आकारादेश होता है । देवायन्तः आदि ।

यहां यजुः शब्द मन्त्रपरक नहीं किन्तु वेद मात्र का उपलक्षण है । ऋक् वेद में भी वह मन्त्र यजुः की कठ शाखा में यदि दृष्ट है तो वहां भी इसकी प्रवृत्ति होती है । यजुः कहने से सुम्नयुः यहां आत् न हुआ । बह्वृचों की भी कठशाखा है अतः प्रत्युदाहरण सम्भव है । यह श्रीहरदत्त का मत है ।

३५९२ कव्यध्वरपृतनस्यर्चिलोपः ७।४।३९।

एषामन्त्यस्य लोपः स्यात् क्यचि ऋग्विषये । सपूर्व्या निविदा कव्यतायोः । अध्वर्युं वा मधुपाणिम् । दमयन्तं पृतन्युम् । 'दधातेर्हिः' (सू ३०७६) 'जहातेश्च क्त्वि' (सू ३३३१) ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कवि, अध्वर, पृतना के अन्त्य का लोप ऋक् विषय में क्यच् पर रहते होता है। मृगय्वादि गणपठित अध्वर्यु है, इससे इसकी व्युत्पत्त्यन्तर का ज्ञान करना 'दधातेर्हिः' एवं 'जहातेश्च क्त्वि' ये दोनों सूत्र यहां स्मरणार्थ मात्र उपन्यस्त है।

३५९३ विभाषा छन्दसि ७।४।४४।

हित्वा शरीरम्। हीत्वा वा।

हा के स्थान में विकल्प से हि आदेश वेद में होता है। हित्वा शरीरम्। हि आदेश के अभाव में 'घुमास्था' से ईत्व होकर हीत्वा।

३५९४ सुधित वसुधित नेमधित धिष्व धिषीय च ७।४।४५।

सु वसु नेम एतत्पूर्वस्य दधातेः क्तप्रत्यये इत्वं निपात्यते। गर्भं माता सुधितं वक्षणासु। वसुधितमग्नौ। नेमधिता न पौंस्या। क्तिन्यपि दृश्यते। उत श्वेतं वसुधितिं निरेके। धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते। धत्स्वेति प्राप्ते। सुरेता रेतो धिषीय। आशीर्लिङ इट्। 'इटोऽत्' (सू २२५७) धासीयेति प्राप्ते। 'अपो भि' (सू ४४२)। मासश्छन्दसीति वक्तव्यम्। (वा ४६३३)। माद्भिः। शरद्भिः। स्ववःस्वतवसोरुषसश्चेष्यते। (वा ४६३४)। स्ववद्भिः। अवतेरसुन्, शोभनमवो येषां ते स्ववसस्तैः। तु इति सौत्रो धातुस्तस्मादसुन्। स्वं तवो येषां तैः स्वतवद्भिः। समुषद्भिरजाथाः। मिथुनेऽसिः। वसेः किच्चेत्यसिप्रत्यय इति हरदत्तः। पञ्चपादीरीत्या तु 'उषः किदि'ति प्राग्व्याख्यातम्। 'न कवतेर्यङि' (सू २६४१)।

सु, वसु, नेम इनके पूर्व में रहते धाधातु के आकार को इकारादेश होता है क्तप्रत्यय पर रहते। क्तिन् प्रत्यय पर में रहते भी धा के आकार को इकारादेश होता है। वसुधितिम्। धत्स्व प्राप्त था इत्व धत्व से धिष्व हुआ। धासीय प्राप्त था धिषीय हुआ।

'अपो भि' सूत्र प्रथम व्याख्यात है, केवल स्मरणार्थ यहां इसका उपन्यास है। भकारादि प्रत्यय पर में रहते मास् के सकार को तकारादेश होता है। माद्भिः। स्ववस्, स्वतवस्, उषस् इनके सकार को तकार होता है भादि प्रत्यय पर रहते। स्ववद्भिः। सु अव्+असुन् अच्छी तरह रक्षा करने वाला=स्ववसः शोभनम् अवः येषान्ते। तु सौत्र धातु है उससे असुन् प्रत्यय हुआ। स्वं तवो येषान्ते स्वतवः। तृतीया में स्वतवद्भिः। समुषद्भिः वस् से असि वह कित् 'वसेः किच्च'। पञ्चपादी के मत से उष् से कित् प्रत्यय से।

'न कवतेर्यङि' पूर्व व्याख्यात यह सूत्र स्मरणार्थ यहां है।

३५९५ कृषेश्छन्दसि ७।४।६४।

यङि अभ्यासस्य चुत्वं न। करीकृष्यते।

वेद में कृष् धातु के अभ्यास को यङ् पर में रहते चुत्व नहीं होता है करीकृष्यते यहां ककार को चकार न हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३५९६ दाधर्ति दर्धर्ति दर्धर्षि बोभूतु तेतिक्तेऽलर्ष्याऽऽपनीफण-त्संसनिष्यदत्करिक्रत्कनिक्रदद्धरिभ्रद्दविध्वतोदविद्युतत्तरित्रतः सरीसृपतं वरीवृजन्मर्मृज्याऽऽगनीगन्तीति च ७।४।६५।

एतेऽष्टादश निपात्यन्ते। आद्यास्त्रयो धृङो, धारयतेर्वा। भवतेर्यङ्लुगन्तस्य गुणाभावः। तेन भाषायां गुणो लभ्यते। तिजेर्यङ्लुगन्तात्तङ्। इयर्तेर्लटि हलादिःशेषापवादो रेफस्य लत्वमित्वाभावश्च निपात्यते। अलर्षि युध्म खजकृत्पुरन्दरम्। सिपा निर्देशो न तन्त्रम्। अलर्ति दक्षं उर्त। फणतेराङ्पूर्वस्य यङ्लुगन्तस्य शतरि अभ्यासस्य नीगागमो निपात्यते। अन्वा पनीफणत्। स्यन्देः संपूर्वस्य यङ्लुकि शतरि अभ्यासस्य निक्। धातुसकारस्य षत्वम्। करोतेर्यङ्लुगन्तस्याभ्यासस्य चुत्वाभावः। क्रन्देर्लुङि च्लेरङ् द्विर्वचनमभ्यासस्य चुत्वाभावो निगागमश्च। कनिक्रदज्जनुषम्। अक्रन्दीदित्यर्थः। बिभर्तेरभ्यासस्य जश्त्वाभावः। वि यो भरिभ्रद्दोषधीषु। ध्वरतेर्यङ्लुगन्तस्य शतरि अभ्यासस्य विगागमो धातोर्ऋकारलोपश्च। दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य। द्युतेरभ्यासस्य सम्प्रसारणाभावोत्वं विगागमश्च। दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः। तरतेः शतरि श्लौ, अभ्यासस्य निरागमः। सहोर्जा तरित्रतः। सृपेः शतरि श्लौ, द्वितीयैकवचने रीगागमोऽभ्यासस्य। वृजेः शतरि श्लावभ्यासस्य रीक्। सृजेर्लिटि णल्। अभ्यासस्य रुक्। धातोश्च युक्। गमेराङ्पूर्वस्य लटि श्लावभ्यासस्य चुत्वाभावो नीगागमश्च। वृत्र्यन्ती वेदानीगन्ति कर्णम्।

दाधर्ति, दर्धर्ति, दर्धर्षि, बोभूतु, तेतिक्ते, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिष्यदत्, करिक्रत्, कनिक्रदत्, भरिभ्रत्, दविध्वत्, दविद्युतत्, तरित्रतः, सरीसृपतम्, वरीवृजत्, मर्मृज्या, आगनीगन्ति, ये अठारह शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं। आरम्भ के एक से तीन तक रूप धृ धातु या ण्यन्त धारि धातु के रूप हैं। लेट् में यङ्लुगन्त भू को गुणाभाव है। भाषा में बोभोतु। वेद में बोभूतु यङ्लुगन्त तिज् से तङ् हुआ। ऋधातु से लट्, सिप्, श्लुद्वित्व, अभ्यास के रेफ का 'हलादिः शेषः' से निवृत्ति का बाध कर रेफ का लत्व निपातन से हुआ 'अर्तिपिपर्त्योश्च' से अभ्यास को प्राप्त इत्वाभाव अलर्षि। यहां सिप् प्रत्ययान्त निर्देश अविवक्षित होने से अलर्ति भी हुआ। आङ् पूर्वक फण का यङ्लुगन्त में लट् को शतृ, अभ्यास को नीगागम, आपनीफणत्। सम्पूर्वक स्यन्द का यङ्लुगन्त में शतृ, अभ्यास के निस् के सकार को षत्व। संसनिष्यद्। करिक्रत्—यङ्लुगन्त कृ से शतृ, अभ्यास को चुत्वाभाव, 'ऋतश्च' से रिगागम।

कनिक्रदत्+क्रन्द धातु लुङ् च्लि, अङ् द्वित्व, अभ्यास ककार को चवर्ग का अभाव, निक् का आगम, कनिक्रदत्। भृ से शतृ अभ्यास को जश्त्व का अभाव, रिक् आगम, भरिभ्रत्। यङ्लुगन्त ध्वृ धातु से शतृ अभ्यास को विक् आगम, धातु के ऋकार का लोप, दविध्वत्। यङ्लुगन्त द्युत धातु से शतृ अभ्यास को 'द्युतिस्वाप्योः' से सम्प्रसारणाभाव, अकार उसको विगागम, दविद्युत्। तॄ से शतृ श्लु प्रत्यय अभ्यास को रिगागम, तरित्रत्। सृप् शतृ, श्लु, अभ्यास को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रीगागम। तृज् से शतृ श्लु अभ्यास को रीगागम, मृजू लिट् णल् अभ्यास को रुक् एवं धातु को युक् आगम। आङ् पूर्वक गम्, लट्, श्लु अभ्यास को चुत्वाभाव, एवं नीक् आगम, गनीगन्ति।

३५९७ सम्ववेति निगमे ७।४।७४।

सूतेर्लिटि परस्मैपदं वुगागमोऽभ्यासस्य चात्वं निपात्यते। गृष्टिः ससूव स्थविरम्। सुषुवे इति भाषायाम्।

वेद में लिट् में सू धातु से परस्मैपद एवं वुगागम, एवं अभ्यास के उकार को अकारादेश निपातन से होता है। ससूव। भाषा में 'सुषुवे'।

३५९८ बहुलं छन्दसि ७।४।७८।

अभ्यासस्य इकारः स्याच्छन्दसि। पूर्णा विवष्टि। वशेरेतद्रूपम्।

इति सप्तमोऽध्यायः।

धातु का अवयव अभ्यास को इकार होता है वेद में। विवष्टि = वश कान्तौ लट् तिप्, शप्, श्लु, द्वित्व, अभ्यास के स्वर को इत्त्व, वश्च से षकार ष्टुत्व।

पं० श्री बालकृष्ण पञ्चोली विरचित रत्नप्रभा में वैदिक प्रक्रिया में सातवाँ अध्याय समाप्त।

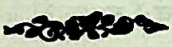

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ अष्टमोऽध्यायः

३५९९ प्रसमुपोदः पादपूरणे ८।१।६।

एषां द्वे स्तः पादपूरणे। प्रपायमग्निः। संसमिद्युवसे। उपोप मे परामृश। किं नोदुदु हर्षसे।

छन्द में पाद की पूर्ति के लिए प्र, सम् , उप, उद् इनका द्वित्व होता है।

३६०० छन्दसीरः ८।२।१५।

इवर्णान्ताद्रेफान्ताच्च परस्य मतोर्मस्य वः स्यात्। हरिवते हर्यश्वाय। गीर्वान्।

वेद में इवर्णान्त एवं रेफान्त से पर मतुप् के मकार को वकार होता है। हरिवते। गीर्वान्।

३६०१ अनो नुट् ८।२।१६।

अन्नन्तान्मतोर्नुट् स्यात्। अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः। अस्थन्वतं यदनस्था।

अन्नन्त से पर मतुप् को नुट् आगम होता है। अक्षि से मतुप् 'छन्दस्यपि दृश्यते' से अनङ् नुट् के असिद्धत्व प्रयुक्त प्रथम न लोप कर भूतपूर्वगति का समाश्रयण करके नुट्, नकार को णकार, अक्षण्वन्तः—यदि नुट् परादि करेंगे तो यकार को वकारादेश नहीं होगा। एवं नकार का मतुप् ग्रहण से ग्रहण होकर अनिष्ट वकारादेश होने लगेगा। यदि पूर्वान्त नुट् करते हैं तो भी दोष है यहां पदान्तस्य से णत्व का निषेध होगा, नुट् असिद्ध होने से दोष नहीं है पूर्वान्त में करने पर। पूर्वान्त करने पर अवग्रह में अक्षन् पदच्छेद होगा 'अक्ष' ऐसा पदकारों को इष्ट है वह न होगा इस शङ्का का समाधान यह है। लक्षण पदकारों का अनुगमन नहीं करता किन्तु पदकारों को उचित है कि वे लक्षणों की मर्यादानुसार लक्षणों का अनुगमन करे—"न लक्षणेन पदकारा अनुवर्त्याः पदकारैर्नाम लक्षणमनुवर्तनीयम्"। इस भाष्योक्ति से 'यथालक्षणं पदं कर्तव्यम्' यही शाब्दिक सिद्धान्त है।

३६०२ नाद्धस्य ८।२।१७।

नान्तात्परस्य घस्य नुट्। सुपथिन्तरः। भूरिदाव्नस्तुड्वाच्यः। (वा ४७९६)। भूरिदावत्तरो जनः। ऋईद्रथिनः। (वा ७४९५) रथीतरः रथीतमं रथीनाम्।

नकारान्त शब्द से पर तरप् एवं तमप् को नुट् आगम होता है। सुपथिन्तरः। भूरिदावन् से पर तरप् तमप् को तुट आगम होता है। दा वनिप् तरप् नकार का 'न लोपः' से लोप तुडागम—भूरिदावत्तरः। रथिन् शब्द को घ पर में रहते ईत् होता है। रथीतरः। रथीतमः।

३६०३ नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानि छन्दसि ८।२।६१।

सदेर्नञ्पूर्वान्निपूर्वाच्च निष्ठायां नत्वाभावो निपात्यते। नसत्तमञ्जसा। निषत्तमस्य चरतः। असन्नं निषण्णमिति प्राप्ते। उन्देर्नञ् पूर्वस्यानुत्तम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतूर्तमिति त्वरतेः तुर्वीत्यस्य वा। सूर्तमिति सृ इत्यस्य। गूर्तमिति गूरी इत्यस्य।

वेद में नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त, सूर्त, गूर्त, ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं। नञ्-पूर्वक एवं निपूर्वक सद् से निष्ठा प्रत्यय क्त हुआ एवं नत्वाभाव निपातन से सदिरप्रतेः से षत्व निषत्तम्। लोक में असन्नम्, निषण्णम्। नञ् पूर्वक उन्द् से निष्ठा प्रत्यय, अनुत्तम्। अनुन्नम् लोक में। प्रपूर्वक त्वर् एवं तुर्व् से निष्ठा प्रत्यय। 'ज्वरत्वर' से ऊठ्। लोक में प्रतूर्णम्। सृ से निष्ठा प्रत्यय निपातन से उत्व, रपरत्व उरण् सूत्र से। गुरी से निष्ठा प्रत्यय, गूर्तम्। भाषा में गूर्णम्।

३६०४ अम्नरूधरवरित्युभयथा छन्दसि ८।२।७०।

रुर्वा, रेफो वा। अम्न एव। अम्नरेव। ऊधएव। ऊधरेव। अतएव। अवरेव।

वेद में अम्न, ऊध, अव, इनसे रु या रेफ विकल्प से होता है। रुपक्ष में 'भोभगोअघो' से यकार उसका 'लोपः शाकल्यस्य' से लोप। पक्ष में अम्नरेव इसी प्रकार अन्य में।

३६०५ भुवश्च महाव्याहृतेः ८।२।७१।

भुवइति। भुवरिति।

महाव्याहृति में भुव् से रु या रेफ होता है। रुत्व पक्ष में यत्व, लोप।

३६०६ ओमभ्यादाने ८।२।८७।

ओंशब्दस्य प्लुतः स्यादारम्भे। ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितम्। अभ्यादाने किम्? ओमित्येकाक्षरम्।

आरम्भ अर्थ में ओम् प्लुत स्वर युक्त होता है। आरम्भ न होने पर प्लुत नहीं होता है। ओमित्येकाक्षरम् यहां प्लुत नहीं हुआ।

३६०७ ये यज्ञकर्मणि ८।२।८८।

येऽ३यजामहे। यज्ञेति किम्। ये यजामहे।

यज्ञकर्म में 'ये' को प्लुत होता है। ये ३ यजामहे। यज्ञकर्म भिन्न में प्लुताभाव होता है ये यजामहे।

३६०८ प्रणवष्टेः ८।२।८९।

यज्ञकर्मणि टेरोमित्यादेशः स्यात्। अपां रेतांसि जिन्वतोऽ३म्। टेः किम्? हलन्ते अन्त्यस्य माभूत्।

यज्ञकर्म में टि को प्लुत होता है। जिन्वतोऽ३म्। हलन्त में अन्त्य को न हो एतदर्थ सूत्र में टिग्रहण है।

३६०९ याज्यान्तः ८।२।९०।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ये याज्या मन्त्रास्तेषामन्त्यस्य टेः प्लुतो यज्ञकर्मणि। जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहा३म्। अन्तः किम्? याज्यानामृचां वाक्यसमुदायरूपाणां प्रतिवाक्यं टेः स्यात्। सर्वान्तस्य चेष्यते।

कर्मकाण्ड प्रकरण में जो याज्यान्त वाक्य के सभी मन्त्र यज्ञकर्मपरक हो तो वहां उनकी अन्त्य टिको प्लुत होता है। हव्यवाहा३म्। याज्या का अन्त्य न होने पर वाक्य-समुदाय स्वरूप याज्य मन्त्र के प्रतिवाक्य में टिके स्थान में प्लुत स्वर होगा एवं सर्वान्त टि के स्थान में प्लुत अभिमत है एतदर्थ सूत्र में अन्त ग्रहण है। अन्यथा पूर्वोक्त आपत्ति आपतित होगी।

३६१० ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानामादेः ८।२।९१।

एषामादेः प्लुतो यज्ञकर्मणि। अग्नयेऽनुब्रू३हि। अग्नये गोमयानि प्रे३ष्य। अस्तु श्रौ३षट्। सोमस्याग्ने व्रीही वौ३षट्। अग्निमा३वह।

वेद में यज्ञकर्म में ब्रूहि, प्रेष्य, श्रौषट्, वौषट्, आवह इनके आदि वर्ण को प्लुत स्वर होता है। अनुब्रू३हि, प्रे३ष्य, श्रौ३षट्।

३६११ अग्नीत्प्रेषणे परस्य च ८।२।९२।

अग्नीधः प्रेषणे आदेः प्लुतस्तस्मात्परस्य च। ओ३श्रा३वय।

यज्ञ कर्म में अग्नीत्प्रेषणार्थ में आदि वर्ण एवं उसका परस्थित वर्ण को प्लुत होता है। ओ३श्रा३वय। किन्तु अग्नीन् अग्नीन् विहर यहां न प्लुत हुआ।

३६१२ विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः ८।२।९३।

प्लुतः। अकार्षीः कटम्। अकार्षं हि ३। अकार्षं हि। पृष्टेति किम्? कटं करिष्यति हि। हेः किम्? कटं करोति ननु।

पृष्ट प्रश्न के उत्तर में वेद में 'हि' को विकल्प से प्लुत होता है।

३६१३ निगृह्यानुयोगे च ८।२।९४।

अत्र यद्वाक्यं तस्य टेः प्लुतो वा। अद्यामावास्येत्यात्थ ३। अमावास्येत्येवंवादिनं युक्त्या स्वमतात्प्रच्याव्य एवमनुप्रयुज्यते।

निग्रहपूर्वक अनुयोग में जो वाक्य उसकी टिको विकल्प प्लुत होता है। आज अमावास्या कहने वाले को युक्तिप्रदानपूर्वक उसको अपने मत से हटाता हुआ अनुयोग करना जहां रहे वहां इसकी प्रवृत्ति है। उदाहरण मूल में स्पष्ट है।

३६१४ आम्रेडितं भर्त्सने ८।२।९५।

दस्यो ३ दस्यो ३ घातयिष्यामि त्वाम्। आम्रेडितग्रहणं द्विरुक्तोपलक्षणम्। चौर ३ चौर ३।

भर्त्सन-डाटना अर्थ में दो या इससे अधिक कथित पद की अन्त्य टि को प्लुत होता है। दस्यो दस्यो३। आम्रेडित से द्विरुक्त जानना। चौर चौर३।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३६१५ अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम् ८।२।९६।

अङ्गेत्यनेन युक्तं तिङन्तं प्लवते। अङ्ग कूज ३ इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म। तिङ् किम्। अङ्ग देवदत्त मिथ्या वदसि। आकाङ्क्षं किम्? अङ्ग, पच। नैतदपरमाकाङ्क्षति। भर्त्सन इत्येव। अङ्गाधीष्व भक्तं तव दास्यामि।

आकाङ्क्षा में अङ्ग शब्द से युक्त तिङन्त के अन्त्य वर्ण को प्लुत होता है। अङ्ग कूज३। तिङन्त न होने पर अङ्ग देवदत्त! यहां न हुआ प्लुत।

आकाङ्क्षा न होने पर प्लुताभाव है—अङ्ग पच। भर्त्सन के अभाव में प्लुताभाव, यथा अङ्ग अधीष्व।

३६१६ विचार्यमाणानाम् ८।२।९७।

वाक्यानां टेः प्लुतः। होतव्यं दीक्षितस्य गृहा ३ इ। न होतव्य३मिति। होतव्यं न होतव्यमिति विचार्यते। प्रमाणैर्वस्तुतत्त्वपरीक्षणं विचारः।

विचार्य्यमाण जो वाक्य उसकी जो टि उसके स्थान में प्लुत होता है। गृह की टिको प्लुत गृहा३इ। न होतव्य३मिति। प्रमाण द्वारा वस्तु के तत्त्व का परीक्षण को विचार कहते हैं।

३६१७ पूर्वं तु भाषायाम् ८।२।९८।

विचार्यमाणानां पूर्वमेव प्लवते। अहिर्नु ३ रज्जुर्नु। प्रयोगापेक्षं पूर्वत्वम्। भाषाग्रहणात्पूर्वयोगश्छन्दसीति ज्ञायते।

भाषा विषय में विचार्य्यमाण शब्द के पूर्व शब्द की टिको प्लुत होता है। अहिर्नु३। यहां प्रयोग की अपेक्षा से पूर्वत्व ज्ञान करना। यहां भाषा से पूर्व सूत्र वेद में ही प्रवृत्त होता है।

३६१८ प्रतिश्रवणे च ८।२।९९।

वाक्यस्य टेः प्लुतोऽभ्युपगमे, प्रतिज्ञाने श्रवणाभिमुख्ये च। गां मे देहि भोः। हन्त ते ददामि ३। नित्यः शब्दो भवितुमर्हति ३। दत्त किमात्थ ३।

अभ्युपगम, प्रतिज्ञा, श्रवण इनकी आकाङ्क्षा होने पर वाक्य की टिको प्लुत होता है। गाम् में देहि भो३। हन्त ते ददामि३। अहति३। आत्थ३।

३६१९ अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः ८।२।१००।

अनुदात्तः प्लुतः स्यात्। दूराद्धूतादिषु सिद्धस्य प्लुतस्याऽनुदात्तत्वमात्रमनेन विधीयते। अग्निभूत ३ इ। पटा ३ उ। अग्निभूते पटो एतयोः प्रश्नान्ते टेरनुदात्तः प्लुतः। शोभनः खल्वसि माणवक ३।

प्रश्नान्त, अभिपूजित में अनुदात्त प्लुत होता है। दूर से आह्वान में प्लुत सिद्ध ही था केवल अनुदात्तत्व मात्र विधानार्थ यह सूत्र है। अग्निभूते पटो यहां प्लुत अनुदात्त अग्निभूत३इ। पटा३उ। इन दोनों के प्रश्नान्त में टिको अनुदात्तत्वविशिष्ट प्लुतत्व होता है। माणवक३ यहां भी प्लुत है।

३६२० चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने ८।२।१०१।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाक्यस्य टेरनुदात्तः प्लुतः। अग्निचिद्भाया ३ त्। अग्निरिव भायात्। उपमार्थे किम्? कथञ्चिदाहुः। प्रयुज्यमाने किम्? अग्निर्माणवको भायात्।

उपमानार्थ प्रयुज्यमान में चित् इस वाक्य की टिको अनुदात्त प्लुत होता है। अग्निचिद्-भाया३। उपमा की अप्रतीति में अनुदात्तत्व-विशिष्ट प्लुतत्वाभाव है। चित् अप्रयुज्यमान वहां भी इसकी अप्रवृत्ति है।

३६२१ उपरिस्विदासीदिति च ८।२।१०२।

टेः प्लुतोऽनुदात्तः स्यात्। उपरिस्विदासी ३ त्। अधः स्विदासी३दित्यत्र तु 'विचार्यमाणानाम्' (सू ३६१६) इत्युदात्तः प्लुतः।

'उपरिस्विदासीत्' इस पद की टिके प्लुत स्वर की अनुदात्त संज्ञा होती है। 'अधः स्विदासी३त्' यह तो 'विचार्य्यमाणानाम्' से उदात्त प्लुत होता है।

३६२२ स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु ८।२।१०३।

स्वरितः प्लुतः स्यादाम्रेडिते परेऽसूयादौ गम्ये। असूयायाम्। अभिरूपक ३ अभिरूपक रिक्तं ते आभिरूप्यम्। सम्मतौ। अभिरूपक ३ अभिरूपक शोभनोऽसि। कोपे। अविनीतक ३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म। कुत्सने। शाक्तीक ३ शाक्तीक रिक्ता ते शक्तिः।

असूया, सम्मति, कोप, कुत्सन इनकी प्रतीति होने पर आम्रेडित पर रहते स्वरित प्लुत होता है। मूल में उदाहरण इसके स्पष्ट हैं।

३६२३ क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम् ८।२।१०४।

आकाङ्क्षस्य तिङन्तस्य टेः स्वरितः प्लुतः स्यादाचारभेदे। स्वयं ह रथेन याति ३। उपाध्यायं पदातिं गमयति। प्रार्थनायाम्। पुत्रांश्च लप्सीष्ट ३ धनं च तात। व्यापारणे। कटं कुरु ३ ग्रामं गच्छ। आकाङ्क्षं किम्? दीर्घायुरसि अग्नीदग्नीन्विहर।

आचार भेद, आशीरर्थ, प्रैषार्थ प्रतीयमान होने पर आकाङ्क्षा युक्त जो तिङन्तपद उसकी टि के स्वरित नहीं होता है।

३६२४ अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः ८।२।१०५।

अनन्त्यस्याऽन्त्यस्यापि पदस्य टेः स्वरितः प्लुत एतयोः। अगमः ३ पूर्वा ३ न् ग्रामा ३ न्। सर्वपदानामयम्। आख्याने। अगम ३ म् पूर्वा ३ न् ग्रामा ३ न्।

प्रश्न एवं आख्यान में अन्त्यपद एवं मध्यपद की टि के स्वरित को प्लुत स्वर होता है। प्रश्न में—अगमः ३ पूर्वान् ३ ग्रामा३न्। आख्यानार्थ में—अगम३म् पूर्वा३न् ग्रामा३न्।

३६२५ प्लुतावैच इदुतौ ८।२।१०६।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूराद्धूतादिषु प्लुतो विहितस्तत्रैव ऐचः प्लुतप्रसङ्गे तदवयवाविदुतौ प्लवेते। ऐ ३ तिकायन। औ ३ पगव। चतुर्मात्रावत्र ऐचौ सम्पद्येते।

दूर से पुकारना इस अर्थ में विहित प्लुत स्वर उस अर्थ में एच् को प्लुत पुराङ्ग में तदवयवीभूत जो इकार एवं उकार ये दोनों प्लुतसंज्ञक होते हैं। ऐ३तिकायन औ३पगव।' इस स्थल में ऐच् चतुर्मात्र हुआ। प्लुत जो इकार उसकी तीन मात्राएं एवं एक अकार की। एवं प्लुत उकार की ३ मात्राएं, एक अकार की।

३६२६ एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्याऽऽदुत्तरस्येदुतौ ८।२।१०७।

अप्रगृह्यस्य एचोऽदूराद्धूते प्लुतविषये पूर्वस्याऽर्धस्याकारः प्लुतः स्यादुत्तरस्य त्वर्धस्य इदुतौ स्तः। प्रश्नान्ताभिपूजितविचार्यमाणप्रत्यभिवादयाज्यान्तेष्वेव। (वा ४८८८) प्रश्नान्ते। अगमः ३ पूर्वा ३ न्। अग्निभूत ३ इ अभिपूजिते। भद्रं करोषि पट ३ उ। विचार्यमाणे। होतव्यं दीक्षितस्य गृह ३ इ न होतव्य३मिति। प्रत्यभिवादे। आयुष्मानेधि अग्निभूत ३ इ। याज्यान्ते। स्तोमैर्विधेमाग्नया ३ इ। परिगणनं किम्? विष्णुभूते घातयिष्यामि त्वाम्। अदूराद्धूत इति न वक्तव्यम्। पदान्तग्रहणं तु कर्तव्यम्। इह मा भूत्। भद्रं करोषि गौ३रिति। अप्रगृह्यस्य किम्? शोभने माले ३। आमन्त्रिते छन्दसि प्लुतविकारोऽयं वक्तव्यः। (वा ४८७६) अग्ना ३ इ पत्नी वः।

अप्रगृह्य एच् समीप से पुकार करने में=निकट आह्वान अर्थ में विहित प्लुत विषय में पूर्व के अर्धभाग के स्थान में आकार प्लुत एवं उत्तरार्ध को इकार एवं उकार प्लुत होता है। प्रश्नान्त में, अभिपूजन में, विचार्यमाण में, प्रत्यभिवाद में तथा याज्यान्तार्थ में। यह परिगणन से अन्यत्र इस सूत्र की अप्रवृत्ति है।

'अदूराद्धूते' यह नहीं कहना चाहिये। किन्तु पदान्त ग्रहण आवश्यक है। भद्रं करोषि गौः यहां अन्यथा नहीं होगा। शोभने माले यहां प्रगृह्य है। आमन्त्रित अर्थ में एवं वेद में प्लुत विकार होता है अग्ना३इ पत्नी वः।

३६२७ तयोर्य्वावचि संहितायाम् ८।२।१०८।

इदुतोयकारवकारौ स्तोऽचि संहितायाम्। अग्न ३ याशा। पट३वाशा। अग्न३यिन्द्रम्। पट३वुदकम्। अचि किम्? अग्ना ३ इ वरुणौ। संहितायां किम्। अग्न ३ इ इन्द्रः। 'संहिताया'मित्याध्यायसमाप्तेरधिकारः। इदुतोरसिद्धत्वादयमारम्भः। सवर्णदीर्घत्वस्य शाकल्यस्य च निवृत्त्यर्थः। यवयोरसिद्धत्वात्। 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' (३६५७) इत्यस्य बाधनार्थो वा।

संहिता संज्ञा के विषय में अच् पर रहते इकार एवं उकार के स्थान में क्रम से यकार एवं वकार आदेश होता है। अग्ने आशा अग्न३इ आशा-अग्न ३ याशा। पटो आशा पट३उ आशा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पट३वाशा। अग्ने इन्द्रम्, अग्न३इ इन्द्रम् अग्नयिन्द्रम्। पटो उदकम्, पट३उ उदकम्, पट ३ वुदकम्। अच् पर में नहीं अतः अग्न३इ वरुणौ यहां इकार को यकारादेश न हुआ। संहिता के अभाव में अग्न३इ इन्द्रः यहां यकारादेश न हुआ। आठवाँ अध्याय की समाप्ति तक संहिता का अधिकार है।

विमर्श—'इको यणचि' इससे यहां यण् सिद्ध ही है यह सूत्र व्यर्थ है?, प्लुत विकार से जायमान इकार एवं उकार 'इको यणचि' सूत्र की दृष्टि में असिद्ध होने से उससे यण् अप्राप्त है अतः यकार एवं वकार आदेश-विधानार्थ इस सूत्र की आवश्यकता है। स्वरसन्धि में प्लुत सिद्ध है = "सिद्धः प्लुतः स्वरसन्धिषु" इस वचन को आप कैसे जानते हैं?, इस प्रश्न का उत्तर यह है कि 'प्लुतप्रगृह्या अचि' से प्रकृतिभाव-विधान के कारण, जिसको विकार प्राप्त है अर्थात् सन्धिरूप विकृत कार्य प्राप्त है उसको प्रकृतिभाव का वह विधान करता है अर्थात् वहां प्रकृति-भावरूप कार्य विधेय होता है, यदि प्लुत असिद्ध है तो उसको स्वरसन्धिस्वरूप विकार प्राप्त ही नहीं पुनः प्रकृतिभाव-बोधन व्यर्थ होगा प्रकृत में इस ज्ञापन से प्लुत सिद्ध इको यणचि से यण् सिद्धि सूत्र यह व्यर्थ यह शङ्का हुई। उस पर उत्तरपक्षी कहता है की प्लुत सिद्धि रहें एतावता इदुत् के विषय में असिद्धत्व प्राप्त है उसकी तो निवृत्ति अद्यावधि न हुई, पूर्वपक्षी कहता है कि—प्लुत प्रकरण में जो कार्य वह स्वरसन्धि में सिद्ध रहता है = "प्लुतप्रकरणे यत्कार्यं तत्स्वरसन्धिषु सिद्धम्" यह सामान्य ज्ञापन प्रकृतिभाव-विधायक सूत्र लाघवार्थ बोधन करता है, इस पर उत्तरपक्षी समाधान करता है कि यण् का बाधक 'अकः सवर्णे दीर्घः' है यदि यह सूत्र न करते तो 'अग्न३इ इन्द्रः' एवं 'पट३उ उदकम्' यहां षाष्ठिक यण्विधायक 'इको यणचि' को बाधकर सवर्णदीर्घ जो अनिष्ट है उसकी प्रसक्ति होगी तन्निवारणार्थ इस सूत्र की आवश्यकता है, पूर्वपक्षी पुनः कहता है कि सवर्णदीर्घ वारणार्थ यत्नान्तर = अर्थात् दूसरा उपाय भी है—वह क्या है? वह यह है—"प्लुतपूर्वस्य यणादेशो वक्तव्यः, सवर्णदीर्घनिवृत्त्यर्थः, शाकल्यनिवृत्त्यर्थश्च, तच्चावश्यं वक्तव्यम्, य इक् प्लुतपूर्वः, न च प्लुतविकारः, भो३इ इन्द्रम्, भो३यिन्द्रम् गायतीति।

यहां भो शब्द को छान्दस प्लुत है यह प्लुत विकार नहीं एतदर्थ व्यापक वचन पूर्ववार्तिक किया है उससे यहां भी सवर्ण दीर्घ एवं 'इको शाकल्यस्य ह्रस्वश्च' की भी व्यावृत्ति होगी, पूर्व भाष्य वार्तिक अवश्य करना ही है। इन सबों का सारांश वृत्तिकारने इस प्रकार वर्णित किया है—

"किन्तु यणा भवतीह न सिद्धं व्याविदुतोर्यदयं विदधाति।
तौ च मम स्वरसन्धिषु सिद्धौ शाकलदीर्घविधी तु निवर्त्यौ॥
इक् च यदा भवति प्लुतपूर्वस्तस्य यणं विदधात्यपवाद्यम्।
तेन तयोश्च न शाकलदीर्घौ यण् स्वरबाधनमेव तु हेतुः॥

इन कारिकाओं का आशय यह है कि 'इको यणचि' से यणादेश से रूपसिद्ध नहीं है, इस लिए आचार्य इकार को यकार एवं उकार को वकार का विधान करते हैं। स्वरसन्धि में प्लुत विकार इकार एवं उकार सिद्ध है किन्तु 'इकोऽसवर्णे' एवं 'अकः सवर्णे' की व्यावृत्ति के लिए सूत्र, उनको भाष्य वार्तिक निवृत्त कर ही देगा वह वार्तिक अप्लुत विकार इकार या उकार को यणादेशार्थ है वह प्लुत विकार में भी यणादेश करने से इस सूत्र की अनावश्यकता है इस पर यह कथन सूत्रसार्थक्यवादी का है कि—यण् स्वर, बाधनार्थ ही 'तयोः' यह सूत्र की परमा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वश्यकता है 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' इसको बाधनार्थ इकार, उकार को क्रमशः यह यकार वकार करता है। यहां यण् आदेश नहीं अतः स्वरित न हुआ। इस पङ्क्ति को अवश्य याद करे परीक्षा या शास्त्रार्थ में इसका उपयोग होता है।

३६२८ मतुवसो रु संबुद्धौ छन्दसि ८।३।१।

'रु' इत्यविभक्तिको निर्देशः। मत्वन्तस्य वस्वन्तस्य च रुः स्यात्। 'अलोऽन्त्यस्य' (सू ४२) इति परिभाषया नकारस्य। इन्द्र मरुत्व इ॒ह पा॑हि॒ सोम॑म्। हरिवो मे॒दिनं त्वा। 'छन्दसीरः' (सू ३६००) इति वत्वम्।

सूत्र में 'रु' यह अविभक्तिक निर्देश है। वेद में सम्बोधन अर्थ में मतुप् प्रत्ययान्त एवं वसुप्रत्ययान्त को रु होता है वह रु 'अलोऽन्त्यस्य' से अन्त्यवर्ण को होता है। अर्थात् नकार के स्थान में रु आदेश हुआ। मरुत्वन् रु य लोप। 'मरुत्व' हरिवः—हरयो विद्यन्ते यत्र मतुप् सम्बुद्धि एकवचन में 'उगिदचाम्' से नुम् 'हल्ङ्याब्भ्यः' से लोप, संयोगान्त लोप नकार को रु उसको 'हशि च' से उकार हरिवो मेदिनं त्वा = 'छन्दसीरः' से वकारादेश भी हुआ।

३६२९ दाश्वान्साह्वान्मीढ्वांश्च ६।१।१२।

एते क्वस्वन्ता निपात्यन्ते। मीढ्व॑स्तो॒काय॒ तन॑याय। वन उपसंख्यानम् (वा० ४८६०) क्वनिब्वनिपोः सामान्यग्रहणम्। अनुबन्धपरिभाषा तु नोपतिष्ठते। अनुबन्धस्येहानिर्देशात्। यस्त्वा॒यन्तं॒ वसु॑ना प्रातरि॒त्वः। इणः क्वनिप्।

दाश्वान्, साह्वान्, मीढ्वान् ये क्वसुप्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध होते हैं। क्वनिप् एवं वनिप् उभय का यहां सामान्यतः ग्रहण है। अनुबन्ध निर्देश से यहां 'तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य ग्रहणम्' परिभाषा का अविषय है। वन् प्रत्ययान्त पदभी निपातन से सिद्ध होता है। 'प्रातरित्वः' इण् से क्वनिप् प्रत्यय है, 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' से क्वनिप् 'ह्रस्वस्य पिति' से तुक् आगम हुआ।

३६३० उभयथर्क्षु ८।३।८।

अम्परे छवि नकारस्य रुर्वा। पु॒शू॑स्तांश्चक्रे।

अम् पर छव् पर में रहते नकार को विकल्प से रु आदेश होता है।

३६३१ दीर्घादटि समानपादे ८।३।९।

दीर्घान्नकारस्य रुर्वा स्यादटि, तौ चेन्नाटौ एकपादस्थौ स्याताम्। देवाँ अच्छा॑सुम॒ती। म॒हाँ इन्द्रो॒ य ओज॑सा। उभयथेत्यनुवृत्तेर्नेह। आ॒दि॒त्यान्या॑चिषामहे।

दीर्घ से पर नकार को विकल्प रु आदेश होता है अट् पर में रहते, किन्तु नकार एवं अट् वे दोनों एकपदस्थ रहे तब। यहां 'उभयथा' की अनुवृत्ति होने से रुत्वाभाव में आदित्यान्।

३६३२ आतोऽटि नित्यम् ८।३।३।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अटि परतो रोः पूर्वस्याऽतः स्थाने नित्यमनुनासिकः। महाँ इन्द्रः। तैत्तिरीयास्तु अनुस्वारमधीयते। तत्र छान्दसो व्यत्यय इति प्राञ्चः। एवं च सूत्रस्य फलं चिन्त्यम्।

अट्परक रुपूर्वक आकार को नित्य अनुनासिक होता है। यथा महाँ इन्द्रः। तैत्तिरीय शाखाध्यायी यहां अनुस्वार का पाठ करते हैं अनुनासिक का नहीं। यहां छान्दसत्व-प्रयुक्त व्यत्यय है ऐसी परिस्थिति में इस सूत्र का मूर्धाभिषिक्त उदाहरणाभाव से इस सूत्र की सार्थकता विचारणीय है = चिन्त्य है, अर्थात् प्रयोजनाभाव इसका है।

३६३३ स्वतवान्पायौ ८।३।११।

रुर्वा। भुवस्तस्य स्वर्तवाँः पायुरग्ने।

पायुशब्द पर रहते स्वतवत् को विकल्प रु आदेश अन्त्य को होता है। रुके पूर्व में अनुनासिक पूर्व से हुआ।

३६३४ छन्दसि वाऽऽप्राम्रेडितयोः ८।३।४९।

विसर्गस्य सो वा स्यात् कुप्वोः, प्रशब्दमाम्रेडितं च वर्जयित्वा। अग्नेः त्रातर्ऋतस्कविः। गिरिर्न विश्वतस्पृथुः। नेह। वसुनः पूर्व्यस्पतिः। अप्रेत्यादि किम्? अग्निः प्र विद्वान्। परुषः परुषः।

वेद में प्र-भिन्न एवं आम्रेडित संज्ञक भिन्न कवर्ग पर रहते या पवर्ग पर रहते विसर्ग को विकल्प सकार आदेश होता है। यथा—ऋतस्कविः। विश्वतस्पृथुः।। विकल्प से होने से क्वचित् सत्वाभाव भी है। प्र या पुरुषः पुरुषः पर रहते विसर्ग को सत्वाभाव होता है।

३६३५ कःकरत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः ८।३।५०।

विसर्गस्य सः स्यात्। प्रदिवो अपस्कः। यथा नो वस्यसस्करत्। सुपेशसस्करति। उरुणस्कृधि। सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम्। अनदितेरिति किम्? यथा नो अदितिः करत्।

कः, करत्, करोति, कृधि, कृत इनके पर में रहते विसर्ग को सकार होता है किन्तु अदिति से उत्तर विसर्ग को सकारादेश नहीं होता है। मूल में उदाहरण स्पष्ट ही है।

३६३६ पञ्चम्याः परावध्यर्थे ८।३।५१।

पञ्चमीविसर्गस्य सः स्यादुपरिभवार्थे परिशब्दे परतः। दिवस्परि प्रथमं जज्ञे। अध्यर्थे किम्? दिवस्पृथिव्याः पर्योजः।

उपरिभवार्थ में परिशब्द पर रहते पञ्चमी विभक्ति का अवयव जो विसर्ग उसके स्थान में सकार आदेश होता है। दिवस्परिप्रथमम्। अध्यर्थ से भिन्नार्थक परि यदि रहें वहां इस सूत्र की अप्रवृत्ति ही है।

३६३७ पातौ च बहुलम् ८।३।५२।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चम्या इत्येव । सूर्यो॑ नो दि॒वस्पातु ।

पातु शब्द पर में रहते पञ्चमी के विसर्ग के स्थान में सकार आदेश होता है । दिवस्पातु ।

३६३८ षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु ८।३।५३।

बा॒चस्पति॑र् वि॒श्वक॑र्मा॒णम् । दि॒वस्पु॒त्राय॒ सूर्या॑य । दि॒वस्पृ॒ष्ठं भन्द॑मानः । तमस॑स्पा॒रम॒स्य । परि॑वीत इ॒ळस्प॒दे । दि॒वस्पयो॒ दिधि॑षाणाः । रा॒यस्पोषं॑ यज॑मानेषु ।

पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् , पोष इनके पर में रहते षष्ठी विभक्ति का अवयव विसर्ग को सकारादेश होता है ।

३६३९ इडाया वा ८।३।५४।

पतिपुत्रादिषु परेषु । इळा॑यास्पु॒त्रः । इलायाः पुत्रः । इळा॑यास्प॒दे । इलायाः पदे । 'निसस्तपतावनासेवने' (सू० २४०३) निसः सकारस्य मूर्धन्यः स्यात् । निष्ट॑प्तं॒ रक्षो॒ निष्ट॑प्ता॒ अरा॑तयः । अनासेवने किम् ? निस्तपति । पुनः पुनस्तपतीत्यर्थः ।

पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् , पोष, इनके उत्तर में रहते इडा से उत्तर विसर्ग को सकार आदेश होता है । अर्थात् षष्ठी का अवयव विसर्ग को सकारादेश । विकल्प से विधान से पक्ष में विसर्ग घटित भी असमस्त रूप हुआ एवं सकार घटित भी । 'निसस्तपतावनासेवने' इससे निस् के सकार को षकारादेश होता है । यथा निष्टप्तम् । आसेवन अर्थ में तो षत्वाभाव से निस्तपति अर्थात् बार-बार वह तपता है ।

३६४० युष्मत्तत्ततक्षुष्वन्तःपादम् ८।३।१०।

पादमध्यस्थस्य सस्य मूर्धन्यः स्यात्तकारादिषु परेषु । युष्मदादेशाः त्वं त्वा ते तवाः । त्रि॒भिष्ट्वं दे॑व सवितः । ते भि॑ष्ट्वा । आ॒भि॑ष्टे । अ॒प्स्व॑ग्ने सधि॒ष्ट॑व । अ॒ग्निष्टद्वि॑श्वम् । द्यावा॑ पृथि॒वी निष्ट॑तक्षुः । अन्तःपादं किम् ? तद॒ग्निस्तदर्यमा । यन्म आ॒त्मनो मि॒न्दाभू॑द॒ग्निस्तत्पु॒नरा हा॑र्जा॒तवे॑दा॒ विचर्षणिः । अत्राग्निरिति पूर्वपादस्यान्तो न तु मध्यः ।

तकारादि जो युष्मद् शब्द के स्थान में आदेश त्वम् , त्वा, ते, तव इनके पर रहते पादमध्यस्थ सकार को मूर्धन्य आदेश अर्थात् षकारादेश होता है । त्रिभिष्ट्वम् प्रभृति उदाहरण । पादादि में षत्वाभाव है—'तदग्निस्तदर्यमा' यहां । एवं पादान्त में भी विसर्ग को षत्वाभाव है ।

३६४१ यजुष्येकेषाम् ८।३।१०४।

युष्मत्तत्ततक्षुषु परतः सस्य मूर्धन्यो वा । अर्चि॑भिष्ट्वम् । अग्निष्टे अग्रम् । अचि॑भिष्टतक्षुः । पक्षे अर्चि॑भिस्त्वमित्यादि ।

युष्मद् , तद् , ततक्षु, पर रहते पादमध्यस्थित सकार को विकल्प षकार होता है ।

३६४२ स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि ८।३।१०५।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नृभिष्टुतस्य । नृभिः स्तुतस्य । गोष्टोमम् गोस्तोमम् । पूर्वपदादित्येव सिद्धे प्रपञ्चार्थमिदम् ।

छन्द में स्तुत एवं स्तोम के सकार को विकल्प षकाररूपमूर्द्धन्य आदेश होता है । यहां 'पूर्वपदात्' वक्ष्यमाण से षत्व सिद्ध था यह सूत्र स्पष्टार्थक है । अर्थात् प्रयोजन शून्य = व्यर्थ है । अकरणीय है ।

३६४३ पूर्वपदात् ८।३।१०६।

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य सस्य सो वा । यदिन्द्राग्नी दिविष्ठः । युवं हि स्थः स्वर्पती ।

पूर्वपदस्थ निमित्त से पर स्थित सकार को षकारादेश होता है । यह सामान्यतः सकार को षकार करता है अत एव पूर्वसूत्र प्रपञ्चार्थ कहा है यदि 'स्थ' के ही सकार को षकार करेगा तो पूर्वसूत्र प्रपञ्चार्थ कहना असङ्गत होगा । यहां पूर्वपद शब्द यौगिक है न तु योगरूढ । पूर्वं पदम् = पूर्वपदम् तस्मात् ।

३६४४ सुञः ८।३।१०६।

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य सुञो निपातस्य सस्य षः । ऊर्ध्व ऊषु णः । अभीषु णः ।

पूर्वपदस्थ निमित्त से पर निपात संज्ञक सुञ् के सकार को षकार आदेश विकल्प से होता है । 'ऊ षुणः' यहां 'इकः सुञि' से पूर्वपद का दीर्घ हुआ नस् आदेश के नकार को 'नश्चधातुस्थो-रुषुभ्यः' से णकार आदेश हुआ ।

३६४५ सनोतेरनः ८।३।१०८।

गोषा इन्दो नृषा असि । अनः किम् ? गोसनिः ।

पूर्वपदस्थ निमित्त से पर अन्नन्त सन् के सकार को षकारादेश होता है । गोषा । अन् अन्त में जहां नहीं वहां गोसनिः । गोषा यहां 'जनसनखनक्रमगमो विट्' से विट् प्रत्यय 'विड्वनोः' से आकारादेश हुआ है ।

३६४६ सहेः पृतनर्ताभ्यां च ८।३।१०९।

पृतनाषाहम् । ऋताषाहम् । चात् ऋतीषाहम् ।

पृतना एवं ऋत इनसे पर सहके सकार को षकार आदेश होता है । पृतनाषाहम् । ऋता-षाहम् । चकार से ऋती से पर सह् के सकार को षकारादेश हुआ ऋतीषाहम् ।

३६४७ निव्यभिभ्योऽव्यवाये वा छन्दसि ८।३।११९।

सस्य मूर्धन्यो वा स्यात् । न्यषीदत् । न्यसीदत् । व्यषीदत् । व्यसीदत् । अभ्यष्टौत् । अभ्यस्तौत् ।

नि, वि, अभि, से पर सकार को विकल्प अट् के व्यवधान में षकार होता है । न्यषीदत् । न्यसीदत् + आदि ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३६४८ छन्दस्यृदवग्रहात् ८।४।२६।

ऋकारान्तादवग्रहात्परस्य नस्य णः। नृमणाः। पितृ॒याणम्।

वेद में ऋकारान्त अवग्रह से पर नकार को णकारादेश होता है।

३६४९ नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः ८।४।२७।

धातुस्थात्। अग्ने॒ रक्षा॑ णः। शिक्षा॑ णो अ॒स्मिन्। उ॒रु ण॑स्कृधि। अ॒भीषु ण॑ः। मो षु ण॑ः। इत्यष्टमोऽध्यायः।

इति सिद्धान्तकौमुद्यां वैदिकी प्रक्रिया।

छन्द में धातुस्थनिमित्त से ऊरु एवं षु इनसे उत्तर नस् के नकार के स्थान में णकार आदेश होता है। शिक्षा णो अस्मिन्। अग्ने रक्षाणः। ऊरुणस्कृधि। अभीषुणः। मोषुणः।

पं० श्री बालकृष्णपञ्चोलिविरचितरत्नप्रभा सविमर्शा में वै० प्र० का अष्टमाध्याय सम्पूर्ण।

इति वैदिक प्रक्रिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ स्वरप्रक्रिया

अथ साधारणस्वराः

३६५० अनुदात्तं पदमेकवर्जम् ६।१।१५८।

परिभाषेयं स्वरविधिविषया। यस्मिन्पदे यस्योदात्तः स्वरितो वा विधीयते तमेकमचं वर्जयित्वा शेषं तत्पदमनुदात्ताच्कं स्यात्। गोपायतं नः। अत्र 'सनाद्यन्ताः–' (सू २३०४) इति धातुत्वे धातुस्वरेण गकाराकार उदात्तः, शिष्टमनुदात्तम्। सति शिष्टस्वरबलीयस्त्वमन्यत्र विकरणेभ्य इति वाच्यम्। (वा० ३७३०)। तेनोक्तोदाहरणे गुपेर्धातुस्वर आयस्य प्रत्ययस्वरश्च न शिष्यते। अन्यत्रेति किम्? यज्ञं यज्ञमभिवृधे गृणीतः। अत्र सति शिष्टोऽपि श्ना इत्यस्य स्वरो न शिष्यते, किं तु तस एव।

यह सूत्र षड्विध सूत्रों में परिभाषा सूत्र है, स्वरविधायक सूत्रों में इसका विषय है। उत्तरोत्तर सूत्र में जाकर यह बोधन करती है कि 'जिस पद में जिस वर्ण को उदात्त या स्वरित विहित हो, उस अच् को छोड़कर उस पद में जो शेष अच्, उसको अनुदात्तस्वर होता है'।

अनियम में नियम करने वाली को परिभाषा कहते हैं। 'अनियमे नियमकारित्वं परिभाषात्वं' यह सामान्य लक्षण है। विशेष लक्षण इस प्रकार का है—

परिभाषात्वञ्च—सङ्केतग्राहकभिन्नत्वे सति विजिज्ञासाविशिष्टत्वम्, वै० अननुवृत्त्या स्वजन्यप्रमात्मकबोधोपकारकत्व–स्वप्रवृत्तिनिवृत्त्यन्यतरप्रयोजकत्वविशिष्टपाणिनिप्रयत्नन्यायान्यतरसिद्धत्वान्यतरसम्बन्धेन।

अधिकार के व्यवच्छेदार्थ अननुवृत्त्या यह निवेश है। आदि सम्बन्ध से अष्टाध्यायीस्थ परिभाषाओं का संग्रह है, द्वितीय सम्बन्ध से न्यायसिद्ध एवं 'अनुदात्तपदमेकवर्जम्' का संग्रह है।

विमर्श—इस प्रकार बोधन से उदात्त विधायक एवं स्वरित विधायक तत्तत् शास्त्रों का भी वैयर्थ्य नहीं एवं इसका कथन भी सङ्गत होने से एकवाक्यता तत् तत् सूत्रार्थों से हुई। इस सूत्र को शेषनिघात विधायक भी कहते हैं, निघात शब्दार्थ अनुदात्त है। यह अधिकार नहीं है, अस्वरितत्व से, तथा 'आद्युदात्तश्च' 'समानोदरे शयित ओ चोदात्तः' इत्यादि का अधिकारपक्ष में असंग्रह रूप आपत्ति होगी। यहां अनुदात्त शब्द 'अर्श आदिभ्योऽच्' से अच् प्रत्ययान्त है अनुदात्तत्ववान् धर्मीपरक है धर्मपरक नहीं। अन्यथा धर्मवाचक का पद के साथ एकार्थ बोधकत्वरूप सामानाधिकरण्य का अभाव होगा। यत् एवं तत् का नित्य सम्बन्ध होने से जिसको उदात्त या स्वरित विधान है उसका ही वर्जन करना। एकपदार्थ विधीयमानान्वयी है। इससे 'तवै चान्त्रश्च युगपत्' यहां दो का वर्जन है। कुत्रचित् तीन स्वरों का वर्जन है यथा—'इन्द्राबृहस्पती' यहां 'देवताद्वन्द्वे च' सूत्र से पदद्वय का प्रकृतिस्वर विधान क्रिया का कर्म अर्थात् विधेय है। बृहस्पति शब्द वनस्पत्यादित्व से आद्युदात्त है। स्वरचिन्हों में उदात्त का चिन्ह नहीं दिया जाता है। सूत्रोदाहरण—यथा गोपायतं नः। गुपू रक्षणे उकार की इत्संज्ञालोपकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'धातोः' सूत्र से अन्त गकारोत्तरवर्ती उकार उदात्त है, उससे आय प्रत्यय हुआ वह आय प्रत्यय 'आद्युदात्तश्च' इस प्रत्यय स्वर से आद्युदात्त आय का आकार है, इसके अनन्तर 'सनाद्यन्ता धातवः' से धातुसंज्ञा करने पर 'धातोः' से यकारोत्तरवर्ती अन्तिम अकार गोपाय का उदात्त है, शेष को निघात है। यह उदात्त पूर्व प्रवृत्त गुप् के उकार को उदात्तत्व एवं आय के यकारोत्तरवर्ती अकार को जो स्वर उदात्त हुआ था उसके पश्चाद् भावी होने से शिष्टस्वर है वह बलवान् हुआ।

अर्थात् गोपाय यहां अन्तोदात्त है, उसके बाद शप् विकरण है 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' से शप् का अकार अनुदात्त है, इस अनुदात्त से पूर्ववर्ती उदात्त अकार का 'अतो गुणे' से पररूप हुआ वह पररूप निष्पन्न एकादेश स्वरूप अकार 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' से उदात्त है, उसके बाद थस् को तमादेश है, उसको 'तास्यनुदात्तेन् ङिदुपदेशात्' से अदुपदेश से परत्व के कारण अनुदात्तत्व है तम् के अकार को। उसको 'उदात्तादनुदात्तस्य' से स्वरित है।

यहां शङ्का होती है कि तम्वृत्ति स्वरितत्व का समाश्रयण करके 'अनुदात्तं पदम्' से शेषनिघात क्यों नहीं हुआ ?, यथोद्देश पक्षाश्रयण से यह परिभाषा त्रिपादी में अप्रवृत्त है। इसमें ज्ञापक तन्यत् का तित्व है, एवं 'यतोऽनावः' सूत्र भी।

सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्वम् अन्यत्र विकरणेभ्यः—इसमें अंशद्वय है इनमें क्या प्रमाण है ?, समाधान यह है कि प्रथमांश तो न्यायसिद्ध ही है—तद्यथा—यो यस्मिन् सति शिष्यते स शिष्टः अतः शिष्ट स्वर को बाधकत्व न्यायसिद्ध ही है। सारांश यह है कि उदात्त एवं स्वरित विधायक सूत्रों से अनुदात्त बोधक 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' की एकवाक्यता होती है, इससे शेषनिघात होता है वहां उत्सर्ग की या अपवाद की अन्तिमा प्राप्ति वहां इस परिभाषा का उपस्थान में पूर्व प्रवृत्ति बाध्य है। उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण—'औपगवत्वम्' यहां अण् प्रत्यय एवं त्वप्रत्यय कर 'आद्युदात्तश्च' यहां प्रवर्तमान वह स्वकीय जो प्रथम प्रवृत्ति उसको बाध करता है एवं द्वितीय प्रवृत्ति से वह लक्ष्य को परिनिष्ठित करता है।

अब यहां शङ्का हुई की "सतिशिष्टः स्वरो बलीयान्" इसको स्वीकार आपने किया तो 'सतिशिष्टत्वात् विकरणस्वरोऽपि कथं न बलीयः ?' इसका समाधान कीजिए, अन्यथा 'गृणीतः' यहां मध्योदात्तत्वापत्ति होगी अतः अन्यत्रेति—"सतिशिष्टस्वरोऽपि विकरणस्वरः प्रत्ययस्वरं न बाधते" यह ज्ञापन करते हैं, इसमें प्रमाण क्या है ?, प्रमाण का उपन्यास करते हैं—'तास्यनुदात्तेन्' सूत्र तास् से पर लकार स्थानिक सार्वधातुक को अनुदात्त विधान करता है। यद्यपि लकारस्थितिकाल में = लावस्था में तास् विकरण का विधान है तो भी सामान्यापेक्षमन्तरङ्गम्, विशेषापेक्षं बहिरङ्गम् यह एकदेशिमत स्वीकार कर लकारमात्रापेक्ष अन्तरङ्ग लकार स्थानिक प्रत्ययों को करने के बाद पश्चात् प्रवृत्त जो तास् उसका स्वर शिष्टस्वर होने से तदनन्तर शेष निघात से लस्थानिक प्रत्यय निघात है ही उसको निघात बोधन व्यर्थ होगा, वह द्वितीयांश में ज्ञापक है।

तात्पर्य यह हुआ कि प्रथमांश न्यायसिद्ध एवं इसमें द्वितीयांश ज्ञापक सिद्ध है। 'गोपायतं नः' यहां नीचे जो चिन्ह द्वय हैं वे अनुदात्त के हैं यकारोत्तर अकार उदात्त है उसका कोई चिन्ह नहीं दिया गया है 'तम्' के तकारोत्तरवर्ती अकार स्वरित है उसका चिन्ह उपरि दिया गया है। 'गृणीतः' में अन्तोदात्त पद हुआ। इना अदुपदेश नहीं अतः लस्थानिक सार्वधातुक निघात न हुआ, अत् में तपरत्व है। तिङतिङः से निघात की अप्रवृत्ति है यद् वृत्तानित्यम् उसका प्रतिषेधक है। इसको मूल में कहा है कि किन्तु 'तस एव' गृणीतः। गृका ऋकार स्वरित ईकार अनुदात्त अकार तम् का उदात्त है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३६५१ अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः ६।१।१६१।

यस्मिन्ननुदात्ते परे उदात्तो लुप्यते तस्योदात्तः स्यात्। देवीं वाचम्। अत्र ङीबुदात्तः।

जिस अनुदात्त पर रहते उदात्त का लोप होता है उसको उदात्त स्वर होता है। देवीं वाचम्। यहां पचादित्व प्रयुक्त अच् प्रत्ययान्त देव शब्द 'चितः' से अन्तोदात्त है। उससे स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढा' से ङीप् प्रत्यय हुआ वह 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' से अनुदात्त है 'यस्येति च' से अकार का लोप हुआ लुप्त अकार उदात्त रहा यहां अनुदात्त ईकार उदात्त हुआ शेष निघात से 'दे' का एकार अनुदात्त हुआ।

विमर्श—सूत्र में 'अनुदात्तस्य' यह व्यर्थ है क्योंकि आद्युदात्त में या स्वरित पर में उदात्त लोप कहीं भी नहीं है। प्रसज्यते इति प्रसङ्गः यहां कर्म में घञ् प्रत्यय करके 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' से अन्तोदात्तत्व विधान कर 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये' से उपसर्ग का दीर्घकर तं वहति अर्थ में 'प्राग्धिताद्यत्' से यत् प्रत्यय तित् होने से 'तित्स्वरितम्' से स्वरित है, उस स्वरित पर रहते प्रसङ्ग के अन्तस्थित उदात्त अकार का लोप हुआ यहां स्वरित पर में उदात्त पूर्व का लोप है, यह कथन तो उचित नहीं है, स्वरित विधायक सूत्र के साथ एकवाक्यता-पन्न शेष निघात से प्रासङ्गथ के अन्तिम स्वरित को छोड़कर समस्त अच् अनुदात्त है वहां यस्येति च से लुप्त अकार अनुदात्त ही है।

अनुदात्तस्य की सार्थकतार्थ अन्य उदाहरण देते हैं 'मा हि धुक्षाताम्' यहां दुह्, लुङ्, आताम्, 'शल इगुपधा' से क्स आताम् को 'तास्यनुदात्तेन ङिदुपदेशात्' अनुदात्तत्व है क्स प्रत्यय स्वर से उदात्त है, 'क्सस्याचि' से अकार लोप हुआ वहां उदात्तत्व की निवृत्ति के लिए 'अनुदात्तस्य' की सार्थकता है। यहां 'हि' शब्द योग से 'तिङतिङः' की अप्रवृत्ति से निघाताभाव है।

३६५२ चौ ६।१।२२२।

लुप्ताकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्यान्तोदात्तः स्यात्। उदात्तनिवृत्तिस्वरापवादः। देवद्रीचीं नयत देवयन्तः। अतद्धित इति वाच्यम् (वा० ३७८६)। दाधीचः। माधूचः। प्रत्ययस्वर एवात्र।

अकारलोप युक्त अञ्चु पर रहते पूर्व को अन्तोदात्त होता है। कृदुत्तरपद प्रकृति स्वर से उदात्त जो अञ्च् का अकार उसका 'अचः' से लोप करनें पर 'अनुदात्तस्य च' सूत्र से उदात्त प्राप्त था उसका यह अपवाद है—'देवद्रीचीं नयत देवयन्तः'। देव अच् यहां 'विष्वग्देवयोः' से देव शब्द की टिको अद्रि आदेश, 'उगितश्च' से ङीप्, 'अचः' से अकार लोप, 'चौ' से दीर्घ, द्री का ईकार उदात्त है उससे पर 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' से स्वरित है।

'चौ' सूत्र से विहित स्वर तद्धित पर में रहते नहीं होता है। यह वार्तिक न करते तो 'देवद्रीचीम्' यहां जिस प्रकार उदात्तनिवृत्ति स्वर को बाधता है तथैव 'दाधीचः' वहां प्रत्यय स्वर को भी सतिशिष्ट स्वर बाध करेगा इसलिए अतद्धिते कहा है। दाधीचः—दधि अच् अण् यहां अग् स्वर उदात्त करके 'अचः' से अकारलोप के अनन्तर शिष्ट स्वर 'चौ' प्राप्त था, उसका वार्तिक ने निषेध किया। अतः अण् प्रत्यय का स्वर की ही स्थिति यहां रही। इसी की पुष्टि मूल में की है—'प्रत्ययस्वर एव' इति से।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३६५३ आमन्त्रितस्य च ६।१।१९८।

आमन्त्रितस्यादिरुदात्तः स्यात्। अग्न॑ इन्द्र॒ वरु॑ण मित्र॒ देवाः॑।

आमन्त्रित का आदि उदात्त होता है। इस सूत्रार्थ बोध प्रसङ्ग में अनुदात्तं पदमेकवर्जम् सूत्रार्थ की एकवाक्यता से अर्थबोध होता है आदि आदि को उदात्त होने के बाद अवशिष्ट स्वर को निघात होता है। यथा 'अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः,' यहां आदि उदात्त अन्य अनुदात्त है। यहां 'सामन्त्रितम्' से आमन्त्रितत्व है। यह छठवा अध्याय में पठित आद्युदात्त विधायक सूत्र है।

३६५४ आमन्त्रितस्य च ८।१।१९।

पदात्परस्याऽपादादिस्थितस्यामन्त्रितस्य सर्वस्यानुदात्तः स्यात्। प्रागुक्तषाष्ठस्यापवादोऽयमाष्टमिकः। इ॒मं मे॑ गङ्गे यमुने सरस्वति। अपदादौ किम्? शु॒तु॒द्रि॒ स्तोमं॑म्। 'आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्' (सू ४२) अग्न॒ इन्द्र॑। अत्रेन्द्रादीनां निघातो न पूर्वस्याविद्यमानत्वेन पदात्परत्वाभावात्। 'नामन्त्रिते परे विशेष्यं पूर्वमविद्यमानवन्न। अग्ने॑ तेजस्विन्। अग्ने॑ त्रातः। सामान्यवचनं किम्? पर्यायेषु मा भूत्। अ॒ध्न्ये॑ देवि सरस्वति।

पद से पर पाद के आदि में स्थित जो नहीं है ऐसा समस्त आमन्त्रित उसको अनुदात्त होता है। यह आठवां अध्याय में पठित निघात विधायक सूत्र पूर्व सूत्र से प्राप्त आद्युदात्त का स्वविषय में बाधक है। एक आनुपूर्वीक दो यह सूत्र विभिन्न अध्यायों में पठित विभिन्न कार्यों के वे दोनों सम्पादक है। "इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति" यहां 'में' शब्द से पर गङ्गे आदि है उन तीनों को इसने निघात बोधन किया। यह निघात पदपाठ में स्पष्ट है। संहिता में "स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्" इससे वक्ष्यमाण प्रचय है दूसरा एकार्थवाचकत्व रूपपर्याय रूप एक श्रुति की प्रवृत्ति होती है। एकश्रुति एवं प्रचय अनर्थान्तर अर्थात् पर्यायवाचक शब्द है। एक श्रुति में उदात्तत्व-अनुदात्तत्व-स्वरितत्व इनका अविभाग है, अर्थात् स्वर सामान्याभाव है एतावता 'त्रैस्वर्यापवादः' यह व्यवहार होता है। पदादि 'शुतुद्रि' को षाष्ठ 'आमन्त्रितस्य' से आद्युदात्तत्व बोधन हुआ।

स्मरणार्थ सूत्र लिखा है वह पूर्व जो आमन्त्रित उसको अविद्यमानवद्भाव बोधन करता है विद्यमान जो भी नहीं की तरह बोधन का फल यह है कि अग्न इन्द्र पूर्व का अविद्यमानवत् होने में इन्द्रको आष्टमिक निघात न हुआ, क्योंकि पद से परत्वाभाव होने से।

समानाधिकरण = एकार्थबोधक आमन्त्रित पर में रहते विशेष्यवाचक पूर्व आमन्त्रित अविद्यमानवद् नहीं होता है। अर्थात् विद्यमान रहता है। यथा—तेजयुक्त अग्नि में परस्पर विशेष्य विशेषण भाव है जो तेजोयुक्त वही वह्नि एवं जो वह्नि वही तेजोयुक्त इसका बोधक अग्ने तेजस्विन् यहाँ विशेष्य अग्नि अविद्यमानवत् न हुआ वह पद है उससे पर विशेषणवाचक आमन्त्रित तेजस्विन् को निघात आष्टमिक हुआ। इसी प्रकार अग्ने त्रातः यहाँ भी 'त्रातः' को निघात हुआ 'रक्षक हे अग्ने' अर्थ में। अध्न्ये देवि सरस्वति यहाँ तीनों में एकार्थवाचकत्वरूप पर्यायत्व है अतः सामान्यवचनत्वाभाव से अविद्यमानवत् होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३६५५ (सामान्यवचनं) विभाषितं विशेषवचनं ८।१।७४।

अत्र भाष्यकृता बहुवचनमिति पूरितम्। सामान्यवचनमिति च पूर्वसूत्रे योजितम्। आमन्त्रितान्ते विशेषणे परे पूर्वं बहुवचनान्तमविद्यमानवद्वा। देवीः षळुर्वीरुरु नः कृणोत। अत्र देवीनां षडिति। देवाः शरण्याः। इह द्वितीयस्य निघातो वैकल्पिकः।

'सामान्यवचनम्' ८।१।७४ सूत्र में भाष्यकारने 'बहुवचनम्' यह पूरित किया है। एवं 'सामान्यवचनम्' पद का पूर्वसूत्र में योजना की है। आमन्त्रितान्त विशेषणवाचक पद पर में रहते पूर्वस्थित बहुवचनान्त विकल्प से अविद्यमानवत् होता है। देवी का विशेषण षट् है। एवं देवाः शरण्याः यहाँ दोनों स्थलों में विकल्प निघात हुआ। 'देवी' के अविद्यमानवद् के अभाव में षट् को निघात हुआ। पक्षमें निघाताभाव भी हुआ। 'शरण्याः' को निघात एवं तदभाव हुआ। रक्षण क्रिया में साधवः शरण्याः 'तत्र साधुः' से यप्रत्यय।

सुबन्त आमन्त्रित पर रहते स्वरविधि कर्तव्य रहते पर में विद्यमान जो पद उसका अङ्गवत् = एकदेश समान होता है। यथा 'द्रवेत्पाणी शुभस्पती' यहाँ शुभ से क्विप् कर क्विपप्रत्ययान्त षष्ठ्यन्त शुभस् पती जो परवर्ती है उसके शरीर में अनुप्रविष्ट होने से शुभस् पद नहीं अतः पती को निघात न होकर षाष्ठ 'आमन्त्रितस्य' से आद्युदात्त ही हुआ। यहाँ आष्टमिक निघात-प्रवृत्ति की आशा न करनी चाहिये क्योंकि पूर्व के अविद्यमानवत् होने से पद का पती आदि है। पद से पर नहीं है यह अतिदेशसूत्र बोधन करता है अतः वास्तविक स्थिति का आदर न करना चाहिए। यत्ते दिवो दुहितः यहाँ दिवस् का पराङ्गवत् होते हुए भी उससे पूर्ववर्ती ते पद से पर है अतः आष्टमिक निघात यहां हुआ दिवस् को। परशुना वृश्चन् यहां पराङ्गवद्भाव से आद्युदात्त वृश्चन् को हुआ निघात न हुआ।

षष्ठी विभक्त्यन्तपद, एवं आमन्त्रितान्त के प्रति जो कारक तद्वाचक पद आमन्त्रितसंज्ञक पद पर रहते पराङ्गवत् होता है इस प्रकार परिगणन करना चहिए। 'अयम् अग्ने जरिता', 'एतेनाग्ने ब्रह्मणा' इन स्थलों में पराङ्गवद् भाव न हुआ। अथवा समर्थ की अनुवृत्ति से सिद्ध हुआ है।

यहां शङ्का है कि क्रियानिरूपित कारकत्व है, आमन्त्रित-निरूपित कारकत्व नहीं है अतः 'आमन्त्रितं प्रति यत् कारकम्' यह कथन सर्वथा अनुचित है, आमन्त्रित द्रव्यवाचक है। तथापि आमन्त्रित में जो धातुवाच्य क्रिया उसको तदपेक्षा है ही अतः तदपेक्षा से उसको कारकत्व है।

३६५६ सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे २।१।२।

सुबन्तमामन्त्रिते परे परस्याङ्गवत्स्वरे कर्तव्ये। द्रवेत्पाणी शुभस्पती। शुभ इति शुभेः क्विबन्तात्षष्ठ्यन्तस्य, परशरीरानुप्रवेशे षाष्ठिकमामन्त्रिताद्युदात्तत्वम्। न चाष्टमिको निघातः शङ्क्यः। पूर्वमामन्त्रितस्याऽविद्यमानत्वेन पदादित्वात्। यत्ते दिवो दुहितर्मर्त भोजनम्। इह दिवःशब्दस्याऽऽष्टमिको निघातः। परशुना वृश्चन्। षष्ठ्यामन्त्रितकारकवचनम्। (वा २२२३) षष्ठ्यन्यमामन्त्रितान्तं प्रति यत्कारकं तद्वाचकं चेति परिगणनं कर्तव्यमित्यर्थः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेनेह न। अयमग्ने जरिता। एतेनाग्ने ब्रह्मणा। समर्थानुवृत्त्या वा सिद्धम्। पूर्वाङ्गवच्चेति वक्तव्यम्। (वा० १२२८)। आ ते पितर्मरुताम्। प्रति त्वा दुहितर्दिवः। अव्ययानां न (वा० १२२९)। उच्चैरधीयानः। अव्ययीभावस्य त्विष्यते। (वा १२३०)। उपाग्न्यधीयान।

सुबन्तपराङ्गवत् न होकर पूर्वाङ्गवत् भी होता है ऐसा कहना चाहिए। 'आते पितर्मरुताम्' इत्यादि में। *अव्यय को पूर्वाङ्गवद् भाव नहीं होता है। उच्चैरधीयानः*। अव्ययीभाव संज्ञक को पूर्वाङ्गवद् भाव इष्ट है। आद्युदात्तत्व ही होगा।

३६५७ उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य ८।२।४।

उदात्तस्थाने स्वरितस्थाने च यो यण् ततः परस्याऽनुदात्तस्य स्वरितः स्यात्। अभ्यभि हि। स्वरितस्य यणः। खलप्व्याशा। अस्य स्वरितस्य त्रैपादिकत्वेनासिद्धत्वाच्छेषनिघातो न।

उदात्त के स्थान में या स्वरित के स्थान में जायमान जो यण् उससे पर अनुदात्त को स्वरित होता है। यथा—अभ्यभि—अभिशब्द 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' से आद्युदात्त-निषेध से फिट् स्वर से अन्तोदात्त है। उसका 'नित्यवीप्सयोः' से द्वित्व, 'तस्य परमाम्रेडितम्' से आम्रेडित संज्ञा पर अभि की, 'अनुदात्तञ्च' से पर को अनुदात्तत्व, उसके पर में रहते पूर्व अभि के इकार को यणादेश यहां इकार उदात्त था उदात्तस्थानिक यण् से पर अनुदात्त अकार स्वरित हुआ।

खलप्व्याशा खलपू शब्द अन्तोदात्त है, 'ओः सुपि' से उदात्तस्थानिक यण् उससे पर ङि विभक्ति का इकार सुप्त्व के कारण अनुदात्त है उसको इसने स्वरित किया, 'नोङ् धात्वोः' निषेध से उदात्तयणो हल्पूर्वात् से उदात्तत्व नहीं यहां है। इस स्वरित इकार के स्थान में जायमान यण् से पर आशा के आकार को इसी ने ही स्वरित किया। आशा शब्द अन्तोदात्त से आदि आकार शेष निघात से अनुदात्त है, 'आशाया अदिगाख्या' उदात्त करता है।

इस सूत्र से विहित स्वरित त्रैपादिक है 'पूर्वत्रासिद्धम्' से असिद्धत्व के कारण 'अनुदात्तम्' शेष निघात के साथ एकवाक्यता इसकी नहीं अतः शेष निघात इसके विषय में नहीं होता है। "अस्य स्वरितस्यासिद्धत्वाच्छेषनिघातो न" यह मूलकार ने इसीलिए कहा है। अतः 'शा' को निघात न हुआ यह शा आशा का अवयव है।

३६५८ एकादेश उदात्तेनोदात्तः ८।२।५।

उदात्तेन सहैकादेश उदात्तः स्यात्। क्वं१ वोऽश्वाः। कावरं मरुतः।

उदात्त स्वर के साथ एकादेश उदात्त होता है। यथा वोऽश्वाः। कावरं मरुतः। 'बहुवचनस्य वस्नसौ' में 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' के अधिकार से वस् अनुदात्त है, अशेः कन् से व्युत्पन्न अश्व शब्द आदि उदात्त है, वस् के सकार को रुत्व, उत्व, गुण 'एङः पदान्तादति' से पूर्वरूप। क्वेति—'किमोऽत्', 'कांति' से किम् को कादेश 'तित्स्वरितम्' से स्वरित, अवरशब्द 'स्वाङ्गशिराम्' से आद्युदात्त उनका दीर्घ उदात्त।

३६५९ स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ ८।२।६।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुदात्ते पदादौ परे उदात्तेन सहैकादेशः स्वरितो वा स्यात्। पक्षे पूर्वसूत्रेणोदात्तः। वी१दं ज्योति॒र्हृद॑ये अ॒स्य श्लोको॑ दि॒वीय॑ते। व्यवस्थितविभाषात्वादिकारयोः स्वरितः। दीर्घप्रवेशे तूदात्तः। किंच 'एङः पदान्तात्' (सू ८६) इति पूर्वरूपे स्वरित एव। तेऽवदन्। सो३यमागात्। उक्तं च प्रातिशाख्ये। इकारयोश्च प्रश्लेषे क्षैप्राभिनिहतेषु चेति।

अनुदात्त पदादि पर में रहते उदात्त के साथ एकादेश विकल्प से स्वरित होता है, विकल्प पक्ष में पूर्व सूत्र से उदात्त स्वर होता है। वी १ दं ज्योतिर्हृदये अस्य श्लोको दिवीयते। विशब्द निपात होने से आद्युदात्त है। फिट् सूत्र से 'इदम्' अन्तोदात्त है। इन इकारद्वय का दीर्घ स्वरित है। दिवि में 'उडिदम्' सूत्र से विभक्ति उदात्त है। ईयते-इङ् गतौ दिवादि है 'तिङतिङः' से निघात है इनके 'इ ई' का दीर्घ स्वरित है। व्यवस्थित विभाषा के कारण दोनों इकारों को स्वरित हुआ। दीर्घ प्रवेश होने पर उदात्तत्व ही है। 'एङः पदान्तादति' की प्रवृत्ति होने पर अर्थात् पूर्वरूप करने पर स्वरित ही है। तेऽवदन्। सो ३ यमागात्।

प्रातिशाख्य वेद व्याकरण में कहा है कि—दोनों ह्रस्व इकारों का जहां सवर्ण दीर्घ होता है वह सवर्ण दीर्घ प्रश्लेष कहा जाता है, उदात्त एवं स्वरित के स्थान में जो यण् वह क्षैप्र सन्धि है। एवं जहां 'एङः पदान्तादति' की प्रवृत्ति होकर सन्धि होती है वह अभिनिहत कहा जाता है। इन तीनों में स्वरित स्वीकार किया जाता है। क्रमेण उदाहरण—'वीदं ज्योतिः', 'अभ्यमि हि', तेऽवदन्।

३६६० उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः ८।४।६६।

उदात्तात्परस्यानुदात्तस्य स्वरितः स्यात्। अ॒ग्निमी॑ळे। अस्याप्यसिद्धत्वाच्छेषनिघातो न। तमी॑शा॒नास॑ः।

उदात्त स्वर से पर स्थित अनुदात्त स्वर को स्वरित होता है संहिता में। पद कार्य में तो अनुदात्त ही है। अग्निमीळे। फिट् सूत्र से अग्नि शब्द अन्तोदात्त है या प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त यह है, अम् सुप्त्व के कारण अनुदात्त है, अभि पूर्वः से पूर्वरूप निष्पन्न इकार उदात्त है, 'ईळे' ईड् स्तुतौ लट् उत्तम पुरुष एकवचन "द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य सम्पद्यते स डकारो ळकारः" इस प्रतिशाख्य से ड को ळ, 'तिङ्ङतिङः' से निघात, ईकार को स्वरित। यहां 'स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्' से मकार व्यवधायक स्वर करने में न हुआ। यह सर्वत्र जानना चाहिए।

'तित्स्वरितम्' के अनन्तर इसको पढ़ने से स्वरित की अनुवृत्ति होती यहां स्वरित ग्रहण न करना पड़ता, इस शङ्का की निवृत्ति इस प्रकार है—यह स्वरित त्रैपादिक होने से असिद्ध है अतः इसके विषय में शेष निघात नहीं होता है। यदि 'तित् स्वरितम्' के बाद इसको करते तो शेष निघात की प्रवृत्ति होती। अतः प्रकृत में उदात्त एवं स्वरित का श्रवण रहा।

तमी॑शा॒नास॑ः—द्वितीयान्त 'तम्' अन्तोदात्त है, ईशान से जस् 'आज्जसेरसुक्' आसुगागम हुआ। ईश ऐश्वर्ये से शानच् चित्त्वसे अन्तोदात्त है, जस् अनुदात्त है, ईकार एवं सकाराकार स्वरित है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३६६१ नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् ८।४।६७।

उदात्तपरः स्वरितपरश्चानुदात्तः स्वरितो न स्यात्। गार्ग्यादिमते तु स्यादेव। प्र य आरुः। वोश्वाः क्वा १ भीषर्वः।

उदात्त एवं स्वरित परमें रहते अनुदात्त को स्वरित नहीं होता है किन्तु गार्ग्य आदि आचार्यों के मत में तो अनुदात्त को स्वरित होता ही है। प्र य आरुः ये अन्तोदात्त है। ऋ से लिट् प्रथम पु० व० व झि उसको 'परस्मैपदानाम्' से उस्। यहां 'यद् वित्तान्नित्यम्' में निषेध प्रयुक्त 'तिङतिङः' की अप्रवृत्ति है।

वाकार को 'उदात्तस्वरितपरस्य' से सन्नतरादेश है। वोऽश्वाः में की आकर सन्नतरादेश है केति 'तास्वरितम्' से स्वरित है।

उदात्तस्वरितोदय इति उदात्तश्च स्वरितश्च उदात्तस्वरितौ उदयौ = परौ यस्मात् यह बहुव्रीहि है। प्रातिशाख्य में पर समानार्थक उदयशब्द है। यहाँ लाघवार्थ 'पर' शब्द कहते 'उदय' शब्द का उच्चारण मङ्गलार्थ है। भाष्यकार ने कहा है—"मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि भवन्त्यायुष्मत्पुरुषाणि च"। इहादौ वृद्धिशब्दः, मध्ये शिवशब्दः, अन्ते चायम् उदयशब्दः, इति पाणिनीये मङ्गलं कृतम्।

३६६२ एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ १।२।३३।

दूरात्संबोधने वाक्यमेकश्रुति स्यात्। त्रैस्वर्यापवादः। आगच्छ भो माणवक।

दूर से सम्बोधन विषयक जो वाक्य उसको एकश्रुति होती है। यह उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित का बाधक है। आगच्छ भो माणवक। उदात्तादिस्वरविभाग रहित जो स्थिति उसको एकश्रुति कहते हैं।

३६६३ यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु २।१।३४।

यज्ञक्रियायां मन्त्र एकश्रुतिः स्याज्जपादीन्वर्जयित्वा। अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्। यज्ञेति किम्? स्वाध्यायकाले त्रैस्वर्यमेव। अजपेति किम्? ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु। जपो नाम उपांशुप्रयोगः। यथा जले निमग्नस्य। न्यूङ्खा नाम षोडश ओकाराः। गीतिषु समाख्या।

जप, न्यूङ्ख, साम इनको छोड़कर यज्ञ क्रिया में जो मन्त्र उसको एकश्रुति स्वर होता है। उदात्तादि से युक्त मन्त्र वेदों में पठित है, यज्ञक्रिया में भी उदात्तत्वादि विशिष्ट का ग्रहण प्राप्त था, किन्तु कर्म में स्वरभेद या प्रमाद से भिन्न स्वरयुक्त प्रयुक्त वैगुण्य की सम्भावना से दूरदर्शी आचार्य ने यज्ञक्रिया में एकश्रुति बोधन किया। स्वाध्यायकाल में उदात्तादिस्वर युक्त मन्त्रोच्चारण करना वहाँ एकश्रुति नहीं है। जपादि में एकश्रुति का अभाव अर्थात् तत्तत्स्वर युक्त शब्दोच्चारण करना अपेक्षित है। उपांशुशब्द प्रयोग को जप कहते हैं। जलनिमग्न शब्द को उपांशु कहते हैं। १६ ओकार को न्यूङ्ख कहते हैं। गीतियों मे साम आख्यात होता है। १६ ओम् शब्द को न्यूङ्ख कहते हैं ऐसा भी पाठान्तर है। या यही मुख्य पाठ है 'ओ' वाला पाठ गौण है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३६६४ उच्चैस्तरां वा वषट्कारः १।२।३५।

यज्ञकर्मणि वौषट्शब्द उच्चैस्तरां वा स्यादेकश्रुतिर्वा।

यज्ञ कर्म में वौषट् शब्द विकल्प से उदात्ततर होता है एवं एकश्रुति भी होता है। सूत्रस्थ 'वषट्' शब्द से वौषट् उपलक्षणविधया भासमान है, दोनों का अर्थ समान है। वे दोनों शब्द मन्त्रों द्वारा स्तुति क्रिया के कर्म स्वरूप देवताओं को उद्देश्य करके जो हविः का दान किया जाता है उसके द्योतक हैं। आचार्य पाणिनि ने वषट्कारः कहकर वषट् को समानार्थकत्व से वौषट् का लक्षणविधया मान क्रिया उसमें ज्ञानगौरव है, एवं मात्रा लाघव है, आचार्य कहीं मात्रा लाघव का आदर करते हैं कहीं ज्ञान गौरव का आदर करते हैं यह महर्षि की चमत्कृति है। वस्तुतः ज्ञानगौरव का अनादर मात्रा लाघव का आदर इसका महाभाष्यकार ने खण्डन किया है दोनों का समान आदर है।

'वर्णात्कारः' से कार प्रत्यय प्रत्येक वर्ण से होता है, न वर्ण समुदाय से किन्तु सौत्र निर्देश से वर्णसमुदाय से भी कारप्रत्यय क्वचित होता है अतः 'वषट्कारः'।

३६६५ विभाषा छन्दसि १।२।३६।

छन्दसि विभाषा एकश्रुतिः स्यात्। व्यवस्थितविभाषेयम्। संहितायां त्रैस्वर्यम्। ब्राह्मणे एकश्रुतिर्बह्वृचानाम्। अन्येषामपि यथासम्प्रदायं व्यवस्था।

वेद में एकश्रुति स्वर विकल्प से होता है। इससे पूर्वसूत्र से 'वा' की अनुवृत्ति आती पुनः विभाषा पद सूत्र में क्यों किया? 'अच्छन्दसि' ऐसा पदच्छेद करके तन्त्रादि से भाषा में भी विधान निमित्तक है।

इसीलिए श्वेतो धावति' श्वेतः पुरुषः धावति अथवा श्वा इतः धावति यह द्वयर्थ बोधक वाक्य है। अलंबुसानां याता यह भी द्वयर्थक है भाष्य में पस्पशान्त में कहा है। वहाँ श्वा प्रातिपदिक स्वर से अन्तोदात्त है। इतः अन्तोदात्त है। 'श्वेत' शब्द 'वर्णानाम्' से आद्युदात्तत्व इसको प्राप्त था किन्तु घृतादित्व प्रयुक्त अन्तोदात्त है। अलं शब्द निपातत्व के कारण आद्युदात्त है। बुस शब्द अन्तोदात्त है अलंबुस शब्द फिट् स्वर से अन्तोदात्त है। यहाँ भाषा में एकश्रुति न हो तो स्वरभेद से एकवाक्यत्व एवं द्वयर्थ प्रातिपादकत्व कैसे होता एतदर्थ अच्छन्दसि पदच्छेद से भाषा में भी एकश्रुति की प्रवृत्ति हुई।

यह सूत्र व्यवस्थित विभाषा है, अतः संहिता में उदात्तादि स्वरत्रय युक्तत्व है। ब्राह्मण में बह्वृचों की एकश्रुति ही है। अन्य आचार्यों की भी यथासम्प्रदाय व्यवस्था ज्ञान करना।

३६६६ न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः १।२।३७।

सुब्रह्मण्याख्ये निगदे 'यज्ञकर्मणि' (सू ३६६३) इति 'विभाषा छन्दसि' (सू ३६३५) इति च प्राप्ता एकश्रुतिर्न स्यात्स्वरितस्योदात्तश्च स्यात्। सुब्रह्मण्योऽ३म्। सुब्रह्मणि साधुरिति यत्। न च 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' (सू ३६५८) इति सिद्धे पुनरत्रेदमुदात्तविधानं व्यर्थमिति वाच्यम्। तत्रानुदात्त इत्यस्यानुवृत्तेः। असावित्यन्तः (वा ६५१) तस्मिन्नेव निगदे प्रथमान्तस्यान्त उदात्तः स्यात्। गार्ग्यो यजते। ञित्वात्प्राप्त आद्युदात्तोऽनेन बाध्यते। अमुष्येत्यन्तः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(वा ६५२)। षष्ठ्यन्तस्यापि प्राग्वत्। दाक्षेः पिता यजते। स्यान्तस्योपोत्तमं च (वा ६५३)। चादन्तस्तेन द्वावुदात्तौ। गार्ग्यस्य पिता यजते। वा नामधेयस्य (वा ६५४)। स्यान्तस्य नामधेयस्य उपोत्तममुदात्तं वा स्यात्। देवदत्तस्य पिता यजते।

सुब्रह्मण्य है आख्या जिसकी ऐसा जो निगद=ऊँचे स्वर से पठित पादबन्धरहित = गद्यात्मक यजुरात्मक मन्त्र वाक्य में 'यज्ञकर्मणि' एवं 'विभाषा न छन्दसि' इन सूत्रों से प्राप्त एक श्रुति नहीं प्रवृत्त है एवं स्वरित को उदात्त होता है। सुब्रह्मण्योऽम्। 'तत्र साधुः' से यत्, 'तित् स्वरितम्' से स्वरित। यहाँ 'यतोऽनावः' की प्रवृत्ति नहीं है, उसमें द्व्यच् की अनुवृत्ति है। टाप् के साथ एकादेश। स्थानेऽन्तरतमः से स्वरित, औम् निपात आद्युदात्त है ओमाङोश्च से उदात्त स्वरित का एकादेश स्वरित है। अपादबन्ध में गदि है। यथा गद्यम्। निःशब्द प्रकर्ष में है।

"उच्चैरपादबन्धं यजुरात्मकं यन्मन्त्रं वाक्यं प्राप्यते स निगदः" नितरां गद्यते कर्मणि 'नौ गदनद' ईति अप् प्रत्ययः। उसका सुब्रह्मण्या शब्द उपलक्षक है, सुब्रह्मण्या निगद विशेष का नाम है। स्त्रीत्वको अत्यागपूर्वक इस अर्थ का बोधक वह है।

इसी निगद में प्रथमान्त का अन्त उदात्त होता है। यथा गार्ग्यो यजते। यङ् प्रत्ययान्त में आद्युदात्तत्व प्राप्त था उसको बाधनार्थ यह उपक्रम है।* इसी निगद में षष्ठ्यन्त का अन्त उदात्त होता है। दाक्षेः पिता यजते।* स्य शब्दान्त पद का अन्त्यपूर्ववर्ती = उपोत्तम वर्ण उदात्त होता गार्ग्यस्य पिता यजते।* स्यशब्दान्त नामधेय वाचक का उपोत्तम विकल्प से उदात्त होता है। देवदत्तस्य पिता यजते।

३६६७ देवब्रह्मणोरनुदात्तः १।२।३८।

अनयोः स्वरितस्याऽनुदात्तः स्यात्सुब्रह्मण्यायाम्। देवा ब्रह्माण आगच्छतः।

सुब्रह्मण्या निगद में देव एवं ब्रह्मन् शब्द के स्वरितस्वर को अनुदात्तस्वर होता है। देवा ब्रह्माण आगच्छत।

३६६८ स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् १।२।३९।

स्वरितात्परेषामनुदात्तानां संहितायामेकश्रुतिः स्यात्। इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति।

संहिता में स्वरित स्वर से पर अनुदात्त को एकश्रुति स्वर होता है। 'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति'।

३६६९ उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः १।२।४०।

उदात्तस्वरितौ परौ यस्मात्तस्यानुदात्तस्यानुदात्ततरः स्यात्। सरस्वति शुतुद्रि। व्यचक्षयत्स्वः। 'तस्य परमाम्रेडितम्' (सू ८३)।

सन्न शब्द का नीचैः अर्थ है, इससे अनुदात्तत्व गम्य है। उदात्त या स्वरित पर में रहते अनुदात्त को अनुदात्ततर स्वर होता है। अनुदात्त की अपेक्षा प्रकर्ष अनुदात्ततर है। 'मे' शब्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का आश्रयण करके सरस्वती का निघात हुआ। 'शुतुद्रि' को निघात नहीं वह पादादि है उसकी आद्युदात्त हुआ। सरस्वती का ईकार सन्नतर है।

३६७० अनुदात्तं च ८।१।३।

द्विरुक्तस्य परं रूपमनुदात्तं स्यात्। दि॒वे दिवे।

इति साधारणस्वराः।

द्वित्व निष्पन्न जो शब्द उसका परभाग अनुदात्त होता है। यथा दिवे दिवे।

एक पद में या पदद्वय में भी प्रवर्तमान होने के कारण साधारणत्व इस स्वर को है। 'आद्युदात्तश्च' 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इत्यादि एक ही पद में प्रवर्तमान होने से इनको साधारणत्व नहीं है।

पं० श्री बालकृष्ण पञ्चोलिविरचितरत्नप्रभा में साधारणस्वर समाप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ धातुस्वराः

३६७१ धातोः ६।१।१६२।

अन्त उदात्तः स्यात्। गोपायतं नः। असि सत्यः।

प्रकृति द्विविधा है धातु एवं प्रातिपदिक, अतः प्रथम धातुस्वर कहते हैं। धातु का अन्त्यवर्ण उदात्त होता है। यथा गोपायतम् यहाँ गोपाय का यकाराकार उदात्त है।

३६७२ स्वपादिर्हिंसामच्यनिटि ६।१।१८८।

स्वपादीनां, हिंसेश्चाऽनिटि अजादौ लसार्वधातुके परे आदिरुदात्तो वा स्यात्। स्वपादिरदाद्यन्तर्गणः। स्वपन्ति। श्वसन्ति। हिंसन्ति। पक्षे प्रत्यय-स्वरेण मध्योदात्तता। कृङित्येवेष्यते। नेह। स्वपानि। हिनसानि।

अनिट् अजादि लस्थानिक सार्वधातुक पर में रहते स्वप् आदि धातु एवं हिंस् धातु उनका आदि वर्ण विकल्प से उदात्त होता है। अदादिका अन्तर्गण स्वपादि है। यथा स्वपन्ति। श्वसन्ति, हिंसन्ति। विकल्प में प्रत्यय स्वर से मध्यवर्ण उदात्तस्वर है, कित् एवं ङित् सार्वधातुक पर रहते उच्च स्वर इष्ट है। स्वपानि, हिनसानि यहाँ यह स्वर न हुआ। यह वृत्तिकार का मत है। भाष्य में ऐसा नहीं है। अतः हिनसानि में आद्युदात्त है, या पक्षमें अनुदात्त इष्ट है तो व्यवस्थित विभाषा का अवलम्बन है।

३६७३ अभ्यस्तानामादिः ६।१।१८९।

अनिट्यजादौ लसार्वधातुके परे अभ्यस्तानामादिरुदात्तः। ये ददति प्रिया वसु। परत्वाच्चित्स्वरमयं बाधते। दधाना इन्द्र।

अनिट् अजादि लस्थानिक सार्वधातुक पर में रहते अभ्यस्त संज्ञक धातु का आदि वर्ण उदात्त होता है। यथा ददति। दधाना यहां यहां परत्व के कारण चित् स्वर को इसने बाध किया।

३६७४ अनुदात्ते च ६।१।१९०।

अविद्यमानोदात्ते लसार्वधातुके परेऽभ्यस्तानामादिरुदात्तः। दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषे।

जिस में उदात्त स्वर न रहें ऐसा लसार्वधातुक पर रहते अभ्यस्त संज्ञक धातु का आदि स्वर उदात्त होता है। दधासि।

३६७५ भीहीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां प्रत्ययात्पूर्वं पिति ६।१।१९२।

भीप्रभृतीनामभ्यस्तानां पिति लसार्वधातुके परे प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तं स्यात्। योऽग्निहोत्रं जुहोति। मत्तो नः परिभा। जजनत्। माता यद्वीरं दधनत्। जागर्षि त्वम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पित् सार्वधातुक पर में रहते अभ्यस्त संज्ञक भी, ही, भू, हु, मद, जन, धन, दरिद्रा, जागृ, इन धातुओं के प्रत्यय का पूर्व वर्ण उदात्त होता है।

३६७६ लिति ६।१।१९३।

प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तम्। चिकीर्षकः।

लित् प्रत्ययान्त के पूर्व वर्ण उदात्त होता है। स्वरविधायक शास्त्रस्थ सप्तम्यन्त निर्देश तदन्त परक है। सौवर्य्यः सप्तम्यन्तः तदन्तसप्तम्यः यह नियम है। चिकीर्षकः यहां षकाराकार उदात्त है स्वर करने में अतो लोपः से जायमान अकार का लोप का स्थानिवद्भाव न हुआ 'नपदान्त' से निषेध है।

३६७७ आदिर्णमुल्यन्यतरस्याम् ६।१।१९४।

अभ्यस्तानामादिरुदात्तो वा णमुलि परे। लोलूयं लोलूयम्। पक्षे लित्स्वरः।

णमुल् प्रत्ययपर में रहते अभ्यस्त संज्ञक धातुओं का आदि वर्ण विकल्प उदात्त होता है। पक्ष में लित् स्वर होता है। यङन्त लू से णमुल् है, नित्यवीप्सयोः से द्वित्व है। लोलूय शब्द आद्युदात्त है। विकल्प पक्ष में लित् स्वर है।

३६७८ अचः कर्तृयकि ६।१।१९५।

उपदेशेऽजन्तानां कर्तृयकि परे आदिरुदात्तो वा। लूयते केदारः स्वयमेव।

कर्तृवाच्य में विहित यक् प्रत्यय पर रहते उपदेशावस्था में अजन्त धातु के आदि वर्ण विकल्प उदात्त स्वर होता है। लूयते केदारः स्वयमेव कर्मकर्ता में यह प्रयोग है।

३६७९ चङ्यन्यतरस्याम् ६।१।२१८।

चङन्ते धातावुपोत्तममुदात्तं वा। मा हि चीकरताम्। धात्वकार उदात्तः। पक्षान्तरे चङुदात्तः।

इति धातुस्वराः।

चङन्त धातु में उपोत्तम = आदि के अन्त्य का समीप वर्ण विकल्प से उदात्त होता है। मा हि चीकरताम्। धातु का अकार उदात्त है। पक्षान्तर में चङ् उदात्त है।

रत्नप्रभा में धातुस्वर समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ प्रातिपदिकस्वराः

(अथ शब्दस्वराः)

३६८० कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः ६।१।१५९।

कर्षतेर्धातोराकारवतश्च घञन्तस्यान्त उदात्तः स्यात्। कर्षः। शपा निर्देशात्तुदादेराद्युदात्त एव। कर्षः। पाकः।

घञ् प्रत्ययान्त कर्ष धातु एवं आकारवान् धातु का अन्त उदात्त होता है। कर्षः। शप् निर्देश से तुदादिस्थ कर्ष घञन्त का आदि उदात्त है। कर्षः। पाकः।

३६८१ उञ्छादीनां च ६।१।१६०।

अन्त उदात्तः स्यात्। उञ्छादिषु युगशब्दो घञन्तोऽगुणो निपात्यते कालविशेषे रथाद्यवयवे च। वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे। अन्यत्र। योगेयोगे तवस्तरम्। भक्षशब्दो घञन्तः। गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः। उत्तमशश्वत्तमावपि। उदुत्तमं वरुण शश्वत्तममीळते।

उञ्छादि गण पठित शब्दों का अन्त उदात्त होता है। उञ्छ, म्लेच्छ, जज्ज, जल्प, जप, वध, युग, आदि शब्द है। युग शब्द घञ् प्रत्ययान्त गुण का अभाव काल विशेष में निपातित है एवं रथादि के अवयव में भी। अन्यत्र 'योगे योगे'। भक्ष शब्द घञ् प्रत्ययान्त है। भक्ष शब्द घञ् प्रत्ययान्त है। उत्तम एवं शश्वत्तम शब्द अन्तोदात्त है। यह तमप् प्रत्ययान्त है।

३६८२ चतुरः शसि ६।१।१६७।

चतुरोऽन्त उदात्तः शसि परे। चतुरः कल्पयन्तः। 'अचि र' (सू २९६) इति रादेशस्य पूर्वविधौ स्थानिवत्त्वान्नेह। चतस्रः पश्य। चतेरुरन्। नित्त्वादाद्युदात्तता।

शस् प्रत्यय पर क चतुर् शब्द का अन्त उदात्त होता है। चतुरः। चसेरुरन् आद्युदात्त प्राप्त था इसने अन्तोदात्त किया। चतस् अस् यहां परत्व के कारण रेफादेश कर तकाराकार को उदात्तत्व प्राप्त है, किन्तु 'अचः परस्मिन्' से रेफादेश में ऋकार वृद्धि करके चतस्रः पश्य यहां अन्तोदात्त न हुआ। 'न पदान्त' का विषय यहाँ नहीं है, 'स्वरदीर्घयलोपेषु लोपाजादेश एव न स्थानिवत्' यह कहा गया है। आद्युदात्त चतुर् शब्द रहा।

३६८३ झल्युपोत्तमम् ६।१।१८०।

षट्त्रिचतुर्भ्यो या झलादिर्विभक्तिस्तदन्ते पदे उपोत्तममुदात्तं स्यात्। अष्वर्युभिः पञ्चभिः। नवभिर्वोजैर्नवती च। सप्तभ्यो जायमानः। आदृशभिर्विवस्वतः। उपोत्तमं किम्? आ षड्भिर्हूयमानः। विश्वैर्देवैस्त्रिभिः। झलि किम्? नवानां नवतीनाम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षट्, त्रि, चतुर् इनसे पर जो झलादि विभक्ति तदन्त पद उपोत्तम वर्ण उदात्त होता है। यह 'षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः' का बाधक है। अध्वर्युभिः। नवभिः। यहाँ उकार एव वकारोत्तर अकार उदात्त है अन्य शेष निघात से अनुदात्त है। सप्तभ्यः। दशभिः। उपोत्तम न रहने पर आषड्भिः। झल् पर न रहने पर नवानाम्। नेवतीनाम्। षष् शब्द अन्तोदात्त 'फिषोऽन्तः' से है। त्रिभिः—तन् से ङि त्रिः यह भी अन्तोदात्त है यहाँ षट् त्रिचतुर्भ्यो हलादिः से विभक्ति उदात्त है। नवानाम् यहाँ भी विभक्ति उदात्त है।

३६८४ विभाषा भाषायाम् ६।१।१८१।

उक्तविषये।

लोक में षट्, त्रि, चतुर् से पर झलादि विभक्ति तदन्त पद का उपोत्तम उदात्त विकल्प से होता है।

३६८५ सर्वस्य सुपि ६।१।१९१।

सुपि परे सर्वशब्दस्याऽऽदिरुदात्तः स्यात्। सर्वे नन्दन्ति यशसा।

सुबन्त सर्व शब्द का आदि वर्ण उदात्त होता है। यशः से सर्वलोक प्रसन्न होते हैं। जिसकी कीर्ति जीवित है वह जीवित है 'सर्वे नन्दन्ति यशसा' यहाँ सर्व शब्द उञ्छादि से अन्तोदात्त निपातित है, इसने सकाराकार को उदात्त किया।

३६८६ ञ्नित्यादिर्नित्यम् ६।१।१९७।

ञिदन्तस्य नितन्तस्य चादिरुदात्तः स्यात्। यस्मिन्विश्वानि पौंस्या। पुंसः कर्मणि ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्। सुते दधिष्व नश्चनः। चायतेरसुन् (उ० सू०) 'चायेरन्ने ह्रस्वश्च' इति चकारादसुनो नुडागमश्च।

ञिदन्त निदन्त का आदि उदात्त होता है। पौंस्या पुंसः कर्मणि में ब्राह्मणादित्वप्रयुक्त ष्यञ् प्रत्यय है। नश्चन चाय् से असुन् करकर ह्रस्व एवं नुडागम हुआ चायेरन्ने ह्रस्वश्च उ० सू० है।

३६८७ पथिमथोः सर्वनामस्थाने ६।१।१९९।

आदिरुदात्तः स्यात्। अयं पन्थाः। सर्वनामस्थाने किम्? ज्योतिष्मतः पथो रक्ष। उदात्तनिवृत्तिस्वरेणाऽन्तोदात्तं पदम्।

सर्वनामस्थान प्रत्यय पर पथिन् मथिन् शब्द का आदि उदात्त होता है। सर्वनामस्थान विभक्ति परत्वाभाव में पथः यहाँ म संज्ञक की टि लोप कर 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' से विभक्ति उदात्त है।

३६८८ अन्तश्च तवै युगपत् ६।१।२००।

तवैप्रत्ययान्तस्याऽऽद्यन्तौ युगपदाद्युदात्तौ स्तः। हर्षस्व दातवा उ।

तवै प्रत्ययान्त शब्द के आदि वर्ण एवं अन्त्यवर्ण एक समय उदात्त होता है। यहाँ क्रम निरासार्थ यहाँ युगपत् शब्द है। 'तवैकेनन् केन्य' सूत्र से यहाँ 'तवै' प्रत्यय है 'दातवै' ऽ यहाँ ऐकार को आयादेश 'लोपः शाकल्यस्य' से य लोप से 'दातवा उ' है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३६८९ क्षयो निवासे ६।१।२०१।

आद्युदात्तः स्यात्। स्वे क्षये शुचिव्रत।

निवास अर्थ में क्षय शब्द आदि उदात्त होता है। क्षि निवासगत्योः अधिकरण में 'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण' से घ प्रत्यय यहाँ हुआ है। नाश अर्थ में आद्युदात्त नहीं हुआ सूत्र में निवास ग्रहण से। व्याधेः क्षयः = नाशः। 'एरच्' से अच् प्रत्ययान्त यह 'क्षयः' अन्तोदात्त है।

३६९० जयः करणम् ६।१।२०२।

करणवाची जयशब्द आद्युदात्तः स्यात्। जयत्यनेन जयोऽश्वः।

करण वाची जय शब्द को आदि उदात्त होता है। विजय का साधन अश्व अर्थ में 'पुंसि संज्ञायाम्' से करण अर्थ में घप्रत्यय हुआ। आदि उदात्त है। जयोऽश्वः।

३६९१ वृषादीनां च ६।१।२०३।

आदिरुदात्तः। आकृतिगणोऽयम्। वाजेभिर्वाजिनीवती। इन्द्रं वाणीः।

वृषादि शब्दो का आदि उदात्त होता है। यह आकृतिगण है। 'वृषु सेचन' 'इगुपधज्ञा' से कप्रत्यय है। वाजेभिः यहां वज् से घञ् प्रत्यय है, 'कर्षात्वतः' से अन्तोदात्त प्राप्त था उसको बाधकर आद्युदात्त हुआ। यह आकृति गण का फल है।

३६९२ संज्ञायामुपमानम् ६।१।२०३।

उपमानशब्दः संज्ञायामाद्युदात्तः। चञ्चेव चञ्चा। कनोऽत्र लुप्। एतदेव ज्ञापयति 'क्वचित्स्वरविधौ प्रत्ययलक्षणं ने'ति। संज्ञायां किम्? अग्निर्माणवकः। उपमानं किम्? चैत्रः।

उपमान वाचक शब्द संज्ञा में आदि उदात्त होता है। तृणमयः पुमान् चञ्चा यहां इवार्थ सादृश्य में 'इवे प्रतिकृतौ' से कन् प्रत्यय उसका 'लुम्मनुष्ये' से लुक् प्रत्ययलक्षण से निदन्त प्रयुक्त यहां आद्युदात्तत्व सिद्ध ही था, पुनः इससे विधीयमान आद्युदात्तत्व व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि स्वर विधान में क्वचित् प्रत्ययलक्षण नहीं होता है अतः अप्राप्त आद्युदात्तत्व विधानार्थ यह सार्थक हुआ। संज्ञा भिन्न में अन्तोदात्त होता है यथा अग्निर्माणवकः। उपमा की अप्रतीति में यथा चैत्रः यहां अन्तोदात्त हुआ फिट् सूत्र से।

३६९३ निष्ठा च द्व्यजनात् ६।१।२०५।

निष्ठान्तस्य द्व्यचः संज्ञायामादिरुदात्तो, न त्वाकारः। दत्तः। द्व्यच् किम्? चिन्तितः। अनात्किम्? त्रातः। संज्ञायामित्यनुवृत्तेर्नेह। कृतम्। हृतम्।

संज्ञा होने पर निष्ठा प्रत्ययान्त दो अचों से युक्त शब्द का आदि उदात्त होता है किन्तु आदि यदि आकार रहे वहां यह उदात्त नहीं करता है। दा+त घुसंज्ञा दथ् आदेश चर्त्व से दत्तः आदि उदात्त हुआ। चिन्तितः में ञ्यच् युक्त शब्द से इसकी अप्रवृत्ति हुई, चिति स्मृत्याम् यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चुरादिगण पठित है। त्रैङ् पालने क्तप्रत्यय आत्व यहां त्रातः में आदि अच् आकार होने से इसकी प्रवृत्ति न हुई। यहां संज्ञायाम् की अनुवृत्ति है अतः कृतम्, हृतम् में संज्ञात्वाभाव प्रयुक्त इसकी अप्रवृत्ति हुई प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त वे दोनो हैं।

३६९४ शुष्कधृष्टौ ६।१।२०६।

एतावाद्युदात्तौ स्तः। असंज्ञार्थमिदम्। अतृसं न शुष्कम्।

शुष्क एवं धृष्ट वे दोनो आद्युदात्त होते हैं। यह सूत्र असंज्ञार्थ है।

३६९५ आशितः कर्ता ६।१।२०७।

कर्तृवाची आशितशब्द आद्युदात्तः। कृषन्निष्फालु आशितम्।

कर्तृवाची आशित शब्द आद्युदात्त होता है। आङ् पूर्वक अश भोजने कर्ता में क्तप्रत्यय निपातन लब्ध हुआ। यहां अन्य आचार्य मत यह है कि 'कर्ता' से भूतपूर्वगत्या अणौ कर्ता णौ कर्मीभूत वही विवक्षित है इस मत में ण्यन्त आशि का प्रयोज्य कर्ता में 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ' कर्मसंज्ञक में निष्ठा में आशितः यह रूप है।

३६९६ रिक्ते विभाषा ६।१।२०८।

रिक्तशब्दे वाऽऽदिरुदात्तः। रिक्तः। संज्ञायां तु 'निष्ठा च द्व्यजनात्' (सू ३६।३) इति नित्यमाद्युदात्तत्वं पूर्वविप्रतिषेधेन।

रिक्त शब्द आद्युदात्त विकल्प से होता है। रिचिर् विरेचने क्तप्रत्यय से रिक्तः। संज्ञावाचक रिक्त में तो निष्ठायां द्व्यजनात् नित्य आद्युदात्तत्व होगा पूर्वविप्रतिषेध से।

३६९७ जुष्टार्पिते च छन्दसि ६।१।२०९।

आद्युदात्ते वा स्तः।

छन्द में जुष्ट एवं अर्पित आद्युदात्त होते हैं विकल्प से। 'जुषी प्रीतिसेवनयोः' क्तप्रत्यय, 'श्रीदितो निष्ठायाम्' से इट् का निषेध जुष्टः। ऋ से णिच् 'अर्ति' से पुक् अर्पितः।

३६९८ नित्यं मन्त्रे ६।१।२१०।

एतत्सूत्रं शक्यमकर्तुम्। जुष्टो दमूनाः। षळ्र आहुरर्पितम्। इत्यादेः पूर्वेणैव सिद्धेः। छन्दसि पाठस्य व्यवस्थिततया विपरीताऽऽपादनाऽयोगात्। अर्पिताष्टिर्न चला चलासः। इत्यत्राऽन्तोदात्तदर्शनाच्च।

जुष्ट एवं अर्पित शब्द मन्त्र विषय में नित्य आद्युदात्त होते हैं। यह सूत्र नहीं करना चाहिए। पूर्व से ही आद्युदात्त सिद्ध है। छन्द में सभी कार्य व्यवस्थित है अतः विपरीत शंका का यहां अनवसर ही है। अतः पूर्व सूत्र वैकल्पिक है पक्ष में अन्तोदात्त होगा यह नहीं कहना। व्यवस्थित विभाषा पूर्व को मानकर यहां नित्य आद्युदात्त होगा। एवं इस सूत्र को करने पर भी कचित् मन्त्रों में अन्तोदात्त का भी दर्शन होता है अतः नित्यार्थ यह व्यर्थ ही है।

३६९९ युष्मदस्मदोर्ङसि ६।१।२११।

आदिरुदात्तः स्यात्। नहिषस्तव नो मम।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ङस् प्रत्ययान्त युष्मद् एवं अस्मद् इनका आदि उदात्त होता है। तव। मम।

३७०० ङयि च ६।१।२१२।

तुभ्यं हिन्वानः। मह्यं वातः पवताम्।

ङे विभक्त्यन्त अर्थात् चतुर्थ्येकवचनान्त युष्मद् एवं अस्मद् का आदि उदात्त होता है। तुभ्यम्। मह्यम्।

३७०१ यतोऽनावः ६।१।२१३।

यत्प्रत्ययान्तस्य द्वयच आदिरुदात्तो नावं विना। युञ्जन्त्यस्य काम्या। कर्मेणिङन्तादचो यत्। [अनावः किम्? नवतिं नाव्यानाम्।]

यत् प्रत्ययान्त द्वयच् का आदि उदात्त होता है। यत् प्रत्ययान्त नौ को छोडकर यह 'तित्स्वरितम्' का बाधक है। निष्ठा च द्वयजनात् से द्वयच् की अनुवृत्ति यहाँ हैं इच्छाजनक व्यापारार्थक कमु से णिङ् कर अचो यत् से यत् प्रत्ययान्त 'काम्या' है। नाव्यम् में आदि नकार-स्वर योग्य नहीं है व्यञ्जन को स्वर नहीं होता है, आकार जो स्वर योग्य है वह आदि नहीं है क्योंकि वह स्वावयव नकार से उत्तर है। 'सति परस्मिन् यस्मात् पूर्वो नास्ति स आदिः' यह आदि का संक्षिप्त स्वरूप है। वह आकार में नहीं है। पुनः 'अनावः' सूत्र में क्यों किया?, वह व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि "स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्"। नावा तार्यं जलं नाव्यम् यहाँ 'नौवयो' से यत् प्रत्यय है। चिकीर्ष्यम् यहाँ द्वयच् नहीं है अतः आद्युदात्त न हुआ। उभयत्र तित् स्वर है।

३७०२ ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः ६।१।२१४।

एषां ण्यदन्तानामादिरुदात्तः। ईड्यो नूतनैरुत। आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्च। श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम्। उक्थमिन्द्राय शंस्यम्।

ण्यत् प्रत्ययान्त ईड, वृन्द, वृ, शंस् दुह् इनका आदि उदात्त होता है। ईड् स्तुतौ। वदि अभिवादनस्तुत्योः। वृङ् संभक्तौ, शंसु स्तुतौ, दुह् प्रपूरणे। ण्यत् द्वयनुबन्धक होने से 'तदनुबन्धकग्रहणे' परिभाषा से दो अनुबन्ध विशिष्ट का ग्रहण अप्राप्त है यत् से ण्यत् का ग्रहण नहीं अतः सूत्र यह किया ईड्यः 'ऋहलोः' ण्यत् प्रत्यय हुआ। वार्यम् में भी उसी से ण्यत्। यहाँ क्यप् की उत्पत्ति विषयक शङ्का न करनी चाहिए, 'एतिस्तु' सूत्र में वृञ् का ही ग्रहण है, इसका नहीं यह मूल में स्पष्ट कर चुके हैं।

३७०३ विभाषा वेण्विन्धानयोः ६।१।२१५।

आदिरुदात्तो वा। इन्धानो अग्निम्।

वेणु एवं इन्धन इनका आदि उदात्त विकल्प होता है। वेणु को नित् प्रयुक्त आद्युदात्त नित्य प्राप्त था इसमें विकल्प से किया। वेणु नित् प्रत्ययान्त है। इन्धन चानश् प्रत्ययान्त होने से चितः अन्तोदात्त प्राप्त को बाधकर आद्युदात्त हुआ। शानच् प्रत्ययान्त है तो मध्योदात्त।

३७०४ त्यागरागहासकुहश्वठक्रथानाम् ६।१।२१६।

आदिरुदात्तो वा। आद्यास्त्रयो घञन्ताः। त्रयः पचाद्यजन्ताः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्याग, राग, हास, कुह, श्वठ, क्रथ इनको आद्युदात्त होता है। आदि तीन घञ् प्रत्ययान्त है यहां 'कर्षात्वतः' से ञित् प्रयुक्त आद्युदात्त को परत्व के कारण बाधकर अन्तोदात्त प्राप्त था उसको बाधकर इसने आद्युदात्त चित्तः से प्राप्त था उसको बाधकर आद्युदात्त किया।

३७०५ मतोः पूर्वमात्संज्ञायाम् स्त्रियाम् ६।१।२१९।

मतोः पूर्वमाकार उदात्तः स्त्रीनाम्नि। उदुम्बरावती। शरावती।

स्त्री का नाम होने पर मतुप् से पूर्वस्थित आकार उदात्त होता हैं। उदुम्बरावती। शरावती। चातुरर्थिक नद्यां मतुप्, 'मादुपधायाश्च' से वत्व, शरादीनाञ्च से दीर्घ।

३७०६ अन्तोऽवत्याः ६।१।२२०।

अवतीशब्दस्याऽन्त उदात्तः। वेत्रवती। ङीपः पित्त्वादनुदात्तत्वं प्राप्तम्।

अवती शब्द का अन्त वर्ण उदात्त होता है। वेत्र से मतुप्, वत्व, यहां अवती ग्रहण से वत्व असिद्ध नहीं होता है। वेत्रवती यहां ङीप् पित्त्व से अनुदात्तत्व प्राप्त था। इसने आद्युदात्त किया।

३७०७ ईवत्याः ६।१।२२१।

ईवत्यन्तस्यापि प्राग्वत्। अहीवती। मुनीवती।

इति प्रातिपदिकस्वराः।

ईवती है अन्त में जिसको ऐसा जो शब्द उसका अन्त्यवर्ण उदात्त होता है अहीवती शरादीनाञ्च से दीर्घ 'संज्ञायाम्' से वत्व। अहीवती, मुनीवती। फिट् सूत्र प्रातिपदिक स्वर करते हैं किन्तु अष्टाध्यायीस्थ कतिपय सूत्रों से कतिपय प्रातिपदिक शब्दों को स्वर के कथन से यह प्रातिपदिक स्वर कहे गये। प्राचीन ग्रन्थों में शब्द स्वर प्रारम्भ में इस प्रकरण में लिखा है एवं अन्त में भी 'इति शब्दस्वराः' लिखा है इस शीर्षक से फिट् स्वर विषयक भ्रम का दूरीकरण होता है। अस्तु, दो शीर्षक उचित ही है।

षं० श्री बालकृष्ण पञ्चोली विरचित रत्नप्रभा में शब्द स्वर
(प्रातिपदिक स्वर) प्रकरण समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ फिट्सूत्राणि

प्रथमः पादः

१ फिषोऽन्त उदात्तः ।

प्रातिपदिकं फिट् । तस्यान्त उदात्तः स्यात् । उच्चैः ।

[भगवान् शान्तनवाचार्य प्रणीत फिट् सूत्रों में चार पाद है । इन सूत्रों का स्वर विधान में अतीव महत्त्व है । इन सूत्रों के बिना स्वरों का पूर्ण ज्ञान असम्भव था वे पाणिनि आचार्यादि को सर्वथा सम्मत है, अतः इसकी प्रामाणिकता में संदेह लेश भी नहीं है । इन फिट् सूत्रों में संज्ञाएँ विलक्षण २ हैं कहीं फिट् कहां शिट् आदि । 'चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः' इस भगवान् पतञ्जलि की उक्ति से यदृच्छा शब्दों में इन संज्ञाओं का समावेश होगा । अवयवार्थ की प्रतीति की आशा संज्ञा शब्दों में नहीं होती है । इन सूत्रों का संख्या क्रम १ से ८७ तक स्वतन्त्र है। इनमें चार पाद हैं ।]

प्रातिपदिक की संज्ञा यहां फिट्है, फिट् का संज्ञी प्रातिपदिक ही है ।।प्रातिपदिक का अन्त उदात्त होता है । यथा उच्चैः यह अधिकरणशक्ति प्रधान अव्यय है इसकी प्रातिपदिक संज्ञा कर इससे अन्तोदात्त हुआ सुविभक्ति का 'अव्ययादाप्' से लुक् सकार को सत्व विसर्ग से उच्चैः ।

विमर्श—विद्वानों की शास्त्रचर्चा में एवं परीक्षक बहुधा प्रश्नपत्रों में छात्रों से पूँछते हैं कि अपाणिनीय सूत्रों का प्रामाण्य है या नहीं ? एवं अपाणिनीय सूत्रों का पाणिनि के ग्रन्थ में क्यों उपन्यास किया ? इन शङ्काओं का निरसन अत्यावश्यक है, यहां पूर्वपक्षी की शङ्का, उत्तर पक्षी के समाधान का उपन्यास प्रारम्भ हो रहा है—पूर्वपक्षी—अपाणिनीय फिट् सूत्रों का उपन्यास क्यों करते हैं ? पाणिनि सूत्रों से जो स्वर प्राप्त होता है वही प्रमाण है । 'शताच्च ठन्यतौ' सूत्र पर कैयटाचार्य ने कहा है कि—"नियतकालाश्च स्मृतयो भवन्ति व्यवस्थाहेतवः" = अर्थात् जिस काल में जो स्मृति स्वरूप वचन व्यवस्था में कारणीभूत है वही मान्य है । अन्य नहीं, सम्प्रति मुनित्रय=पाणिनि-कात्यायन-पतञ्जलि मत से साधु शब्दों का एवं असाधु शब्दों का प्रविभाग होता है ।

उत्तरपक्षी—पूर्वपक्षी का कथन उचित नहीं है । अपाणिनीय भी फिट् सूत्रों का पाणिनीयों से आश्रयण होता है—ऐसा भाष्यकार ने कहा है—"अपाणिनीयान्यपि फिट् सूत्राणि पाणिनीयैराश्रीयन्ते" इति भाष्यम् । एवं आद्युदात्तश्च सूत्र पर भाष्य है—"प्रातिपदिकस्य चान्तः इति प्रकृतेरन्तोदात्तत्वं शास्ति"=प्रातिपदिक का अन्त उदात्त होता है अतः प्रकृति को अन्तोदात्त बोधन करना है । इससे स्पष्ट हुआ कि 'फिषोऽन्त उदात्तः' सूत्र कथन आचार्य पतञ्जलि को सम्मत है । एवं उसी सूत्र में भाष्योक्ति यह है कि—"प्रत्ययस्याद्युदात्तत्वस्यावकाशः—यत्र अनुदात्ता प्रकृतिः—'समत्वम्' 'सिमत्वम्' इति । 'फिषोऽन्त उदात्तः' "त्वत्स्वसमसिमम्" इत्यादि फिट् सूत्रों का आश्रयण विना प्रकृति को अन्तोदात्तत्व एवं सर्वानुदात्तत्व सम्भव नहीं है । अतः उपक्रमोपसंहार से यह सिद्धान्त पक्ष सिद्ध हुआ कि फिट् सूत्रोक्त कथन प्रामाणिक एवं मुनित्रय सम्मत है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२ पाटलाऽपालङ्काम्बासागरार्थानाम् ।

एतदर्थानामन्त उदात्तः । पाटला, फलेरुहा, सुरूपा, पाकलेति पर्यायाः । 'लघावन्त' इति प्राप्ते । अपालङ्क, व्याधिघात, आरेवत, आरग्वधेति पर्यायाः । अम्बार्थः । माता । उमर्वन्नन्तानामित्याद्युदात्तत्वे प्राप्ते । सागरः । समुद्रः ।

पाटला, अपालङ्क, अम्बा, सागरार्थक शब्द इनका अन्त्यवर्ण उदात्त होता है । पाटला शब्द के पर्य्यायवाचक शब्द फलेरुहा, सुरूपा, पाकला है । यहां अन्त्य में लघु हो एवं दो वर्ण लघुयुक्त ऐसे बहुस्वर विशिष्ट शब्द का गुरु वर्ण उदात्त होता है, एतदर्थ वचन है 'लघावन्ते' प्रभृति उससे मध्योदात्त प्राप्त था उसको बाध कर अन्तोदात्त इससे हुआ । अपालङ्क व्याधिपात, आरेवत आरग्वत वे पर्यायवाचक हैं । अम्बार्थ मातृ शब्द पर्यायवाचक है । उनर्वन्नन्तानाम् से आदि वर्ण को उदात्त प्राप्त था इसने अन्तोदात्त विधान किया । सागरार्थ समुद्र आदि हैं ।

३ गेहार्थानामस्त्रियाम् ।

गेहम् । 'नव्विषयस्येति' प्राप्ते । अस्त्रियां किम् ? शाला । आद्युदात्तोऽयम् । इहैव पर्युदासाज्ज्ञापकात् ।

गेह वाचक शब्द का अन्तवर्ण उदात्त होता है किन्तु स्त्रीलिङ्ग में यह अन्तोदात्त नहीं करता है । गेहम् । यहां 'नव्विषयस्य' से आद्युदात्त प्राप्त था उसको बाधकर इसने अन्तोदात्त विधान किया । शाला शब्द स्त्रीलिङ्ग है अतः इसकी अप्रवृत्ति हुए, यहां पर्युदास 'अस्त्रियाम्' है अतः पर्युदास ज्ञापन से आद्युदात्त शाला शब्द है ।

४ गुदस्य च ।

अन्त उदात्तः स्यान्न तु स्त्रियाम् । गुदम् । अस्त्रियां किम् ? आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यः । स्वाङ्गशिटामदन्तानामित्यन्तरङ्गमाद्युदात्तत्वम् । ततष्टाप् ।

गुद शब्द का अन्त्यवर्ण उदात्त होता है किन्तु स्त्रीलिङ्ग में नहीं । यथा गुदम् । स्त्रीलिङ्ग में तो टाप् के पूर्व अन्तरङ्गत्व लक्षण आद्युदात्तत्व 'स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्' से हुआ तदनन्तर टाप् से गुदाभ्यः ।

५ ध्यपूर्वस्य स्त्रीविषयस्य ।

धकारयकारपूर्वो योऽन्त्योऽच् स उदात्तः । अन्तर्धा । 'स्त्रीविषयवर्णनाम्नामि'ति प्राप्ते । छाया । माया । जाया । 'यान्तस्यान्त्यात्पूर्व'मित्याद्युदात्तत्वे प्राप्ते । स्त्रीति किम् ? बाह्यम् । यञन्तत्वादाद्युदात्तत्वम् । विषयग्रहणं किम् ? इभ्या क्षत्रिया । 'यतोऽनावः' (३७०१) इत्याद्युदात्त इभ्यशब्दः । क्षत्रियशब्दस्तु 'यान्तस्याऽन्त्यात्पूर्वे'मिति मध्योदात्तः ।

स्त्रीवाचक नित्य स्त्रीलिङ्ग शब्द धकार या यकार पूर्वक रहे तो अन्त्यवर्ण इसका उदात्त होता है । अन्तर्धा । यहां 'स्त्रीविषयवर्णनाम्नाम्' से आद्युदात्त प्राप्त था । छाया, माया, जाया यहां भी अन्तोदात्त इससे हुआ यहां 'यान्तस्यान्त्यात् पूर्वम्' से आद्युदात्त प्राप्त था उसको इसने बाध किया । 'बाह्यम्' स्त्रीविषय न होने से यञ् प्रत्ययान्त होने से आद्युदात्त हुआ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नित्यत्व बोधनार्थक विषय ग्रहण से 'इभ्या', 'क्षत्रिया' यहां अन्तोदात्त न हुआ वे नित्य स्त्रीलिङ्ग नहीं है। 'यतोऽनावः' से इभ्य शब्द आद्युदात्त है। एवं क्षत्रिय शब्द मध्योदात्त है—'यान्तस्यान्त्यात् पूर्वम्' से।

६ खान्तस्याऽश्मादेः।

नखम्। उखा। सुखम्। दुःखम्। नखस्य 'स्वाङ्गशिटामि'त्याद्युदात्तत्वे प्राप्ते। उखा नाम भाण्डविशेषः। तस्य कृत्रिमत्वात्। 'खय्युवर्णं कृत्रिमाख्या चे'दित्युवर्णस्योदात्तत्वे प्राप्ते। सुखदुःखयोर्नव्विषयस्येति प्राप्ते। अश्मादेः किम्? शिखा। मुखम्। मुखस्य 'स्वाङ्गशिटामि'ति, 'नव्विषयस्ये'ति वा आद्युदात्तत्वम्। शिखायास्तु 'शीङः खो निद्भ्रस्वश्चे'ति उणादिषु नित्त्वोक्तेरन्तरङ्गत्वाट्टापः प्रागेव 'स्वाङ्गशिटा'मिति वा बोध्यम्।

शकारादि एवं मकारादि भिन्न शब्द का अन्त्यवर्ण उदात्त होता है। यथा—नखम्, उखा, सुखम्, दुःखम्, यहां 'स्वाङ्गशिटाम्' से आद्युदात्त प्राप्त था, उसका बाध इसने किया। उखा से पात्र=भाण्ड समझकर 'खय्युवर्णं कृत्रिमा चेत्' से उकार को उदात्तत्व प्राप्त था, एवं सुख तथा दुःखको 'नव्विषयस्य' से आद्युदात्तत्व प्राप्त था उसका बाध हुआ। शकारादि एवं मकारादि शब्दों को तो यथा शिखा, मुखम् अन्तोदात्त न हुआ किन्तु 'स्वाङ्गशिटाम्' से या 'नव्विषयस्य' से आद्युदात्तत्व होता है। 'शीङः खो निद्भ्रस्वश्च' उणादि प्रत्यय नित्त्व के कारण अन्तरङ्ग होने से टाप् के पूर्व आद्युदात्त करके ततः टाप्। स्वाङ्गशिटाम् अन्तरङ्ग है।

७ हिष्ठवत्सरतिशत्थान्तानाम्।

एषामन्त उदात्तः स्यात्। अतिशयेन बहुलो बंहिष्ठः। नित्त्वादाद्युदात्तत्वे प्राप्ते। बंहिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेन। यद्बंहिष्ठं नातिविदे। इत्यादौ व्यत्ययादाद्युदात्तः। परिवत्सरः। अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरोऽत्र बाध्यते इत्याहुः। सप्ततिः। अशीतिः। लघावन्त इति प्राप्ते। चत्वारिंशत्। इहापि प्राग्वत्। अभ्यूर्ण्वानां प्रमुथस्यायोः। अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरोऽत्र बाध्यत इत्याहुः। थाथादिसूत्रेण गतार्थमेतद्।

हिष्ठ, ति, शत्, थ शब्दान्त पदों के अन्त्यवर्ण उदात्त होता हैं, बंहिष्ठ यहां इष्ठन् प्रत्यय नित् के कारण आद्युदात्त प्राप्त था उसका बाधकर अन्तोदात्त। 'बंहिष्ठैरश्वैः' यहां व्यत्यय से आद्युदात्तत्व भी है। 'संवत्सरः' यहां अव्यय पूर्वपद प्रकृतिस्वर प्राप्त था उसको बाधकर अन्तोदात्त हुआ। सप्ततिः। अशीतिः यहां लघावन्ते न हुआ। चत्वारिंशत् यहां भी 'लघावन्ते' की अप्रवृत्ति है। अभ्यूर्ण्वानां यहां अव्यय पूर्वपद प्रकृति स्वर का अभाव इसने किया। यह 'थाथादि' सूत्र से गतार्थ है ऐसा भी विद्वानों का मत है।

८ दक्षिणस्य साधौ।

अन्त उदात्तः स्यात्। साधुवाचित्वाऽभावे तु व्यवस्थायां सर्वनामतया 'स्वाङ्गशिटा'मित्याद्युदात्तः। अर्थान्तरे तु 'लघावन्त' इति गुरुरुदात्तः। 'दक्षिणः सरलोदारपरच्छन्दानुवर्तिष्वि'ति कोशः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रावीण्यरूप साधु अर्थ में दक्षिण शब्द का अन्त्यवर्ण उदात्त होता है। साधुभिन्न अर्थ में व्यवस्था में सर्वनामत्व प्रयुक्त 'स्वाङ्गशिटाम्' से आद्युदात्तत्व होता है। अर्थान्तर में 'लघावन्ते' से गुरुवर्ण को उदात्तत्व। सरल, उदार, एवं अन्य की इच्छानुकूल कार्य करने वाला वे अर्थ दक्षिण शब्द के हैं।

९ स्वाङ्गाख्यायामादिर्वा।

इह दक्षिणस्याऽऽद्यन्तौ पर्यायेणोदात्तौ स्तः। दक्षिणो बाहुः। आख्याग्रहणं किम्? प्रत्यङ्मुखस्यासीनस्य वामपाणिर्दक्षिणो भवति।

स्वाङ्ग वाचक दक्षिण शब्द आदि एवं अन्त वर्ण पर्य्याय से उदात्त होते हैं। दक्षिणो बाहुः यहां दो वर्ण उदात्त क्रमशः हुए। आख्या का प्रयोजन—जो पुरुष पश्चिम की तरफ मुख करके बैठता है उसका बाँया हाथ दक्षिण की तरफ रहता है इस परिस्थिति में 'दक्षिणः' यहां दो स्वर उदात्त न हुए।

१० छन्दसि च।

अस्वाङ्गार्थमिदम्। दक्षिणः। इह पर्यायेणाऽऽद्यन्तावुदात्तौ।

छन्द में अस्वाङ्ग वाचक दक्षिण शब्द का आदि एवं अन्त वर्ण पर्य्याय से उदात्त होता है।

११ कृष्णस्याऽमृगाख्या चेत्।

अन्त उदात्तः। 'वर्णानां तणे'त्याद्युदात्तत्वे प्राप्ते अन्तोदात्तो विधीयते। कृष्णानां व्रीहीणाम्। कृष्णो नो नाव वृषभः। मृगाख्यायां तु—कृष्णो रात्र्यै।

पशुभिन्न अर्थ में कृष्ण का अन्त्य वर्ण उदात्त होता है। यहां 'वर्णानाम्' से आद्युदात्त न हुआ। पशु की आख्या में तो अन्तोदात्त कृष्ण शब्द है। यथा कृष्णो रात्र्यै।

१२ वा नामधेयस्य।

कृष्णस्येत्येव। अयं वां कृष्णो अश्विना। कृष्णर्षिः।

नामधेय वाचक कृष्ण का अन्तिम वर्ण उदात्त होता है।

१३ शुक्लगौरयोरादिः।

नित्यमुदात्तः स्यादित्येके। वेत्यनुवर्तत इति तु युक्तम्। सरो गौरो यथा पिब। इत्यत्रान्तोदात्तदर्शनात्।

वेद में शुक्ल एवं गौर का आदि वर्ण नित्य उदात्त है। ऐसा कहना किसी आचार्य सम्मत है। इसमें वा शब्द की अनुवृत्ति उचित है। नित्य प्रयोगों में अन्तोदात्त देखा गया है—'सरो गौरः' यहां। अतः अ अन्तोदात्त होता है।

१४ अङ्गुष्ठोदकबकवशानां छन्दस्यन्तः।

अङ्गुष्ठस्य 'स्वाङ्गानामकुर्वादीना'मिति द्वितीयस्योदात्तत्वे प्राप्तेऽन्तोदात्तार्थ आरम्भः। वशाग्रहणं नियमार्थं 'छन्दस्ये'वेति। तेन लोके आद्युदात्तेत्याहुः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेद में अङ्गुष्ठ, उदक, वक, वशा इनका अन्त उदात्त होता है। 'स्वाङ्गानामकुर्वादीनाम्' से अङ्गुष्ठ का उकार को उदात्त स्वर की प्राप्ति थी, एवं वेदग्रहण नियमार्थ है, वेद में ही इसको अन्तोदात्तत्व, लोक में 'वश' आद्युदात्त ही है।

१५ पृष्ठस्य च।

छन्दस्यन्त उदात्तः स्याद्वा भाषायाम्। पृष्ठम्।

वेद में पृष्ठ का अन्त्य उदात्त है। भाषा में वि० उदात्त। पृष्ठम्।

१६ अर्जुनस्य तृणाख्या चेत्।

'उनर्वन्नन्तानामि'त्याद्युदात्तस्यापवादः।

तृणनाम वाचक अर्जुन का अन्तवर्ण विकल्प से उदात्त, 'उनर्वन्' से आद्युदात्त न हुआ।

१७ अर्यस्य स्वाम्याख्या चेत्।

'यान्तस्यान्त्यात्पूर्व'मिति 'यतो नावः' (सू ३७०) इति वाऽऽद्युदात्ते प्राप्ते वचनम्।

वेद में स्वामी अर्थ में अर्य अन्तोदात्त है। यहां 'यान्तस्य' या यतोऽनावः से प्राप्त आद्युदात्त न हुआ।

१८ आशाया अदिगाख्या चेत्।

दिगाख्याव्यावृत्त्यर्थमिदम्। अत एव ज्ञापकाद्दिक्पर्यायस्याद्युदात्तता। इन्द्र आशाभ्यस्परि'।

वेद में दिशा से भिन्न अर्थ में आशा शब्द का अन्तवर्ण उदात्त है। दिग्वाचक व्यावृत्ति के लिए यह सूत्र है। अतः दिक् वाचक शब्द आद्युदात्त अर्थतः हुए इसमें अदिगाख्या ज्ञापक हुआ।

१९ नक्षत्राणामञ्विषयाणाम्।

अन्त उदात्तः स्यात्। आश्लेषाऽनुराधादीनां 'लघावन्त' इति प्राप्ते। ज्येष्ठाश्रविष्ठाधनिष्ठानामिष्ठन्नन्तत्वेनाऽऽद्युदात्तत्वे प्राप्ते वचनम्।

आवन्त नक्षत्र वाचक का अन्त उदात्त है। आश्लेषा, अनुराधा। 'लघावन्ते' से गुरु को उदात्तत्व प्राप्त था ज्येष्ठा आदि में इष्ठन् अन्त में होने से आद्युदात्त प्राप्त था उसका यह सूत्र निषेधक हुआ।

२० न कुपूर्वस्य कृत्तिकाख्या चेद्।

अन्त उदात्तो न। कृत्तिका नक्षत्रम्। केचित्तु 'कुपूर्वो य आप् तद्विषयाणामि'ति व्याख्याय आर्यिका बहुलिका इत्यत्राप्यन्तोदात्तो नेत्याहुः।

कृत्तिका अर्थ में कवर्ग पूर्वक आकारान्त शब्द का अन्त्यवर्ण उदात्त नहीं होता है। कोई कुपूर्वक जो आप् इस व्याख्या से आर्यिका आदि में अन्तोदात्त का निषेध करते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२१ घृतादीनां च ।

अन्त उदात्तः । घृतं मिमिक्षे । आकृतिगणोऽयम् ।

घृतादि शब्दों का अन्त उदात्त होता है । यह आकृति गण है ।

२२ ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वयसि ।

अन्त उदात्तः स्यात् । ज्येष्ठ आह चमसा । कनिष्ठ आह चतुरः । वयसि किम् ? ज्येष्ठः । श्रेष्ठः । कनिष्ठोऽल्पिकः । इह निरवादाद्युदात्त एव ।

वयसू अर्थ में ज्येष्ठ एवं कनिष्ठ शब्द का अन्त उदात्त होता है । वयः से भिन्न में निरवात् आद्युदात्त है ।

२३ बिल्वतिष्ययोः स्वरितो वा ।

अनयोरन्तः स्वरितो वा स्यात् । पक्षे उदात्तः ।

इति फिट्सूत्रेषु प्रथमः पादः ।

बिल्व एवं तिष्य का अन्त्यवर्ण विकल्प से । स्वरित होता है । पक्ष में उदात्त होता है ।

रत्नप्रभा में फिट् सूत्रों में प्रथम पाद पूर्ण ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीयः पादः

२४ अथादिः प्राक् शकटेः ।

अधिकारोऽयम् । 'शकटिशकटथो'रिति यावत् ।

इसके बाद 'शकटिशकटथोः' सूत्र तक आदि का अधिकार है ।

२५ ह्रस्वान्तस्य स्त्रीविषयस्य ।

आदिरुदात्तः स्यात् । बलिः । तनुः ।

स्त्रीलिङ्ग में ह्रस्वान्त शब्द का आदि वर्ण उदात्त होता है । बलिः । हनुः ।

२६ नब्विषयस्यासनिसन्तस्य ।

वने न वायः । इसन्तस्य तु सर्पिः । नप्–नपुंसकम् ।

नपुंसकलिङ्ग में इस् भागान्त भिन्न शब्द का आदि वर्ण उदात्त होता है । वने आदि । सर्पिस् से इसकी अप्रवृत्ति है ।

२७ तृणधान्यानां च द्व्यषाम् ।

द्व्यचामित्यर्थः । कुशाः । काशाः । माषाः । तिलाः । बह्वचां तु गोधूमाः ।

दो स्वर युक्त तृण या धान्य वाचक शब्दों का आदिवर्ण उदात्त होता है । कुशाः । काशाः । माषाः । नपुंसक को 'नप्' कहते हैं ।

२८ नूः संख्यायाः ।

पञ्च । चत्वारः । चतुष्कपालः ।

नकारान्त एवं रेफान्त जो संख्यावाचक शब्द उनका आदिवर्ण उदात्त होता है । पञ्च । चत्वारः ।

२९ स्वाङ्गशिटामदन्तानाम् ।

शिट् सर्वनाम । कर्णाभ्यां चुबुकादधि । ओष्ठाविव मधु । विश्वो विहायाः ।

छन्द में अकारान्त स्वाङ्ग वाचक शब्द एवं सर्वनाम का आदि उदात्त होता है । सर्वनाम की शिट्संज्ञा है ।

३० प्राणिनां कुपूर्वम् ।

कवर्गात्पूर्व आदिरुदात्तः । काकः । वृकः । शुकेषु मे । प्राणिनां किम् । क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ।

कवर्ग से पूर्ववर्ती वर्ण प्राणि वाचक का उदात्त होता है । काकः । वृकः । उदकम् में प्राणि वाचक नहीं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३१ खय्युवर्णं कृत्रिमाख्या चेत् ।

खयि परे उवर्णमुदात्तं स्यात् । कन्दुकः ।

खय् पर में रहते कृत्रिम द्रव्य का नाम में उकार उदात्त होता है । कन्दुकः ।

३२ उनर्वन्नन्तानाम् ।

उन । वरुणं वो रिशादसम् । ऋ । स्वसारं त्वा कृणवै । वन् पीवानं मेषम् ।

उन, ऋ, वन्, अन्त में रहते उन शब्दों का आदि उदात्त होता है । वरुणम् । स्वसारम् । पीवानम् ।

३३ वर्णानां तणतिनितान्तानाम् ।

आदिरुदात्तः । एतः । हरिणः । शितिः । पृश्निः । हरित् ।

त, ण, ति, नि, एवं तकारान्त जो वर्णवाचक उनके आदिवर्ण उदात्त होता है । एतः । हरिणः । शितिः । पृश्निः । हरित् ।

३४ ह्रस्वान्तस्य ह्रस्वमनृत्ताच्छील्ये ।

ऋद्वर्ज्यं ह्रस्वान्तस्याऽऽदिभूतं ह्रस्वमुदात्तं स्यात् । मुनिः ।

ताच्छील्य अर्थ में ऋकार रहित ह्रस्वान्त का आदि उदात्त होता है । मुनिः ।

३५ अक्षस्याऽदेवनस्य ।

आदिरुदात्तः । तस्य नाक्षः । देवने तु । अक्षैर्मा दीव्यः ।

क्रीड़ा अर्थ रहित अक्ष का आदि उदात्त होता है । नाक्षः । देवन में उदात्त न हुआ ।

३६ अर्धस्याऽसमद्योतने ।

अर्धो ग्रामस्य । समेऽशके तु अर्धं पिप्पल्याः ।

असमान अर्थ में अर्ध का आदिवर्ण उदात्त होता है । समांश में इसकी अप्रवृत्ति ही है ।

३७ पीतद्रुवर्थानाम् ।

आदिरुदात्तः । पीतद्रुः । सरलः ।

वृक्ष वाचक शब्द का आदि उदात्त होता है । पीतद्रुः सरलः ।

३८ ग्रामादीनां च ।

ग्रामः । सोमः । यामः ।

ग्रामादि शब्दों का आदि वर्ण उदात्त होता है । ग्रामः । सोमः । यामः ।

३९ लुबन्तस्योपमेयनामधेयस्य ।

चञ्चेव चञ्चा । स्फिगन्तस्येति पाठान्तरम् । स्फिगिति लुपः प्राचां संज्ञा ।

उपमेय नामवाचक लुबन्त का आदिवर्ण उदात्त होता है ; चञ्चेव चञ्चा । लुप् की स्फिक् संज्ञा होती है । 'स्फिगन्तस्य' ऐसा भी पाठ है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४० न वृक्षपर्वतविशेषव्याघ्रसिंहमहिषाणाम् ।

एषामुपमेयनाम्नामादिरुदात्तो न । ताल इव तालः । मेरुरिव मेरुः । व्याघ्रः । सिंहः । महिषः ।

वृक्ष, पर्वत, व्याघ्र, सिंह, महिष, वे उपमेय वाचक शब्द इनका आदिवर्ण उदात्त होता है ।

४१ राजविशेषस्य यमन्वा चेत् ।

यमन्वा वृद्धः । आङ्ग उदाहरणम् । अङ्गाः प्रत्युदाहरणम् ।

वृद्ध अर्थ में राजविशेष वाचक शब्द का आदि उदात्त होता है । आङ्गः । प्रत्युदाहरण अङ्गाः ।

४२ लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः ।

अन्ते लघौ, द्वयोश्च लघ्वोः सतोर्बह्वच्कस्य गुरुरुदात्तः । कल्याणः । कोलाहलः ।

लघुसंज्ञक वर्ण अन्त में रहे एवं दो लघु रहते बहु अच् विशिष्ट शब्द का गुरुसंज्ञक वर्ण उदात्त होता है । कल्याणः । कोलाहलः ।

४३ स्त्रीविषयवर्णाक्षुपूर्वाणाम् ।

एषां त्रयाणामाद्युदात्तः । स्त्रीविषये । मल्लिका । वर्णः श्येनी । हरिणी । अक्षुशब्दात्पूर्वोऽस्त्येषां ते अक्षुपूर्वाः । तरक्षुः ।

स्त्री वाचक, वर्णवाचक, एवं विद्यमान पूर्वक अक्षु शब्द का आदिवर्ण उदात्त होता है ।

४४ शकुनीनां च लघुपूर्वम् ।

पूर्वं लघु उदात्तं स्यात् । कुक्कुटः । तित्तिरिः । खञ्जरीटः ।

पक्षि वाचक शब्द की आदि लघुवर्ण उदात्त होता है ।

४५ नर्तुप्राण्याख्यायाम् ।

यथालक्षणं प्राप्तमुदात्तत्वं न । वसन्तः । कृकलासः ।

ऋतु एवं प्राणी वाचक शब्द का आदि उदात्त होता है । वसन्तः । कृकलासः ।

४६ धान्यानां च वृद्धक्षान्तानाम् ।

आदिरुदात्तः । कान्तानाम् । श्यामाकः । षान्तानाम् । माषाः ।

वृद्धसंज्ञक कान्त एवं षकारान्त धान्यवाचक का आदि उदात्त होता है । श्यामाकाः । माषाः ।

४७ जनपदशब्दानामषान्तानाम् ।

आदिरुदात्तः । केकयः ।

जनपद वाचक अजन्त का आदि उदात्त होता है । केकयः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४८ हयादीनामसंयुक्तलान्तानामन्तः पूर्वं वा ।

हयिति हल्संज्ञा । पललम् । शललम् । हयादीनां किम् ? एकलः । असंयुक्तेति किम् ? मल्लः ।

हलादि असंयुक्त लकारान्त शब्दों का अन्त्य एवं आदिवर्ण विकल्प से उदात्त होता है। हल् की हय् संज्ञा है ।

४९ इगन्तानां च द्व्येषाम् ।

आदिरुदात्तः । कृषिः ।

इति फिट्सूत्रेषु द्वितीयः पादः ।

इगन्त दो स्वर युक्त जो शब्द उनका आदिवर्ण उदात्त होता है । यथा—कृषिः ।

पं० श्रीवा० कु० पञ्चोलि स्वरचित रत्नप्रभा में द्वितीयपाद समाप्त ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ तृतीयः पादः

५० अथ द्वितीयं प्रागीषात् ।

'ईषान्तस्य हयादेरि'त्यतः प्राग् द्वितीयाधिकारः ।

'ईषान्तस्य हयादेः' इस सूत्र के पूर्वतक 'द्वितीयम्' का अधिकार है ।

५१ त्र्यचां प्राङ्मकरात् ।

'मकरवरूढेत्यतः' प्राक् त्र्यचामित्यधिकारः ।

'मकर वरूढ' सूत्र के पूर्व 'त्र्यचाम्' का अधिकार है ।

५२ स्वाङ्गानामकुर्वादीनाम् ।

कवर्गरेफवकारादीनि वर्जयित्वा त्र्यचां स्वाङ्गानां द्वितीयमुदात्तम् । ललाटम् । कुर्वादीनां तु । कपोलः । रसना । वदनम् ।

कवर्ग, रेफ, वकारादि, भिन्न तीन स्वरों से युक्त स्वाङ्ग वाचक शब्द का दूसरा वर्ण उदात्त होता है । ललाटम् । कवर्गादि होने पर कपोलः । रसना । वदनम् । यहां इस सूत्र की अप्रवृत्ति है ।

५३ मादीनां च ।

मलयः । मकरः ।

मकारादि तीन स्वर युक्त शब्द का द्वितीय अच् उदात्त होता है । मलयः । मकरः ।

५४ शादीनां शाकानाम् ।

शीतन्या । शतपुष्पा ।

शाकवाचक तालव्य शकारादि शब्द तीन अच् युक्त हो तो द्वितीयाच् उदात्त होता है । शीतन्या । शतपुष्पा ।

५५ पान्तानां गुर्वादीनाम् ।

पादपः । आतपः । लघ्वादीनां तु अनूपम् । द्व्यचां तु नीपम् ।

जिन शब्दों के आदि षकार एवं गुरुवर्ण रहे ऐसे तीन अच् युक्त का द्वितीयाच् उदात्त होता है । पादपः । आतपः ।

५६ युतान्यण्यन्तानाम् ।

युते अयुतम् । अनि । धमनिः । अणि । विपणिः ।

युत, अनि, अणि, भाग, अन्त में रहते तीनस्वर युक्त शब्द के द्वितीय वर्ण उदात्त होता है ।

५७ मकरवरूढपारेवतवितस्तेक्ष्वार्जिद्राक्षाकलोमाकाष्ठापेष्ठाकाशीनामादिर्वा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एषामादिर्द्वितीयो वोदात्तः । मकरः । वरूढ इत्यादि ।

मकर, वरूढ, पारेवत, वितस्त, इक्षु, आर्जि, द्राक्षा, कला, उमा, काष्ठा, पेष्टा, काशीना इनका आदिवर्ण एवं अन्त्यवर्ण उदात्त होता है । मकरः आदि ।

५८ छन्दसि च ।

अमकराद्यर्थ आरम्भः । लक्ष्यानुसारादादिर्द्वितीयं चोदात्तं ज्ञेयम् ।

छन्द में मकारादि शब्द एवं अन्य शब्दों का आदिवर्ण एवं द्वितीयवर्ण उदात्त होता है । अमकराद्यर्थ यह योग है ।

लक्ष्यानुसारी व्याख्यान से आदिवर्ण को उदात्तत्व या अन्तिक को उदात्तत्व का ज्ञान करना चाहिए ।

५९ कर्दमादीनां च ।

आदिर्द्वितीयं वोदात्तम् ।

कर्दमा, कुलटा, उदक, गान्धारि, इत्यादि शब्दों का आदि या द्वितीयवर्ण उदात्त होता है ।

६० सुगन्धितेजनस्य ते वा ।

आदिर्द्वितीयं तेशब्दश्चेति त्रयः पर्यायेणोदात्ताः । सुगन्धितेजनाः ।

सुगन्धितेजन शब्द का आदि, द्वितीय, एवं 'ते' तीनवर्ण क्रम से उदात्त होते हैं ।

६१ नपः फलान्तानाम् ।

आदिर्द्वितीयं वोदात्तम् । राजादनफलम् ।

फल शब्द या फल वाचक शब्द अन्त में रहते नपुंसक शब्द का आदि या द्वितीयवर्ण उदात्त होता है ।

६२ यान्तस्यान्त्यात्पूर्वम् ।

कुलायः ।

यान्त शब्द के अन्त्य से पूर्ववर्ण उदात्त होता है । कुलायः ।

६३ थान्तस्य च नालघुनी ।

नाशब्दो लघु च उदात्ते स्तः । सनाथा सभा ।

थकारान्त शब्द के 'ना' एवं लघुसंज्ञक शब्द उदात्त होता है । सनाथा सभा ।

६४ शिशुमारोदुम्बरबलीवर्दोष्ट्रारपुरूरवसां च ।

अन्त्यात्पूर्वमुदात्तं द्वितीयं वा ।

शिशुमार, उदुम्बर, बलीवर्द, उष्ट्रार, पुरूरवस्, इसके अन्त्यवर्ण से पूर्ववर्ण एवं द्वितीयवर्ण विकल्प से उदात्त होता है ।

६५ सांकाश्यकाम्पिल्यनासिक्यदार्वाघाटानाम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीयमुदात्तं वा ।

साङ्काश्य, काम्पिल्य, नासिक्य, दार्वाघाट, इनका द्वितीयवर्ण विकल्प से उदात्त होता है ।

६६ ईषान्तस्य हयादेरादिर्वा ।

हलीषा । लाङ्गलीषा ।

ईषान्त हलादि शब्द का आदिवर्ण विकल्प से उदात्त होता है । हलीषा । लाङ्गलीषा ।

६७ उशीरदाशेरकपालपलालशैवालश्यामाकशारीरशरावहृदयहिरण्यारण्यापत्यदेवराणाम् ।

एषामादिरुदात्तः स्यात् ।

उशीर, दाशीर, कपाल, पलाल, शैवाल, श्यामाक, शारीर, हृदय, अरण्य, अपत्य, एवं देवर इनका आदिवर्ण उदात्त होता है ।

६८ महिष्यषाढयोर्जायेष्टकाख्या चेत् ।

आदिरुदात्तः । महिषी जाया । आषाढा उपदधाति ।

इति फिट्सूत्रेषु तृतीयः पादः ।

जाया अर्थ में महिषी एवं इष्टकार्थ में आषाढा शब्द का आदिवर्ण उदात्त होता है । महिषी = जाया । आषाढा उपदधाति ।

पं० श्रीवा० कृ० पञ्चोलि वि० रत्नप्रभा में तृतीयपाद समाप्त हुआ ।

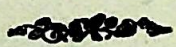

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ चतुर्थः पादः

६९ शकटिशकट्योरक्षरमक्षरं पर्यायेण ।

उदात्तम् । शकटिः । शकटी ।

शकटि एवं शकटी इनके प्रत्येकवर्ण क्रम से उदात्त होते हैं ।

७० गोष्ठजस्य ब्राह्मणनामधेयस्य ।

अक्षरमक्षरं पर्यायेणोदात्तम् । गोष्ठजो ब्राह्मणः । अन्यत्र गोष्ठजः पशुः । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तः ।

ब्राह्मण का नाम प्रतीयमान होने पर 'गोष्ठज' शब्द का प्रत्येक अच् उदात्त होता है । अन्यत्र अन्तोदात्त गोष्ठज है ।

७१ पारावतस्योपोत्तमवर्जम् ।

शेषं क्रमेणोदात्तम् । पारावतः ।

पारावत शब्द का अन्तसमीप वर्ण भिन्न अन्यवर्ण पर्य्याय से उदात्तत्व युक्त होते हैं ।

७२ धूम्रजानुमुञ्जकेशकालवालस्थालीपाकानामधूजलस्थानाम् ।

एषां चतुर्णां धूम्रभृतींश्चतुरो वर्जयित्वा शिष्टानि क्रमेणोदात्तानि । धूम्रजानुः । मुञ्जकेशः । कालवालः । स्थालीपाकः ।

धूम्रजानु, मुञ्जकेश, कालवाल, स्थालीपाक, इनके क्रम से धू, ज, ल, स्थ इनको छोडकर शेष वर्ण क्रम से उदात्त होते हैं ।

७३ कपिकेशहरिकेशयोश्छन्दसि ।

कपिकेशः । हरिकेशः ।

वेद में कपिकेश, हरिकेश, इनके प्रत्येक स्वर क्रम से उदात्त होते हैं ।

७४ न्यङ्स्वरौ स्वरितौ ।

स्पष्टम् । न्यङ्ङुत्तानः । व्यचक्षयत्स्वः ।

न्यङ् एवं स्वर के सम्पूर्णवर्ण स्वरित होते हैं ।

७५ न्यर्बुदव्यल्कशयोरादिः ।

स्वरितः स्यात् ।

न्यर्बुद, व्यल्कश, के आदिवर्ण को स्वरित होता है ।

७६ तिल्यशिक्यकाश्मर्यधान्यकन्याराजमनुष्याणामन्तः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वरितः स्यात्। तिलानां भवनं क्षेत्रं तिल्यम्। 'यतो नावः' (सू ३७०१) इति प्राप्ते।

तिल्य, शिक्य, काश्मर्य्य, धान्य, कन्या, राजन्य, मनुष्य इनके अन्त्यवर्ण को स्वरित होता है। यह यतोऽनाव से प्राप्त आद्युदात्त का निषेधक है।

७७ बिल्वभक्ष्यवीर्याणि छन्दसि।

अन्तस्वरितानि। ननो बिल्वस्य उदतिष्ठत्।

छन्द में बिल्व, भक्ष्य, वीर्य, के अन्त्यवर्ण स्वरित होता है।

७८ त्वत्त्वसमसिमेत्यनुच्चानि।

स्तरीरुत्वत्। उत त्वः पश्यन्। नभन्तामन्यके समे। सिमस्मै।

त्वत्, त्व, सम, सिम इनका अन्त्यवर्ण अनुदात्त होता है। अनुच्चनि का अर्थ= अनुदात्त है।

७९ सिमस्याथर्वणेऽन्त उदात्तः।

अथर्वण इति प्रायिकम्। तत्र दृष्टस्येत्येवं परं वा। तेन वासस्तनुते सिमस्मै इत्यृग्वेदेऽपि भवत्येव।

अथर्ववेद में सिम का अन्त्यवर्ण उदात्त है। सूत्र में अथर्वण ग्रहण प्रायिक है। या अथर्वण में दृष्ट मन्त्र अन्यवेद का रहे तद्घटक सिम का अन्त्यवर्ण उदात्त हो एतदर्थपरक है। अतः ऋक् वेद के मन्त्र घटक सिम का अन्त्यवर्ण उदात्त हुआ।

८० निपाता आद्युदात्ताः।

स्वाहा।

निपातसंज्ञक शब्द आद्युदात्त होते हैं। यथा—स्वाहा, स्वधा आदि।

८१ उपसर्गाश्चाभिवर्जम्।

अभि से रहित अन्य समस्त उपसर्ग का आदिवर्ण उदात्त होता है।

८२ एवादीनामन्तः।

एवमादीनामिति पाठान्तरम्। एव। एवम्। नूनम्। सह ते पुत्र सूरिभिः। षष्ठस्य तृतीये 'सहस्य सः' (वा १००६) इति प्रकरणे सहशब्दः आद्युदात्त इति प्राञ्चः। तच्चिन्त्यम्।

एव या एवम्, आदि शब्दों का अन्त्यवर्ण उदात्त होता है। सह को आद्युदात्त करना अनुचित है।

८३ वाचादीनामुभावुदात्तौ।

उभौग्रहणमनुदात्तं पदमेकवर्जमित्यस्य बाधाय।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाचा आदि शब्दों का दोनों अच् उदात्त होते हैं। अतः यहाँ 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' की अप्रवृत्ति है।

८४ चादयोऽनुदात्ताः।

स्पष्टम्।

'च' 'वा' आदि शब्दों का अनुदात्तत्व इष्ट है।

८५ यथेति पादान्ते।

तन्नेमिमृभवो यथा। पादान्ते किम्? यथा नो अदितिः करत्।

पाद के अन्त में स्थित 'यथा' शब्द को अनुदात्तत्व इष्ट है। पादान्त न होनेपर उदात्त।

८६ प्रकारादिद्विरुक्तौ परस्यान्त उदात्तः।

पटुपटुः।

'प्रकारे गुणवचनस्य' प्रभृति सूत्रविहित द्वित्वनिष्पन्न परभाग के अन्तवर्ण उदात्त होता है। पटुपटुः।

८७ शेषं सर्वमनुदात्तम्।

शेषं नित्यादिद्विरुक्तस्य परमित्यर्थः। प्रप्रायम्। दिवेदिवे।

इति शान्तनवाचार्यप्रणीतेषु फिट्सूत्रेषु तुरीयः पादः।

नित्यादि अर्थ में द्वित्व होनेपर सम्पूर्णवर्ण अनुदात्त होते हैं। यथा—प्रप्रायम्। दिवेदिवे।

श्री शान्तनवाचार्य प्रणीत फिट् सूत्रों की प० श्रीबालकृष्ण पञ्चोलिविरचित रत्नप्रभा व्याख्या में चतुर्थपाद समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ स्वरप्रकरणशेषः

तत्र प्रत्ययस्वरप्रकरणम्

३७०८ आद्युदात्तश्च ३।१।३।

प्रत्यय आद्युदात्त एव स्यात्। अग्निः। कर्तव्यम्।

प्रत्यय का आदिवर्ण उदात्त होता है। अग्निः। कर्तव्यम्। 'अङ्गेर्नलोपश्च' से निप्रत्यय से अग्नि शब्द निष्पन्न है। कृ+तव्य गुण से कर्तव्य शब्द की सिद्धि है। 'तित् स्वरितम्' कहेगें उसकी दृष्टि में यह सूत्र असिद्ध है। तव्यत् का तित्त्व यथोद्देश पक्ष में शेष निघात प्रवृत्यर्थ में ज्ञापक है। अन्यत्र विस्तार इसका है।

३७०९ अनुदात्तौ सुप्पितौ ३।१।४।

पूर्वस्यापवादः। यज्ञस्य। न यो युच्छति। शप्पितोरनुदात्तत्वे स्वरित-प्रचयौ।

सुप् एवं पित् प्रत्यय अनुदात्त होते हैं, यह पूर्व सूत्र का बाधक है। युच्छति—युच्छ प्रमादे, धातोः से अन्त उदात्त, ततः शप् अनुदात्त है, 'उदात्तादनुदात्तस्य' से शप् का अकार स्वरित हुआ। तिप् को प्रचय हुआ—'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' सूत्र से।

३७१० चितः ६।१।१६३।

अन्त उदात्तः स्यात्। चितः सप्रकृतेर्बह्वकजर्थम् (वा ३७६६)। चिति प्रत्यये सति प्रकृतिप्रत्ययसमुदायस्याऽन्त उदात्तो वाच्य इत्यर्थः। नभन्ता-मन्यके समे। यके सरस्वतीमनु। तकत्सुते।

चित् प्रत्ययान्त समूह का अन्त्यवर्ण उदात्त होता है। न केवल चित् प्रत्यय मात्र, प्रत्यय चित् होनेपर प्रकृति प्रत्यय समुदाय का ही अन्त उदात्त करना चाहिए, अकच् प्रत्यय घटित शब्द का भी ही अन्त उदात्त करना। नभन्तामन्यके समे। य के। तकत्।

३७११ तद्धितस्य ६।१।१६४।

चितस्तद्धितस्यान्त उदात्तः। पूर्वेण सिद्धे चित्स्वरबाधनार्थमिदम्। कौञ्जा-यनाः।

चित् तद्धित प्रत्ययान्त का अन्त उदात्त होता है। यह सूत्र चित् स्वर बाधनार्थ है। कौञ्जायनाः—बहुत्व विशिष्ट अपत्य में 'गोत्रे कुञ्जादिभ्यः' से च्फञ् प्रत्यय है। 'बातच्फञोरस्त्रियाम्' से अप्रत्यय है। तद्राजसंज्ञा प्रत्यय लुक्।

३७१२ कितः ६।१।१६५।

कितस्तद्धितस्यान्त उदात्तः। यदाग्नेयः।

कित् तद्धित जो प्रत्यय तदन्ततदादि का अन्त उदात्त होता है। अग्नेर्ढक् आग्नेयः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३७१३ तिसृभ्यो जसः ६।१।१६६।

अन्त उदात्तः। तिस्रो द्यावः सवितुः।

तिसृ से परत्व विशिष्ट जो जस् उसका अन्त उदात्त होता है। तिस्रः।

३७१४ सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः ६।१।१६८।

सावितिसप्तमीबहुवचनम्। तत्र य एकाच् ततः परा तृतीयादिर्विभक्तिरुदात्ता। वाचा विरूपः। सौ किम्। राज्ञेत्यादौ एकाचोऽपि राजशब्दात्परस्य मा भूत्। राज्ञो नु ते। एकाचः किम्? विधत्ते राजनि त्वे। तृतीयादि किम्? न ददर्श वाचम्।

सूत्र में 'सौ' से सप्तमी बहुवचन का ग्रहण है। प्रथमा का एक वचन नहीं है। सप्तमी के बहुवचन में जो एकाच् उससे पर तृतीयादि विभक्ति उदात्त होती है। वाचा विरूपः। 'राजसु' राजन् का स० ब० वि० होता है वह एकाच् नहीं अतः 'राज्ञा' यहां इसकी अप्रवृत्ति है कनिन् प्रत्ययान्त राजन् आद्युदात्त है। 'राजनि' में एकाच् नहीं अतः इसकी अप्रवृत्ति हुई। वाचम् में तृतीयादि नहीं अतः इसकी अप्रवृत्ति है।

३७१५ अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यामनित्यसमासे ६।१।१६९।

नित्याधिकारविहितसमासादन्यत्र यदुत्तरपदमन्तोदात्तमेकाच्, ततः परा तृतीयादिविभक्तिरुदात्ता वा स्यात्। परमवाचा।

नित्याधिकार विहित समास भिन्न में एकाच् अन्तोदात्त उत्तर पद उससे पर तृतीयादि विभक्ति उदात्त होती है। परमवाचा। नित्य समास में इसकी अप्रवृत्ति है अग्निचिता यहां उपपद समास है। चित् शब्द 'गतिकारकोपपदात्' से अन्तोदात्त है। विग्रहाभाव प्रयुक्त नित्यसमास सदृश अनित्य समास में इसकी प्रवृत्ति के लिए सूत्र में अधिकार ग्रहण है। अवाचा ब्राह्मणेन। 'बहुव्रीहौ नञ् सुभ्याम्' से अन्तोदात्त है। यहां विभक्ति को वैकल्पिक अन्तोदात्त होता ही है। 'अवाचा' में नञ् समास में उत्तर पद अन्तोदात्त नहीं। बहुव्रीहि में अन्तोदात्त विधान है। यहां अव्यय पूर्वपद प्रकृतिक स्वर ही हुआ। उत्तरपद ग्रहण एकाच् के साथ अन्वयी है अन्यथा समास विशेषण वह होता। शुनः अर्कं श्वोर्कं तृतीया में 'श्वोजा' यहां ही इस सूत्र की प्रवृत्ति होती। 'राजदृषदा' यहां उत्तर पद एकाच् नहीं अतः इसकी अप्रवृत्ति हुई। यहां षष्ठी तत्पुरुष समास कर टाविभक्ति है अनेकफलक यह सूत्र के प्रतिपद व्यावृत्ति का ज्ञान आवश्यक होने से यहां निर्दिष्ट है।

३७१६ अञ्चेश्छन्दस्यसर्वनामस्थानम् ६।१।१७०।

अञ्चेः परा विभक्तिरुदात्ता। इन्द्रो दधीचः। चाविति पूर्वपदान्तोदात्तत्वं प्राप्तम्। तृतीयादिरित्यनुवर्तमाने असर्वनामस्थानग्रहणं शस्परिग्रहार्थम्। प्रतीचो बाहून्।

क्विन् प्रत्ययान्त अञ्च् से पर असर्वनाम स्थानविभक्ति उदात्त होती है। दाधीचः। दधिकर्म उपपदक अञ्च् से 'ऋत्विक्' सूत्र से क्विप् प्रत्यय कर शस् नलोप, अचः से अकारलोप यहां 'चौ' से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्तोदात्तत्व प्राप्त था पूर्वपदान्त को विभक्ति उदात्त हुई। 'चौ' से दीर्घ। असर्वनामस्थान ग्रहण शस् के ग्रहणार्थ है, अन्यथा तृतीयादि की अनुवृत्ति ही करते। प्रतीचो बाहून्।

३७१७ ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः ६।१।१७६।

एभ्योऽसर्वनामस्थानविभक्तिरुदात्ता। प्रष्ठौहः। प्रष्ठौहा। ऊठ्युपधाग्रहणं कर्तव्यम्। (वा ३७५७) इह मा भूत्। अक्षद्यूवा। अक्षद्युवे। इदम्। एभिर्नृभिर्नृतमः। अन्वादेशे न। अन्तोदात्तादित्यनुवृत्तेः। न च तत्रान्तोदात्तताप्यस्तीति वाच्यम्। 'इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ' (सू ३५०) इति सूत्रेणानुदात्तस्य अशो विधानात्। प्र ते बुध्नं। माऽऽभ्यां गा अनुं। 'पदन्नोमास्हृन्निश्' (सू २२८)। इति षट् पदादयः। पद्भ्यां भूमिः। दद्भिर्न जिह्वा। अहर्हर्जायते मासिमासि। मनश्चिन्मे हृद आ। अप्। अपां फेनेन। पुम्। अभ्रातेव पुंसः। रै। राया वयम्। रायो धर्ता विवस्वतः। दिव्। उप त्वाग्ने दिवेदिवे'।

यहां एकाच् एवं अन्तोदात्त की अनुवृत्ति है। ऊठ्, इदम्, पद्, दत् आदि एवं अप्, पुम्, रै, दिव् जो एकाच् अन्तोदात्त इनसे पर असर्वनामस्थानविभक्ति उदात्त होती है। प्रष्ठौहः। 'छन्दसि सह' 'वहश्च' से ण्विप्रत्यय 'वाह ऊठ्' से ऊठ्—प्रष्ठौहा। ऊठ् विषय में उपधाभूत ऊठ् का ग्रहण होता है किन्तु यहां ऐसा नहीं है। अक्षद्युवा। इदम् एभिः—यह अन्तोदात्त नहीं है अनुदात्तत्वविशिष्ट अश् का विधान 'इदमोऽन्वादेशे' से है। पद्, दत्, नस्, मास्, हृत्, निश् वे पदादि है। मूल में इनके उदाहरण है। 'अपाम्' पुंसः, राया दिवेदिवे—वे भी इनके उदाहरण है।

३७१८ अष्टनो दीर्घात् ६।१।१७२।

शसादिर्विभक्तिरुदात्ता। अष्टाभिर्दशभिः।

दीर्घस्वरान्त अष्टन् से पर असर्वनामस्थान विभक्ति उदात्त होती है। अष्टाभिः। पक्ष में इसकी अप्रवृत्ति अष्टभिः। यहां 'झल्युपोत्तमम्' की प्रवृत्ति हुई।

३७१९ शतुरनुमो नद्यजादी ६।१।१७३।

अनुम् यः शतृप्रत्ययस्तदन्तादन्तोदात्तात्परा नदी अजादिश्च शसादिर्विभक्तिरुदात्ता स्यात्। अच्छा रवं प्रथमा जानती। कृण्वते। अन्तोदात्तात्किम्? दधती। अभ्यस्तानामादिः (सू ३६७३) इत्याद्युदात्तः। अनुमः किम्? तुदन्ती। एकादेशोऽत्र उदात्तः। अदुपदेशात्परत्वाच्छतुः 'लसार्वधातुके' (सू ३७३०) इति निघातः।

नुम् रहित जो शतृ प्रत्यय तदन्त जो अन्तोदात्त शब्द उससे पर जो नदी एवं अजादि विभक्ति उसको उदात्तस्वर होता है। जानती—'झाजनोर्जा' से जादेश, इना का आकारलोप 'श्नाभ्यस्तयोरातः' से प्रत्ययस्वर से शत्रन्त अन्तोदात्त है। कृण्वते 'धिन्विकृण्व्योर च'। 'अभ्यस्तानामादिः' से दधती अनुदात्त से अन्तोदात्त नहीं अतः इस सूत्र की अप्रवृत्ति। नुम् होनेपर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकादेश उदात्त है यथा तुदन्ती तुद्, शतृ, नुम्, अनुपदेश से परत्व के कारण 'तास्यनुदात्तेत्' से निघात स्वर है।

३७२० उदात्तयणो हल्पूर्वात् ६।१।१७४।

उदात्तस्थाने यो यण् हल्पूर्वस्तस्मात्परा नदी शसादिर्विभक्तिश्च उदात्ता स्यात्। चोदयित्री सूनृतानाम्। एषा नेत्री। ऋतं देवाय कृण्वते सवित्रे।

उदात्त के स्थान में जो यण् वह हल् पूर्वक रहे तब यण् से पर नदी या असर्वनामस्थान विभक्ति को उदात्त होता है। चोदयित्री सूनृतानाम्। नेत्री, सवित्रे वे चितः से अन्तोदात्त तृच् प्रत्ययान्त है। नाभाव की निवृत्त्यर्थ यहां स्त्रीलिङ्ग का उपादान है।

३७२१ नोङ्धात्वोः ६।१।१७५।

अनयोर्यणः परे शसादय उदात्ता न स्युः। ब्रह्मबन्ध्वा। सेत्पृश्निः सुभ्वे।

ऊङ् के स्थान में यण् या धातु के अवयव वर्ण के स्थान में यण् उससे पर शसादि विभक्ति को उदात्त स्वर नहीं होता है। ब्रह्मबन्ध्वा। सुभ्वे।

३७२२ ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् ६।१।१७६।

ह्रस्वान्तादन्तोदात्तान्नुटश्च परो मतुबुदात्तः। यो अब्दिमाँउदनिमाँ इर्यति। नुटः। अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः। अन्तोदात्तात्किम्? मा त्वा विदद्विषुमान्। 'स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवदि'त्येतदत्र न। मरुत्वानिन्द्र। नियुत्वान्वायवा गहि। रेशब्दाच्च। रेवाँइद्रेवतः।

ह्रस्वान्त अन्तोदात्त, एवं नुट् उससे पर जो मतुप् वह उदात्त होता है। ह्रस्वान्त-अन्तोदात्त-यथा-अब्दिमान्। आपः दीयन्तेऽस्मिन् यहां अधिकरण में अप् पूर्वक दा से कि प्रत्यय उपसर्ग धोः किः से हुआ आकारलोप उपपद समासकर 'समासस्य' से अन्तोदात्त उससे मतुप् इसकी प्रवृत्ति से उदात्तत्व शिष्ट स्वर अन्य अनुदात्त है। उदनिमान् में उदनि अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है। नुट् से पर का उ०—अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः अक्षि+मतुप् 'छन्दस्य दृश्यते' से अनङ्, अनो नुट् के असिद्धत्व से प्रथम नलोप करके नलोप के असिद्धत्व प्रयुक्त अन्नन्त मानकर नुट् करना ततः मतुप् उदात्त है। आद्युदात्त इषु से मतुप् इषुमान्। 'धान्ये नित्' के अधिकार में पठित 'इषः किच्च' से उप्रत्ययान्त आद्युदात्त है। मरुत्वान् में मरुत् शब्द अन्तोदात्त है उससे पर मतुप् को इससे उदात्तत्व प्राप्त था, तकार व्यवधायक नहीं क्योंकि स्वरविधान में व्यञ्जन अविद्यमानवत् होता है किन्तु इष्टानुरोध से वह परिभाषा यहां प्रवृत्त नहीं अतः तकार व्यवधानकर्ता होने से मतुप् को उदात्तत्व न हुआ। ज्ञापक सिद्ध परिभाषाओं का सार्वत्रिकत्व नहीं है। *रेशब्द से पर मतुप् उदात्त होता है। रेवान् रयिरस्यास्तीति मतुप् 'रयेर्मतौ बहुलम्' से सम्प्रसारण कर पूर्वरूप आद्गुण से गुण करने से ह्रस्वत्वाभाववान् होने से यह वचन किया *रेशब्दाच्च*।

३७२३ नामन्यतरस्याम् ६।१।१७७।

मतुपि यो ह्रस्वस्तदन्तादन्तोदात्तात्परो नामुदात्तो वा। चेतन्ती सुमतीनाम्।

मतुप् प्रत्यय परक जो ह्रस्व तदन्त अन्तोदात्त जो शब्द उससे पर 'नाम्' को विकल्प से अन्तोदात्त होता है। सुमतीनाम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३७२४ ङ्याश्छन्दसि बहुलम् ६।१।१७८।

ङ्याः परो नामुदात्तो वा। देवसेनानामभिभञ्जतीनाम्। वेत्युक्तेर्नेह। जयन्तीनां मरुतो यन्तु।

ङ्यन्त तदादि से पर नाम् को विकल्प से उदात्त होता है। इसमें वा ग्रहण से 'जयन्तीनाम्' यहां उदात्त न हुआ।

३७२५ षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः ६।१।१७९।

एभ्यो हलादिर्विभक्तिरुदात्ता। आषड्भिर्हूयमानः। त्रिभिष्ट्वं देव।

षट्, त्रि, चतुर् से पर हलादि विभक्ति उदात्त होती है।

३७२६ न गोश्वन्साववर्णराडङ्क्रुङ्कृङ्भ्यः ६।१।१८२।

एभ्यः प्रागुक्तं न। गवां शता। गोभ्यो गातुम्। शुनश्चिच्छेपम्। सौ प्रथमैकवचने अवर्णान्तात्। तेभ्यो द्युम्नम्। तेषां पाहि श्रुधी हवम्।

गो, श्वन्, सुपरक अवर्णान्त, राट्, अङ्, क्रुङ्, कृत् इनसे उत्तर हलादि विभक्ति को उदात्तस्वर नहीं होता है। प्रथमैकवचन में ही अवर्णान्तत्व सम्भव है सप्तमी बहुवचने तेषु-केषु में एकारान्तत्व सम्भव है। एवं तेभ्यः केभ्यः यहां भी यद इष्ट है 'अतः प्रथमैकवचने यस्य अवर्णान्तत्वम्' वहां ही इसकी प्रवृत्ति।

३७२७ दिवो झल् ६।१।१८३।

दिवः परा झलादिर्विभक्तिर्नोदात्ता। द्युभिरक्तुभिः। झलिति किम्? उप त्वाग्ने दिवेदिवे।

दिव् से उत्तर झलादि विभक्ति को उदात्त स्वर नहीं होता है। झलादि विभक्ति परत्वाभाव में इसकी अप्रवृत्ति है।

३७२८ नृचाऽन्यतरस्याम् ६।१।१८४।

नुः परा झलादिर्विभक्तिर्वोदात्ता। नृभिर्हूयमानः।

नृ से पर झलादि विभक्ति को उदात्तस्वर विकल्प से होता है।

३७२९ तित्स्वरितम् ६।१।१८५।

निगदव्याख्यातम्। कर्त्रे नूनम्।

तकार की इत् संज्ञायुक्त प्रत्यय रहे वहां स्वरित होता है। यथा क।

३७३० तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमन्ङितोः ६।१।१८६।

अस्मात्परं लसार्वधातुकमनुदात्तं स्यात्। तासि। कर्ता। कर्तारौ। कर्तारः। प्रत्ययस्वरापवादोऽयम्। अनुदात्तेत्। य आस्ते। ङितः। अभिचष्टे अनृतेभिः। अदुपदेशात्। पुरुभुजा चनस्यतम्। चित्स्वरोऽप्यनेन बाध्यते। वर्धमानं स्वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दमे'। तास्यादिभ्यः किम्? अभि वृधे गृणीतः। उपदेशग्रहणान्नेह। हुतो वृत्राण्यार्या। लग्रहणं किम्? कतीह पचमानाः। सार्वधातुकं किम्? शिश्वे। अन्द्धङोः किम्? हुते। यदधीते। विन्दीन्धिखिदिभ्यो नेति वक्तव्यम्। (वा० ३७४२) इन्धे राजा। एतच्च 'अनुदात्तस्य च यत्र' (सू ३६५१) इति सूत्रे भाष्ये स्थितम्।

तास् में अनुदात्तेत्, एवं उपदेशावस्था में अकारान्त, एवं उपदेशावस्था में ङित् इनसे पर लकार स्थानिक आदेश जो सार्वधातुक संज्ञक प्रत्यय वह अनुदात्त होता है, किन्तु हु एवं इङ् से पर ल० स्था० सा० प्र० को नहीं। यह प्रत्यय स्वर का बाधक है। लुट् लकार में कर्ता यहां आकार उदात्त हुआ। अनुदात्तेत् आस्ते। ङित् अभिचष्टे। अदुपदेशात्–पुरुमुज्वा चनस्यतम् यहां है। चन्+क्यच्+लोट् थास् को तम्, शप् अनुबन्ध अनवयव से अदुपदेशत्व है। 'वर्धमानम्' यहां यह निघात चित् स्वर को परत्व के कारण बाध करता हैं। 'चलनः' में चित् स्वरण सावकाश है वहां युच् प्रत्यय हुआ है, यह आस्ते में सावकाश है, वर्धमान यहां शानच्च लट्-स्थानिक में दोनों एककालावच्छेदेन प्राप्त हैं। परत्वात् निघात। तास्यादि न रहने पर इस निघात की अप्रवृत्ति है यथा अभिवृधे गृणीतः। *विन्दि, इन्धि, खिदि इनसे पर लस्थानिक सार्व-धातुक को निघात नहीं होता है*। यह 'अनुदात्तस्य च यत्र' सूत्र पर भाष्य में पठित वचन है।

३७३१ आदिः सिचोऽन्यतरस्याम् ६।१।१८७।

सिजन्तस्याऽऽदिरुदात्तो वा। यासिष्ट वर्तिरश्विना।

सिजन्त का आदि उदात्त विकल्प से होता है। यासिष्टम्। या प्रापणे लुङ्, थस् को तम् च्लि सिच् इट्, सक् माङ्योगाभाव में भी अट् का अभाव है।

३७३२ थलि च सेटीडन्तो वा ६।१।१९६।

सेटि थलन्ते पदे इड्डुदात्तः अन्तो वा आदिर्वा स्यात्। यदा नैते त्रयस्तदा 'लिति' (सू ३६७६) इति प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तं स्यात्। लुलविथ। अत्र चत्वारोऽपि पर्यायेणोदात्ताः।

इट् युक्त थलन्त का इट् उदात्त अन्तोदात्त एवं आद्युदात्त विकल्प से है जब इट् अन्त या आदि वे तीनों उदात्त न हो तब लिति से प्रत्यय के पूर्व उदात्त होगा चारो ही क्रम से उदात्त लुलविथ में हुए क्रमशः।

३७३३ उपोत्तमं रिति ६।१।१९७।

रित्प्रत्ययान्तस्योपोत्तममुदात्तं स्यात्। यदाहवनीये।

इति प्रत्ययस्वराः।

रित् प्रत्ययान्त का उपोत्तमवर्ण उदात्त होता है। बाहुलकात् अधिकरण में अनीयर् से 'आहवनीये'।

प० श्रीबालकृष्ण पञ्चोली विरचित रत्नप्रभा में प्रत्यय स्वर समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ समासस्वरप्रकरणम्

३७३४ समासस्य ६।१।२२३।

अन्त उदात्तः स्यात्। यज्ञश्रियम्।

समाससंज्ञक शब्द का अन्त उदात्त होता है। यज्ञस्य श्रीः ताम् यज्ञश्रियम्। यहां श्रीशब्द के ईकार को उदात्तकर आन्तरतम्य से इयङ् उदात्त हुआ।

३७३५ बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् ६।२।१।

उदात्तस्वरितयोगि पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात्। सत्यश्चित्रश्रवस्तमः। उदात्तेत्यादि किम्? सर्वानुदात्ते पूर्वपदे समासान्तोदात्तत्वमेव, यथा–समपादः।

इस सूत्र में अनुवर्तमान उदात्त एवं स्वरित तद्वान् का प्रत्यायक है। उदात्तस्वरवत् एवं स्वरितस्वरवत् पूर्वपद सम्भव है सामानाधिकरण्य के अनुरोध से। 'अरुणया पिङ्गाक्ष्या सोमं क्रीणाति' वहां गुणवाचक का गुणी में सामानाधिकरण्य के अनुरोध से आरुण्यादिगुणविशिष्टया गवा सोमकर्मकक्रयण अर्थ मीमांसोक्त है तथैव प्रकृत में एकार्थबाधकत्वरूप सामानाधिकरण्येन पूर्वपदार्थान्वयित्व से 'तद्वत्' अर्थ बोधकत्व है।

सूत्रार्थ—बहुव्रीहि समास में उदात्त या स्वरित स्वरयोग विशिष्ट पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। सत्यश्चित्रश्रवस्तमः। श्रूयते श्रवः = कीर्तिः। चित्रं श्रवो यस्य स चित्रश्रवाः। इससे अतिशय अर्थ में तमप् प्रत्यय। चित्र शब्द अन्तोदात्त है, इससे पर को 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' स्वरित है, इससे पर की 'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' से प्रचय है। उदात्तयोग विशिष्ट स्वरितयोग विशिष्ट कहने से जो सर्वानुदात्त है वहां प्रकृतिस्वर नहीं किन्तु ऐसे बहुव्रीहि में पूर्व सूत्र समासस्य है उससे अन्त उदात्तस्वर ही होता है। यथा समपादः। यहां 'त्वत् त्व समसिम' से सर्वानुदात्त समशब्द है, पाद शब्द 'घञादीनाञ्च' से आद्युदात्त है वह समास के अन्तवर्ण उदात्त हुआ। समौ = समानौ पादौ यस्य असौ समपादः।

३७६६ तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः ६।२।२।

सप्तैते। पूर्वपदभूतास्तत्पुरुषे प्रकृत्या। तुल्यश्वेतः। 'कृततुल्याख्या अजात्या' (सू ३४६) इति तत्पुरुषः। किरिणा काणः किरिकाणः। पतयन्मन्दयत्सखम्। मन्दयति मादके इन्द्रे। सखेति सप्तमीतत्पुरुषः। शरीश्यामा। अव्यये नञ्कुनिपातानाम् (वा ३८०८) अयज्ञो वा एषः। परिगणनं किम्? स्नात्वाकालकः। मुहूर्तसुखम्। भोज्योष्णम्।

तुल्यार्थ शब्द, तृतीयाविभक्त्यन्त पद, सप्तमी विभक्त्यन्त पद, उपमान वाचक शब्द, अव्यय, द्वितीयान्त कृत्यप्रत्ययान्त शब्द वे सात पूर्व में रहते तत्पुरुष में प्रकृतिस्वर होते हैं। वहां समास का अन्त उदात्त नहीं होता है। तुल्यश्वेतः। यहां 'कृत्यतुल्याख्या' से समास है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यतोऽभावः से आद्युदात्त 'नौवयो' से यत् प्रत्ययान्त तुल्य शब्द है। सदृक्श्वेतः यह प्राचीन पुस्तकों में पाठ है। 'समानान्ययोश्च' क्विन्नन्त सदृक् 'गतिकारकोपपदात् कृत्' से कृदुत्तरपद प्रकृति स्वर से अन्तोदात्त है। सदृश शब्द मध्योदात्त है। कृञ् प्रत्ययान्त यह है। तृतीयान्त पूर्वपद का समासोदाहरण—किरिणा काणः किरिकाणः। किरि गिरि प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त है। मन्दयति = माद के सखा यहां सप्तमी तत्पुरुष में मदयत् शब्द अन्तोदात्त है। ण्यन्त मद् से लट् के स्थान में शतृप्रत्यय है, 'छन्दस्युभयथा' से आर्धधातुकत्व प्रयुक्त 'तास्यनुदात्त' से निघात न हुआ। अतः प्रत्यय को आद्युदात्तत्व ही है। णिलोप के प्रति शतृ सार्वधातुक है अतः 'णिरिटि' से णिलोप न हुआ मादयत्सखम्। छन्द में विपरीत शङ्का न करना, अतः आर्धकत्व से णिलोप एवं सार्वधातुकत्व प्रयुक्त निघात ऐसा कुतर्कावसर यहां नहीं है।

उपमान—'शङ्खीश्यामा' 'उपमानानि सामान्यवचनैः' से समास गौरादि ङीषन्त अन्तोदात्त शङ्खीशब्द है। अव्यय—निपात से सिद्ध था नञ् ग्रहण 'अकरणिः' यहां पर भी कृत्स्वर बाधनार्थ है। अव्यय में नञ् कु निपात का यहां ग्रहण है। अकरणिः में 'आक्रोशे' से अनि है। तिस्रः में 'तिसृभ्यो जसः' यहां सतिशिष्टस्वर विभक्ति स्वर का नञ् स्वर बाधक है। चत्वारः, अनड्वाहः यहां शिष्टस्वर को भी आम् बाध करता है। अन्यथी में 'जिदृक्षि' से धातु के साथ समास निपातन से कर इनि प्रत्यय हुआ, उसको भी बाधनार्थ नञ् है। चादि में पाठ के अभाव से 'कु' ग्रहण किया है।

स्नात्वा कालकः—मयूरव्यंसकादित्व प्रयुक्त समास है, मयूरव्यंसकादि गण में ही अन्तोदात्त निपातन कीजिये ?, सामिकृतं स्वयंधौतम् इत्यादि वारणाय परिगणन आवश्यक है। अन्यथा वहां भी पूर्वपद प्रकृति स्वरापत्ति होगी। वहां अन्तोदात्त ही इष्ट है। सामिकृतम् आदि में 'सामि' एवं 'स्वयं क्तेन' से समास है। द्वितीयान्त मुहूर्तसुखम्, 'कालाध्वनोः' से द्वितीया 'अत्यन्तसंयोगे च' से समास, मुहूर्त शब्द अन्तोदात्त पृषोदरादि है। कृत्यप्रत्ययान्त—भोज्योष्णम्—'कृत्यतुल्याख्या' से समास 'तित्स्वरितम्' में से स्वरितान्त ण्यदन्त भोज्य शब्द है।

३७३७ वर्णो वर्णेष्वनेते ६।२।३।

वर्णवाचिन्युत्तरपदे एतवर्जिते वर्णवाचि पूर्वपदं प्रकृत्या तत्पुरुषे। कृष्णसारङ्गः। लोहितकल्माषः। कृष्णशब्दो नक्प्रत्ययान्तः। लोहितशब्द इतन्नतः। वर्णः किम् ? परमकृष्णः। वर्णेषु किम् ? कृष्णतिलाः। अनेते किम् ? कृष्णैतः।

एत से भिन्न वर्णवाचक शब्द पर रहते पूर्वपद भूत वर्णवाचक शब्द को तत्पुरुष समास में प्रकृतिस्वर होता है। कृष्णसारङ्गः, लोहितकल्माषः। नक् प्रत्ययान्त कृष्ण है एवं इतन् प्रत्ययान्त लोहित है। 'कृष्णस्यामृगाख्या चेत्' से अन्तोदात्त वेद में है, भाषा में 'वर्णानाम्' सू० से आद्युदात्त वह है। 'रहे रश्च लोवा' से लोहित इतन् नित्स्वर से आद्युदात्त है। परम कृष्ण, में पूर्वपद वर्णवाचक नहीं यहां अन्तोदात्त समास है। कृष्णतिलाः यहां भी समास का अन्त उदात्त है उत्तरपद वर्णवाचक नहीं है। यदि लक्षण प्रतिपदोक्त परिभाषा से 'वर्णो वर्णेन' यह प्रतिपदोक्त समास ही गृहीत यहां है तो वर्ण ग्रहण निष्फल ही है। श्वेत या श्वेतरक्त मिश्रित वर्ण वाचक एत शब्द परक पूर्वस्थित वर्ण वाचक में इसकी अप्रवृत्ति से अन्तोदात्त 'समासस्य' से हुआ। कृष्णैतः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३७३८ गाधलवणयोः प्रमाणे ६।२।४।

एतयोरुत्तरपदयोः प्रमाणवाचिनि तत्पुरुषे पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात्। अरित्रगाधमुदकम्। तत्प्रमाणमित्यर्थः। गोलवणम्। यावद्गवे दीयते तावदित्यर्थः। अरित्रशब्द इत्रान्तो मध्योदात्तः। प्रमाणमियत्ता परिच्छेदमात्रं, न पुनरायाम एव। प्रमाणे किम्? परमगाधम्।

प्रमाण वाचक गाध एवं लवण पर में रहते तत्पुरुष समास में पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। अरित्रगाधम् उदकम्। नौकाष्ठ को अरित्र कहते हैं स्पृश्यमान को गाध कहते हैं। गाधृ धातु से कर्म में घञ् से गाध है। अर्धर्चादित्व प्रयुक्त नपुंसकत्व है। अरित्रम्=नौकाष्ठं तस्य गाधम्=स्पृश्यमानं तलम्। इत्र प्रत्ययान्त अरित्र शब्द मध्योदात्त है। अन्तोदात्त गो है गोलवणम्=गाय के लिए नमक। इयत्ता=इतना उसका परिच्छेदन=नापना मात्र प्रमाण शब्द बोध्य अर्थ यहां है। संकेतित "आयामस्तु प्रमाणं स्यात्" एतदर्थक प्रमाण शब्द यहां नहीं है। जहां प्रमाण नहीं वहां समास का अन्त उदात्त होता है, यथा—परमगाधम्।

३७३९ दायाद्यं दायादे ६।२।५।

तत्पुरुषे प्रकृत्या। धनदायादः। धनशब्दः क्युप्रत्ययान्तः प्रत्ययस्वरेणाद्युदात्तः। दायाद्यं किम्? परमदायादः।

दायाद शब्द उत्तरपद रहते पूर्वपद दायाद्य वाचक रहे तो उसको तत्पुरुष समास में प्रकृति स्वर होता है। दातव्यः=दायोंशः। दायमादत्ते दायादः=वंशपरम्परागत धनादि का गृहीता। मूलविभुजादित्व प्रयुक्त कप्रत्यय यहां है। दायादस्य भावः दायाद्यम्। दायका आदान या तत्सम्बन्ध। यहां अजहत्स्वार्थ लक्षणा से गृहीतव्य दाय में ही दायाद्य है। धन शब्द क्यु प्रत्ययान्त आद्युदात्त है, प्रत्ययस्वर द्वारा। पूर्वपद दायाद्य वाचक नहीं वहां अन्तोदात्त होता है, यथा परमदायादः।

३७४० प्रतिबन्धि चिरकृच्छ्रयोः ६।२।६।

प्रतिबन्धवाचि पूर्वपदं प्रकृत्या एतयोः परतस्तत्पुरुषे। गमनचिरम्। व्याहरणकृच्छ्रम्। गमनं कारणविकलतया चिरकालभावि कृच्छ्रयोगि च प्रतिबन्धि जायते। प्रतिबन्धि किम्? मूत्रकृच्छ्रम्।

चिर तथा कृच्छ्र शब्द पर रहते प्रतिबन्धवाचक पूर्वपद को तत्पुरुष समास में प्रकृति स्वर होता है। सूत्रस्थ 'प्रतिबन्धि' शब्द 'आवश्यके णिनिः' से णिनि प्रत्ययान्त=कार्य सिद्धि के प्रतिबन्धक अर्थ में है। गमन एवं व्यवहरण शब्द ल्युडन्त लित्स्वर युक्त है। गमनचिरम्। व्यवहरणकृच्छ्रम्—गमनकारण विकलता से, चिरकाल भावि कृच्छ्रयोगि होने से प्रतिबन्धि होता है। मूत्रकृच्छ्रम् यहां पूर्वपद प्रतिबन्धवाचक नहीं अतः समासस्य से अन्तोदात्त हुआ।

३७४१ पदेऽपदेशे ६।२।७।

व्याजवाचिनि पदशब्द उत्तरपदे पूर्वपदे प्रकृत्या तत्पुरुषे। मूत्रपदेन प्रस्थितः। उच्चारपदेन। मूत्रशब्दो घञन्तः। उच्चारशब्दो घञन्तः। 'थाथ' (सू ३८७८) आदिस्वरेणान्तोदात्तः। अपदेशे किम्? विष्णुपदम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याजार्थक शब्द उत्तरपद में रहते तत्पुरुष समास में पूर्वपद प्रकृतिस्वर युक्त होता है मूत्रपदेन प्रस्थितः। उच्चारपदेन प्रस्थितः। मूत्र शब्द घञ्प्रत्ययान्त है, एवं उच्चार भी घञन्त है यहां थाथादि सूत्र से अन्तोदात्त हुआ है। षष्ठीतत्पुरुष विष्णुपदम् में पद व्याज वाचक नहीं है वह समास का अन्त उदात्त है।

३७४२ निवाते वातत्राणे ६।२।८।

निवातशब्दे परे वातत्राणवाचिनि तत्पुरुषे पूर्वपदं प्रकृत्या। कुटीनिवातम्। कुडचनिवातम्। कुटीशब्दो गौरादिङीषन्तः। कुडचशब्दो डचगन्तः। यगन्त इत्यन्ये। वातत्राणे किम्? राजनिवाते वसति। निवातशब्दोऽयं रूढः पार्श्वे।

वातत्राणवाचक निवात शब्द उत्तरपद में रहते तत्पुरुष समास में पूर्वपद प्रकृति स्वर होता है। कुटीनिवातम्। कुडचं निवातम्। कुटी ङीपन्त अन्तोदात्त है। कुडच डगन्त या यगन्त अन्तोदात्त है। पार्श्वार्थक निपात जहां है वहां इसकी अप्रवृत्ति ही है राजनिवातः = राजा के पार्श्व में स्थित पुरुष। निपात शब्द यहां पार्श्व में रूढ है।

३७४३ शारदेऽनार्तवे ६।२।९।

ऋतौ भवमार्तवम्। तदन्यवाचिनि शारदशब्दे परे तत्पुरुषे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं स्यात्। रज्जुशारदमुदकम्। शारदशब्दो नूतनार्थः। तस्यास्वपदविग्रहः। रज्जोः सद्य उद्धृतम्। रज्जुशब्दः (ड) सृजेरसुम् च इत्याद्युदात्तो व्युत्पादितः। अनार्तवे किम्? उत्तमशारदम्।

ऋतु में उत्पन्न वस्तु को आर्तव कहते हैं। इससे भिन्नार्थक शारद उत्तरपद पर में रहते तत्पुरुष में पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है। कुँवें से रस्सी द्वारा तुरन्त निकाला हुआ जल अर्थ में शारद शब्द नूतनार्थक है = रज्जुशारदम् उदकम्। 'रज्जोः सद्य उद्धृतम्' ऐसा अस्वपद विग्रह यहां करना चाहिए। असुम् प्रत्ययान्त रज्जु शब्द आद्युदात्त है। शरदि = ऋतौ भवम् = शारदम् यहां आर्तव अर्थ है इसकी अप्रवृत्ति है = 'उत्तमशारदम्'।

३७४४ अध्वर्युकषाययोर्जातौ ६।२।१०।

एतयोः परतो जातिवाचिनि तत्पुरुषे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरम्। कठाध्वर्युः। दौवारिककषायम्। कठशब्दः पचाद्यजन्तः। तस्मात् 'वैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च' (सू १४८४) इति णिनेः 'कठचरकाल्लुक्' (सू १४८७) इति लुक्। द्वारि नियुक्त इति ठक्यन्तोदात्तो दौवारिकशब्दः। जातौ किम्? परमाध्वर्युः।

अध्वर्यु एवं कषाय शब्द उत्तरपद में रहते जातिवाचक रहते तत्पुरुष समास में पूर्वपद के प्रकृति स्वर होता है। कठाध्वर्युः। यज्ञ के प्रति गमन कर्ता ऋत्विक् = अध्वर्युः। कठप्रोक्त वेद शाखा का अध्येता को कठ कहते हैं। अणन्त से वैशम्पायन का अन्तेवासी है अतः णिनि प्रत्यय हुआ उसका कठचरकाल्लुक् से लुक् हुआ। अध्येता अर्थ में विहित अण् का प्रोक्ताल्लुक् से लुक् हुआ। द्वार में नियुक्त को 'दौवारिकः' कहते हैं ठक् अन्तोदात्त यह है। गोत्रञ्च चरणैः सह से जातित्व कठादि को है। परमाध्वर्युः = श्रेष्ठ ऋत्विक्, यहां जातित्वाभाव प्रयुक्त पूर्वपद को प्रकृति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वरत्वाभाव है। समासस्थ से अन्तोदात्त है। दौवारिक [अस्] एव कषाय सु का षष्ठीतत्पुरुष समास है। परमाध्वर्युः में 'सन्महत् परम' से समानाधिकरण तत्पुरुष समास है।

३७४५ सदृशप्रतिरूपयोः सादृश्ये ६।२।११।

अनयोः पूर्वं प्रकृत्या। पितृसदृशः। सादृश्ये किम्? परमसदृशः। समासार्थोऽत्र पूज्यमानता न सादृश्यम्।

सादृश्यार्थक सदृश एवं प्रतिरूप शब्द पर रहते तत्पुरुष समास में पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। पितृसदृशः, मातृसदृशः यहां तृजन्त चितः से अन्तोदात्त वे दोनों है। जहां समासार्थ पूज्यमानता रहे, सादृश्य न रहे वहां इसकी अप्रवृत्ति से समास का अन्त उदात्त। यथा—परमसदृशः।

३७४६ द्विगौ प्रमाणे ६।२।१२।

द्विगावुत्तरपदे प्रमाणवाचिनि तत्पुरुषे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरम्। प्राच्यसप्तमः। सप्त समाः प्रमाणमस्य। प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम्। (वा० २१२८–२९) इति मात्रचो लुक्। प्राच्यशब्दः आद्युदात्तः। प्राच्यश्चासौ सप्तसमश्च प्राच्यसप्तसमः। द्विगौ किम्? व्रीहिप्रस्थः। प्रमाणे किम्? परमसप्तसमम्।

द्विगु उत्तरपद रहते प्रमाण वाचक तत्पुरुष में पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। सप्तानां समानां समाहारः सप्तसमः समाहार में द्विगु है। पात्रादित्व से स्त्रीत्व का अभाव है। 'प्रमाणे लो द्विगुर्नित्यम्' से मात्रच् का लुक् है। प्राच्य शब्द 'दृयुप्राग्' से यत् प्रत्ययान्त आद्युदात्त है प्राच्यश्चासौ सप्तसमश्चेति प्राच्यसप्तसमः यहां इसकी प्रवृत्ति से पूर्वपद के स्वर की अवस्थिति हुई। द्विगुत्वाभाव से अन्तोदात्त 'व्रीहिप्रस्थः' यहां। प्रमाण वाचकत्वाभाव में इसकी अप्रवृत्ति ही है।

३७४७ गन्तव्यपण्यं वाणिजे ६।२।१३।

वाणिजशब्दे परे तत्पुरुषे गन्तव्यवाचि पण्यवाचि च पूर्वपदं प्रकृतिस्वरम्। मद्रवाणिजः। गोवाणिजः। सप्तमीसमासः। मद्रशब्दो रक्प्रत्ययान्तः। गन्तव्येति किम्? परमवाणिजः।

वाणिज शब्द उत्तरपद पर रहते तत्पुरुष समास में गन्तव्य वाचक एवं पण्यवाचक पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। रक् प्रत्ययान्त मद्र शब्द अन्तोदात्त है। मद्रेषु वाणिजः = मद्रवाणिजः गोषु वाणिजः = गोवाणिजः। मद्रदेश में जाकर व्यवहार करने वाला = मद्रेषु गत्वा व्यवहरति। परमवाणिजः यहां गन्तव्य नहीं अतः समास का अन्त उदात्त हुआ।

३७४८ मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुंसके ६।२।१४।

मात्रादिषु परतो नपुंसकवाचिनि तत्पुरुषे तथा। भिक्षायास्तुल्यप्रमाणं भिक्षामात्रम्। भिक्षाशब्दो 'गुरोश्च हलः' (सू ३२८०) इत्यप्रत्ययान्तः। पाणिन्युपज्ञम्। पाणिनिशब्द आद्युदात्तः। नन्दोपक्रमम्। नन्दशब्दः पचाद्यजन्तः। इक्षुच्छायम्। इक्षुशब्द आद्युदात्तो नित्त्वात्। नपुंसके किम्। कुड्यच्छाया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मात्र, उपज्ञ, उपक्रम, छाया इन शब्द उत्तरपद में रहें वहां तत्पुरुष समास में नपुंसक में पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। गुरोश्च हलः से अप्रत्ययान्त भिक्षा शब्द अन्तोदात्त है भिक्षायाः तुल्यप्रमाणं भिक्षामात्रम्। पाणिनि शब्द आद्युदात्त है। उपज्ञायते=उपज्ञा 'आतश्चोपसर्गे' से कर्म में अङ् प्रत्यय है=बिना उपदेश से जात आदि ज्ञान को उपज्ञा कहते हैं। पाणिन्युपज्ञम्। नोदात्तोपदेशस्य से वृद्धि निषेध से उपक्रम कर्म घञ् प्रत्ययान्त है। 'उपज्ञोपक्रमम्' से नपुंसकत्व है। नन्द शब्द पचाद्यजन्त अन्तोदात्त है। इषुच्छायम् में नित् स्वर से इषु आद्युदात्त है। छाया बाहुल्ये से नपुंसकत्व है। दिवाल=भित्ती उसकी छाया कुड्यच्छाया में नपुंसक नहीं अतः समास का अन्त उदात्त है।

३७४९ सुखप्रिययोर्हिते ६।२।१५।

एतयोः परयोर्हितवाचिनि तत्पुरुषे तथा। गमनप्रियम्। गमनसुखम्। गमनशब्दे लित्स्वरः। हिते किम्? परमसुखम्।

सुख एवं प्रिय पर रहते हित वाचक तत्पुरुष में पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है। गमन शब्द चित्स्वर युक्त है। गमनप्रियम्। गमनसुखम्। हितार्थक तत्पुरुषाभाव में समासान्तोदात्तत्व ही है—परमसुखम्।

३७५० प्रीतौ च ६।२।१६।

प्रीतौ गम्यायां प्रागुक्तम्। ब्राह्मणसुखं पायसम्। छात्रप्रियोऽनध्यायः। ब्राह्मणच्छात्रशब्दौ प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तौ। प्रीतौ किम्? राजसुखम्।

प्रीति गम्यमान होनेपर तत्पुरुष समास में पूर्वपद प्रकृति स्वर होता है। ब्राह्मण एवं छात्र अन्तोदात्त है। ब्राह्मणसुखम्=पायसम्। छात्राणां प्रियः छात्रप्रियः=अनध्यायः। रामसुखम् यहां प्रीति अर्थ नहीं अतः इसकी अप्रवृत्ति है।

३७५१ स्वं स्वामिनि ६।२।१७।

स्वामिशब्दे परे स्ववाचि पूर्वपदं तथा। गोस्वामी। स्वं किम्? परमस्वामी।

तत्पुरुष में स्वामि परक स्व वाचक को पूर्वपद प्रकृति स्वर होता है। गोस्वामी। गो शब्द आद्युदात्त है। स्ववाचक नहीं यथा परम स्वामी वहां इसकी अप्रवृत्ति।

३७५२ पत्यावैश्वर्ये ६।२।१८।

दर्मूना गृहपतिर्दमे।

तत्पुरुष में ऐश्वर्य्य वाचक पति शब्द पर रहते पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है—गृहपतिः। गेहेकः सम्प्रसारणञ्च गृह शब्द अन्तोदात्त है।

३७५३ न भूवाक्चिद्दिधिषु ६।२।१९।

पतिशब्दे परे ऐश्वर्यवाचिनि तत्पुरुषे नैतानि प्रकृत्या। भुवः पतिर्भूपतिः। वाक्पतिः। चित्पतिः। दिधिषूपतिः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पति शब्द पर में रहे ऐश्वर्य वाचक तत्पुरुष में पूर्वपदस्थ भू, वाक्, चित्, दिधिषू इनको प्रकृति स्वर नहीं होता है। भूपतिः। भ्वादि तीन क्विबन्त है। दिधिषू निपातन से ऊप्रत्ययान्त अन्तोदात्त है। वाक् पतिः। चित्पतिः दिधिषूपतिः यहां समास का अन्तवर्ण उदात्त हुआ।

३७५४ वा भुवनम् ६।२।२०।

उक्तविषये। भुवनपतिः। (उ० सू०) 'भूसूधूभ्रस्जिभ्यः' इति क्युन्नन्तो भुवनशब्दः।

ऐश्वर्यवाचक तत्पुरुष में पति शब्द पर रहते पूर्वपदस्थ भुवन को प्रकृति स्वर विकल्प से होता है। भुवन शब्द क्युन् प्रत्ययान्त आद्युदात्त है। भुवनपतिः।

३७५५ आशङ्काबाधनेदीयस्सु संभावने ६।२।२१।

अस्तित्वाध्यवसायः संभावनम्। गमनाशङ्कमस्ति। गमनाबाधम्। गमनेदीयः। गमनमाशङ्क्यते, आबाध्यते, निकटतरमिति वा संभाव्यते। संभावने किम्? परमनेदीयः।

अस्तित्व के ज्ञान को सम्भावना कहते हैं। आशङ्क, आबाध, एवं नेदीय पर रहते सम्भावना वाचक तत्पुरुष में पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है। गमनमाशङ्कते, आदि की सम्भावना में गमनाशङ्कमस्ति आदि उदाहरणों में गमन का लित्स्वर अवस्थित रहा। अतिशय निकटतर में = परमनेदीयः यहां सम्भावना की अप्रतीति हुई।

३७५६ पूर्वे भूतपूर्वे ६।२।२२।

आढ्यो भूतपूर्वः आढ्यपूर्वः। पूर्वशब्दो वृत्तिविषये भूतपूर्वे वर्तते। भूतपूर्वे किम्? परमपूर्वः।

भूतपूर्व अर्थ में विद्यमान पूर्व शब्द पर रहते पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है। आढ्यपूर्वः। आढ्य पूर्वकाल में वह था+सम्प्रति नहीं। थाथादिस्वर से आढ्य अन्तोदात्त है। आङ्पूर्वक 'ध्यै चिन्तायाम्' 'घञर्थे कविधानम्' कर्म में कप्रत्यय आत्व, आकारलोप, पृषोदरादित्व के कारण धकार को ढकार। भूतपूर्वार्थक पूर्व के अभाव में इसकी अप्रवृत्ति है। यथा—परमपूर्वः।

३७५७ सविधसनीडसमर्यादसवेशसदेशेषु सामीप्ये ६।२।२३।

एषु पूर्वं प्रकृत्या। मद्रसविधम्। गान्धारसनीडम्। काश्मीरसमर्यादम्। मद्रसवेशम्। मद्रसदेशम्। सामीप्ये किम्? सह मर्यादया समर्यादं क्षेत्रम्। चैत्रसमर्यादम्।

सामीप्य में सविध, सनीड, समर्याद, सवेश, सदेश, इनके पर रहते पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है। मर्य्यादा के साथ समर्यादम्। चैत्रसमर्यादम्। सर्वत्र षष्ठीतत्पुरुष है। मद्रशब्द उदात्त है। गान्धारि मध्योदात्त है। कर्दमादीनाञ्च से आद्युदात्त या मध्योदात्त। काश्मीर शब्द मध्योदात्त है 'लघावन्ते' से। समर्यादम् में 'वोपसर्जनस्य' से सादेश है। 'मद्रसमीपम्' यहां इसकी अप्रवृत्ति है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३७५८ विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु ६।२।२४।

विस्पष्टकटुकम्। विस्पष्टशब्दो 'गतिरनन्तरः' (सू ३७८३) इत्याद्युदात्तः। विस्पष्टेति किम्? परमलवणम्। गुणेति किम्? विस्पष्टब्राह्मणः। विस्पष्ट। विचित्र। व्यक्त। सम्पन्न। पण्डित। कुशल। चपल। निपुण।

गुण वाचक शब्द पर में रहते विस्पष्टादि पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। विस्पष्ट शब्द 'गतिरनन्तरः' से आद्युदात्त है। परमलवणम् में अन्तोदात्त हुआ। विस्पष्ट शब्द द्रव्यार्थक जहां है यथा विस्पष्टब्राह्मणः यहां अन्तोदात्त है। मूल में आदिपद से गृहीत शब्दों का उल्लेख है।

३७५९ अज्याऽवमकन्पापवत्सु भावे कर्मधारये ६।२।२५।

अ ज्य अवम कन् इत्यादेशवति, अवमशब्दे, पापशब्दवति चोत्तरपदे भाववाचि पूर्वपदं प्रकृत्या। गमनश्रेष्ठम्। गमनज्यायः। गमनाऽवमम्। गमनकनिष्ठम्। गमनपापिष्ठम्। श्रेत्यादि किम्? गमनशोभनम्। भावे किम्? गम्यतेऽनेनेति गमनम्। गमनं श्रेयो गमनश्रेयः। केति किम्? षष्ठीसमासे मा भूत्।

अ, ज्य, अवम कन् इन आदेश विशिष्ट शब्द एवं पाप वाचक शब्द पर रहते कर्मधारय समास में भाववाचक पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है। यह षष्ठी तत्पुरुष समास में अप्रवृत्त है। अ, ज्य, कन् वे आदेश हैं उनको उत्तरपदत्व सम्भव नहीं अतः तद्घटित में उत्तरपद से यहां गृहीत है। इष्ठन् ईयसुन् पर रहते 'प्रशस्यस्य श्रः' 'ज्य च' 'युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्' वे आदेश होते हैं। गमनश्रेष्ठम् यहां 'राजदन्तादिषु' से या मयूरव्यंसकादित्व से विशेषण का पर निपात हुआ। 'करणाधिकरणयोः' से करण ल्युट् प्रत्ययान्त गमन शब्द है।

३७६० कुमारश्च ६।२।२६।

कर्मधारये। कुमारश्रमणा। कुमारशब्दोऽन्तोदात्तः।

कर्मधारय समास में कुमार पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। पचादि अच्प्रत्ययान्त अन्तोदात्त कुमार शब्द है। प्रतिपदोक्त "कुमारः श्रवणादिभिः" प्रतिपदोक्त समास ही यहां गृहीत है।

३७६१ आदिः प्रत्येनसि ६।२।२७।

कुमारस्यादिरुदात्तः प्रत्येनसि परे कर्मधारये। प्रतिगतमेनोऽस्य प्रत्येनाः। कुमारप्रत्येनाः।

कर्मधारय में प्रत्येनस् शब्द पर में रहते कुमार शब्द के आदि को प्रकृति स्वर होता है। कुमारशब्द को प्रकृति भाव से जो स्वर अर्थात् अन्तोदात्त प्राप्त है वह उदात्त कुमार के उकार को होता है। अन्यथा वह शेषनिघात से अनुदात्त स्वर युक्त होता। कुमारप्रत्येनाः = प्रतिगतम् एनः अस्य इति प्रत्येनाः।

३७६२ पूगेष्वन्यतरस्याम् ६।२।२८।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूगा गणास्तेषूक्तं वा। कुमारचातकाः। कुमारजीमूताः। आद्युदात्तत्वाभावे 'कुमारश्च' (सू ३७६०) इत्येव भवति।

गणवाचक को पूग कहते हैं। गणवाचक शब्द पर में रहते कर्मधारय में कुमार का आदि वर्ण विकल्प उदात्त होता है। इसकी अप्रवृत्ति में कुमारश्च से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर अन्तोदात्त स्वर की अवस्थिति अच् प्रत्ययान्त होने से चितः से स्थिति रही।

३७६३ इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ ६।२।२९।

एषु परेषु पूर्वं प्रकृत्या। पञ्चारत्नयः प्रमाणमस्य पञ्चारत्निः। दश मासान् भूतो दशमास्यः। पञ्च मासान् भूतः पञ्चमास्यः। 'तमधीष्ट' (सू० १७४४) इत्यधिकारे द्विगोर्यप् (सू० १७४६)। पञ्चकपालः। पञ्चभगालः। पञ्चशरावः। (फि०) नूः संख्यायाः। इति पञ्चन्छब्द आद्युदात्तः। इगन्तादिषु किम्? पञ्चाश्वः। द्विगौ किम्? परमारत्निः।

द्विगुसमास में इगन्त, कालवाचक, कपाल, भगाल, शराव इनके पर में रहते पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है। पञ्चारत्निः—पञ्च अरत्नयः प्रमाणमस्य तद्धितार्थ में द्विगुसमास, मात्रच् प्रत्यय का उसका प्रमाणे लो द्विगुर्नित्यम् से लुक्। पञ्चकपालः—पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चसु भगालेषु संस्कृतः, पञ्चसु शरावेषु उद्धृतः तद्धितार्थ में द्विगु, 'द्विगोर्लुगनपत्ये' से अण् का लुक् से पञ्चकपालः, पञ्चभगालः, पञ्चशरावः, की सिद्धि हुई। कालवाचक—दशमास्यः। पञ्चमास्यः द्विगोर्यप्। 'न संख्यायाः' से पञ्चन् शब्द आद्युदात्त है पञ्चाश्व में इगन्त उत्तरपद नहीं। परमारत्निः में द्विगु नहीं अतः उभयत्र समास का अन्त उदात्त हुआ। 'पञ्चारत्नीनि' नपुंसक प्रथमा बहुवचन में नुम् आगम पञ्चारत्नि का अवयव है। अरत्नि का अवयव नहीं है अतः उत्तर पद 'अरत्नि' में इगन्तत्व अक्षुण्ण है। पूर्व पद प्रकृतिस्वर हुआ—"समुदायभक्तोऽसौ नुम् अवयवस्येगन्ततां विहन्तुं नोत्सहते" इति भाष्यम्।

३७६४ बह्वन्यतरस्याम् ६।२।३०।

बहुशब्दस्तथा वा। बह्वरत्निः। बहुमास्यः। बहुकपालः। बहुशब्दोऽन्तोदात्तः। तस्य यणि सति 'उदात्तस्वरितयोः' (सू ३६५७) इति भवति।

इगन्तादि उत्तरपद पर रहते द्विगु में पूर्वपद बहु को विकल्प से प्रकृति स्वर होता है। बह्वरत्निः आदि, बहुशब्द अन्तोदात्त है उकार को यण् करने पर 'उदात्तस्वरितयोः' से अरत्नि का अकार स्वरित है।

३७६५ दिष्टिवितस्त्योश्च ६।२।३१।

एतयोः परतः पूर्वपदं प्रकृत्या वा द्विगौ। पञ्चदिष्टिः। पञ्चवितस्तिः।

द्विगु समास में दिष्टि, वितस्ति पर रहते द्विगु में पूर्वपद को विकल्प से प्रकृति स्वर होता है। पञ्चदिष्टिः। पञ्चवितस्तिः 'दिष्टिवितस्ती प्रमाणे' समास में मात्रच् का लुक्। पक्ष में आन्तोदात्व हुआ। यहां भी पूर्ववत् प्रत्यय समास प्रत्यय लुक् की योजना करनी चाहिए।

३७६६ सप्तमी सिद्धशुष्कपक्वबन्धेष्वकालात् ६।२।३२।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अकालवाचि सप्तम्यन्तं प्रकृत्या सिद्धादिषु। साङ्काश्यसिद्धः। साङ्काश्येति ण्यान्तः। आतपशुष्कः। भ्राष्ट्रपक्वः। भाष्ट्रेति ष्ट्रन्नन्तः। चक्रबन्धः। चक्रशब्दोऽन्तोदात्तः। अकालात्किम्? पूर्वाह्णसिद्धः। कृत्स्वरेण बाधितः सप्तमीस्वरः प्रतिप्रसूयते।

तत्पुरुष में सिद्ध, शुष्क, पक्व बन्ध उत्तर रहते अकालवाचक सप्तम्यन्त पूर्व पद को प्रकृति स्वर होता है। 'वुन्छण्' से ण्यप्रत्ययान्त सांकाश्य शब्द है। 'सांकाश्यसिद्धः'। आतपशुष्कः। भ्राष्ट्रशब्द ष्ट्रन् प्रत्ययान्त है। चक्र अन्तोदात्त है। कालवाचक सप्तम्यन्त–पूर्वाह्णसिद्धः। कृत्स्वर से बाधित सप्तमीस्वर प्रतिप्रसव है।

३७६७ परिप्रत्युपापा वर्ज्यमानाऽहोरात्रावयवेषु ६।२।३३।

एते प्रकृत्या वर्ज्यमानवाचिन्यहोरात्रावयववाचिनि चोत्तरपदे। परित्रिगर्तं वृष्टो देवः। प्रतिपूर्वाह्णम्। उपपूर्वरात्रम्। अपत्रिगर्तम्। उपसर्गा आद्युदात्ताः। बहुव्रीहितत्पुरुषयोः सिद्धत्वादव्ययीभावार्थमिदम्। अपपर्यो रेव वर्ज्यमानमुत्तरपदम्। तयोरेव वर्ज्यमानार्थत्वात्। अहोरात्रावयवा अपि वर्ज्यमाना एव तयोर्भवन्ति। वर्ज्येति किम्? अग्निं प्रति। प्रत्यग्नि।

तत्पुरुष में वर्ज्यमानवाचक एवं अहोरात्रि का वाचक पद उत्तर पद पर रहते पूर्वपदस्थ परि, प्रति, उप, अप् ही प्रकृति स्वर होता है। परित्रिगर्तं वृष्टो देवः आदि में उपसर्ग आद्युदात्त है। 'अपपरी वर्जने' से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, 'पञ्चम्यपाङ् परिभिः' से पञ्चमी, 'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या' से अव्ययीभावसमास हुआ 'प्रतिपूर्वाह्णम्'–अह्नः पूर्वो भागः पूर्वाह्णः 'अह्नोऽह्नः' से अह्नादेश, अह्नोऽदन्तात् से णकार। पूर्वाह्णं प्रति 'लक्षणेन अभिप्रती आभिमुख्ये' से आभिमुख्य में अव्ययीभाव समास। उपपूर्वरात्रम्–रात्रेः पूर्वो भागः पूर्वरात्रः 'अहः सर्वैकदेश' से अच्, 'रात्राह्नाहाः' से पुंस्त्व, पूर्वरात्रस्य समीपम् उपपूर्वरात्रम्। 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या' एवं तत्पुरुषे तुल्यार्थ से सिद्ध था यह सूत्र केवल अव्ययीभाव समासार्थ है। पर एवं परि का ही उत्तरपद वर्ज्यमान होगा वे दोनों ही वर्ज्यमानार्थक ही है। उनका अहोरात्रावयव भी वर्ज्यमानार्थक ही होगा। अग्निं प्रति यहां वर्ज्यमानार्थक नहीं प्रत्यग्नि में अन्तोदात्त।

३७६८ राजन्यबहुवचनद्वन्द्वेऽन्धकवृष्णिषु ६।२।३४।

राजन्यवाचिनां बहुवचनान्तानामन्धकवृष्णिषु वर्तमाने द्वन्द्वे पूर्वपदं प्रकृत्या। श्वाफल्कचैत्रकाः। शिनिवासुदेवाः। शिनिराद्युदात्तो लक्षणया तदपत्ये वर्तते। राजन्येति किम्? द्वैप्यभैमायनाः। द्वीपे भवा द्वैप्याः। भैमेरपत्यं युवा भैमायनः। अन्धकवृष्णय एते न तु राजन्याः। राजन्यग्रहणमिहाऽभिषिक्तवंश्यानां क्षत्रियाणां ग्रहणार्थम्। नैते तथा। बहुवचनं किम्? सङ्कर्षणवासुदेवौ। द्वन्द्वे किम्? वृष्णीनां कुमाराः वृष्णिकुमाराः। अन्धकवृष्णिषु किम्? कुरुपञ्चालाः।

राजन्यवाचक बहुवचनान्त के अन्धक एवं वृष्णि में वर्तमान द्वन्द्व समास में पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है। अपत्य अर्थ में अण् प्रत्ययान्त श्वाफल्कचैत्रकाः। शिनिवासुदेवाः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिनि शब्द 'वहिश्रिस्रुयु' से बाहुलक का सम्बन्ध कर शील् को भी निकट वह नित् है। एवं नित्य ह्रस्व धातु का शिनिः आद्युदात्त है। वह लक्षणावृत्ति के उसके अपत्यार्थक है। राजन्य-वाचकत्वाभाव में 'द्वैप्यभैमायनाः' द्वीपादनुसमुद्रं यञ् 'भैमेरपत्यं युवा' यहां भीमस्यापत्यम् 'अत इञ्' तदन्त से छप्रत्यय। राजन्य शब्द क्षत्रिय वाचक है वे भी क्षत्रिय ही हैं। अतः प्रत्युदाहरण यह अनुचित है। वे अन्धक वृष्णिवाचक है, यहां क्षत्रियत्वाव्यभिचार से राजन्यग्रहण व्यर्थ होकर राजकर्मरूपकार्य में अभिषिक्त वंश्यों के क्षत्रियवाचक है, वे पूर्वोक्त वैसे नहीं है। बहुवचनान्त के अभाव में अन्तोदात्त ही है—'संकर्षणवासुदेवौ' षष्ठीतत्पुरुष में अन्तोदात्त ही है—वृष्णिकुमाराः। अन्धकवृष्णित्वाभाव में अन्तोदात्त कुरुपञ्चालाः।

३७६९ संख्या ६।२।३५।

संख्यावाचि पूर्वपदं प्रकृत्या द्वन्द्वे। एकादश। द्वादश। त्रयोदश। त्रेस्त्रयसादेश अन्तोदात्तो निपात्यते।

संख्यावाचक पूर्वपद को द्वन्द्व में प्रकृतिस्वर होता है। एकादश, 'संख्याया अल्पीयस्याः' से एक शब्द का पूर्वनिपात। 'आन्महतः' में 'आत्' यह योगविभाग से या 'प्रागेकादशभ्यः' निर्देश से आकारादेश हुआ है। एक कन् प्रत्ययान्त आद्युदात्त है। 'इण्' भी 'कायाशल्यतिमर्चिभ्यः कन्'। एकादश का पाठ सुबोधिनी के अनुसार है मूल में अनेकत्र यह पाठ नहीं मिलता है। द्वादश 'द्व्यष्टनः संख्यायाः' से आत्व। 'त्रेस्त्रयः' से त्रयस् आदेश हुआ 'त्रयोदश'। अन्तोदात्त त्रयस् है। त्रयसादेश आद्युदात्त है ऐसा भी प्राचीन पुस्तकों में पाठ मिलता है।

३७७० आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासी ६।२।३६।

आचार्योपसर्जनान्तेवासिनां द्वन्द्वे पूर्वपदं प्रकृत्या। पाणिनीयरौढीयाः। छस्वरेण मध्योदात्तावेतौ। आचार्योपसर्जनग्रहणं द्वन्द्वविशेषणम्। सकलो द्वन्द्व आचार्योपसर्जनो यथा विज्ञायते। तेनेह न। पाणिनीयदेवदत्तौ। आचार्येति किम्? छान्दसवैयाकरणाः। अन्तेवासीति किम्? आपिशलपाणिनीये शास्त्रे।

आचार्यः उपसर्जनं यस्य—आचार्योपसर्जनः, अन्तेवसति = अन्तेवासी। शयवासवासिष्वकालात् से सप्तमी का अलुक् है। सूत्र में षष्ठी एकवचन के स्थान में प्रथमा का एकवचन है—आचार्योपसर्जन अन्तेवासियों का द्वन्द्व में पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। पाणिनीयरौढीयाः—वृद्धाच्छः। रौढि से 'इञश्च' से अण् न हुआ 'न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु' से निषेध हुआ। छप्रत्ययान्त वे दोनों मध्योदात्त है। सकल द्वन्द्व आचार्योपसर्जन हो। पाणिनीयदेवदत्तौ यहां उत्तरपद वैसा नहीं अतः अन्तोदात्त हुआ। वह द्वन्द्व का विशेषण है, अन्तेवासी का नहीं अव्यभिचार से। छन्दोऽधीते अण् छान्दसः, 'श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते' का स्ववाग्रहण से प्रवृत्ति यहां न हुई। छान्दसवैयाकरणः में अन्तोदात्त हुआ। आपिशल अण् प्रत्ययान्त 'इञश्च' से है, छप्रत्ययान्त पाणिनीय है, शास्त्र अर्थ में द्वन्द्व प्रयुक्त है अतः समास का अन्त उदात्त हुआ। आपिशलपाणिनीये शास्त्रे।

३७७१ कार्तकौजपादयश्च ६।२।३७।

एषां द्वन्द्वे पूर्वपदं प्रकृत्या। कार्तकौजपौ। कृतस्येदं कुजपस्येदमित्यण्णन्तावेतौ। सावर्णिमाण्डूकेयौ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कार्त्तकौजपादि शब्दों के द्वन्द्व में पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। कृतस्य इदम्, कुटपस्य इदम् में वे दोनों अण् प्रत्ययान्त है। कुः=भूमिः तत्र जाताः कुजाः तान् पातीति कुजपः कृतकुजप से अपत्य में ऋष्यण्। मण्डूक से अपत्य में ढक्।

३७७२ महान्व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालभारभारतहैलिहिलरौरव-प्रवृद्धेषु ६।२।३८।

महच्छब्दः प्रकृत्या व्रीह्यादिषु दशसु। महाव्रीहिः। महापराह्णः। महागृष्टिः। महेष्वासः। महाहैलिहिलः। महच्छब्दोऽन्तोदात्तः। 'सन्महत्' (सू ७४०) इति प्रतिपदोक्तसमास एवायं स्वरः। नेह। महतो व्रीहिर्महद्व्रीहिः।

व्रीहि, अपराह्ण, गृष्टि, इष्वास, जाबाल, भार, भारत, हैलिहिल, रौरव, प्रवृद्ध इनके पर में रहते पूर्वपद में स्थित महत् को प्रकृति स्वर होता है। महाव्रीहिः आदि महत् अन्तोदात्त है। यहां 'सन् महत्' प्रतिपदोक्त समास गृहीत है, अन्य नहीं। षष्ठी त० स० में अन्तोदात्त होता है।

३७७३ क्षुल्लकश्च वैश्वदेवे ६।२।३९।

चान्महान्। क्षुल्लकवैश्वदेवम्। महावैश्वदेवम्। क्षुधं लातीति क्षुल्लः। तस्मादज्ञातादिषु केऽन्तोदात्तः।

वैश्वदेव पर रहते क्षुल्लक एवं महत् को प्रकृति स्वर होता है। क्षुधं लाति=क्षुल्लः से अज्ञातादि अर्थ में कन्प्रत्यय क्षुल्लकः। यह अन्तोदात्त है।

३७७४ उष्ट्रः सादिवाम्योः ६।२।४०।

उष्ट्रसादी। उष्ट्रवामी। उषेः ष्ट्रनि उष्ट्रशब्दः आद्युदात्तः।

सादि, वामि पर रहते पूर्वस्थित उष्ट्र को प्रकृति स्वर होता है। उष्ट्र आद्युदात्त है। उष्+ष्ट्रन्-उष्ट्रः।

३७७५ गौः सादसादिसारथिषु ६।२।४१।

गोसादः। गोसादिः। गोसारथिः।

गो को प्रकृति स्वर होता है साद, सादि, सारथि पर रहते। साद घञन्त है उसके साथ षष्ठ्यन्त गो का समास है 'गोसादः', या गां सादयति अण् उपपद समास है। उससे णिनि प्रत्यय है। कृत्स्वरापवादार्थं साद एवं सादि का यहां ग्रहण है। गोसादार्थ में अन्तोदात्त बाधनार्थ पाठ है।

३७७६ कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपापारेवडवातैतिलकद्रूः पण्यकम्बलो दासीभाराणां च ६।२।४२।

एषां सप्तानां समासानां दासीभारादेश्च पूर्वपदं प्रकृत्या। कुरूणां गार्हपतं कुरुगार्हपतम्। उप्रत्ययान्तः कुरुः। वृजेरिति वाच्यम् (वा० ३८११)। वृजिगार्हपतम्। वृजिराद्युदात्तः। रिक्तो गुरुः रिक्तः गुरुः। 'रिक्ते विभाषा' (सू

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३६६६) इति रिक्तशब्द आद्युदात्तः। असूता जरती असूतजरती। अश्लीला दृढरूपा अश्लीलदृढरूपा। अश्लीलशब्दो नञ्समासत्वादाद्युदात्तः। श्रीर्यस्यास्ति तत् श्लीलम्। सिध्मादित्वाल्लच्। कपिलकादित्वाल्लत्वम्। पारे वडवेव पारेवडवा। निपातनादिवार्थे समासो विभक्त्यलोपश्च। पारशब्दो घृतादित्वादन्तोदात्तः। तैतिलानां कद्रूः तैतिलकद्रूः। तितिलिनोऽपत्यं छात्रो वा इत्यण्णन्तः। पण्यशब्दो यदन्तत्वादाद्युदात्तः। पण्यकम्बलः संज्ञायामिति वक्तव्यम् (वा ३८२०)। अन्यत्र पणितव्ये कम्बले समासान्तोदात्तत्वमेव। प्रतिपदोक्तसमासे 'कृत्याः' (सू २८३१) इत्येष स्वरो विहितः। दास्या भारो दासीभारः। देवहूतिः। यस्य तत्पुरुषस्य पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वमिष्यते न विशिष्यवचनं विहितं स सर्वोऽपि दासीभारादिषु द्रष्टव्यः। स राये स पुरंध्याम्। पुरं शरीरं धीयतेऽस्यामिति 'कर्मण्यधिकरणे च' (सू० ३२२१) इति किप्रत्ययः। अलुक् छान्दसः। (फि०) 'नञ्विषयस्य' इत्याद्युदात्तः पुरशब्दः।

कुरुगार्हपत, रिक्तगुरु, असूतजरती, अश्लीलदृढरूपा, परिवडवा, तैतिलकद्रू, पण्यकम्बल इन सात समासों का एवं दासीभारादिशब्दों के पूर्वस्थित पद को प्रकृतिस्वर होता है। कुरु शब्द उप्रत्ययान्त है, षष्ठी तत्पुरुष करना।

गार्हपतपरक वृजि को प्रकृति स्वर होता है। वृजिः आद्युदात्त हैं। रिक्त आद्युदात्त है। अश्लीलं आद्युदात्त है। श्लीलम् लच् प्रत्ययान्त अन्तोदात्त है। कपिलकादित्व प्रयुक्त लत्व है। 'पारेवडवा' में निपातन प्रयुक्त स्वार्थ में समास है। पारशब्द अन्तोदात्त है। अण् प्रत्ययान्त तैतिल अन्तोदात्त है। पण्य शब्द यदन्त आद्युदात्त है। संज्ञा में पण्य आद्युदात्त है। अन्यत्र अन्तोदात्त ही है। प्रतिपदोक्त समास में ही 'कृत्याः' से स्वर विहित है। जिस तत्पुरुष को पूर्वपद प्रकृति स्वरत्व इष्ट है एवं विशेष वचन का अभाव है वे सब दासीभारादि को आकृति गण समझ कर इसमें वे पठित हैं ऐसा ज्ञान करना चाहिए। सपुरन्ध्र्याम्-पुरम् = शरीरम्, उपपद रहते धृ से अधिकरण में किप्रत्यय है। छान्दसत्व प्रयुक्त अलुक् है। पुरशब्द आद्युदात्त है।

३७७७ चतुर्थी तदर्थे ६।२।४३।

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्तद्वाचिन्युत्तरपदे चतुर्थ्यन्तं प्रकृत्या। यूपाय दारु यूपदारु।

चतुर्थ्यन्त जो शब्द तद्वाच्य जो अर्थ उसके लिए जो वस्तु रहें एवं प्रकृति विकृति भाव सम्बन्ध रहे वहां चतुर्थी विभक्त्यन्त का प्रकृतिभाव होता है। यज्ञीयवधार्थपशुबन्धन के लिए स्तम्भ या खूंटा में यूपदारु यूपशब्द आद्युदात्त है। यु+प दीर्घ यूप।

३७७८ अर्थे ६।२।४४।

अर्थे परे चतुर्थ्यन्तं प्रकृत्या। देवार्थम्।

अर्थशब्द परक चतुर्थ्यन्त को प्रकृति स्वर होता है। देवार्थम् देयट् घचाघच् अन्तोदात्त है।

३७७९ क्ते च ६।२।४५।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्तान्ते परे चतुर्थ्यन्तं प्रकृत्या। गोहितम्।

क्तान्त उत्तर में रहते चतुर्थ्यन्त पद को प्रकृति स्वर होता है। गोहितम्।

३७८० कर्मधारयेऽनिष्ठा ६।२।४६।

क्तान्ते परे पूर्वमनिष्ठान्तं प्रकृत्या। श्रेणिकृताः। श्रेणिशब्द आद्युदात्तः। पूगकृताः। पूगशब्दोऽन्तोदात्तः। कर्मधारये किम्? श्रेण्या कृतं श्रेणिकृतम्। अनिष्ठा किम्? कृताऽकृतम्।

कर्मधारय में क्तान्त पर रहते क्त एवं क्तवतु वे अन्त में नहीं जिसको ऐसा पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है। श्रेणि आद्युदात्त है श्रेणिकृताः। पूग अन्तोदात्त है। कर्मधारयाभाव में अन्तोदात्त है। कृताऽकृतम् में इसकी अप्रवृत्ति।

३७८१ अहीने द्वितीया ६।२।४७।

अहीनवाचिनि समासे क्तान्ते परे द्वितीयान्तं प्रकृत्या। कष्टश्रितः। ग्रामगतः। कष्टशब्दोऽन्तोदात्तः। ग्रामशब्दो नित्स्वरेण। अहीने किम्? कान्तारातीतः। अनुपसर्ग इति वक्तव्यम्। (वा० ३८२१) नेह सुखप्राप्तः। 'थाथ' (सू ३८७८) इत्यस्यापवादोऽयम्।

अहीनवाचक समास में क्तप्रत्ययान्त पद उत्तरपद में रहे तब पूर्व द्वितीयान्तपद को प्रकृति स्वर होता है। कष्टश्रितः। कष्ट अन्तोदात्त है। आद्युदात्त ग्राम है। कान्तारातीतः यहां हीन में अन्तोदात्त। * उपसर्गरहित क्तान्त उत्तर में रहें वहां इससे पूर्वपद प्रकृति स्वर होता है। सुखप्राप्तः में अन्तोदात्त है। थाथादि से प्राप्त स्वर का यह निषेधक है।

३७८२ तृतीया कर्मणि ६।२।४८।

कर्मवाचके क्तान्ते परे तृतीयान्तं प्रकृत्या। त्वोतासः। रुद्रहतः। महाराजहतः। रुद्रो रगन्तः। कर्मणि किम्? रथेन यातो रथयातः।

कर्मवाचक क्तान्त परक पूर्व तृतीयान्त पद को प्रकृति स्वर होता है। तुम से रक्षित अर्थ में त्वया ऊताः=रक्षिताः=त्वोतासः। मपर्यन्तभाग को प्रत्ययोत्तरपदयोश्च से त्वादेश हुआ, छान्दसत्वादकार का लोप, अप् से क्त कर्म में 'ज्वरत्वर' से ऊठ् वृद्धि एवं इडागम का अभाव जस् असुक् पूर्वपद प्रकृति स्वर के बाद एकादेश उदात्तेनोदात्तः से स्वरितप्रचयौ। रुद्रहतः। कर्ता में क्त यातः।

३७८३ गतिरनन्तरः ६।२।४९।

कर्मार्थे क्तान्ते परेऽव्यवहितो गतिः प्रकृत्या। 'थाथ' (सू ३८७८) इत्यस्याऽपवादः। पुरोहितम्। अनन्तरं किम्? अभ्युद्धृतः। कारकपूर्वपदस्य तु सति शिष्टस्थाथादिस्वर एव। दूरादागतः।

कर्मवाचक जो क्तप्रत्यय तदन्त तदादि उत्तर पद में रहते अव्यवहित गतिसंज्ञक पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है। यह थाथादि सूत्र का बाधक है। पुरोहितम्। असिप्रत्ययान्त पुरस् शब्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त है। 'पूर्वाधरावराणाम्' सूत्र से असिप्रत्यय। पुरोहितम् यहां समासस्य से अन्तोदात्त, तत्पुरुषे तुल्यार्थ से अव्यय पूर्वपद प्रकृतिस्वर, कृत्स्वर, थाथादिस्वर इनको बाध कर पूर्वपद प्रकृति स्वर हुआ।

विमर्श—अभ्युद्धृतः—यहां हृत का उत् शब्द के साथ समास में 'पुरोहितम्' की तरह गति स्वर से आद्युदात्त उद्धृत शब्द है, उसका पुनः अभि के साथ समास उसका 'कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्' इस परिभाषा से उद्धृत शब्द क्तान्त उत्तरपद एवं समासान्तोदात्तत्व प्राप्त था, उसका बाधक अव्यय पूर्वपद प्रकृति स्वर प्राप्त है उसका बाधक कृत्स्वर उसका बाधक थाथादि स्वर प्राप्त है उसको बाध इस सूत्र ने किया यही गति पूर्वपद प्रकृति स्वर अभि को न हो एतदर्थ अनन्तर ग्रहण है। उद्धृत गतिविशिष्ट में क्तान्त तदादित्व है उससे अनन्तर अभि है ही इस सूत्र की अनन्तर ग्रहण करने पर भी प्रवृत्ति दुर्वार है, पुनः अनन्तर ग्रहण क्यों किया? कृद्ग्रहण परिभाषा से 'उद्धृत' में क्तान्तत्व आरोपित है। अनन्तर ग्रहण प्रथम व्यर्थ हो कर कृद्ग्रहणे गतिकारकविशिष्टस्यापि ग्रहणम् परिभाषा को ज्ञापन किया। परिभाषार्थ—कृद् सामान्यग्रहणे, कृद् विशेषग्रहणे च गतिविशिष्टे कारकविशिष्टे च कृदन्त तदादित्वम् अथवा तद्व्याप्य क्तान्त तदादित्व आदिधर्मारोपो भवति। यावता विना यदनुपपन्नं तत्सर्वं तेन ज्ञाप्यते न्याय से पुनः अनन्तर ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता हैं कि गतिसंज्ञा से आक्षिप्त जो क्रिया तद्वाचक जो धातु उससे अव्यवहित पूर्व जो गति उसका ही प्रकृति स्वर विधायक इस सूत्र में ग्रहण है वैसा उत् है अभि नहीं है अतः यहां 'अभ्युद्धृतः' में थाथादि स्वर ही हुआ गति पूर्वपद प्रकृति स्वर न हुआ। यहां दो बार 'कुगति' से समास है। उद् का धृत के साथ अभि का उद्धृत के साथ जहां कारक पूर्व में है वहां थाथादि स्वर ही होगा।

तात्पर्य यह है की कर्मार्थक क्त तदन्त तदादि से अव्यवहित गति का यहां ग्रहण है, अनन्तर में व्यवहित भी गति का ही ग्रहण है जैसे अभि भी गति उत् भी गति धृत क्तान्त तदादि वास्तविक अनारोपित-आरोपित क्तान्त तदादि कृद् ग्रहण परिभाषा से उद्धृत उससे पूर्व अभि वह भी गति है। अतः दूराद् आगतः यहां अव्यवहित गमः से पूर्व आ उससे पूर्व अलुक् समास वाला दूरात् गति नहीं है अतः थाथादि स्वर हुआ।

उपसंहार—अनन्तर ग्रहण प्रथम व्यर्थ क्योंकि धृत क्तान्त तदादि न उद्धृत अतः व्यवधान में सूत्र की प्रवृत्ति ही नहीं अनन्तर ग्रहण व्यावर्त्य के अभाव से व्यावर्तक वह व्यर्थ हुआ, इस अनन्तर ने 'कृद्ग्रहणे' परिभाषा रूप वचन ज्ञापन किया।

परिभाषा ज्ञापनोत्तर उद्धृतादि क्तान्त तदादि है उससे अनन्तर अभि है गतिपूर्वपद प्रकृति स्वर प्राप्त हुआ, पुनः अनन्तर व्यर्थ, उसने पुनः ज्ञापन किया गत्याक्षिप्तक्रिया उसका वाचक धातु से अनन्तर यहां गृहीत है। यह कहने से धृत से पूर्व उत् प्रकृतिस्वर युक्त हुआ। अभ्युद्धृतम् यथा थाथादि स्वर ही हुआ। शास्त्रार्थ एवं परीक्षक में परीक्षक विषय को पूँछते हैं। परिभाषा विषयक विस्तृत शास्त्रार्थ परिभाषेन्दुशेखर में विद्यमान है—देखिए।

३७८४ तादौ च निति कृत्यतौ ६।२।५०।

तकारादौ निति तुशब्दवर्जिते कृति परेऽनन्तरो गतिः प्रकृत्या। अग्नेरायो नृतमस्य प्रभूतौ। सङ्क्रीतिं गोः। कृत्स्वरापवादः। तादौ किम्? प्रजल्पाकः। निति किम्? प्रकर्ता। तृजन्तः। अतौ किम्? आगन्तुः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तकारादि, तु शब्दरहित नित् कृत् प्रत्यय पर रहते अव्यवहित गति को प्रकृति स्वर होता है। प्रभूतौ-क्तिन् प्रत्ययान्त भूति है पूर्व प्र आद्युदात्त है। कृत्स्वर का यह बाधक है। प्रजल्पाकः यहां तकारादि नहीं। प्रकर्ता में नित् नहीं। तृच् प्रत्ययान्त है। षाकन् प्रत्ययान्त जल्पाकः है। आङ्पूर्वक गम्+से तुन् प्रत्यय आगन्तुः। सितनिगमि से तुन् प्रत्यय है।

विमर्श—इस सूत्र में कृद् ग्रहण व्यर्थ ही है क्योंकि गतिसंज्ञक को यह स्वर विधीयमान है, गतिसंज्ञा क्रिया योग में होती है क्रियावाचक धातु ही है, धातु से तिङ् प्रत्यय एवं कृत्प्रत्यय होते हैं, तिङन्त योग में समासाभाव से पूर्व पदस्थित गति का अभाव से इसकी अप्राप्ति है अर्थात् कृदन्त योग में इसकी प्रवृत्ति से यह सिद्ध हुआ पुनः कृद् ग्रहण क्यों किया, वह व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि कृत् प्रत्यय प्रवृत्ति काल यहां उपलक्षण है—अर्थात् कृत् प्रत्यय के उपदेश काल में ही तादित्व का लाभ हुआ, प्रलपिता यहां सम्प्रति इडागम से तादित्व नहीं तो भी यहां प्रकृति स्वर गति को हुआ।

'यस्मिन् विधिः' परिभाषा से आदि पदार्थ लाभ होता सूत्रस्थ आदि ग्रहण व्यर्थ है।

३७८५ तवै चान्तश्च युगपत् ६।२।५१।

तवैप्रत्ययान्तस्यान्त उदात्तो गतिश्चानन्तरः प्रकृत्या युगपच्चैतदुभयं स्यात्। अन्वेतवा उ। कृत्स्वरापवादः।

एक समय में तवै प्रत्ययान्त तदादि का अन्त उदात्त होता है एवं अनन्तर गति को प्रकृति स्वर भी होता है। यह कृत्स्वर का बाधक है।

३७८६ अनिगन्तोऽञ्चतौ वप्रत्यये ६।२।५२।

अनिगन्तो गतिर्वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे प्रकृत्या। ये पराञ्चस्तान्। अनिगन्त इति किम्? प्रत्यञ्चो यन्तु। कृत्स्वरात्परत्वादयमेव। जुहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः। वप्रत्यये किम्? उदञ्चनम्।

इ, उ, ऋ, ॡ अन्त में न रहे वेसा गतिसंज्ञक शब्द को प्रकृति स्वर होता है वप्रत्ययान्त अञ्च् पर रहते। कृत् स्वर को यह परत्व के कारण बाध करता है। ल्युट् प्रत्ययान्त अञ्चनम् पर में रहते तो कृत् स्वर ही होता है।

३७८७ न्यधी च ६।२।५३।

वप्रत्ययान्तेऽञ्चताविगन्तावपि। न्यधी प्रकृत्या। न्यङ्कुत्तानः। 'उदात्तस्वरितयोर्यण्' इति अञ्चतेरकारः स्वरितः। अध्यङ्।

वप्रत्ययान्त अञ्च् पर रहते 'नि' 'अधि' इकारान्त होने पर भी प्रकृति स्वर होता है। अञ्च् का अकार स्वरित है।

३७८८ ईषदन्यतरस्याम् ६।२।५४।

ईषत्कडारः। ईषदित्ययमन्तोदात्तः। ईषद्भेद इत्यादौ कृत्स्वर एव।

ईषत् को प्रकृति स्वर विकल्प से होता है। ईषत् अन्तोदात्त है। ईषद्भेदः में परत्व से कृत्स्वर हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३७८९ हिरण्यपरिमाणं धने ६।२।५५।

सुवर्णपरिमाणवाचि पूर्वपदं वा प्रकृत्या धने। द्वे सुवर्णे परिमाणमस्येति द्विसुवर्णं तदेव धनं द्विसुवर्णधनम्। बहुव्रीहावपि परत्वाद्विकल्प एव। हिरण्यं किम्। प्रस्थधनम्। परिमाणं किम्? काञ्चनधनम्। धने किम्? निष्कमाला।

धनशब्द पर रहते हिरण्य के परिमाणवाचक पूर्वपद को विकल्प से प्रकृति स्वर होता है।

"पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश। पलं सुवर्णाश्चत्वारः" इति। द्विसुवर्णधनम् बहुव्रीहि में भी परत्व के कारण प्रकृति स्वर पूर्व को विकल्प से ही होता है। प्रस्थधनम् में सुवर्ण वाचकत्वाभाव से इसकी अप्रवृत्ति हुई।

पांच कृष्णलाओं का एक मासा, सोलह मासे का एक सुवर्ण, चार सुवर्ण का एक पल होता है।

३७९० प्रथमोऽचिरोपसंपत्तौ ६।२।५६।

प्रथमशब्दो वा प्रकृत्याऽभिनवत्वे। प्रथमवैयाकरणः। सम्प्रति व्याकरणमध्येतुं प्रवृत्त इत्यर्थः। प्रथमशब्दः प्रथेरमजन्तः। अचिरेति किम्? प्रथमो वैयाकरणः।

अभिनवत्व द्योत्य होने पर प्रथम को विकल्प से प्रकृति स्वर होता है। प्रथम शब्द अभिनव अर्थ का बोधक है प्रथमवैयाकरणः—प्रथ्+अमच् प्रत्यय अन्तोदात्त प्रथम है। वैयाकरणों में प्रधान यहां अन्तोदात्त है।

३७९१ कतरकतमौ कर्मधारये ६।२।५७।

वा प्रकृत्या। कतरकठः। कर्मधारयग्रहणमुत्तरार्थम्। इह तु प्रतिपदोक्तत्वादेव सिद्धम्।

कर्मधारय में कतर एवं कतम विकल्प से प्रकृति स्वर युक्त होता हैं। प्रतिपदोक्त समास ही गृहीत यहां है। कर्मधारय ग्रहण उत्तरार्थ है। यहां प्रयोजन इसका नहीं हैं।

३७९२ आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः ६।२।५८।

आर्यकुमारः। आर्यब्राह्मणः। आर्यो ण्यदन्तस्वरितः। आर्यः किम्? परमब्राह्मणः। ब्राह्मणादीति किम्? आर्यक्षत्रियः। कर्मधारय इत्येव।

ब्राह्मण एवं कुमार पर में रहते कर्मधारय में आर्य शब्द प्रकृति स्वर युक्त रहता है। ण्यत् प्रत्यान्त आर्य अन्तोदात्त है। परमब्राह्मणः में अन्तोदात्त हुआ। आर्य क्षत्रिय में भी अन्तोदात्त हुआ।

३७९३ राजा च ६।२।५९।

ब्राह्मणकुमारयोः परतो वा प्रकृत्या कर्मधारये। राजब्राह्मणः। राजकुमारः। योगविभाग उत्तरार्थः।

कर्मधारय समास में ब्राह्मण एवं कुमार पर रहते राजन् को प्रकृति स्वर होता है। योग विभाग का उत्तरत्र फल है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३७९४ षष्ठी प्रत्येनसि ६।२।६०।

षष्ठ्यन्तो राजा प्रत्येनसि परे वा प्रकृत्या। राजप्रत्येनाः। षष्ठी किम्? अन्यत्र न।

कर्मधारय में प्रत्येनस् परक षष्ठ्यन्त राजन् को प्रकृति स्वर होता है।

३७९५ क्ते नित्यार्थे ६।२।६१।

क्तान्ते परे नित्यार्थे समासे पूर्वं वा प्रकृत्या। नित्यप्रहसितः। 'कालाः' (सू ६९०) इति द्वितीयासमासोऽयम्। नित्यशब्दस्त्यबन्त आद्युदात्तः। हसित इति थाथादिस्वरेणान्तोदात्तः। नित्यार्थे किम्? मुहूर्तप्रहसितः।

नित्यार्थक समास में क्तप्रत्ययान्त उत्तर रहते पूर्व को विकल्प से प्रकृति स्वर होता है। कालाः से द्वितीया अन्तोदात्त है। तत्पुरुष समास युक्त नित्यप्रहसितः है। नित्य आद्युदात्त है। हसित अन्तोदात्त है।

३७९६ ग्रामः शिल्पिनि ६।२।६२।

वा प्रकृत्या। ग्रामनापितः। ग्रामशब्द आद्युदात्तः। ग्रामः किम्? परमनापितः। शिल्पिनि किम्? ग्रामरक्ष्या।

शिल्पि वाचक पर रहते पूर्व को प्रकृति स्वर होता है। ग्रामनापितः ग्रामशब्द आद्युदात्त है।

३७९७ राजा च प्रशंसायाम् ६।२।६३।

शिल्पिवाचिनि परे प्रशंसार्थं राजपदं वा प्रकृत्या। राजनापितः। राजकुलालः। प्रशंसायां किम्? राजनापितः। शिल्पिनि किम्? राजहस्ती।

शिल्पि वाचक शब्द पर में रहने पर प्रशंसा की प्रतीति होने पर पूर्वपदस्थित राजशब्द—प्रकृत स्वर युक्त रहता है। वस्तु स्थिति मात्र कथन में अन्तोदात्त। राजहस्ती यहां भी अन्तोदात्त ही हुआ।

३७९८ आदिरुदात्तः ६।२।६४।

अधिकारोऽयम्।

पूर्वपद का आदि उदात्त होता है ऐसा यह उत्तर सूत्रों को बोधनार्थ अधिकार सूत्र है। उद्देश्य विधेय को एकता प्रतिपादक सर्वनाम विधेय गत लिङ्गभाग् होने से 'अयम्' यह पुंस्त्व-निर्देश है। "उद्देश्यविधेययोरैक्यमापादयत् सर्वनामपर्य्यायेण तत्तल्लिङ्गभाग् भवति" इति क्वचित् उद्देश्यगत लिङ्ग युक्त भी होता है, क्वचित् विधेयगत लिङ्ग युक्त होता है।

३७९९ सप्तमीहारिणौ धर्म्येऽहरणे ६।२।६५।

सप्तम्यन्तं हारिवाचि च आद्युदात्तं धर्म्ये परे। देयं यः स्वीकरोति स 'हारी'-त्युच्यते। धर्म्यमित्याचारनियतं देयम्। मुकुटेकार्षापणम्। हलद्विपदिका। 'संज्ञायाम्' (सू ७२१) इति सप्तमीसमासः। 'कारनाम्नि च' (सू ९६८) इत्यलुक्। याज्ञिकाश्वः। वैयाकरणहस्ती। क्वचिदयमाचारो मुकुटादिषु कार्षापणादि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दातव्यं याज्ञिकादीनां त्वश्वादिरिति। धर्म्ये इति किम्? स्तम्बेरमः। कर्मकरवर्धितकः। अहरणे किम्? वाडवहरणम्। वडवाया अयं वाडवः। तस्य बीजनिषेकादुत्तरकालं शरीरपुष्ट्यर्थं यद्दीयते तद्धरणमित्युच्यते। परोऽपि कृत्स्वरो हारिस्वरेण बाध्यत इत्यहरण इति निषेधेन ज्ञाप्यते। तेन वाडवहार्यमिति हारिस्वरः सिध्यति।

हरण भिन्न धर्म्य बोधक शब्द उत्तर पद में रहते सप्तम्यन्त या हारिवाचक पूर्वपद प्रकृति स्वर होता है। दान क्रिया की कर्मीभूत वस्तु को जो स्वीकार करता है वह हारी कहा जाता है। आचार नियत देय द्रव्य को धर्म्य कहते हैं। हारी में आवश्यक अर्थ में णिनि प्रत्यय है। जनपद में ग्राम में, या कुल में परम्परा से आगत जो सदाचार उसको धर्म कहते हैं। धर्मात् अनपेतम्=युक्तम् धर्म्यम् 'धर्मपथ्यर्थ' सूत्र से यत् प्रत्यय है। 'संज्ञायाम्' से समास एवं अलुक् करके मुकुटेकार्षापणम्। हलेद्विपदिका। षष्ठीतत्पुरुष से याज्ञिकाश्वः। कहीं यह व्यवहार है कि मुकुटादि धारण निमित्त कार्षापणादि दातव्य व्यवहार है। याज्ञिकादिक को अश्वादि देने का व्यवहार है। यहां धर्म्य नहीं है—कर्मकरवर्धितकः कर्मकर को दानकर्म मूल एवं अग्र में सूक्ष्म ओदन पिण्ड को वर्द्धितक कहते है। यहां धर्म्य नहीं वह भृत्य को भोजनार्थ न दिया जाय तो वह कर्म को नहीं करेगा। वाडवहरणम् यहां इस सूत्र की अप्रवृत्ति हरण उत्तर होने से। वडवा = घोडी के उदरस्थ गर्भ के लिए बीज की पुष्टि के लिए मशूरादि जो दिया जाय उसको कहते हैं। वाडव हरण। पर भी कृत् स्वर को हारी स्वर बाध करता है। अतः पूर्वपद प्रकृति स्वर निषेधार्थ 'अहरणे' चरितार्थ हुआ। अन्यथा पद व्यर्थ होता। इस ज्ञापन का फल—'वाडवहार्यम्' से कृत् स्वर बाध्य हुआ एवं हारी स्वर की प्रवृत्ति हुई। 'अनोभावकर्मवचनः' से उत्तरपद का अन्त उदात्त वाडवहरणम् में है।

३८०० युक्ते च ६।२।६६।

युक्तवाचिनि समासे पूर्वमाद्युदात्तम्। गोबल्लवः। कर्तव्ये तत्परो युक्तः।

युक्तवाची समास में पूर्व पद का आदि उदात्त होता है। गोवल्लवः। कर्तव्य में तत्पर यह इसका अर्थ है। वल्लवादि शब्द पालक वचनार्थक है।

३८०१ विभाषाऽध्यक्षे ६।२।६७।

गवाध्यक्षः।

अध्यक्ष शब्द पर रहते पूर्वपद आद्युदात्त विकल्प से होता है। अध्यक्ष शब्द भी समास में युक्तवाची ही रहता है, पूर्व का विकल्पार्थक यह सूत्र है।

३८०२ पापं च शिल्पिनि ६।२।६८।

पापनापितः। 'पापाणके' (सू ७३३) इति प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणात् षष्ठीसमासे न।

शिल्पी वाचक उत्तर पद रहते पूर्व पद पाप का आदि उदात्त होता है विकल्प से। पाप से स्वरूप ग्रहण है। शिल्पिनि में अर्थपरकत्व व्याख्यान से है। यहां 'पापाणके' प्रतिपदोक्त समास का ग्रहण है। अतः षष्ठी समास में अन्तोदात्त होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३८०३ गोत्राऽन्तेवासिमाणवब्राह्मणेषु क्षेपे ६।२।६९।

भार्यासौश्रुतः। सुश्रुतापत्यस्य भार्याप्रधानतया क्षेपः। अन्तेवासी। कुमारीदाक्षाः। ओदनपाणिनीयाः। कुमार्यादिलाभकामा ये दाक्ष्यादिभिः प्रोक्तानि शास्त्राण्यधीयते ते एवं क्षिप्यन्ते। भिक्षामाणवः। भिक्षां लप्स्येऽहमिति माणवः। भयब्राह्मणः। भयेन ब्राह्मणः सम्पद्यते। गोत्रादिषु किम्? दासीश्रोत्रियः। क्षेपे किम्? परमब्राह्मणः।

निन्दा अर्थ की जहां प्रतीति गम्य रहे वहां समास में गोत्र प्रत्ययान्त, अन्तेवासि वाचक, माणवक, ब्राह्मण इनके उत्तरपद पर रहते पूर्वपद का आदि उदात्त होता है। सुश्रुत की सन्तति भार्या ही जिसका कर्तव्याकर्तव्य की निर्णायिका है वह स्वयं नहीं यहां निन्दा गम्य है—आद्युदात्त हुआ भार्यासौश्रुतः। अनुशतिकादित्व प्रयुक्त उभय पद की वृद्धि हुई। कुमारी के लाभार्थ जो दाक्ष्यादिप्रोक्त शास्त्रों के अध्ययन शील छात्र है यहां भी निन्दा गम्य है कुमारीदाक्षाः। परिपक्व चावल प्राप्त्यर्थ जो पाणिनि व्याकरण के अध्येता एवं भिक्षा लाभार्थ यत्नशील, जो माणव—अहं भिक्षां लप्स्ये इति। ब्राह्मण भय से बनता है यहां आद्युदात्तत्व है। राजा के भय से ब्राह्मणोचित आचार को करने वाला भयब्राह्मणः।

३८०४ अङ्गानि मैरेये ६।२।७०।

मद्यविशेषो मैरेयः। मधुमैरेयः। मधुविकारस्य तस्य मध्वङ्गम्। अङ्गानि किम्? परममैरेयः। मैरेये किम्? पुष्पासवः।

मद्य विशेष वाचक मैरेय शब्द पर में रहते मद्य के निर्माण वाचक जो पूर्वपद उसका आदि उदात्त होता है। मधु का विकार जो मद्य = मैरेयः।

वह मधुका विकार होने से मधुका अवयव ही है। श्रेष्ठ मद्य में = परममैरेयः यहां इसकी अप्रवृत्ति है। पुष्पासवः में मैरेय नहीं अतः इसकी अप्रवृत्ति है।

३८०५ भक्ताख्यास्तदर्थेषु ६।२।७१।

भक्तमन्नम्। भिक्षाकंसः। भाजीकंसः। भिक्षादयोऽन्नविशेषाः। भक्ताख्याः किम्? समाशशालयः। समशनं समाश इति क्रियामात्रमुच्यते। तदर्थेषु किम्? भिक्षाप्रियः। बहुव्रीहिरयम्। अत्र पूर्वपदमन्तोदात्तम्।

भक्तार्थक वाचक पर रहते भक्त = अन्न वाचक जो पूर्वपद उसको आद्युदात्तस्वर होता है। 'समाश' शब्द सम्यग् अशनरूप क्रिया प्रतिपादक है। अन्न वाचक वह नहीं है। भिक्षाप्रियः में बहुव्रीहि समास के पूर्वपद का अन्त उदात्त है।

३८०६ गोबिडालसिंहसैन्धवेषूपमाने ६।२।७२।

धान्यगवः। गोबिडालः। तृणसिंहः। सक्तुसैन्धवः। धान्यं गौरिवेति विग्रहः। व्याघ्रादिः। गवाकृत्या सन्निवेशितं धान्यं धान्यगवशब्देनोच्यते। उपमाने किम्? परमसिंहः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपमान वाचक जो, विडाल, सिंह, सैन्धव वे हैं उत्तरपद में जिसके ऐसा पूर्वपद उसको आद्युदात्तस्वर होता है। धान्यगवः उपमितसमास, टच्, चितस्वर को बाधकर आदि उदात्त पूर्वपद का हुआ। आकृतिः = संस्थानम्। सन्निवेशितम् = व्यवस्थापितम्। गो की आकृति से राशीकृत धान्य को 'धान्यगवः' कहते हैं।

३८०७ अके जीविकार्थे ६।२।७३।

दन्तलेखकः। यस्य दन्तलेखनेन जीविका। 'नित्यं क्रीडा' (सू ७११) इति समासः। अके किम्? रमणीयकर्ता। जीविकार्थे किम्? इक्षुभक्षिकां मे धारयसि।

अकप्रत्ययान्त जीविका वाचक पर रहते समास में पूर्वपद आद्युदात्त होता है। दन्त लेखन क्रिया द्वारा जीविका सम्पादनकर्ता को 'दन्तलेखकः' कहते हैं। लेखक शब्द ण्वुल् प्रत्ययान्त है 'वु' को अक आदेश है।

३८०८ प्राचां क्रीडायाम् ६।२।७४।

प्राग्देशवाचिनां या क्रीडा तद्वाचिनि समासे अकप्रत्ययान्ते परे पूर्वमाद्युदात्तं स्यात्। उद्दालकपुष्पभञ्जिका। 'संज्ञायाम्' (सू ३२८६) इति ण्वुल्। प्राचां किम्? जीवपुत्रप्रचायिका। इयमुदीचां क्रीडा। क्रीडायां किम्? तत्र पुष्पप्रचायिका। पर्यायै ण्वुल्।

पूर्वदेश निवासिजनों की क्रीड़ा तद्वाचक समास में अकप्रत्ययान्त पर पद रहते पूर्वपद का आदि उदात्त होता है। 'नित्यं क्रीडा' से समास 'संज्ञायाम्' से ण्वुल् प्रत्यय उद्दालक पुष्प भञ्जिका। उत्तरदेश निवासी जो मनुष्य उनकी संज्ञा—जीवपुत्रप्रचायिका यहां इस सूत्र की अप्रवृत्ति है। पुष्पप्रचायिका में क्रीडा नहीं है। पर्य्याय में ण्वुल् है।

३८०९ अणि नियुक्ते ६।२।७५।

अण्णन्ते परे नियुक्तवाचिनि समासे पूर्वमाद्युदात्तम्। छत्रधारः। नियुक्तं किम्? काण्डलावः।

अण् प्रत्ययान्त शब्द पर रहते नियुक्त वाचक समास में पूर्वपद आद्युदात्त होता है। अणन्त कृञ् न रहे तब। छत्रधारः। नियुक्त अर्थ यहां नहीं—काण्डलावः। कुम्भकारः यहां अकृञ् निषेध हुआ।

३८१० शिल्पिनि चाऽकृञः ६।२।७६।

शिल्पिवाचिनि समासे अण्णन्ते परे पूर्वमाद्युदात्तं च चेदण् कृञः परो न भवति। तन्तुवायः। शिल्पिनि किम्? काण्डलावः। अकृञः किम्? कुम्भकारः।

शिल्पी वाचक समास में पूर्वपद का आदि उदात्त होता है संज्ञा में अण् प्रत्ययान्त उत्तरपद रहते किन्तु अण् प्रत्ययान्त कृञ् उत्तर रहते इसकी अप्रवृत्ति होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३८११ संज्ञायां च ६।२।७७।

अण्णन्ते परे। तन्तुवायो नाम कृमिः। अकृञ इत्येव। रथकारो नाम ब्राह्मणः।

अणन्त पर रहते पूर्वपद का आदि उदात्त होता है। यहां भी 'अकृञः' का सम्बन्ध है।

३८१२ गोतन्तियवं पाले ६।२।७८।

गोपालः। तन्तिपालः। यवपालः। अनियुक्तार्थो योगः। गो इति किम्? वत्सपालः। पाले इति किम्? गोरक्षः।

पालशब्द उत्तरपद रहते गो, तन्ति यव, आद्युदात्त वे होते हैं।

३८१३ णिनि ६।२।७९।

पुष्पहारी।

णिनि प्रत्ययान्त उत्तरपद पर रहते पूर्वपद का आदि उदात्त होता है।

३८१४ उपमानं शब्दार्थप्रकृतावेव ६।२।८०।

उपमानवाचि पूर्वपदं णिन्यन्ते परे आद्युदात्तम्। उष्ट्रक्रोशी। ध्वाङ्क्षरावी। उपमानग्रहणमस्य पूर्वयोगस्य च विषयविभागार्थम्। शब्दार्थप्रकृतौ किम्? वृकवञ्ची। प्रकृतिग्रहणं किम्? प्रकृतिरेव यत्रोपसर्गनिरपेक्षा शब्दार्था तत्रैव यथा स्यात्। इह मा भूत्। गर्दभोच्चारी।

शब्दार्थक धातुप्रकृतिक णिन् प्रत्ययान्त पद पर में रहने पर उपमान वाचक पूर्वपद का आदि उदात्त होता है। यहां उपमान ग्रहण से इसका एवं पूर्वसूत्र का विषय विभाग होता है। वृकवञ्ची में शब्दार्थ णिन् प्रत्यय की प्रकृति का अर्थ नहीं है। उपसर्ग की अपेक्षा न कर जहां धातु शब्द क्रियार्थक हो वहां इस सूत्र की प्रवृत्ति के लिए सूत्र में प्रकृति ग्रहण है। गर्दभोच्चारी में आद्युदात्त न हुआ।

३८१५ युक्तारोह्यादयश्च ६।२।८१।

आद्युदात्ताः। युक्तारोही। आगतयोधी। क्षीरहोता।

'युक्तारोही' आदि का आद्युदात्त होता है।

३८१६ दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं जे ६।२।८२।

कुटीजः। काशजः। तुषजः। भ्राष्ट्रजः। वटजः।

ज शब्द पर में रहते दीर्घान्त पूर्वपद, एवं काश, तुष, भ्राष्ट्र, वट वे आद्युदात्त होते हैं।

३८१७ अन्त्यात्पूर्वं बह्वचः ६।२।८३।

बह्वचः पूर्वस्याऽन्त्यात्पूर्वपदमुदात्तं जे उत्तरपदे। उपसरजः। आमलकीजः। बह्वचः किम्? दग्धजानि तृणानि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज पर में रहते अनेक अचों से युक्त जो पूर्वपद उसका अन्त्याच् से पूर्व अच् उदात्त होता है।

३८१८ ग्रामेऽनिवसन्तः ६।२।८४।

ग्रामे परे पूर्वपदमुदात्तम्। तच्चेन्निवसद्वाचि न। मल्लग्रामः। ग्रामशब्दोऽत्र समूहवाची। देवग्रामः। देवस्वामिकः। अनिवसन्तः किम्? दाक्षिग्रामः। दाक्षिनिवासः।

अनिवासार्थक ग्रामशब्द पर में रहने पर पूर्वपद का आदि वर्ण उदात्त होता है। मल्लग्राम, ग्रामशब्द समूह अर्थ का वाचक है। देवस्वामिक ग्राम को देवग्रामः। दक्षगोत्रापत्यों का निवासस्थान में दाक्षिग्रामः।

३८१९ घोषादिषु च ६।१।८५।

दाक्षिघोषः। दाक्षिकटः। दाक्षिह्रदः।

घोषादि शब्द पर में रहते पूर्वपद का आदि उदात्त होता है। दाक्षिघोषः।

३८२० छात्र्यादयः शालायाम् ६।२।८६।

छात्रिशाला। व्याडिशाला। यदापि शालान्तः समासो नपुंसकलिङ्गो भवति, तदापि 'तत्पुरुषे शालायां नपुंसके' (सू ३८५७) इत्येतस्मात्पूर्वविप्रतिषेधेनायमेव स्वरः। छात्रिशालम्।

शालाशब्द पर रहते छात्रि आदि पूर्वपदस्थ शब्द उनका आद्युदात्त होता है शालान्त समास में जब शालाशब्द नपुंसक रहता है तो भी 'तत्पुरुषे शालायाम्' को बाधकर यही स्वर पूर्वविप्रतिषेध से होता है। यथा–छात्रिशालम्।

३८२१ प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम् ६।२।८७।

प्रस्थशब्दे उत्तरपदे कर्क्यादिवर्जितमवृद्धं पूर्वपदमाद्युदात्तं स्यात्। इन्द्रप्रस्थः। अवृद्धं किम्? दाक्षिप्रस्थः। अकेति किम्? कर्कीप्रस्थः। मकरीप्रस्थः।

प्रस्थ शब्द पर में रहते कर्क्यादि भिन्न अवृद्ध संज्ञक जो पूर्वपद उसका आदि उदात्त होता है। इन्द्रप्रस्थः। दाक्षिप्रस्थ में पूर्वपद वृद्धसंज्ञक है। कर्कीप्रस्थः में इसकी अप्रवृत्ति है।

३८२२ मालादीनां च ६।२।८८।

वृद्धार्थमिदम्। मालाप्रस्थः। शोणाप्रस्थः।

प्रस्थ शब्द पर रहते मालादि का आदि उदात्त होता है। वृद्धसंज्ञक शब्दों के लिए यह सूत्र है।

३८२३ अमहन्नवन्नगरेऽनुदीचाम् ६।२।८९।

नगरे परे महन्नवन्वर्जितं पूर्वमाद्युदात्तं स्यात्, तच्चेदुदीचां न। ब्रह्मनगरम्। अमेति किम्? महानगरम्। नवनगरम्। अनुदीचां किम्? कार्तिकनगरम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नगर शब्द पर रहते महत् नवन् भिन्न पूर्वपद जो शब्द उसका आदि उदात्त होता है, किन्तु वह उत्तरदेश निवासियों का न रहे तब।

३८२४ अर्मे चाऽवर्णं द्व्यच् त्र्यच् ६।२।९०।

अर्मे परे द्व्यच् त्र्यच् पूर्वमवर्णान्तमाद्युदात्तम्। गुप्तार्मम्। कुक्कुटार्मम्। अवर्णं किम्? बृहदर्मम्। द्व्यच् त्र्यच् किम्? कपिञ्जलार्मम्। अमहन्नवन्नित्येव। महार्मम्। नवार्मम्।

अर्म शब्द परक द्विस्वर या तीन स्वर युक्त अवर्णान्त शब्द का आदि उदात्त होता है।

३८२५ न भूताधिकसञ्जीवमद्राश्मकज्जलम् ६।२।९१।

अर्मे परे नैतान्याद्युदात्तानि। भूतार्मम्। अधिकार्मम्। सञ्जीवार्मम्। मद्राश्मग्रहणं संघातविगृहीतार्थम्। मद्रार्मम्। अश्मार्मम्। मद्राश्मार्मम्। कज्जलार्मम्। आद्युदात्तप्रकरणे दिवोदासादीनां छन्दस्युपसंख्यानम्। (वा० ३८४०)। दिवोदासाय दाशुषे।

अर्म पर रहते भूत, अधिक, सञ्जीव, मद्र, अश्म, कज्जल इनको आद्युदात्त नहीं होता है। 'मद्राश्म' में मद्र या अश्म अथवा अश्ममद्र या मद्राश्म समुदाय भी गृहीत है, विपरीत भी गृहीत है एवं प्रत्येक का भी ग्रहण है। *दिवोदासादि शब्द का आद्युदात्त होता है*। दिवस्श्च दासे से षष्ठी का अलुक् है।

३८२६ अन्तः ६।२।९२।

अधिकारोऽयम्। प्रागुत्तरपदादिग्रहणात्।

यह अधिकार सूत्र है। उत्तरपदादि के ग्रहण के पूर्वतक अधिकार है।

३८२७ सर्वं गुणकात्स्न्र्ये ६।२।९३।

सर्वशब्दः पूर्वपदमन्तोदात्तम्। सर्वश्वेतः। सर्वमहान्। सर्वं किम्? परमश्वेतः। आश्रयव्याप्त्या परमत्वं श्वेतस्येति गुणकात्स्न्र्ये वर्तते। गुणेति किम्? सर्वसौवर्णः। कात्स्न्र्ये किम्? सर्वेषां श्वेततरः सर्वश्वेतः।

गुण साकल्य अर्थ में विद्यमान पूर्वपदस्थित सर्व का अन्त उदात्त होता है। सर्वश्वेतः। परमश्वेत में आश्रय को व्याप्तकर रहने वाला श्वेत वृत्तिपरमत्व बोधकपरम शब्द गुणवाचक है। किन्तु सर्व पूर्वक नहीं अतः इसकी अप्रवृत्ति हुई। सर्वेश्वर में समास, तरप् त्रोप हुआ गुणाद् तरेण तरलोपश्च से। गुण वाचक शब्द जब उत्तर पद में स्थित है ऐसी अवस्था में सर्व शब्दार्थ कात्स्न्र्य से सदा अव्यभिचरित ही रहेगा, पुनः अव्यावर्तकत्व से कात्स्न्र्य ग्रहण सूत्र में क्यों किया यह शङ्का हुई उसका निवारण—यह कथन केवल कर्मधारय में सम्भव है, षष्ठी समास में नहीं। गुणिकात्स्न्र्य में विद्यमान शब्द गुणकात्स्न्र्य में नहीं है। सर्वेषाम् में गुण सम्बन्ध में षष्ठी है।

३८२८ संज्ञायां गिरिनिकाययोः ६।२।९४।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एतयोः परतः पूर्वमन्तोदात्तम्। अञ्जनागिरिः। मण्डिनिकायः। संज्ञायां किम्? परमगिरिः। ब्राह्मणनिकायः।

संज्ञा में गिरि एवं निकाय पर रहते पूर्वपद का अन्त उदात्त होता है। अञ्जनागिरिः में 'वनगिर्योः संज्ञायाम्' से पूर्व का दीर्घ हुआ।

३८२९ कुमार्यां वयसि ६।२।९५।

पूर्वपदमन्तोदात्तम्। वृद्धकुमारी। कुमारीशब्दः पुंसा सहासम्प्रयोगमात्रं प्रवृत्तिनिमित्तमुपादाय प्रयुक्तो वृद्धादिभिः समानाधिकरणः। तच्च वय इह गृह्यते न कुमारत्वमेव। वयसि किम्? परमकुमारी।

कुमारी शब्द पर रहते पूर्व पद अन्तोदात्त होता है। वृद्धकुमारी–विशेषण समास है, यहां कुमारीशब्द पुरुषकर्तृक भोग रहित अर्थ में है अतः वृद्धा के साथ कुमारी के अर्थ का एकार्थ बोधक रूप सामानाधिकरण्य सम्भव है, वह वयः का ग्रहण है कुमारत्व का नहीं। 'परमकुमारी' में अवस्था की प्रतीति नहीं है अतः इस सूत्र की अप्रवृत्ति है।

३८३० उदकेऽकेवले ६।२।९६।

अकेवलं मिश्रं तद्वाचिनि समासके उदके परे पूर्वमन्तोदात्तम्। गुडोदकम्। स्वरे कृतेऽत्र एकादेशः। 'स्वरितो वानुदात्ते पदादौ' (सू ३६५६) इति पक्षे स्वरितः। अकेवले किम्? शीतोदकम्।

मिश्रवाचक समास में उदक शब्द पर में रहते पूर्वपद का अन्त उदात्त होता है। 'गुडोदकम्', पुष्पान्तरसंसृक्त को मिश्र कहते हैं। गुडमिश्रम् उदकम् = गुडोदकम्। यहां स्वर करके एकादेश करके 'स्वरितो वाऽनुदात्ते' से पक्ष में स्वरित है। मिश्रण नहीं यहां है—यथा शीतञ्च तत् उदकम् शीतोदकम्।

३८३१ द्विगौ क्रतौ ६।२।९७।

द्विगावुत्तरपदे क्रतुवाचिनि समासे पूर्वमन्तोदात्तम्। गर्गत्रिरात्रः। द्विगौ किम्? अतिरात्रः। क्रतौ किम्? बिल्वहोमस्य सप्तरात्रो बिल्वसप्तरात्रः।

उत्तरपद द्विगु समास क्रतुवाचक पर रहते पूर्वपद का अन्त उदात्त होता है। गर्गत्रिरात्रम् = षष्ठीतत्पुरुषः। तिसृणां रात्रीणां समाहारः त्रिरात्रम्। अहःसर्वैकदेश से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। 'संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्' से नपुंसकत्व हुआ। गर्गसप्तरात्रम्। रात्रिमतिक्रान्तः अतिरात्रः यहां द्विगु नहीं है। 'बिल्वहोमं सप्तरात्रम्' यहां क्रतु नहीं है।

३८३२ सभायां नपुंसके ६।२।९८।

सभायां परतो नपुंसकलिङ्गे समासे पूर्वमन्तोदात्तम्। गोपालसभम्। स्त्रीसभम्। सभायां किम्? ब्राह्मणसेनम्। नपुंसके किम्? राजसभा। प्रतिपदोक्तनपुंसकग्रहणान्नेह। रमणीयसभम्, ब्राह्मणकुलम्।

सभा शब्द परक नपुंसक समास में पदपद अन्तोदात्त होता है। यहां 'सभा राजा' सूत्र से विहित प्रतिपदोक्त नपुंसक का ही ग्रहण है। बहुव्रीहि में अन्यपदार्थ गत नपुंसक में इसकी प्रवृत्ति नहीं है, रमणीयसभम् = ब्राह्मणकुलम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३८३३ पुरे प्राचाम् ६।२।९९।

देवदत्तपुरम्। नान्दीपुरम्। प्राचां किम्? शिवपुरम्।

पुरशब्द पर रहते पूर्वदेश में पूर्वपद अन्तोदात्त होता है।

३८३४ अरिष्टगौडपूर्वे च ६।२।१००।

पुरे परे अरिष्टगौडपूर्वसमासे पूर्वमन्तोदात्तम्। अरिष्टपुरम्। गौडपुरम्। पूर्वग्रहणं किम्? इहापि यथा स्यात्। अरिष्टाश्रितपुरम्। गौडभृत्यपुरम्।

पुरशब्द पर रहते अरिष्ट एवं गौडपूर्वक समास में पूर्वपद का अन्त उदात्त होता है। अरिष्टाश्रितपुरम् में 'पूर्वे' सूत्र में गृहीत होने से यहां भी अन्तोदात्त हुआ। इसी प्रकार 'गौडभृत्यपुरम्' यहां भी अन्तोदात्त हुआ। पूर्व ग्रहण न करते तो श्रित, भृत्य के व्यवधान से अरिष्ट एवं गौड को न स्वर होता, समुदाय का सूत्र में उपात्त = उच्चरित न होने से।

३८३५ न हास्तिनफलकमार्देयाः ६।२।१०१।

पुरे परे नैतान्यन्तोदात्तानि। हास्तिनपुरम्। फलकपुरम्। मार्देयपुरम्। मृदेरपत्यमिति शुभ्रादित्वाड्ढक्।

पुर पर में रहते हास्तिन, फलक, मार्देय, इनका अन्त उदात्त होता है।

३८३६ कुसूलकूपकुम्भशालं बिले ६।२।१०२।

एतान्यन्तोदात्तानि बिले परे। कुसूलबिलम्। कूपबिलम्। कुम्भबिलम्। शालबिलम्। कुसूलादि किम्? सर्पबिलम्। बिलेति किम्? कुसूलस्वामी।

बिलशब्द से पूर्व कुसूल, कूप, कुम्भ, शाल, इनका अन्त उदात्त होता है।

३८३७ दिक्शब्दा ग्रामजनपदाख्यानचानराटेषु ६।२।१०३।

दिक्शब्दा अन्तोदात्ता भवन्त्येषु। पूर्वेषुकामशमी। अपरकृष्णसृत्तिका। जनपदपूर्वपञ्चालाः। आख्यानं-पूर्वक्षायातम्। पूर्वचानराटम्। शब्दग्रहणं कालवाचिदिक्शब्दस्य परिग्रहार्थम्।

दिक्वाचक शब्द का अन्त उदात्त होता है ग्रामवाचक, जनपदवाचक, आख्यानवाचक, चानराट इन के पर में रहते। जनपद शब्दार्थ यहां देश है। 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' से समास 'पूर्वेषुकामशमी' अपरकृष्णसृत्तिका में है। पूर्वपञ्चालाः। समुदायबोधक शब्द भी क्वचित् स्वावयव का बोधक है। यथा पञ्चालैकदेश में यहां पञ्चाल शब्द है। अतः पूर्वार्थ के साथ एकार्थबोधकत्वरूप सामानाधिकरण्य से 'पूर्वापरप्रथम' सूत्र से समास पूर्वपञ्चालाः यहां हुआ। पूर्व यायातः—ययातिमधिकृत्य कृतः ग्रन्थः अर्थ में अण् से यायातः। सूत्रस्थ दिक्शब्द से दिशा अर्थ में कभी दृष्ट इस से सम्प्रति देश या कालवाचक रहने पर भी इस सूत्र की प्रवृत्ति हुई।

३८३८ आचार्योपसर्जनश्चाऽन्तेवासिनि ६।२।१०४।

आचार्योपसर्जनान्तेवासिनि परे दिक्शब्दा अन्तोदात्ता भवन्ति। पूर्वपा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

णिनीयाः। आचार्येति किम्? पूर्वान्तेवासी। अन्तेवासिनि किम्? पूर्वपाणिनीयं शास्त्रम्।

आचार्योपसर्जनान्तेवासी अर्थ का वाचक शब्द पर रहते दिग्वाचक का अन्त उदात्त होता है।

३८३९ उत्तरपदवृद्धौ सर्वं च ६।२।१०५।

उत्तरपदस्येत्यधिकृत्य या वृद्धिर्विहिता तद्वत्युत्तरपदे परे सर्वशब्दो दिक्शब्दाश्चान्तोदात्ता भवन्ति। सर्वपाञ्चालकः। अपरपाञ्चालकः। अधिकारग्रहणं किम्? सर्वभासः। सर्वकारकः।

'उत्तरपदस्य' का अधिकार करके विधीयमाना जो वृद्धि तद्घटित जो उत्तरपद वह पर में रहने पर सर्व एवं दिग् वाचक शब्द का अन्त उदात्त होता है। सर्वभासः आदि में इसकी अप्रवृत्ति है अधिकारग्रहण से।

३८४० बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् ६।२।१०६।

बहुव्रीहौ विश्वशब्दः पूर्वपदभूतः संज्ञायामन्तोदात्तः स्यात्। पूर्वपदप्रकृतिस्वरेण प्राप्तस्याद्युदात्तस्यापवादः। विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता। आविश्वदेवं सत्पतिम्। बहुव्रीहौ किम्? विश्वे च ते देवाश्च विश्वदेवाः। संज्ञायां किम्? विश्वदेवः। प्रागव्ययीभावाद् बहुव्रीह्यधिकारः।

बहुव्रीहि में संज्ञा में पूर्वपद विश्व का अन्त उदात्त होता है। पूर्वपद स्वर से प्राप्त आद्युदात्त का यह बाधक है। अव्ययीभाव के पूर्व तक बहुव्रीहि का अधिकार है।

३८४१ उदराश्वेषुषु ६।२।१०७।

संज्ञायामिति वर्तते। वृकोदरः। हर्यश्वः। महेषुः।

बहुव्रीहि में संज्ञा में उदर, अश्व, इषु इनके पर में रहते पूर्वपद अन्तोदात्त होता है।

३८४२ क्षेपे ६।२।१०८।

उदराश्वेषुषु पूर्वमन्तोदात्तं बहुव्रीहौ निन्दायाम्। घटोदरः। कटुकाश्वः। चलाचलेषुः। अनुदरः इत्यत्र 'नञ्सुभ्याम्' (सू ३६०६) इति भवति विप्रतिषेधेन।

निन्दा में बहुव्रीहि में उदर, अश्व एवं इषु पर रहते पूर्वपद अन्तोदात्त होता है। अनुदरः यहां नञ् सुभ्याम् से विप्रतिषेध से पर जो उत्तरपद उसका अन्त उदात्त होता है।

३८४३ नदी बन्धुनि ६।२।१०९।

बन्धुशब्दे परे नद्यन्तं पूर्वमन्तोदात्तं बहुव्रीहौ। गार्गीबन्धुः। नदी किम्? ब्रह्मबन्धुः। ब्रह्मशब्द आद्युदात्तः। बन्धुनि किम्? गार्गीप्रियः।

बहुव्रीहि समास में बन्धु शब्द पर रहते नद्यन्त पूर्वपद अन्तोदात्त होता है। ब्रह्मबन्धु में ब्रह्मन् आद्युदात्त है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३८४४ निष्ठोपसर्गपूर्वमन्यतरस्याम् ६।२।११०।

निष्ठान्तं पूर्वपदमन्तोदात्तं वा। प्रधौतपादः। निष्ठा किम्? प्रसेवकमुखः। उपसर्गपूर्वं किम्? शुष्कमुखः।

बहुव्रीहि में उपसर्ग पूर्वक निष्ठान्तपद विकल्प से अन्तोदात्त होता है।

३८४५ उत्तरपदादिः ६।२।१११।

उत्तरपदाधिकार आपादान्तम्। आद्यधिकारस्तु 'प्रकृत्या भगालम्' (सू० ३८७१) इत्यवधिकः।

षष्ठाध्याय के द्वितीय पाद की समाप्ति तक उत्तरपद का अधिकार होगा, एवं आदि का अधिकार तो 'प्रकृत्या भगालम्' सूत्र तक होगा।

३८४६ कर्णो वर्णलक्षणात् ६।२।११२।

वर्णवाचिनो लक्षणवाचिनश्च परः कर्णशब्द आद्युदात्तो बहुव्रीहौ। शुक्लकर्णः। शङ्कुकर्णः। कर्णः किम्? श्वेतपादः। वर्णलक्षणात्किम्? शोभनकर्णः।

वर्ण वाचक या लक्षण वाचक से पर स्थित कर्ण शब्द बहुव्रीहि में आद्युदात्त है। शङ्कुकर्णः—शङ्कुः कर्णे यस्य 'सप्तमी विशेषणे' से सप्तम्यन्त का पूर्वनिपात प्राप्त था किन्तु 'गड्वादेः परा सप्तमी' से परनिपात सप्तम्यन्त का हुआ। (द्विगुणाकर्णः में 'कर्णे लक्षणस्य' से दीर्घ हुआ। शङ्कूकर्णः।)

३८४७ सञ्ज्ञौपम्ययोश्च ६।२।११३।

कर्ण आद्युदात्तः। मणिकर्णः। औपम्ये गोकर्णः।

संज्ञा एवं औपम्य में कर्ण शब्द आद्युदात्त है।

३८४८ कण्ठपृष्ठग्रीवाजङ्घं च ६।२।११४।

संज्ञौपम्ययोर्बहुव्रीहौ। शितिकण्ठः। काण्डपृष्ठः। सुग्रीवः। नाडीजङ्घः। औपम्ये। खरकण्ठः। गोपृष्ठः। अश्वग्रीवः। गोजङ्घः।

संज्ञा एवं औपम्य में जो बहुव्रीहि समास उसमें कण्ठ, पृष्ठ, ग्रीवा, जङ्घा, जो उत्तरपद उसका आदि उदात्त होता है।

३८४९ शृङ्गमवस्थायां च ६।२।११५।

शृङ्गशब्दोऽवस्थायां सञ्ज्ञौपम्ययोश्चाद्युदात्तो बहुव्रीहौ। उद्गतशृङ्गः। द्व्यङ्गुलशृङ्गः। अत्र शृङ्गोद्गमनादिकृतो गवादेर्वयोविशेषोऽवस्था। सञ्ज्ञायाम्। शृष्यशृङ्गः। उपमायाम्। मेषशृङ्गः। अवस्थेति किम्? स्थूलशृङ्गः।

बहुव्रीहि समास में अवस्था, संज्ञा, औपम्य में उत्तरपद शृङ्ग आद्युदात्त होता है। उद्गतशृङ्गः। द्व्यङ्गुलशृङ्गः—यहां शृङ्ग के प्रकट होने से या शृङ्ग के परिणाम से अवस्था की प्रतीति जो आदि की होती है अर्थात् वयः गम्यमान होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३८५० नञो जरमरमित्रमृताः ६।२।११६।

नञः परा एते आद्युदात्ता बहुव्रीहौ। न मे जरा अजरम्। अमरम्। अमित्रमर्दय। श्रवो देवेष्वमृतम्। नञः किम्? ब्राह्मणमित्रः। जेति किम्? अशत्रुः।

नञ् से पर जर, मर, मित्र, वे बहुव्रीहि में आद्युदात्त होता है। जर में 'ऋदोरप्' से अप् प्रत्यय। मरणम्=मरः, न मरम् अमरम् निपातन से अप् है। मित्रम् में 'क्त्र' प्रत्यय है अमिचिमदिशसिभ्य-से। मृतम् में क्तप्रत्यय है नपुंसके भावे क्तः। वे शब्द परक पुंल्लिङ्ग से निर्दिष्ट यहां है।

३८५१ सोर्मनसी अलोमोषसी ६।२।११७।

सोः परं लोमोषसी वर्जयित्वा मन्नन्तमसन्तं चाद्युदात्तं स्यात्। 'नञ्सुभ्याम्' (सू ३६०६) इत्यस्यापवादः। सुकर्माणः सुयुजः। स नो वक्षदनिमानः सुब्रह्मा। शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। सुपेशसस्करति। सोः किम्? कृतकर्मा। मनसी किम्? सुराजा। अलोमोषसी किम्। सुलोमा। सूषाः। कपि तु परत्वात् 'कपि पूर्वम्' (सू ३६०७) इति भवति। सुकर्मकः। सुस्रोतस्कः।

बहुव्रीहि में सु से पर लोमन् एवं उषस् से भिन्न मन्नन्त एवं असन्त को आद्युदात्त होता है। यह नञ् सुभ्याम् का बाधक है। सुकर्मकः यहां तो परत्व के कारण 'कपिपूर्वम्' से पूर्वपद का आदि उदात्त होता है।

३८५२ क्रत्वादयश्च ६।२।११८।

सोः परे आद्युदात्ताः स्युः। साम्राज्याय सुक्रतुः। सुप्रतीकः सुहव्यः। सुप्रतूर्विमनेहसम्।

बहुव्रीहि समास में सुसेपर क्रतु आदि शब्द आद्युदात्त होते हैं।

३८५३ आद्युदात्तं द्व्यच् छन्दसि ६।२।११९।

यदाद्युदात्तं द्व्यच् तत्सोरुत्तरं बहुव्रीहावाद्युदात्तम्। अधा स्वश्वाः। सुरथाँ आतिथिग्वे। नित्स्वरेणाश्वरथावाद्युदात्तौ। आद्युदात्तं किम्? या सुबाहुः। द्व्यच् किम्? सुगुरसत्सुहिरण्यः। हिरण्यशब्दस्त्र्यच्।

वेद में सु से पर दो स्वर=अच् युक्त जो आद्युदात्त शब्द उसको बहुव्रीहि में आद्युदात्त होता है।

३८५४ वीरवीर्यौ च ६।२।१२०।

सोः परौ बहुव्रीहौ छन्दस्याद्युदात्तौ। सुवीरेण रयिणा। सुवीर्यस्य गोमतः। वीर्यशब्दो यत्प्रत्ययान्तः। तत्र 'यतोऽनावः' (सू ३७०१) इत्याद्युदात्तत्वं नेति वीर्यग्रहणं ज्ञापकम्। तत्र हि सति पूर्वेणैव सिद्धं स्यात्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुव्रीहि में सु से पर वीर एवं वीर्य्य शब्द को आदि उदात्त होता है वेद में वीर्य शब्द यत् प्रत्ययान्त यहां है। यतोऽनावः इस सूत्र से आद्युदात्त स्वर नहीं होता है इस ज्ञापनार्थ सूत्र में वीर्य ग्रहण है। अन्यथा पूर्व से सिद्ध होने पर यह व्यर्थ होगा।

३८५५ कूलतीरतूलमूलशालाऽक्षसममव्ययीभावे ६।२।१२१।

उपकूलम्। उपतीरम्। उपतूलम्। उपमूलम्। उपशालम्। उपाक्षम्। सुषमम्। निःषमम्। तिष्ठद्गुप्रभृतिष्वेते। कूलादिग्रहणं किम्? उपकुम्भम्। अव्ययीभावे किम्? परमकूलम्।

अव्ययीभाव में उत्तरपद भूत कूल, तीर, तूल, मूल, शाल, अक्ष एवं सम इनको आद्युदात्त होता है। 'तिष्ठद्गु' में वे शब्द पठित है।

३८५६ कंसमन्थशूर्पपाय्यकाण्डं द्विगौ ६।२।१२२।

द्विकंसः। द्विमन्थः। द्विशूर्पः। द्विपाय्यम्। द्विकाण्डम्। द्विगौ किम्? परमकंसः।

द्विगु समास में उत्तरपद भूत कंस, मन्थ, शूर्प, पाय्य, काण्ड, इनको आद्युदात्त होता है।

३८५७ तत्पुरुषे शालायां नपुंसके ६।२।१२३।

शालाशब्दान्ते तत्पुरुषे नपुंसकलिङ्गे उत्तरपदमाद्युदात्तम्। ब्राह्मणशालम्। तत्पुरुषे किम्? दृढशालं ब्राह्मणकुलम्। शालायां किम्? ब्राह्मणसेनम्। नपुंसके किम्? ब्राह्मणशाला।

शाला शब्द है अन्त में जिस को ऐसे नपुंसक लिङ्ग युक्त तत्पुरुष समास में उत्तरपद आद्युदात्त होता है। ब्राह्मणशालम्।

३८५८ कन्था च ६।२।१२४।

तत्पुरुषे नपुंसकलिङ्गे कन्थाशब्द उत्तरपदमाद्युदात्तम्। आह्वरकन्थम्। नपुंसके किम्? दाक्षिकन्था।

कन्था शब्दान्त नपुंसक लिङ्ग युक्त तत्पुरुष समास में उत्तरपद आद्युदात्त है।

३८५९ आदिश्चिहणादीनाम् ६।२।१२५।

कन्थान्ते तत्पुरुषे नपुंसकलिङ्गे चिहणादीनामादिरुदात्तः। चिहणकन्थम्। मन्दुरकन्थम्। आदिरिति वर्तमाने पुनर्ग्रहणं पूर्वपदस्याद्युदात्तार्थम्।

कन्था शब्दान्त नपुंसक लिङ्ग से युक्त तत्पुरुष में चिहणादि शब्द आद्युदात्त होते हैं। पूर्व से आदिका सम्बन्ध आता पुनः आदि ग्रहण से पूर्वपद को आद्युदात्त होता है एतदर्थ है।

३८६० चेलखेटकटुककाण्डं गर्हायाम् ६।२।१२६।

चेलादीन्युत्तरपदान्याद्युदात्तानि। पुत्रचेलम्। नगरखेटम्। दधिकटुकम्। प्रजाकाण्डम्। चेलादिसादृश्येन पुत्रादीनां गर्हा, व्याघ्रादित्वात्समासः। गर्हायां किम्? परमचेलम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निन्दा गम्य रहते तत्पुरुष में चेल, खेटे, कटुक, काण्ड का आदि उदात्त होता है। पुत्र-चेलम् आदि। चेलादि का सादृश्य में पुत्रादि की निन्दा होती है, व्याघ्रादित्व के कारण यहां समास हुआ है। निन्दा न होने पर इसकी अप्रवृत्ति यथा–परमचेलम्।

३८६१ चीरमुपमानम् ६।२।१२७।

वस्त्रं चीरमिव वस्त्रचीरम्। कम्बलचीरम्। उपमानं किम्? परमचीरम्।

तत्पुरुष समास में उपमानवाचक उत्तरपद भूत चीर शब्द का आदि उदात्त होता है।

३८६२ पललसूपशाकं मिश्रे ६।२।१२८।

घृतपललम्। घृतसूपः। घृतशाकम्। 'भक्ष्येण मिश्रीकरणम्' (सू. ६६७) इति समासः। मिश्रे किम्? परमपललम्।

मिश्रवाची तत्पुरुष में उत्तरपद भूत पलल, सूप, शाक, इनका आदि वर्ण उदात्त होता है।

३८६३ कूलसूदस्थलकर्षाः सञ्ज्ञायाम् ६।२।१२९।

आद्युदात्तास्तत्पुरुषे। दाक्षिकूलम्। शाण्डिसूदम्। दाण्डायनस्थलम्। दाक्षिकर्षः। ग्रामसंज्ञा एताः। संज्ञायां किम्? परमकूलम्।

तत्पुरुष में संज्ञा में उत्तरपद कूल, सूद, स्थल, कर्ष का आदि उदात्त होता है।

३८६४ अकर्मधारये राज्यम् ६।२।१३०।

कर्मधारयवर्जिते तत्पुरुषे राज्यमुत्तरपदमाद्युदात्तम्। ब्राह्मणराज्यम्। अकेति किम्? परमराज्यम्। चेलराज्यादिस्वरादव्ययस्वरः पूर्वविप्रतिषेधेन (वा ३८४७) कुचेलम्। कुराज्यम्।

कर्मधारय भिन्न तत्पुरुष में उत्तरपद में स्थित राज्य आदि उदात्त है। चेलराज्यादि स्वर को बाधकर पूर्व विप्रतिषेध से अव्यय स्वर होता है। यथा—कुचेलम्। कुराज्यम्।

३८६५ वर्ग्यादयश्च ६।२।१३१।

अर्जुनवर्ग्यः। वासुदेवपक्ष्यः। अकर्मधारय इत्येव। परमवर्ग्यः। वर्गादिर्दिगाद्यन्तर्गणः।

तत्पुरुष में उत्तरपद वर्ग्य आदि आद्युदात्त होते हैं। यहां भी कर्मधारय भिन्न तत्पुरुष गृहीत है। दिगादि का अन्तर्गण वर्ग्यादि है।

३८६६ पुत्रः पुम्भ्यः ६।२।१३२।

पुम्शब्देभ्यः परः पुत्रशब्दः आद्युदात्तस्तत्पुरुषे। दाशकिपुत्रः। माहिषपुत्रः। पुत्रः किम्? कौनटिमातुलः। पुम्भ्यः किम्? दाक्षीपुत्रः।

तत्पुरुष में पुम् से पर पुत्र का आदि उदात्त होता है।

३८६७ नाचार्यराजर्त्विक्संयुक्तज्ञात्याख्येभ्यः ६।२।१३३।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एभ्यः पुत्रो नाद्युदात्तः। आख्याग्रहणात्पर्यायाणां, तद्विशेषाणां च ग्रहणम्। आचार्यपुत्रः। उपाध्यायपुत्रः। शाकटायनपुत्रः। राजपुत्रः। ईश्वरपुत्रः। नन्दपुत्रः। ऋत्विक्पुत्रः। याजकपुत्रः। होतुःपुत्रः। संयुक्ताः सम्बन्धिनः। श्यालपुत्रः। ज्ञातयो मातापितृसम्बन्धेन बान्धवाः। ज्ञातिपुत्रः। भ्रातुष्पुत्रः।

तत्पुरुष में आचार्य, राज, ऋत्विक्, संयुक्त एवं ज्ञातिवाचक से परस्थित पुत्र शब्द आद्युदात्त नहीं होता है। सूत्रस्थ आख्या ग्रहण से पर्य्यायवाचक एवं तद् विशेषवाचक का ग्रहण होता है। संयुक्त से सम्बन्धी का ग्रहण है यहां—श्यालपुत्रः। मातृ या पितृ सम्बन्ध से बन्धु जनों का ही ग्रहण है। अन्य का नहीं। ज्ञातिपुत्रः। भ्रातृष्पुत्रः। करस्कादित्व से षत्व हुआ।

३८६८ चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः ६।२।१३४।

एतानि प्राणिभिन्नषष्ठ्यन्तात्पराण्याद्युदात्तानि तत्पुरुषे। मुद्गचूर्णम्। अप्रेति किम्? मत्स्यचूर्णम्।

तत्पुरुष समास में अप्राणिवाचक षष्ठ्यन्त पद के उत्तरस्थित चूर्णादि का आदि उदात्त होता है। अप्राणिवाचक नहीं वहां इसकी अप्रवृत्ति है।

३८६९ षट् च काण्डादीनि ६।२।१३५।

अप्राणिषष्ठ्या आद्युदात्तानि। दर्भकाण्डम्। दर्भचीरम्। तिलपललम्। मुद्गसूपः। मूलकशाकम्। नदीकूलम्। षट् किम्? राजसूदः। अप्रेति किम्? दत्तकाण्डम।

तत्पुरुष में अप्राणिवाचक षष्ठ्यन्त से पर काण्डादि षट् शब्दों का आदि उदात्त होता है।

३८७० कुण्डं वनम् ६।२।१३६।

कुण्डमाद्युदात्तं वनवाचिनि तत्पुरुषे। दर्भकुण्डम्। कुण्डशब्दोऽत्र सादृश्ये। बने किम्? मृत्कुण्डम्।

वनवाचक तत्पुरुष में कुण्ड आद्युदात्त होता है।

३८७१ प्रकृत्या भगालम् ६।२।१३७।

भगालवाच्युत्तरपदं तत्पुरुषे प्रकृत्या। कुम्भीभगालम्। कुम्भीनदालम्। कुम्भीपालम्। मध्योदात्ता एते। प्रकृत्येत्यधिकृतम्। 'अन्तः' (सू ३८७७) इति यावत्?

तत्पुरुष में भगाल = नरकपालक का प्रकृति स्वर होता है। कुम्भीभगालम्, यहां मध्योदात्त है। अन्तः तक 'प्रकृत्या' का अधिकार है।

३८७२ शितेर्नित्याऽबह्वच्कबहुव्रीहावभसत् ६।२।१३८।

शितेः परं नित्याऽबह्वच्कं प्रकृत्या। शितिपादः। शित्यंसः। पादशब्दो वृषादित्वादाद्युदात्तः। अंसशब्दः। प्रत्ययस्य नित्त्वात्। शितेः किम्? दर्शनीय-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पादः। अभसत्किम्? शितिभसत्। शितिराद्युदात्तः। पूर्वपदप्रकृतिस्वरापवादोऽयं योगः।

शिति से पर नित्य अवह्रच्क शब्द प्रकृति स्वर युक्त ही रहता है। शितिपादः—पाद शब्द वृषादित्व प्रयुक्त आद्युदात्त है। अंस शब्द आद्युदात्त नित् प्रयुक्त है। दर्शनीयपादः यहां इसकी अप्रवृत्ति है। अभसत् नहीं वहां इसकी प्रवृत्ति से यहां अप्रवृत्ति यथा—शितिभसत् शिति आद्युदात्त है। यह सूत्र पूर्वपद प्रकृति स्वर का अपवाद है।

३८७३ गतिकारकोपपदात्कृत् ६।२।१३९।

एभ्यः कृदन्तं प्रकृतिस्वरं स्यात्तत्पुरुषे। प्रकारकः। प्रहरणम्। शोणा धृष्णू नृवाहसा। इध्मप्रव्रश्चनः। उपपदात्। उच्चैःकारम्। ईषत्करः। गतीति किम्? देवस्य कारकः। शेषलक्षणा षष्ठी। कृद्ग्रहणं स्पष्टार्थम्। प्रपचतितरामित्यत्र तरबाद्यन्तेन समासे कृते आम्? तत्र सतिशिष्टत्वादाम्स्वरो भवतीत्येके। 'प्रपचतिदेश्यार्थं तु कृद्ग्रहणमि'त्यन्ये।

गति, कारक, एवं उपपद से पर कृदन्त तदादि प्रकृतिस्वर होता है तत्पुरुष में। प्रकारकः। 'कुगति' से समास हुआ। 'लिति' से प्रत्यय के पूर्व आद्युदात्त होता है। नृवाहसा—नृन् वहति—वस् से णित् की अनुवृत्तियुक्त असुन् प्रत्यय उपधावृद्धि नित् स्वर से आद्युदात्त होता है। इध्मप्रव्रश्चनः। प्रवृश्च्यते येन करण में ल्युट् कर्मषष्ठयन्त से इध्म का समास, यहां गति प्रयुक्त कृत् स्वर करके कारक प्रयुक्त कृत्स्वर हुआ। उपपद का उदाहरण—उच्चैः कारम् 'अव्यये यथाभिप्रेत' इति णमुल्। यहां उच्चैः उपपद है। ईषत्करः 'ईषद्दुःसुषु' से खल् उभयत्र लित्स्वर हुआ। देवस्य कारकः यहां गति आदि का अभाव से इस सूत्र की अप्रवृत्ति हुई। शेषे षष्ठी यहां है। कर्मलक्षणा षष्ठी नहीं है। वह होती तो देवदत्त कारक होता। 'तृजकाभ्याम्' से यहां समास का निषेध होता।

विमर्श—सूत्र में कृत् ग्रहण क्यों किया? निर्गतः कौशाम्ब्या 'निष्कौशाम्बिः' यहां न हो जाय यह प्रयोजन तो नहीं है, "यत्क्रियायुक्ताः प्रादयस्तम्प्रत्येव गत्युपसर्गसंज्ञा भवन्ति" यह नियम है, कौशाम्बी शब्दार्थ के प्रति क्रियायोग नहीं है, कारक क्रिया योग में ही सम्भव है, उपपद भी धातु के अधिकार में सप्तम्यन्त निर्दिष्ट एवं प्रत्यय निमित्त ही होता है। गत्यादि से क्रिया का आक्षेप एवं क्रिया वाचक धातु ही है, धातु से द्विविध प्रत्यय होते हैं, तिङ् एवं कृत्, तिङन्त से समास सम्भव नहीं है अतः कृदन्त का ही ग्रहण यहां सम्भव है। 'अनुव्यचलत्' यह गतित्व निबन्धन समास नहीं है, किन्तु सुबन्त का सह सुपा यहां योग विभाग मूलक समास है। इस लिए इस सूत्र में कृद्ग्रहण का कोई भी प्रयोजन नहीं है, अतः मूल ग्रन्थ में लिखा कि कृद्ग्रहणं विस्पष्टार्थम् इति—पूर्वोक्त क्रम से जो वक्ता कहने में असमर्थ है उसके प्रति विस्पष्टार्थ वह किया है।

यदि विस्पष्टार्थ भी किया गया कृत् ग्रहण से आमन्त में नहीं प्राप्त है यथा—प्रपचतितराम् इति। वहां इस परिस्थिति में समासस्वर को बाधकर अव्यय स्वर ही होगा, इस शङ्का निरासार्थ मूलकार ने कहा कि यहां तरबाद्यन्त के साथ समास विधान करने के पश्चात् आम् की प्रवृत्ति है। वहां सतिशिष्ट स्वर आम् का ही स्वर शेष रहता है 'इत्येके' एक आचार्य का यह मत है कि कृद्ग्रहण स्पष्टार्थक है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्य आचार्यों का मत है कि 'प्रपचतिदेशीयः, प्रपचतिकल्पम्, प्रपचतिरूपम्' इत्यादि में कृद्ग्रहण का प्रयोजन है।

यह आशय है कि—विस्पष्टार्थ कृद्ग्रहण नहीं है, किन्तु 'प्रपचतिदेशीयः' इत्यादि में जहाँ सतिशिष्ट स्वरान्तर नहीं है वहाँ भी यह स्वर इस सूत्र से न हो जाय अपि तु अन्यय पूर्वपदस्वर ही हो जाय यह कृद्ग्रहण का प्रयोजन है।

यहाँ हरदत्ताचार्य यह कहते हैं कि—'प्रपचतितराम्' आदि में तरबन्त के साथ समास के बाद जायमान आम् होता हुआ प्रत्ययग्रहण परिभाषा से 'पचतितर' ही धान्त तदादि है, अतः उसीसे वह आम् होगा वहां क्या दोष है?, उपसर्ग विशिष्ट धान्त का एक पदाभाव से "आम् प्रपचतितरां देवदत्त" इत्यादि प्रयोगों में 'आम एकान्तरम्' यह विधि न होगी एवं प्रशब्द को शेष निघात नहीं होगा, क्योंकि वह भिन्न पद है। अतः प्रशब्द का आमन्त से समास स्वीकार करना ही चाहिए, न तरबाद्यन्त से, वहां समासत्वनिबन्धन समुदाय की प्रातिपदिकसंज्ञा में विभक्ति में एक पद होता है स्वर में दोष-प्रसक्ति से कृद्ग्रहण भी त्याग करना ही चाहिए आदि विषय आकरग्रन्थों में वर्णित है। प्रपचतिदेश्यादि की क्या गति इस पक्ष में होगी उसको वयं न जानीमः=हम लोग नहीं जानते। यह विमर्श में वर्णित विषय अतीव महत्त्व का है।

३८७४ उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ६।२।१४०।

एषु पूर्वोत्तरपदे युगपत्प्रकृत्या। वन॒स्पति॒ वन॒ आ। बृह॒स्पति॒ यः। बृह-च्छब्दोऽत्राद्युदात्तो निपात्यते। हर्ष्य॒ा शच॒ीपति॒म्। शार्ङ्गरवादित्वादाद्युदात्तः शचीशब्दः। शचीभिर्न इति दर्शनात्। तनू॒नपा॑दुच्यते। नरा॒शंस॑ वा॒जिन॑म्। निपातनाद्दीर्घः। शुन॒:शेप॑म्।

तत्पुरुष समास में एक समय पूर्वपद एवं उत्तरपद वनस्पति आदि का प्रकृतिस्वर होता है। 'नव् विषयस्य' से 'वन' शब्द आद्युदात्त है। बृहत् शब्द भी आद्युदात्त निपातन से है। शची भी आद्युदात्त है। 'नराशंसम्' में निपातन से दीर्घ हुआ। शुन इव शेपो यस्य बहुव्रीहि समास एवं षष्ठी का अलुक् 'शेपपुच्छलाङ्गूलेषु' से हुआ। शुनः शेपम्। तनू ऊप्रत्ययान्त अन्तोदात्त है। नपातयति नपात् निपातित है, नञ् का अलुक् है। नरा एनं शंसन्ति नृ+अप् कर्म में 'ऋदोरप्' एवं शंस से कर्म में घञ् है। दोनों आद्युदात्त है। 'अन्येषाम्' से दीर्घ है।

३८७५ देवताद्वन्द्वे च ६।२।१४१।

उभे युगपत्प्रकृत्या स्तः। आ य इन्द्रा॒वरु॑णौ। इन्द्रा॒बृह॒स्पती॑ वृ॒यम्। देवता किम्? प्लक्षन्यग्रोधौ। द्वन्द्वे किम्? अग्निष्टोमः।

देवता वाचक के द्वन्द्व में पूर्वपद एवं उत्तरपद एक समय में प्रकृतिस्वर युक्त है इन्द्र शब्द रगन्त आद्युदात्त है, वरुण भी आद्युदात्त है। देवताद्वन्द्वे से इन्द्र को आनङ्। बृहस्पत्यादि-स्वप्रयुक्त बृहस्पति आद्युदात्त है। अग्निष्टोमः। 'अग्ने स्तुत्सोम' से षत्व है एवं ष्टुत्व भी।

३८७६ नोत्तरपदेऽनुदात्तादावपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु ६।२।१४२।

पृथिव्यादिवर्जितेऽनुदात्तादावुत्तरपदे प्रागुक्तं न। इन्द्रा॒ग्निभ्यां॑ कं वृषणः। अपृथिव्यादौ किम्? द्यावा॑पृथि॒वी ज॒नय॑न्। आद्युदात्तो द्यावा निपात्यते। 'पृथिवीत्यन्तोदात्तः'। सोमारुद्रौ। 'रोदेर्णिलुक् च' इति रगन्तो रुद्रशब्दः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रापूषणौ। 'श्वन्नुक्षन्पूषन्' इति पूषा अन्तोदात्तो निपात्यते। शुक्रामन्थिनौ। मन्थिन्निन्नन्तत्वादन्तोदात्तः। उत्तरपदग्रहणमनुदात्तादावित्युत्तरपदविशेषणं यथा स्यात्; द्वन्द्वविशेषणं मा भूत्। अनुदात्तादाविति विधिप्रतिषेधयोर्विषयविभागार्थम्।

देवता वाचक द्वन्द्व में पृथ्वी, रुद्र, पूष, मन्थि इनसे भिन्न अनुदात्तादि उत्तरपद में रहते प्रागुक्त कार्य नहीं होता है। 'इन्द्राग्निभ्याम्' अग्नि शब्द अन्तोदात्त है। द्यावापृथिवी अन्तोदात्त है। मन् प्रत्ययान्त 'सोम' आद्युदात्त है। द्यावा शब्द आद्युदात्त है। उत्तरपद का सूत्र में जो ग्रहण है वह विशेष्य है उसका अनुदात्तादि विशेषण है। द्वन्द्व का विशेषण वह अनुदात्तादि नहीं है एतदर्थ उत्तरपद ग्रहण है। अनुदात्तादि विधि एवं प्रतिषेध दोनों का विषय विभागार्थ है।

३८७७ अन्तः ६।२।१४३।

अधिकारोऽयम्।

'अन्तः' यह अधिकार सूत्र है। अन्तोदात्तस्वर उत्तर सूत्रों से होगा।

३८७८ थाऽथघञ्क्ताजवित्रकाणाम् ६।२।१४४।

थ अथ घञ् क्त अच् अप् इत्र क एतदन्तानां गतिकारकोपपदात्परेषामन्त उदात्तः। प्रभृथस्याथोः। आवसथः। घञ्, प्रभेदः। क्तः। धृर्ता वृक्षी पुरुष्टुतः। पुरुषु बहुप्रदेशेषु स्तुत इति विग्रहः। अच्। प्रक्षयः। अप्। प्रलवः। इत्र। प्रलवित्रम्। क। गोवृषः। मूलविभुजादित्वात्कः। गतिकारकोपपदादित्येव, सुस्तुतं भवता।

गति, कारक एवं उपपद से पर थ, अथ, घञ्, क्त, अच्, अप्, इत्र, क वे हैं अन्त में जिसके ऐसे जो शब्द उनका अन्त उदात्त होता है।

३८७९ सूपमानात्क्तः ६।२।१४५।

सोरुपमानाच्च परं क्तान्तमन्तोदात्तम्। ऋतस्य योनौ सुकृतस्य। शशप्लुतः।

सु एवं उपमान वाचक से उत्तर क्तान्ततदादि का अन्त उदात्त होता है।

३८८० सञ्ज्ञायामनाचितादीनाम् ६।२।१४६।

गतिकारकोपपदात् क्तान्तमन्तोदात्तमाचितादीन्वर्जयित्वा। उपहूतः शाकल्यः। परिजग्धः कौण्डिन्यः। अनेति किम्? आचितम्। आस्थापितम्।

गति, कारक, उपपद के उत्तर क्तान्तपद अन्तोदात्त होता है किन्तु आचितादि को छोड़कर।

३८८१ प्रवृद्धादीनां च ६।२।१४७।

क्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तम्। प्रवृद्धः। प्रथुतः। असञ्ज्ञार्थोऽयमारम्भः। आकृतिगणोऽयम्।

प्रवृद्धादि शब्दों के क्तप्रत्ययान्त का अन्तवर्ण उदात्त होता है। प्रवृद्धादि आकृतिगण है। असंज्ञार्थ यह सूत्र है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३८८२ कारकादृत्तश्रुतयोरेवाशिषि ६।२।१४८।

सञ्ज्ञायामन्त उदात्तः। देवदत्तः। विष्णुश्रुतः। कारकात्किम्? सम्भूतो रामायणः। दृत्तश्रुतयोः किम्? देवपालितः। अस्मान्नियमादत्र 'सञ्ज्ञायामना' (सू ३८८०) इति न। 'तृतीया कर्मणि' (सू ३७८२) इति तु भवति। एव किम्? कारकावधारणं यथा स्यात् दत्तश्रुतावधारणं मा भूत्। अकारकादपि दत्तश्रुतयोरन्त उदात्तो भवति। संश्रुतः। आशिषि किम्? देवैः खाता देवखाता। आशिष्येवेत्येवमत्रेष्टो नियमः। तेनाऽनाहतो नदति देवदत्त इत्यत्र न, शङ्खविशेषस्य सञ्ज्ञेयम्। 'तृतीया कर्मणि' (सू ३७८२) इति पूर्वपद-प्रकृतिस्वरत्वमेव भवति।

तत्पुरुष में आशीर्वाद अर्थ गम्य रहने पर संज्ञा में कारक से पर क्तान्त दत्त एवं श्रुत का ही अन्त उदात्त होता है। 'संज्ञायामनाचितादीनाम्' से विहित अन्तोदात्तत्व का यह नियमन करता है। 'देवा एनं देयासुः' इत्येवं प्रार्थितैर्देवैर्दत्तो देवदत्तः, आशिषि की अनुवृत्ति युक्त 'क्तिच् क्तौ च संज्ञायाम्' से क्तप्रत्यय दा को 'दो ददघोः' से ददादेश हुआ। इसी प्रकार विष्णुः एनं श्रूयात् इति प्रार्थिते विष्णुना श्रुतः विष्णुश्रुतः। कारक से परत्वाभाव में इसकी अप्रवृत्ति है—सम्भूतो रामायणः। 'सम्भूतं रामायणम्' यह भी पाठान्तर है। रामायण का नाम सम्भूतम् है। 'संज्ञायाम्' से क्तप्रत्यय है।

सूत्र में 'कारकात्' न कहने पर 'गतिकारकोपपदात्' इन तीन के अधिकार से जिस प्रकार कारक से नियम होता है तथैव गति से भी होगा तब 'सम्भूतं रामायणम्' यहां अनाशिषि सावकाश 'संज्ञायामना' वह आशीर्वाद में नहीं होगा, किन्तु 'गतिरनन्तरः' यही होगा दत्तश्रुत के अभाव में इसकी अप्रवृत्ति है, यथा देवपालितः। इस नियम से यहां 'संज्ञायामन' की यहां अप्रवृत्ति है, किन्तु 'तृतीया कर्मणि' की प्रवृत्ति तो होती ही है। "सिद्धे कार्ये आरभ्यमाणो विधिर्नियमाय कल्प्यते" से एवकार के सूत्र में विना ही एवकारार्थ अन्ययोग व्यवच्छेदरूप अर्थ की प्रतीति यहां होगी पुनः एवपद घटित सूत्र क्यों किया?, एव के अभाव में विपरीत नियम की भी प्रसक्ति की सम्भावना है—"कारकादेव दत्तश्रुतयोरिदं प्रवर्तते" इस नियम से अकारकात् दत्तश्रुत को इष्टस्वर न होगा जो स्वर इष्ट है वह होगा तब एवघटित सूत्र से नियम हो विपरीत नियम न हो अतः एव है। अन्यथा कारक का नियन्त्रण न होने से देवपालितः यहां अन्तोदात्त होगा। इन सब भावों को हृदय में रखकर मूलकार कहते हैं कि कारक का अवधारण हो जाय, दत्तश्रुत का अवधारण न हो अतः 'एव' पद सार्थक है। अकारक से भी दत्त एवं श्रुत अन्तोदात्त होता है। यथा संश्रुतः। देवैः खाता 'देवखाता' यहां आशीर्वाद अर्थ नहीं है। अतः 'तृतीया कर्मणि' से पूर्वपद प्रकृतिस्वर हुआ। आशीर्वाद अर्थ में ही यह हो यही नियम अभिप्रेत है, इससे 'अनाहतो नदति देवदत्तः' इस में यह स्वर अप्रवृत्त हुआ। शङ्ख का नाम यहां देवदत्त है। तृतीया कर्मणि' से पूर्वपद प्रकृतिस्वर ही यहां होता है।

३८८३ इत्थम्भूतेन कृतमिति च ६।२।१४९।

'इत्थम्भूतेन कृतमि'-त्येतस्मिन्नर्थे यः समासस्तत्र क्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं स्यात्। सुप्तप्रलपितम्। प्रमत्तगीतम्। कृतमिति क्रियासामान्ये करोति-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

र्नाऽभूतप्रादुर्भाव एव। तेन प्रलपिताद्यपि कृतं भवति। 'तृतीया कर्मणि' (सू० ३७८२) इत्यस्यापवादः।

'इत्थं भूतेन कृतम्' इस अर्थ में जो समास होता है उसके विषय में क्तान्तपद का अन्त उदात्त होता है। 'कृतम्' का यहां क्रिया सामान्य अर्थ है। यहां करोति उत्पत्त्यनुकूल व्यापारार्थक नहीं है। अतः प्रलपित आदि भी कृत पद बोध्य हुए। यह 'तृतीया कर्मणि' का बाधक है।

३८८४ अनो भावकर्मवचनः ६।२।१५०।

कारकात्परमनप्रत्ययान्तं भाववचनं, कर्मवचनं चान्तोदात्तम्। पयःपानं सुखम्। राजभोजनाः शालयः। अनः किम्? हस्ताऽऽदायः। भेति किम्? दन्तधावनम्। करणे ल्युट्। कारकात्किम्? निदर्शनम्।

कारक के उत्तर तत्पुरुष में भाववचन एवं कर्मवचन अनप्रत्ययान्त शब्द का अन्त उदात्त होता है। 'पयः पानं सुखम्' आदि। यह 'गतिकारकोपपदात्' का अपवाद है। 'कर्मणि च येन' से कर्म उपपद रहते भाव में पा से ल्युट् है। उपपद समास है। राजभोजनाः में कर्म में 'कृत्यल्युटोः' से ल्युट् है कर्म में षष्ठी समास है। दन्तधावनम् में करण में ल्युट् है अतः इसकी अप्रवृत्ति है। निदर्शनम् यहां कारक परत्व नहीं है।

३८८५ मन्क्तिन्व्याख्यानशयनाऽऽसनस्थानयाजकादि-क्रीताः ६।२।१५१।

कारकात्पराणि एतान्युत्तरपदान्यन्तोदात्तानि तत्पुरुषे। कृत्स्वराऽपवादः। रथवर्त्म। पाणिनिकृतिः। छन्दोव्याख्यानम्। राजशयनम्। राजाऽऽसनम्। अश्वस्थानम्। ब्राह्मणयाजकः। गोक्रीतः। कारकात्किम्? प्रभूतौ सङ्गतिम्। अत्र 'तादौ च निति' (सू ३७८४) इति स्वरः।

तत्पुरुष में कारक के उत्तर मन एवं क्तिन् प्रत्ययान्त शब्द व्याख्यान, शयन, आसन, स्थान, याचकादिगण, क्रीत इनका अन्त वर्ण उदात्तस्वर युक्त होता है। कृत्स्वरापवाद यह है।

३८८६ सप्तम्याः पुण्यम् ६।२।१५२।

अन्तोदात्तम्। अध्ययनपुण्यम्। तत्पुरुषे तुल्यार्थेति प्राप्तम्। सप्तम्याः किम्? वेदेन पुण्यं वेदपुण्यम्।

सप्तमी तत्पुरुष में पुण्य शब्द अन्तोदात्त होता है। अध्ययने पुण्यम् यहां 'सप्तमी' योग विभाग से समास है। वेदेन पुण्यम् वेदपुण्यम् यहां इसकी अप्रवृत्ति है।

३८८७ ऊनाऽर्थकलहं तृतीयायाः ६।२।१५३।

माषोनम्। माषविकलम्। वाक्कलहः। तृतीयापूर्वपदप्रकृतिस्वरापवादोऽयम्। अः केचिदर्थेति स्वरूपग्रहणमिच्छन्ति। धान्यार्थः। ऊनशब्देन त्वर्थनिर्देशाऽर्थेन तदर्थानां ग्रहणमिति प्रतिपदोक्तत्वादेव सिद्धे तृतीयाग्रहणं स्पष्टार्थम्।

तृतीया तत्पुरुष में अनार्थक एवं कलह इनका अन्त उदात्त होता है। तृतीया पूर्वपद प्रकृति-स्वर का यह बाधक है। यहां कोई 'अर्थ' को स्वतन्त्र मान कर वह अर्थ स्वरूप मात्र का प्रत्यायक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है ऐसी इच्छा करते हैं, उस मत में धान्यार्थः। ऊनशब्द द्वारा अर्थ निर्देश के कारण तदर्थ का ही ग्रहण होगा, प्रतिपदोक्त समास यहां गृहीत होता है तब तृतीया ग्रहण व्यर्थ है।

३८८८ मिश्रं चाऽनुपसर्गमसन्धौ ६।२।१५४।

पणबन्धेनैकार्थ्यं सन्धिः। तिलमिश्राः। सर्पिर्मिश्राः। मिश्रं किम्। गुडधानाः। अनुपसर्गं किम्? तिलसम्मिश्राः। मिश्रग्रहणे सोपसर्गग्रहणस्येदमेव ज्ञापकम्। असन्धौ किम्? ब्राह्मणमिश्रो राजा। ब्राह्मणैः सह संहित ऐकार्थ्यमापन्नः।

तृतीयान्त के उत्तर पणबन्ध द्वारा सन्धि = एकार्थ न होने पर अनुपसर्ग से उत्तर का अन्त वर्ण उदात्त होता है। तुम मेरा यह कार्य करोगे तो मैं भी आपका वह कार्य करूंगा यह है पणबन्ध। एक प्रकार की यह सन्धि कही जायगी। "यदि मे भगवान् इदं कुर्यात् अहमपि भवतः करिष्यामि" इति परिभाषणम् = पणबन्धः। तिलमिश्राः 'पूर्वसदृशसमोनार्थै' इति समास है। 'गुडधानाः' 'भक्ष्येण मिश्रीकरणम्' से समास है। तिलसंमिश्राः। मिश्र को विधीयमान संमिश्र को प्राप्त ही नहीं एवं समास विधायक सूत्र तृतीयान्त का सुबन्त मिश्र के साथ ही समास करता है; संमिश्र के साथ समास भी अप्राप्त ही है। मिश्र ग्रहण से केवल एवं उपसर्ग विशिष्ट का भी ग्रहण है। सोपसर्गक मिश्र ग्रहण में इस सूत्रस्थ अनुपसर्ग ग्रहण ही ज्ञापक है। अन्यथा वह व्यर्थ होगा। सन्धि द्वारा ब्राह्मणों के साथ मिला हुआ राज में इसकी अप्रवृत्ति हुई— ब्राह्मणमिश्रो राजा।

३८८९ नञो गुणप्रतिषेधे सम्पाद्यर्हहिताऽलमर्थास्तद्धिताः ६।२।१५५।

सम्पाद्यर्थतद्धितान्ता नञो गुणप्रतिषेधे वर्तमानात्परेऽन्तोदात्ताः। कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि कार्णवेष्टकिकम्। न कार्णवेष्टकिकमकार्णवेष्टकिकम्। छेदमर्हति छैदिकः। न छैदिकोऽच्छैदिकः। न वत्सेभ्यो हितोऽवत्सीयः। न सन्तापाय प्रभवति असान्तापिकः। नञः किम्? गर्दभरथमर्हति गार्दभरथिकः। विगार्दभरथिकः। गुणप्रतिषेधे किम्? गार्दभरथिकादन्योऽगार्दभरथिकः। गुणो हि तद्धितार्थे प्रवृत्तिनिमित्तं सम्पादित्वाद्युच्यते। तत्प्रतिषेधो यत्रोच्यते तत्राऽयं विधिः। कर्णवेष्टकाभ्यां न सम्पादि मुखमिति। सम्पेति किम्? पाणिनीयमधीते पाणिनीयः। न पाणिनीयः अपाणिनीयः। तद्धिताः किम्? वोढुमर्हति वोढा। न वोढाऽवोढा।

संपादिन्, अर्ह, हित, एवम् अलमर्थ में विद्यमान जो तद्धित प्रत्ययान्त शब्द वे गुणप्रतिषेधार्थ में विद्यमान जो नञ् उससे उत्तर होने पर उसका अन्त उदात्त होता है। सम्पादिन् का अर्थ सम्पादन है। अर्ह = योग्यता में हित प्राग्वतेष्ठञ्-कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि-'कार्णवेष्टकिकम्' मुखम्। उसका नञ् तत्पुरुष करना। छैदिकः—'छेदादिभ्यो नित्यम्' से ठक्। वत्स के लिए हित जो दोहन क्रियाकर्ता वत्सीयः तस्मै दितम् से छप्रत्यय। 'तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः' ठञ् प्रत्यय। सान्तापिकः। इन सब का नञ् तत्पुरुष समास कर इस मूल की प्रवृत्ति हुई। नञ् परत्व से रहित में अव्यय पूर्वपद प्रकृति स्वर है। गुणप्रतिषेध न होने पर गार्दभरथिका-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दन्यः = अगार्दभरथिकः। यहां इसकी अप्रवृत्ति हुई। सम्पादित्व आदि तद्धितार्थ में प्रवृत्ति निमित्त गुण से कहा गया है, जहां गुण निषेध हो वहां इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है, द्रव्य प्रतिषेध में नहीं। संपादि अर्थ का अप्रतीति में इसकी अप्रवृत्ति है—यथा अपाणिनीयः। 'अवोढा' में तद्धितान्त नहीं है।

३८९० ययतोश्चाऽतदर्थे ६।२।१५६।

ययतौ यौ तद्धितौ तदन्तस्योत्तरपदस्य नञो गुणप्रतिषेधविषयात्परस्यान्त उदात्तः स्यात्। पाशानां समूहः पाश्या। न पाश्या अपाश्या। अदन्त्यम्। अतदर्थे किम्? अपाद्यम्। तद्धितः किम्? अदेयम्। गुणप्रतिषेधे किम्? दन्त्यादन्यददन्त्यम्। 'तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्ये'ति। नेह। अवामदेव्यम्।

य एवं यत् तदन्त जो तदादि उत्तरपद नञ् से पर रहे तब अन्तोदात्त होता है किन्तु य एवं यत् तदर्थ में अविहित रहने पर एवं गुणप्रतिषेध गम्य रहे। वामदेवात् सूत्रस्थ ड्य के डित् से शापित जो यदनुबन्धक परिभाषा उससे 'अवामदेव्यम्' यहां इसकी अप्रवृत्ति ही है।

३८९१ अच्कावशक्तौ ६।२।१५७।

अजन्तं कान्तं च नञः परमन्तोदात्तमशक्तौ गम्यायाम्। अपचः। पक्तुं न शक्तः अविलिखः। अशक्तौ किम्? अपचो दीक्षितः। गुणप्रतिषेधे इत्येव। अन्योऽयं पचादपचः।

अशक्ति अर्थ होने पर नञ् से पर अजन्त या ककारान्त पद का अन्त वर्ण उदात्त होता है। जो पाक क्रिया असमर्थ है वहां = अपचः। लेखन क्रिया निरूपित सामर्थ्याभावयान् अलिखः। पाकादन्यः अपचः यहां गुणनिषेधाभाव से इसकी अप्रवृत्ति है अपचोदीक्षितः = शास्त्रविरुद्ध होने से वह नहीं पकाता यहां भी गु० नि० का अभाव है।

३८९२ आक्रोशे च ६।२।१५८।

नञः परावच्कावन्तोदात्तावाक्रोशे। अपचो जाल्मः। पक्तुं न शक्नोतीत्येवमाक्रोश्यते। अविक्षिपः।

आक्रोशार्थ से नञ् से पर अजन्त एवं कान्त का अन्त उदात्त होता है। तिरस्कार अर्थ में अपचः = पाकक्रियाकरणसामर्थ्यहीनत्वेन अपमानं गम्यते।

३८९३ संज्ञायाम् ६।२।१५९।

नञः परमन्तोदात्तं संज्ञायामाक्रोशे। अदेवदत्तः।

आक्रोश में नञ् से पर संज्ञा में उत्तर का अन्त वर्ण उदात्त होता है। 'अदेवदत्तः'=वह देवदत्त होने पर भी अपने योग्य कार्य करने में असमर्थ है।

३८९४ कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च ६।२।१६०।

नञः परेऽन्तोदात्ताः स्युः। अकर्तव्यः। उक् अनागामुकः। इष्णुच्। अनलङ्करिष्णुः। इष्णुग्रहणे खिष्णुवो द्व्यनुबन्धकस्यापि ग्रहणमिकारादेर्विधानसामर्थ्यात्। अनाढ्यं भविष्णुः। चार्वादिः। अचारुः। असाधुः। (ग) राजाहोश्छन्दसि। अराजा। अनहः। भाषायां नञः स्वर एव।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृत्य प्रत्ययान्त, उक् प्रत्ययान्त, इष्णुच् प्रत्ययान्त चारु आदि शब्द, वे नञ् से पर रहें तब अन्तोदात्त होता है। सूत्र में इष्णुच् ग्रहण से दो अनुबन्धयुक्त खिष्णुच् का भी ग्रहण होता है, इकारादि विधान सामर्थ्य से।

३८९५ विभाषा तृन्नन्नतीक्ष्णशुचिषु ६।२।१६१।

तृन्। अकर्ता। अन्न। अनन्नम्। अतीक्ष्णम्। अशुचि। पक्षे अव्ययस्वरः।

नञ् से पर तृन् प्रत्ययान्त अन्न, तीक्ष्ण, शुचि, इनका अन्त वर्ण से विकल्प से उदात्त होता है। पक्ष में अव्यय स्वर होता है।

३८९६ बहुव्रीहाविदमेतत्तद्भ्यः प्रथमपूरणयोः क्रियागणने ६।२।१६२।

एभ्योऽनयोरन्त उदात्तः। इदं प्रथमं यस्य स इदंप्रथमः। एतद्द्वितीयः। तत्पञ्चमः बहुव्रीहौ किम्? अनेन प्रथमं इदंप्रथमः। 'तृतीया' (सू ६९२) इति योगविभागात्समासः। इदमेतत्तद्भ्यः किम्? यत्प्रथमः। प्रथमपूरणयोः किम्? तानि बहून्यस्य तद्बहुः। क्रियागणने किम्? अयं प्रथमः प्रधानं येषां ते इदंप्रथमाः। द्रव्यगणनमिदम्। गणने किम्? अयं प्रथमो येषां ते इदंप्रथमाः। इदंप्रधाना इत्यर्थः उत्तरपदस्य कार्यित्वात्कपि पूर्वमन्तोदात्तम्। इदं प्रथमकः। बहुव्रीहावित्यधिकारो 'वनं समासे' (सू ३९१२) इत्यतः प्राग्बोध्यः।

क्रियागणना में बहुव्रीहि में इदम्, एतत्, तत् के उत्तर प्रथम, एवं पूरण वाचक प्रत्यय का अन्तिम वर्ण उदात्त होता है। इदं प्रथमम् यस्य सः इदम्प्रथमः आदि। एषः द्वितीयो यस्य स एतद् द्वितीयः। तत्पञ्चमः। तृतीया योग विभाग से तृतीया तत्पुरुष में इसकी अप्रवृत्ति है। यह क्रियागणन में प्रवृत्त होता है, द्रव्यगणन में नहीं। इदमर्थ प्रधान में जहां गणना नहीं वहां भी इसकी अप्रवृत्ति है। 'वनं समासे' के पूर्व तक 'बहुव्रीहौ' का अधिकार है।

३८९७ संख्यायाः स्तनः ६।२।१६३।

बहुव्रीहावन्तोदात्तः। द्विस्तना। चतुःस्तना। संख्याया किम्? दर्शनीयस्तना। स्तनः किम्? द्विशिराः।

बहुव्रीहि में संख्यावाचक में पर स्तन का अन्त उदात्त होता है।

३८९८ विभाषा छन्दसि ६।२।१६४।

द्विस्तनां करोति।

वेद में संख्यावाचक से परस्तन का अन्त विकल्प से उदात्त होता है।

३८९९ संज्ञायां मित्राजिनयोः ६।२।१६५।

देवमित्रः। कृष्णाजिनम्। संज्ञायां किम्? प्रियमित्रः। ऋषिप्रतिषेधो मित्रे (वा० ३८५७)। विश्वामित्र ऋषिः।

बहुव्रीहि में संज्ञा में उत्तरपद मित्र या अजिन इनका अन्त उदात्त होता है। मित्र शब्द पर रहते ऋषि अर्थ में इस सूत्र विहित स्वराभाव है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३९०० व्यवायिनोऽन्तरम् ६।२।१६६।

व्यवधानवाचकात्परमन्तोदात्तम्। वस्त्रमन्तरं व्यवधायकं यस्य स वस्त्रान्तरः। व्यवायिनः किम्? आत्मान्तरः। अन्यस्वभाव इत्यर्थः।

बहुव्रीहि में व्यवधान वाचक से उत्तर का अन्त उदात्त होता है।

३९०१ मुखं स्वाङ्गम् ६।२।१६७।

गौरमुखः। स्वाङ्गं किम्? दीर्घमुखा शाला।

बहुव्रीहि में स्वांग याचक उत्तरपदस्थित का अन्त उदात्त होता है।

३९०२ नाऽव्ययदिक्शब्दगोमहत्स्थूलमुष्टि-
पृथुवत्सेभ्यः ६।२।१६८।

उच्चैर्मुखः। प्राङ्मुखः। गोमुखः। महामुखः। स्थूलमुखः। मुष्टिमुखः। पृथुमुखः। वत्समुखः। पूर्वपदप्रकृतिस्वरोऽत्र। गोमुष्टिवत्सपूर्वपदस्योपमानलक्षणोऽपि विकल्पोऽनेन बाध्यते।

बहुव्रीहि समास में अव्यय, दिग्वाचक, गो, महत्, स्थूल, मुष्टि, पृथु, वत्स, इनसे पर मुख का अन्त उदात्त होता है। पूर्वपदस्थित गो, मुष्टि, वत्स, से पर मुख को उपमान लक्षण विकल्प को भी यह बाध करता है।

३९०३ निष्ठोपमानादन्यतरस्याम् ६।२।१६९।

निष्ठान्तादुपमानवाचिनश्च परं मुखं स्वाङ्गं वाऽन्तोदात्तं बहुव्रीहौ। प्रक्षालितमुखः। पक्षे 'निष्ठोपसर्गे' (सू ३८४१) इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम्। पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेन गतिस्वरोऽपि भवति। उपमानम्–सिंहमुखः।

बहुव्रीहि में निष्ठा प्रत्ययान्त, एवं उपमानवाचक से पर स्वांगवाचक मुख को विकल्प से अन्तोदात्त होता है। पक्ष में 'निष्ठोपसर्ग' से पूर्वपद का अन्त उदात्त होता है। पूर्वपद प्रकृति स्वर से गति स्वर भी पक्ष में होता है। उपमान में सिंहमुखः।

३९०४ जातिकालसुखादिभ्योऽनाच्छादनात्
क्तोऽकृतमितप्रतिपन्नाः ६।२।१७०।

सारङ्गजग्धः। मासजातः। सुखजातः। दुःखजातः। जातिकालेति किम्? पुत्रजातः। अनाच्छादनात्किम्? वस्त्रच्छन्नः अकृतेति किम्? कुण्डकृतः। कुण्डमितः। कुण्डप्रतिपन्नः। अस्माज्ज्ञापकान्निष्ठान्तस्य परनिपातः।

बहुव्रीहि में जातिवाचक, कालवाचक, सुखादि इनसे पर आच्छादन वाचकशब्द उत्तर न रहने पर क्तप्रत्ययान्त शब्द का अन्त वर्ण उदात्त होता है। कुण्डप्रतिपन्न में निष्ठान्त पद उत्तर पद में रहते स्वर विधान सामर्थ्य से निष्ठान्त का निपात होता है ऐसा ज्ञापित होता है।

३९०५ वा जाते ६।२।१७१।

जातिकालसुखादिभ्यः परो जातशब्दो वान्तोदात्तः। दन्तजातः। मासजातः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जातिवाचक, कालवाचक एवं सुख आदि शब्द इनसे पर जात शब्द विकल्प से अन्तोदात्त होता है। दन्तजातः। मासजातः।

३९०६ नञ्सुभ्याम् ६।२।१७२।

बहुव्रीहावुत्तरपदमन्तोदात्तम्। अव्रीहिः। सुमाषः।

बहुव्रीहि में नञ् एवं सु से पर उत्तरपद का अन्त वर्ण उदात्त होता है।

३९०७ कपि पूर्वम् ६।२।१७३।

नञ्सुभ्यां परं यदुत्तरपदं तदन्तस्य समासस्य पूर्वमुदात्तं कपि परे। अब्रह्मबन्धुकः। सुकुमारीकः।

बहुव्रीहि समास में नञ्, सु से उत्तरपद तदन्तसमास का पूर्व वर्ण कप् पर रहते उदात्त होता है।

३९०८ ह्रस्वान्तेऽन्त्यात्पूर्वम् ६।२।१७४।

ह्रस्वान्त उत्तरपदे समासे वाऽन्त्यात्पूर्वमुदात्तं कपि, नञ्सुभ्यां परं बहुव्रीहौ। अव्रीहिकः। सुमाषकः। पूर्वमित्यनुवर्तमाने पुनः पूर्वग्रहणं प्रवृत्तिभेदेन नियमार्थम्। ह्रस्वान्तेऽन्त्यादेव पूर्वपदमुदात्तं न 'कपि पूर्वमि'ति। अज्ञकः। कबन्तस्यैवाऽन्तोदात्तत्वम्।

ह्रस्वान्त उत्तरपद पर रहते नञ्, एवं सु से पर उत्तरपद का अन्त कप् पर रहते उदात्त होता है बहुव्रीहि में। पूर्व की अनुवृत्ति आती थी पुनः पूर्वग्रहण क्यों किया वह प्रवृत्ति भेद से नियमार्थक है। वाक्ये भेद से नियमाकार इस प्रकार का है :—एक वाक्य से ह्रस्वान्त उत्तरपद पर रहते अन्त्यवर्ण से पूर्व वर्ण को उदात्तत्व होता है। २—द्वितीय वाक्य से ह्रस्वान्त उत्तरपद पर रहते कबन्त का ही अन्त उदात्त होता है।

३९०९ बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि ६।२।१७५।

उत्तरपदार्थबहुत्ववाचिनो बहोः परस्य पदस्य नञः परस्येव स्वरः स्यात्। बहुव्रीहिकः। उत्तरपदेति किम्। बहुषु मानोऽस्य स बहुमानः।

बहुव्रीहि में उत्तरपदार्थ में बहुत्ववाचक बहुशब्द के पर पद को नञ् स्वर तुल्य स्वर होता है। बहुव्रीहिकः आदि।

३९१० न गुणादयोऽवयवाः ६।२।१७६।

अवयववाचिनो बहोः परे गुणादयो नाऽन्तोदात्ता बहुव्रीहौ। बहुगुणा रज्जुः। बह्वक्षरं पदम्। बह्वध्यायः। गुणादिराकृतिगणः। अवयवाः किम्? बहुगुणो द्विजः। अध्ययनश्रुतसदाचारादयो गुणाः।

बहुव्रीहि में अवयववाचक बहु से पर गुणवाचक को अन्तोदात्तत्व नहीं होता है। गुणा= अध्ययन, श्रुत, सदाचार, सत्यभाषण आदि है।

३९११ उगसर्गात्स्वाङ्गं ध्रुवमपर्शु ६।२।१७७।

प्रपृष्ठः। प्रललाटः। ध्रुवमेकरूपम्। उपसर्गात्किम्? दर्शनीयपृष्ठः। स्वाङ्गं किम्? प्रशाखो वृक्षः। ध्रुवं किम्? उद्बाहुः। अपर्शु किम्? विपर्शुः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुव्रीहि समास में उपसर्ग के पर स्वाङ्गवाचक ध्रुवार्थक शब्द को अन्तोदात्त होता है किन्तु पर्शु का नहीं। एक रूप को ध्रुव कहते हैं।

३९१२ वनं समासे ६।२।१७८।

समासमात्रे उपसर्गादुत्तरपदं वनमन्तोदात्तम्। तस्येदिमे प्रवणे।

समासमात्र में उपसर्ग से उत्तर जो उत्तरपद वन वह अन्तोदात्त होता है। प्रवणः—'प्रनिरन्तः' से णकार हुआ।

३९१३ अन्तः ६।२।१७९।

अस्मात्परं वनमन्तोदात्तम्। अन्तर्वणो देशः। अनुपसर्गार्थमिदम्।

समास में अन्तर् से पर वन अन्तोदात्त होता है। यह अनुपसर्गार्थ है।

३९१४ अन्तश्च ६।२।१८०।

उपसर्गादन्तःशब्दोऽन्तोदात्तः। पर्यन्तः। समन्तः।

उपसर्ग से पर अन्तः शब्द अन्तोदात्त है। पर्यन्तः। समन्तः।

३९१५ न निविभ्याम् ६।२।१८१।

न्यन्तः। व्यन्तः। पूर्वपदप्रकृतिस्वरे यणि च कृते 'उदात्तस्वरितयोर्यणः' (सू ३६५७) इति स्वरितः।

समास में नि एवं वि से पर अन्तः शब्द अन्तोदात्त होता है। न्यन्तः। व्यन्तः। पूर्वपद को स्वरित करने पर यण् के बाद 'उदात्तस्वरितयोः' से स्वरित होगा।

३९१६ परेरभितोभावि मण्डलम् ६।२।१८२।

परेः परमभितः उभयतो भावोऽस्यास्ति तत्कुलादि, मण्डलं चान्तोदात्तम्। परिकुलम्। परिमण्डलम्।

समास में परिशब्द से पर अभितो भाविवाचक कूलादि एवं मण्डल अन्तोदात्त होता है।

३९१७ प्रादस्वाङ्गं संज्ञायाम् ६।२।१८३।

प्रगृहम्। अस्वाङ्गं किम्? प्रपदम्।

संज्ञा में समास में प्र से पर अस्वांगवाचक शब्द अन्तोदात्त होता है।

३९१८ निरुदकादीनि च ६।२।१८४।

अन्तोदात्तानि। निरुदकम्। निरुपलम्।

समास में निरुदकादि का अन्त उदात्त होता है।

३९१९ अभेर्मुखम् ६।२।१८५।

अभिमुखम्। 'उपसर्गात्स्वाङ्गम्' (सू ३६११) इति सिद्धे बहुव्रीह्यर्थमध्रुवार्थमस्वाङ्गार्थं चेदम्। अभिमुखा शाला।

यह सूत्र अबहुव्रीहि के लिए है, एवं अध्रुवार्थ, अस्वाङ्गार्थ है। समास में अभिपूर्वक मुख का अन्तवर्ण उदात्त होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३९२० अपाच्च ६।२।१८६।

अपमुखम्। योगविभाग उत्तरार्थः।

समास में अप से पर मुख का अन्त उदात्त होता है। योग विभाग उत्तरार्थ है।

३९२१ स्फिगपूतवीणाऽञ्जोऽध्वकुक्षिसीरनामनाम च ६।२।१८७।

अपादिमान्यन्तोदात्तानि। अपस्फिगम्। अपपूतम्। अपवीणम्। अञ्जस्। अपाऽञ्जः। अध्वन्। अपाध्वा। 'उपसर्गादध्वनः' (सू ६५३) इत्यस्याभावे इदम्। एतदेव च ज्ञापकं समासान्ताऽनित्यत्वे। अपकुक्षिः। सीरनाम। अपसीरम्। अपहलम्। नाम। अपनाम। स्फिगपूतकुक्षिग्रहणमबहुव्रीह्यर्थमध्ववार्थमस्वाङ्गार्थं च।

समास में अप के उत्तर स्फिग्, पूत, वीणा, अञ्जस्, अध्वन्, कुक्षि, सीरनाम एवं नामन् इनका अन्त उदात्त होता है। उपसर्गादध्वनः के अभाव में यह अन्तोदात्तार्थ है। इससे स्पष्ट ज्ञापन हुआ कि समासान्त प्रत्यय अनित्य है। अन्यथा 'उपसर्गादध्वनः' से नित्य समासान्त विधान कर अन्तोदात्तत्व सिद्ध ही था यह व्यर्थ होगा। समासान्त अच् प्रत्यय विधायक वह सूत्र है चितः से अन्तोदात्तत्व सिद्ध ही था। यह सूत्र भी अबहुव्रीहि के लिए, अध्ववार्थ, अस्वाङ्गार्थ है।

३९२२ अधेरुपरिस्थरम् ६।२।१८८।

आध्यारूढो दन्तोऽधिदन्तः। दन्तस्योपरि जातो दन्तः। उपरिस्थं किम्? अधिकरणम्।

अधि से पर उपरि स्थलवाची का अन्त उदात्त होता है।

३९२३ अनोरप्रधानकनीयसी ६।२।१८९।

अनोः परमप्रधानवाचि कनीयश्चान्तोदात्तम्। अनुगतो ज्येष्ठोऽनुज्येष्ठः। पूर्वपदार्थप्रधानप्रादिसमासः। अनुगतः कनीयाननुकनीयान्। उत्तरपदार्थप्रधानः। प्रधानार्थं च कनीयोग्रहणम्। अप्रेति किम्? अनुगतो ज्येष्ठोऽनुज्येष्ठः।

अनु से पर अप्रधानवाची एवं कनीयस् का अन्त उदात्त होता है। 'अनुज्येष्ठः' में पूर्वपदार्थप्रधान प्रादि समास है। अनुकनीयान् में उत्तरपदार्थ प्रधान है। प्रधानार्थ कनीयस् ग्रहण है। अनुगतो ज्येष्ठोऽनुज्येष्ठ में प्रधान वाचक होने से इस की अप्रवृत्ति है।

३९२४ पुरुषश्चाऽन्वादिष्टः ६।२।१९०।

अनोः परोऽन्वादिष्टवाची पुरुषोऽन्तोदात्तः। अन्वादिष्टः पुरुषोऽनुपुरुषः। अन्वादिष्टः किम्? अनुगतः पुरुषोऽनुपुरुषः।

अनु से पर अन्वादिष्ट वाचक पुरुष का अन्तवर्ण उदात्त होता है।

३९२५ अतेरकृत्पदे ६।२।१९१।

अतेः परमकृदन्तं पदशब्दश्चाऽन्तोदात्तः। अत्यङ्कुशो नागः। अतिपदा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गायत्री अकृत्पदे किम् ? अतिकारकः । अतेर्धातुलोप इति वाच्यम् । इह मा भूत् । शोभनो गार्ग्योऽतिगार्ग्यः । इह च स्यात् । अतिक्रान्तः कारुमतिकारुकः ।

अति से पर अकृदन्त शब्द तथा पद शब्द अन्तोदात्त होता है । अति से उत्तर धातु का लोप होने पर अन्तोदात्त होता है । शोभनगार्ग्य में अतिगार्ग्य यहां धातु लोप नहीं है । कारुमतिकान्तः अतिकारुकः यहां इसकी प्रवृत्ति है ।

३९२६ नेरनिधाने ६।२।१९२।

निधानमप्रकाशता ततोऽन्यदनिधानं प्रकाशनमित्यर्थः । निमूलम् । न्यश्रम् । अनिधाने किम् ? निहितो दण्डो निदण्डः ।

प्रकाश अर्थ में नि से उत्तर पद का अन्त उदात्त होता है ।

३९२७ प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे ६।२।१९३।

प्रतेः परेऽश्वादयोऽन्तोदात्ताः प्रतिगतोंऽशुः प्रत्यंशुः । प्रतिजनः । प्रतिराजा । समासान्तस्यानित्यत्वान्न टच् ।

प्रति से उत्तर अंशु आदि शब्द को अन्तोदात्तत्व है । टच् प्रत्ययान्त प्रतिराज अन्तोदात्त है पुनः यहां पाठ व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि समासान्त प्रत्यय अनित्य है ।

३९२८ उपाद्द्व्यजाजिनमगौरादयः ६।२।१९४।

उपात्परं यत् द्व्यच्कमजिनं चान्तोदात्तं तत्पुरुषे गौरादीन्वर्जयित्वा । उपदेवः । उपेन्द्रः । उपाजिनम् । अगौरादयः किम् ? उपगौरः । उपतैषः तत्पुरुषे किम् ? उपगतः सोमोऽस्य स उपसोमः ।

तत्पुरुष में उप से पर दो स्वर युक्त, एवं अजिन उसका अन्त उदात्त होता है । गौरादिगण पठित उत्तर में रहते यह नहीं प्रवृत्त होता है ।

३९२९ सोरवक्षेपणे ६।२।१९५।

सुप्रत्ययवसितः । सुरत्र पूजायामेव । वाक्यार्थस्त्वत्र निन्दा । असूयया तथाऽभिधानात् । सोः किम् ? कुब्राह्मणः । अवक्षेपणे किम् ? सुवृषणम् ।

अवक्षेपण में सु से पर उत्तरपद का अन्त उदात्त होता है । सु यहां पूजा में है । वाक्यार्थ निन्दा है असूया से ऐसा कथन है ।

३९३० विभाषोत्पुच्छे ६।२।१९६।

तत्पुरुषे । उत्क्रान्तः पुच्छादुत्पुच्छः । यदा तु पुच्छमुदस्यति उत्पुच्छयते 'एरच्' (सू० ३२३१) उत्पुच्छस्तदा थाथादिस्वरेण नित्यमन्तोदात्तत्वे प्राप्ते विकल्पोऽयम् । सेयमुभयत्र विभाषा । तत्पुरुषे किम् ? उदस्तं पुच्छं येन स उत्पुच्छः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत् से पर पुच्छ का अन्तवर्ण उदात्त होता है विकल्प से तत्पुरुष में। उत्पुच्छः पुच्छात् उत्क्रान्तः। पुच्छमुदस्यति में उत्पुच्छि स अच् प्रत्ययान्त जब उत्पुच्छ है तब थाथादि से अन्तोदात्त नित्य प्राप्त को बाधकर यह विकल्प से स्वर=अन्तोदात्त करता है।

३९३१ द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहौ ६।२।१९७।

आभ्यां परेष्वेष्वन्तोदात्तो वा। द्विपाच्चतुष्पाच्च रथाय। त्रिपादूर्ध्वः। द्विदन्। त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिम्। मूर्धन्नित्यकृतसमासान्त एव मूर्धशब्दः। तस्यैतत्प्रयोजनमसत्यपि समासान्ते अन्तोदात्तत्वं यथा स्यात्। एतदेव ज्ञापकम् 'अनित्यः समासान्तो भवती'ति। यद्यपि च समासान्तः क्रियते। तथापि बहुव्रीहिकार्यत्वात्तदेकदेशत्वाच्च समासान्तोदात्तत्वं पक्षे भवत्येव। द्विमूर्धः। त्रिमूर्धः। द्वित्रिभ्यां किम्? कल्याणमूर्धा। बहुव्रीहौ किम्? द्वयोर्मूर्धा द्विमूर्धा।

बहुव्रीहि समास में द्वि एवं त्रि से पर पाद, दत, मूर्द्धन अन्तोदात्त होता है। सूत्र में अकृत समासान्त मूर्धन् का ग्रहण है। समासान्त प्रत्यय के अभाव में भी अन्तोदात्त हो जाय एतदर्थ है। यही ज्ञापन करता है कि समासान्त प्रत्यय अनित्य है। यद्यपि समासान्त किया भी जाय तो भी बहुव्रीहि कार्यता के कारण एवं बहुव्रीहि के एकदेशत्व के कारण पक्ष में समासान्तोदात्त होता ही है। यथा द्विमूर्धः।

३९३२ सक्थं चाऽक्रान्तात् ६।२।१९८।

गौरसक्थः। श्लक्ष्णसक्थः। आक्रान्तात्किम्? चक्रसक्थः। समासान्तस्य षच्श्चित्त्वान्नित्यमेवान्तोदात्तत्वं भवति।

कु शब्दान्त उत्तरपद न होने पर बहुव्रीहि समास में सक्थ का अन्त वर्ण उदात्त होता है। चक्रसक्थः में क्वचित् है वहां सप्रकृतिक ग्रहण से नित्य अन्तोदात्त होता है।

३९३३ परादिश्छन्दसि बहुलम् ६।२।१९९।

छन्दसि परस्य सक्थशब्दस्याऽऽदिरुदात्तो वा। अजिसक्थमालभेत। अत्र वार्तिकम्। 'परादिश्च परान्तश्च पूर्वान्तश्चापि दृश्यते। पूर्वादयश्च दृश्यन्ते व्यत्ययो बहुलं ततः। (वा० ३८६८।६६) इति। परादिः। तुविजाता उरुक्षया। परान्तः। नियेन मुष्टिहत्यया। यस्मिंचक्रुः। पूर्वान्तः। विश्वायुर्धेहि। इति समासस्वराः।

छन्द में परपदस्थ सक्थ का आदि वर्ण विकल्प से उदात्त होता है। यहां वार्तिक है—

पदादि, परान्त, पूर्वान्त, पूर्वादि उदात्त अनेकत्र देखे जाते हैं। वे बहुल ग्रहण से प्राप्त व्यत्यय के कारण होते हैं। क्रम से मूल में उदाहरण है।

पं० श्रीबालकृष्ण पञ्चोलि-विरचित रत्नप्रभा में समासस्वर समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ तिङन्तस्वराः प्रकरणम्

३९३४ तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाऽऽभीक्ष्ण्योः ८।१।२७।

तिङन्तात्पदाद् गोत्रादीन्यनुदात्तान्येतयोः। पचति गोत्रम्। पचति पचति गोत्रम्। एवं प्रवचनप्रहसनप्रकथनप्रत्यायनादयः। कुत्सनाऽभीक्ष्ण्यग्रहणं पाठविशेषणम्। तेनान्यत्रापि गोत्रादिग्रहणे कुत्सनादावेव कार्यं ज्ञेयम्। गोत्रादीनि इति किम्? पचति पापम्। कुत्सेति किम्? खनति गोत्रं समेत्य कूपम्।

निन्दा एवं पौनः पुन्य अर्थ में तिङन्त पद के उत्तर गोत्रादि शब्द अनुदात्त होते हैं। गोत्रादि शब्द पन्द्रह गोत्र से प्रारम्भ कर वा नाम तक है। स्वकुल का गोत्र कहते हैं। पचति गोत्रम् = अर्थात् स्वकुल को पीडित वह करता है इससे निन्दा की प्रतीति हुई।

विमर्श—पच् धात्वर्थ अनेक हैं अतः यहां पीडाजनक व्यापार अर्थ पच् का हुआ। पचति पचति यहां आभीक्ष्ण्य = पौनः पुन्य अर्थ की प्रतीति में 'नित्यवीप्सयोः' से पचति का द्वित्व हुआ। विवाह आदि में गोत्र-बन्धुओं का पुनः-पुनः बार-बार सुखयुक्त वह करता है। यहां पच् का अर्थ सुखजनक व्यापार अर्थ है = पुनः पुनः विवाहादौ सुखी करोति। कुत्सन एवं आभीक्ष्ण्य ग्रहण से इनका अर्थ गोत्रादि के अर्थ में विशेषण है। गोत्राद्यर्थ विशेष्य है। विशेष्य-विशेषण अर्थ ही होता है शब्द नहीं, प्रकारता भी अर्थनिक धर्म है। विशेष्यतावच्छेदक धर्म या सम्बन्ध होता है एवं प्रकारतावच्छेदक धर्म एवं सम्बन्ध होता है। "एतयोः अर्थयोः गोत्रादीनि भवन्ति" "तानि च निङन्तपराणि अनुदत्तानि भवन्ति" यही अर्थ है। अभ्य अर्थ = अनुदस्त का विशेषण होकर नहीं है। वह अर्थ इसप्रकार होता तिङः पराणि गोत्रादीनि अनुदात्तानि भवन्ति एतयोरर्थयोः। इष्टार्थलाभार्थ यहां योगविभाग है :—१—तिङो गोत्रादीनि। यह योग अनुदात्त विधानार्थ है। २—कुत्सनाभीक्ष्ण्यो, यह द्वितीय योग है। गोत्रादीन्येव। यह द्वितीय योग परिभाषा है—शास्त्रे कुत्सनाभीक्ष्ण्यविषयाण्येव गोत्रादीनि ग्राह्याणि। इससे यह सिद्ध हुआ कि अन्यत्र सूत्रों में भी जहां गोत्रादि का ग्रहण है वहां कुत्सन आदि में ही तत् तत् कार्य होते हैं ऐसा ज्ञान करना चाहिए।

गोत्रादि नहीं, वहां इसकी अपवृत्ति है। पापम् यह धात्वर्थजन्य फल का पाप विशेषण है। अर्थात् क्रियाविशेषण है। कुत्सन की यहां अप्रतीति है यथा—कुलोद्भवजन सब मिल कर कुआँ खनते हैं = खनति गोत्रं समेत्य कूपम्।

३९३५ तिङ्ङतिङः ८।१।२८।

अतिङन्तात्पदात्परं तिङन्तं निहन्यते। अग्निमीळे।

अतिङन्त से परतिङन्त को निघात = अनुदात्त होता है। वैयाकरण सर्वानुदात्त को निघात कहते हैं। यहां अनुदात्तं सर्वम् की अनुवृत्ति है। अतिङ् न कहते तो 'पचति', 'भवति' यहां भी निघात की आपत्ति होती एक कर्तृकापाक क्रिया भवति।

सूत्रोदाहरण—अग्निमीळे। ईडे सर्वानुदात्त, ऽकार ळ कारता को प्राप्त हुआ है।

विमर्श—इस सूत्र में अतिङ्ग्रहण व्यर्थ है, "समान वाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः" 'एकतिङ् वाक्यम्' इस नियम से एक वाक्य में तिङन्तद्वय का सम्भव नहीं है, यह शङ्का का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समाधान—सूत्रकार ने समान वाक्याधिकार नहीं किया है अतः अतिङ् ग्रहण किया। भाष्यकार के मत में अतिङ् ग्रहण है। किञ्च एकतिङनार्थं मुख्यविशेष्यताप्रयोजकत्वमेकवाक्यत्वम्= समान वाक्यत्वम् है।

३९३६ न लुट् ८।१।२९।

लुङन्तं न निहन्यते। श्वःकर्ता। श्वःकर्तारौ।

इसे से आरम्भ कर निघात निषेधक सूत्र वक्ष्यमाण है। अतिङ् से पर लुङन्त का निघात नहीं होता है। श्वः कर्ता। श्वः कर्तारौ। तास् से पर लसार्वधातुक को अनुदात्तत्व करने पर तास् उदात्त है। एकवचन में डा कर टिलोप करने पर उदात्तनिवृत्ति स्वर से डा का आकार उदात्त है।

३९३७ निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चण्कच्चिद्यत्र-युक्तम् ८।१।३०।

एतैर्निपातैर्युक्तं न निहन्यते। यदग्ने स्यामहं त्वम्। युवा यदीकृथः। कुविदङ्ग आयते। आचत्तिभिश्चकृमा कच्चित्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति।

यत्, यदि, इन्त, कुवित्, नेत्, चेत्, चण्, कच्चित्, यत्र इन निपातों से युक्त जो तिङन्त पद वह अनुदात्त नहीं होता है। 'यदग्ने स्यामहं त्वम्' प्रभृति उदाहरण है। सूत्र में यत् से लेकर यत्र तक द्वन्द्व समास कर तृतीया का सौत्रत्वप्रयुक्त लुक् हुआ, युक्त के साथ तृतीयान्त का समास नहीं है, 'निपातैः' यह विशेषण का अन्वय न होगा वह आपत्ति आपतित होगी अतः कहा है कि एतैर्निपातैः।

यत् पदार्थे च हेतौ च विचारे यदि चेच्चण।
इन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः॥
कच्चित् प्रश्ने नेत् प्रतिषेधे प्रशंसायां कुवित् स्मृतम्।

३९३८ नह प्रत्यारम्भे ८।१।३१।

नहेत्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तम्। प्रतिषेधयुक्त आरम्भः प्रत्यारम्भः। नह भोक्ष्यसे। प्रत्यारम्भे किम्? नह वै तस्मिल्लोके दक्षिणमिच्छन्ति।

प्रत्यारम्भ होनेपर नह शब्द से युक्त तिङन्तपद अनुदात्त नहीं होता है। 'नह' निपातसमूह है। जहां प्रतिषेध युक्त आरम्भ रहें वहां यह सूत्र निषेधक है।

३९३९ सत्यं प्रश्ने ८।१।३२।

सत्ययुक्तं तिङन्तं नानुदात्तं प्रश्ने। सत्यं भोक्ष्यसे। प्रश्ने किम्? सत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम।

प्रश्न प्रतीति में सत्य शब्दार्थ से युक्त तिङन्तार्थ रहें वां तिङन्त अनुदात्त नहीं होता है।

३९४० अङ्गात्प्रातिलोम्ये ८।१।३३।

अङ्गेत्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तम्। अङ्ग कुरु। अप्रातिलोम्ये किम्? अङ्ग कूजसि वृषल। इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म। अनभिप्रेतमसौ कुर्वन्प्रतिलोमो भवति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभिमतकारित्व अर्थ में अङ्ग से युक्त तिङन्तपद अनुदात्त नहीं होता है। अनभिमत कार्य करने से प्रतिलोम व्यवहार होता है।

३९४१ हि च ८।१।३४।

हियुक्तं तिङन्तं नानुदात्तम्। आ हि ष्मा याति। आहिरुहन्तम्।

अप्रातिलोम्य में हियुक्त तिङन्त पद अनुदात्त नहीं होता है।

३९४२ छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम् ८।१।३५।

हीत्यनेन युक्तं साकाङ्क्षमनेकमपि नाऽनुदात्तम्। अनृतं हि मत्तो वदति पाप्मा चैनं युनाति। तिङन्तद्वयमपि न निहन्यते।

वेद में हियुक्त परस्पर आकाङ्क्षा युक्त अनेक तिङन्तपद भी अनुदात्त नहीं होते हैं।

३९४३ यावद्यथाभ्याम् ८।१।३६।

आभ्यां युक्तं तिङन्तं नाऽनुदात्तम्। यथा चित्कण्वमावतम्।

यावत् एवं यथा के योग में तिङन्तपद अनुदात्त नहीं होते हैं।

३९४४ पूजायां नानन्तरम् ८।१।३७।

यावद्यथाभ्यां युक्तमनन्तरं तिङन्तं पूजायां नाऽनुदात्तम्। यावत्पचति शोभनम्। पूजायां किम्? यावद् भुङ्क्ते। अनन्तरं किम्? यावद् देवदत्तः पचति शोभनम्। पूर्वेणाऽत्र निघातः प्रतिषिध्यते।

यदि, यावत्, यथा, इनसे युक्त तिङन्तपद के मध्य में अन्य कोई शब्द का व्यवधान न रहने पर तिङन्तपद पूजा में अनुदात्त नही होता है। पूर्व से प्राप्त निघात का यह अपवाद है।

३९४५ उपसर्गव्यपेतं च ८।१।३८।

पूर्वेणाऽनन्तरमित्युक्तम्। उपसर्गव्यवधानार्थं वचनम्। यावत्प्रपचति शोभनम्। अनन्तरमित्येव। यावद् देवदत्तः प्रपचति शोभनम्।

पूजा में यावत् एवं यथा इनसे युक्त जो उपसर्गकृत व्यवधानयुक्त तिङन्तपद अनुदात्त नहीं होता है। पूर्व सूत्र अव्यवहित तिङन्त का निघात का प्रतिषेधक था। यह व्यवधान में निघात प्रतिषेधक है।

३९४६ तुपश्यपश्यताऽहैः पूजायाम् ८।१।३९।

एभिर्युक्तं तिङन्तं न निहन्यते पूजायाम्। आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।

पूजा में तु, पश्य, पश्यत, अह, इनसे युक्त तिङन्त का अनुदात्त नहीं होता है।

३९४७ अहो च ८।१।४०।

एतद्योगे नाऽनुदात्तं पूजायाम्। अहो देवदत्तः पचति शोभनम्।

पूजा में 'अहो' से युक्त तिङन्त अनुदात्त नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३९४८ शेषे विभाषा ८।१।४१।

अहो इत्यनेन युक्तं तिङन्तं वाऽनुदात्तं पूजायाम्। अहो कटं करिष्यति।

पूजाभिन्न में अहो युक्त तिङन्त पद विकल्प से अनुदात्त नहीं होता है या विकल्प से अनुदात्त होता है। निषेधविकल्प में विधिविकल्प कथन फलितार्थ कथन है—"निषेधविकल्पे विधिविकल्पः फलति" इति।

३९४९ पुरा च परीप्सायाम् ८।१।४२।

पुरेत्यनेन युक्तं वाऽनुदात्तं त्वरायाम्। अधीष्व माणवक पुरा विद्योतते विद्युत्। निकटाऽऽगामिन्यत्र पुराशब्दः। परीप्सायां किम्? न तेन स्म पुराऽधीयते। चिरातीतेऽत्र पुरा।

त्वरा में पुरा से युक्त तिङन्त अनुदात्त विकल्प से होता है। चिर अतीत काल में पुरा रहे वहाँ इसकी अप्रवृत्ति होती है।

३९५० नन्वित्यनुज्ञैषणायाम् ८।१।४३।

तन्वित्यनेन युक्तं तिङन्तं नाऽनुदात्तमनुज्ञाप्रार्थनायाम्। ननु गच्छामि भोः। अनुजानीहि मां गच्छन्तमित्यर्थः। अन्विति किम्? अकार्षीः कटं त्वम्। ननु करोमि। पृष्टप्रतिवचनमेतत्।

किसी कार्य का कर्ता करने में स्वयं प्रवृत्त है उसको 'एवं क्रियताम्'=ऐसा कीजिये' का अभ्युपगम को 'अनुज्ञा' कहते हैं। अनुज्ञा की एषणा=प्रार्थना को अनुज्ञा प्रार्थना कहते हैं। अनुज्ञा की प्रार्थना में ननु युक्त तिङन्तपद अनुदात्त नहीं होता है। यह पृष्ट प्रतिवचन में नहीं लगता है; यह अन्विति का फल है।

३९५१ किं क्रियाप्रश्नेऽनुपसर्गमप्रतिषिद्धम् ८।१।४४।

क्रियाप्रश्ने वर्तमानेन किंशब्देन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तम्। किं द्विजः पचत्याहोस्विद्गच्छति। क्रियेति किम्? साधनप्रश्ने मा भूत्। किं भक्तं पचत्यपूपान्वा। प्रश्ने किम्? किं पठति। क्षेपोऽयम्। अनुपसर्गं किम्? किं प्रपचति उत प्रकरोति। अप्रतिषिद्धं किम्? किं द्विजो न पचति।

क्रियाप्रश्न में वर्तमान किम् से युक्त अनुपसर्ग अप्रतिषिद्धार्थक तिङन्त अनुदात्त नहीं होता है।

३९५२ लोपे विभाषा ८।१।४५।

किमोऽप्रयोगे उक्तं वा। देवदत्तः पचत्याहोस्वित्पठति।

क्रियाप्रश्न में विद्यमान किम् शब्द का प्रयोग न होने पर अनुपसर्ग अप्रतिषिद्धार्थक तिङन्त विकल्प से अनुदात्त होता है (अनुदात्त विकल्प से नहीं होता है)

३९५३ एहि मन्ये प्रहासे लृट् ८।१।४६।

एहि मन्ये इत्यनेन युक्तं लृडन्तं नानुदात्तं क्रीडायाम्। एहि मन्ये भक्तं भोक्ष्यसे, भुक्तं तत्त्वतिथिभिः। प्रहासे किम्। एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये इति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुष्ठु मन्यसे। 'गत्यर्थलोटा लृट्' (३९५८) इत्यनेनैव सिद्धे नियमार्थोऽयमारम्भः। 'एहि मन्ये युक्ते प्रहास एव नान्यत्र'। एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये।

प्रहासजन्य होने पर क्रीड़ा में 'एहि मन्ये' इससे युक्त लडन्त अनुदात्त नहीं होता है। 'गत्यर्थ लोटा' इस वक्ष्यमाण से यह कार्य सिद्ध था नियमार्थ यह सूत्र है। प्रहास में ही यह कार्य होता है अन्यत्र नहीं।

३९५४ जात्वपूर्वम् ८।१।४७।

अविद्यमानपूर्वं यज्जातु तेन युक्तं नाऽनुदात्तम्। जातु भोक्ष्यसे। अपूर्वं किम्? कटं जातु करिष्यसि।

पूर्व में कोई पद न रहने पर जातु से युक्त तिङन्त अनुदात्त नहीं होता है।

३९५५ किंवृत्तं च चिदुत्तरम् ८।१।४८।

अविद्यमानपूर्वं चिदुत्तरं यत्किंवृत्तं तेन युक्तं तिङन्तं नाऽनुदात्तम्। विभक्त्यन्तं डतरडतमान्तं किमो रूपं किंवृत्तम्। कश्चिद्भुङ्क्ते। कतरश्चित्। कतमश्चिद्वा। चिदुत्तरं किम्? को भुङ्क्ते। अपूर्वमित्येव। रामः किंचित्पठति।

पूर्व में पद का अभाव में एवं चित् शब्द पर हो ऐसा जो किम् वृत्त से युक्त तिङन्त पद अनुदात्त नहीं होता है। विभक्त्यन्तडतर, डतम पदन्त किम् के रूप को किंवृत्त कहते हैं।

३९५६ आहो उताहो चाऽनन्तरम् ८।१।४९।

आहो उताहो इत्याभ्यां युक्तं तिङन्तं नाऽनुदात्तम्। आहो उताहो वा भुङ्क्ते। अनन्तरमित्येव। शेषे विभाषां वक्ष्यति। अपूर्वेति किम्? देव आहो भुङ्क्ते।

पूर्वपद रहित 'आहो' एवं 'उताहो' इनसे युक्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है। अहो एवं उताहो के बाद व्यवधायक पद के अभाव से युक्त यदि तिङन्तर है वहाँ ही यह सूत्र प्रवृत्त होता है अन्यथा नहीं।

३९५७ शेषे विभाषा ८।१।५०।

आभ्यां युक्तं व्यवहितं तिङन्तं वाऽनुदात्तम्। आहो देवः पचति।

आहो एवं उताहो इन दो पदों से युक्त व्यवहित, तिङन्तपद विकल्प से अनुदात्त नहीं होता है (अथवा वा अनुदात्त)।

३९५८ गत्यर्थलोटा लृण्न चेत्कारकं सर्वाऽन्यत् ८।१।५१।

गत्यर्थानां लोटा युक्तं तिङन्तं नाऽनुदात्तं यत्रैव कारके लोट् तत्रैव लृडपः चेत्। आगच्छ देव ग्रामं द्रक्ष्यस्येनम्। उह्यन्तां देवदत्तेन शालयो रामेण भोक्ष्यन्ते। गत्यर्थे किम्? पच देव ओदनं भोक्ष्यसेऽन्नम्। लोटा किम् आगच्छेर्देव ग्रामं द्रक्ष्यस्येनम्। लृट् किम्? आगच्छ देव ग्रामं पश्यस्येनम्। न चेदिति किम्? आगच्छ देव ग्रामं, पिता ते ओदनं भोक्ष्यते। सर्वं किम्?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'आगच्छ देव ग्रामं त्वं चाहं च द्रक्ष्याव एन'मित्यत्रापि निघातनिषेधो यथा स्यात्। यल्लोडन्तस्य कारकं तच्चान्यच्च लृडन्तेनोच्यते।

जिस कारक में लोट् उसी कारक में लट् हो तो गत्यर्थक धातु से विहित जो लोट् तदन्त से युक्त लट् स्थानिक तिङ् तदन्त पद अनुदात्त नहीं होता है। सूत्रस्थ सर्व का प्रयोजन यह है कि- जहां निघात का प्रतिषेध हो वहां लोडन्त का जो कारक वह एवं अन्य कारक भी लडन्त से युक्त होता है।

३९५९ लोट् च ८।१।५२।

लोडन्तं गत्यर्थलोटा युक्तं नाऽनुदात्तम्। आगच्छ देव ग्रामं पश्य। गत्यर्थेति किम्। पच देवौदनं भुङ्क्ष्वैनम्। लोट् किम्? आगच्छ देव ग्रामं पश्यसि। 'न चेत्कारकं सर्वान्यदि' त्येव। आगच्छ देव ग्रामं, पश्यत्वेनं रामः। सर्वग्रहणात्त्विह स्यादेव। आगच्छ देव ग्रामं त्वं चाहं च पश्यावः। योगविभाग उत्तरार्थः।

लोडन्त पद यदि गत्यर्थ प्रकृतिक लोडन्त से युक्त हो तो अनुदात्त नहीं होता है। यहाँ भी नचेत् कारकं सर्वान्यत् का सम्बन्ध है। यह योगविभाग उत्तरार्थ है।

३९६० विभाषितं सोपसर्गमनुत्तमम् ८।१।५३।

लोडन्तं गत्यर्थलोटा युक्तं तिङन्तं वाऽनुदात्तम्। आगच्छ देव ग्रामं प्रविश। सोपसर्गं किम्? आगच्छ देव ग्रामं पश्य। अनुत्तमं किम्? आगच्छानि देव ग्रामं प्रविशानि।

गत्यर्थ प्रकृतिक लोडन्त से युक्त सोपसर्ग अनुत्तम लोडादेशान्तपद अनुदात्त विकल्प से होता है।

३९६१ हन्त च ८।१।५४।

हन्तेत्यनेन युक्तमनुत्तमं लोडन्तं वाऽनुदात्तम्। हन्त प्रविश। सोपसर्गमित्येव। हन्त कुरु। 'निपातैर्यद्यदि' (सू ३९३७) इति निघातप्रतिषेधः। अनुत्तमं किम्? हन्त प्रभुञ्जावहै।

हन्त से युक्त उपसर्गपूर्वक उत्तममिन्न लोडादेशान्तपद विकल्प से अनुदात्त होता है।

३९६२ आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके ८।१।५५।

आमः परमेकपदान्तरितमामन्त्रितं नानुदात्तम्। आम् पचसि देवदत्त ३। एकान्तरं किम्? आम् प्रपचसि देवदत्त ३। आमन्त्रितं किम्? आम् पचति देवदत्तः। अनन्तिके किम्? आम पचसि देवदत्त।

आम् से पर एक पद से व्यवहित आमन्त्रित पद अनुदात्त नहीं होता है, सामीप्य प्रतीयमान न होने पर।

३९६३ यद्धितुपरं छन्दसि ८।१।५६।

तिङन्तं नाऽनुदात्तम्। उदसृजो यदङ्गिरः। उशन्ति हि। आख्यास्यामि तु ते। 'निपातैर्यत्' (सू ३९३७) इति 'हि च' (सू ३९४१) इति 'तु पश्य' (सू०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३९४६) इति च सिद्धे नियमार्थमिदम्। 'एतैरेव परभूतैर्योगे नान्यै'रिति। जाये स्वारोहावैहि। एहीति गत्यर्थलोटा युक्तस्य लोडन्तस्य निघातो भवति।

वेद में यत्, हि, तु, ये पर में रहने पर तिङन्तपद अनुदात्त नहीं होता है। यह सूत्र नियमार्थ है। निपातैर्यत्, हि च, 'तु पश्य' से एतत् सूत्र विहित कार्य सिद्ध ही था, अतः नियमार्थ यह सूत्र है—"पर में स्थित यही समस्त शब्द के योग में अनुदात्त का निषेध हो तो, अन्य शब्द के योग में नहीं"।

३९६४ चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितेष्वगतेः ८।१।५७।

एषु षट्सु परतस्तिङन्तं नाऽनुदात्तम्। देवः पचति चन। देवः पचति चित्। देवः पचतीव। देवः पचति गोत्रम्। देवः पचतिकल्पम्। देवः पचति-पचति। अगतेः किम्? देवः प्रपचति चन।

गतिसंज्ञक से पर न होने में चन, चित्, इव, गोत्रादि तद्धित प्रत्यय, एवं आम्रेडित संज्ञक शब्द पर रहने पर तिङन्त अनुदात्त नहीं होता है।

३९६५ चादिषु च ८।१।५८।

चवाहाऽहैवेषु परेषु तिङन्तं नाऽनुदात्तम्। देवः पचति च खादति च। अगतेरित्येव। देवः प्रपचति च प्रखादति च। 'प्रथमस्य चवायोगे' (सू ३९६६) इति निघातः प्रतिषिध्यते। द्वितीयं तु निहन्यत एव।

गति पर नहीं है ऐसे च, वा, ह, अह, एव, इन पर में रहते तिङन्त अनुदात्त नहीं होता है।

३९६६ चवायोगे प्रथमा ८।१।५९।

चवेत्याभ्यां योगे प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता। गाश्च चारयति वीणां वा वादयति। इतो वा सातिमीमहे। उत्तरवाक्ययोरनुषञ्जनीयतिङन्तापेक्षयेयं प्राथमिकी। योगे किम्? पूर्वभूतयोरपि योगे निघातार्थम्। प्रथमाग्रहणं द्वितीयादेस्तिङन्तस्य मा भूत्।

चवा, इनके योग में प्रथमा तिङ्विभक्ति अनुदात्त नहीं होती है।

३९६७ हेति क्षियायाम् ८।१।६०।

हयुक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नाऽनुदात्ता धर्मव्यतिक्रमे। स्वयं ह रथेन याति ३। उपाध्यायं पदातिं गमयति ३। 'क्षियाशी:' (सू ३६२३) इति प्लुतः।

धर्म व्यतिक्रम में ह युक्त प्रथमा तिङ्विभक्ति अनुदात्त नहीं होती है क्योंकि शिष्य का रथ में बैठकर जाना; उपाध्याय = गुरु का पैदल जाना, आचार विरुद्ध है।

३९६८ अहेति विनियोगे च ८।१।६१।

अहयुक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता, नानाप्रयोगे नियोगे क्षियायां च। त्वमह ग्रामं गच्छ। क्षियायाम्। स्वयमह रथेन याति ३। उपाध्यायं पदातिं नयति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाना प्रयोजनक नियोग एवं धर्मव्यतिक्रमण में 'अह' से युक्त प्रथमा तिङविभक्ति अनुदात्त नहीं होती है।

३९६९ चाऽहलोप एवेत्यवधारणम् ८।१।६२।

च अह एतयोर्लोपे प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता। देव एव ग्रामं गच्छतु। देव एवारण्यं गच्छतु। ग्राममरण्यं च गच्छत्वित्यर्थः। देव एव ग्रामं गच्छतु। राम एवारण्यं गच्छतु। ग्रामं केवलमरण्यं केवलं गच्छत्वित्यर्थः। इहाऽहलोपः। स च केवलार्थः। अवधारणं किम्? देव केव भोक्ष्यसे। न क्वचिदित्यर्थः। अनवक्लृप्तावेव।

निश्चयार्थक एव में 'च', 'अह' इन दोनों निपातों का योग होने पर प्रथम तिङन्त अनुदात्त नहीं होता है

३९७० चादिलोपे विभाषा ८।१।६३।

चवाहाऽहैवानां लोपे प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदाता। चलोपे इन्द्र वाजेषु नोऽव। शुक्ला व्रीहयो भवन्ति। श्वेता गा आज्याय दुहन्ति। वालोपे। व्रीहिभिर्यजेत। यवैर्यजेत।

च, वा, ह, अह, एव, इनके अप्रयोग में (लोप में) प्रथमा तिङ्विभक्ति विकल्प से अनुदात्त नहीं है।

३९७१ वैवावेति च छन्दसि ८।१।६४।

अहवै देवानामासीत्। अयं वाव हस्त आसीत्।

वेद में 'वै', 'वाव' के योग में प्रथमा तिङ् विभक्ति अनुदात्त नहीं है।

३९७२ एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम् ८।१।६५।

आभ्यां युक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता छन्दसि। अजामेकां जिन्वति। अजामेकां रक्षति। तयोरन्यः पिप्पलं स्वद्वति। समर्थाभ्यां किम्? एको देवानुपातिष्ठत्। एक इति संख्यापरं नान्यार्थम्।

वेद में तुल्यार्थक एक एवं अन्य के योग में प्रथम तिङन्तपद विकल्प से अनुदात्त नहीं होता है।

३९७३ यद्वृत्तान्नित्यम् ८।१।६६।

यत्र पदे यच्छब्दस्ततः परं तिङन्तं नानुदात्तम्। यो भुङ्क्ते यदद्रयङ्वायुर्वाति। अत्र व्यवहिते कार्यमिष्यते।

जिनमें यद् शब्द है उससे उत्तर जो तिङन्त पद वह अनुदात्त नहीं होता है। यह व्यवधान में भी प्रवृत्त होता है।

३९७४ पूजनात्पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः ८।१।६७।

पूजनेभ्यः काष्ठादिभ्यः पूजितवचनमनुदात्तम्। काष्ठाध्यापकः। मलोपश्च वक्तव्यः (वा० ४७३५) दारुणाध्यापकः। अज्ञाताध्यापकः। समासान्तोदात्तत्वापवादः। एतत्समासे इष्यते। नेह–दारुणमध्यापक इति वृत्तिमतम्। पूज-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नादित्येव पूजितग्रहणे सिद्धे पूजितग्रहणमनन्तरपूजितलाभार्थम्। एतदेव ज्ञापकमत्र प्रकरणे पञ्चमीनिर्देशेऽपि नान्तर्यमाश्रीयत, इति।

पूजनार्थक काष्ठादि से पर पूजितवाचक शब्द अनुदात्त होते हैं। काष्ठाध्यापकः। मकार का इन शब्दों में लोप होता है। यथा दारुणाध्यापकः। दारुणम् अध्यापक यहाँ यह नहीं प्रवृत्त होता है। समासस्य से प्राप्त स्वर का यह बाधक है। यह भी समाससंज्ञक शब्दों में ही प्रवृत्त होता है। 'पूजनात्' मात्र कथन से पूजितार्थ की प्रतीति यहाँ होती। पुनः तदर्थ बोधनार्थ सूत्र में क्रियमाण पूजित ग्रहण, व्यवधान रहित पूजित के लाभ के लिए है। 'तस्मादित्युत्तरस्य' से अव्यवहितांश का लाभ सिद्ध ही था, पुनः तदर्थ बोधनार्थ पूजित ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि इस प्रकरण में 'तस्मात्' पञ्चमी परिभाषा से 'आनन्तर्य्य'=व्यवधान राहित्य की अनुपस्थिति ही है। इस ज्ञापन का फल—'यद् वृत्तान्नित्यम्' पर कह चुके हैं कि व्यवधान में भी प्रवृत्ति उसकी होती है।

३९७५ सगतिरपि तिङ् ८।१।६८।

पूजनेभ्यः काष्ठादिभ्यस्तिङन्तं पूजितमनुदात्तम्। यत्काष्ठां प्रपचति। 'तिङ्ङतिङः' (सू० ३९३५) इति निघातस्य 'निपातैर्यत्' (सू ३९३७) इति निषेधे प्राप्ते विधिरयम्। सगतिग्रहणाच्च गतिरपि निहन्यते। गतिग्रहणे उपसर्गग्रहणमिष्यते (वा० ४७३२)। नेह—यत्काष्ठां शुक्लीकरोति।

पूजनार्थक काष्ठादि से पर गतिसहित तिङन्त पूजित पद अनुदात्त होता है। 'तिङतिङः' का बाधक जो 'निपातैः' उसका बाधनार्थ यह सूत्र है। सगति ग्रहण से गति संज्ञक भी निघात युक्त होता है। गति उपसर्ग का ग्रहण होता है।

३९७६ कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ ८।१।६९।

कुत्सने च सुबन्ते परे सगतिरगतिरपि तिङनुदात्तः। पचति पूति प्रपचति पूति। पचति मिथ्या। कुत्सने किम्? प्रपचति शोभनम्। सुपि किम्? पचति क्लिश्नाति। अगोत्रादौ किम्? पचति गोत्रम्। क्रियाकुत्सन इति वाच्यम्। (वा ३७३९) कर्तुः कुत्सने मा भूत। पचति पूतिर्देवदत्तः। पूतिश्चानुबन्ध इति वाच्यम्। तेनायं चकारानुबन्धत्वादन्तोदात्तः। वा बह्वर्थमनुदात्तमिति वाच्यम् (वा ४७४२)। पचन्ति पूति।

कुत्सन अर्थबोधक गोत्र आदि से भिन्न सुबन्त पर रहते गतिसंज्ञक से युक्त या गतिसंज्ञक से अयुक्त तिङन्त पद अनुदात्त होता है। क्रिया के कुत्सन में तिङन्त अनुदात्त होता है। कर्ता के कुत्सन में इसकी प्रवृत्ति नहीं होती है। अनुबन्ध सहित पूतिशब्द पर रहते तिङन्त अनुदात्त होता है। चकारानुबन्ध से वह अन्तोदात्त होगा। बहुवचनान्त तिङन्त विकल्प से अनुदात्त होता है यहां तिङन्त को निघात स्वर हो तब पूति अन्तोदात्त होता है, अन्यथा आद्युदात्त। पचति पूति।

३९७७ गतिर्गतौ ८।१।७०।

अनुदात्तःअभ्युद्धरति। गतिः किम्? दत्तः पचति। गतौ किम्। मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः।

गतिपरक गति अनुदात्त है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३९७८ तिङि चोदात्तवति ८।१।७१।

गतिरनुदात्तः। यत्प्रपचति। तिङ्ग्रहणमुदात्तवतः परिमाणार्थम्। अन्यथा हि यत्क्रियायुक्ताः प्रादयस्तं प्रत्येव गतिस्तत्र घातावेवोदात्तवति स्यात् प्रत्यये न स्यात्। उदात्तवति किम्? प्रपचति। इति तिङन्तस्वराः।

उदात्त युक्त तिङन्तपरक गति को उदात्त होता है। 'निपाता आद्युदात्ताः' का यह बाधक है। 'यत् प्रपचति' यहां 'निपातैर्यद्' से निघात प्रतिषेध से तिङन्त उदात्त होगा, उदात्तयुक्त परिमाण के लिए इस सूत्र में तिङ्का ग्रहण है। अन्यथा 'उपसर्गाः क्रियायोगे' में क्रियया इति वक्तव्य था अतः योगग्रहण व्यर्थ से ज्ञापित वचन—"यदर्थक्रियायुक्ताः प्रादयस्तं प्रत्येव गत्युपसर्गा भवन्ति" से उदात्तस्वर विशिष्ट धातुपरक गतिसंज्ञक उदात्त होगा, उदात्तस्वर युक्त प्रत्ययपरक में इष्ट स्वर न होगा।

पं० श्री बालकृष्ण पञ्चोलि-विरचित रत्नप्रभा में तिङन्त-स्वरप्रकरण समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ स्वरसञ्चारप्रकारः

अथ वैदिकवाक्येषु स्वरसञ्चारप्रकारः कथ्यते। अग्निमीळे [पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्]—इति प्रथमा ऋक्। तत्राग्नि-शब्दोऽव्युत्पत्तिपक्षे (फि०) 'फिषः' इत्यन्तोदात्त इति माधवः। वस्तुतस्तु घृतादित्वात्। व्युत्पत्तौ तु नित्प्रत्ययस्वरेण। अम् सुप्त्वादनुदात्तः। 'अमि पूर्वः' (सू १६४) इत्येकादेशस्तु 'एकादेश उदात्तेन' (सू ३६५८) इत्युदात्तः। ईळे। 'तिङ्ङतिङः' (सू ३६३५) इति निघातः। संहितायाम् 'उदात्तादनुदात्तस्य' (सू० ३६६०) इतीकारः स्वरितः। स्वरितात्संहितायाम्' (सू ३६६८) इतिळे इत्यस्य प्रचयाऽपरपर्याया एकश्रुतिः। पुरःशब्दोऽन्तोदात्तः। 'पूर्वाधरावराणाम्' (सू १६७५) इत्यसिप्रत्ययस्वरात्। हितशब्दोऽपि धात्वो निष्ठायां 'दधातेर्हिः' (सू ३०७६) इति ह्यादेशे प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः। 'पुरोऽव्ययम्' (सू ७६८) इति गतिसंज्ञायां 'कुगति' (सू ७६१) इति समासे समासान्तोदात्ते 'तत्पुरुषे तुल्यार्थे' (सू ३७३६) इत्यव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरे 'गतिकारकोपपदात्कृत्' (सू ३८७३) इति कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरे, थाथादिस्वरे, च पूर्वपूर्वोपमर्देन प्राप्त 'गतिरनन्तरः' (सू ३७८३) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरः। पुरःशब्दाकारस्य संहितायां प्रचये प्राप्ते 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः' (सू ३६६६) इत्यनुदात्ततरः। यज्ञस्य। नञः प्रत्ययस्वरः। विभक्तेः सुप्त्वादनुदात्तत्वे स्वरितत्वम्। देवम्। पचाद्यच्। फिट्स्वरेण प्रत्ययस्वरेण वाऽन्तोदात्तः। ऋत्विक्शब्दः कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तः। होतृशब्दस्तृन्प्रत्ययान्तो नित्स्वरेणाद्युदात्तः। रत्नशब्दो (फि०) 'नब्विषयस्य' इत्याद्युदात्तः। रत्नानि दधातीति रत्नधाः। समासस्वरेण कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण वाऽन्तोदात्तः। तमपः पित्त्वादनुदात्तत्वे स्वरितप्रचयावित्यादि यथाशास्त्रमुन्नेयम्। इति स्वरसञ्चारः।

इत्थं वैदिकशब्दानां दिङ्मात्रमिह दर्शितम्।
तदस्तु प्रीतये श्रीमद्भवानीविश्वनाथयोः॥ १॥

इति सिद्धान्तकौमुद्यां श्रीभट्टोजिदीक्षितविरचितायां वैदिकस्वरप्रक्रिया।

सम्प्रति वैदिक प्रकरण में स्वर समुदाय के सञ्चार-क्रम कहते हैं। यथा—"अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् होतारं रत्नम् धातमम्"। यह ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र = ऋक् है। उणादि में दो पक्ष है—उणादयो व्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि = प्रकृति-प्रत्यय-ज्ञानपूर्वक शास्त्रों की प्रवृत्ति या निवृत्ति होती है, इस पक्ष में। उणादयोऽव्युत्पन्नानि = प्रकृति-प्रत्यय रहते हुए भी शास्त्र प्रकृति-प्रत्यय-विभागपूर्वक प्रवृत्त या निवृत्त नही होते हैं, अर्थात् रूढत्वेन शास्त्रों की प्रवृत्ति समय तत्तत् प्रयोगों का ज्ञान है। शङ्ग इत्यादि भाष्य-प्रयोगों में 'आयन्' सूत्र की अप्रवृत्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से अव्युत्पन्न पक्ष है। इसुसोः सामर्थ्ये आदि व्युत्पन्न पक्ष है। प्रकृत मे अग्निशब्द 'फेषोऽन्तः' से अन्तोदात्त है। यह माधव मत है। वास्तव में यह घृतादित्व के कारण अन्तोदात्त है। व्युत्पत्ति-पक्ष में निप्रत्यय प्रत्यय स्वर से उदात्त होने से अग्नि अन्तोदात्त है। अम् विभक्ति 'अनुदात्तौ' से अनुदात्त है। अभि पूर्व सूत्रविहित पूर्वरूप 'एकादेश उदात्तेन' से उदात्त है। 'इळे' तिङतिङः' से सर्वानुदात्त है। संहिता संज्ञा की विवक्षा में तो 'उदात्तदनुदात्तस्य' से ईकार स्वरित है, 'स्वरितात् संहितायाम्' से 'ळे' को प्रचय है अन्य पर्य्याय वाचक जिसकी ऐसी एक श्रुति है। पुरस् शब्द अन्तोदात्त है। वह असि प्रत्ययान्त है। हित में धा क्त प्रत्यय हित धा को 'दधातेर्हिः' से हि आदेश है। हित अन्तोदात्त है। पुरस् की 'पुरोऽव्ययम्' से गति संज्ञा कर 'कुगति' से समास है। यहाँ 'समासस्य' से अन्तोदात्त प्राप्त है, उसको बाधकर 'अव्ययपूर्वपद' प्रकृतिस्वर प्राप्त है, एवं 'गतिकारकोपपदात्' से कृदुत्तरप्रकृतिस्वर प्राप्त है, एवं थाथादि स्वर प्राप्त है, वे पूर्व-पूर्व प्राप्ति को बाधकर यहाँ प्राप्त हुए उसको बाधकर 'गतिरनन्तरः' से पूर्वपद प्रकृति स्वर हुआ। 'पुरो' का ओकार को संहिता में प्रचय प्राप्त है, किन्तु 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः' से अनुदात्ततर स्वर हुआ।

यज्ञस्य इति—नङ् प्रत्ययान्त है, अन्तोदात्त हुआ। विभक्ति अनुदात्त है। उसको स्वरित्व है। देवम्—अच्प्रत्ययान्त है, फिट् या चितः से अन्तोदात्त है। ऋत्विक् शब्द अन्तोदात्त है। होतृ-शब्द तृन् प्रत्ययान्त आद्युदात्त है। रत्न शब्द नित्यनपुंसकत्व के कारण आद्युदात्त है। 'रत्नधाः' समासस्वर से या कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वर से अन्तोदात्त है। तमप् पित्त्व के कारण अनुदात्त होकर स्वरित प्रचय युक्त है।

इस प्रकार वैदिक शब्दों का प्रदर्शन स्वरज्ञानार्थ इसमें प्रदर्शन किया है। सर्व ऐश्वर्य युक्त आशुतोष भगवान् शङ्कर एवं श्री पार्वती इनकी प्रीति के लिए यह ग्रन्थरत्न उनको मैं समर्पण करता हूँ। यह महावैयाकरण श्रीभट्टोजिदीक्षित महोदय ने वैदिक स्वरप्रक्रिया की समाप्ति पर कहा है।

गुजरात प्रान्तनिवासी, उदीच्य ब्राह्मण-कुलोद्भव, श्रीनीलकण्ठशास्त्री तनुजन्मश्रीदिवालीदेवी-पुत्र श्रीबालकृष्ण पञ्चोलि-विरचित रत्नप्रभा में स्वर-वैदिकप्रक्रिया समाप्त।

शुभम् भूयात्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भैरवमिश्रकृतभैरवीव्याख्यासंवलितम्-

अथ लिङ्गानुशासनम्

स्त्र्यधिकारः

शब्दगं वाऽर्थगं लिङ्गं सर्वभाषासु विश्रुतम् ।
विविच्य विदुषां प्रीत्यै तत्स्वरूपं विभास्यते ॥ १ ॥

१ लिङ्गम् ।

व्याकरणशास्त्र में पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, एवं नपुंसकलिङ्ग इनका अर्थ निर्णय में विशेष महत्व है। स्त्रियाम् सूत्र पर किसी ने कहा है कि—

स्तनकेशवती नारी लोमशः पुरुषः स्मृतः ।
उभयोरन्तरं यच्च तद्भावे नपुंसकम् ॥

वहाँ केश शब्द भग का एवं लोम शब्द शिश्न का उपलक्षण है। वह लक्षण अचेतन खष्वा में अव्याप्त है। सत्त्व, रजः, तमः इनकी साम्यावस्था नपुंसकत्व, उपचय इन गुणों का पुंसत्व, एवं स्त्रीत्व का प्रत्यायक है।

सत्त्व-रजस्तमसां गुणानाम् उपचयापचयस्थितिरूपं क्रमेण पुंस्त्रीनपुंसकाख्यंलिङ्गम् । तिरोभाव को संस्त्यान कहते हैं। संस्त्यानप्रसवौ लिङ्गमास्थेयौ इति। इयम् व्यक्तिः। अयम् पदार्थः। इदं वस्तु। इस कथन से पदार्थमात्र में लिङ्गत्रय सत्ता है। अतः लिङ्गानुशासन से विशेष लिङ्ग ज्ञान आवश्यक है। वह लिङ्ग शब्दनिष्ठ है या अर्थनिष्ठ है उसका विस्तृत विचार अन्यत्र है। दार शब्द पुंल्लिङ्ग है एवं वह स्त्री रूप अर्थ का वाचक है। अतः कुछ आचार्य लिङ्ग को शब्दनिष्ठ ही मानते हैं। एवं शास्त्रीय लिङ्ग तथा लौकिक लिङ्ग इनका भी परस्पर भेद वर्णित है। अध्वर मीमांसा पा० ४ अधि० १ कुतूहलवृत्ति में कुछ इसपर विचार है। व्याकरण महाभाष्य एवं वाक्यपदीय इन दो ग्रन्थों में लिङ्ग स्वरूप का निर्णय है।

तिस्रो जातय एवैताः केषाञ्चित् समवस्थिताः ।
अविरुद्धा विरुद्धाभि गोंमहिष्यादि जातयः ॥
हस्तिन्यां वडवायाञ्च स्त्रीत्वबुद्धेः समन्वयः ।
अतस्तां जातिभिच्छन्ति द्रव्यादिसमवायिनीम् ॥ वा० प० का०

ऋग्वेद में भी "पश्वा नतायुं गुहा चतन्तम्" (ऋ० वे० १ म० १२, अनुवा० १५ सू०) पशु शब्द का नित्यपुंस्त्व निर्णय वहां दुर्निरूप्य बोधन किया है। "छागो वा मन्त्रवर्णात्" (मीमांसा—६ अ० ८ पा० ३१ सू०) लिङ्गविवक्षादर्शन से लिङ्ग को नामार्थ स्वीकार करने में संशय-लेश भी नहीं है।

"व्यक्त्याकृतिजातयः पदार्थः" इस सूत्र के प्रणेता भगवान् गौतम ने, न्यायसूत्रभाष्यकार श्रीवात्स्यायन ने, वैशेषिक सूत्रकर्ता श्रीकणाद ने, वैशेषिक सूत्रों पर उपस्कारकर्ता श्रीशङ्कर मिश्र ने सर्वभाषा प्रसिद्ध पुंस्त्वादि लिङ्गविषयक सर्वथा उपेक्षित क्यों किया ? यह एक विचारणीय विषय है, गौमतसूत्र में जातिपद धर्मपरक ही है। नैयायिकगण इस पर विचार करें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अजवान् देश में अजा नही है = 'अजवत्यपि देशे अजा नास्ति' इस प्रयोग दर्शन से स्त्रीत्वस्य लिङ्गान्वयितावच्छेदकत्वेन भान आवश्यक है। अतः अर्थनिष्ठ लिङ्ग का भान है। पञ्चकं प्रातिपदिकार्थः, अथवा शब्द को लेकर षट् प्रातिपदिकार्थ है उसमें लिङ्ग ग्रहण आचार्य ने प्रातिपदिकवाच्यत्व से गृहीत किया है। विस्तरभय से नेह वितन्यतेऽत्र।

२ स्त्री।

अधिकारसूत्रे एते।

लिङ्ग एवं स्त्री का उत्तर सूत्रों में अधिकार है। स्त्री का अधिकार सीमित है। किन्तु 'लिङ्गम्' का अधिकार शास्त्र समाप्ति पर्य्यन्त है। स्त्री का अधिकार ताराधारा सूत्र तक है।

३ ऋकारान्ता मातृदुहितृस्वसृपोतृननान्दरः।

ऋकारान्ता एते पञ्चैव स्त्रीलिङ्गाः। स्वस्रादिपञ्चकस्यैव ङीब्निषेधेन कर्त्रीत्यादेर्ङीपा ईकारान्तत्वात्। तिसृचतस्रोस्तु स्त्रियामादेशतया विधानेऽपि प्रकृत्योस्त्रिचतुरोर्ऋदन्तत्वाऽभावात्।

ऋकारान्त मातृ, दुहितृ, स्वसृ, पोतृ, ननान्दृ वे पाँच शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं। 'न षट् स्वस्रादिभ्यः' से ङीप् निषेध से वे पाँच ही ऋकारान्त है। कर्त्री आदि ईकारान्त शब्द है, ऋकारान्त नहीं। तिसृ एवं चतसृ यद्यपि ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग है किन्तु वे आदेश हैं। प्रकृति त्रि एवं चतुर् ऋकारान्त नहीं है।

४ अन्यूप्रत्ययान्तो धातुः।

अनिप्रत्ययान्त ऊप्रत्ययान्तश्च धातुः स्त्रियां स्यात्। अवनिः। चमूः। प्रत्ययग्रहणं किम्। देवयतेः क्विप्। द्यूः। विशेष्यलिङ्गः।

अनिप्रत्ययान्त एवं ऊप्रत्ययान्त धातु जात शब्द स्त्री लिङ्ग हैं। अवनिः। चमूः। द्यूः में ऊकार प्रत्यय नही है। वह विशेष्याधीन लिङ्गक है।

५ अशनिभरण्यरणयः पुंसि च।

इयमयं वा अशनिः।

अशनि, भरणि, अरणि, स्त्रीलिङ्ग एवं पुंलिङ्ग दोनों में प्रयुक्त होते हैं।

६ मिन्यन्तः।

मिप्रत्ययान्तो, निप्रत्ययान्तश्च धातुः स्त्रियां स्यात्। भूमिः। ग्लानिः।

मिप्रत्ययान्त, निप्रत्ययान्त, धातुजात शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त हैं।

७ वह्निवृष्ण्यग्नयः पुंसि।

पूर्वस्याऽपवादः।

वह्नि, वृष्णि, अग्नि, पुंल्लिङ्ग में प्रयुक्त हैं। यह सूत्र पूर्व सूत्र का बाधक है।

८ श्रोणियोन्यूर्मयः पुंसि च।

इयमयं वा श्रोणिः।

श्रोणि, योनि, ऊर्मि पुंल्लिङ्ग एवं स्त्रीलिङ्ग हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

९ क्तिन्नन्तः ।

स्पष्टम् । कृतिरित्यादि ।

क्तिन् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग है

१० ईकारान्तश्च ।

ईप्रत्ययान्तः स्त्री स्यात् । लक्ष्मीः ।

ई प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग है ।

११ ऊङाबन्तश्च ।

कुरूः । विद्या ।

ऊङ् प्रत्ययान्त एवं आबन्त शब्द स्त्रीलिङ्ग है ।

१२ ध्वन्तमेकाक्षरम् ।

श्रीः । भूः । एकाक्षरं किम् ? पृथुश्रीः ।

ईकारान्त ऊकारान्त एकाक्षर शब्द स्त्रीलिङ्ग है ।

१३ विंशत्यादिरानवतेः ।

इयं विंशतिः । त्रिंशत् । चत्वारिंशत् । पञ्चाशत् । षष्टिः । सप्ततिः । अशीतिः । नवतिः ।

विंशति से नवति पर्य्यन्त संख्यावाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग है ।

१४ दुन्दुभिरक्षेषु ।

इयं दुन्दुभिः । अक्षेषु किम् ? अयं दुन्दुभिर्वाद्यविशेषोऽसुरो वेत्यर्थः ।

अक्ष अर्थ में दुन्दुभि शब्द स्त्रीलिङ्ग है । अक्ष से भिन्न में यह पुंल्लिङ्ग है । वाद्य विशेष या असुर ।

१५ नाभिरक्षत्रिये ।

इयं नाभिः ।

अक्षत्रिय अर्थ में नाभि शब्द स्त्रीलिङ्ग है ।

१६ उभावप्यन्यत्र पुंसि ।

दुन्दुभिर्नाभिश्चोक्तविषयादन्यत्र पुंसि स्तः । नाभिः क्षत्रियः । कथं तर्हि 'समुल्लसत्पङ्कजपत्रकोमलैरुपाहितश्रीष्युपनीविनाभिभिरि'ति भारविः । उच्यते । दृढभक्तिरित्यादाविव कोमलैरिति सामान्ये नपुंसकं बोध्यम् । वस्तुतस्तु 'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्ये'ति भाष्यात्पुंस्त्वमपीह साधु । अत एव 'नाभिर्मुख्यनृपे चक्रमध्यक्षत्रिययोः पुमान् । द्वयोः प्राणिप्रतीके स्यात् स्त्रियां कस्तूरिकामदे' इति मेदिनी । रभसोऽप्याह—'मुख्यराट्क्षत्रिये नाभिः पुंसि प्राण्यङ्गके द्वयोः । चक्रमध्ये प्रधाने च स्त्रियां कस्तूरिकामदे' इति । एवमेवंविधेऽन्यत्रापि बोध्यम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुन्दुभि एवं नाभिशब्द पूर्व वर्णित से भिन्न अर्थ में पुंल्लिङ्ग है। यथा नाभिः क्षत्रियः। मारविप्रयोग में 'सामान्ये नपुंसकम्' से वृद्धं भक्तिर्यस्य की तरह उपपत्ति करनी चाहिये। वस्तुतः लिङ्गबोधक वचनों का भगवान् भाष्यकार ने खण्डन किया है और कहा है कि लिङ्ग ज्ञान कोश में एवं लोकतः हो जायगा तदर्थ सूत्र एवं वार्तिक-निर्माण प्रयास व्यर्थ है। अतः स्त्रीलिङ्ग न कर पुंल्लिङ्ग में भी क्वचित् साधु है। रभसकोषकार एवं मेदिनीकार ने भी कहा है कि प्राण्यङ्ग में नाभि दो लिङ्गक है।

१७ तलन्तः।

अयं स्त्रियां स्यात्। शुक्लस्य भावः शुक्लता। ब्राह्मणस्य कर्म ब्राह्मणता। ग्रामाणां समूहो ग्रामता। देव एव देवता।

तल् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में है।

१८ भूमिविद्युत्सरिल्लतावनिताभिधानानि।

भूमिर्भूः। विद्युत्सौदामनी। सरिन्निम्नगा। लता वल्ली। वनिता योषित्।

भूमि, विद्युत्, सरित्, लता, वनितावाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग है।

१९ यादो नपुंसकम्।

यादःशब्दः सरिद्वाचकोऽपि क्लीबं स्यात्।

यादस् शब्द नदी वाचक नपुंसक है।

२० भास्त्रुक्स्रग्दिगुष्णिगुपानहः।

एते स्त्रियां स्युः। इयं भा इत्यादि।

भास्, स्रुच्, स्रज्, दिश्, उष्णिह्, उपानह् ये स्त्रीलिङ्ग हैं।

२१ स्थूणोर्णे नपुंसके च।

एते स्त्रियां क्लीबे च स्तः। स्थूणा। स्थूणम्। ऊर्णा। ऊर्णम्। तत्र स्थूणा काष्ठमयी द्विकर्णिका। ऊर्णा तु मेषादिलोम।

स्थूणा एवं ऊर्ण नपुंसक एवं स्त्रीलिङ्ग है। मेष आदि के लोम को ऊर्णा कहते हैं।

२२ गृहशशाभ्यां क्लीबे।

नियमार्थमिदम्। गृहशशपूर्वे स्थूणोर्णे यथासंख्यं नपुंसके स्तः। गृहस्थूणम्। 'शशोर्णं शशलोमनी'त्यमरः।

गृह से पर स्थूणा एवं शश से पर ऊर्णा नपुंसक है। यह सूत्र नियमार्थ है कि गृह एवं शश से पर स्थूणा एवं ऊर्णा नपुंसक ही हैं।

२३ प्रावृड्विप्रुड्रुट्तृड्विट्त्विषः।

एते स्त्रियां स्युः।

प्रावृट्, विप्रुष्, रुष्, तृष्, विश्, त्विष् शब्द का स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२४ दर्विविदिवेदिखनिशान्यश्रिवेशिकृष्योषधिकटयङ्गुलयः ।

एते स्त्रियां स्युः । पक्षे ङीप् । दर्वी । दर्विरित्यादि ।

दर्वि, विदि, वेदि, खनि, शानि, अश्रि, वेशि, कृषि, ओषधि, कटि, अङ्गुलि, ये स्त्रीलिङ्ग हैं एवं विकल्प से ङीप् होता है ।

२५ तिथिनाडिरुचिवीर्यनालिधूलिकिकिकेलिच्छविरात्र्यादयः ।

एते प्राग्वत् । इयं तिथिरित्यादि । अमरस्त्वाह–'तिथयो द्व्योरि'ति । तथा च भारविः—'तस्य भुवि बहुतिथास्तिथय' इति । स्त्रीत्वे हि बहुतिथ्य इति स्यात् । श्रीहर्षश्च 'निखिलान्निशि पौणिमातिथीनि'ति ।

तिथि, नाडि, रुचि, वीर्य, नालि, धूलि, किकि, केलि, छवि, रात्रि आदि शब्द का स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग होता है । अमरकार तिथि का दो लिङ्ग मानते हैं । तिथयः । तिथ्यः । श्रीहर्ष ने तिथीन् भी कहा है ।

२६ शष्कुलिराजिकुट्यशनिवर्तिभ्रुकुटित्रुटिवलिपङ्क्तयः ।

एतेऽपि स्त्रियां स्युः । इयं शष्कुलिः ।

शष्कुलि, राजि, कुटि, अशनि, वर्त्ति, भ्रुकुटि, त्रुटि, वलि, पङ्क्ति ये स्त्रीलिङ्ग हैं ।

२७ प्रतिपदापद्विपत्सम्पच्छरत्संसत्परिषदुषः संवित् क्षुत्पुन्मुत्समिधः ।

इयं प्रतिपदित्यादि । उषा उच्छन्ती । उषाः प्रातरधिष्ठात्री देवता ।

प्रतिपद, आपत, विपत, सम्पत, शरद, संसद, परिषद, उषस्, संवित, श्रुत, पुत, मुत, समिध् ये शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं ।

२८ आशीर्धूः–पूर्गीर्द्वारः ।

इयमाशीरित्यादि ।

आशिष्, धुर्, पुर्, गिर्, द्वार ये स्त्रीलिङ्ग हैं ।

२९ अप्सुमनस्समासिकतावर्षाणां बहुत्वं च ।

अबादीनां पञ्चानां स्त्रीत्वं स्याद् बहुत्वं च । आप इमाः । 'स्त्रियः सुमनसः पुष्पम्' । 'सुमना मालती जातिः' । देववाची तु पुंस्येव । 'सुपर्वाणः सुमनसः' । बहुत्वं । प्रायिकम् । 'एका च सिकता तैलदाने असमर्थे'ति अर्थवत्सूत्रे भाष्यप्रयोगात् 'समांसमां विजायते' (सू० १८१३) इत्यत्र समायां समायामिति भाष्याच्च । 'विभाषा घ्राधेट्' इति (सू० २३७६) इति सूत्रे 'अघ्रासातां सुमनसा'विति वृत्तिव्याख्यायां हरदत्तोऽप्येवम् ।

अप्, सुमनस्, समा, सिकता, वर्षा ये स्त्रीलिङ्ग हैं एवं बहुवचन में प्रयुक्त हैं । पुष्पवाचक सुमनस् स्त्रीलिङ्ग है । देवता वाचक सुमनस् पुंलिङ्ग है । इनका बहुत्वविधान प्रायिक है । एका सिकता एका यह भी प्रयोग है । समायाम् समायाम् भाष्य में एकवचनान्त प्रयुक्त है । सुमनसौ प्रयोग भी वृत्तिग्रन्थ में श्री हरदत्तोक्त है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३० स्रक्त्वग्ज्योग्वाग्यवागूनौस्फिजः ।

इयं स्रक् त्वक् ज्योक् वाक् यवागूः नौः स्फिक् ।

स्रज्, त्वच्, ज्योक्, वाच्, यवागू, नौ, स्फिच् शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त हैं ।

३१ तृटिसीमासम्बध्याः ।

इयं तृटिः । सीमा । सम्बध्या ।

तृटि, सीमा, सम्बन्ध्या ये स्त्रीलिङ्ग हैं ।

३२ चुल्लिवेणिखार्यश्च ।

स्पष्टम् ।

चुल्लि, वेणि, खारि स्त्रीलिङ्ग में हैं ।

३३ ताराधाराज्योत्स्नादयश्च ।

तारा, धारा, ज्योत्स्ना, आदि स्त्रीलिङ्ग हैं ।

३४ शलाका स्त्रियां नित्यम् ।

नित्यग्रहणमन्येषां क्वचिद्व्यभिचारं ज्ञापयति ।

शलाका नित्य स्त्रीलिङ्ग है । यहाँ नित्य ग्रहण से अन्य शब्दों में स्त्रीलिङ्गत्व व्यभिचरित भी है अर्थात् स्त्रीत्व है एवं क्वचित् नहीं भी है ।

इति स्त्र्यधिकारः ।

पं० श्री वा० कृ० पञ्चोलि-विरचित रत्नप्रभा में स्त्रीलिङ्ग-प्रकरण समाप्त ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ पुंल्लिङ्गाधिकारः

३५ पुमान् ।

अधिकारोऽयम् ।

यहाँ से पुंल्लिङ्ग का अधिकार है ।

३६ घञबन्तः ।

पाकः । त्यागः । करः । गरः । भावार्थ एवेदम् । नपुंसकत्वविशिष्टे भावे क्तल्युड्भ्यां, स्त्रीत्वविशिष्टे तु क्तिन्नादिभिर्बाधेन परिशेषात् । कर्मादौ तु धञाद्यन्तमपि विशेष्यलिङ्गम् । तथा च भाष्यम्–'सम्बन्धमनुवर्तिष्यते' इति ।

घञ् एवं अप् प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग है । यथा—पाकः, त्यागः, करः । भाववाच्य घञ् एवं अप् तदन्त ही पुंल्लिङ्ग है । अतः शेषम् पुंवत् आदि प्रयोगों की सिद्धि हुई । नपुंसकत्वविशिष्ट भाव में क्त एवं ल्युट् प्रत्यय, एवं स्त्रीत्वविशिष्ट भाव में क्तिन् प्रत्यय आदि बाधक हो जायेगें । कर्मादिवाच्य घञन्तादि विशेष्याधीन लिङ्गक है । कर्म वाच्य घञन्त 'सम्बन्ध' में नपुंसक प्रयोग 'सम्बन्धम् अनुवर्तिष्यते' ऐसा किया है ।

३७ घाऽजन्तश्च ।

विस्तरः । गोचरः । चयः । जय इत्यादि ।

घप्रत्ययान्त, अच्प्रत्ययान्त पुंल्लिङ्ग हैं ।

३८ भयलिङ्गभगपदानि नपुंसके ।

एतानि नपुंसके स्युः । भयम् । लिङ्गम् । भगम् । पदम् ।

भय, लिङ्ग, भग, पद ये नपुंसक हैं ।

३९ नङन्तः ।

नङ्प्रत्ययान्तः पुंसि स्यात् । यज्ञः । यत्नः ।

नङ् प्रत्ययान्त पुंल्लिङ्ग है ।

४० याच्ञा स्त्रियाम् ।

पूर्वस्याऽपवादः ।

यञ्ञा स्त्रीलिङ्ग है ।

४१ क्यन्तो घुः ।

किप्रत्ययान्तो घुः पुंसि स्यात् । आधिः । निधिः । उदधिः । क्यन्तः किम् ? दानम् । घुः किम् ? जङ्घिर्बीजम् ।

किप्रत्ययान्त घुसंज्ञक धातु से निष्पन्न शब्द पुंल्लिङ्ग है । आधिः, निधिः, उदधिः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४२ इषुधिः स्त्री च ।

इषुधिशब्दः स्त्रियां पुंसि च । पूर्वस्यापवादः ।

इषुधि पुंल्लिङ्ग एवं स्त्रीलिङ्ग है । पूर्वसूत्र का यह अपवाद है ।

४३ देवासुरात्मस्वर्गगिरिसमुद्रनखकेशदन्तस्तनभुजकण्ठखड्ग-शरपङ्काभिधानानि ।

एतानि पुंसि स्युः । देवाः सुराः । असुरा दैत्याः । आत्मा क्षेत्रज्ञः । स्वर्गो नाकः । गिरिः पर्वतः । समुद्रोऽब्धिः । नखः कररुहः । केशः शिरोरुहः । दन्तो दशनः । स्तनः कुचः । भुजो दोः । कण्ठो गलः । खड्गः करवालः । शरो मार्गणः । पङ्कः कर्दम इत्यादि ।

देव, असुर, आत्मन्, स्वर्ग, गिरि, समुद्र, नख, केश, दन्त, स्तन, भुज, कण्ठ, खड्ग, शर, पङ्कवाचक ये सब शब्द पुंल्लिङ्ग हैं ।

४४ त्रिविष्टपत्रिभुवने नपुंसके ।

स्पष्टम् । तृतीयं [illegible] त्रिविष्टपम् । स्वर्गाभिधानतया पुंस्त्वे प्राप्ते अयमारम्भः ।

त्रिविष्टप एवं त्रिभुवन शब्द नपुंसक लिङ्ग हैं । स्वर्ग के समानार्थक होने से पुंस्त्व प्राप्त था अतः यह वचन है ।

४५ द्यौः स्त्रियाम् ।

द्योदिवोस्तन्त्रेणोपादानमिदम् ।

द्यो एवं दिव् स्त्रीलिङ्ग है ।

४६ इषुबाहू स्त्रियां च ।

चात्पुंसि ।

इषु, बाहु स्त्रीलिङ्ग हैं । चकार से पुंल्लिङ्ग भी है ।

४७ बाणकाण्डौ नपुंसके च ।

चात्पुंसि । 'त्रिविष्टपे'त्यादिचतुःसूत्री 'देवासुरे'त्यस्यापवादः ।

बाण एवं काण्ड नपुंसक एवं चकार से पुंल्लिङ्ग भी हैं । त्रिविष्टपादि चार सूत्र 'देवासुर' के बाधक हैं ।

४८ नान्तः ।

अयं पुंसि । राजा । तक्षा । न च चर्मवर्मादिष्वतिव्याप्तिः 'मन्द्रयच्कोऽकर्तरी'ति नपुंसकप्रकरणे वक्ष्यमाणत्वात् ।

नकारान्त शब्द पुंल्लिङ्ग है । राजा । तक्षा । चर्मन्, वर्मन् आदि में इससे अतिव्याप्त नहीं है । क्योंकि मन् प्रत्ययान्त दो अच् युक्त शब्द नपुंसक ही है । कर्तृवाच्य में नहीं, ऐसा नपुंसक प्रकरण में कहेंगे ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४९ क्रतुपुरुषकपोलगुल्फमेघाभिधानानि ।

क्रतुरध्वरः । पुरुषो नरः । कपोलो गण्डः । गुल्फः प्रपदः । मेघो नीरदः ।

ऋतु, पुरुष, कपोल, गुल्फ, मेघवाचक शब्द पुंल्लिङ्ग हैं ।

५० अभ्रं नपुंसकम् ।

पूर्वस्यापवादः ।

अभ्र नपुंसक में है । यह पूर्व का अपवाद है ।

५१ उकारान्तः ।

अयं पुंसि स्यात् । प्रभुः । इक्षुः । 'हनुर्हट्टविलासिन्यां नृत्यारम्भे गदे स्त्रियाम् । द्वयोः कपोलावयवे' इति मेदिनी । 'करेणुरिभ्यां स्त्री नेभे' इत्यमरः । एवं जातीयकविशेषवचनाऽनाक्रान्तस्तु प्रकृतसूत्रस्य विषयः । उक्तं च । 'लिङ्गशेषविधिर्व्यापी विशेषैर्यद्यबाधित' इति । एवमन्यत्रापि ।

उकारान्त शब्द पुंल्लिङ्ग है । हट्ट विलासिनी = वाराङ्गना, नृत्यारम्भ एवं रोग में 'हनु' स्त्रीलिङ्ग है । कपाल के अवयव में हनुः पुंल्लिङ्ग एवं स्त्रीलिङ्ग है । करेणु शब्द हस्तिनी अर्थ में हस्ती वाचक पुंल्लिङ्ग है । विशेष वचन से अबाधित उकारान्त इस सूत्र से पुंल्लिङ्ग है । ऐसा अन्यत्र भी समझना चाहिए ।

५२ धेनुरज्जुकुहूसरयुतनुरेणुप्रियङ्गवः स्त्रियाम् ।

धेनु, रज्जु, कुहू, सरयु, तनु, रेणु, प्रियङ्गु ये शब्द स्त्रीलिग हैं।

५३ समासे रज्जुः पुंसि च ।

कर्कटरज्ज्वा । कर्कटरज्जुना ।

परन्तु समास में रज्जु शब्द पुंल्लिङ्ग है ।

५४ श्मश्रुजानुवसुस्वाद्वश्रुजतुत्रपुतालूनि नपुंसके ।

श्मश्रु, जानु, वसु, स्वादु, अश्रु, जतु, त्रपु, तालु, ये शब्द नपुंसक हैं ।

५५ वसु चार्थवाचि ।

अर्थवाचीति किम् ? 'वसुर्मयूखाग्निधनाधिपेषु' ।

धनवाचक वसु शब्द नपुंसक है ।

५६ मद्गुमधुसीधुशीधुशीघ्रसानुकमण्डलूनि नपुंसके ।

चात्पुंसि । अयं मद्गुः । इदं मद्गु ।

मद्गु, मधु, सीधु, शीधु, शीघ्र, सानु, कमण्डलु, ये नपुंसक एवं चकार से पुंल्लिङ्ग हैं ।

५७ रुत्वन्तः ।

मेरुः । सेतुः ।

रु एवं तु शब्द ये जिनके अन्त में रहें, वे शब्द पुंल्लिङ्ग हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५८ दारुकसेरुजत्रुवस्तुमस्तूनि नपुंसके ।

रुत्वन्त इति पुंस्त्वस्यापवादः । इदं दारु ।

दारु, कसेरु, जत्रु, वस्तु, ये नपुंसक हैं । यह पूर्वसूत्रापवाद है ।

५९ सक्तुर्नपुंसके च ।

चात्पुंसि । सक्तुः । सक्तु ।

सक्तु शब्द नपुंसक एवं चकार से पुंल्लिङ्ग है ।

६० प्राग्रश्मेरकारान्तः ।

'रश्मिर्दिवसाभिधानानी'ति वक्ष्यति । प्रागेतस्मादकारान्त इत्यधिक्रियते ।

'रश्मिर्दिवसाभिधानम्' इस सूत्र के पूर्व तक 'अकारान्त' का अधिकार है ।

६१ कोपधः ।

कोपधोऽकारान्तः पुंसि स्यात् । स्तबकः । कल्कः ।

ककारोपध अकारान्त शब्द पुंल्लिङ्ग है ।

६२ चिबुकशालूकप्रातिपदिकांशुकोल्मुकानि नपुंसके ।

पूर्वसूत्रापवादः ।

कोपध अकारान्त चिबुक, शालूक, प्रातिपदिक, अंशुक, उल्मुक ये शब्द नपुंसक हैं । यह सूत्र पूर्व सूत्र का निषेधक है ।

६३ कण्टकानीकसरकमोदकचषकमस्तकपुस्तकतडाकनिष्कशुष्क-वर्चस्कपिनाकभाण्डकपिण्डककटकशण्डकपिटकतालकफलक-पुलाकानि नपुंसके च ।

चात्पुंसि । अयं कण्टकः । इदं कण्टकमित्यादि ।

कोपध अकारान्त कण्टक, अनीक, सरक, मोदक, चषक, मस्तक, पुस्तक, तडाक, निष्क, शुष्क, वर्चस्क, पिनाक, भाण्डक, पिण्डक, कटक, शण्डक, पिटक, तालक, फलक ये शब्द नपुंसक एवं पुंल्लिङ्ग हैं ।

६४ टोपधः ।

टोपधोऽकारान्तः पुंसि स्यात् । घटः । पटः ।

अकारान्त टकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग है ।

६५ किरीटमुकुटललाटवटविटशृङ्गाटकराटलोष्टानि नपुंसके ।

किरीटमित्यादि ।

अकारान्त टोपध किरीट, मुकुट, ललाट, वट, वीट, शृंगाट, कराट, कोष्ट ये नपुंसक हैं ।

६६ कुटकूटकपटकवाटकर्पटनटनिकटकोटकटानि नपुंसके च ।

चात्पुंसि । कुटः । कुटमित्यादि ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अकारान्त टकारोपध कुट, कूट, कपट, कपाट, कपर्ट, नट, निकट, कीट, कट ये शब्द नपुंसक एवं पुंल्लिङ्ग है।

६७ णोपधः।

णोपधोऽकारान्तः पुंसि स्यात्। गुणः। गणः। पाषाणः।

अकारान्त णकारोपध पुंल्लिङ्ग है।

६८ ऋणलवणपर्णतोरणरणोष्णानि नपुंसके।

पूर्वसूत्राऽपवादः।

अकारान्त णोपध ऋण, लवण, पर्ण, तोरण, रण, उष्ण ये नपुंसक हैं। यह सूत्र पूर्व योग का अपवाद है।

६९ कार्षापणस्वर्णसुवर्णव्रणचरणवृषणविषाणचूर्णतृणानि नपुंसके च चात्पुंसि।

अकारान्त णकारोपध कार्षापण, स्वर्ण, सुवर्ण, व्रण, चरण, वृषण, विषाण, चूर्ण, तृण नपुंसक एवं पुंल्लिङ्ग हैं।

७० थोपधः।

रथः।

अकारान्त थकारोपध पुंल्लिङ्ग है।

७१ काष्ठपृष्ठसिक्थोक्थानि नपुंसके।

इदं काष्ठमित्यादि।

अकारान्त काष्ठ, पृष्ठ, सिक्थ, उक्थ ये शब्द नपुंसक हैं।

७२ काष्ठा दिगर्था स्त्रियाम्।

इमाः काष्ठाः।

दिग्वाचक काष्ठा स्त्रीलिङ्ग है।

७३ तीर्थप्रोथयूथगाथानि नपुंसके च।

चात्पुंसि। अयं तीर्थः। इदं तीर्थम्।

अकारान्त थकारोपध तीर्थ, प्रोथ, यूथ, गाथ, पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक हैं।

७४ नोपधः।

अदन्तः पुंसि। इनः। फेनः।

अकारान्त नकारोपध पुंल्लिङ्ग है।

७५ जघनाजिनतुहिनकाननवनवृजिनविपिनवेतनशासनसोपान-मिथुनश्मशानरत्ननिम्नचिह्नानि नपुंसके।

पूर्वस्याऽपवादः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अकारान्त नकारोपध जघन, अजिन, तुहिन, कानन, वन, वृजिन, विपिन, वेतन, शासन, सोपान, भिषुन, श्मशान, रत्न, निम्न, चिन्ह ये नपुंसक हैं। यह पूर्व सूत्र का बाधक है।

७६ मानयानाभिधाननलिनपुलिनोद्यानशयनासनस्थानवन्दनाऽऽलानसमानभवनवसनसम्भावनविभावनविमानानि नपुंसके च।

चात्पुंसि। अयं मानः। इदं मानम्।

अकारान्त नकारोपध मान, थान, अभिधान, नलिन, पुलिन, उद्यान, शयन, आसन, स्थान चन्दन, आलान, सम्मान, भवन, वसन, संभावन, विभावन, विमान, वे शब्द नपुंसक एवं पुंल्लिङ्ग हैं। अयं मानः। इदं मानम् आदि।

७७ पोपधः।

अदन्तः पुंसि। यूपः। दीपः।

अकारान्त पकारोपध पुंल्लिङ्ग है।

७८ पापरूपोडुपतल्पशिल्पपुष्पशष्पसमीपाऽन्तरीपाणि नपुंसके।

इदं पापमित्यादि।

अकारान्त पकारोपध पाप, रूप, उडुप, तल्प, शिल्प, पुष्प, शष्प, समीप, अन्तरीप ये शब्द नपुंसक हैं।

७९ शूर्पकुतपकुणपद्वीपविटपानि नपुंसके च।

अयं शूर्पः। इदं शूर्पमित्यादि।

अकारान्त पकारोपध शूर्प, कुतप, कुणप, द्वीप, विटप, नपुंसक एवं चकार से पुंल्लिङ्ग हैं।

८० भोपधः।

स्तम्भः।

अकारान्त भकारोपध पुंल्लिङ्ग है।

८१ तलभं नपुंसकम्।

पूर्वस्याऽपवादः।

अकारान्त तलभ, नपुंसक है। पूर्वसूत्र का यह बाधक है।

८२ जृम्भं नपुंसके च।

जृम्भम्। जृम्भः।

अकारान्त जृम्भ नपुंसक है, एवं चकार से पुंल्लिङ्ग भी है।

८३ मापधः।

सोमः। भीमः।

अकारान्त मकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

८४ रुक्मसिध्मयुग्मेध्मगुल्माध्यात्मकुङ्कुमानि नपुंसके ।

इदं रुक्ममित्यादि ।

अकारान्त मकारोपध रुक्म, सिध्म, युग्म, इध्म गुल्म, अध्यात्म, कंकुम, नपुंसक हैं ।

८५ सग्रामदाडिमकुसुमाश्रमक्षेमक्षौमहोमोद्दामानि नपुंसके च ।

चात्पुंसि । अयं संग्रामः । इदं संग्रामम् ।

अकारान्त मकारोपध संग्राम, दाडिम, कुसुम, आश्रम, क्षेम, क्षौम, होम, उद्दाम, नपुंसक एवं चकार से पुंल्लिङ्ग हैं ।

८६ योपधः ।

समयः । हयः ।

अकारान्त यकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग है ।

८७ किसलयहृदयेन्द्रियोत्तरीयाणि नपुंसके ।

स्पष्टम् ।

अकारान्त यकारोपध किसलय, हृदय, इन्द्रिय, उत्तरीय, नपुंसक हैं ।

८८ गोमयकषायमलयाऽन्वयाऽव्ययानि नपुंसके च ।

गोमयः । गोमयम् ।

अकारान्त यकारोपध गोमय, कषाय, मलय, अन्वय, अव्यय नपुंसक चकार से पुंल्लिङ्ग हैं ।

८९ रोपधः ।

क्षुरः । अंकुरः ।

अकारान्त रकारोपध पुंल्लिङ्ग है ।

९० द्वाराग्रस्फारतक्रवक्रवप्रक्षिप्रक्षुद्रनारतीरदूरकुच्छ्ररन्ध्राश्रश्वस्र-
भीरगभीरक्रूरविचित्रकेयूरकेदारोदराऽजस्रशरीरकन्दरमन्दार-
पञ्जराऽजरजठराऽजिरवैरचामरपुष्करगह्वरकुहरकुटीरकुलीर-
चत्वरकाश्मीरनीराम्बरशिशिरतन्त्रयन्त्रनक्षत्रक्षेत्रमित्रकलत्र-
चित्रमूत्रसूत्रवक्त्रनेत्रगोत्राङ्गुलित्रभलत्रशस्त्रशास्त्रवस्त्रपत्र-
पात्रच्छत्राणि नपुंसके ।

इदं द्वारमित्यादि ।

अकारान्त रोपध द्वार, अग्र, स्फार, तक्र, वक्र, वप्र, क्षिप्र, क्षुद्र, नार, तीर, दूर, कुच्छ्र, रन्ध्र, अश्र, श्वस्र, भीर, गम्भीर, क्रूर, विचित्र, केयूर, केदार, उदर, अजस्र, शरीर, कन्दर, मन्दार, पञ्जर, अजर, जठर, अजिर, वैर, चामर, पुष्कर, गह्वर, कुहर, कुटीर, कुलीर, चत्वर, काश्मीर, नीर, अम्बर, शिशिर, तन्त्र, यन्त्र, क्षत्र, क्षेत्र, मित्र, कलत्र, चित्र, मूत्र, वक्त्र, नेत्र, गोत्र, अङ्गुलित्र, चलत्र, अस्त्र, शस्त्र, शास्त्र, वस्त्र, पात्र, छत्र, ये शब्द नपुंसक है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

९१ शुक्रमदेवतायाम् ।

इदं शुक्रं रेतः ।

अकारान्त रकारोपध शुक्रशब्द देवताभिन्न अर्थ में नपुंसक है ।

९२ चक्रवज्रान्धकारसाराऽवारापारक्षीरतोमरशृङ्गारमन्दारोशीर-तिमिरशिशिराणि नपुंसके च ।

चात्पुंसि । चक्रः । चक्रमित्यादि ।

अकारान्त रकारोपध चक्र, वज्र, अन्धकार, सार, आवार, पार, क्षीर, तोमर, शृङ्गार, शृङ्गार, मन्दार, उशीर, तिमिर, शिशिर, ये नपुंसक एवं पुंल्लिङ्ग हैं ।

९३ षोपधः ।

वृषः । वृक्षः ।

अकारान्त षकारोपध पुंल्लिङ्ग है ।

९४ शिरीषर्जीषाऽम्बरीषपीयूषपुरीषकिल्विषकल्माषाणि नपुंसके ।

शिरीष, ऋजीष, अम्बरीष, पीयूष, पुरीष, किल्विष, कल्माष, नपुंसक हैं ।

९५ यूषकरीषमिषविषवर्षाणि नपुंसके च ।

चात्पुंसि । अयं यूषः । इदं यूषमित्यादि ।

यूष, करीष, मिष, विष, वर्ष, ये शब्द नपुंसक एवं पुंल्लिङ्ग हैं ।

९६ सोपधः ।

वत्सः । वायसः । महानसः ।

अकारान्त सकारोपध पुंल्लिङ्ग है ।

९७ पनसबिसबुससाहसानि नपुंसके ।

पनस, बिस, बुस, साहस, नपुंसक हैं ।

९८ चमसांऽसरसनिर्यासोपवासकार्पासवासमासकासकांसमांसानि नपुंसके च ।

इदं चमसम् । अयं चमस इत्यादि ।

चमस, अंस, रस, निर्यास, उपवास, कार्पास, वास, मास, कास, कांस, मांस नपुंसक एवं पुंल्लिङ्ग हैं ।

९९ कंसे चाऽप्राणिनि

'कंसोऽस्त्री पानभाजनम्' । प्राणिनि तु कंसो नाम कश्चिद्राजा ।

अप्राणी अर्थ में कंस नपुंसक एवं पुंल्लिङ्ग भी है ।

१०० रश्मिदिवसाभिधानानि ।

एतानि पुंसि स्युः । रश्मिर्मयूखः दिवसो घस्रः

❀ मुमुक्षु भवन वेद वेदा
वा रा ण सी
आगत क्रमांक.....2261
दिनांक.....
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रश्मि एवं दिवसवाचक शब्द पुंल्लिङ्ग है।

१०१ दीधितिः स्त्रियाम्।

पूर्वस्यापवादः।

दीधिति शब्द स्त्रीलिङ्ग है। यह सूत्र पूर्व सूत्र का बाधक है।

१०२ दिनाऽहनी नपुंसके।

अयमप्यपवादः।

दिन एवं अहन् नपुंसक है। यह भी बाधक सूत्र है।

१०३ मानाभिधानानि।

एतानि पुंसि स्युः। कुडवः। प्रस्थः।

मानवाचक शब्द पुंल्लिङ्ग है।

१०४ द्रोणाढकौ नपुंसके च।

इदं द्रोणम्। अयं द्रोणः।

द्रोण एवं आढक वाचक शब्द नपुंसक एवं पुंल्लिङ्ग है।

१०५ खारीमानिके स्त्रियाम्।

इयं खारी। इयं मानिका।

खारी एवं मानिका स्त्रीलिङ्ग है।

१०६ दाराऽक्षतलाजाऽसूनां बहुत्वं च।

इमे दाराः।

दार, अक्षत, लाज, असु ये बहुवचनान्त होते हैं एवं पुंल्लिङ्ग हैं।

१०७ नाड्यपजनोपपदानि व्रणाङ्गपदानि।

यथासंख्यं नाड्याद्युपपदानि व्रणादीनि पुंसि स्युः। अयं नाडीव्रणः। अपाङ्गः जनपदः। व्रणादीनामुभयलिङ्गत्वेऽपि क्लीवत्वानुवृत्त्यर्थं सूत्रम्।

नाडी, अप, जन शब्द उपपद रहते क्रमसे व्रण, अङ्ग, पद शब्द पुंल्लिङ्ग है। उभय लिङ्ग युक्त व्रतादि है यह सूत्र नपुंसत्व की निवृत्ति के लिए है।

१०८ मरुद्धरुत्तरदृत्विजः।

अयं मरुत्।

मरुत्, गरुत्, तरत्, ऋत्विज् ये पुंल्लिङ्ग हैं।

१०९ ऋषिराशिदृतिग्रन्थिक्रिमिध्वनिबलिकौलिमौलिरविकविकपि-मुनयः।

एते पुंसिः स्युः। अयमृषिः।

ऋषि, राशि, दृति, ग्रन्थि, क्रिमि, ध्वनि, बलि, कौलि, मौलि, रवि, कवि, कपि, मुनि, पुंल्लिङ्ग है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

११० ध्वजगजमुञ्जपुञ्जाः ।

एते पुंसि ।

ध्वज, गज, मुञ्ज, पुञ्ज पुंल्लिङ्ग है ।

१११ हस्तकुन्तान्तव्रणवातदूतधूर्तसूतचूतमुहूर्ताः ।

एते पुंसि । अमरस्तु 'मुहूर्तोऽस्त्रिया'मित्याह ।

हस्त, कुन्त, अन्त, व्रात, वात, दूत, धूर्त, सूत, चूत, मुहूर्त पुंल्लिङ्ग है । अमरकार मुहूर्त को स्त्रीलिङ्गत्व का ही प्रतिषेध करते है, अत पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसकलिङ्गक मुहूर्त है ।

११२ षण्डमण्डकरण्डभण्डवरण्डतुण्डगण्डमुण्डपाषण्डशिखण्डाः ।

अयं षण्डः ।

षण्ड, मण्ड, करण्ड, भरण्ड, वरण्ड, तुण्ड, गण्ड, मुण्ड, पाषण्ड, शिखण्ड पुंल्लिङ्ग है ।

११३ वंशांशपुरोडाशाः

अयं वंशः । पुरो दाश्यते पुरोडाशः । कर्मणि घञ् भवव्याख्यानयोः प्रकरणे 'पौरोडाशपुरोडाशात्ष्ठन्' (सू १४४६) इति विकारप्रकरणे 'व्रीहेः पुरोडाशे' (सू १५२८) इति च निपातनात्प्रकृतसूत्र एव निपातनाद्वा दस्य डत्वम् । 'पुरोडाशभुजामिष्ट'मिति माघः ।

वंश, अंश, पुरोडाश पुंल्लिङ्ग है । पुरोडाश में कर्म में घञ् है । भव एवं व्याख्यान प्रकरण में 'पुरोडाश' सूत्र में विकार में 'व्रीहेः पुरोडाशे' निपातन से अथवा प्रकृत सूत्र में निपातन से दकार के स्थान में डकार हुआ । माघ कवि ने 'पुरोडाशभुजाम् इष्टम्' कहा है ।

११४ ह्रदकन्दकुन्दबुद्बुदशब्दाः ।

अयं ह्रदः ।

ह्रद, कन्द, कुन्द, बुदबुद, पुंल्लिङ्ग है ।

११५ अर्घपथिमथ्यृभुक्षिस्तम्बनितम्बपूगाः ।

अयमर्घः ।

अर्घ, पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन्, स्तम्ब, नितम्ब, पूग, पुंल्लिङ्ग है ।

११६ पल्लवपल्वलकफरेफकटाहनिर्व्यूहमठमणितरङ्गतुरङ्गगन्ध-
मृदङ्गसङ्गसमुद्गपुङ्गाः ।

अयं पल्लव इत्यादि ।

अल्लव, पल्वल, कफ, रेफ, कराह, निर्व्यूह, शठ, मणि, तरंग, गन्ध, स्कन्ध, मृदंग, सङ्ग, समुद्र पुङ्ग, पुंल्लिङ्ग है ।

११७ सारथ्यतिथिकुक्षिबस्तिपाण्यञ्जलयः।

एते पुंसि । अयं सारथिः ।

इति पुल्लिङ्गाधिकारः ।

सारथि, अतिथि, कुक्षि, वस्ति, पाणि, अञ्जलि ये शब्द पुंल्लिङ्ग है ।

पं० श्रीबालकृष्णपञ्चोलि विरचित रत्नप्रभा में पुंल्लिङ्गाधिकार समाप्त ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ नपुंसकाधिकारः

११८ नपुंसकम् ।

अधिकारोऽयम् ।

यहां से नपुंसक का अधिकार प्रारम्भ होता है ।

११९ भावे ल्युडन्तः ।

हसनम् । भावे किम् ? पचनोऽग्निः । इध्मप्रव्रश्चनः कुठारः ।

भावार्थक ल्युट् प्रत्ययान्त शब्द नपुंसक है ।

१२० निष्ठा च ।

भावे या निष्ठा तदन्तं क्लीबं स्यात् । हसितम् । गीतम् ।

भावार्थक निष्ठाप्रत्ययान्त नपुंसक है ।

१२१ त्वष्यञौ तद्धितौ ।

शुक्लत्वम् । शौक्ल्यम् । ष्यञः षित्त्वसामर्थ्यात्पक्षे स्त्रीत्वम् । चातुर्यम् । चातुरी । सामग्र्यम् । सामग्री । औचित्यम् । औचिती ।

तद्धितत्व एवं ष्यञ् प्रत्ययान्त नपुंसक है । ष्यञ् के षित्त्व सामर्थ्य से पक्ष में स्त्रीलिङ्ग से ङीष् होता है । चातुरी । सामग्री । औचिती ।

१२२ कर्मणि च ब्राह्मणादिगुणवचनेभ्यः ।

ब्राह्मणस्य कर्म ब्राह्मण्यम् ।

कर्म में ब्राह्मणादि शब्द एवं गुणवाचक शब्द से पर ष्यञ् तदन्त शब्द नपुंसक है । ब्राह्मण्यम् ।

१२३ यद्यढग्यगञवुञ्छाश्च भावकर्मणि ।

एतदन्तानि क्लीबानि । 'स्तेनाद्यन्नलोपश्च' (सू १७६०) । स्तेयम् । 'सख्युर्यः' (सू १७६१) । सख्यम् । 'कपिज्ञात्योर्ढक्' (सू १७६२) । कापेयम् । 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्' (सू १७६३) । आधिपत्यम् । 'प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्' (सू १७६४) । औष्ट्रम् । 'हायनान्तयुवादिभ्योऽण्' (सू १७६५) द्वैहायनम् । 'द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यो वुञ्' (सू १७६८) । पिता-पुत्रकम् । 'होत्राभ्यश्छः' (सू १८००) । अच्छावाकीयम् । 'अव्ययीभावः' (सू ६५६) अधिस्त्रि ।

भाव, कर्म, में यत् य ढक्, यक् अञ् अण् वुञ् छ तदन्तनपुंसक है । स्नेत से उत्तर यत्प्रत्यय होता है एवं नकार का लोप भी होता है । स्तेनस्य भावः स्तेयम् सखि × य सूत्र-सख्यु र्यः । कपि × ढक् कपिज्ञात्योर्ढक् । कापेयम् । अधिपति × यक् आधिपत्यम् । औष्ट्रम् अञ् । द्वैहायनम् अण् । पिता-पुत्रकम्—वुञ् । अच्छावाकीयम् छ । अधिस्त्रि—अव्ययीभाव समास है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१२४ द्वन्द्वैकत्वम् ।

पाणिपादम् ।

समाहार द्वन्द्व में नपुंसक होता है, एवं एकवचनान्तत्व का प्रयोग भी ।

१२५ अभाषायां हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च ।

स्पष्टम् ।

भाषाभिन्नार्थ में एवं अहोरात्रार्थ में हेमन्त एवं शिशिर शब्द पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक है ।

१२६ अनञ्कर्मधारयस्तत्पुरुषः ।

अधिकारोऽयम् ।

यहां से अनञ्, कर्मधारय, तत्पुरुष का अधिकार आरम्भ होता है ।

१२७ अनल्पे छाया ।

शरच्छायम् ।

अल्पभिन्नार्थक में समासान्त छाया शब्द नपुंसकलिङ्ग है ।

१२८ राजाऽमनुष्यपूर्वा सभा ।

इनसभमित्यादि ।

राजपूर्वक, मनुष्यपूर्वक सभा नपुंसक है ।

१२९ सुरासेनाच्छायाशालानिशाः स्त्रियां च ।

सुरा, सेना, छाया, शाला, निशा स्त्रीलिङ्ग एवं नपुंसक है ।

१३० परवत् ।

अन्यस्तत्पुरुषः परवल्लिङ्गः स्यात् । रात्राह्नाहाः पुंसि ।

अन्य तत्पुरुष में परवत्लिङ्ग होता है । रात्र अह्न, अह वे अन्त में रहें तब पुंल्लिङ्ग होता है ।

१३१ अपथपुण्याहे नपुंसके ।

अपथ एवं पुण्याह नपुंसक है ।

१३२ संख्यापूर्वा रात्रिः ।

त्रिरात्रम् । संख्यापूर्वेति किम् ? सर्वरात्रः ।

संख्यावाचक शब्द पूर्वक रात्रि शब्दान्त समास नपुंसक है । संख्यापूर्वक जहाँ नहीं है वहाँ रात्रि शब्द पुंल्लिङ्ग है ।

१३३ द्विगुः स्त्रियां च ।

व्यवस्थया । पञ्चमूली । त्रिभुवनम् ।

द्विगुसमास स्त्रीलिङ्ग एवं नपुंसकलिङ्ग है ।

१३४ इसुसन्तः ।

हविः । धनुः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस् एवं उस् अन्त में रहे वहाँ नपुंसक है।

१३५ अर्चिः स्त्रियां च।

इसन्तत्वेऽपि अर्चिः स्त्रियां नपुंसके च स्यात्। इयमिदं वा अर्चिः।

अर्चिः स्त्रीलिङ्ग है, इसन्त अर्चिः स्त्रीलिङ्ग एवं नपुंसकलिङ्ग है।

१३६ छदिः स्त्रियामेव।

इयं छदिः। छाद्यतेऽनेनेति छादेश्चुरादिण्यन्तादर्चिशुचोत्यादिना इस्। इस्मन्नित्यादिना ह्रस्वः 'पटलं छदि'रित्यमरः। तत्र पटलसाहचर्याच्छदिषः क्लीबतां वदन्तोऽमरव्याख्यातार उपेक्ष्याः।

छदि शब्द स्त्रीलिङ्ग है। ण्यन्तछादि से इस् प्रत्यय 'अर्चिशुचि' से है, 'अस्मन्' से ह्रस्व हुआ। पटलशब्द साहचर्य से छदिः नपुंसक कोष-प्रामाण्य से है, यह मत ग्राह्य नहीं है।

१३७ मुखनयनलोहवनमांसरुधिरकार्मुकविवरजलहलधनाऽन्नाभिधानानि।

एतेषामभिधायकानि क्लीबे स्युः। मुखमाननम्। नयनं लोचनम्। लोहं कालम्। वनं गहनम्। मांसमामिषम्। रुधिरं रक्तम्। कार्मुकं शरासनम्। विवरं बिलम्। जलं वारि। हलं लाङ्गलम्। धनं द्रविणम्। अन्नमशनम्। अस्यापवादानाह त्रिसूत्र्या।

मुख, नयन, लोह, वन, मांस, रुधिर, कार्मुक, विवर, जल, हल, धन, एवं अन्नवाचक नपुंसक हैं।

१३८ सीरार्थौदनाः पुंसि।

सीर, अर्थ, ओदन पुंल्लिङ्ग हैं। इस विशेष वचन से पूर्व सूत्र का बाध है।

१३९ वक्त्रनेत्राऽरण्यगाण्डीवानि पुंसि च।

वक्त्रो वक्त्रम्। नेत्रो नेत्रम्। अरण्योऽरण्यम्। गाण्डीवो गाण्डीवम्।

वक्त्र, नेत्र, अरण्य, गाण्डीव, ये पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक हैं।

१४० अटवी स्त्रियाम्।

अटवी शब्द स्त्रीलिङ्ग है।

१४१ लोपधः।

कुलम्। कूलम्। स्थलम्।

लकारोपध नपुंसक है।

१४२ तूलोपलतालकुसूलतरलकम्बलदेवलवृषलाः पुंसि।

अयं तूलः।

तूल, उपल, ताल, कुसूल, तरल, कदम्ब, देवल, वृषल, पुंल्लिङ्ग हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१४३ शीलमूलमङ्गलसालकमलतलमुसलकुण्डलपललमृणालवाल-
वालनिगलपलालबिडालखिलशूलाः पुंसि च ।

चात् क्लीबे । शीलं शील इत्यादि ।

शील, मूल, मङ्गल, साल, कमल, तल, मुसल, कुण्डल, पलल, मृणाल, वाल, वाल, निगल, पत्रल, बिडाल, खिल, शूल ये पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक हैं ।

१४४ शतादिः संख्या ।

शतम् । सहस्रम् । शतादिरिति किम् ? एको द्वौ बहवः । संख्येति किम् ? शतशृङ्गो नाम पर्वतः ।

शतादि संख्यावाचक नपुंसक हैं ।

१४५ शताऽयुतप्रयुताः पुंसि च ।

अयं सतः । इदं शतमित्यादि ।

शत, अयुत, प्रयुत पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक हैं ।

१४६ लक्षा कोटिः स्त्रियाम् ।

इयं लक्षा । इयं कोटिः । 'वा लक्षा नियुतं च तदि'त्यमरात् क्लीबेऽपि लक्षम् ।

लक्षा एवं कोटि स्त्रीलिङ्ग है ।

१४७ शङ्कुः पुंसि ।

शङ्कु पुंल्लिङ्ग है ।

१४८ सहस्रः क्वचित् ।

अयं सहस्रः । इदं सहस्रम् ।

अर्थविशेष में सहस्र पुंल्लिङ्ग है एवं नपुंसक भी ।

१४९ मन्द्व्यच्कोऽकर्तरि ।

मन्प्रत्ययान्तो द्व्यच्कः क्लीबः स्यान्न तु कर्तरि । वर्म । चर्म । द्व्यच्कः किम् ? अणिमा । महिमा । अकर्तरि किम् ? ददाति इति दामा ।

मन् प्रत्ययान्त दो स्वरयुक्त नपुंसक है किन्तु वह कर्तृवाच्य न होने पर ।

१५० ब्रह्मन् पुंसि च ।

अयं ब्रह्मा । इदं ब्रह्म ।

ब्रह्मन् पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक है ।

१५१ नामरोमणी नपुंसके ।

मनद्व्यच्क इत्यस्यायं प्रपञ्चः ।

नामन्, रोमन् नपुंसक हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१५२ असन्तो द्व्यच्कः ।

यशः । मनः । तपः । द्व्यच्कः किम् ? चन्द्रमाः ।

अस् प्रत्ययान्त जो दो स्वर युक्त शब्द वह नपुंसक है । त्र्यच्क चन्द्रमाः पुंल्लिङ्ग है ।

१५३ अप्सराः स्त्रियाम् ।

एता अप्सरसः । प्रायेणायं बहुवचनान्तः ।

प्रायः बहुवचान्त अप्सरस् स्त्रीलिङ्ग है ।

१५४ त्रान्तः ।

पत्रम् । क्षत्रम् ।

त्रप्रत्ययान्त नपुंसक है ।

१५५ यात्रामात्राभस्त्रादंष्ट्रावरत्राः स्त्रियामेव ।

त्रप्रत्ययान्त यात्रा, मात्रा, भस्त्रा, दंष्ट्रा, वरत्रा स्त्रीलिङ्ग हैं ।

१५६ भृत्रामित्रछात्रपुत्रमन्त्रवृत्रमेढ्रोष्ट्राः पुंसि ।

अयं भृत्रः । न मित्रममित्रः । 'तस्य मित्राण्यमित्रास्ते' इति माघः । 'स्यातामभित्रौ मित्रे चे'ति च । यत्तु 'द्विषोऽमित्रे' इति सूत्रे हरदत्तेनोक्तम् । 'अमेर्द्विषदित्यौणादिक इत्रच्' । अमेरमित्रम् । मित्रस्य व्यथयेदित्यादौ मध्योदात्तस्तु चिन्त्यः । नञ्समासेऽप्येवम् । परवल्लिङ्गतापि स्यादिति तु तत्र दोषान्तरमिति । तत्प्रकृतसूत्राऽपर्यालोचनमूलकम् स्वरदोषोद्भावनमपि 'नञो जरमरमित्रमृता' इति षाष्ठसूत्राऽस्मरणमूलकमिति दिक् ।

त्रप्रत्ययान्त भृत्र, अमित्र, छात्र, पुत्र, मन्त्र, वृत्र, मेढ्र, उष्ट्र, पुंल्लिङ्ग हैं । माघकवि ने 'अमित्रस्ते' कहा है । इत्रच् प्रत्ययान्त मित्र कथन चिन्त्य है । अनेक दोषग्रस्त वह पक्ष मूल में ही स्पष्ट किया गया है ।

१५७ पत्रपात्रपवित्रसूत्रच्छत्राः पुंसि च ।

त्रप्रत्ययान्त पत्र, पात्र, पवित्र, सूत्र, छात्र ये शब्द पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक हैं ।

१५८ बलकुसुमशुल्बपत्तनरणाभिधानानि

बलं वीर्यम् ।

बल, कुसुम, शुल्ब, युद्ध, पत्तन एवं रणार्थक शब्द नपुंसक है ।

१५९ पद्मकमलोत्पलानि पुंसि च ।

पद्मादयः शब्दाः कुसुमाभिधायित्वेऽपि द्विलिङ्गाः स्युः । अमरोप्याह–'वा पुंसि पद्मं नलिनमि'ति एवं चार्धर्चादिसूत्रे तु 'जलजे पद्मं नपुंसकमेवे'ति वृत्तिग्रन्थो मतान्तरेण नेयः ।

पद्म, कमल, उत्पल शब्द, कुसुमवाचक भी पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक हैं । अमरकार ने भी कहा है ये द्विलिङ्गक हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१६० आहवसंग्रामौ पुंसि ।

आहव एवं संग्राम पुंल्लिङ्ग है ।

१६१ आजिः स्त्रियामेव ।

आजि स्त्रीलिङ्ग है ।

१६२ फलजातिः ।

फलजातिवाची शब्दो नपुंसकं स्यात् । आमलकम् । आम्रम् ।

फलवाचक नपुंसक है ।

१६३ वृक्षजातिः स्त्रियामेव ।

क्वचिदेवंदम् । हरीतकी ।

वृक्ष जातिवाचक क्वचित् स्त्रीलिङ्ग है ।

१६४ वियज्जगत्सकृत्शकन्पृषत्शकृद्यकृदुदश्वितः ।

एते क्लीबाः स्युः ।

वियत्, जगत्, सकृत्, शकन्, पृषत्, शकृत्, यकृत्, उदश्वित्, ये नपुंसक हैं ।

१६५ नवनीताऽवताऽनऽनृताऽमृतनिमित्तवित्तचित्तपित्तव्रतरजत-वृत्तपलितानि ।

नवनीत, अवत, अन, अनृत, अमृत, निमित्त, वित्त, चित्त, पित्त, व्रत, रजत, वृत्त, पलित ये नपुंसक हैं ।

१६६ श्राद्धकुलिशदैवपीठकुण्डाङ्काङ्गदधिसक्थ्यक्ष्यास्यास्पदाकाश-कण्ववीजानि ।

एतानि क्लीबे स्युः ।

श्राद्ध, कुलिश, दैव, पीठ, कुण्ड, अङ्क, अङ्ग, दधि, सक्थि, अक्षि, अस्थि, आस्य, आस्पद, आकाश, कण्व, बीज नपुंसक हैं ।

१६७ दैवं पुंसि च । दैवम् । दैवः ।

दैव पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक हैं ।

१६८ धान्याज्यसस्यरूप्यपण्यवर्ण्यधृष्यहव्यकव्यकाव्यसत्यापत्य-मूल्यशिक्यकुड्यमद्यहर्म्यतुर्यसैन्यानि ।

इदं धान्यमित्यादि ।

धान्य, आज्य, सस्य, रूप्य, पण्य, वर्ण्य, धृष्य, हव्य, कव्य, काव्य, सत्य, अपत्य, मूल्य, शिक्य, कुड्य मद्य, हर्म्य, तूर्य, सैन्य, नपुंसक हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१६९ द्वन्द्वबर्हदुःखबडिशपिच्छबिम्बकुटुम्बकवचवरशर-
वृन्दारकाणि ।

द्वन्द्व, बर्ह, दुःख, बडिश, पिच्छ, बिम्ब, कुटुम्ब, कवच, वर, शर, वृन्दारक नपुंसक हैं ।

१७० अक्षमिन्द्रिये ।

इन्द्रिये किम् ? रथाङ्गादौ मा भूत् ।

इति नपुंसकाधिकारः ।

इन्द्रियार्थक अक्ष नपुंसक है । अन्यत्र वह पुंल्लिङ्ग है ।

पं० श्रीबालकृष्ण पञ्चोलि-विरचित रत्नप्रभा में नपुंसकाधिकार समाप्त ।

492

वेदाङ्ग पुस्तकालय
आगत क्रमांक..... 2266.....
दिनांक.....

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri